पद्मिनी

इतिहास और कथा-काव्य की जुगलबंदी

पद्मिनी

इतिहास और कथा-काव्य की जुगलबंदी

माधव हाड़ा

भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान
राष्ट्रपति निवास, शिमला–171005

PADMINI: ITIHAS AUR KATHA - KAVYA KI JUGALBANADI (2023)

By Madhav Hada (1958)

Criticism

प्रथम संस्करण, 2023
First Edition, 2023

कॉपीराइट © भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला
Copyright © Indian Institute of Advanced Study, Shimla

सर्वाधिकार सुरक्षित।
प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में या माध्यम से पुस्तक का कोई भी भाग पुनः प्रस्तुत या प्रसारित नहीं किया जा सकता है।
All rights reserved.
No part of book may be reproduced or transmitted, in any form or by any means, without the written permission of the publisher.

ISBN: 978-93-82396-84-0

मूल्य | Price : ₹ 1395/-

सचिव, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास, शिमला-171005 द्वारा प्रकाशित
मुद्रक : दीपी फाइन प्रिंट्स, नयी दिल्ली
टाइपसेट : ऊषा कश्यप, नयी दिल्ली

Published by the Secretary, Indian Institute of Advanced Study, Rashtrapati Niwas, Shimla-171005

Printed at Dipi Fine Prints, New Delhi.
Typeset by Usha Kashyap, New Delhi.

Website: www.iias.ac.in

वीणा के लिए

अनुक्रम

खंड-1
विवेचनात्मक अध्ययन

प्रास्ताविक । 11

अध्याय - 1: भारतीय परंपरा । 25

अध्याय - 2: देशज कथा-काव्य । 65

अध्याय - 3: कथा स्रोत । 87

अध्याय - 4: कथा योजना । 111

अध्याय - 5: इतिहास और मिथ । 127

अध्याय - 6: संस्कृति । 173

अध्याय -7: भाषा एवं शिल्प । 221

उपसंहार । 261

खंड-2

देशज ऐतिहासिक कथा-काव्य

विवेच्य रचनाओं का मूल एवं हिंदी कथा रूपांतर

अध्याय-1: *गोरा-बादल कवित्त* । 287

अध्याय-2: हेमरतन । *गोरा-बादल पदमिणी चउपई* । 309

अध्याय-3: *पद्मिनीसमिओ* । 373

अध्याय-4: जटमल नाहर । *गोरा-बादल कथा* । 407

अध्याय-5: लब्धोदय । *गोरा-बादल चौपई* । 437

अध्याय-6: दयालदास । *राणारासो* । पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण । 513

अध्याय-7: दलपति विजय । *खुम्माणरासो* । पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण। 527

अध्याय-8: *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा* । पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण । 575

अध्याय-9: मलिक मुहम्मद जायसी। *पद्मावत* (केवल कथा रूपांतर)। 655

परिशिष्ट

शब्दार्थ सूची । 679

खंड– 1 | **विवेचनात्मक अध्ययन**

प्रास्ताविक

प्रस्तुत शोध कार्य मध्यकालीन साहित्य और इतिहास के बहुचर्चित, किंतु विवादित पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण (1303 ई.) पर निर्भर देशज ऐतिहासिक कथा-काव्यों का विवेचनात्मक अध्ययन है। कतिपय उपनिवेशकालीन और उनके उत्साही अनुगामी 'आधुनिक' भारतीय इतिहासकारों के संदेह के बावजूद पद्मिनी के लिए अलाउद्दीन ख़लजी का चित्तौड़गढ़ अभियान लोक स्मृति और साहित्य में सदियों से लगभग 'मान्य सत्य' की तरह रहा है। पुनर्जागरणकाल और बाद में राष्ट्र निर्माण की आरंभिक सजगता के दौर में महाराणा प्रताप के मुग़लों के विरुद्ध संघर्ष की तरह ही पद्मिनी के अपने सतीत्व की रक्षा के लिए जौहर को भी साहित्य में आदर्श की तरह प्रस्तुत किया गया। पद्मिनी के जौहर पर प्रचुर मात्रा में रोमांटिक और राष्ट्रवादी साहित्य उपलब्ध है। उसके चरित्र को किशोर और युवा विद्यार्थियों में आदर्श की तरह प्रस्तुत करने के लिए साहित्य और चित्रकथाओं की रचनाएँ हुईं।[1] चित्तौड़ और उदयपुर- दोनों विश्व पर्यटन के मानचित्र पर हैं, इसलिए इन दोनों के अतीत को विदेशी पर्यटकों के लिए जिस तरह से प्रस्तुत किया गया, उसमें भी पद्मिनी विषयक प्रकरण बहुत प्रमुखता से, एक असाधारण घटना की तरह वर्णित है। ऐसी कई पुस्तकें चित्तौड़ और उदयपुर सहित संपूर्ण राजस्थान में देशी-विदेशी पर्यटकों के लिए उपलब्ध हैं।[2] पद्‌मिनी-रत्नसेन प्रकरण में निहित रोमांस, शौर्य और बलिदान लोकप्रिय फ़िल्म[3] और टीवी सीरियल निर्माताओं[4] के लिए भी आकर्षण का विषय रहे हैं। फ़िल्म 'पद्मावत' पर हुए विवाद से पहले तक यह प्रकरण प्रमुखता से राजस्थान सहित अन्य एकाधिक राज्यों और केन्द्र की इतिहास और साहित्य संबंधी पाठ्य पुस्तकों में भी सम्मिलित था। विवाद के बाद कुछ पाठ्यक्रमों से इसको हटा दिया गया, जबकि कुछ में इसे राजपूत समाज की मंशा के अनुसार बदल दिया गया।[5] यह भी कि सदियों से चित्तौड़ दुर्ग की कुछ इमारतें और स्थान पद्मिनी से संबंधित विख्यात हैं। दुर्ग में तालाब के किनारे बना हुआ एक विशालकाय महल भी 'पद्मिनी महल' के नाम से जाना जाता

है और इसी तरह एक छोटा दुमंजिला महल तालाब के अंदर भी है, जिसे भी 'पद्मिनी महल' कहते हैं। दुर्ग में एक स्थान 'जौहरकुंड' के नाम से भी विख्यात है। पर्यटकों को यही जानकारियाँ दी भी जाती हैं। विख्यात इतिहासकार गौरीशंकर ओझा ने भी इन स्थानों का नामोल्लेख इसी रूप में किया है।[6] फ़िल्म पर हुए विवाद से यह प्रकरण एकाएक पहले से अधिक चर्चा में आ गया और देखते-ही-देखते इस प्रकरण पर आधारित एकाधिक कथेतर और कथा रचनाएँ प्रकाशित हो गईं। ये सभी रचनाएँ, फ़ौरीतौर पर कुछ हद तक इतिहास में भी जाती हैं, लेकिन ये सभी सदियों पुराने इस 'मान्य सत्य' पर निर्भर हैं कि पद्मिनी के लिए अलाउद्दीन ने चित्तौड़गढ़ पर आक्रमण किया और अपने सतीत्व की रक्षा के लिए पद्मिनी ने जौहर किया।[7] साथ ही, ये रचनाएँ इधर कुछ समय से अस्मिता सचेत हुए भारतीय जनसाधारण की मंशा के अनुसार इस प्रकरण का रूमानीकरण भी करती हैं।

अधिकांश आधुनिक भारतीय इतिहासकारों का नज़रिया शुरू से ही इस प्रकरण पर उपनिवेशकालीन इतिहासकारों के अतिरिक्त उत्साही अनुगामी इतिहासकारों की तरह था। इन इतिहासकारों में से कुछ तो इस सीमा तक उत्साही थे कि वे यूरोपीय इतिहासकारों के बहुत अस्पष्ट और अपुष्ट संकेतों को भी पुष्ट और विस्तृत करने में ऐसे जुटे कि सच्चाई उनसे बहुत पीछे छूट गई और देशज ऐतिहासिक और साहित्यिक स्रोत और उनमें विन्यस्त कतिपय ऐतिहासिक 'तथ्य' उनसे अनदेखे रह गए। लगभग सार्वभौमिक बन गई ग्रीक-रोमन ईसाई इतिहास चेतना से, सनातनता और चक्रीय कालबोध पर निर्भर भारतीय इतिहास चेतना कुछ हद तक अलग थी, लेकिन उसमें काल का रेखीय बोध भी पर्याप्त था, लेकिन इन ऐतिहासिक कथा-काव्यों का मूल्यांकन इस आधार पर नहीं हुआ। 'मान्य सत्य' या विश्वास का भी इतिहास में पर्याप्त महत्त्व होता है। ''इतिहास की चेतना यदि मनुष्य की चेतना की यात्रा और उस पर पड़े प्रभाव का अध्ययन है, तो हमें उन घटनाओं को अधिक महत्त्व देना होगा, जो हमारी चेतना में अभी भी अस्तित्वमान हैं और इसलिए हमारे कार्यों को अभी भी प्रभावित करती हैं।''[8] ख़ास बात यह है कि इन रचनाओं को इस निगाह से भी नहीं पढ़ा-समझा गया।

राजस्थान का पहला आधुनिक इतिहास लिखने वाले लेफ्टिनेंट कर्नल जेम्स टॉड (1829 ई.) के समय शोध के संसाधन बहुत सीमित थे। उन्होंने उपलब्ध सीमित जानकारियों, साहित्य और जनश्रुतियों को मिलाकर प्रकरण का जो वृत्तांत *एनल्स एंड एंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान* में गढ़ा, वो इतिहास, साहित्य और लोक स्मृति का मिला-जुला, लेकिन आधा-अधूरा रूप था।[9] टॉड के बाद इस प्रकरण का हवाला *दि ओक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया* में पहली बार वी.ए. स्मिथ (1921 ई.) ने दिया।

उन्होंने अपनी तरफ़ से इस प्रकरण की खोजबीन नहीं की और न ही वे इसकी तफ़सील में गए। उन्होंने केवल यह लिखा कि यह ''टॉड के पन्नों में है।''[10] उन्होंने यह नहीं कहा कि यह मिथ्या, मनगढ़ंत या झूठ है, उन्होंने केवल यह लिखा कि यह 'सोबर हिस्ट्री' (sober history) नहीं है।[11] कुछ हद उनकी बात सही भी थी। साहित्य और लोक में व्यवहृत इतिहास सही मायने में पूरी तरह इतिहास नहीं होता, लेकिन फिर भी इतना तो तय है कि उसमें इतिहास भी होता है। वी.ए. स्मिथ की यह टिप्पणी इतिहास के यूरोपीय संस्कारवाले आधुनिक भारतीय इतिहासकारों के लिए आदर्श और मार्गदर्शक सिद्ध हुई। आरंभ में गौरीशंकर ओझा (1928 ई.)[12] और किशोरीसरन लाल (1950 ई.)[13] ने इस प्रकरण की ऐतिहासिकता पर संदेह व्यक्त किया। बाद में कालिकारंजन कानूनगो (1960 ई.) तो अति उत्साह में इस प्रकरण को सर्वथा मिथ्या और ग़लत सिद्ध करने में प्राणपण से जुट गए। उन्होंने दो तर्क दिए- एक तो समकालीन इस्लामी स्रोतों में इस प्रकरण का उल्लेख नहीं मिलता और दूसरा, कुछ वंश अभिलेखों में रत्नसिंह का नाम ही नहीं है। कुछ हद तक उनकी दोनों बातें सही थीं, लेकिन वे इसके कारणों में नहीं गए। उन्होंने हड़बड़ी में यह निष्कर्ष निकाल लिया कि यह प्रकरण मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा कल्पित है और इसका इतिहास से कोई लेना-देना नहीं है।[14] उन्होंने आर.सी. मजूमदार के हवाले से यह कहने में भी देर नहीं की कि जायसी का चित्तौड़ मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ नहीं है, यह कहीं इलाहाबाद के समीप स्थित चित्रकूट है।[15] उनकी देखा-देखी इस प्रकरण को मिथ्या सिद्ध करने वालों की भीड़ लग गई। बाद में फ़िल्म 'पद्मावत' पर हुए विवाद के दौरान हरबंश मुखिया, हरफ़ान हबीब[16] आदि भी इस मुहिम शामिल हो गए। उनकी राय में यह प्रकरण जायसी (*पद्मावत,* 1540 ई.) द्वारा कल्पित, इसलिए अनैतिहासिक है। ये अधिकांश इसकी पुष्टि इस तर्क से करते हैं कि समकालीन इस्लामी स्रोतों- अमीर ख़ुसरो कृत *ख़जाइन-उल-फ़ुतूह* (1311-12 ई.) और *दिबलरानी तथा ख़िज्र ख़ाँ* (1318-19 ई.), ज़ियाउद्दीन बरनी कृत *तारीख़-ए-फ़िरोजशाही* (1357 ई.) तथा अब्दुल मलिक एसामी कृत *फ़ुतूह-उस-सलातीन* (1350 ई.) में इसका उल्लेख नहीं है। इनके अनुसार जायसी ने इसकी कल्पना की और यहीं से यह परवर्ती और देशज चारण और जैन कथा-काव्यों में पहुँचा। इस मुहिम में शामिल ये विद्वान् इस तथ्य की अनदेखी ही कर गए कि ''चुप्पी से बहसियाना तार्किक रूप से भ्रामक होता है और केवल चुप्पी के आधार पर की गई कोई भी परिकल्पना किसी दिन ग़लत भी साबित हो सकती है।''[17] यही हुआ, बाद में यह धारणा ग़लत सिद्ध हो गई। *पद्मावत* (1540 ई.) से पहले *छिताईचरित्र* (1475-1480 ई.) में पद्मिनी-रत्नसेन का कथा बीजक मिल गया।[18] इसी तरह *पद्मावत* को बिना पढ़े-समझे उसके कथानक

को उत्तरप्रदेश के इलाहाबाद से जोड़ने का कानूनगो का उद्यम भी असफल हो गया। दरअसल *पद्मावत* में अलाउद्दीन के अभियान में मार्गस्थ क़स्बों- मांडलगढ़ आदि और चित्तौड़ के दुर्ग और उसके समीस्थ स्थानों के भूगोल का वर्णन मिलता है, जो यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि *पद्मावत* में वर्णित चित्तौड़ मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ ही है।[19] बाद में मुनि जिनविजय[20], दशरथ शर्मा[21] आदि क्षेत्रीय इतिहासकारों ने रत्नसिंह की प्रामाणिकता भी सिद्ध कर दी। उससे संबंधित एकाधिक पुरातात्त्विक साक्ष्य भी मिल गए।[22] यही नहीं, कतिपय समकालीन स्रोतों के आधार पर अगरचंद नाहटा ने राघवचेतन की ऐतिहासिकता भी प्रमाणित कर दी।[23] कालिकारंजन कानूनगो की स्थापनाओं में से अधिकांश प्रमाण सहित बहुत पहले ही ग़लत साबित हो गईं, लेकिन यह साबित करने वाले इतिहासकारों की सीमा यह थी कि ये 'क्षेत्रीय' कहे-माने जाते थे। ख़ास बात यह थी कि इनकी मौजूदगी अपने अनुशासन में वर्चस्वकारी नहीं थी, इसलिए इनकी आवाज़ नगाड़ों के शोर में तूती की तरह दब गई और लोग उन्हीं पुरानी ग़लत धारणाओं को दोहराते रहे।[24]

देश भाषाओं में इस प्रकरण पर ऐतिहासिक कथा-काव्यों की दीर्घकालीन और समृद्ध परंपरा है। पद्मिनी विषयक कथा बीजक जायसी की *पद्मावत* की रचना से बहुत पूर्व गुजरात सहित लगभग पूरे उत्तरी-पश्चिमी भारत के जनसाधारण की स्मृति में था और यहाँ इसको अपने ढंग से पल्लवित और विस्तृत करके मौखिक और लिखित कथा-काव्य होते रहते थे। संभावना तो यही अधिक है कि ख़ुद जायसी ने भी इसी कथा बीजक को आधार बनाकर *पद्मावत* की रचना की होगी। अज्ञात कवि कृत *गोरा-बादल कवित्त* (1588 ई. से पूर्व), हेमरतन कृत *गोरा-बादल पदमिणी चउपई* (1588 ई.), अज्ञात कवि कृत *पद्मिनीसमिओ* (1616 ई.), जटमल नाहर कृत *गोरा-बादल कथा* (1623 ई.), लब्धोदय कृत *पद्मिनी चरित्र चौपई* (1649 ई.), दयालदास कृत *राणारासो* (1668-1681 ई), दलपति विजय कृत *खुम्माणरासो* (1715-1733 ई.) और अज्ञात रचनाकार कृत *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा* (प्रतिलिपि, 1870 ई.) इस परंपरा की अब तक उपलब्ध रचनाएँ हैं। अपनी प्रकृति और चरित्र में ये रचनाएँ कुछ हद तक अलग हैं- ये सभी एक ही कथा बीजक पर आधारित हैं, लेकिन इनका पाठ किसी एक ही अर्थ में सीमित या ठहरा हुआ नहीं है। इनके रचनाकार इनको भिन्न अर्थ और मोड़-पड़ाव में पल्लवित करने के लिए स्वतंत्र हैं। सभी रचनाएँ बुनियादी कथा बीजक संबंधी कुछ समानताओं के बावजूद एक-दूसरे से अलग हैं। इनके अधिकांश और उनमें भी ख़ासतौर पर जैन रचनाकार अपनी रचना परंपरा से लोकप्रिय कथा बीजक या पहले से उपलब्ध रचना के आधार पर करते हैं और इसका वे रचना के आरंभ में उल्लेख भी करते हैं। *चउपई* के रचनाकार हेमरतन

ने कहा है कि- *सुणिउ तिसौ भाष्यौ संबंधि* अर्थात् जैसा मैंने सुना, वैसा ही संबंध कहा है। यथावश्यकता ये रचनाकार अपनी रचना में परंपरा की किसी भी रचना की कोई प्रसिद्ध सूक्ति या कथन बिना उसका ऋण व्यक्त किए अपनी रचना में उद्धृत करते चलते हैं। हेमरतन ने अपने पूर्ववर्ती किसी अज्ञात कवि को और लब्धोदय और दलपति विजय ने अपने पूर्ववर्ती हेमरतन को अपनी रचनाओं में उद्धृत किया है। *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा* में भी कई अज्ञात कवियों के छंद उद्धृत किए गए हैं। अपने समय और समाज की ज़रूरतों के अनुसार इनमें कभी सतीत्व, कभी स्वामिधर्म, तो कभी शौर्य और पराक्रम जैसे मूल्यों को प्राथमिकता और महत्त्व दिया गया है। किसी एक ही प्रकरण पर इतने लंबे समय तक इस तरह अलग-अलग रचनाओं की निरंतरता के ऐसे उदाहरण भारतीय साहित्य में बहुत कम हैं। ये रचनाएँ किसी नगर-महानगर की जगह छोटे गाँव-क़स्बों में हुईं। ये चारण और जैन काव्य देश भाषाओं में हैं, जिनमें संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के अवशेषों के साथ कई क्षेत्रीय विशेषताएँ आ गयी हैं। इन देश भाषाओं का नयी आधुनिक भाषायी पहचानों- राजस्थानी, गुजराती आदि में विभाजन और वर्गीकरण बहुत मुश्किल काम है।

2.

सोलहवीं से उन्नीसवीं सदी तक विस्तृत पद्मिनी विषयक ऐतिहासिक कथा-काव्यों की यह देशज परंपरा दीर्घकालीन, वैविध्यपूर्ण और बहुत समृद्ध है। आश्चर्य यह है कि इतिहास और साहित्य, दोनों अनुशासनों ने इसको अपनी विचार की परिधि में नहीं लिया। (1) ये कथा-काव्य रचनाएँ भारतीय ऐतिहासिक कथा-काव्य की बहुत प्राचीन परंपरा का स्वाभाविक, देशज और क्षेत्रीय विकास हैं। जायसी के *पद्मावत* से इनका से कोई का संबंध नहीं है। यह परंपरा स्वायत्त और निरंतर है और इसकी रचनाओं की घटनाओं के मोड़-पड़ाव और चरित्र जायसी से अलग होने के साथ एक-दूसरे से भी अलग हैं। अधिकांश आधुनिक विद्वानों ने इस परंपरा की अलग से पहचान और मूल्यांकन नहीं किया। (2) ये कथा-काव्य अपनी प्रकृति और संगठन में साहित्य के साथ कुछ हद तक 'इतिहास' भी हैं, इनमें स्मृति के व्यवहार और विन्यास का एक ख़ास भारतीय और देशज ढंग है और इनके कुछ कवि-लेखक भी इनको 'इतिहास' कहते-मानते थे, लेकिन 'आधुनिक' संस्कारवाले अधिकांश इतिहासकार इनको ऐतिहासिक स्रोत नहीं मानते। एक अत्यंत अतिरंजित और अलंकरणप्रधान प्रशस्ति काव्य अमीर ख़ुसरो कृत *ख़ज़ाइन-उल-फ़ुतूह* को अधिकांश आधुनिक भारतीय इतिहासकार बतौर साक्ष्य, बल्कि सर्वोपरि साक्ष्य की तरह व्यवहार में लाते रहे, लेकिन उन्होंने इन देशज ऐतिहासिक कथा-काव्यों को जायसी से प्रेरित और मनगढ़ंत मानकर

ख़ारिज़ कर दिया। (3) ये देशज कथा-काव्य इतिहास और साहित्य में आवाजाही और इनकी एक-दूसरे पर निर्भरता की दीर्घकालीन भारतीय परंपरा का विकास भी हैं, इसलिए इनमें आख्यान का एक सर्वथा नया रूप मिलता है। इन कथा-काव्यों के जैन और चारण कवि-कथाकारों को इतिहास को कथा-काव्य में ढालने का अभ्यास और महारत हासिल था, जो उन्होंने अपने यजमानों की रुचियों और सांस्कृतिक ज़रूरतों के अनुसार विकसित या अर्जित किया था। मध्यकालीन साहित्य की पहचान और मूल्यांकन के अधिकांश कार्यों में इनमें से कुछ को चारण मतलब 'राज्याश्रयी' और कुछ को जैन मतलब 'सांप्रदायिक' मानकर महत्त्व नहीं दिया गया। उपनिवेशकाल में जेम्स टॉड ने अपने इतिहास में एक जगह *खुम्माणरासो* का उल्लेख किया[25], अन्यथा परवर्ती आधुनिक विद्वानों की निगाह में इन कथा-काव्यों की हैसियत जायसी से प्रेरित काल्पनिक कथा-काव्य से अधिक कभी नहीं रही। ख़ास बात यह है कि क्षेत्रीय इतिहास के मनीषी विद्वान् गौरीशंकर ओझा ने भी इनको 'भाटों की रचनाओं' की श्रेणी में रखा।[26] जायसी और उनकी रचना *पद्मावत* पर हिंदी और अंग्रेज़ी में कई शोध-आलोचनाएँ हैं और उनमें से एकाधिक में प्रसंगवश इनमें से कुछ रचनाओं की चर्चा भी है[27], लेकिन केवल इन पर एकाग्र अभी तक कोई शोध कार्य नहीं हुआ है। यह शोध कार्य इन देशज ऐतिहासिक कथा-काव्यों की अपनी परंपरा, विचारधारा, दर्शन, ढाँचे और शैली की परख-पड़ताल के साथ इनके साहित्यिक महत्त्व को उजागर करने का विनम्र प्रयास है।

3.

पद्मिनी विषयक देशज मूल ऐतिहासिक कथा-काव्यों, तत्संबंधी देशज ऐतिहासिक स्रोतों, पुरातात्त्विक साक्ष्यों और संबंधित सहायक इस्लामी और औपनिवेशिक साहित्य पर विचार करने के बाद हम कुछ निष्कर्षों पर पहुँच सकते हैं। (1) यह है कि पद्मिनी विषयक ऐतिहासिक कथा-काव्यों की बहुत दीर्घकालीन और निरंतर परंपरा है और यह प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक कथा-काव्य परंपरा का स्वाभाविक और देशज विकास है। (2) यह भी कि अपने समय की विचारधारा और दर्शन के अनुसार ये रचनाएँ कुछ पारंपरिक कथा-कवि समयों, प्रथाओं, तयशुदा ढाँचों और शैलियों में हैं। (3) इसी तरह यह भी कि पद्मिनी विषयक कथा बीजक जायसी की *पद्मावत* की रचना से बहुत पूर्व गुजरात सहित उत्तरी-पश्चिमी भारत के कुछ क्षेत्रों की लोक स्मृति में था और यहाँ इसको अपने ढंग से पल्लवित और विस्तृत करके मौखिक और लिखित कथा-काव्य होते रहते थे (4) और ख़ुद जायसी ने भी लोक में सदियों से प्रचलित इस कथा बीजक को आधार बनाकर *पद्मावत* रचना की थी। (5) इसी तरह पद्मिनी विषयक देशज ऐतिहासिक कथा-काव्यों का जायसी के *पद्मावत* से कोई

संबंध नहीं है और इनकी कथा के मोड़-पड़ाव, कथा-काव्य रूप और शैली जायसी से अलग और पारंपरिक हैं।

4.

प्रस्तुत शोध का विचार अकारण नहीं है। इतिहास और साहित्य की औपनिवेशिक चेतना और संस्कार की ही नतीजा है कि साहित्य की अपनी तरह की इस अलग और ख़ास परंपरा को साहित्य और इतिहास, दोनों अनुशासनों ने अपने विचार के दायरे में नहीं लिया। आश्चर्य यह है कि फ़िल्म 'पद्मावत' पर जब विवाद हुआ, तो आधुनिक भारतीय इतिहासकारों और विद्वानों ने इस्लामी-अरबी-फ़ारसी स्रोतों के तो साक्ष्य दिए, लेकिन प्रकृति और चरित्र से लोक में ऐतिहासिक कही-समझी जाने वाली इन रचनाओं को बतौर साक्ष्य कम विद्वानों ने उद्धृत किया। साहित्य में भी ज़्यादातर इस कथा बीजक पर निर्भर जायसी के *पद्मावत* की ही चर्चा हुई। इनमें से कुछ रचनाएँ कथा और रचना के लिहाज़ अच्छी थीं, उनमें भारतीय कथा परंपरा की गतिशीलता के कई रूप थे, लेकिन क्योंकि ये रचनाएँ देश भाषाओं में थीं, इसलिए इनका मूल्यांकन नहीं हुआ। प्रस्तुत शोधकार्य में (1) इन रचनाओं को एक तरह से पहली बार एक साथ रखकर ऐतिहासिक कथा-काव्य की भारतीय परंपरा के अंतर्गत पहचानने-समझने का प्रयास किया गया है। ये रचनाएँ इस परंपरा का देशज और क्षेत्रीय रूपांतरण भी हैं, इसलिए यहाँ इनमें क्षेत्रीय सांस्कृतिक और समाजिक ज़रूरतों से होने वाले रूपांतरों और जोड़-बाकी की भी पहचान की गई है। (2) पद्मिनी विषयक कथा-काव्यों में इतिहास के व्यवहार और विन्यास की ख़ास भारतीय पद्धति है। भारतीय जनसाधारण इतिहास को किसी ठहरे हुए दस्तावेज़ की तरह कम इस्तेमाल करता है। इतिहास अकसर उसकी स्मृति में यात्रा करता है और यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी जीवंत और गतिशील भी रहता है। इन रचनाओं के लेखक-कवि घटना के मोड़-पड़ाव और चरित्रों में कुछ हद तक संशोधन-संवर्धन करने, अपने पूर्ववर्ती का अनुकरण और यथावश्यकता उसको उद्धृत करने के लिए भी स्वतंत्र थे। यह अवश्य है कि इन कवि-लेखकों का प्रयास उस रचना को 'इधर-उधर' के बावजूद कथा बीजक के आसपास रखने का रहता था। यहाँ भारतीय जनसाधारण के रचना में इतिहास और स्मृति के इस ख़ास व्यवहार को जानने-पहचानने का प्रयत्न भी किया गया है। (3) पद्मिनी प्रकरण से संबंधित कथा-काव्यों की ख़ास बात यह है कि ये भारतीय ऐतिहासिक कथा-काव्यों की तरह तत्कालीन विचारधारा और दर्शन के अनुसार प्रयुक्त पारंपरिक कवि-कथा रूढ़ियों, समयों, ढाँचों और शैलियों में हैं। भारतीय कथा-काव्य प्रबंध, चरित्र, आख्यान आदि रूपों में हैं और देशज कथा-काव्य रूप इनसे विकसित रासो-

रास, भास, ख्यात, पाटनामा, चरित, चउपई, कवित्त आदि रूपों में हैं। ये रूप अपने समय की प्रभावशाली विचारधाराओं और दर्शन के अनुसार बने हैं। इन कथा-काव्यों को समझने के लिये उस समय के दर्शन और विचारधाराओं से बनते-बिगड़ते इन रूपों का अध्ययन भी यहाँ है। (4) प्रकरण में विन्यस्त घटनाओं और व्यक्तियों की ऐतिहासिकता की पड़ताल भी इस शोध का एक ज़रूरी आयाम है। ये रचनाएँ हमारे अपने लोगों की सांस्कृतिक भाषा में, उनका अपना इतिहास है। औपनिवेशिक संस्कार के कारण हमको जनश्रुतियों, अलंकरणों और जातीय मुहावरों की यह भाषा अटपटी और विचित्र लगती है। हमारे अधिकांश आधुनिक इतिहासकारों को इसी कारण इन रचनाओं की ऐतिहासिकता को विचार के दायरे में लेना ही दक़ियानूसी लगता है। यहाँ आग्रहपूर्वक इन रचनाओं में गूँथे-बँधे ऐतिहासिक व्यक्तियों और उनसे संबद्ध घटनाओं की ऐतिहासिकता की पड़ताल भी की गयी है। यह भी कि इनमें विन्यस्त ऐतिहासिक सूत्रों को यहाँ आधुनिक इतिहास के दूसरे पारंपरिक साक्ष्यों, जैसे शिलालेख आदि से जाँचने-परखने का प्रयास भी है। 'रत्नसेन' और 'पद्मिनी' के नामों के प्रयोग में देशज रचनाओं में वैविध्य है- रत्नसेन का नाम 'रतनसिंह' और 'रतनसी' और 'पद्मिनी' का नाम 'पद्मावती' और 'पदमिणी' भी मिलता है। यहाँ विवेचन में तदनुसार वैविध्य है। (5) पद्मिनी विषयक इन कथा-काव्यों का समय सोलहवीं से उन्नीसवीं सदी तक फैला हुआ है। इनमें मध्यकालीन देश भाषाओं का प्रयोग हुआ है। मध्यकालीन देश भाषाओं के काव्य सौंदर्य का अभी ठीक से मूल्यांकन नहीं हुआ है। ये भाषाएँ अपने समय में काव्य सौन्दर्य के मामले में कुछ हद इतनी आगे गईं थीं कि संस्कृत में इनके अनुवाद हुए। इनमें लोक के अलावा जैन और चारण काव्य शैलियों का प्रयोग हुआ, जो उस समय अपने शिखर पर थीं। इनमें कुछ कवि उच्च कोटि की प्रतिभा के हैं, जबकि कुछ सामान्य प्रतिभा के हैं। यहाँ इनकी रचनाओं के कथा कौशल, काव्य सौंदर्य, शिल्प और भाषा का भी अध्ययन और मूल्यांकन है।

5.

शोध विषय के सभी पक्षों- परंपरा, कथा स्रोत, कथा योजना, इतिहास-मिथ, विचारधारा, दर्शन, जीवन मूल्य, कथा-काव्यरूप, भाषा, शैली आदि के समावेश के लिए विनिबंध को दो खंडों में विभक्त किया गया है। पहले खंड में इन रचनाओं का विवेचनात्मक अध्ययन है, जिसको सात अध्यायों में विभक्त किया गया है। विनिबंध के पहले खंड की अध्याय योजना निम्नानुसार है:

अध्याय-1. भारतीय परंपरा: (i) कथा-आख्यान में इतिहास के व्यवहार और विन्यास की भारतीय पद्धति, (ii) भारतीय ऐतिहासिक कथा-काव्य का स्वरूप विकास

(नाराशंसी, गाथा, पुराण, आख्यान, आख्यायिका, प्रबंध, वंश, चरित्र आदि), (iii) ऐतिहासिक कथा-काव्य की भारतीय परंपरा और (iv) भारतीय ऐतिहासिक कथा-काव्य परंपरा का देशज और क्षेत्रीय रूपांतरण (चरित, रास, रासो, ख्यात, पाटनामा, बही, चउपई आदि)।

अध्याय-2. देशज कथा-काव्य।

अध्याय-3. कथा स्रोत: (i) जायसी द्वारा कथा की कल्पना की मिथ्या धारणा, (ii) परवर्ती इस्लामी स्रोत, लोक और जायसी का *पद्मावत* और (iii) जायसी से पूर्व उपलब्ध पद्मिनी विषयक कथा बीजक।

अध्याय-4. कथा योजना: (i) पद्मिनी विषयक ऐतिहासिक प्रकरण के मोड़-पड़ाव, (ii) ऐतिहासिक प्रकरण का देशज कथा-काव्य में पल्लवन, (iii) चरित्रों की नाम संज्ञाएँ तथा कथा के मोड़-पड़ाव और (iv) जायसी की कथा की नाम संज्ञाओं और मोड़-पड़ावों से साम्य-वैषम्य।

अध्याय-5. इतिहास और मिथ: (i) इतिहास और मिथ-अभिप्राय तथा कथा रूढ़ि का अंत:संबंध, (ii) पद्मिनी विषयक ऐतिहासिक देशज कथा-काव्यों में इतिहास का व्यवहार और विन्यास, (iii) प्रकरण की ऐतिहासिकता की परख-पड़ताल, (iv) आख्यान के प्रमुख चरित्रों की ऐतिहासिकता की परख-पड़ताल, (v) ऐतिहासिक देशज कथा-काव्यों में इतिहास के मिथकीकरण की पद्धति और रूप और (vi) रत्नसेन-पद्मिनी प्रकरण पर इस्लामी वृत्तांतकारों के मौन के कारणों की पड़ताल।

अध्याय-6. संस्कृति: (i) क्षत्रिय और राजपूत, (ii) मेवाड़ और गुहिल वंश, (iii) सामंती व्यवस्था, (iv) क्षत्रियत्व, (v) स्वामिधर्म, (vi) युद्ध संस्कृति, (vii) कर्मफल और नियतिवाद और (viii) शील और यौन शुचिता।

अध्याय-7. भाषा और शिल्प: (i) कवि शिक्षा, (ii) प्रयुक्त कथा-काव्य रूप, (iii) भाषा, (iv) कवि-कथा समय, (v) छंद, (ii) वस्तु वर्णन और (vii) अलंकरण।

विनिबंध के दूसरे खंड में विवेच्य सभी रचनाओं का परिचय, मूल और हिंदी कथा रूपांतर दिया गया है।

7.

प्रस्तुत शोध कार्य का समाज के लिए व्यापक महत्त्व और उपयोगिता है। (1) पद्मिनी प्रकरण पर लिखे गए कथा-काव्य, साहित्य और इतिहास की एक-दूसरे पर निर्भर भारतीय परंपरा का देशज और क्षेत्रीय विकास हैं। साहित्य के आधुनिक विद्वानों और इतिहासकारों ने अभी तक इस साहित्य का इस नज़रिये से मूल्यांकन नहीं किया है। प्रस्तुत कार्य इस अभाव का पूर्तिकारक होगा। (2) मध्यकालीन भारतीय इतिहास के

इस प्रकरण की अभी तक जो समझ बनी है, वह इस्लामी और औपनिवेशिक स्रोतों पर आधारित है। प्रस्तुत कार्य से इस प्रकरण की देशज स्रोतों पर आधारित युक्तिसंगत और मान्य नई पहचान और समझ सामने आएगी। (3) पद्मिनी विषयक ऐतिहासिक कथा-काव्यों का महत्त्व केवल इतिहास तक सीमित नहीं है। ये रचनाएँ इतिहास, आख्यान, कथा आदि का मिलाजुला रूप हैं और इनका साहित्यिक महत्त्व भी पर्याप्त है। इन रचनाओं में से, कुछ में अलग क़िस्म का भारतीय कथा परंपरा का जादुई यथार्थवाद है। यह कार्य मध्यकालीन साहित्य की हमारी समझ को भी विस्तृत और समृद्ध करेगा। (4) पद्मिनी रत्नसेन प्रकरण को लेकर आधुनिक इतिहास और साहित्य में कुछ भ्रांतियाँ पहले से थीं और इस पर बनी फ़िल्म 'पद्मावत' से ये और बढ़ गई हैं। देशज और पारंपरिक स्रोतों पर आधारित इस कार्य से इनका निवारण होगा और वस्तुस्थिति सामने आएगी।

संदर्भ और टिप्पणियाँ:

1. युवा पाठकों के लिए इस तरह की रचनाएँ बहुत पहले से शुरू हो गई थीं। 1933 ई. में प्रकाशित राय बहादुर ए.सी. मुखर्जी की *हिरोइन्स ऑफ़ इंडिया* (कलकत्ता: ओक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस) नामक एक पुस्तक में संयोगिता, रज़िया बेग़म और नूरजहाँ के साथ पद्मिनी भी सम्मिलित थी। पद्मिनी संबंधी कई चित्रकथाओं का प्रकाशन भी हुआ, जिनमें चित्रकथाओं की विख्यात शृंखला 'अमरचित्रकथा' के प्रकाशक की पद्मिनी संबंधी चित्रकथा (यज्ञ शर्मा, *पद्मिनी*, संपा. अनंत पे [मुंबई: अमरचित्रकथा प्रा. लि., 2015].) प्रमुख है। इसके हिंदी सहित अन्य एकाधिक भारतीय भाषाओं में अनुवाद भी हुए।

2. पर्यटकों की दिलचस्पीवाला पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण संबंधी साहित्य बहुत है। उसमें कुछ सामान्य और कुछ अभिजात रुचिवाला साहित्य है। यहाँ दो ऐसी सचित्र पुस्तकों के उदाहरण दिए जा रहे हैं, जो अभिजात रुचिवाले पाठकों के लिए हैं और पर्याप्त शोध के बाद तैयार की गई हैं- (i) जॉन मास्टर्स ब्रायन, *महाराणा* (अहमदाबाद: मेपिन पब्लिशिंग प्रा. लि., 1990) और (ii) इरमगार्ड मैनिंग, *चित्तौड़* (नयी दिल्ली: डी.के. प्रिंटवर्ल्ड, 2000)। उदयपुर स्थित प्रताप गौरव केंद्र ने भी *महारानी पद्मिनी* शीर्षक से एक स्मारिका प्रकाशित की है, जो वहाँ आने वाले पर्यटकों को नि:शुल्क वितरित की जाती है। स्मारिका में प्रकरण संबंधी क्षेत्रीय इतिहासकारों के आलेख सम्मिलित किए गए हैं।

3. पदमिनी-रत्नसेन प्रकरण में निहित रोमांस, शौर्य और बलिदान ने कई लोकप्रिय फ़िल्म निर्माताओं को आकृष्ट किया। 2017 ई. में बनी संजय लीला भंसाली की विवादास्पद और चर्चित हिंदी फ़िल्म 'पद्मावत' से पहले इस प्रकरण पर मूक सहित हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में कई फ़िल्में बन चुकी हैं। बाबूराव पेंटर की 'सती पदमिनी' (1924 ई.) देबकी बोस की 'कामनेर अगन' (फ्लेम्स

ऑफ़ फ़्लेश,1930 ई.) और धीरूभाई देसाई की 'चित्तौड़ नी वीरांगना' इस प्रकरण पर आधारित मूक फ़िल्में थीं। बाद में इसी प्रकरण पर हिंदी में वली की 'पदमिनी' (1948 ई.), तमिल में नारायणमूर्ति की 'चित्तौड़ महारानी पदमिनी' (1963 ई.) और हिंदी में जसवंत झवेरी की 'महारानी पद्मिनी' (1964 ई.) फ़िल्में आयीं। – आशीष राज्याध्यक्ष एवं पॉल विलेमेन, *एनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ इंडियन सिनेमा* (दिल्लीः ऑक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1994), क्रमशः 642, 607, 588, 627, 588 एवं 615.

4. पद्‌मिनी-रत्नसेन प्रकरण में एकाधिक टीवी सीरियल भी बने, जो इस प्रकार हैं:

(i) 1986 ई. में प्रसारित सतीश कौशिक द्वारा निर्देशित 'तेरह पन्ने' (जी न्यूज, 18 दिसंबर, 2017, https://zeenews.india.com/people/when-hema-malini-played-rani-padmini-2067632.html) नामक सीरियल में एक एपिसोड पद्मिनी पर भी था, जिसमें पद्मिनी का अभिनय हेमा मालिनी ने किया।

(ii) जवाहरलाल नेहरू की रचना *दि डिसकवरी ऑफ़ इंडिया* (1946 ई.) पर आधारित 1988 ई. में प्रसारित श्याम बेनेगल के सीरियल 'भारतः एक खोज' (इन. कॉम, 14 नवंबर, 2017, https://web.archive.org/web/20171114225516/https://222.in.com/entertainment/bollywood/om-puri-had-played-alauddin-khilji-much-before-ranveer-singh-|xzy|.htm) में भी एक एपिसोड पद्‌मिनी प्रकरण पर आधारित था।

(iii) 2009 में सोनी टीवी पर पद्मिनी प्रकरण पर आधारित सीरियल 'चित्तौड की रानी पदमिनी का जौहर' प्रसारित हुआ। यू ट्यूब हिंदी विडियोज (https://4outubehindivideos.com/padmini-serial-all-episodes/).

5. (i) सुनील शर्मा, "इतिहास की पुस्तक में होगी जौहर की कहानी," *पत्रिका,* 19 मई, 2019, https://222.patrika.com/education-news/rajasthan-board-will-have-rani-padmini-and-her-johar-story-in-hindi-4591470/.

(ii) स्पीड न्यूज डेस्क, "आफ्टर पद्मावत प्रोटेस्ट राजस्थान स्टेट बोर्ड्स टेक्स्टबुक चेंज्ड दी टेक्स्ट एंड क्लेम्ड ख़िलजी डिडन्ट सी क्वीन पदमिनीज़ रिफ्लक्शन इन द मिरर," *केच न्यूज,* 23 जून, 2018, http://222.catchnews.com/education-news/omg-after-padmaavat-protest-rajasthan-board-s-textbook-changed-the-text-and-claimed-khilji-didn-t-see-queen-padmini-s-reflection-in-a-mirror-119207.html.

6. गौरीशंकर ओझा, *उदयपुर राज्य का इतिहास,* भाग-1 (जोधपुरः राजस्थानी ग्रंथागार, 1996-97, प्रथम संस्करण 1928), 1: 82.

7. हिंदी में पद्मिनी विषयक लोकप्रिय साहित्य पहले से ही था। फ़िल्म 'पद्मावत' पर हुए विवाद के बाद अंगेज़ी पाठकों में इस संबंध में दिलचस्पी का विस्तार हुआ और इस कारण कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुईं, जिनमें से दो प्रमुख इस तरह से हैं- (1) मृदुला बिहारी, *पद्मिनी- दि स्पीरीटेड क्वीन ऑफ़ चित्तौड़* (पेंग्विन, नयी दिल्ली, 2017) और (2) बी.के. कटारा, *रानी पद्मिनी- हिरोइन ऑफ़*

चित्तौड़ (रूपा पब्लिकेशन इंडिया, 2009)।

8. नंदकिशोर आचार्य, *इतिहास के सवाल* (दिल्ली: सस्ता साहित्य मंडल, 2011), 21.

9. जेम्स टॉड, *एनल्स एंड एंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान,* संपा. विलियम क्रूक (दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 1971, प्रथम संस्करण 1920), 1: 307.

10. विसेंट ए. स्मिथ, *ओक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया* (लंदन: ओक्सफ़ोर्ड, संशोधित संस्करण 1921), 233.

11. वही, 233.

12. गौरीशंकर ओझा, *उदयपुर राज्य का इतिहास,* 1: 190.

13. किशोरीशरण लाल, *हिस्ट्री ऑफ़ ख़लज़ीज़* (मुबई: एशिया पब्लिकेशन हाउस,1950), 130.

14. कालिकारंजन कानूनगो, *स्टीडीज़ इन राजपूत हिस्ट्री* (दिल्ली: एस. चांद एंड कंपनी, 1960), 17.

15. वही, 19.

16. इरफ़ान हबीब और हरबंश मुखिया ने फ़िल्म 'पद्मावत' पर विवाद के दौरान अपने विचार नितिन रामपाल की स्टोरी (''पदमावती कंट्रोवर्सी: हिस्ट्री इज एट रिस्क ऑफ़ बीइंग ट्रेप्ड बिटविन लेफ्ट राइट इंटरप्रिटेशन्स ऑफ़ द पास्ट,'' *.फ़र्स्ट पोस्ट,* 21 सितंबर 2019, https://222.firstpost.com/india/padmavati-controversy-history-is-at-risk-of-being-trapped-between-left-right-interpretations-of-the-past-4225695.html) में व्यक्त किए।

17. दशरथ शर्मा, ''वाज ए पद्मिनी मीयर फिगमेंट ऑफ़ जायसीज़ इमेजिनेशन ?, '' *प्रोसिडिंगज़ ऑफ़ इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस,* खंड-24 (1961), 176-177.

18. नारायणदास, रतनरंग और देवचंद, *छिताईचरित,* संपा. हरिहरनिवास द्विवेदी एवं अगरचंद नाहटा (ग्वालियर: विद्यामंदिर प्रकाशन, 1960), 41.

19. मलिक मुहम्मद जायसी, *पदमावत,* संपा. वासुदेवशरण अग्रवाल (चिरगाँव (झाँसी): साहित्य सदन, द्वितीय संस्करण 1961), 671.

20. मुनि जिनविजय, ''रत्नसिंह की समस्या,'' *गोरा-बादल चरित्र* (जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, तृतीय संस्करण 2000), 34.

21. दशरथ शर्मा, ''रानी पदमिनी- एक विवेचन,'' *पद्मिनी चरित्र चौपई,* संपा. भँवरलाल नाहटा (बीकानेर: सादुल रिसर्च इंस्टीट्यूट,1960), 4.

22. (i) गौरीशंकर हीराचंद ओझा, ''दरीबे का शिलालेख,'' *उदयपुर राज्य का इतिहास,* 1: 192.

(ii) अक्षयकीर्ति व्यास, ''कुंभलगढ की पहली और तीसरी पट्टिका का शिलालेख (वि.सं. 1517),'' *एपिग्राफिया इंडिका,* खंड-XXIV (1937-38 ई.), संपा. एन.पी. चक्रवर्ती (नयी दिल्ली: डायरेक्टर जनरल, आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया, पुनर्मुद्रण 1984), 304-328.

23. अगरचंद नाहटा, ''राघवचेतन की ऐतिहासिकता,'' *नागरी प्रचारिणी पत्रिका,* वर्ष-64, अंक-1, 64.

24. जोगेंद्रप्रसाद सिंह, ''रत्ना दि सन ऑफ़ चमना हम्मीर एंड साका ऑफ़ चित्तौड़,'' *जर्नल ऑफ़ दि रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ ग्रेट ब्रिटेन एंड आयरलैंड,* सं. 3-4, (1964), 95-105.

25. जेम्स टॉड, ''ऑथर्स इंट्रोडक्शन'', *एनल्स एंड एंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान,* 1: IXII.

26. गौरीशंकर ओझा, *उदयपुर राज्य का इतिहास,* 1: 190.

27. जायसी और *पद्मावत* पर हिंदी एकाधिक शोधकार्य हुए हैं। जायसी और उनका *पद्मावत* हिंदी साहित्य के पाठयक्रमों का हिस्सा रहा है, इसलिए उस पर पर्याप्त शोध-आलोचनाएँ मौजूद हैं। रामचंद्र शुक्ल ''जायसी,'' *जायसी ग्रंथावली,* संपा. रामचंद्र शुक्ल (वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा, 1924) और विजयदेवनारायण साही *जायसी* (इलाहाबाद: हिंदुस्तानी एकेडेमी, चतुर्थ संस्करण 2017) की किताबें अपनी मौलिकता के कारण चर्चा में रही हैं। अंगेज़ी में रम्या श्रीनिवासन के शोधकार्य (*दि मेनी लाइव्ज़ ऑफ़ ए राजपूत क्वीन* [सिएटले: युनिवर्सिटी ऑफ़ वाशिंगटन प्रेस, 2007]) की पर्याप्त चर्चा हुई है। ख़ास बात यह कि इसमें *पद्मावत* के प्रसंग में कुछ देशज ऐतिहासिक कथा-काव्यों का भी विवेचन है। यहाँ इस उल्लेख में इन रचनाओं को भारतीय ऐतिहासिक कथा-काव्य परंपरा का स्वाभाविक विकास मानने के बजाय कुछ हद तक जायसी से प्रेरित और परवर्ती माना गया है।

अध्याय - 1

भारतीय परंपरा

पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण को आधार बनाकर देश भाषाओं में लिखे गए कथा-काव्यों में से जायसी के *पद्मावत* को छोड़कर शेष सभी कथा-काव्य ऐतिहासिक कथा-काव्य की प्राचीन भारतीय परंपरा का स्वाभाविक और देशज विकास हैं। केवल जायसी का *पद्मावत* इनसे अलग है- यह भारतीय और फ़ारसी, दोनों परंपराओं के काव्यरूप से अलग काव्यरूप में है, जिसमें अंशतः फ़ारसी, अंशतः संस्कृत और अंशतः क्षेत्रीय परंपराओं के तत्त्व सम्मिलित हैं।[1] जायसी के *पद्मावत* सहित इन ऐतिहासिक कथा-काव्यों के संबंध में अधिकांश आधुनिक इतिहासकारों की धारणा यह है कि ये कल्पित हैं और इनका इतिहास से कोई संबंध नहीं है। उनकी राय में जायसी ने *पद्मावत* में रत्नसेन-पद्मिनी प्रकरण की कल्पना की और राजस्थान के चारण-भाटों ने यह वृत्तांत वहीं से लिया।[2] ये कथा-काव्य पूरी तरह अनैतिहासिक नहीं हैं और न ही जायसी ने रत्नसेन-पद्मिनी प्रकरण की कल्पना की, जैसाकि अधिकांश 'आधुनिक' इतिहासकार और विद्वान् मानते हैं। ये सभी ऐतिहासिक कथा-काव्य की प्राचीन भारतीय परंपरा के अंतर्गत हैं और इनमें अतीत की स्मृति के वर्तमान में व्यवहार का एक ख़ास भारतीय ढंग है।

अधिकांश यूरोपीय और उनके अनुवर्ती कुछ आधुनिक भारतीय इतिहासकारों की धारणा यह है कि प्राचीन भारतीयों की इतिहास लेखन में कभी कोई दिलचस्पी नहीं रही। एक तो उनके अनुसार वे दैवीय शक्तियों के समक्ष अपने को नगण्य समझते थे और नगण्यता का कभी कोई इतिहास नहीं होता दूसरे, पारलौकिकता के प्रति उनके आकर्षण ने उन्हें जागतिक जीवन से विमुख कर दिया और तीसरे, इतिहास की बुनियादी ज़रूरत कालबोध उनकी चेतना का हिस्सा नहीं है।[3] इतिहास संबंधी, जो पारंपरिक भारतीय साहित्य उपलब्ध है, उसमें से अधिकांश में इस कारण कार्य-कारण संबंध 'युक्तिसंगत' और 'आनुभविक' तर्क पर आधारित नहीं है, इसलिए इन 'आधुनिक'

इतिहासकारों–विद्वानों की नज़र में अधिकांश ऐतिहासिक भारतीय साहित्य 'इतिहास' की आधुनिक अवधारणा के दायरे से बाहर की चीज़ है। अधिकांश भारतीय इतिहास ग्रंथों में उनके हिसाब से ऐसे मिथक और कल्पना निर्भर असंगत तत्त्वों की भरमार हैं, जिन्हें हटाए बिना सही और असल इतिहास से रूबरू नहीं हुआ जा सकता। इतिहासकार रोमिला थापर यह तो मानती हैं कि ''प्रत्येक समाज की अतीत की अपनी कल्पना होती है और इसलिए किसी भी समाज को इतिहास निरपेक्ष नहीं कहा जा सकता''[4], लेकिन उनके 'आधुनिक' इतिहासकार का निष्कर्ष भी यही है कि प्राचीन भारत की इतिहास की अवधारणा 'अपरिष्कृत क़िस्म की है'[5] और यहूदी–ईसाई परंपरा की तुलना में इसमें 'सुविकसित इतिहास दर्शन के साक्ष्य निश्चय ही सीमित हैं।'[6] दरअसल इतिहास की यह अवधारणा यूरोपीय है, जिसका विकास मुख्यत: अठारहवीं सदी में प्रबोधनकाल में हुआ। हर जाति–समाज की उसकी अपनी सांस्कृतिक ज़रूरतों के अनुसार इतिहास चेतना और मानक विकसित होते हैं। भारतीय इतिहास चेतना की भी सदियों की अपनी विकास यात्रा है और इस यात्रा के दौरान ही उसकी अवधारणा और अलग मानक विकसित हुए हैं। प्राचीन और मध्यकालीन पारंपरिक भारतीय ऐतिहासिक सामग्री को इस तरह यूरोपीय इतिहास की अवधारणा के मानकों से देखना–परखना दरअसल मध्ययुगीन शरीर में आधुनिक आत्मा के प्रवेश से मध्ययुगीन अनुभव पाने की अपेक्षा करने जैसा है।[7] विडंबना यह है कि प्राचीन और मध्ययुगीन भारतीय ऐतिहासिक ग्रंथों को समझने में जैसाकि ए.एल. बाशम ने भी कहा है कि ''भारतीय और यूरोपीय, दोनों इतिहासकारों ने बड़े बचकाने तरीक़े से व्यवहार किया है और अब तक इस बात का कोई गंभीर प्रयास नहीं किया गया कि उन पूर्वाग्रहों और साहित्यिक प्रथाओं का अध्ययन किया जाए, जिनके अनुरूप वे लिखे गए।''[8]

भारतीयों के अनैतिहासिक होने की यह धारणा इतनी गहरी और बद्धमूल है कि आज भी कुछ आधुनिक इतिहासकार भारत में इतिहास लेखन की शुरुआत ही यूरोपीय ईसाई पादरियों के आगमन और इंग्लिश ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना से मानते हैं।[9] गोया भारतीयों को अपनी स्मृति के संरक्षण और व्यवहार की कभी कोई समझ ही नहीं रही। दरअसल इतिहास लेखन और प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय दस्तावेज़ों की ऐतिहासिकता की पहचान के पारंपरिक ढंग में इधर बदलाव हुए हैं और इस लगभग सर्वमान्य धारणा पर कि भारतीय इतिहास सचेत नहीं थे और उनके पास कोई ऐतिहासिक सामग्री नहीं है, काफ़ी पुनर्विचार हुआ है।[10] भारतीयों में इतिहास चेतना थी, यह अब कई तरह से प्रमाणित है। निरंतर बाह्य आक्रमणों और प्राकृतिक आपदाओं के बावजूद भारत में शासकों सहित अन्य लोगों के 90 हज़ार शिलालेख और लाखों पांडुलिपियाँ हैं और इनकी उपलब्धता अब भी ज़ारी

है। ख़ास बात यह है कि इनमें समय और स्थान के उल्लेख का आग्रह भी है। श्रुत परंपरा की रचनाओं- वेद, पुराण और और स्मृतियों में भी वंश, चरित आदि भारतीय इतिहास चेतना के प्रस्थान रूप मौजूद हैं। वंश, चरित आदि इतिहास रूप बाद में ऐतिहासिक प्रबंधों के रूप विकसित हुए और मध्यकाल में क्षेत्रीय ज़रूरतों के अनुसार इनका देशज रूपांतरण भी हुआ। काल गणना की भी भारतीयों की अपनी पद्धति थी, जो प्रायः शासकों के शासन वर्ष पर निर्भर करती थी। इतिहास के इन 'संचित' रूपों के आधार पर दार्शनिक अरविंद शर्मा सहित कई देशी-विदेशी विद्वानों ने यह मान लिया है कि भारतीयों में इतिहास चेतना रही है।[11] भारतविद् शेल्डन पोलक के अनुसार ''पारंपरिक भारत में ऐतिहासिक समझ की अनुपस्थिति के संबंध में दीर्घकाल से प्रचलित विचार पर इतिहास लेखन की अलंकरणप्रधान बुनियाद, आख्यान की प्रकृति, शास्त्रीय पुरातनता में इतिहास लेखन का स्वभाव और पूर्व आधुनिक भारत में वास्तव में उपलब्ध ऐतिहासिक दस्तावेज़ों जैसी इतिहास की अवधारणाओं पर हाल की विद्वता के आधार पर पुनर्विचार की आवश्यकता है।''[12] उनके विचार में ''संस्कृत भारत में इतिहास उस तरह अज्ञात नहीं है, जैसा उसे बताया जाता है।''[13] कमोबेश यही बात जर्मन विद्वान् एम. विंटरनित्ज़ ने भी कही है- उन्होंने लिखा है कि ''अकसर यह कहा जाता है कि भारतीयों के पास कोई महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक साहित्य नहीं है और इतिहास में उनकी रुचि बहुत कम है। यह सही नहीं है। उनकी इतिहास में दिलचस्पी है, यह वैदिक साहित्य में उपलब्ध आचार्यों की सूची और पुराण-महाभारत की वंशावलियों से प्रमाणित है। यह अलग बात है कि मिथकीय तत्त्व इनमें कुछ हद तक वर्चस्वकारी हैं, लेकिन फिर भी पुराणों में बहुत मूल्यवान् ऐतिहासिक परंपराएँ सुरक्षित हैं।''[14] कुछ उपनिवेशकालीन यूरोपीय इतिहासकार, जो भारतीयों के स्मृति के संरक्षण के ख़ास प्रकार के ढंग से अवगत थे, उनकी राय पहले से ही अलग थी। उनमें से एक जेम्स टॉड का मानना था कि भारतीय अनैतिहासिक नहीं हैं और उनके पास अपने इतिहास से संबंधित पर्याप्त सामग्री है। उन्होंने एक जगह लिखा कि ''कुछ लोग आँख मीचकर यह मान बैठे हैं कि हिंदुओं के पास ऐतिहासिक ग्रंथों जैसी कोई चीज़ नहीं है। मैं फिर कहूँगा कि इस प्रकार के अर्थहीन अनुमान लगाने में प्रवृत्त होने से पहिले हमें जैसलमेर और अणहिलवाड़ा पाटण के जैन ग्रंथ भंडारों और राजपूताना के राजाओं और ठिकानेदारों के अनेक निजी संग्रहों का अवलोकन कर लेना चाहिए।''[15]

1.

हर समाज अपने जीवन दर्शन, विचारधारा, वर्गीय हित सम्बन्ध और सामाजिक-सांस्कृतिक ज़रूरतों के आधार पर अपने ख़ास इतिहास रूप गढ़ता है। सभी देश-

समाजों का इतिहास एक जैसा हो, यह केवल औपनिवेशिक दुराग्रह है। भारतीय इतिहास चेतना का विकास अलग ढंग से हुआ, इसलिए ग्रीक-रोमन ईसाई इतिहास के मानकों के बजाय उसको अपने समय, संदर्भ और विचार में ही अच्छी तरह समझा जा सकता है। यह धारणा कुछ हद तक सही है कि भारतीय चेतना में जागतिकता का बहुत आग्रह नहीं है और उसमें काल का बोध भी अलग तरह का है, लेकिन यह मानना ग़लत है कि इस कारण यह इतिहास सचेत नहीं है। भारतीयों के पारलौकिकता के आग्रह को जिस तरह से यूरोप में प्रचारित किया गया, सर्वथा वैसा भी नहीं है। पारलौकिकता के साथ भारतीय चेतना में जीवन और जगत का आग्रह भी बहुत निरंतर और सघन है।

भारतीय इतिहास चेतना का विकास काल बोध की जटिल और बहुरंगी भारतीय अवधारणा के कारण अलग तरह से हुआ, इसलिए उसको केवल चक्राकार या एक रैखिक बोध में सीमित नहीं किया जा सकता। कालबोध के ये दोनों रूप, चक्राकारीय और रेखीय, हमेशा से उसकी निर्मिति का ज़रूरी हिस्सा रहे हैं। भारतीय समाज कुछ हद तक स्मृति और संस्कार से चक्रीय काल बोध और सनातनता का आग्रही है और यह विश्वास या धारणा उसके आचार-विचार में कमोबेश सदियों से सक्रिय है। भारतीय ऐतिहासिक दस्तावेज़ों में, इस कारण, देशकाल का संदर्भ कुछ हद तक उस तरह से नहीं आता, जिस तरह से ईसाई पद्धति के इतिहास में आता है। कुछ हद तक 'मीमांसा' भी भारतीय इतिहास लेखन और उसमें भी ख़ासतौर पर वैदिक दस्तावेज़ों को अलग और ख़ास रूप देती है। मीमांसा से वैदिक साहित्य की सत्ता कालातीत हो जाती है। वेदों में इतिहास की मौजूदगी को समझने के लिए मीमांसा के साथ उनकी अंतरंगता को गहराई से समझा जाना चाहिए। शेल्डन पोलक ने यही आग्रह करते हुए लिखा है कि "वेद के संदर्भगत क्षेत्र पर मीमांसा के विचार हमारे समझने में सहायक हो सकते हैं। मीमांसा वेद की सत्ता को उसकी कालातीतता पर आधारित करती है, और इस तरह वेदों को उनकी संदर्भ्यता से मुक्त करती है।"[16] ग्रीक-रोमन ईसाई पद्धति में इतिहास के लिए जिस तरह से समय और स्थान के संदर्भ की अनिवार्यता होती है, वह कई बार वेदों सहित प्राचीन भारतीय दस्तावेज़ों में नहीं मिलता। उनमें वर्णित ऐतिहासिक घटनाएँ और व्यक्तित्व कालातीत होकर या अपने समय और स्थान के संदर्भ से मुक्त होकर सब समयों और स्थानों के लिए उपयोगी और प्रासंगिक हो जाते हैं। ऐसी घटनाओं और व्यक्तित्वों को इतिहास की ईसाई पद्धति इसीलिए 'इतिहास' के बजाय 'मिथ' की श्रेणी में रखती है, जिसका अर्थ इस परंपरा में व्यापक रूप में प्रचारित और मान्य ग़लत धारणा, विचार या विश्वास है, जबकि भारतीय परंपरा 'मिथ' में इतिहास का अस्तित्व भी मानती है।

चक्रीय कालबोध और सनातनता के आग्रह के कारण भारतीय इतिहास चेतना समय और भूगोल से बाहर है, यह धारणा भी पूरी तरह सही नहीं है। दरअसल चक्रीय कालबोध में समय का एक रैखिक बोध भी अंतर्निहित है, इसलिए भारतीय इतिहास चेतना का विस्तार 'प्राकृतिक देशकाल' में भी दूर तक है और उसकी परंपरा में इसके पर्याप्त साक्ष्य भी हैं। दार्शनिक अरविन्द शर्मा ने तो समय के चक्राकारीय बोध को हिक़ारत के साथ यह कहकर ख़ारिज कर दिया कि यह ''इतना उलटा-पुलटा है कि हमें भूल की दिशा में ले जाता है।''[17] उन्होंने आगे और लिखा है कि ''समय की हिन्दू धारणा एकरंगी नहीं है, बल्कि एक बहुरंगी चित्र है। यह एक जटिल अवधारणा है, जिसे केवल चक्राकारीय कहकर समझा नहीं जा सकता।''[18] अनिन्दिता एन. बाल्सलेव का कथन है कि ''समय का चक्राकारीय विचार हिन्दू बौद्धिक परम्परा का एक मात्र लक्षण न होकर ''किसी विशिष्ट ब्राह्मणवादी विचारधारा तक का लक्षण नहीं है; यहाँ तक कि यह किसी वाद-विवाद का विषय भी नहीं है।''[19] स्पष्ट है कि समय का चक्राकारीय विचार हिन्दू बौद्धिक परम्परा का एक मात्र लक्षण नहीं है। हिन्दू दार्शनिक परम्पराएँ विविध प्रकार की हैं और तदनुसार इसकी इतिहास चेतना भी केवल चक्रीय कालबोध तक सीमित नहीं है। देशकाल की चेतना भी इसमें निरंतर और सघन है और इसकी परंपरा में इसके पर्याप्त साक्ष्य भी हैं। नंदकिशोर आचार्य के शब्दों में कहें तो ''इतिहास अंततः देशकाल में मानवीय क्रियाशीलता का बोध ही तो है। इस दृष्टि से देखें तो एक प्राकृतिक देशकाल में अपनी अवस्थिति, स्थापना और पहचान एक सामान्य भारतीय व्यक्ति के दैनंदिन जीवन में हर अवसर पर दिखाई देती है।''[20] देशकाल में अपनी पहचान का उसका यह आग्रह उसके जीवन में कई रूपों में दिखायी पड़ता है। एक तो वह हर महत्त्वपूर्ण आनुष्ठानिक कार्य देशकाल का संदर्भ देकर ही करता है, दूसरे, वह अपने पूर्वजों की स्मृति को लेकर बहुत सचेत है- वह उनकी स्मृति को वंशावली, बही आदि के रूप में सुरक्षित रखता है और उसकी इस सजगता के कारण इस कार्य की पेशेवर दक्षता रखने वाली चारण, भाट, राव, तीर्थस्थानों के ब्राह्मण आदि कई जातियाँ सदियों से यहाँ हैं और तीसरे, कर्मफल और पुनर्जन्म में उसका विश्वास यह सिद्ध करता है कि उसका वर्तमान उसके अतीत का फल अर्थात् यह उसके इतिहास से उत्पन्न है। भारतीय वंशावली अभिलेखों के अध्येता विद्वान् माइकेल विटज़ेल ने माना है कि भारतीय परंपरा में ऐतिहासिकता के साक्ष्य पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। उपलब्ध भारतीय ऐतिहासिक दस्तावेज़ों के अध्ययन के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ''भारतीय ऐतिहासिक लेखन के बारे में जैसाकि आधी सदी पहले सोचा गया था, उससे अलग, अब यह सुरक्षित रूप से कहा जा सकता है कि कम-से-कम मध्यकालीन इतिहास के संबंध में कई स्रोत मौजूद

हैं। इसमें बहुत-सी नई खोजी गई सामग्री है, जो हालाँकि पहुँच के अभाव में अभी तक सही तरीक़े से उपयोग नहीं की गई है। ये स्रोत संभवत: एक साथ मिलकर उतनी बड़ी मात्रा में हैं, जैसाकि अन्य सभ्यताओं में पाये जाते हैं। यहाँ तक कि इनमें पुराने, मध्ययुगीन यूरोपीय अर्थ में भी ऐतिहासिक लेखन मिलता है।'' उन्होंने यह भी पाया कि भारत में ''ऐतिहासिक लेखन की कमी और ऐतिहासिक बोध का कथित अभाव, भारतीय सभ्यता के धार्मिक और दार्शनिक सिद्धांतों के बजाय, बड़े पैमाने पर हुईं मध्ययुगीन इतिहास की दुर्घटनाओं के कारण अधिक है।''[21]

दर्शन और विचारधारा का प्राचीन भारतीय कवि-इतिहासकार के नज़रिये पर व्यापक और गहरा प्रभाव है और यह बहुत स्वाभाविक है। कर्मफल में विश्वास के कारण वह अपने चरित्रों के दुर्भाग्य और सौभाग्य को तयशुदा दिशा में ले जाता है और इस कारण घटनाएँ इसमें कई बार अपनी सहज गति से परिचालित नहीं होतीं। इसी तरह मनुष्य की अपार शक्ति और सामर्थ्य में उसका भरोसा भी उसके चरित-नायकों को कई बार अतिमानवीय बना देता है। प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक व्यक्तित्वों में इसलिए पौराणिक और अतिमानवीय तत्त्वों की भरमार मिलती है। दर्शन और विचारधाराएँ केवल भारतीय कवि-इतिहासकार को प्रभावित-प्रेरित करती हैं, ऐसा नहीं है। ऐसा कमोबेश सभी सभ्यताओं के इतिहास में होता है। भारतीय इतिहास के मुस्लिम वृत्तांतकारों पर इस्लाम के दर्शन और विचारधारा का गहरा प्रभाव है और उन्होंने हर छोटा विवरण इसके प्रभाव में लिखा है। आधुनिक इतिहासकार भी इनसे सर्वथा अप्रभावित हैं, यह मानना ग़लत होगा। हमारे समय में पौराणिक तत्त्वों से तो इतिहास ने अपने को कुछ हद तक अलगा लिया है, लेकिन अब विचारधाराएँ और विमर्श उस पर काबिज़ हो गए हैं और इनका बहुत गहरा, मुखर और पारदर्शी प्रभाव उस पर कई बार बहुत साफ़ दिखता है। इतिहासकारों के एक वर्ग ने तो विचारधारा के प्रभाव में मानवीय सभ्यता के इतिहास को ही एक तयशुदा साँचे में सीमित कर दिया।

भारतीय इतिहास परंपरा को इस निगाह से नहीं पढ़ा-समझा गया कि इतिहास अंतत: अतीत के यथार्थ का अमूर्तन है। इतिहास लेखन की यूरोपीय पद्धति में वस्तुनिष्ठता या प्रत्यक्षवाद पर निर्भरता का आग्रह इतना बढ़ा कि यह भुला ही दिया गया कि इतिहास में इतिहासकार के व्यक्ति की भी निर्णायक भूमिका होती है। यह तो ई.एच. कार ने भी कहा था कि ''इतिहास के तथ्य कभी हमें शुद्ध रूप में नहीं मिलते, क्योंकि शुद्ध रूप में न वे कभी रहते हैं और न रह सकते हैं; वे हमेशा लेखक के मस्तिष्क में रंगकर आते हैं।''[22] यह यथार्थ का एक तरह से अमूर्तन है, लेकिन यह इतिहास की नियति भी है। विडंबना यह है कि पूर्व आधुनिक भारतीय ऐतिहासिक दस्तावेज़ों

को इस निगाह से पढ़ा–समझा ही नहीं गया। यूरोपीय इतिहासकारों की मनोरचना को आधार बनाकर निकाले गए निष्कर्षों को भारतीय ऐतिहासिक दस्तावेज़ों पर लागू कर दिया गया, जबकि पूर्व आधुनिक भारतीय इतिहासकारों की धार्मिक–सांस्कृतिक मनोरचना उनसे बहुत अलग थी। इतिहास में काल और स्थान को लेकर उनकी दार्शनिक और आध्यात्मिक धारणाएँ और विश्वास अलग थे। उन्होंने अतीत के यथार्थ का अमूर्तन भी तदनुसार किया। गाथाएँ, आख्यान आदि भारतीय इतिहास के ऐसे रूप हैं, जिनमें इतिहासकार की अपनी विचारधारा और मनोरचना की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

प्राचीन भारतीय इतिहासकार, केवल इतिहासकार नहीं हैं, वे कवि–इतिहासकार हैं। भारत में इतिहास लेखन की परंपरा हमेशा दरबारी कविता से संबद्ध रही है। तथ्य पर निर्भरता के साथ भारतीय इतिहासकारों का आग्रह उसको कविता में रचना–बाँधना भी है। वे इसीलिए तथ्यों का उल्लेख तो करते हैं, लेकिन उनके विवरणों में नहीं जाते। विवरणों के स्थान को वे अकसर अपनी कल्पना से भरते हैं। कई बार तथ्य की भूमिका उनकी कल्पना को उकसाने तक ही सीमित रहती है। कल्पना और इतिहास एक–दूसरे के विरुद्ध हैं, यह धारणा सही नहीं हैं। दरअसल ''कल्पना की भी इतिहास बोध में निर्णायक भूमिका होती है।''[23] भारतीय कवि–इतिहासकार के कवि स्वभाव के संबंध में एक ख़ास बात और है, जिसकी ओर हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ध्यान आकृष्ट किया है। उनके अनुसार कवि–इतिहासकार कई बार यथार्थ के बजाय उसकी संभावना पर अधिक ध्यान देने लगता है। वे लिखते हैं कि ''राजा के शत्रु होते हैं, युद्ध होता है, और भी तो हो सकते थे। कवि संभावना को देखेगा। राजा के एकाधिक विवाह होते थे, यह तथ्य विवाहों की संभावना उत्पन्न करता है। जलक्रीड़ा और वन विहार की संभावना की ओर संकेत करता है और कवि को अपनी कल्पना के पंख खोलने के अवसर देता है।''[24] मध्यकालीन ऐतिहासिक कथा–काव्यों में ऐसी संभावनाओं की भरमार है।

दरअसल प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक कथा–काव्यों में उस समय के दर्शन और विचारधारा के अनुसार बनीं ख़ास शैलियों और ढाँचों का इस्तेमाल हुआ है। इनमें विन्यस्त इतिहास कथा–काव्य के बनते–बदलते कवि–कथा अभिप्रायों, समयों और प्रथाओं के बीच में और उनके साथ है। प्राचीन भारतीय कवि–इतिहासकारों के संबंध में ख़ास बात यह है कि वे अकसर अतीत से वही चुनते हैं, जो उनकी रचना के लिए उपयोगी और प्रासंगिक है। वे अतीत के संपूर्ण और निरंतर विवरण में प्राय: नहीं जाते। इतिवृत्तों, प्रबन्धों और आख्यानों में इसलिए शासकों के जीवन के सम्पूर्ण और निरंतर विवरण नहीं, उनके जीवन की कोई घटना या एक चरण है। बाण के *हर्षचरित* को आधुनिक इतिहासकारों ने अपूर्ण घोषित कर दिया, जबकि वस्तुस्थिति

यह है कि रचनाकार के लिए हर्ष का इतना ही जीवन अपनी रचना के लिए अपेक्षित था।[25] प्राचीन इतिवृत्तों में शासकों के जीवन का एक आदर्शक्रम- प्रारम्भ, प्रयत्न, प्रत्याशा, नियताप्ति और फलागम है।[26] भारतीय इतिहासकारों का ज़ोर इस क्रम के अनुसार उनके जीवन के आदर्शीकरण पर है। आधुनिक इतिहासकारों को इसलिए भारतीय ऐतिहासिक ग्रंथों के विवरण अतिकल्पित और बेतुके लगते हैं। मध्यकाल में शौर्य, पराक्रम और स्वामिधर्म जैसे मूल्य शासकों के अस्तित्व और जनसाधारण में उनकी मान्यता के लिए ज़रूरी थे, इसलिए इतिहासकारों ने इनको ध्यान में रखकर अतीत की पुनर्रचना की। प्राचीन और मध्यकालीन आख्यानों-इतिवृत्तों में इसलिए इतिहासकारों ने इन मूल्यों के लिए लड़ने-मरने वाले वीर नायकों की प्रतिष्ठा की और यह उस समय के प्रचलित दर्शन और विचारधारा के अनुसार है। मध्यकाल में विकसित इतिहास रूपों- प्रबंध, रासो, ख्यात, पाटनामा, चरित आदि में भी वर्णन और कथानक की रूढ़ियाँ बन गईं, जिनका निर्वाह उस समय कवि-लेखक होने की अर्हता थी। रासो ग्रन्थों में युद्ध, ऋतु, नगर, उद्यान आदि का वर्णन भी रूढ़ियों के अनुसार है। वस्तु, कथानक और शैली के मध्यकाल में प्रचलित कवि-कथा समयों को जाने-समझे बिना इन ग्रन्थों को अनैतिहासिक और कल्पित मान लिया गया। रासो ग्रन्थों की ऐतिहासिकता पर आधुनिककाल के आरम्भ में लम्बी बहस हुई और इनके संरचनात्मक ढाँचे को जाने-समझे बिना ही अधिकांश आधुनिक इतिहासकारों और विद्वानों ने इनको इतिहास के दायरे से बाहर कर दिया।[27]

भारत में कथा की स्वायत्त परंपरा है, लेकिन इतिहास को कथा का रूप देकर ऐतिहासिक कथा-काव्य की रचना की भी यहाँ लंबी और समृद्ध परंपरा है। भारतीय कथा परंपरा की शुरुआत ही *ऋग्वेद* में ऐतिहासिक कथा संकेतों से हुई।[28] भारतीय मनीषा और चित्त, जो अतीत है या जो बीत गया है, उसको पूरी तरह यथार्थ की तरह रचने का दावा नहीं करते। वे यह जानते हैं कि अतीत, मतलब जो घट गया, उसका बाद में दिया गया कोई विवरण प्रत्यक्ष और आनुभविक होने पर भी पूरी तरह यथार्थ नहीं हो सकता। यथार्थ का ऐसा विवरण लेखक के आग्रह, रुचि, विचार, समझ, प्रयोजन, विवेक आदि से प्रभावित होकर बदल ही जाएगा। अतीत का ऐसा कोई भी विवरण हर हाल में यथार्थ नहीं, यथार्थ की पुनर्रचना ही होगा और यह पुनर्रचना इतिहास और कथा का मिलाजुला रूप ही होगी। सही तो यह है कि नाम संज्ञाओं और तिथियों को छोड़कर इतिहास में जो होता है, वह कमोबेश कथा जैसा ही होता है। भारतीय परंपरा में इसलिए आरम्भ से ही इतिहास और कथा की एक-दूसरे में आवाजाही इतनी निरंतर और सघन है कि इनको एक-दूसरे से अलग करके स्वायत्त ढंग से समझा ही नहीं जा सकता। पश्चिम में भी ये दोनों सर्वथा अलग

अनुशासन हैं और इन दोनों की अलग परम्पराएँ हैं, सर्वथा ऐसा नहीं है। 'कथा' शब्द का प्रयोग भी इस कारण भारतीय वाङ्मय में व्यापक अर्थ में हुआ है और यह लक्ष्य ग्रंथों के आधार पर बदलता भी रहा है। यहाँ सभी प्रकार के ऐतिहासिक-अर्ध ऐतिहासिक चरित काव्यों को 'कथा' कहा गया है। तुलसीदास ने एकाधिक बार *रामचरितमानस* को 'कथा' कहा है।[29] इसी तरह विद्यापति ने अपनी रचना *कीर्तिलता* को 'कहाणी' (कथानिका) कहा है।[30] प्राचीन साहित्य में कथा का प्रयोग एक तो 'कहानी' के अर्थ में और दूसरे, अलंकृत काव्यरूप के अर्थ में होता आया है।[31] *पंचतंत्र, महाभारत* और *पुराण* के आख्यान और गुणाढ्य की *बृहत्कथा* सभी की गणना कथा की श्रेणी में ही होती है, लेकिन भामह और दंडी ने इसका प्रयोग विशिष्ट अर्थ में अलंकृत गद्यकाव्य के लिए किया है।[32] दंडी ने आग्रहपूर्वक कथा और आख्यायिका को एक श्रेणी की रचना माना है।[33] रुद्रट ने नवीं सदी में लिखा कि संस्कृत निबद्ध कथाओं को गद्य में लिखने का बंधन है, परंतु अन्य भाषाओं (प्राकृत और अपभ्रंश) में ये पद्य में लिखी जा सकती हैं।[34] स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय साहित्य में कथा का अर्थ केवल कल्पित कहानी नहीं है। *आख्यान, आख्यायिका, वंश, वंशानुचरित, चरित* आदि ऐतिहासिक और अर्ध ऐतिहासिक रचनाएँ भी इसमें कथा की श्रेणी में रखी जाती थीं। यह विडंबना है कि इतिहास के औपनिवेशिक संस्कार और शिक्षा के कारण हम अपने ऐतिहासिक कथा-काव्य ग्रन्थों को केवल कथा मानकर इतिहास के दायरे से बाहर कर देते हैं। वस्तुस्थिति यह है कि यह स्मृति के रख-रखाव का भारतीय ढंग है। ये रचनाएँ कथा-काव्य के विन्यास में कुछ हद तक इतिहास भी हैं।

2.

भारत में इतिहास और उसके कथा-काव्य में विन्यास की परंपरा बहुत प्राचीनकाल से है। इतिहास का कथा-काव्य की तरह व्यवहार यहाँ बहुत पहले से होता आया है। भारतीय ऐतिहासिक कथा-काव्यों में विन्यस्त इतिहास अपने देश-समाज और संस्कृति के अनुसार अलग और ख़ास तरह का है। चक्रीय कालबोध और सनातनता के आग्रह ने इसे इतिहास को ग्रीक-रोमन ईसाई पद्धति से अलग रूप दिया है, लेकिन इसमें देशकाल की चेतना और संदर्भ की मौजूदगी भी बहुत निरंतर और सघन है। इतिहास सहित इतिहास के 19 आनुषंगिक रूप- ऐतिह्य, पुराकल्प, परक्रिया, अवदान, आख्यान, आख्यायिका, उपाख्यान, अन्वाख्यान, चरित, अनुचरित, कथा, परिकथा, अनुवंश, श्लोक, गाथा, नाराशंसी, राजशासन और पुराण भारतीय वाङ्मय में सदियों से चलन में हैं।[35] यह सही है कि इनमें से कुछ रूप इतिहास के अनुशासन के रूप में अच्छी तरह से विकसित हैं, जबकि कुछ ऐसे हैं, जिनमें इतिहास अविकसित रूप में है, जबकि कुछ ऐसे हैं, जिनमें कथा-कल्पना का तत्त्व बहुत वर्चस्वकारी है, लेकिन

यह तय है कि इन सभी में कमोबेश ऐतिहासिक सामग्री किसी-न-किसी रूप में मौजूद है। *नाराशंसी, गाथा, आख्यान* और *पुराण,* इतिहास के समानार्थक शब्दों के रूप में यहाँ सदियों से प्रयुक्त हो रहे हैं। *इतिहास* शब्द का व्यवहार भी वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् ग्रंथों सहित परवर्ती साहित्य में कई जगह मिलता है।

राजाओं के वीरतापूर्ण कार्यों और दानों की सराहना में कहे गए छंद इतिहास के प्राचीनतम भारतीय रूप हैं। *ऋग्वेद* में इस तरह की कुछ स्तुतियाँ मिलती हैं- एक स्तुति में कहा गया है कि *राजानो न प्रशस्तिभि: सोमासो गोभिरंजते। यज्ञो न सप्त धातृभि: ॥* अर्थात् जिस प्रकार प्रशस्तियों से प्रशंसित राजा की प्रतिष्ठा होती है तथा सात याजकों द्वारा यज्ञदेव की प्रतिष्ठा होती है, उसी प्रकार गौ-घृतादि से सोमदेव संस्कारित होते हैं।[36] वेदों में ऐसी रचनाओं को *गाथा* और *नाराशंसी* कहा गया है। ये मनुष्यों द्वारा रची गई धर्मेतर रचनाएँ थीं, इसलिए इनको धार्मिक वैदिक ऋचाओं की तुलना में कम महत्त्वपूर्ण समझा जाता था। *तैत्तिरीय ब्राह्मण* और *काठक संहिता* में इनको 'निम्न क़िस्म' का कहा गया है और इनका पाठ करने वालों से दान ग्रहण करने की भी निंदा की गई है।[37] *ऋग्वेद* में इस तरह की स्तुतियाँ यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं कि उस समय राजाओं की सराहना और स्तुतियाँ भी छंदबद्ध हो रही थीं। कुछ विद्वान् इस मत के भी हैं कि आरंभ में *ऋग्वेद* में *नाराशंसी* और *गाथाएँ* भी धार्मिक ऋचाओं के बीच-बीच में सम्मिलित थीं, लेकिन कालांतर में इनको निकालकर इसको केवल धार्मिक ऋचाओं तक सीमित कर दिया गया।[38] परवर्ती ग्रंथ, ख़ासतौर पर *निरुक्त* और *बृहद्देवता ऋग्वेद* में *इतिहास* और *आख्यान* की मौजूदगी स्वीकार करते हैं। *निरुक्त* में यास्क एक जगह कहता है कि ऋक्, गाथा और इतिहास का मिलाजुला रूप है।[39] *बृहद्देवता* तो भागुरि, यास्क और शौनक का संदर्भ देते हुए *ऋग्वेद* के कुछ सूत्रों को इतिहास की कोटि में रखता है।[40] इसी तरह शाकटायन ने तो *ऋग्वेद* के एक संपूर्ण सूक्त (10.102) को ही इतिहास सूक्त कहा है- *प्रेतीतिहाससूक्तं तु मन्यते शाकटायन:।*[41] स्पष्ट है कि आरंभ में *गाथा* और *नाराशंसी* धार्मिक और कर्मकांडीय परंपराओं में सम्मिलित थीं, लेकिन कालांतर में इनको धार्मिक परंपरा से अलग कर दिया गया। इस तरह लगता है कि ऋग्वेदकाल में ही धार्मिक और ऐतिहासिक, दो अलग परंपराओं की शुरुआत हो गई थीं। ग़ैर धार्मिक ऐतिहासिक रचनाओं को इसलिए ब्राह्मण[42] और उपनिषद् ग्रंथों[43] तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'इतिहास वेद' *(अथर्ववेदेतिहासवेदौ च वेदा:)* की संज्ञा दी गई है।[44]

उत्तर वैदिककाल में इतिहास की इस मौखिक परंपरा का विस्तार हुआ और इस दौर में यह मुख्यत: *नाराशंसी, गाथा, आख्यान, इतिहास* और *पुराण* के रूप में

विकसित हुई। ये सभी इतिहास रूप वैदिक साहित्य में भी थे, लेकिन उत्तर वैदिककाल में आकर ये विशिष्ट साहित्यिक स्वरूप के साथ प्रवृत्तियों के रूप में अस्तित्व में आए। *नाराशंसी* भारतीय इतिहास की परंपरा का प्राचीनतम रूप है। *ऋग्वेद* में इसका प्रयोग अलग-अलग रूपों और संदर्भों में एकाधिक स्थानों पर हुआ है।[45] *नाराशंसी* का विकास इसके व्युत्पत्तिपरक केंद्रीय अर्थ 'नरों की प्रशंसा या गौरव गान' के विस्तार से हुआ। निरुक्तकार यास्क ने अपने से पूर्ववर्ती कात्थक्य का संदर्भ देकर इसका अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है कि *नाराशंसो यज्ञ इति कात्थक्यः। नरा अस्मिन्नासीनाः शंसन्ति।* अर्थात् नाराशंस यज्ञ है और नर इसमें आसीन होकर स्तुति करते हैं।[46] *बृहद्देवता* में यह *नरैः प्रशस्य आसीनैर्* अर्थात् आसीन होकर नर की प्रशंसा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[47] एक जगह उसके अनुसार *नराशंसमिहैके तु अग्निमाहुरथेतरे* अर्थात् कुछ का कहना है कि नराशंस यहाँ अग्नि है। आगे वह फिर कहता है कि *नराः शंसन्ति सर्वेऽस्मिन् आसीना इति वाध्वरे* अर्थात् सब मनुष्य इस पर आसीन होकर प्रशस्तियों का उच्चारण करते हैं, इसे यज्ञ के आशय में ग्रहण करते हैं।[48] निरुक्तकार ने और अधिक स्पष्ट करते लिखा है कि *येन नराः प्रशस्यन्ते स नाराशंसो मंत्रः* अर्थात् जिस मंत्र से नरों की स्तुति हो, वह नाराशंस मंत्र होता है।[49] आरंभ में *नाराशंसी* का अर्थ नरों की स्तुति था, लेकिन आगे चलकर 'नरों द्वारा की गयी स्तुति' को भी *नाराशंसी* के दायरे में ले लिया गया। यही नहीं, आगे चलकर मृत पिताओं या पितरों की स्तुति भी इसके अर्थ में जुड़ गयी।[50] कहीं-कहीं तो पितरों को भी नाराशंसी कहा जाने लगा।[51] *ऋग्वेद* में *नाराशंसी* का *रैभी* (धार्मिक संगीत) और *गाथा* के साथ भी प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ रचना का एक स्वरूप विशेष है।[52] *शतपथ ब्राह्मण नाराशंसी* को इतिहास-पुराण के समानांतर रखता है। उसमें कहा गया है कि *य एवं विद्यानुशासनानि विद्या वाकोवाक्यमितिहासपुराणं नाराशंसीरित्यहरहः स्वाध्यायमधीते मध्वाहुतिभिरेव तद्देवांस्तर्पयति* अर्थात् अनुशासन, विद्या, वाकोवाक्य, इतिहासपुराण, गाथा और नाराशंसी के स्वाध्याय करने से देवों को मधु से पूर्ण आहुतियाँ प्राप्त होती हैं।[53] *नाराशंसी* की परंपरा आगे भी जारी रही। *तैत्तिरीय आरण्यक* में उल्लेख है कि *यद्ब्राह्मणानीतितिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथाः नाराशंसीर्मेदाहुतयो।* आशय यह है कि ब्राह्मण, इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी समान हैं।[54] *याज्ञवल्क्य स्मृति* में भी आता है कि *वाकोवाक्यं पुराणं च नाराशंसीश्च गाथिकाः। इतिहासांस्तथा विद्याः शक्त्याधीते हि योऽन्वहम्। मांसक्षीरौदनमधुतर्पणं स दिवौकसाम्। करोति तृप्तिं कुर्याच्च पितृणांमधुसर्पिषा॥* अर्थात् जो वाकोवाक्य, पुराण, नाराशंसी, गाथा, इतिहास और अन्यान्य विद्याओं का प्रतिदिन अध्ययन करता है, वह मांस, क्षीर, ओदन, तथा मधु से देवताओं का तर्पण करता है और अपने पितरों को मधु तथा घृत से तृप्त करता है।[55] स्पष्ट है कि वैदिककाल

में *नाराशंसी* का विकास ऋषियों और राजपुरुषों की प्रशस्ति पर एकाग्र मौखिक इतिहास रूप की तरह हुआ। आरंभ में यह *गाथा* का एक रूप माना गया और कालांतर में इसे इतिहास-पुराण की परंपरा में समाविष्ट कर लिया गया और इसके तथ्य भी मान्य ऐतिहासिक साहित्य में सम्मिलित हो गए।

गाथा शब्द का व्युत्पत्तिगत अर्थ 'गै' (गाना) धातु से निष्पन्न होने के कारण गीत है, लेकिन वैदिक साहित्य में इसका प्रयोग कई अर्थों में मिलता है। आगे चलकर धीरे-धीरे यह साहित्य की एक विधा के रूप में मान्य हो गया। *ऋग्वेद संहिता* में यह 'गीत' या 'मंत्र' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और इसमें इसका स्तुति, श्लोक और कथा के रूप में भी अर्थ विस्तार मिलता है।[56] *ऋग्वेद* में 'गाथपतिं' गीत का नायकत्व करने वाले व्यक्ति के लिये प्रयुक्त हुआ है।[57] 'ऋजुगाथ' शुद्ध रूप से मंत्रों के गायन करने वाले के लिये[58] तथा 'गाथिन' केवल गायक के अर्थ में व्यवहृत किया गया है।[59] *ऋग्वेद* में ही यह शब्द *नाराशंसी* और *रैभी* के साथ प्रयुक्त होकर ऐसी रचना के रूप में विशिष्ट अर्थ ग्रहण कर लेता है, जिसमें राजादि के दान, यज्ञादि का वर्णन होता था। यहाँ इसको *रैभी* और *नाराशंसी* के साथ रखा गया है। कहा गया है कि *रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी। सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृतम्॥*[60] *गाथा* का *रैभी* और *नाराशंसी* के साथ प्रयोग *ऋग्वेद संहिता* के बाद *तैत्तिरीय संहिता*[61] और *शतपथ ब्राह्मण*[62] में भी मिलता है। *अथर्ववेद* में भी गाथा को इतिहास रूप माना गया। इसमें एक जगह उल्लेख है कि *सबृहतीं दिशमनु व्यचलत्। तामितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन्॥ इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति, य एवं वेद॥* आशय यह है कि व्रात्यस्तोम के प्रसंग में इतिहास, पुराण, गाथा तथा नाराशंसी उसके पीछे-पीछे चली। जो व्यक्ति इसे जानता है, वह इतिहास का, पुराण का, गाथाओं का तथा नाराशंसियों का प्रियधाम होता है।[63] *ऐतरेय ब्राह्मण* के अनुसार 'गाथा' मानव से संबंध रखती है, जबकि 'ऋच्' देव से संबंध रखता है। आशय यह है कि *गाथा* मानवीय और 'ऋच्' दैवीय होने से अलग मंत्र हैं।[64] इस तथ्य की पुष्टि शुन:शेप आख्यान के लिये प्रयुक्त 'शतगाथम्' शब्द से होती है, क्योंकि शुन:शेप अजीगर्त ऋषि का पुत्र होने से मानव था, जिसकी कथा *ऋग्वेद* के कई सूक्तों में दी गई है, जिनके मंत्रों की संख्या सौ के आसपास है इसलिए इनको 'शतगाथम्' कहा गया है।[65] *ऐतरेय ब्राह्मण* में भी *गाथा* शब्द मनुष्य तथा मनुष्योचित विषयों से संबंधित मंत्र के लिए प्रयुक्त हुआ है।[66] *ऐतरेय आरण्यक* *गाथा* को 'ऋच्' से भिन्न 'मंत्र' का एक प्रकार मानता है।[67] *ऐतरेय ब्राह्मण* के प्रसंग में यज्ञ में विशाल दान देने वाले राजाओं की स्तुति में अनेक प्राचीन गाथाएँ उद्धृत की गई हैं।[68]

आख्यान आरम्भ से ही कथा या ऐतिहासिक वर्णन के अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है। *आख्यान* शब्द का विकास का 'ख्या' से हुआ, जिसका व्युत्पत्तिपरक अर्थ 'कथा' है। *साहित्यदर्पण* में *आख्यान* को 'पुरावृत्त कथन' कहा गया है।[69] एस.के. दे के मतानुसार *ऋग्वेद* के कथात्मक सूक्त वस्तुत: पौराणिक और निजंधरी आख्यान ही हैं।[70] *निरुक्त* और *बृहद्देवता* के अनुसार *ऋग्वेद* की ऋचाएँ आख्यानों से मिलती है।[71] *ऋग्वेद* में कई आख्यान हैं, जिनमें से कुछ आख्यान तो वैयक्तिक देवता के विषय में हैं और कुछ किसी सामूहिक घटना पर आधारित हैं। *ऋग्वेद* के भीतर परवर्ती साहित्य में पल्लवित 30 आख्यानों के संकेत मिलते हैं।[72] इनके अलावा इसकी दान स्तुतियों में अनेक राजाओं के नाम उपलब्ध हैं, जिनसे दान पाकर ऋषियों ने उनकी स्तुति में मंत्र लिखे। *ऋग्वेद* परवर्ती वैदिक साहित्य में भी आख्यान बहुतायत से मिलते हैं, जिनमें से कुछ आख्यान नये हैं, जबकि कुछ *ऋग्वेद* में संकेतित आख्यानों का ही पल्लवन या विस्तार हैं। *बृहद्देवता* और *निरुक्त* में भी इन आख्यानों का उल्लेख आया है।[73] पुराणों में भी यही आख्यान हैं, लेकिन यहाँ तक आते-आते इनका रूप बदल गया है। शुन:शेप, वसिष्ठ-विश्वामित्र और उर्वशी-पुरुरवा के आख्यान इसके अच्छे उदाहरण हैं। *ऋग्वेद* में संकेतित शुन:शेप का आख्यान *ऐतरेय ब्राह्मण* में नए रूप में, उपलब्ध होता है।[74] वसिष्ठ-विश्वामित्र का *ऋग्वेद* में संकेतित आख्यान परवर्ती वैदिक साहित्य में बदल गया है। *ऋग्वेद* के प्रख्यात सूक्त (10.95) में पुरुरवा और उर्वशी का संवाद मात्र है, लेकिन आगे चलकर *शतपथ ब्राह्मण* में यह एक प्रणय गाथा है।[75] *आख्यान* की स्वीकार्यता इतनी बढ़ी कि उसकी विशेषज्ञता रखने वालों की अलग पहचान होने लगी।[76] *आख्यान* का अर्थ ऐतिहासिक वर्णन होता है, लेकिन *शतपथ ब्राह्मण* में *आख्यान* और *इतिहास* में भेद किया गया है।[77] आगे चलकर धीरे-धीरे *आख्यान* इतिहास-पुराण की परंपरा में घुल-मिल गए।

इतिहास भी वैदिककाल में ही एक प्रवृत्ति बन चुका था। आरंभ में इसका व्युत्पत्तिपरक अर्थ 'इस प्रकार हुआ' था, लेकिन बाद में इसका विकास हुआ और सभी प्रकार की ऐतिहासिक रचनाएँ इसमें शामिल कर ली गईं। *इतिहास* का शाब्दिक अर्थ 'यह निश्चय था' या 'वस्तुत: इस प्रकार ऐसा हुआ था' है। *शुक्रनीति* में 'इतिहास' शब्द का विश्लेषण है। उसमें कहा गया है- *प्राग्वृत्तकथनं चैकराजकृत्यमिषादित:। यस्मिन् स इतिहास: स्यात् पुरावृत: स एव हि* अर्थात् जिसमें किसी एक राजा के चरित्र वर्णन के व्याज से प्राचीन व्यवहारों का वर्णन हो, उसे इतिहास कहते हैं; इसे ही पुरावृत्त भी कहा गया है।[78] *हरिवंशपुराण* के अनुसार *इतिहास* पूर्व घटनाओं की स्मृति होता है या इसमें पूर्व घटनाओं का उल्लेख किया जाता है।[79] *निरुक्त भाष्यवृत्ति* में दुर्गाचार्य ने *इतिहास* का आशय स्पष्ट करते हुए लिखा है कि *इति हैवामासीदिति य: कथ्यते*

सः इतिहासः अर्थात् यह निश्चय से इस प्रकार हुआ था, यह जो कहा जाता है, वह इतिहास है।[80] *निरुक्त* परंपरा के अनुसार ऋग्वैदिक ऋचाओं में ही *इतिहास* का उल्लेख मिलता है। यास्क के अनुसार *ऋग्वेद* में इतिहासयुक्त मंत्र पाए जाते हैं। वह शब्दों और मंत्रों की व्युत्पत्ति और व्याख्या करते हुए एकाधिक स्थानों पर कहता है कि *तत्रेतिहासमाचक्षते* अर्थात् ऐसा इतिहास की दृष्टि से भी कहा जाता है।[81] इसका एक विद्यानुशान के रूप में पूर्ण और अच्छा उल्लेख *अथर्ववेद* में मिलता है।[82] आचार्य शौनक ने *बृहद्देवता* में *महाभारत* के युद्ध पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि *इतिहासः पुरावृत्त ऋषिभिः परिकीर्त्यते* अर्थात् इस विषय का इतिहास ऋषियों द्वारा कीर्तित है।[83] कौटिल्य इतिहास का दायरा बड़ा करता है- वह कहता है कि *पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतीतिहासः* अर्थात् पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र विद्याएँ इतिहास के अंतर्गत हैं।[84] उसके अनुसार *अथर्ववेदेतिहासवेदौ च वेदाः* अर्थात् अथर्ववेद और इतिहास वेद को वेद कहते हैं।[85] *महाभारत* के आदि पर्व की ग्रंथ महिमा में इसको एकाधिक बार *इतिहास* की संज्ञा दी गयी है। एक जगह इसको *इतिहासप्रदीपेन* अर्थात् यह, भारत के इतिहास का एक जाज्वल्यमान दीपक है, कहा गया है।[86] आठवीं सदी की प्राकृत रचना *गउडवहो* में वाक्पतिराज ने इतिहास को *एवंहास* कहा है। उनके अनुसार *णंदंति जमेवंहास कारिणो सार-कइणो अ* अर्थात् इतिहास लिखने वाले कवि, जिसका अभिनंदन करते हैं।[87]

पुराण शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ 'प्राचीन' या 'पुराना' है। *पुराण* शब्द का उल्लेख वेद सहित सभी प्रकार के प्राचीन साहित्य में मिलता है। यह विशेषण है, लेकिन *अथर्ववेद* में संज्ञा के रूप में प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ 'पुरावृत्त' है। अथर्ववेद के अनुसार *ऋचः सामानि च्छन्दांसि पुराणं यजुषा सह* अर्थात् पुराणों का आविर्भाव ऋक्, साम, यजुस् और छंद के साथ ही हुआ था।[88] *शतपथ ब्राह्मण* में कहा गया है कि *वाचा वै सम्राड्बंधुः प्रज्ञायतऽऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोअथर्वांगिरस इतिहासः पुराणम् विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि।* अर्थात् हे सम्राट! वाणी से ही ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, प्राच्यविद्या, उपनिषद्, श्लोक सूत्र उत्पन्न होते हैं।[89] *छान्दोग्य उपनिषद्* ने भी *पुराण* को वेद कहा है। उसमें कहा गया है कि *यजुर्वेदं सामवेदमाथवर्णम चतुर्थमितिहासपुराण पंचमं वेदानां वेदं* अर्थात् यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद तथा वेदों में पाँचवाँ वेद इतिहास तथा पुराण है।[90] *महाभारत* के आदि पर्व में कहा गया है कि *इतिहासपुराणानामुन्मेषं निर्मितं च यत्* अर्थात् इस ग्रंथ में इतिहास और पुराणों का मंथन करके उनका प्रशस्त रूप प्रकट किया गया है।[91] स्पष्ट है कि वैदिककाल और बाद में *पुराण* तथा *इतिहास* को समान स्तर

पर रखा गया है और दोनों का प्रयोग एकाधिक बार सामासिक पद की तरह हुआ है। *अमरकोष, शुक्रनीति* आदि प्राचीन ग्रंथों में *पुराण* के पाँच लक्षण- सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित माने गये हैं। इनमें कहा गया है कि *सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम्॥*[92] पुराणों में पर्याप्त विषय वैविध्य है। इनमें ब्रह्मांड विद्या, देवी-देवताओं, राजाओं, नायकों, ऋषि-मुनियों की वंशावली, लोककथाएँ, तीर्थयात्रा, मंदिर, चिकित्सा, खगोलशास्त्र, व्याकरण, खनिज विज्ञान, हास्य और प्रेमकथाओं के साथ-साथ धर्मशास्त्र और दर्शन का भी वर्णन है। पुराणों की विषय वस्तु में बहुत अधिक असमानता है। इतना ही नहीं, एक ही पुराण की एकाधिक पांडुलिपियाँ प्राप्त हुई हैं, जो एक-दूसरे से अलग हैं। पुराणों के रचनाकार अज्ञात हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि कई रचनाकारों ने कई सदियों में इनकी रचना कीं। पुराणों में *विष्णु, वायु, मत्स्य* और *भागवत* में प्रशस्ति, वंश आदि ऐतिहासिक रूप मिलते हैं। *विष्णु पुराण* के अनुसार अठारह पुराणों के नाम इस प्रकार हैं— ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शैव (वायु), भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ और ब्रह्माण्ड। आगे चलकर *इतिहास* और *पुराण* का उल्लेख कभी पृथक्, तो कभी साथ-साथ होने लगा। ज़ाहिर है, *इतिहास* और *पुराण* समान विषयवस्तुवाली दो संबद्ध श्रेणी की कृतियाँ थीं।[93] ख़ास बात यह है कि अपने दीर्घकालीन विकास क्रम में *नाराशंसी, गाथा, आख्यान, इतिहास* और *पुराण* की एक-दूसरे में आवाजाही भी निरंतर थी। इतिहास परंपरा की महाकाव्यात्मक रचनाओं, *महाभारत* और *रामायण* में गाथाओं और आख्यानों का समावेश हो गया। इसी तरह *नाराशंसियों* और *गाथाओं* को इतिहास-पुराणों में सम्मिलित कर लिया गया।

4.

उत्तर वैदिककाल के अंतिम चरण में इतिहास-पुराण परंपरा का विस्तार हुआ। *तैत्तिरीय आरण्यक* से यह स्पष्ट होता है कि इतिहास-पुराण की मौखिक परंपरा में इस दौरान कई रचनाएँ हुईं। इसके एक परवर्ती अनुच्छेद में *इतिहास* और *पुराण* का प्रयोग बहुवचन के रूप में एकाधिक बार हुआ है।[94] *वंश* का एक इतिहास रूप में विकास इसी दौरान हुआ। आगे चलकर इसका कई रूपों- *वंशानुचरित, अनुवंश, चरित, प्रबंध* आदि में विस्तार हुआ और यह उत्तर मध्यकाल तक जारी रहा। *वंश* की मौजूदगी वैदिक साहित्य में पुरोहितों और राजाओं की वंशावली की सूची के रूप में थी। आगे चलकर यह पुराणों में शामिल कर लिया गया और इससे पुराणों के आकार में वृद्धि हुई। भरत गाथा इसी समय अस्तित्व में आई।[95] पुराणों से *वंश* का संबंध

इतना गहरा हो गया कि बाद में इसे इनके पाँच लक्षणों में सम्मिलित कर लिया गया। आख्यान भी इस दौरान कई लिखे गए। व्याकरण रचनाओं में इसके पर्याप्त साक्ष्य मिलते हैं– कात्यायन ने 'देवासुरम्' और पतंजलि ने 'यवकृतिक', 'प्रैयंगविक' और 'यायातिक' आख्यानों का उल्लेख किया है।[96] आख्यानों से एक और प्रवृत्ति *आख्यायिका* का विकास इसी दौरान हुआ। *आख्यायिका* एक गद्यबद्ध रचना होती थी, जिसे 'कथा' कहते थे। इसका पहला उल्लेख *(सूर्यमंडलान्याख्यायिका:) तैत्तिरीय आरण्यक* में मिलता है।[97] यहाँ इसका आरंभिक अर्थ नैतिक शिक्षा देने वाली कहानियों से था, लेकिन बाद में यह इतिहास संबंधी एक रचना शैली बन गई। कात्यायन ने इसे इतिहास विषयक एक शैली कहा है।[98] पतंजलि का भी यही मानना है– उनके यहाँ तीन आख्यायिकाओं– वासवदत्ता, सुमनोत्तरा और भैमरथी के नामोल्लेख मिलते हैं।[99] *आख्यायिका* की मान्यता हमेशा ही एक इतिहास रूप की तरह रही है।

इतिहास की प्राचीन भारतीय परंपरा के निर्माण और विस्तार में भृग्वंगिरसों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है और यह परंपरा बहुत बाद तक जारी रही। *ऋग्वेद* में ऋषि-कवि का कारु तथा कारिन् के रूप में उल्लेख मिलता है, जो अपने आश्रयदाताओं की प्रशस्ति में रचनाएँ करते थे।[100] वैदिककाल में ऐसे तीन परिवार मिलते हैं– वशिष्ठ और विश्वामित्र भरत राजाओं, कण्व यदुओं, पराश्वों और पुरुओं और भारद्वाज दिवादोस से संबद्ध थे।[101] यह संबंध इस दौर में बदलता भी रहा। उत्तर वैदिककाल में आंगिरस, अथर्वन और भृगु वंश का एकीकरण और सक्रियता बहुत महत्त्वपूर्ण है। इन तीनों के समूह को 'भृग्वंगिरस' कहा जाता है।[102] इन तीनों की एक साथ सक्रियता भारतीय इतिहास के विकास में एक बहुत महत्त्वपूर्ण घटना है। *ऋग्वेद* में इनका एक साथ उल्लेख मिलता है।[103] एकीकरण की यह प्रक्रिया *अथर्ववेद* में अपने विकसित रूप में है। *अथर्ववेद* को भृग्वंगिरस या अथर्वांगिरस वेद भी कहा जाता है।[104] *अथर्ववेद* के संकलन में भृगु और अंगिरा का योगदान सर्वाधिक है।[105] इतिहास-पुराण परंपरा का विस्तार और पल्लवन भी इस परिवार समूह ने किया। *छान्दोग्य उपनिषद्* के अनुसार जिस प्रकार ऋक् का *ऋग्वेद* से, यजुस् का *यजुर्वेद* से और साम का *सामवेद* से संबंध है, उसी प्रकार इतिहास-पुराण का संबंध भृग्वंगिरस से है।[106] *महाभारत* और *रामायण* का विकास भी इस समूह की देन है। *महाभारत* के कई संदर्भ भार्गव परिवार से संबद्ध हैं। वि.एस. सुकांथकर का मत है कि *महाभारत* की पौलोमापर्वन् की अनुश्रुतियाँ भार्गवों की ही देन हैं। उन्होंने लिखा कि ''मेरी राय में यह निष्कर्ष निकालने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए कि *महाभारत* का जो पाठ आज मौजूद है, उसमें सचेत, बल्कि सुविचारित ढंग से भरत गाथाओं में भार्गव अनुश्रुतियों को मिलाकर साहित्य बुनने या कहें तो ऊपर से सिलाई करने का प्रयत्न

किया गया है।''[107] इतिहासकार विश्वंभर शरण पाठक का निष्कर्ष भी यही है कि ''*महाभारत* जिसका विकास भरत कुल की गाथा के अंदर से हुआ, निश्चय ही भृग्वंगिरसों की कृति है।''[108] *रामायण* के विकास में भी भृग्वंगिरसों का निर्णायक योग है। *रामायण* की कथा का विकास इक्ष्वाकु कुल के आख्यान से हुआ। इस आख्यान को महाकाव्य का रूप देने वाले वाल्मीकि स्वयं भार्गव थे।[109] भृग्वंगिरस परिवार के भारद्वाज, आंगिरस, समवर्त, च्यवन, उशनस् आदि के मिथक *रामायण* में कई बार आते हैं।[110] *महाभारत* में स्पष्ट उल्लेख है कि इसकी उत्पत्ति में चार गोत्र- अंगिरा, कश्यप, वशिष्ठ और भार्गव का योगदान है।[111] एन.जे. शेंदे ने इस संबंध में विस्तार से विचार किया और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ''अंगिरस और भृगु का लेखा-जोखा निश्चित रूप से इस निष्कर्ष का पक्षधर है कि भृग्वंगिरस, *महाभारत* के अंतिम संपादन और विविधता के बीच एकता बनाए रखते हुए धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र और ब्राह्मणवादी परंपराओं के एक विश्वकोश के रूप में संरक्षित करने के लिए उत्तरदायी थे। भृगु और अंगिरस द्वारा *महाभारत* के इस अंतिम पुन:पाठ में केंद्रीय एकता बनाए रखी गई और पारंपरिक संरचना को संरक्षित किया गया और साथ ही इस तरह, ब्राह्मणवाद के महिमामंडन का उनका उद्देश्य पूरी तरह से पूरा हुआ।''[112] *पुराणों* के विकास में भी इस समूह ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। भार्गव अनुश्रुतियों ने *पुराणों* के विकास और विस्तार में योग दिया। *विष्णु पुराण* में स्पष्ट उल्लेख है कि इसकी रचना एक ऋषि द्वारा की गई और यह ऋभु, प्रियव्रत भागुरि और अन्य भार्गव ऋषियों- दधीचि, सारस्वत, भृगु, वत्स आदि के माध्यम से पराशर तक पहुँचा।[113] *मार्कण्डेय पुराण* भी भृगुकुल के च्यवन और मार्कण्डेय से संबंधित माना जाता है।[114] इतिहास-पुराण के अलावा इतिहास परंपरा के दूसरे अनुशासन-आख्यान और आख्यायिका पर भी भृग्वंगिरस समूह का प्रभाव है।[115]

उत्तर वैदिक काल के बाद भी इतिहास की परंपरा पर भृग्वंगिरस समूह का वर्चस्व बना रहा। पुराणों में भृग्वंगिरसों के साथ इतिहास की परंपरा के विकास में सूतों ने भी निर्णायक योग दिया। *सूत* शब्द का प्रयोग *यजुर्वेद, अथर्ववेद* और ब्राह्मणों में कई जगह आया है और उससे यह लगता है कि इसका अर्थ उत्तर वैदिककाल में चारण या स्तुतिगान करने वाला था।[116] *सूत* शब्द के व्युत्पत्ति 'सु' धातु से हुई है, जिसका अर्थ प्रतिष्ठित करना या अभिषेक करना है। कुछ अन्य लोगों की धारणा है कि 'सु' धातु का अर्थ प्रेरक से भी लिया जा सकता है। *शतपथ ब्राह्मण* में इसका यही अर्थ लिया गया है- इसके अनुसार *सूत* के पाठ से राजा को शक्ति मिलती है और इस प्रकार वह उसको शत्रु को पराजित करने के लिए प्रेरित करता है।[117] सूतों से पहले यह कार्य पुरोहित करते थे। *ऋग्वेद* की एक ऋचा की व्याख्या करते हुए

बृहद्देवता यह उल्लेख करता है।[118] सूत और सौति गोत्र का अंगिरस समूह के भारद्वाजों और कश्यपों में मिलना भी यही सिद्ध करता है। *यजुर्वेद* में *सूत* का संबंध गीत से जोड़ा गया है।[119] *महाभारत* में उग्रश्रवा को 'सूतनंदन' कहा गया है।[120] इतिहासकार विश्वंभर शरण पाठक के अनुसार सूतों और राजाओं के संबंध को देखते हुए 'सूत' को ऐसा गीत भी माना जा सकता है, जो राजा की स्तुति करता हो।[121] इस तरह *सूत* उत्तर मध्यकाल में एक वृत्तिमूलक पदवी थी और वे वंश या वंशावली की रचना करने और उसके संरक्षण के लिए उत्तरदायी थे। *सूत* भृग्वंगिरस कुलों में ही उत्पन्न थे और इन्होंने कई राजवंशों की वंशावलियों की रचना कीं। भृग्वंगिरसों और अन्य ब्राह्मणों द्वारा निरंतर व्यवहार के कारण *वंश* भी इस दौरान इतिहास लेखन की ख़ास शैली बन गई थी और परवर्तीकाल में यह कई रूपों में जारी रही। कालांतर में वंश रचनाओं से *वंश* और *वंशानुचरितपुराण* का स्वरूप गढ़ा गया और इसको पुराण के पाँच लक्षणों में सम्मिलित कर लिया गया।

अब तक इतिहास की मौखिक परंपरा अनुश्रुतियों और अनुभव के रूप मौजूद रही, लेकिन उत्तर वैदिककाल के अंतिम चरण, 400 ई. पूर्व से 400 ई. के बीच यह निश्चित साहित्यिक स्वरूप में ढलने लगी और कुछ हद तक इसका मानकीकरण भी हुआ। शकों की मौजूदगी और इसके सांस्कृतिक प्रभाव से यह प्रक्रिया तेज़ हो गई। शकों के यहाँ बस जाने से वीर काव्यों की ज़रूरत महसूस हुई। आगम संप्रदायों के उदय और सातवाहनों, शुंगों और कण्वों के नए समीकरणों ने भी इसमें अपना योग दिया। आगम संप्रदायों के उदय और सुधारवादी ताक़तों के बढ़ते प्रभाव से आरंभ में कर्मकांडीय परंपराएँ कमज़ोर हुईं, लेकिन प्रति सुधार आंदोलन से धर्म का नया रूप सामने आया। धर्म के नये रूप की ज़रूरतों ने इतिहास-पुराण को एक निश्चित साहित्यिक ढाँचे में सीमित कर दिया गया, जिससे कुछ हद तक यह अपने ऐतिहासिक चरित्र से हट गया।[122] *वंश* की परंपरा जारी रही और इसका ऐतिहासिक चरित्र भी बना रहा। इसकी बौद्ध, जैन और दरबारी, तीन अलग-अलग प्रवृत्तियाँ विकसित हुईं। बौद्ध परंपरा में *महावस्तु, सुत्तपिटक* और *सिंहला अट्ठकथा* जैसे ग्रंथ लिखे गए। जैनों ने *हरिवंश, रामायण* आदि के रूप में ऐतिहासिक और अर्ध ऐतिहासिक कृतियों की रचना कीं। दरबारी परंपरा का ख़ूब विकास हुआ। मौर्यकाल के बाद राजकीय अभिलेखागारों की परंपरा शुरू हुई। कौटिल्य के अनुसार इन अभिलेखागारों में विभिन्न राष्ट्रों, गाँवों, कुलों और निगमों के रीति-रिवाज़, पेशा और लेन-देन, राज दरबारियों को उपहारों से प्राप्त लाभ, राजा की पत्नियों और पुत्रों को हुआ लाभ, राजाओं से हुई संधियाँ, उन्हें दी गई चेतावनियाँ और उनसे प्राप्त या उन्हें दिए हुए नज़रानों का हिसाब-किताब आदि रखा जाता था।[123] ह्वेनत्सांग ने भी राज्यों के दरबारों के

अभिलेखागारों में वंश-वंशालियों के राज्य द्वारा संरक्षण का उल्लेख किया है।[124] विभिन्न राजाज्ञाओं में भी *वंश* के उल्लेख के प्रमाण मिलते हैं।[125] आगे चलकर वंश की परंपरा ने साहित्यशास्त्रीय स्वरूप ग्रहण कर लिया, जिसमें कई *वंश* केन्द्रित रचनाएँ, *रघुवंश, हरिवंश, अश्मकवंश, शशिवंश, नृपावली* आदि हुईं। कल्हण की *राजतरंगिणी* और उससे संबंधित परवर्ती रचनाओं की गणना इसी वर्ग में की जा सकती है।

वंश की परंपरा की एक शाखा का विकास राजदरबारों में *चरित* या जीवनी लेखन के रूप में हुआ। चरित या जीवनी लेखन की परंपरा वैदिक आख्यान, *रामायण, बुद्धचरित* आदि के रूप में पहले भी थी, लेकिन पूर्व मध्यकाल में जीवित और वर्तमान राजाओं के *चरित* या जीवनी के लेखन की शुरुआत हुई। इसके विकास में भी भृग्वंगिरसों की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। इतिहास-पुराण की परंपराओं का *चरित* या जीवनी लेखन में रूपांतरण भृग्वंगिरसों की स्थिति में आए बदलाव से हुआ। भ्रमणशील *सूत* और भृग्वंगिरसों की स्थिति अब बदल गई थी- अब वे राजाओं के आश्रय में जीविका प्राप्त दरबारी कवि थे और राजा भी अब क़बीले की जगह सबसे महत्त्वपूर्ण और केन्द्रीय इकाई हो गया था। दरअसल भृग्वंगिरसों ने पूर्व मध्यकाल से पहले ही राज्याश्रय में जाना शुरू कर दिया था। पूर्वी और मध्यभारत के कई राजाओं से इन्होंने आश्रय प्राप्त किए। ये अत्यंत सम्माननीय थे- कहते हैं कि लक्ष्मणराज द्वितीय के समय सोमेश्वर का पालकी उठाने वाला कहार जब थक गया, तो स्वयं लक्ष्मणराज ने पालकी में अपना कंधा लगाया और इसे अपना सम्मान समझा।[126] दसवीं-ग्यारहवीं सदी में टकारी की ब्राह्मण बस्ती बहुत विख्यात थी। कई अभिलेख यह सिद्ध करते हैं कि वहाँ के ब्राह्मणों ने उड़ीसा, बंगाल, चंदेल, मालवा, कर्नाटक और असम में जाकर राज्याश्रय प्राप्त किया था। ख़ास बात यह है कि इनमें से अधिकांश भृग्वंगिरस समूह से संबंधित थे।[127] राजदरबारों पर भृग्वंगिरसों की निर्भरता से परिवर्तन यह हुआ कि अब उन्होंने प्राचीन ऐतिहासिक परंपराओं और नायकों की जगह अपने आश्रयदाता राजाओं का *चरित* और जीवनी लेखन शुरू कर दिया। अब *वंश* से पौराणिक सामग्री निकाल कर उसके आधार पर राजाओं का जीवन चरित्र लिखने की नयी प्रवृत्ति शुरू हुई, जिसमें मध्ययुगीन राजवंशों का संबंध प्राचीनकाल की ऐतिहासिक परंपराओं या वंशों- इक्ष्वाकु और ऐल से जोड़ा गया। यह भी कि कुछ राजाओं ने दरबारी कवियों से अपने को प्राचीन नायकों- इक्ष्वाकु राम, पांडव भीम आदि के रूप में प्रस्तुत करवाया। राजा के उदय और भृग्वंगिरसों की स्थिति में बदलाव से इतिहास लेखन की परंपरा में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। एक तो यह कि पूर्व मध्यकालीन वंश रचनाओं में पौराणिक तत्त्वों का समावेश बढ़ गया और दूसरे, चौथी सदी बाद के पुराणों में वंश रचना रुक गई और तीसरे, इतिवृत्तात्मक जीवन चरित

साहित्य का उदय हुआ।

पूर्व मध्यकाल के अंतिम चरण में भारतीय ऐतिहासिक कथा-काव्य की परंपरा में निर्णायक मोड़ आया। ऐतिहासिक व्यक्तियों को उपजीव्य बनाकर इतिवृत्तात्मक काव्य रचना की प्रथा सातवीं सदी के बाद तेज़ी से बढ़ी और दसवीं सदी के बाद इसका और विस्तार हुआ। इसका विस्तार इस दौरान ईरान में भी हुआ।[128] राजा की संस्था के विकास के साथ राजा, कवि, दरबारी और इतिवृत्तकार एक-दूसरे के पास आ गए। राजा जैसी संस्था के विकास की नई ज़रूरतों के अनुसार *इतिवृत्त* शौर्य, पराक्रम, वीरता, स्वामिधर्म जैसे नई सामाजिक मूल्यों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन गए। *इतिवृत्त* का एक संरचनात्मक ढाँचा विकसित हुआ, जिसमें राज्यश्री या गौरव का पाने के लिए पाँच चरण- प्रारंभ, प्रयत्न, प्रत्याशा, नियताप्ति और फलागम तय किए गए। अधिकांश इतिवृत्तों में राजा के जीवनक्रम को इन चरणों के अनुसार ढालकर प्रस्तुत किया गया। यह जीवनक्रम तिथियों और वर्षों में नहीं था, यह पहले से नियत पाँच चरणों के क्रम में था। साहित्यशास्त्र में भी यह मान्य हो गया।[129] 600 से लगाकर 1200 ई. के बीच इसी तरह के कई इतिवृत्त लिखे गए। इन जीवनीपरक इतिवृत्तों में बाण का *हर्षचरित,* बिल्हण का *विक्रमांकदेवचरित,* सोमश्वर तृतीय का *विक्रमांकाभ्युदय,* जयानक का *पृथ्वीराजविजय* आदि प्रमुख हैं। इतिहास-पुराण की परंपरा भी जारी थी। यह इस दौर में यह कश्मीर के प्रसिद्ध इतिहास *राजतरंगिणी* (1444 ई.) के रूप में फलीभूत हुई, लेकिन कुछ हद तक यह उससे अलग और नवीन भी थी। *राजतरंगिणी* का आरम्भिक भाग कश्मीर के मिथकीय अतीत से सम्बन्धित है, दूसरे भाग में इसमें विविध स्रोतों से सामग्री ली गई और इसके तीसरे भाग में लोकोत्तर तत्त्वों की जगह इतिहास का आग्रह बढ़ गया है और यह आनुभविक पर्यवेक्षण पर निर्भर लगता है। दरअसल उसका लेखक कल्हण और उसका परिवार ग्यारहवीं-बारहवीं सदी में कश्मीर की राजनीति से सीधे सम्बन्धित थे। *राजतरंगिणी* के अति विकसित इतिहास बोध के सम्बन्ध में कुछ लोगों की यह धारणा कि यूनानी या एशिया माइनर के तुर्की प्रभाव के कारण ऐसा हुआ, सही नहीं हैं। यह भारतीय इतिहास परम्परा की अपनी स्वाभाविक परिणति है। अलबत्ता अपने परिष्कृत इतिहास बोध के लिए इस पर बौद्ध परम्परा का प्रभाव ज़रूर रहा होगा।[130]

5.

संस्कृत के समानांतर, प्राकृत-अपभ्रंश और देश भाषाओं में भी ऐतिहासिक कथा-काव्य की निरन्तर परम्परा मिलती है। संस्कृत के साथ प्राकृत और अपभ्रंश में काव्य रचना बहुत पहले शुरू हो गई थी और इसको दरबारों और लोक में भी मान्यता

भी मिलने लग गई थी। प्राकृत के शिलालेख तो अशोक के समय से ही मिलने लगते हैं, जिसका समय 274 से 232 ई. पू. है।[131] प्राकृत में विमलसूरि कृत *पउमचरियम्* की रचना 300–400 ई. में हुई। अपभ्रंश का सर्वाधिक प्राचीन उल्लेख कालिदास के *विक्रमोर्वशीय* में मिलता है, लेकिन उससे पहले भरत के *नाट्यशास्त्र* में भरत मुनि ने 'देशभाषा' शब्द प्रयुक्त करते हुए इन भाषाओं के प्रयोग के संबंध में बताया है। वे लिखते है कि *अत: ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि देशभाषाविकल्पनम्। भाषाचतुर्विधा ज्ञेया दशरूपे: प्रयोगत: ॥* अर्थात् अब मैं आगे देशभाषा के प्रयोगों के संबंध में आपको बताऊँगा। दशरूपों के प्रयोगों में चार प्रकार की भाषा का प्रयोग हुआ है।[132] हेमचंद्र ने अपने प्राकृत व्याकरण *सिद्धहेमशब्दानुशासन* के चतुर्थ पाद के 448 सूत्रों में शौरसेनी, मागधी, पैशाची चूलिका, पैशाची और अपभ्रंश प्राकृतों के नमूने दिए हैं। इस पाद में सबसे अधिक (सूत्र 329 से 448 तक) नमूने अपभ्रंश के हैं, जिससे लगता है कि उस समय इसका साहित्य बहुत विस्तृत और उन्नत कोटि का था।[133] राजशेखर की *काव्यमीमांसा* में राज दरबार की आदर्श व्यवस्था के विस्तृत प्रावधानों में संस्कृत कवि, ज्योतिषी और नर्तक सहित अन्य दरबारियों के साथ अपभ्रंश के कवि के बैठने के स्थान का भी प्रावधान है।[134] संस्कृत के उत्साही समर्थक राजा भोज के *सरस्वतीकंठाभरण* में भी संस्कृत के साथ प्राकृत और अपभ्रंश की कविताएँ उद्धृत की गई हैं।[135] *प्राकृतपैंगलम्* के अनुसार जयचंद के दरबार के विद्वान् मंत्री गण भी देश भाषा में रचनाएँ करते थे और ये राजप्रशस्तिमूलक थीं, इसलिए ज़ाहिर है, जयचंद इनका सम्मान भी करते थे।[136] गौड़ (बंगाल) देश के पाल, गुजरात के सोलंकी और मालवा के परमारों ने देश भाषाओं को ख़ूब प्रोत्साहन दिया।[137] संस्कृत अब भी चलन में थी, इसका मान-सम्मान था, इसमें काव्य रचना प्रतिष्ठा का विषय भी था, लेकिन यह सही है कि धीरे-धीरे लोक में इसका व्यवहार सीमित रह गया था। संस्कृत-प्राकृत की कविताएँ लोक भाषाओं के माध्यम से समझायी जाती थीं और इस तरह इनका मूल कुछ बाधा के साथ सामंतों तक पहुँचता था, पर अपभ्रंश की कविता सीधे असर करती थी। ऐसे राजा या सामंत भी कम रह गए थे, जो संस्कृत अच्छी तरह समझते हों। नतीजा यह हुआ कि अपभ्रंश की कविता को राजकीय मान्यता मिल गई। हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में कहें तो "नाना कारणों से इस काल में अपभ्रंशी कवियों को सम्मान राज दरबार में भी होता था और राजा लोग इन कवियों को अपने दरबार में रखना उतना ही आवश्यक समझते थे, जितना संस्कृत भाषा के कवियों को और पंडितों को। इतना ही नहीं, अधिकांश राजा इनसे विशेष अनुराग भी प्रगट करने लगे थे।"[138] दसवीं-ग्यारहवीं सदी में *उत्तिवसेसोकव्वं भाषा जा होइ सो होउ* अर्थात् भाषा जो हो सो हो, कविता तो कथन विशेष का नाम है, यह धारणा बद्धमूल हो गई।[139]

आगे चलकर विद्यापति के समय (1350–1450 ई.) तक तो इस संबंध में स्थिति और साफ़ हो गई। उन्होंने *कीर्तिलता* में खुलकर कहा कि *सक्कय वाणी वहुअ ण भावइ, पाउअ रस को मम्म न पावइ। देसिल वयणा सब जन मिट्ठा, तैं तैसन जंपउ अव्हट्ठा॥* अर्थात् संस्कृत भाषा बहुतों को रुचिकर नहीं लगती, प्राकृत का काव्य रस भी सुगमता से नहीं मिलता। देश्य भाषा की उक्ति सब लोगों को मीठी लगती है, इसीलिए मैं देशी बोली अवहट्ठ में रचना करता हूँ।[140] *आख्यान, आख्यायिका, वंश, वंशानुचरित, चरित, इतिवृत्त* आदि ऐतिहासिक कथा-काव्य रूप भी देश भाषाओं में *चरित, रासो, ख्यात, वंशावली, पाटनामा, बही* आदि में ढलने लग गए थे। *इतिहास-पुराण* के रूप में जो सार्वभौमिक इतिहास लेखन की परंपरा बनी, वह अब कमज़ोर हो गई। उसकी जगह अब देश भाषाओं में क्षेत्रीय इतिहास रूप लेने लग गए। यह प्रक्रिया भी बहुत पहले शुरू हो गई थी। गुणाढ्य (कंबोडिया के 875 ई. के अभिलेख के अनुसार 600 ई.) की छठी सदी की प्राकृत रचना *बृहत्कथा* (बड्डकथा) में कई राजाओं के ऐतिहासिक या अर्ध ऐतिहासिक आख्यान मिलते हैं।[141] वाक्पतिराज की आठवीं सदी की रचना *गउडवहो* (गौड़ वध) में ऐतिहासिक व्यक्तित्व यशोवर्मन की कथा है।[142] इसी तरह हेमचंद्र ने बारहवीं सदी में *द्व्याश्रय* नामक ऐतिहासिक काव्य लिखा, जो संस्कृत और प्राकृत, दोनों में है और इसमें गुर्जर प्रदेश के चालुक्य वंश के संस्थापक मूलराज (942 ई.) से लगाकर सिंधुराज तक का वृत्तांत है।[143] आभीर, गुर्जर और राजपूत समझी जाने वाली जातियों ने भी इसी दौरान अपने राज्य क़ायम किए। यद्यपि ये जातियाँ अपनी श्रेष्ठता के लिए संस्कृत का सम्मान करती थीं, लेकिन उनको अपभ्रंश और देश भाषाओं की स्तुतियाँ ही अच्छी तरह समझ में आती थीं, इसलिए भी अपभ्रंश के राजस्तुतिपरक साहित्य को मान्यता मिल गई। संस्कृत की परम्परा पूर्ववत जारी रही। क्षेत्रीय शासकों ने इसको प्रश्रय दिया। इस दौरान इसको आगे बढ़ाने में जैन आचार्यों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। इन आचार्यों ने अपने प्रभाववाले शासकों को धर्म और नीति के उपदेश देने के लिए *प्रबंध* और *वंशानुचरित* लिखे। ये प्रबंध प्राचीन परम्परा के अनुरूप थे और इनमें ऐतिहासिकता का आग्रह भी ख़ूब था। जैन आचार्य मेरुतुंगाचार्य की *प्रबंधचिंतामणि* 1304 ई. में पूर्ण हुई, जो मूलतः कुछ ऐतिहासिक प्रबन्धों का संकलन है। मेरुतुंगाचार्य का आग्रह धर्म और पौराणिकता की जगह ऐतिहासिकता पर अधिक था।[144] इस परम्परा में राजशेखर सूरि का *प्रबंधकोश* (1348 ई.) भी महत्त्वपूर्ण है, जिसमें 24 प्रबंध संकलित हैं।[145] ख़ास बात यह है कि ये दोनों रचनाएँ चौदहवीं सदी के पूर्वार्ध में हुईं, लेकिन इनमें संकलित प्रबन्धों की रचना का समय इससे पूर्व का है। बाद में मुनि जिनविजय को पाटन, भावनगर, पूना, अहमदाबाद, राजकोट आदि स्थानों पर *प्रबंधचिंतामणि* से संबद्ध

या इससे समानता रखने वाले ऐसे अनेक प्रबंध और मिल गए, जिनको उन्होंने *पुरातनप्रबंधसंग्रह* के नाम से प्रकाशित करवाया।[146] इन संकलनों में जैनाचार्य, संस्कृत कवि-पंडित और शासकों के वृत्तांत हैं। संस्कृत में *वंश* और तत्संबंधी प्रबंध रचनाएँ उत्तर मध्यकाल में भी हुईं। क्षेत्रीय शासकों ने वाराणसी और दक्षिण भारत से अपने यहाँ इस निमित्त ब्राह्मणों को वृत्ति देकर निमंत्रित किया। सत्रहवीं सदी में मेवाड़ (राजस्थान) के शासक राजसिंह (1629-1680 ई.) के शासनकाल में रणछोड़ भट्ट ने *राजप्रशस्तिमहाकाव्यम्* और सदाशिव ने *राजरत्नाकरमहाकाव्यम्* की रचना की। दोनों रचनाएँ वंश या इतिवृत्त रचनाएँ हैं, लेकिन इतिहास-पुराण से प्रेरित हैं। इनका पूर्वार्ध पुराण से प्रेरित है, लेकिन बाद में यह कम होता गया है। ये दोनों रचनाकार वाराणसी से संबंधित थे।[147]

पश्चिम से विदेशी आक्रमण, केंद्रीय शासन की समाप्ति, क्षेत्रीय शासकों का उदय और राज दरबारों में प्राकृत-अपभ्रंश सहित देश भाषाओं की बढ़ती लोकप्रियता से देश भाषाओं में ऐतिहासिक कथा-काव्यों की प्रवृत्ति को स्वीकृति और मान्यता मिली और इसका विस्तार भी हुआ। युद्ध की संस्कृति का विकास हुआ और वीरता, शौर्य और पराक्रम शासक जातियों के जीवन मूल्यों का ज़रूरी हिस्सा हो गए। युद्ध करने वाली जातियाँ अपनी स्तुति और सराहना सुनना चाहती थी और निरंतर युद्ध के लिए प्रोत्साहित करना चारण जाति के लिए नियत कर्म हो गया था। उनका काम था 'युद्धोन्माद उत्पन्न कर देने वाली घटना योजना का आविष्कार।'[148] गुजरात सहित लगभग पूरे उत्तरी-पश्चिमी भारत में इस नयी ज़रूरत से *चरित, रासो, ख्यात, पाटनामा, बही* आदि साहित्य रूप अस्तित्व में आए। ये सभी रूप वैदिककाल से प्रचलित ऐतिहासिक कथा-काव्य रूपों के स्वाभाविक देशज रूपांतरण थे। शासकों की जीवन से सम्बन्धित *प्रबंध, इतिवृत्त, चरित, वंशानुचरित* की परंपरा *चरित* के रूप में जारी रही। विश्वंभर शरण पाठक के अनुसार वैदिक आख्यानों को *चरित* का पूर्व रूप कहा जा सकता है।[149] गिरिजाशंकर मिश्र के अनुसार वे *चरित* जो राजकीय अभिलेखों और प्रशस्तियों के आधार पर लिखे गए *इतिवृत्त* की श्रेणी में आते हैं।[150] आरंभ में प्राकृत-अपभ्रंश में *चरित* का अपभ्रंश रूप *चरिउ* चलन में आया, जो देश भाषाओं में भी जारी रहा। कालांतर में जब देश भाषाओं में तत्सम शब्दों की वापसी हुई, तो कहीं-कही यह फिर 'चरित' के रूप में प्रयुक्त होने लगा। *रासो* भी एक प्रकार की चरित रचना ही थी, लेकिन आगे चलकर यह एक स्वायत्त अनुशासन के रूप में विकसित हो गया। *चरित* के लिए *विलास (राजविलास और अभैविलास), रूपक (गोगादेरूपक और रावरिणमलरूपक)* और *प्रकाश (जयचंदप्रकाश, छत्रप्रकाश और पाबूप्रकाश)* शब्द भी चलन में आए। इन शब्दों के प्रयोग के पीछे इनके स्वरूप

को लेकर इनके रचनाकारों की अलग मंशा ज़रूर रही होगी, लेकिन ये सभी आश्रयदाता शासकों के जीवन पर आधारित थे, इसलिए हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इनको *चरित्र* के व्यापक दायरे में शामिल किया है।[151] इनमें से कुछ साहित्यिक रचनाएँ थीं, जैसे भवभूति का *महावीरचरित* और *उत्तररामचरित* तथा भास का *बालचरित,* लेकिन ये रचनाएँ अपने समय में प्रचलित ऐतिहासिक वृत्तांतों को भी आगे बढ़ाती हैं। धार्मिक चरित्रों पर आधारित चरित रचनाएँ, जैसे *रामचरितमानस* भी कई हुईं। *चरित* रचनाएँ भारत के विभिन्न क्षेत्रों में हुईं– पद्मगुप्त की रचना *नवसाहसांकचरित* में मालवा के सिंधुराज का इतिहास दिया गया है। बंगाल के पाल शासक रामपाल का जीवन चरित संध्याकरनंदिन् ने *रामचरित* नाम से लिखा। जैन यतियों–मुनियों ने *पउमचरिउ, सणंकुमार चरिउ* आदि कई *चरित* लिखे। *रासो* प्राचीन और मध्यकाल का प्रमुख ऐतिहासिक साहित्य रूप था और इसकी परम्परा बहुत प्राचीन है। *रास* और *रासक* का प्रयोग बहुत प्राचीनकाल से होता आया है। *रास* या *रासक* का अर्थ 'लास्य' से लिया गया है, जो नृत्य का एक भेद है। इस व्युत्पत्ति के आधार पर आरंभ में गीत–नृत्यपरक रचनाएँ *रास* नाम से जानी जाती थीं। *श्रीमद्भागवत* और हेमचंद्र के *काव्यानुशासन* आदि में इसका उल्लेख मिलता है।[152] ऐतिहासिक आख्यान के रूप में इसका रूपांतरण शायद चौदहवीं और पंद्रहवीं सदी में हुआ।[153] 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर विद्वान् एक राय नहीं हैं। हरप्रसाद शास्त्री *रासो* का अर्थ झगड़ा या लंबा विवाद करते हैं, जबकि काशीप्रसाद जायसवाल के अनुसार 'रहस्य' पद का प्राकृत रूप 'रहस्सो' बना है, जिसका कालान्तर में उच्चारण भेद से बिगड़ता हुआ रूपांतर 'रासो' बन गया है।[154] राजस्थानी के विद्वान् हीरालाल माहेश्वरी के अनुसार 'रासक' के तीन तत्त्वों– नृत्य, गीत, काव्य से आगे चलकर *रासो* का विकास हुआ।[155] रामचन्द्र शुक्ल *रासो* की व्युत्पत्ति 'रसायण' से मानते हैं। *वीसलदेवरासो* में 'रास' और 'रसायण' शब्द का प्रयोग काव्य के लिए हुआ है। उन्होंने *बीसलदेवरास* की एक पंक्ति को आधार बनाया है। यह पंक्ति इस तरह है– *बारह सौ बहत्तरा मझारि, जेठ बधी नवमी बुधवारि, नालह रसायण आरंभई, शारदा तूठी, ब्रह्मकुमारि।*[156] हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार *संदेशरासक* के मिलने बाद ये सब अटकलें हैं। उन्होंने इनका समाहार करते हुए लिखा है कि "*रासक* वस्तुत: एक प्रकार का खेल या मनोरंजन है। *रास* में भी वही भाव है।"[157] आरम्भ में नृत्य के साथ गाई जाने वाली प्रबंध रचना को *रास* कहा जाता होगा, लेकिन कालांतर में *रासो* में इसका रूपांतरण हुआ, जो वंश और आख्यान का मिला–जुला रूप था। आगे चलकर *रास* प्रेमकथाओं से सम्बन्धित प्रबंध, जबकि *रासो* वीर प्रबंध काव्यों के लिए रूढ़ हो गया। *रासो* वंशानुचरित या वंशावली का बदला हुआ रूप था। राजस्थान में *रासो* और *रास* काव्य की परंपरा डिंगल–पिंगल, दोनों में मध्ययुग से आरंभ होकर

आधुनिककाल तक रही है। *पृथ्वीराजरासो, हम्मीररासो, खुम्माणरासो, राणारासो* आदि कई रचनाओं की ऐतिहासिकता पर आधुनिककाल में विचार हुआ और इतिहास की आधुनिक कसौटियों पर खरा नहीं उतरने के कारण इन्हें ख़ारिज कर दिया गया। दरअसल भारतीय परम्परा के अनुसार की इन रचनाओं में इतिहास और साहित्य, दोनों हैं। साहित्यिक वर्णन की रूढ़ियाँ भी इनमें पर्याप्त हैं। *रासो* रचनाएँ वंशानुचरित थीं– इसलिए इनमें पीढ़ी-दर-पीढ़ी नए शासकों के वृत्तांत जुड़ते रहे। परम्परा की समझ के अभाव में इनको प्रक्षिप्त मानकर कुछ लोगों ने इनको जाली मान लिया। *आख्यान-आख्यायिका* का उत्तर मध्यकाल में राजस्थान में नया रूप *ख्यात* बना। यह कमोबेश एक ऐतिहासिक रचनारूप था। इसमें वंश और आख्यान दोनों थे– इसमें शासक के साथ उसके शासनकाल की प्रसिद्ध घटनाओं का वृत्तांत भी दिया जाता था। *ख्यात* का नामकरण इसके विषय के साथ कभी-कभी इसके लेखक के आधार पर भी होता है। *ख्यात* कमोबेश इतिहास है– इसको डिंगल में लिखी इतिहास की 'किताब' कहा गया है।[158] 'ख्यात' शब्द मूलतः संस्कृत का शब्द है। 'ख्या' धातु में 'क्त' प्रत्यय जुड़ने से 'ख्यात' शब्द बना है, जिसका अर्थ है 'भूतकाल की घटनाओं का वर्णन' या 'भूतकाल को ज्ञात करना'। ख्यातकारों ने *ख्यात* शब्द का प्रयोग *इतिहास* के रूप में ही किया था और इसका विकास भी एक इतिहास रूप में ही हुआ। इसकी परंपरा दूसरे रूप में पहले भी रही होगी, लेकिन अकबर (1556 से 1605 ई.) के शासनकाल में अबुल फ़ज़ल द्वारा देशी राज्यों से संबंधित जानकारियों की अपेक्षा करने से इसके लेखन में गति आई। *ख्यात वंशावली, पीढ़ियावली* और *आख्यान* का मिलाजुला रूप है, जिसमें किसी शासक के जन्म, उत्तराधिकार, विवाह, संतान, शासनकाल, युद्ध, मृत्यु आदि की तिथियों और उसके समय की प्रसिद्ध घटनाओं का वर्णन होता है। इटली के प्रसिद्ध भारतविद् विद्वान् एल.पी. तेस्सीतोरी ने सबसे पहले कई ख्यातों को उजागर किया। तेस्सीतोरी का ख्यातों का आरंभिक सर्वेक्षण न सिर्फ़ राजस्थानी भाषा के स्वरूप निर्धारण में उपयोगी सिद्ध हुआ, बल्कि यह नयी ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत करने वाला भी था। इसकी भूमिका में तेस्सीतोरी ने लिखा कि ''वर्णनात्मक सूची के इस खंड का महत्त्व इस तथ्य से बढ़ गया कि इसमें वर्णित कार्य राजपूताना के मध्यकालीन इतिहास के संबंध में उपलब्ध जानकारी का सबसे समृद्ध स्रोत है। इस सूची का महत्त्व इस अर्थ में भी है कि अभी तक बिखरी हुई और उपेक्षित इस सामगी को एकत्र और वर्गीकृत किया जाए, जिससे इसकी पहचान और संदर्भ को आसान बनाया जा सके।''[159] पहली *ख्यात* 1660 ई. में लिखी गई *मुँहता नैणसीरी ख्यात* है, जो उपलब्ध ख्यातों में सबसे अधिक विश्वसनीय और प्रामाणिक मानी जाती है। परवर्ती अधिकांश ख्यातकारों ने इससे मदद ली है। नैणसी जोधपुर राज्य में दीवान

था और सांख्यिकीविद् भी था। उसकी दूसरी रचना *मारवाड़रा परगनारी विगत* एक प्रकार का गज़ेटियर है। *ख्यात* लेखक फ़ारसी वृत्तांतकारों और कुछ आधुनिक इतिहासकारों की तुलना में अधिक निष्पक्ष और ईमानदार थे।[160] *मुँहता नैणसीरी ख्यात* की ख़ास बात यह कि उसमें दी गई सूचनाओं के स्रोत का भी उल्लेख है और किसी प्रकरण में यदि सूचना के एकाधिक स्रोत हैं और ये अंतर्विरोधपूर्ण हैं, तो उसमें उन सभी का उल्लेख है। *ख्यात* रचनाएँ अपने चरित्र में ग़ैर धार्मिक भी हैं- इनमें राजपूत-मुस्लिम संघर्ष 'धार्मिक' या 'राष्ट्रीय' की तरह वर्णित नहीं है। फ़ारसी वृत्तांतकारों के अनुसार तुर्क और मुग़लों की राजपूत शासकों पर विजय इस्लाम की विजय है, जबकि ख्यातकारों ने इसे केवल मुग़लों या तुर्कों की विजय बताया है। इसी तरह फ़ारसी वृत्तांतकार और कुछ आधुनिक इतिहासकार राजपूत शासकों द्वारा गुजरात, मांडू और दिल्ली के सुलतानों के साथ अपनी बेटियों के विवाह के संबंध में मौन हैं, जबकि ख्यातकारों ने यह उल्लेख बिना किसी संकोच और अपराध बोध के किया है।[161] *मुँहता नैणसीरी ख्यात, जोधपुर राज्यरी ख्यात, उदयभाण चांपावतरी ख्यात, मुन्दियाड़री ख्यात, बाँकीदासरी ख्यात, दयालदासरी ख्यात, मारवाड़री ख्यात, जैसलमेररी ख्यात, जसवंतसिंघरी ख्यात* आदि कुछ प्रमुख ख्यातें हैं। यह धारणा निराधार है कि *ख्यात* रचनाएँ राज्याश्रय में ही चारणों द्वारा लिखी गईं। *ख्यातें* व्यक्तिगत रुचि से और राज्याश्रय, दोनों में चारणों के अलावा ब्राह्मण, भंडारी, पंचोली और पुरोहित जातियों के लोगों द्वारा भी लिखी गईं। *पाटनामा वंश* और *ख्यात* का मिला-जुला और इनसे ही विकसित रूप है। *पाटनामा* पाटवी मतलब ज्येष्ठ, बड़ा ग्रन्थ था।[162] इसमें शासकों और उनके समय की प्रसिद्ध घटनाओं का वृत्तांत दिया गया है। इसमें गद्य-पद्य, दोनों हैं। चारण या भाट बही लेकर शासक या यजमान के घर जाता था और उसमें विवरण दर्ज़ कर घर लाता और इसको *पाटनामा,* मतलब ज्येष्ठ ग्रन्थ में दर्ज़ करता था। *पाटनामा* कम मिलते हैं, बहियाँ ही अधिक मिलती हैं। मेवाड़ के शासकों की वंशावली और प्रमुख घटनाएँ *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा* में संकलित हैं। *बही* का विकास मुग़ल इतिहास लेखन की परंपरा के प्रभाव में उत्तर मध्यकाल में हुआ और धीरे-धीरे वंश और ख्यात की कुछ विशेषताएँ इसमें सम्मिलित कर ली गईं। बहियों में उत्तर मध्यकालीन कुछ क्षेत्रीय शासकों के दैनंदिन जीवन का विवरण भी दर्ज़ किया जाता था।

यूरोपीय इतिहासकारों को अपने ग्रीक और रोमन पूर्वजों के स्मृति के रख-रखाव की पद्धति और ढंग पर बहुत गर्व है। मार्क ब्लाख़ ने लिखा है कि ''औरों से भिन्न हमारी सभ्यता अपनी स्मृतियों के प्रति बेहद सतर्क रही है। हर चीज़ ने उसका झुकाव इसी दिशा में किया- ईसाई और शास्त्रीय विरासत दोनों ने। हमारे शुरुआती उस्ताद, ग्रीक-रोमन लोग, इतिहास लिखने वाले लोग थे।''[163] इतिहास की

यही पद्धति बाद में सार्वभौमिक आदर्श और मानक बन गई। मार्क ब्लाख़ ने साफ़ लिखा कि ''ईसाइयत तो इतिहासकारों का धर्म है।''[164] अपने साम्राज्य के अधीन होने कारण विश्व के कई देश-समाजों का आरंभिक इतिहास यूरोपीय इतिहासकारों ने इसी पद्धति के आधार पर लिखा। विडंबना यह है कि आरंभिक अधिकांश उत्साही 'आधुनिक' भारतीय विद्वान् भी यही आदर्श और मानक लेकर अपनी विरासत की पहचान और पड़ताल करने निकल पड़े और यूरोपीय विद्वानों की तरह उन्होंने भी अपने पूर्वजों के स्मृति के रख-रखाव के ढंग को बेतुका और 'अपरिष्कृत' मान लिया। सभी देश-समाजों का इतिहास एक जैसा हो, यह आग्रह सिरे से ही ग़लत था। रवींद्रनाथ ठाकुर ने अपने एक निबंध *भारतवर्षेर इतिहास* में गत सदी आरंभ में ही सचेत कर दिया था कि ''दरअसल इस अंधविश्वास का परित्याग कर दिया जाना चाहिए कि सभी देशों के इतिहास को एक समान होना चाहिए। रॉथ्सचाइल्ड की जीवनी को पढ़कर अपनी धारणाओं को दृढ़ बनाने वाला व्यक्ति जब ईसा मसीह के जीवन के बारे में पढ़ता हुआ अपनी ख़ाता-बहियों और कार्यालय की डायरियों को तलाश करे और अगर वे उसे न मिलें, तो हो सकता है कि वह ईसा मसीह के बारे में बड़ी ख़राब धारणा बना ले और कहे: 'एक ऐसा व्यक्ति जिसकी औक़ात दो कौड़ी की भी नहीं है, भला उसकी जीवनी कैसे हो सकती है?' इसी तरह वे लोग जिन्हें 'भारतीय आधिकारिक अभिलेखागार' में शाही परिवारों की वंशावली और उनकी जय-पराजय के वृत्तांत न मिलें, वे भारतीय इतिहास के बारे में पूरी तरह निराश होकर कह सकते हैं कि 'जहाँ कोई राजनीति ही नहीं है, वहाँ भला इतिहास कैसे हो सकता है?' लेकिन ये धान के खेतों में बैंगन तलाश करने वाले लोग हैं। और जब उन्हें वहाँ बैंगन नहीं मिलते हैं, तो फिर कुण्ठित होकर वे धान को अन्न की एक प्रजाति मानने से ही इनकार कर देते हैं। सभी खेतों में एक-सी फ़सलें नहीं होती हैं। इसलिए जो इस बात को जानता है और किसी खेत विशेष में उसी फ़सल की तलाश करता है, वही वास्तव में बुद्धिमान होता है।''[165] ऋग्वैदिककाल से ही अपनी ख़ास सामाजिक-सांस्कृतिक ज़रूरत के तहत बनी-बढ़ी स्मृति के संरक्षण की भारतीय परंपरा भी है। चक्रीय कालबोध और सनातनता की चेतना से इसका विकास अलग और ख़ास ढंग से हुआ, लेकिन इसमें देशकाल के संदर्भ के अभाव का आरोप निराधार है। यह भी इसमें निरंतर और सघन है और इसकी परंपरा में इसके पर्याप्त साक्ष्य भी हैं। आरंभ में इसका विकास *नाराशंसी, गाथा, आख्यान, पुराण, इतिहास, कथा* आदि के रूप में हुआ और दसवीं सदी के आसपास इसके समानांतर गुजरात सहित उत्तरी-पश्चिमी भारतीय प्रदेशों की क्षेत्रीय सामाजिक-सांस्कृतिक ज़रूरतों के तहत इसका प्राकृत-अपभ्रंश और परवर्ती देश भाषाओं में *रास-रासो, चरित, ख्यात, बही, पाटनामा* आदि

में रूपांतरण हुआ। यह परंपरा भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक ज़रूरतों के अनुसार बनी, इसलिए इतिहास की यूरोपीय ग्रीक-रोमन ईसाई परंपरा से बहुत अलग थी। इसमें इतिहास के ईसाई आदर्श और मानक- युक्तियुक्तता, कार्यकारण संबंध, तथ्य पर निर्भरता, प्रत्यक्ष अनुभव आदि उस तरह से नहीं थे, जिस तरह से सार्वभौमिक और कथित 'आधुनिक' इतिहास में होते हैं। इस परंपरा में एक तो स्मृति के दस्तावेज़ी ठहराव के बजाय उसको निरंतर और जीवंत रखने का आग्रह था, दूसरे, इसमें अतीत के यथार्थ का अमूर्तन इस तरह था कि यह वर्तमान में प्रासंगिक और उपयोगी बना रहे। साहित्यिक प्रथाएँ और कवि-कथा रूढ़ियाँ भी इस परंपरा के दस्तावेज़ों में पर्याप्त थीं। पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर देशज ऐतिहासिक कथा-काव्य इसी परंपरा का देशज और क्षेत्रीय विकास हैं।

संदर्भ और टिप्पणियाँ:

1. रामचंद्र शुक्ल के अनुसार "*पद्मावत* की रचना भारतीय चरित काव्यों की सर्गबद्ध शैली पर न होकर फ़ारसी मसनवियों के ढंग पर हुई है, जिसमें कथा सर्गों या अध्यायों में विस्तार के हिसाब से विभक्त नहीं होती, बराबर चलती रहती है, केवल स्थान-स्थान पर घटनाओं या प्रसंगों का उल्लेख शीर्षक के रूप रहता है। मसनवी के लिए साहित्यिक नियम तो केवल इतना ही समझा जा सकता है कि सारा काव्य एक ही मसनवी छंद में हो, पर परंपरा के अनुसार उसमें कथारंभ में ईश्वर स्तुति, पैग़ंबर की वंदना और उस समय के राजा (शाहे वक़्त) की प्रशंसा होनी चाहिए। ये बातें *पद्मावत, इंद्रावती, मृगावती* इत्यादि में पाई जाती हैं। (रामचंद्र शुक्ल, "जायसी," *जायसी ग्रंथावली,* संपा. रामचंद्र शुक्ल [नयी दिल्ली: लोक भारती प्रकाशन, 2012], 19.) वासुदेवशरण अग्रवाल की राय इससे कुछ हटकर है। उनके अनुसार *पद्मावत* पर फ़ारसी प्रेम काव्य और मसनवी शैली का प्रभाव है, लेकिन वे यह भी मानते हैं कि "संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के प्रबंध काव्यों का जो क्रम प्राप्त-आदर्श रूप विकसित हुआ था, उसी के अनुसार जायसी ने *पद्मावत* का रूप पल्लवित किया।" (वासुदेवशरण अग्रवाल, "प्राक्कथन," *पदमावत* [इलाहाबाद: लोक भारती प्रकाशन, संस्करण 2002], 6.) यह सही बात है कि जायसी सूफ़ी थे, इसलिए मसनवी के रूप विधान से अच्छी तरह अवगत रहे होंगे। उनकी पैठ पारंपरिक भारतीय लोक और साहित्य में थी, इसलिए संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश की कड़वक शैली की प्रबंध परंपरा का भी उनको ज्ञान था। लगता है कि उन्होंने प्रबंध के पारंपरिक भारतीय स्वरूप को मसनवी में ढालने का प्रयास किया। रामचंद्र शुक्ल ने भी यह बात कुछ हद स्वीकार की है। उन्होंने जायसी के *पद्मावत* में प्रयुक्त मसनवी शैली को ईरानी मसनवी शैली से कुछ हटकर माना है। उन्होंने एक जगह लिखा है कि "इश्क़ की मसनवियों के समान *पद्मावत* लोकपक्षशून्य नहीं है।" भारतविद् शेल्डन पोलक ने फ़ारसी के प्रभाव में देशभाषा (हिंदावी, हिंदवी, या हिंदुई) में चौदहवीं-पंद्रहवीं और इसके बाद विकसित प्रेमाख्यान परंपरा को भारतीय परंपरा से अलग माना है। (शेल्डन पोलक, *दि लेंगवेज ऑफ़ गोड्स इन दि वर्ल्ड ऑफ़ मेन* [दिल्ली: परमानेंट

ब्लेक, 2006], 393) अदित्य बहल की राय भी कमोबेश यही है और बहुत हद तक युक्तिसंगत भी है– उनके अनुसार *पद्मावत* का काव्यरूप फ़ारसी और भारतीय, दोनों परंपराओं से अलग 'भारतीय इस्लामी' काव्यरूप है। उन्होंने लिखा है कि– ''ये काव्य फ़ारसी और भारत की पुरानी शास्त्रीय परंपराओं, दोनों से अलग हैं, ये भारतीय इस्लामिक रचनारूप में हैं। दोनों पुराने सिद्धांतों से ये दोहरा अंतर रखते हैं, भले ही महत्त्वपूर्ण विचारों और रूढ़ियों को ये उनसे ले लेते हैं। इस विधा के कवियों ने हिंदवी का प्रयोग किया, यह बोलचाल की स्थानीय भाषा थी, जिसे साहित्य का माध्यम बनाकर उन्होंने ऊँचा स्थान प्रदान किया। उनके काव्यों की प्राचीनतम पांडुलिपियाँ फ़ारसी लिपि में लिखी हुई हैं। उनके प्रेमाख्यान काव्य ऐसे काव्यशास्त्र के द्वारा सूफ़ी संदेश प्रकट करते हैं, जो अंशत: फ़ारसी से, अंशत: संस्कृत और अंशत: क्षेत्रीय परंपराओं से लिया गया है।'' (आदित्य बहल, ''मायावी मृगी: एक हिंदवी सूफ़ी प्रेमाख्यान में कामना और आख्यान,'' *मध्यकालीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास,* संपा. मीनाक्षी खन्ना [हैदराबाद: ओरियंट ब्लेक्स्वॉन प्रा. लि., 2012], 186).

2. गत सदी के छठे-सातवें दशक में सबसे पहले इतिहासकार वी.ए. स्मिथ ने पद्मिनी प्रकरण को मिथ बताया। अलबत्ता उन्होंने इस प्रकरण की ऐतिहासिकता पर अपने संदेह का कोई कारण नहीं दिया। बाद में भारतीय इतिहासकार कालिकारंजन कानूनगो ने विस्तार से इस प्रकरण के जायसी कल्पित होने का दावा किया। उन्होंने वी.ए. स्मिथ के दावे का समर्थन करते हुए यह भी जोड़ा कि ''यह साफ़ है कि भाटों ने रत्नसेन-पद्मिनी का 'क्लू' जायसी के *पद्मावत* से लिया और यह जानकारी दिल्ली दरबार के इतिहासकारों को शाही इतिहास में उपयोग के लिए उपलब्ध करवायी।'' (कालिकारंजन कानूनगो, ''ए क्रिटिकल एनेलेसिस ऑफ़ पद्मिनी लिजेंड,'' *स्टडीज़ इन राजपूत हिस्ट्री* [दिल्ली: एस. चांद एंड कंपनी, 1960], 7.) कुछ हद तक इसका समर्थन राजस्थान के आधुनिक इतिहासकार गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने भी किया। उन्होंने लिखा कि ''कर्नल टॉड ने यह कथा विशेषकर मेवाड़ के भाटों के आधार पर लिखी और भाटों ने उसको *पद्मावत* से लिया।'' (गौरीशंकर ओझा, *उदयपुर राज्य का इतिहास,* भाग-1 [जोधपुर: राजस्थानी ग्रंथागार, 1996-97, प्रथम संस्करण 1928], 190.) फ़िल्म 'पद्मावत' पर हुए विवाद के दौरान फिर कई इतिहासकारों ने यही दावा किया, जिनमें इरफ़ान हबीब, हरबंश मुखिया और रजत दत्ता प्रमुख हैं। इरफ़ान हबीब और हरबंश मुखिया ने अपने विचार नितिन रामपाल की स्टोरी (''पदमावती कंट्रोवर्सी: हिस्ट्री इज एट रिस्क ऑफ़ बीइंग ट्रेप्ड बिटविन लेफ्ट राइट इंटरप्रिटेशन्स ऑफ़ दि पास्ट,'' *फ़र्स्ट पोस्ट,* 21 सितंबर 2019,https://www.firstpost.com/india/padmavati-controversy-history-is-at-risk-of-being-trapped-between-left-right-interpretations-of-the-past-4225695.html) में व्यक्त किए। रजत दत्ता ने इस संबंध में लिखा कि ''ऐतिहासिक पद्मिनी चारण कल्पना और औपनिवेशिक नृवंशविज्ञान के सम्मिश्रण की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति से अधिक कुछ भी नहीं है, उसके निर्माण में इतिहास की कोई भूमिका नहीं है, लेकिन आपको यह समझाने के लिए भी इतिहासकारों की ही आवश्यकता है।'' (रजत दत्ता, ''रानी पद्मिनी: ए क्लासिक केस ऑफ़ हाउ लोर वाज इंसर्टेड इन टू हिस्ट्री,'' *दि वायर,* 1 दिसंबर 2017, https://thewire.in/200992/rani-padmini-classic-case-lore-inserted-history/,https://thewire.in/200992/rani-padmini-classic-case-lore-inserted-history/).

3. देखिए: (i) लोएस डिकिंसन, *एन एसे ऑन दि सिविलाइजेशन ऑफ़ इंडिया, चाइना एंड जापान* (लंदन एवं टोरेंटो: जे. एम. डेन्ट एंड सन्ज, 1913), 15. (ii) हीरानंद शास्त्री, ''प्रोसिडिंग्ज़ एंड ट्रांजिक्शन ऑफ़ दि सिक्स्थ आल इंडिया ओरियंटल कान्फ्रेंस, पटना, दिसंबर,1930'' (पटना: बिहार एंड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी,1933), 1. (ii) टीलहार्ड दि शार्डिन, *दि फिनोमेनन ऑफ़ दि मेन* (न्यूयार्क: हारपरेनियल मॉडर्न थॉट, 1947), 211. (iii) चंद्रकांत गजानन राजे, *बायोग्राफ़ी एंड हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत लिटरेचर* (मुम्बई: बॉम्बे युनिवर्सिटी प्रेस, 1958), 9.

4. रोमिला थापर, *प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास,* हिंदी अनु. आदित्यनारायण सिंह (दिल्ली: ग्रंथ शिल्पी, 2001), 232.

5. वही, 251.

6. वही, 251.

7. विश्वंभर शरण पाठक, *भारत के प्राचीन इतिहासकार,* हिंदी अनु. प्रदीपकांत चौधरी (दिल्ली: ग्रंथ शिल्पी, 2007, मूल अंगेज़ी संस्करण 1966), 11.

8. ए.एल. बाशम, प्रस्तावना, वही, 9.

9. द्विजेंद्रनारायण झा, *प्राचीन भारत* (दिल्ली: ग्रंथ शिल्पी, 2000), 13.

10. भारतीय इतिहास लेखन के दर्शन और परंपरा की अलग पहचान और देशज स्रोतों के आधार पर भारतीय इतिहास लिखने के कई प्रयास हुए हैं। आरंभ में जयचंद विद्यालंकार ने *भारतीय इतिहास की रूपरेखा* (इलाहाबाद: हिंदुस्तानी एकेडेमी, 1933) और पं. भगवद्दत्त ने *भारतवर्ष का बृहत् इतिहास* (अजमेर: वैदिक यंत्रालय, 1951) शीर्षक से आग्रहपूर्वक देशज स्रोतों पर निर्भर प्राचीन भारत के इतिहास लिखे। भारतीय इतिहास दर्शन की पहचान पर एकाग्र कार्यों के रूप में विश्वंभर शरण पाठक, *एंशियन्ट हिस्टोरियन्स ऑफ़ इंडिया* (एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, 1926), ए.के. वार्डर, *इंट्रोडक्शन टू इंडियन हिस्ट्रोग्राफ़ी* (मुम्बई: पोपूलर प्रकाशन, 1972), अरविंद शर्मा, *हिंदुइज्म एंड इट्स सेंस ऑफ़ हिस्ट्री* (दिल्ली: ओक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 2003), सिबेश भट्टाचार्य, *अंडरस्टेंडिंग इतिहास* (शिमला: इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ़ एडवांस्ड स्टडी, 2010) और नंदकिशोर आचार्य, *इतिहास के सवाल* (दिल्ली: सस्ता साहित्य मंडल, 2011) का उल्लेख किया जा सकता है। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी की पहल पर मुनि जिनविजय, राहुल सांकृत्यायन आदि ने भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। क्षेत्रीय इतिहाकारों में गौरीशंकर ओझा, विश्वनाथ रेउ, रघुवीरसिंह, दशरथ शर्मा, अगरचंद नाहटा, श्यामलदास आदि के कार्यों का भी इस लिहाज़ से महत्त्व है। रोमिला थापर के आरंभिक विचारों में भी अब बदलाव हुआ है। *पास्ट बिफोर अस* (रानीखेत: परमानेंट ब्लेक, 2013) में अब कुछ हद तक वे इस सामान्यीकरण का समर्थन नहीं करती हैं कि भारतीयों में इतिहास चेतना नहीं है या उनके अतीत में इससे संबंधित पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री नहीं है।

11. अरविंद शर्मा, ''डिड दि हिंदूज लेक सेंस ऑफ़ हिस्ट्री,'' *न्यूमेन,* 2003 खंड-50, 2 (2003), 190-227.

12. शेल्डन पोलक, ''मीमांसा एंड दि प्रोब्लम ऑफ़ हिस्ट्री इन ट्रेडिशनल इंडिया,'' *जर्नल ऑफ़ अमरीकन ओरियंटल सोसायटी,* खंड-109 (अक्तूबर-दिसंबर, 1989), 603.

13. वही, 603.

14. एम. विंटरनित्ज़, *हिस्ट्री ऑफ़ इंडियन लिटरेचर,* जर्मन से अनु. सुभद्र झा (दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, पुनर्मुद्रण 1985), 2: 88.

15. जेम्स टॉड, *एनल्स एंड एंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान,* संपा. विलियम क्रूक (दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 1971, प्रथम संस्करण 1920),1: 268.

16. शेल्डन पोलक, ''मीमांसा एंड दि प्रोब्लम ऑफ़ हिस्ट्री इन ट्रेडिशनल इंडिया,'' 603

17. अरविंद शर्मा, ''दि कांसेप्ट ऑफ़ साइक्लिकल टाइम इन हिंदुस्तान,'' *टाइम इन इंडियन फिलोसोफ़ी – ए कलेक्शन ऑफ़ एसेज,* संपा. हरिशंकर प्रसाद (दिल्ली: श्रीसदगुरु पब्लिकेशन्स 1992), 210

18. वही, 210.

19. अनंदिता एन. बाल्सलेव, ''टाइम एंड दि हिन्दू एक्सपीरियन्स,'' *रीलिजन एंड टाइम,* संपा अनंदिता एन. बाल्सलेव एवं आर.एन. मोहंती (दिल्ली: लेडन, 1992), 177.

20. नंदकिशोर आचार्य, *इतिहास के सवाल* (दिल्ली: सस्ता साहित्य मंडल, 2011), 10.

21. माइकेल विटज़ेल, ''ऑन इंडियन हिस्टोरियन राइटिंग्ज़– दि रोल ऑफ़ वंशावलीज़,'' *जर्नल ऑफ़ जापानी एसोशियेशन फोर द साउथ एशियन स्टीडीज़,* अंक-2 (1990), 47.

22. ई.एच. कार, *इतिहास क्या है,* 'व्हाट इज हिस्ट्री' का हिंदी अनु. अशोक चक्रधर (दिल्ली: मैकमिलन, 1976, अंग्रेज़ी संस्करण 1961), 19.

23. नंदकिशोर आचार्य, *इतिहास के सवाल,* 10.

24. हजारीप्रसाद द्विवेदी, *हिंदी साहित्य का आदिकाल* (पटना: बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, तृतीय संस्करण 1961, प्रथम संस्करण 1952), 76.

25. विश्वंभर शरण पाठक, *भारत के प्राचीन इतिहासकार,* 52.

26. *अवस्था: पंच कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभि: । आरंभयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमा:।* – धनंजय, *दशरूपक,* 1.19, संपा. वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पनसीकर (मुम्बई: निर्णय सागर प्रेस, द्वितीय संस्करण 1917), 5.

27. *पृथ्वीराजरासो* के बंगाल की रायल एशियाटिक सोसायटी के द्वारा प्रकाशन के साथ ही *रासो* रचनाओं की प्रामाणिकता पर विवाद शुरू हुआ। सबसे पहले डॉ. बूलर ने *पृथीराजप्रबंध* नामक एक रचना की उपलब्धता के आधार पर *पृथ्वीराजरासो* को अप्रामाणिक बताकर इसका प्रकाशन रुकवा दिया। बाद में राजस्थान के कई विद्वान्– मुरारिदान, श्यामलदास, गौरीशंकर ओझा आदि भी इस मुहिम में शामिल हो गए। उन्होंने सभी *रासो* रचनाओं को अप्रामाणिक घोषित कर दिया।

28. *ऋग्वेद* में प्रयुक्त आख्यान संकेतों में से कुछ इस प्रकार हैं– 1. शुन:शेप (1.24), 2. अगस्त्य और लोपामुद्रा (1.179), 3. गृत्समद (2.12), 4. वसिष्ठ और विश्वामित्र (3.53, 7.33 आदि), 5. सोम का अवतरण (3.43), 6. त्र्यरुण और वृशजान (5.2), 7. अग्नि का जन्म (5.11), 8. श्यावाश्व (5.32), 9. बृहस्पति का जन्म (6.71), 10 राजा सुदास (7.18), 11. नहुष (7.95),12. अपाला (8.91), 13. नाभानेदिष्ठ (10.61.62), 14. वृषाकपि (10.86), 15. उर्वशी और पुरुरवा

(10.95), 16. सरमा और पणि (10.108), 17. देवापि और शन्तनु (10.98), 18. नचिकेता (10.135) आदि।

29. *श्रोता बकता ग्याननिधि कथा राम कै गूढ़।* (तुलसीदास ने *मानस* के लिए 'कथा' शब्द कई स्थानों पर प्रयुक्त किया है।) – तुलसीदास, *रामचरितमानस,* संपा. योगेंद्रप्रतापसिंह (इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, 1999), 87.

30. *पुरिस कहाणी हउं कहउं जस पत्थावे पुन्न।* – विद्यापति, *कीर्तिलता,* संपा. वासुदेवशरण अग्रवाल (चिरगाँव (झाँसी): साहित्य सदन, 1962), 20.

31. हजारीप्रसाद द्विवेदी, *हिंदी साहित्य का आदिकाल,* 57.

32. भामह, *काव्यादर्श,* 1/ 25–29, संपा. एवं अनु. सी. शंकरराम शास्त्री (मद्रास: बाल मनोरमा प्रेस), 24.

33. दंडी, *काव्यादर्श,* 1/23–2, अनु. एवं संपा. कुमुदरंजन राय (कलकत्ता: के राय, 176, विवेकानंद रोड), 24.

34. रुद्रट, *काव्यालंकार,* 16/22–23, हिंदी अनु. एवं संपा. सत्यदेव चौधरी (दिल्ली: वासुदेव प्रकाशन, 1965), 424.

35. भगवद्दत्त, *भारतवर्ष का बृहत् इतिहास* (अजमेर: वैदिक यंत्रालय,1951), 3–17.

36. *ऋग्वेद संहिता,* 9.10.3 (दिल्ली: चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान, पुनर्मुद्रित संस्करण 1995), 565.

37. (i) तैत्तिरीय ब्राह्मण, 1.3.2.6 एवं 1.3.2.7, संपा. सुब्रह्मयणम् शर्मा, http://www.sanskritweb.net/yajurveda/#TA.

(ii) *काठकसंहितायाम्,* XVI.5, संपा. श्रीपाद शर्मणा दामोदर भट्ट सुनूना (मुम्बई: स्वाध्याय मंडल, 1943), 154.

38. विश्वंभर शरण पाठक, *भारत के प्राचीन इतिहासकार,* 23.

39. *निघंटुसमन्वितं निरुक्तम्,* IV.6, संपा. लक्ष्मणसरूप (दिल्ली: मोतीलाल एंड बनारसीदास, पुनर्मुद्रण 1998, प्रथम संस्करण 1920–27), 77.

40. *इतिहासमिदं सूक्तम् आहतुर्यास्कभागुरी। कन्येति शौनकस्त्वैद्रं पान्तमित्युत्तरे च ये॥* – *बृहद्देवता,* VI.107, संपा. एवं हिंदी अनु. रामकुमार राय (वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत सिरीज़ ऑफ़िस, 1963), 203.

41. वही, VIII.11, 248.

42. *शतपथब्राह्मणम्,* XIII.4.3.12, संपा. अल्बेर्तेन वेबेरेण (वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत सिरीज़ ऑफ़िस, तृतीय संस्करण 1997), 985.

43. *''छान्दोग्योपनिषत्''*VII.1.1, *उपनिषत्संग्रह,* संपा. पं. जगदीश शास्त्री (दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 1970), 71.

44. *कौटलीय अर्थशास्त्र,* 1.3, संपा. उदयवीर शास्त्री (नई दिल्ली: मेहरचंद लछमनदास पब्लिकेशंस, 2016), 7.

45. *ऋग्वेद संहिता,* 1.106.4, 76; 1.18.9,9; 2.3.2, 151 आदि.

46. *निघंटुसमन्वितं निरुक्तम्,* VIII. 6, 152.

47. *बृहद्देवता,* III. 3, 75.

48. वही, III. 2, 75.

49. *निघंटुसमन्वितं निरुक्तम्,* IX. 9, 162.

50. *मनो न्वा हुवामहे नाराशंसेन सोमेन। पितृणां च मन्मभिः – ऋग्वेद संहिता,* X.57.3, 673.

51. *विश्वेदेवाश्चमसेषून्नीतोऽसुर्होमायोद्यतो रुद्रो हूयमानो वातोऽभ्यावृत्तो नृचक्षाः प्रतिखाय्तो भक्षो भक्ष्यमाणः पितरो नाराशंसाः॥ – शुक्ल यजुर्वेदसंहिता,* VIII. 58, संपा. जगदीशलाल शास्त्री (दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदस, पुनर्मुद्रण, 1999), 152.

52. *रेभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी। सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृतिम् – ऋग्वेद संहिता,* X.85.6, 697.

53. *शतपथब्राह्मणम्,* XI.5.6.8, 866.

54. *तैत्तिरीयारण्यकम्,* 2.9.1, संपा, विनायक गणेश आप्टे (पूनाः आनंद आश्रम मुद्रणालय, 1926) 1: 142.

55. *याज्ञवल्क्यस्मृतिः,* 1/45, संपा. गंगासागर राय (दिल्लीः चौखंभा संस्कृत प्रतिष्ठान, 1998), 20.

56. (i) *प्र कृतान्यृजीषिणः कण्वा इंद्रस्य गाथया। – ऋग्वेद संहिता,* VIII.32.1, 498.
(ii) *अग्निमीळिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम्। – ऋग्वेद संहिता,* 8.71.14, 536.

57. *गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाषभेषजम् – ऋग्वेद संहिता,* I. 43.4, 28.

58. *धारवाकेष्वृजुगाथ शोभसे – ऋग्वेद संहिता,* V.44.5, 308.

59. *इंद्रमिद्गाथिनौ बृहदिंद्रमर्केभिरर्किणः – ऋग्वेद संहिता,* I. 7.1, 4.

60. *ऋग्वेदसंहिता,* X. 85.6, 697.

61. *गाथाभ्यः स्वाहा नाराशंसीभ्यः स्वाहा रैभीभ्यः स्वाहा सर्वस्मै स्वाहा॥ – तैत्तिरीय संहिता,* 7.5.11, संपा. अनंत शास्त्री एवं योगेश्वर शास्त्री (मुंबईः भारत मुद्रणालय, स्वाधाय केंद्र, 1957), 325.

62. *शतपथब्राह्मणम्,* XI. 5.6.8, 866.

63. *अथर्ववेद संहिता,* 15.1.7 (दिल्लीः चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, पुनर्मुद्रित संस्करण 1996), 320.

64. *ऋग्वेद ब्राह्मणा – दि ऐतरेय एंड कौषीतकी,* VII.18, संपा. एवं अनु. आर्थर ब्रेडले कीथ (केम्ब्रिजः हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1920), 308.

65. *ऋग्वेद संहिता,* I. 22–30, 12–16.

66. *ऋग्वेद ब्राह्मणा – दि ऐतरेय एंड कौषीतकी,* 308.

67. *ऐतरेय आरण्यकम्,* II. 3.6, संपा. राजेंद्रलाल मित्र (कलकत्ता, 1926), 238

68. *ऋग्वेद ब्राह्मणा - दि ऐतरेय एंड कौषीतकी,* VIII. 21, 336-38.

69. *आख्यानम् पूर्ववृत्तोक्तिर्युक्तिरर्थविधारणम्* - विश्वनाथ कविराज, *साहित्यदर्पण,* संपा. एवं टीका कृष्णमोहन शास्त्री (बनारस: चौखम्बा संस्कृत सिरीज़, 1955), 428.

70. एस.एन. दासगुप्त, *ए हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत लिटरेचर* (कलकत्ता: युनिवर्सिटी ऑफ़ कलकत्ता, 1962), 1: 43.

71. (i) *निघंटुसमन्वितं निरुक्तम्,* II.10, 49; X.26, 181; XII.10, 209 आदि (यहाँ सभी स्थानों पर पंक्ति *तत्रेतिहासमाचक्षते* प्रयुक्त हुई है।).

(ii) *बृहद्देवता,* VI.46, 126; VII.153, 245; VI.107, 203 आदि।

72. देखिए: टिप्पणी सं. 24.

73. (i) *निघंटुसमन्वितं निरुक्तम्,* II.10, 49; X.26, 181, XII.10, 209 आदि (यहाँ सभी स्थानों पर पंक्ति *तत्रेतिहासमाचक्षते* प्रयुक्त हुई है।).

(ii) *बृहद्देवता,* VI.46, 126; VII.153, 245; VI.107, 203 आदि।

74. *ऋग्वेद ब्राह्मणा – दि ऐतरेय एंड कौषीतकी,* VIII.21, 336-38.

75. *शतपथब्राह्मणम्,* XI.5.1, 855.

76. *ऋग्वेद ब्राह्मणा – दि ऐतरेय एंड कौषीतकी,* III.24, 180.

77. *शतपथब्राह्मणम्,* XI.1.6.9. 832.

78. शुक्राचार्य, *शुक्रनीतिः,* संपा. जगदीशचंद्र मिश्र (वाराणसी: चौखंभा सुरभारती प्रकाशन, 1998) 532.

79. जिनसेन, *हरिवंशपुराण,* 9.198, संपा. पन्नालाल जैन (दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ, 12वाँ संस्करण 2010), 182.

80. *निरुक्तम् (दुर्गाचार्यकृतवृत्ति समेतम्),* 2.10., संपा. काशीनाथ राजवाड़े एवं विनायक गणेश आप्टे (पूना: आनंदाश्रम मुद्रणालय,1926), 1: 161.

81. *निघंटुसमन्वितं निरुक्तम्,* II.10, 49.

82. *स बृहतीं दिशमनु व्यचलत्। तामितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन्॥ इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥ -अथर्ववेद संहिता,* XV.6.1, 320

83. वृहद्देवता, IV.47, 126.

84. कौटलीय अर्थशास्त्र, I.5.14, 11.

85. वही, I.3.2, 7.

86. *इतिहासप्रदीपेन मोहावरणघातिना। लोकगर्भगृहंकृत्स्नंयथावत्संप्रकाशितम् - वेद व्यास, महाभारत* (आदि पर्व), I.1.87, संपा. रामचंद्र शास्त्री (दिल्ली: ओरियंटल बुक्स रीप्रिंट कारपोरेशन, द्वितीय संस्करण 1979), 13.

87. वाक्पतिराज, *गउडवहो,* संपा. एन.जी. सुरु (अहमदाबाद: प्राकृत टेक्सट सोसायटी, 1975), 119.

88. *अथर्ववेद संहिता,* X.7.24, 262.

89. *शतपथब्राह्मणम्,* XIV.6.10.6, 1082.

90. *छान्दोग्योपनिषत्,* VII.1, 71.

91. वेद व्यास, *महाभारत,* आदि पर्व 1/63, I.1.63, 12.

92. (i) अमरसिंह, *अमर कोषः,* संपा. हरगोविंद शास्त्री (वाराणसी: चौखंभा संस्कृत संस्थान, पुनर्मुद्रण 2015), 84.

(ii) *शुक्रनीतिः,* 4.353, 533.

93. विश्वंभर शरण पाठक, *भारत के प्राचीन इतिहासकार,* 26.

94. *तैत्तिरीय आरण्यक,* 2.9,10,11, 1: 142-148.

95. विश्वंभर शरण पाठक, *भारत के प्राचीन इतिहासकार,* 27.

96. कात्यायन, ''अष्टाध्यायीसूत्रपाठः सवार्तिक,'' IV.3.88, *पाणिनीयसूत्रपाठस्य तत्परिशिष्टग्रंथानां च शब्दकोशाः,* संपा. श्रीधर शास्त्री पाठक (पूना: भंडारकर ओरियंटल इंस्टिट्यूट, 1935), 556.

97. *तैत्तिरीय आरण्यक,* 1.6, 23.

98. कात्यायन, ''अष्टाध्यायीसूत्रपाठः सवार्तिक,'' IV.3.87

99. *॥लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम्॥ अधिकृत्य कृते ग्रंथ इत्यत्र आख्यायिकाभ्यो बहुलं लुब्वक्तयः। वासवदत्ता। सुमनोत्तरा। न च भवति भैमरथी॥* - पतंजलि मुनि, *व्याकरण महाभाष्यम्,* संपा. गुरुप्रसाद *शास्त्री* (दिल्ली: प्रतिभा प्रकाशन, पुनर्मुद्रण 1999), 3: 235.

100. *कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना। - ऋग्वेद संहिता,* IX.112.3, 625.

101. विश्वंभर शरण पाठक, *भारत के प्राचीन इतिहासकार,* 28.

102. वही, 29.

103. *अंगिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः। - ऋग्वेद संहिता,* X.14, 636.

104. *छान्दोग्योपनिषत्,* III.3, 47.

105. *गोपथ ब्राह्मण,* 1.39, 2.18, संपा. प्रज्ञादेवी एवं मेधा देवी (दिल्ली: चौखंभा संस्कृत प्रतिष्ठान, चतुर्थ संस्करण 1999) 68, 113 .

106. *छान्दोग्योपनिषत्,* III. 3, 47.

107. वी.एस. सुकथंकर, ''दि भृगुज एंड दि भरतः ए हिस्टोरिकल स्टडी,'' *क्रिटिकल स्टडी ऑफ़ महाभारत* (पूना: वी.एस. सुकथंकर मेमोरियल कमेटी, 1944), 278.

108. विश्वंभर शरण पाठक, *भारत के प्राचीन इतिहासकार,* 30.

109. *वाल्मीकिभर्गवान् कर्ता सम्प्राप्तो यज्ञसंविधाम्। येनेदं चरितं तुभ्यमशेषं संप्रदर्शितम्॥25॥ संनिबद्धं हि श्लोकानां चतुर्विंशत्सहस्रकम्। उपाख्यानशतं चैव भार्गवेण तपस्विना॥26॥ - श्रीमद्वाल्मीकिरामायण,* VII. 94. 26., संपा. से. कुप्पुस्वामि शास्त्री आदि (मद्रास: आर. नारायणस्वामी, द्वितीय संस्करण 1958), 1079.

110. एन.जे. शेंदे, *ऑथरशिप ऑफ़ दि रामायण,* खंड-2 (मुम्बई: जेयूबी-XII, 1943), 19.

111. *मूल गोत्राणि चत्वारि समुत्पन्नानि पार्थिव। / अंगिराः कश्यपश्चैव वसिष्ठो भृगुरेव च॥* - *महाभारत,* XII.296.17, 587.

112. एन.जे. शेंदे, ''ऑथरशिप ऑफ़ दि महाभारत,'' *एनल्स ऑफ़ दि भंडारकर ओरियंटल इंस्टीट्यूट,* खंड-XXIV, 1943, 81.

113. *ऋभुः प्रियव्रतायाह स च भागुरयेऽब्रवीत् ॥43॥ भागुरिः स्तंभमित्राय दधीचाय स चोक्तवान्॥ सारस्वताय तेनोक्तं भृगुस्सारस्वतेन च ॥44॥ भृगुणा पुरुकुत्साय नर्मदायै स चोक्तवान्॥ नर्मदा धृतराष्ट्राय नागाया पूरणाय च ॥45॥ ताभ्यां च नागराजाय प्रोक्तं वासुकये द्विज॥ वासुकिः प्राह वत्साय वत्सश्चाश्वतराय वै॥ कंबलाय च तेनोक्तमेलापुत्राय तेन वै ॥47॥ पातालं समनुप्राप्त ततो वेदशिरा मुनिः॥ प्राप्तवानेतदखिलं स च प्रमतये ददौ ॥48॥ दत्तं प्रमतिना चैतज्जातु कर्णाय धीमते॥ जातुकर्णेन चैवोक्तमन्येषां पुण्यकर्मणाम् ॥49॥* - *श्रीविष्णुमहापुराणं,* 6.8, संपा. राजेंद्रनाथ शर्मणा (दिल्ली: नाग पब्लिशर्स, द्वितीय संस्करण 1985), 293.

114. विश्वंभर शरण पाठक, *भारत के प्राचीन इतिहासकार,* 31.

115. वही, 31.

116. (i) *अथर्ववेद संहिता,* II.5.7, 35.
(ii) *शतपथ ब्राह्मण,* V.3.1.5, 4.4, 17-18.

117. *शतपथ ब्राह्मण,* V.3.1.5, 4.4, 17-18.

118. *बृहद्देवता,* V.124-138, 172-174.

119. *नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं धर्माय सभाचरं नरिष्ठायै भीमलं नर्माय रेभम् हसाय कारिमानन्दाय स्त्रीषखं प्रमदे कुमारी पुत्रं मेधायै रथकारं धैर्याय तक्षाणम्।* - *शुक्ल यजुर्वेद-संहिता,* 30.6, 520.

120. वेद व्यास, *महाभारत,* I.1.2, 3.

121. विश्वंभर शरण पाठक, *भारत के प्राचीन इतिहासकार,* 33.

122. वही, 34.

123. *कौटलीय अर्थशास्त्र,* II.25.2, 94.

124 ''उनके अभिलेखागार और अभिलेखों में इनके अलग संरक्षक हैं। आधिकारिक घोषणाएँ और राज्य-पत्रों को सामूहिक रूप से (नी-लो-पी तू (अथवा 'चा') कहा जाता है; ये अच्छे और बुरे में दर्ज़ किए जाते हैं, और सार्वजनिक आपदा और अच्छे समय में उदाहरण के रूप में सामने आते हैं।'' - युवान च्यांग, *ट्रेवल्स इन इंडिया,* संपा. टी. वाट्टर्स (लंदनः रॉयल एशियाटिक सोसायटी,1904), 154.

125. *पटे वा ताम्रपट्टे वा स्वमुद्रो परिचिह्नितम्। अभिलेख्यात्मनो वंश्यानात्मानं च महीपतिः* - *याज्ञवल्क्यस्मृतिः,* 142.

126. विश्वंभर शरण पाठक, *भारत के प्राचीन इतिहासकार,* 37.

127. वही, 38.

128. हजारीप्रसाद द्विवेदी, *हिंदी साहित्य का आदिकाल* (पटनाः बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, तृतीय संस्करण 1991). 76.

129. *अवस्थाः पंच कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः । आरंभयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमाः ।* –विश्वनाथ, *साहित्यदर्पणः,* 6.71, संपा. कृष्णमोहन शास्त्री (बानरसः चैखंम्बा संस्कृत सिरीज़, द्वितीय संस्करण 1958), 354.

130. रोमिला थापर, *प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास,* 238.

131. देखिएः राजबली पांडेय, *अशोक के अभिलेख* (वाराणसीः ज्ञान मंडल लि. संस्करण 2017).

132. भरत मुनि, *नाट्यशास्त्रम्* (हिंदी अनुवाद सहित), 17.26, अनु. ब्रजवल्लभ मिश्र (दिल्लीः सिद्धार्थ पब्लिकेशन्स, 1997), 497.

133. हेमचंद्र, *प्राकृतव्याकरणम्,* संपा. सागरमल एवं प्रेम सुमन जैन (उदयपुरः आगम अहिंसा-समता एवं प्राकृत संस्थान), 2: 314-393.

134. *राजा कविः कविसमाजं विदधीत। राजनि कवौ सर्वो लोकः कविः स्यात्। स काव्य परीक्षायै सभां कारयेत्। सा षोडशभिः स्तंभैश्चतुर्भिर्द्वारैरष्टभिर्मत्तवारणीभिरुपेता स्यात्। तदनुलग्नम् राज्ञः केलिगृहम्। मध्येसभं चतुःस्तम्भान्तरा हस्तमात्रोत्सेधा समणिभूमिका वेदिका। तस्यां राजासनम्। तस्य चोत्तरतः संस्कृताः कवयो निविशेरन्। बहुभाषाकवित्वे यो यत्राधिकं प्रवीणः स संक्रम्य तत्र तत्रोपविशेत्। ततः परं वेदविद्याविदः प्रामाणिकाः पौराणिकाः स्मार्त्ता भिषजो मौहर्त्तिका अन्येऽपि तथाविधाः। पूर्वेण प्राकृताः कवयः; ततः परं नटनर्तकगायनवादनवाग्जीवनकुशीलवतालावचरा अन्येऽपि तथाविधाः। पश्चिमेनापभ्रंशिनः कवयः; ततः चित्रलेप्यकृतो माणिक्यबंधका वैकटिकाः स्वर्णकारवर्द्धकिलोहकारा अन्येऽपि तथाविधाः। दक्षिणतो भूतभाषाकवयः; ततः परं भुजंगा गणिकाः प्लवकशौभिकजंभक मल्लाः शस्त्रोपजीविनो अन्येऽपि तथाविधाः।* – राजशेखर, *काव्यमीमांसा,* संपा. सी.डी. दलाल (बड़ौदाः ओरियंटल इंस्टिट्यूट, तृतीय संस्करण 1934), 54.

135. देखिएः भोजदेव, *सरस्वतीकंठाभरणम्,* संपा. कामेश्वरनाथ मिश्र (वाराणसीः चौखंभा ओरेंटेलिया,1992)

136. *भा भंजिए बंगा भग्गु कलिंगा तेलंगा रण मुक्कि चले*
मरहट्टा ढीट्ठा लग्गिअ कट्टा सोरट्टा भए पाअ पले
चंपारण कंपा पव्वय झंपा ओत्था ओत्थी जीव हरे
काशीसर राणा किअउ पाअणा विज्ञाहर भण मंतिवरे।

– हेमचंद्राचार्य, *प्राकृतपैंगलम,* संपा. चंद्रमोहन घोष (कलकत्ताः एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल, 1902), 244.

137. हजारीप्रसाद द्विवेदी, *हिंदी साहित्य का आदिकाल,* 29.

138. वही, 31.

139. *राजशेखर्स कर्पूरमंजरी* (हार्वर्ड ओरियंटल सीरीज),1.8, संपा. स्टेन कोनो (दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, द्वितीय संस्करण 1963), 5.

140. विद्यापति, *कीर्तिलता,* 14.

141. *बृहत्कथा* पैशाची प्राकृत में लिखित सबसे प्राचीन कथा रचना है, लेकिन इसकी पांडुलिपि अभी

तक उपलब्ध नहीं हुई है। गुणाढ्य राजा सातवाहन का सभापति था। अब इस रचना के एकाधिक रूपांतरण मिलते हैं। संघदासगणिवाचक की *वसुदेवहिंडी* इसका सबसे प्राचीन जैन रूपांतरण है। विद्वानों ने इसका रचनाकाल भी *बृहत्कथा* की तरह 600 ई. आसपास माना है। इस पर निर्भर अन्य उपलब्ध रचनाओं में *बृहत्कथाश्लोक संग्रह* (बुध स्वामी), *कथा सरित्सागर* (सोमदेव भट्ट) और *बृहत्कथा मंजरी* (क्षेमेंद्र) प्रमुख हैं। (देखिए: संघदासगणिवाचक, *वसुदेवहिंडी,* संपा. श्रीरंजन सूरिदेव (ब्यावर: पंडित रामसरूप शास्त्री चेरिटेबल ट्रस्ट, 1989).

142. वाक्पतिराज, *गउडवहो,* संपा. एन.जी. सुरु (अहमदाबाद: प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, 1975).

143. हेमचंद्र सूरि, *द्वयाश्रयकाव्य,* संपा. ए. काठावटे (बीएसएस, 1921). (इस ग्रंथ का प्राकृत अंश *कुमारपालचरित* के नाम से प्रसिद्ध है। यह लोकप्रिय रचना थी, जिस पर पूर्णकलश गणि ने टीका लिखी। परवर्ती कई ग्रंथकारों ने इसके आधार पर अपनी रचनाएँ कीं।)

144. मुनि जिनविजय, ''प्रास्ताविक वक्तव्य,'' *प्रबंधचिंतामणि,* मेरुतंगाचार्य कृत, हिंदी भाषांतर हजारीप्रसाद द्विवेदी (अहमदाबाद: संचालक–सिंघी जैन ग्रंथमाला, 1940), ट.

145. देखिए: राजशेखर सूरि, *प्रबंधकोश,* संपा. मुनि जिनविजय (शांति निकेतन: अधिष्ठाता–सिंघी जैन विद्यापीठ, 1935).

146. देखिए: मुनि जिनविजय, संपा., *पुरातन प्रबंध संग्रह* (कलकत्ता: अधिष्ठाता–सिंघी जैन विद्यापीठ, 1936).

147. देखिए: रणछोड़ भट्टकृत *राजप्रशस्तिमहाकाव्यम्* (साहित्य संस्थान, राजस्थान, विद्यापीठ, उदयपुर, 1973) और सदाशिव रचित *राजरत्नाकरमहाकाव्य* (राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 2000).

148. हजारीप्रसाद द्विवेदी, *हिंदी साहित्य का आदिकाल,* 43.

149. विश्वंभर शरण पाठक, *भारत के प्राचीन इतिहासकार,* 25.

150. गिरिजाशंकर मिश्र, ''प्राचीन भारतीय इतिहास दर्शन और इतिहास लेखन,'' *इतिहास: स्वरूप और सिद्धांत,* ''संपा. गोविंदचंद्र पांडेय (जयपुर: राजस्थान ग्रंथ अकादमी, दसवाँ संस्करण 2014) 78.

151. हजारीप्रसाद द्विवेदी, *हिंदी साहित्य का आदिकाल,* 66.

152. (i) *श्रीमद्भागवपुराण* में एकाधिक स्थानों पर 'रास' शब्द का प्रयोग (रासक्रीडामनुव्रतै:, 33.2; रासोत्सव:, 33.3; रासपरिश्रांता, 33.11 आदि) मिलता है। – *श्रीभागवतमहापुराणम्,* संपा. राजेंद्रनाथ शर्मणा (दिल्ली: नाग पब्लिशर्स, 1987), 106–107.

(ii) हेमचंद्र, *काव्यानुशानुशानम्,* संपा. महामहोपाध्याय शिवदत्त (मुम्बई: निर्णय सागर प्रेस, 1934), 391.

153. नामवर सिंह, *पृथ्वीराजरासो : भाषा और साहित्य* (नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन, तीसरी आवृत्ति 2011), 240.

154. हरप्रसाद शास्त्री, *प्रीलिमिनरी रिपोर्ट ऑन दि ऑपरेशन इन सर्च ऑफ़ एमएसएस ऑफ़ बार्डिक क्रोनिकल्स* (कलकत्ता: एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल, 1913), 25 (काशीप्रसाद जायसवाल

के *रासो* संबंधी विचार हरप्रसाद शास्त्री ने इस पृष्ठ पर पाद टिप्पणी में उद्धृत किए हैं।).

155. हीरालाल माहेश्वरी, *राजस्थानी भाषा और साहित्य* (कलकत्ता: आधुनिक पुस्तक सदन, 1960), 360.

156. रामचंद्र शुक्ल, *हिंदी साहित्य का इतिहास* (काशी: नागरी प्रचारिणी सभा, 1929), 36.

157. हजारीप्रसाद द्विवेदी, *हिंदी साहित्य का आदिकाल,* 108.

158. जहूर ख़ाँ मेहर, ''प्रस्तावना,'' *मुँहणोत नैणसीरी ख्यात,* संपा. गौरीशंकर हीराचंद ओझा (जोधपुर: महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केंद्र, द्वितीय संस्करण 2010, प्रथम संस्करण 1925), 7.

159. एल.पी. तेस्सीतोरी, *रिपोर्ट्स ऑफ़ द बार्डिक एंड हिस्टोरिकल लिटरेचर ऑफ़ राजपूताना* (कलकत्ता: एशियाटिक सोसायटी, 1917), 1.

160. अहसान रज़ा ख़ान, ''दलपतविलास, नैनसी एंड बाँकीदास: ए स्टडी इन सम आसपेक्ट्स ऑफ़ ख्यात लिटरेचर ऑफ़ राजस्थान,'' *प्रोसिडिंग्ज़ ऑफ़ दि इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस,* खंड-37 (1976), 281.

161. वही, 281-282.

162. मनोहरसिंह राणावत, संपा., ''प्राक्कथन,'' *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* (सीतामऊ: श्री नटनागर शोध संस्थान, 2003), 1: IV.

163. मार्क ब्लाख़, *इतिहास का शिल्प,* हिंदी अनु. बृजबिहारी पांडेय (दिल्ली: ग्रंथ शिल्पी, पुनर्मुद्रण 2013), 21.

164. वही, 21.

165. रबींद्रनाथ टैगोर, *विजन ऑफ़ हिस्ट्री,* अनु. सिबेश भट्टाचार्य एवं सुमिता भट्टाचार्य (शिमला: इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ़ एडवांस्ड स्टडी, 2003), 28.

अध्याय – 2

देशज कथा-काव्य

पद्मिनी-रत्नसेन और गोरा-बादल प्रकरण पर आधारित देशज ऐतिहासिक कथा-काव्य की सोलहवीं से उन्नीसवीं सदी तक विस्तृत और दीर्घकालीन परंपरा है। ये सभी कथा-काव्य प्राचीन भारतीय इतिहास रूपों- *वंश, वंशानुचरित, आख्यान, आख्यायिका, चरित, प्रबंध, कथा* आदि के सरलीकृत क्षेत्रीय देशज रूपों- *चरित, चउपई, रास, रासो, पाटनामा, ख्यात, विगत, कथा, बही* आदि में हैं। *गोरा-बादल कवित्त* (1588 ई. से पूर्व), हेमरतन कृत गोरा-*बादल पदमिणी चउपई* (1588 ई.), *पद्मिनीसमिओ* (1616 ई.), जटमल नाहर कृत *गोरा-बादल कथा* (1623 ई.), लब्धोदय कृत *पद्मिनी चरित्र चौपई* (1649 ई.), दयालदास कृत *राणारासो* (1668-1681 ई.), दलपति विजय कृत *खुम्माणरासो* (1715-1733 ई.) और *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा* (प्रतिलिपि, (1870 ई.) इस परंपरा की अब तक उपलब्ध और ज्ञात रचनाएँ हैं। इनमें से 'रासो' और 'पाटनामा' रचनाओं को छोड़कर शेष सभी चार रचनाएँ इस प्रकरण पर स्वतंत्र रचनाएँ हैं, जबकि 'रासो' और 'पाटनामा' में यह प्रकरण मेवाड़ राजवंश से संबंधित विस्तृत ऐतिहासिक कथा-काव्य में एक अध्याय या खंड है। पद्मिनी-रत्नसेन और गोरा-बादल का कथा बीजक सदियों से राजस्थान-गुजरात सहित उत्तर भारत के लोक जीवन की स्मृति में विद्यमान था और कवि-कथाकारों ने इसके आधार पर ही अपनी रचनाएँ कीं। हेमरतन ने कहा भी है कि- *सुणिउ तिसौ भाष्यौ संबंधि* अर्थात् मैंने जैसा सुना है, वैसा ही संबंध कहा है।[1] लब्धोदय ने भी कहा है कि- *कहस्यू कवित्त कल्लोल सूँ पूर्व कथा संपेख* अर्थात् प्रसन्नतापूर्वक पूर्व कथा को देखकर कहूँगा।[2] हेमरतन ने आगे और लिखा कि- *केलवस्यू साची कथा काणि न आवई काँई* अर्थात् मैं सच्ची कथा कहूँगा। इसमें कोई असत्य नहीं होगा।[3] इन रचनाओं में से तीन रचनाएँ जैन यतियों- हेमरतन, लब्धोदय और दलपति विजय की हैं। जैन यति जैन धार्मिक कर्मकांड के साथ प्राचीन साहित्य का संरक्षण

और नए साहित्य की रचना भी करते थे। वे कथाओं का उपयोग अपने धार्मिक प्रवचनों और उपदेशों को रोचक बनाने के लिए करते थे। इन तीनों रचनाओं के संबंध में ख़ास बात यह है कि इनमें कथा का जैन धार्मिक रूपांतरण नहीं है। यहाँ रचनाकारों का उद्देश्य स्वामिधर्म और सतीत्व का आदर्श प्रस्तुत करने के साथ मनोरंजन है। हेमरतन और लब्धोदय तो सीधे मेवाड़ राजवंश से संबंधित प्रभावशाली जैन श्रावकों के आग्रह पर इनकी रचना में प्रवृत्त हुए। हेमरतन ने *चउपई* की रचना राजस्थान के गोड़वाड़ क्षेत्र के सादड़ी (जिला-पाली, राजस्थान) क़स्बे के तत्कालीन अधिकारी ताराचंद के आग्रह पर की।[4] ताराचंद मेवाड़ के तत्कालीन शासक महाराणा प्रताप के विश्वस्त सहयोगी भामाशाह का भाई था। लब्धोदय ने *चौपई* की रचना महाराणा जगतसिंह की माता जंबुवती के कार्यवाहक प्रधान हंसराज और उसके छोटे भाई भागचंद के अनुरोध पर की।[5] जटमल नाहर जैन श्रावक था और उसने राजस्थान से दूर पंजाब में अपनी रचना की, इसलिए उसकी कथा उक्त तीनों से कुछ हद तक अलग है। शेष तीनों रचनाएँ- *पद्मिनीसमिओ, राणारासो* और *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा* चारण रचनाएँ हैं और इनका प्रयोजन वंश और उससे संबंधित विख्यात घटनाओं का वर्णन है। *पाटनामा* बहुत लोकप्रिय साहित्य रूप नहीं था। *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा* अब तक उपलब्ध ऐसी अपनी तरह की अकेली रचना है। इसमें कथागत नवाचार और रोचकता सबसे अधिक है और इसका गद्य भी बहुत असरदार है। इनकी भाषा सोलहवीं सदी और उसके बाद अपभ्रंश के समानांतर विकसित वह देश भाषा है, जिसे जैन यति-मुनि और चारण कवि, कुछ शैली भेद के साथ इस्तेमाल कर रहे थे। जटमल नाहर की भाषा पर खड़ी बोली का प्रभाव है, जबकि *पाटनामा* की भाषा दक्षिणी-पश्चिमी राजस्थान में प्रयुक्त होनेवाली मेवाड़ी है। पद्मिनी-रत्नसेन के पूर्व प्रचलित कथा बीजक को आधार बनाकर मलिक मुहम्मद जायसी ने भी 1540 ई. में *पद्मावत* की रचना की, जो देशज कथा-काव्यों से अलग है- यह इस कथा बीजक का सूफ़ी धार्मिक रूपांतरण, पल्लवन और विस्तार है। ये सभी देशज कथा-काव्य अपने चरित्र में ग़ैर धार्मिक हैं। अमीर ख़ुसरो सहित सभी मुस्लिम आख्यानकार और जायसी, अलाउद्दीन ख़लजी की विजय को इस्लाम की विजय कहते हैं- जायसी कहता है कि- *पातसाहि गढ चूरा, चितउर भा इस्लाम,* लेकिन इन रचनाओं के रचनाकारों के लिए यह केवल शासक अलाउद्दीन ख़लजी या रत्नसेन की विजय है।

1.

अज्ञात कवि कृत *गोरा-बादल कवित्त* पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण पर आधारित स्वतंत्र रचना है। परवर्ती रचनाओं में आए इसके उद्धरणों और इसकी भाषा शैली के आधार

पर इसको जायसी से पहले की रचना कहा जा सकता है। यह 82 छंदों की एक लघुकाय रचना है, जो प्राचीन साहित्य के विद्वान् स्वर्गीय अगरचंद नाहटा के व्यक्तिगत संग्रह में उपलब्ध है।[6] इस रचना में कोई पुष्पिका लेख नहीं है और इसके रचनाकार ने बीच में भी कहीं अपना नामोल्लेख भी नहीं किया है। ख़ास बात यह है कि इस रचना के कुछ छंदों को पद्मिनी-गोरा-बादल प्रकरण पर काव्य रचना करने वालों- हेमरतन (1588 ई.), लब्धोदय (1649 ई.) और दलपति विजय (1715-1733 ई.) ने अपनी रचनाओं में उद्धृत किया है।[7] *कवित्त* को उद्धृत करते समय आगे के रचनाकारों ने इसमें कुछ फेर-बदल भी किए हैं। इस आधार पर इस रचना को जायसी की *पद्मावत* (1540 ई.) से पुराना माना जा सकता है। मुनि जिनविजय ने भी इस रचना को जायसी से पहले की रचना माना है। उन्होंने हेमरतन के *गोरा-बादल पदमिणी चउपई* में उद्धृत प्राचीन कवित्तों के संबंध में लिखा है कि "इस कथा के अनुसंधान में कुछ प्राचीन कवित्त उद्धृत किए हैं। वे इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं कि पद्मिनी विषयक कथा ज्ञापक, कवित्त आदि राजस्थान में प्राचीनकाल से प्रचलित थे।"[8] इस रचना की भाषा भी शेष सभी पद्मिनी संबंधी ऐतिहासिक कथा-काव्यों से पुरानी और अलग है। एक तो इसमें संयोगात्मकता की संस्कृत-प्राकृत की प्रवृत्ति अभी पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है और दूसरे, इसमें प्राकृत में इस्तेमाल होने वाले दूहा, कवित्त, कुंडलियाँ आदि छंदों का इस्तेमाल हुआ है।[9] इस रचना में बीच में एक स्थान पर उल्लेख है कि- *हेतमदान कवि मल्ल भंणि, उदधि कर माल पखालिय*।[10] इस पंक्ति के आधार पर 'कवि मल्ल' को इसका रचनाकार माना जा सकता है और कुछ आरंभिक विद्वान् यह करते भी रहे हैं[11] लेकिन यही पंक्ति कुछ फेर-बदल के साथ हेमरतन कृत *गोरा-बादल पदमिणी चउपई* में भी आती है। हेमरतन लिखता है कि- *हेतंमदान कवि मल्ल भणि, अमर किति ते वखत गिणि।*[12] इस आधार पर लगता तो यही है कि यह इसके रचनाकार का नाम नहीं है। अकसर रचनाओं में इस तरह के नामोल्लेख आरंभ या अंत में आते हैं, जबकि यह नाम इस रचना के बीच में है। इसके संपादक भँवरलाल नाहटा ने भी इस रचना को 'अज्ञात कर्तृक' रचना ही माना है।[13] *कवित्त* की कथा बहुत संक्षिप्त और सरल है। इसमें ज़्यादा मोड़-पड़ाव नहीं हैं। राजा रत्नसेन इसमें गुहिलोत एवं गोरा-बादल चौहान हैं। गोरा की उम्र इसमें 23 वर्ष है। राघव इसमें एक परदेशी ब्राह्मण है और राजा के अत्यंत निकट है। खेल में एक दिन हार जाने के बाद वह राजा को इसका दंड देने से मना करता है। राजा इससे क्रोधित होकर उसे देश निकाला दे देता है। नाराज़ राघव दिल्ली जाकर अलाउद्दीन को प्रभावित करता है और पद्मिनी पाने के लिए उसको चित्तौड़ पर चढ़ा लाता है। *कवित्त* की ख़ास बात यह है इसमें बादल ही पद्मिनी का रूप धारण कर पालकी में अलाउद्दीन के पास जाता है।

2.

हेमरतन कृत *गोरा-बादल पदमिणी चउपई*, जटमल नाहर कृत *गोरा-बादल कथा* और लब्धोदय कृत *पद्मिनी चरित्र चौपई* में रचना के कवि, समय और स्थान का उल्लेख है। हेमरतन कृत *गोरा-बादल पदमिणी चउपई* की प्रशस्ति में उल्लेख है कि- *संवत सोलइ सइं पणयाल, श्रावण सुदि पंचमी सुविसाल। पुहवी पीठि घणुं परगडी, सबल पुरी सोहइ सादडी।*[14] हेमरतन की *चउपई* राजस्थान में लिखी गई पद्मिनी विषयक रचनाओं में अज्ञात कवि कृत *गोरा-बादल कवित्त* के बाद सबसे प्राचीन है। इसकी रचना जायसी की *पद्मावत* की रचना (1540 ई.) के 48 वर्ष बाद 1588 ई. (वि.सं.1645) में सादड़ी (जिला-पाली, राजस्थान) में हुई, लेकिन यह *पद्मावत* से संबंधित या उससे प्रभावित बिल्कुल नहीं है। *चउपई* की उपलब्ध सबसे प्राचीन प्रति वि.सं.1646 की है, जिसमें इसका रचनाकाल वि.सं. 1645 (1588 ई.) दिया हुआ है और यही प्रति क्षेपक अंशों के बावजूद मूल के सबसे अधिक निकट है। इस प्रति के अलावा इसकी 1604, 1672 एवं 1728 ई. की प्रतियाँ भी मिलती हैं।[15] हेमरतन की यह *चउपई* बहुत लोकप्रिय हुई- राजस्थान, गुजरात, मालवा, पंजाब सहित पश्चिमी भारत में इसकी कई प्रतियाँ हुईं। इसको आधार बनाकर इसके कई परिवर्तित और परिवर्धित संस्करणों की रचना हुईं। लब्धोदय ने 1649 ई. में इसे गेय रूप देकर *पद्मिनी चरित्र चौपई* लिखी। इसी तरह 1703 ई. में भागविजय और उससे पहले संग्राम सूरि ने इसके परिवर्धित संस्करण तैयार किए।[16] *चउपई* में हेमरतन अपने संबंध में मौन है- अलबत्ता उसने इसमें अपने गुरु पदमराज वाचक और आश्रयदाता ताराचंद का उल्लेख किया है। वह इसकी प्रशस्ति में गुरु का उल्लेख इस तरह करता है- *पदमराज वाचक परधान, पुहवी परगट बुद्धिनिधांन। तास सीस सेवक इम भणई, हेमरतन मन हरषइ घणइ॥*[17] हेमरतन ने *चउपई* की रचना राजस्थान के गोड़वाड़ क्षेत्र के सादड़ी क़स्बे के तत्कालीन अधिकारी ताराचंद के आग्रह पर की। ताराचंद मेवाड़ के तत्कालीन शासक महाराणा प्रताप के विश्वस्त सहयोगी भामाशाह का भाई था। हेमरतन जैन यति था, लेकिन यह रचना जैनेतर विषयवस्तु पर आधारित है। जैन यतियों की जैन के साथ जैनेतर विषयों पर भी पर्याप्त रचनाएँ मिलती हैं। इसकी शैली और भाषा पर जैन परंपरा का प्रभाव अवश्य है। हेमरतन अपने समय का प्रसिद्ध यति और कवि था। उसकी *चउपई* से पहले और उसके बाद की और रचनाएँ भी मिलती हैं। उसकी अभी तक उपलब्ध रचनाओं की संख्या नौ हैं, जिनमें से पाँच का ही रचनाकाल ज्ञात है। *चउपई* से पहले उसने *अभयकुमार चउपई* (1579 ई.) और *महिपाल चउपई* (1579 ई.) लिखीं। इसके बाद उसने *शीलवती कथा* (1616 ई.), *रामरासो* (1616 ई.), *सीता चरित, जदंबा बावनी, शनिचर छंद* आदि की रचना कीं।[18] हेमरतन का

रचनाकाल 1579 से 1616 ई. बीच माना जा सकता है। उदयसिंह भटनागर ने भी इसकी पुष्टि की है। उन्होंने उसका जन्म 1554 ई. और निधन 1633 ई. में माना है।[19] *चउपई* में तत्कालीन शासक महाराणा प्रताप का उल्लेख मिलता है– *पृथ्वी परगट राणा प्रताप। प्रतपई दिन–दिन अधिक* अर्थात् धरती पर राणा प्रताप प्रकट हुए हैं और उनका यश दिनों–दिन अधिक फैलता जाता है।[20] *चउपई* का उद्देश्य इतिहास लेखन नहीं है। कवि ने स्पष्ट कहा है कि उसका उद्देश्य साहित्य रचना है, रस उत्पन्न करना है। हेमरतन स्पष्ट उल्लेख करता है कि– *वीरा रस सिणगार रस, हासा रस हित हेज। सामिधरम रस साँभलउ, जिम तन हुइ अति तेज।*[21], लेकिन इसकी विषय वस्तु ऐतिहासिक है और यह पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत करती है। जैन यतियों–मुनियों में प्रसिद्ध चरित्रों और घटनाओं को आधार बनाकर इस तरह की काव्य रचना की परंपरा थी। रचना के 285 वर्ष पूर्व घटित रत्नसेन–पद्मिनी और गोरा–बादल विषयक यह प्रकरण जनसाधारण की स्मृति में पीढ़ी–दर–पीढ़ी चला आता था, इसलिए प्रसिद्ध था। हेमरतन ने इसीलिए इसको आधार बनाकर यह काव्य रचना की। हेमरतन क्योंकि राजस्थान से था और उसको प्रकरण की जानकारी जायसी की तुलना में अधिक और सही थी, इसलिए उसने अपनी कथा को असल से इधर–उधर बहुत नहीं होने दिया। उसकी रचना में इस कारण मोड़–पड़ाव और जटिलताएँ कम हैं, जो जायसी के यहाँ बहुत हैं। प्रकरण की ऐतिहसिकता के लिहाज़ से यह सबसे महत्त्वपूर्ण रचना है और घटना के बहुत आसपास है। मुनि जिनविजय ने इसकी पुष्टि करते हुए लिखा है कि– ''इन सब रचनाओं में से सबसे अधिक संगत और विश्वास करने लायक रचना हेमरतन की प्रस्तुत रचना ही प्रतीत होती है। इसकी रचना में जितने आधारभूत मूल स्रोत हेमरतन को ज्ञात हुए उतने अन्य किसी को नहीं। शायद पद्मिनी के अंत के बारे में उसको कोई विश्वसनीय आधार ज्ञात नहीं हुआ, इसलिए उसने इसका कोई सूचन नहीं किया और अपनी कथा को राजा रत्नसेन की मुक्ति के साथ ही सुखांत रूप में समाप्त कर दिया।''[22] हेमरत्न ने अपने समय में उपलब्ध सभी स्रोतों का इस्तेमाल किया लगता है। उसने *गोरा–बादल कवित्त* के साथ और कुछ रचनाओं के 'प्रसंगोचित' अंश भी *चउपई* में प्रयुक्त किए हैं, जिससे लगता है कि ''हेमरतन से पहले भी ऐसी कई फुटकर कवित्तादि रचनाएँ विद्यमान थीं, जो पद्मिनी की कथा से संबंधित थीं।''[23]

गोरा–बादल कथा की रचना जटमल नाहर ने 1623 ई. (वि.सं.1680) में पंजाब के सिंबला या संबालका गाँव में की।[24] जटमल नाहर गोत्र का जैन श्रावक था और उसके पिता का नाम धर्मसिंह था। जटमल ने रचना का समय, अपनी जाति, गाँव और पिता का नामोल्लेख कथा के अंत में किया है। वह रचना के समय के संबंध में लिखता है– *सौलह सौ आसिसे समै, फागण पूनम मास।* अपने पिता, जाति और

गाँव के संबंध में उसका उल्लेख है कि- *धर्मसी को नंद नाहर जात, जटमल नाऊँ। जिण कही कथा बनाय कै, बीच संबला के गाँव।*[25] जटमल ने अपने समय और अपने क्षेत्र के शासक नासिर ख़ान के पुत्र अली ख़ान न्याजी का भी उल्लेख किया है। वह लिखता है- *राजा जहाँ अलिखाँन, न्याजी, ख़ान नासिर नंद।*[26] जटमल नाहर की *प्रेम विलास-प्रेमलता* (1696 ई.), *बावनी, लाहौर गज़ल* आदि रचनाएँ भी मिलती हैं। इन रचनाओं के अंत:साक्ष्यों के आधार पर जटमल नाहर को लाहौर निवासी माना जा सकता है। *प्रेमलता* में एक स्थान पर यह उल्लेख है कि- *जहाँ वसै जटमल लाहोरी।*[27] जटमल ने *कथा* के अंत में अपने जन्म स्थान के रूप में मोछ गाँव का भी उल्लेख किया है कि- *वसै मोछ अडोल अविचल, सुखी रइयत लोक।*[28] कवि समयसुंदर की रचना *मृगावतीरास* की प्रशस्ति में भी जटमल नाहर का उल्लेख आता है। ऐसा लगता है कि इस गुटके की प्रति जटमल ने की होगी। यह उल्लेख इस तरह है?- *संवत 1675 वर्षे माघ 11 सुदि 11 तिथौ शनिवारे। पतिस्याह नूरदी आदिल जहाँगीर राज्ये लिखतं जटू नाहर नागउरी मोछ ग्रामे सा. कवरपाल सुतसा बालादेवी पासा तोड़ा रंगा गंगा पुस्तिका बापणा गोत्रे। लिखतं जटू पठनार्थ।*[29] आरंभ में जटमल नाहर और उसकी रचना के संबंध में हिंदी में कई भ्रांतियाँ प्रचलित थीं। रॉयल एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता की पत्रिका में प्रकाशित प्रति के आधार पर इस रचना को गद्य रचना मान लिया गया। बाद में पूर्णचंद्र नाहर और नरोत्तम स्वामी ने इस प्रति का अन्य प्रतियों के साथ मिलान कर यह सिद्ध किया कि जटमल ने पद्य में ही कथा की रचना की थी।[30] *गोरा-बादल कथा* के एक पाठकर्ता टीकमसिंह तोमर ने जटमल को मुसलमान और एक दूसरे पाठकर्ता अयोध्याप्रसाद शर्मा ने जाट बताया। आरंभ में विद्वानों को *गोरा-बादल कथा* की एक ही प्रति की जानकारी थी, लेकिन बाद में बीकानेर के ग्रंथागारों में इसकी एकाधिक प्रतियाँ मिल गईं। इन प्रतियों में पर्याप्त पाठांतर भी हैं और इनके शीर्षक भी *गोरा-बादल की वार्ता* और *गोरा-बादल की बात* के रूप में अलग-अलग मिलते हैं। नयी उपलब्ध प्रतियों और जटमल नाहर की अन्य रचनाओं के अंत:साक्ष्यों से यह प्रमाणित हो गया कि जटमल 'नाहर' गोत्रीय जैन श्रावक था।[31] दरअसल वि.सं.1752 (1659 ई.) की एक प्रति में साफ़ 'जटमल श्रावककृत' उल्लेख है।[32] *गोरा-बादल कथा* राजस्थान से बाहर लिखी गई, इसलिए इसका कथा संगठन कुछ अलग हो गया है। लगता है कि जटमल तक प्रकरण की जानकारियाँ कुछ बदलकर पहुँची होगी। उसके अनुसार चित्तौड़ का राजा रत्नसेन चौहान है और वह भाट से पद्मिनी की सराहना सुनकर एक योगी के सहयोग से सिंघल द्वीप चला जाता है।

पद्मिनी चरित्र चौपई जैन यति लब्धोदय की 1649 ई. की रचना है। लब्धोदय

ने 1649-50 ई. में उदयपुर (राजस्थान) में अपने चातुर्मास के दौरान महाराणा जगतसिंह की माता जंबुवती के कार्यवाहक प्रधान हंसराज और उसके छोटे भाई भागचंद के अनुरोध पर इसकी रचना की।[33] पुष्पिका लेख में लब्धोदय ने लिखा है कि- *श्री श्री ज्ञानराज वाचक राणां शिष्य पं. लब्धोद्य विरचिते कटारिया गोत्रीय मंत्रिराज हंसराज मं. श्री श्री भागचंद्रानुरोधेन श्री गोराबादल जयत प्रापणो नाम तृतीय खंडः ॥*[34] *पद्मिनी चरित्र चौपई* लब्धोदय की पहली रचना है और उस समय वह 'गणि' था और उसकी दीक्षा अल्पवय में हुई होगी, जिससे यह अनुमान किया जा सकता है कि उसका जन्म 1623 ई. और दीक्षा 1638 ई. में हुई होगी। *चौपई* के पाठकर्ता भँवरलाल नाहटा का भी यही अनुमान है।[35] लब्धोदय का जन्म का नाम लालचंद था- यह उल्लेख उसने रचना में एकाधिक स्थानों पर किया है। लब्धोदय उसका दीक्षा का नाम था। लब्धोदय की गुरु परंपरा जिन माणिक्य सूरि और उसके शिष्य जिनचंद सूरि से शुरू होती है। *चौपई* में लब्धोदय ने अपनी गुरु परंपरा का उल्लेख किया है।[36] लब्धोदय मेवाड़ क्षेत्र का बहुत प्रतिष्ठित व्यक्ति था। उसकी अपनी शिष्य परंपरा भी लंबी है। *रत्नचूड़-मणिचूड़ चौपाई* में उसने अपनी शिष्य परंपरा का भी उल्लेख किया है।[37] लब्धोदय ने लगभग चालीस वर्ष तक साहित्य सेवा की। उसका विहार क्षेत्र राजस्थान के मेवाड़ क्षेत्र के गोगूंदा, उदयपुर, धुलेरा आदि क़स्बे रहे, इसलिए उसकी अधिकांश रचनाएँ यहीं हुईं। उसने छह बड़े रासो ग्रंथों की रचना की। उसकी छोटी रचनाएँ भी एकाधिक रही होंगी, लेकिन ये मिलती नहीं हैं। उसकी उपलब्ध रचनाओं में *रत्नचूड़ मणिचूड़ चौपाई* (1602 ई.), *मलय सुंदरी चौपाई* (1686 ई.) और *गुणावली चौपाई* (1688 ई.) प्रमुख हैं। *पद्मिनी चरित्र चौपई* लब्धोदय की पहली रचना है, जिसमें उसने गोरा-बादल और पद्मिनी के पारंपरिक कथा-काव्य को 'ढाल' में निबद्ध किया है। उसने रचना के अंत में लिखा है कि- *इति श्री शील प्रभावे पद्मिनी चरित्रे ढाल भाषा बंधे।*[38] यह एक विशेष प्रकार की गेय रचना है- गायन के लिए इसमें देशी राग-रागिनियों का उपयोग हुआ है। इसमें 49 ढाल 816 गाथाएँ हैं। 'ढाल' और 'गाथा' प्राचीन जैन साहित्य में प्रयुक्त होने वाले गेय काव्यरूप हैं। *चौपई* सर्वथा मौलिक रचना नहीं है- यह हेमरतन की *चउपई* पर आधारित और उसका विस्तार है। हेमरतन की *चऊपई* में दोहा-चौपाई की शैली है, जिसको लब्धोदय ने ढाल-गाथा में रूपांतरित कर दिया है। कथा इसमें प्रायः वही है, जो हेमरतन की *चउपई* में है। हेमरतन की *चउपई* के अध्येता उदयसिंह भटनागर का भी मत है कि "लब्धोदय ने हेमरतन की रचना को विशेष रूप प्रदान कर *पद्मिनीचरित्र* नाम से विविध ढ़ालों में ढाला।"[39] लब्धोदय ने *चउपई* की कथा के मोड़-पड़ावों में कोई ख़ास रद्दोबदल नहीं किया। रत्नसेन की पहली पत्नी का नाम उसके अनुसार भी प्रभावती था।[40] पद्मिनी

उलाउद्दीन को सौंपने के लिए लब्धोदय ने प्रभावती के पुत्र वीरभाण को उत्तरदायी माना है।[41] लब्धोदय की रत्नसेन की सिंघल प्रस्थान कथा में अतिरंजना ज़्यादा है।

3.

अज्ञात कवि कृत *पदमिनीसमिओ,* दयालदास कृत *राणारासो* और दलपति विजय कृत *खुम्माणरासो* मेवाड़ राजवंश से संबंधित वंश और आख्यान रचनाएँ हैं। इनमें से *पदमिनीसमिओ* इस प्रकरण पर आधारित स्वतंत्र रचना है, जबकि शेष में पद्मिनी-रत्नसेन संबंधी घटना मेवाड़ संबंधी आख्यान-इतिहास में एक प्रकरण की तरह आयी है। *पद्मिनीसमिओ* पद्मिनी-रत्नसेन और गोरा-बादल प्रकरण पर आधारित एक लघुकाय रचना है। यह रचना ऐसी हस्तलिखित 540 पृष्ठों की पांडुलिपि में प्राप्त हुई है, जिसमें दूसरे ऐतिहासिक छंद और गीत सहित कुछ रचनाएँ भी सम्मिलित हैं।[42] इसमें *चित्तौड़रासो* नाम की एक और रचना भी सम्मिलित है, जो काफ़ी कट-फट गई है। अलबत्ता *पद्मिनीसमिओ* संपूर्ण है और यह इस पांडुलिपि में पृष्ठ 41 से शुरू होकर 78 पर समाप्त होती है। *पद्मिनीसमिओ* में कहीं भी इसके रचनाकार का नामोल्लेख नहीं है। अंत में रचनाकार ने इसका रचना समय वि.सं.1673 (1616 ई.) दिया है। यह उल्लेख इस तरह से है- *संमत सोल तीहोतरै अच्चड़ करन अरप्पिया।*[43] *चित्तौड़रासो* का प्रकाशन शिव मृदुल के संपादन में चंदबरदाई के वंशज किशनदास रैनावत (कोठारिया-भीलवाड़ा-राजस्थान) की रचना के रूप में हुआ। *पदमिनीसमिओ* में रचनाकार का नामोल्लेख तो नहीं है, लेकिन प्राप्त पांडुलिपि में अन्यत्र एक जगह महेशदास का नामोल्लेख है। लिखा गया है कि *इतिश्री कवित्त आसीया महेसदास रा कह्या।*[44] इस पांडुलिपि का प्रतिलिपिकार अमरविजय है और उसने वि.सं.1806-07 (1749-50 ई.) में इसकी उदयपुर में प्रतिलिपि की। उसने यह उल्लेख दो स्थानों पर किया है। एक जगह वह लिखता है- *सम्वत् 1806 चैत्र वदि 5, शुक्रे लिखतं अमरविजै श्रीउदयपुर नगरै।* इसी तरह दूसरी जगह वह लिखता है- *लिखतं अमरविजै श्रीउदैपुर नगरे सं.1806 मागशीर्ष वदि अमावस्या भोम वासरे।*[45] प्रतिलिपिकार ने केवल प्रतिलिपि ही नहीं की, उसने यथावश्यकता इसका पाठ विस्तार भी किया। उसका पाठ विस्तार अतिरिक्त है और यह स्पष्ट तौर पर उसने अलग से हाशिए पर किया है। *पद्मिनीसमिओ* वंश-ख्यात चारण रचना है और इसका रचनाकार कवि कर्म और इतिहास का अच्छा जानकर है। *पद्मिनीसमिओ* की कथा के मोड़-पड़ाव और कुछ छंद जटमल नाहर की *गोरा-बादल कथा* से मिलते-जुलते हैं। यद्यपि *पद्मिनीसमिओ* की रचना का समय 1616 ई. है, जो जटमल नाहर की रचना के समय 1623 ई. से पहले का है, लेकिन कुछ विद्वानों की राय में यह जटमल नाहर के बाद की रचना है[46] और उससे प्रभावित भी है। यह धारणा सही नहीं लगती है- इस रचना की विषय वस्तु, गठन और भाषा

को देखकर लगता है कि यह जटमल नाहर की रचना से पहले की रचना है। इसके रचनाकार ने चित्तौड़ के दुर्ग का भूगोल, युद्ध और इसमें सम्मिलित योद्धाओं के नाम-वंश-गोत्र और घटनाओं का जो सिलेसिलेवार विस्तृत विवरण दिया है, उससे लगता है कि इसके रचनाकार को जटमल नाहर की तुलना में इस प्रकरण की अधिक जानकारी थी और उसने जटमल नाहर से पहले इसकी रचना की। *पद्मिनीसमिओ* का रचनाकार चारण था, यह उसके चारण छंद और कवि कथा-समयों के ज्ञान और अभ्यास से साफ़ लगता है। कवि चित्तौड़-उदयपुर के आस-पास का होने के साथ शायद किसी के आश्रय में भी था, इसलिए इतिहास की तथ्यात्मक जानकारियाँ भी उसको अधिक थीं, जबकि जटमल नाहर पंजाब से था, इसलिए उसने अपनी रचना में इतिहास संबंधी कई त्रुटियाँ की हैं। समिओकार रत्नसिंह के लिए 'चित्तौड़ाधिपति खुम्माण' रत्नसिंह देव' लिखता है,[47] जबकि जटमल उसको चौहानवंशी मानता है, जो इतिहाससम्मत नहीं है। *समिओकार* के अनुसार गोरा और बादल चौहान हैं। उसने बादल को 'संभरिहै नरेस' कहा है।[48] समिओकार ने सिंघलद्वीप के राजा को 'चाइल कुल-वंश' का माना है।[49] ख़ास बात यह है कि यह जानकारी भी *समिओ* के अतिरिक्त और कही नहीं मिलती। चाइल चौहान राजपूतों की 24 शाखाओं में से एक है। अधिक संभावना यही है कि इस रचना की कथा किसी जैन यति-मुनि के माध्यम से जटमल नाहर के पास पंजाब पहुँची होगी और उसने अपनी सीमित जानकारी के आधार पर *गोरा-बादल कथा* की रचना की। जटमल नाहर का आग्रह कथा पर ज़्यादा है, जबकि समिओकार कथा के साथ इतिहास पर भी ध्यान देता है। अलबत्ता वह भी रचना का समापन अन्य चारण रचनाकारों की तरह रत्नसेन की विजय के रूप में करता है। अन्य चारण और जैन रचनाकारों से अलग समिओकार रत्नसेन को अल्लाउद्दीन की क़ैद से मुक्त करवाने और युद्ध जीतने में केवल बादल की भूमिका को निर्णायक मानता है, जबकि दूसरों के यहाँ यह भूमिका गोरा और बादल, दोनों की है। समिओकार अल्लाउद्दीन ख़लजी के छलपूर्वक पद्मिनी देखने दुर्ग में जाने के प्रकरण में एक मौलिक उद्भावना करता है। वह उसको मणिकर्णिका के एक सिद्ध के छद्मवेश में दुर्ग के द्वार पर तीन महीने तक आसन लगाकर बिठाता है।[50] समिओकार की कथा कसी और गठी हुई है। वह व्यर्थ के विवरणों में नहीं जाता, सीधे-सीधे कथा कहता है।

दयालदास कृत *राणारासो* मेवाड़ के शासक राजाओं से संबंधित वंश और प्रशस्तिप्रधान प्रबंध काव्य है।[51] यह इतिहास और कविता का मिलाजुला रूप है। यद्यपि कवि ने इसको 'अतिहास' (इतिहास) और *पृथ्वीराजरासो* के समकक्ष रचना कहा है। वह कहता है- *चंद छंद चहुवान के बोली उपमा विशाल। रानरास अतिहास कूं दोरे न पलत दयाल॥*[52] इसमें मेवाड़ राजवंश की शुरुआत से लगाकर महाराणा अमरसिंह

(1597–1620 ई.) के देहावसान और उनके उत्तराधिकारी कर्णसिंह (1620–1628 ई.) के सत्तारूढ़ होने तक की घटनाओं, युद्धों, संधियों, विवाहों आदि का वर्णन है। बीच-बीच में पुष्पिकाओं में महाराणा 'जगतसिंह चरित' और 'महाराणा जगतसिह वंशावली' आदि प्रयुक्त पदों के आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि दयालदास ने जगतसिंह (1628–1652 ई.) के समय इसको लिखना शुरू किया और उसके निधन के बाद सत्तारूढ़ राजसिंह (1652–1680 ई.) के समय इसको समाप्त किया। कवि ने इसका नामकरण *रानरासो* किया है।[53] दयालदास ब्रह्मभट्ट रावों की लाखणौत शाखा से संबंधित था। लाखणौत राव अपना संबंध पश्चिमी बंगाल से अजमेर और मारोठ में आकर बसे वामनादि पाँच गौड़ क्षत्रिय भाइयों से जोड़ते हैं।[54] इस शाखा में कई कवि और योद्धा हुए हैं। दयालदास जयसिंह के समय (1680–1698 ई.) तक जीवित था। उसने जयसिंह के सत्तारूढ़ होने का उल्लेख किया है। वह लिखता है- *राजस्यंघ के पाट अब बैठे जैस्यंघ रान। धरध्रम्म अवतार ले, मनो भांन के भान।*[55] दयालदास के पिता और उसके समय के शासकों आदि के जीवनकाल के आधार पर उसका जन्म 1643 ई. के आसपास और *राणारासो* की रचना के आरंभ का समय 1668–1673 ई. और इसके समापन का समय 1680–1681 ई. निश्चित किया जा सकता है।[56] यह रचना पारंपरिक अर्थ में केवल वंशावली नहीं है, यह इतिहास का आधार लेकर लिखा गया प्रबंध काव्य है। उस समय ऐसी रचनाओं के 'रासो' नामकरण की प्रथा थी, इसलिए कवि ने ऐसा किया है। ऐतिहासिक पात्र और घटनाएँ यहाँ वर्णन की पारंपरिक रूढ़ियों में घुल-मिलकर आती हैं। कवि अपने समय के कवि-कौशल में पारंगत लगता है। उसे धर्म, शास्त्र, संस्कृत आदि का ज्ञान था और वह इनका अपनी कविता में जमकर उपयोग भी करता है। उदयसिंह से पहले का विवरण उस समय उपलब्ध ख्यातों और लोक में प्रचलित आख्यानों पर निर्भर है और परवर्ती वृत्तांत कवि का समकालीन है, इसलिए इतिहास से मेल खाता है। प्रबंध में रत्नसेन-पद्मिनी प्रकरण विस्तृत है, लेकिन यह विस्तार कथा में प्रकरण के मोड़-पड़ावों की अधिकता के कारण नहीं है। यह विस्तार वस्तु और युद्ध वर्णन की रूढ़ियों के निर्वाह के कारण है। ख़ासतौर पर कवि युद्ध और ऋतु वर्णन की तमाम रूढ़ियों का निर्वाह बहुत मनोयोग से करता है। कथा इसमें बहुत संक्षिप्त और सीधी-सादी है। कवि ने कथा के मोड़-पड़ावों का अपनी ज़रूरत के अनुसार सरलीकरण भी कर दिया है।

खुम्माणरासो जैन यति दलपति विजय की सत्रहवीं सदी के अंत या अठारहवीं सदी के आरंभ (1715–1733 ई.) में हुई रचना है। यह जैन यति की रचना है, लेकिन इसकी निर्मिति और संगठन वंश रचना जैसा है। आरंभ में इस रचना को इसमें वर्णित

खुम्माण[57] के नवीं सदी से संबंधित होने के कारण प्राचीन मान लिया गया।[58] यह उल्लेख लेफ्टिनेंट कर्नल जेम्स टॉड ने किया था[59], इसलिए जार्ज ग्रियर्सन और रामचंद्र शुक्ल सहित सभी परवर्ती इतिहासकार इसको प्राचीन रचना मानते रहे और इस रचना को देखे-समझे बिना ही यह माना जाता रहा कि इसकी रचना नवीं सदी के खुम्माण के समय हुई और इसमें महाराणा प्रताप तक के समय के जो उल्लेख मिलते हैं, वे प्रक्षिप्त हैं।[60] दरअसल यह उपलब्ध सामग्री के आधार पर अठारहवीं सदी में हुई रचना है। स्वंय टॉड ने अपने ग्रंथ *एनल्स एंड एंटीक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान* की भूमिका में यह उल्लेख किया है,[61] जिसकी ओर किसी का ध्यान ही नहीं गया। आरंभ में राजस्थानी साहित्य के विद्वान् अध्येता अगरचंद नाहटा ने भंडारकर ओरियंटल इंस्टिट्यूट, पूना में उपलब्ध प्रति के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि (1) इस ग्रंथ में बप्पा से लगाकर राजसिंह तक का वृत्तांत है, लेकिन राणा खुम्माण का वृत्तांत विस्तार से होने के कारण ग्रंथ का नाम *खुम्माणरासो* रखा गया है, (2) इसकी भाषा राजस्थानी है, (3) इसका रचनाकार तपागच्छीय जैन कवि दौलतविजय है, जिसका दीक्षा से पूर्व का नाम दलपत था और (4) इसका रचनाकाल वि.सं.1730 से 1760 (1673-1703 ई.) के बीच का है।[62] ब्रजमोहन जावलिया ने यति दलपति विजय की खुम्माण विषयक एक और जैन शैली की रचना *खुम्माणरास* या *खुम्माणचरित्र* खोज निकाली।[63] इस रचना में इसका रचना समय 1715 ई. दिया गया है। दलपति विजय ने इस रचना के कुछ अंश *खुम्माणरासो* में यथावत प्रयुक्त किए हैं। अनुमान यह है कि आरंभ में उसने संक्षिप्त प्रबंध लिखा होगा और बाद में इसको *खुम्माणरासो* के रूप में विस्तृत रूप दिया। रचना में एक जगह संग्रामसिंह द्वितीय का भी उल्लेख मिलता है, इसलिए संभावना यही है कि *खुम्माणरासो* के इस वृहद् संस्करण की रचना संग्रामसिंह, द्वितीय की विद्यमानता, 1715 से 1733 ई. के बीच कभी हुई होगी।[64] ग्रंथ का रचनाकार जैन श्वेतांबर सम्प्रदाय की तपागच्छीय यति परंपरा का दलपति विजय है। दलपति विजय ने *खुम्माणरासो* में अपनी गुरु परंपरा का परिचय दिया है। वह लिखता है कि- *त्रिपुरा सगत तणें सुपसाय। रच्यो षंड दूजो कविराय। / तपागच्छ गिरुआ गणधार। / सुमति साधु वंसें सुषकार॥ / पंडित पद्मविजें गुर-राय, पाटोदय गिरि रवि कहवाय। / जयबंधु शांति विजय नो शीश। जंपे दोलत मनह जगीश॥* आशय यह है कि त्रिपुराशक्ति की कृपा से कविराज दलपति विजय ने दूसरे खंड की रचना की। तपागच्छ की गुरु परंपरा में साधु सुमति (विजय) सुख देने वाले थे। उनकी शिष्य परंपरा में गुरुवर पद्मविजय तपागच्छ के पाटोदय रूपी पर्वत पर उदित सूर्य के रूप में प्रसिद्ध हैं। उसमें जयविजय के शिष्य शांतिविजय का शिष्य दौलत विजय यशगाथा कहता है।[65] ग्रंथ में यहाँ-वहाँ दलपति विजय ने अपना नामोल्लेख किया है। कहीं-

कहीं वह अपना नाम दौलतविजय भी लिखता है। यह संभवतया उसका प्रचलित नाम रहा होगा। दलपति विजय ने *खुम्माण* को अपनी रचना की विषयवस्तु बनाया, इसलिए उसने इसका नाम *खुम्माणरासो* रखा। काव्य की विषयवस्तु का विस्तार हो जाने के बावजूद भी उसने इसका नाम *खुम्माणरासो* ही रखा। खुम्माण के इतिहास में विख्यात होने के कारण यह नाम संज्ञा मेवाड़ के परवर्ती शासकों के लिए भी रूढ़ हो गई थी। *खुम्माणरासो* में दो काव्य- खुम्माण संबंधी काव्य और पद्मिनी चरित्र विस्तृत रूप में हैं। पद्मिनी प्रकरण इस रचना में सातवें खंड (गाथांक-3251) से आरंभ होता है। रचनाकार इसके समापन पर लिखता है कि *इति श्री चित्रकोटाधिपति बापा खुमांणान्वये राण रतनसेन पदमणी गोराबादळ संबंध किंचित् पूर्वोक्तं किंचित् ग्रंथाधिकारेण पं. दोलतविजय ग. विरचितायां(अ)धिकार संपूर्णम्॥*[66] खुम्माण की तुलना में इसमें रत्नसेन-पद्मिनी प्रकरण संक्षिप्त है, लेकिन अन्य पद्मिनी विषयक काव्यों की तुलना में यह पर्याप्त विस्तार लिए हुए है। कथा के मोड़-पड़ाव कमोबेश पारंपरिक हैं। उनमें कोई असाधारण नवीनता नहीं है। यहाँ राघवचेतन से रत्नसेन की नाराज़गी पद्मिनी के साथ उसको विलासमग्न देख लेने के कारण है। ख़ास बात यह है कि जैन यति की रचना होने के बावजूद इसमें जैन धार्मिक जैसा कुछ भी नहीं है। अलबत्ता इसकी विषय वस्तु और शृंगार वर्णन पर जैन शैली का प्रभाव है। अन्य कवियों की तरह दलपति विजय ने भी *खुम्माणरासो* में अपने पूर्ववर्ती कवियों के पद्मिनी संबंधी प्रसिद्ध कथनों को यथावत उद्धृत किया है।

4.

चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा मुख्यत: गद्य रचना है, लेकिन इसमें कहीं-कहीं दूहा-कवित्त भी उद्धृत किए गए हैं। इसमें मेवाड़ के शासकों, उनकी रानियों और संततियों और उनके समय की प्रमुख घटनाओं का विस्तृत विवरण है। यह ख्यात और वंश का मिलाजुला रूप है- इसमें वंशावली भी है और उस समय की प्रसिद्ध घटनाओं का वृत्तांत भी है। यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित रचना है। इस ग्रंथ की रचना और प्रतिलिपि कब हुई, यह ज्ञात नहीं है।[67] रचना में इस संबंध में कोई उल्लेख नहीं मिलता। मेवाड़ का पारंपरिक वंशावली लेखक परिवार टोकराँ (नीमच-मध्यप्रदेश) में रहता है, लेकिन उसके पास कोई पाटनामा नहीं है।[68] इस ग्रंथ में मेवाड़ के आरंभ से लगाकर महाराणा शंभुसिंह (1861-1874 ई.) के समय तक का विवरण दर्ज है। सोलहवीं सदी के उत्तरार्ध से पहले तक के विवरण का स्रोत प्रचलित आख्यान और कथा-कहानियाँ हैं और इनको लेखक ने अपनी कल्पना से रोचक रूप दिया है। संभावना यह है कि महाराणा शंभुसिंह के समय कभी बाड़ोदिया गाँव के बड़वा परिवार

ने इसकी प्रतिलिपि की होगी। *पाटनामा* में जो विवरण उपलब्ध है, उससे लगता है कि यह प्रतिलिपि वि.सं.1927 (1870 ई.) में हुई। रचना के पाठ संपादनकर्ता ने भी इसकी पुष्टि करते हुए लिखा है कि ''यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वि.सं.1927 में यह प्रतिलिपि तैयार की गयी थी।''[69] इस वंशावली-ख्यात को *पाटनामा* इसलिए कहा जाता है, क्योंकि यह पाटवी अर्थात् ज्येष्ठ और मूल ग्रंथ है, जो घर पर रहता है। वंशावली लेखक अपने यजमान के यहाँ एक हथबही लेकर जाता है और इसमें दर्ज़ विवरण को घर लौटकर *पाटनामा* में उतारता है। *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा* एक अद्भुत प्रकार की गद्य रचना है, जिसमें इतिहास, आख्यान और गल्प का असाधारण मिश्रण है। यहाँ अपने आख्यान कौशल से लेखक इतिहास को गल्प में बदलता है और सच्चाई बयान करने वाले की अपनी पारंपरिक पेशेवर पहचान के चलते गल्प को तिथियों, संख्याओं आदि के उल्लेख से इतिहास का रूप देता है। इतिहास, आख्यान और गल्प की एक-दूसरे में आवाजाही यहाँ इतनी निरंतर और सघन है कि इसमें इनकी अलग पहचान संभव ही नहीं है। यह रचना लोक धारणाओं और विश्वासों का भंडार है। अकसर कथित 'आधुनिक' इतिहास में इनकी सजग अनदेखी होती है, लेकिन यह पारंपरिक इतिहास का ऐसा रूप है, जिसमें घटनाओं का लोक प्रचलित रूप मौजूद है। यह रचना इतिहास के साथ, उसका जो लोक में बनता-बिगड़ता है, उसका जीवंत दस्तावेज़ है। इस रचना में समरसिंह (1273-1302 ई.) के बाद सत्तारूढ़ रावल रत्नसेन और उसके पद्मिनी से विवाह और अलाउद्दीन ख़लजी से पद्मिनी के लिए युद्ध का बहुत विस्तृत और रोचक वृत्तांत है। *पाटनामा* के अनुसार रत्नसिंह समरसिंह का सबसे छोटा पुत्र था, लेकिन उससे बड़े कुंभकर्ण की एक अँगुली कटने से देह खंडित थी और उससे दूसरा बड़ा करमसेन सत्तारूढ़ होने के योग्य नहीं था, इसलिए वह सत्तारूढ़ हुआ। गौरीशंकर ओझा के अनुसार ''कुभकर्ण के वंश में नेपाल के राजाओं का होना माना जाता है।''[70]

5.

पद्मावत देशज पारंपरिक कथा-काव्यों से अलग रचना है, जिसकी रचना मलिक मुहम्मद जायसी ने 1540 ई. में जायस (उत्तर प्रदेश) में की। कवि ने इसकी रचना का समय 1520 ई. माना है। कवि ने लिखा है कि- *सन नव सै सत्ताइस अहा। कथा अरंभ कवि बैन कहा* अर्थात् कथा के आरंभिक वचन सन् 927 हि. (1520 ई.) में कहे।[71] कवि ने ग्रंथारंभ में अपने समय के शासक (शाहे वक़्त) शेरशाह सूरि का उल्लेख किया है[72], जिसका शासनकाल 1540 ई. में आरंभ होता है। रामचंद्र शुक्ल ने इस आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि कवि ने 1520 ई. में *पद्मावत* की शुरुआत

की होगी और 1540 ई. में उसने इसे पूरा किया होगा।[73] अंत:साक्ष्यों के अनुसार जायसी का जन्म 1492 ई. के आसपास हुआ। बाबर के समय लिखी गई फ़ारसी रचना *आख़िरी क़लाम* (1528 ई.) में अपने जन्म के समय के संबंध ने जायसी ने लिखा है कि- *भा अवतार मोर नव सदी। तीस बरस ऊपर कवि बदी।*[74] पहली पंक्ति में 'नव सदी' का अर्थ 900 हिजरी (1492 ई. के आसपास) है और दूसरी पंक्ति का अर्थ रामचंद्र शुक्ल के अनुसार ''तीस वर्ष पीछे जायसी अच्छी कविता करने लगे।''[75] जायसी जायस (रायबरेली-उत्तरप्रदेश) के रहने वाले थे, लेकिन यह सर्वथा निर्विवाद नहीं है। उन्होंने अपने जन्म स्थान का उल्लेख करते हुए *पद्मावत* में लिखा है कि- *जायस नगर धरम अस्थानु। तहँवा यह कवि कीन्ह बखानू।।*[76] इस पंक्ति में 'तहँवा यह' के 'तहाँ आई' पाठ भेद के आधार पर जार्ज ग्रियर्सन सहित कुछ विद्वानों ने यह अनुमान लगाया है कि जायसी वहाँ कहीं ओर से आकर बसे थे।[77] जायसी ने *पद्मावत* में अपने चार मित्रों- युसुफ मलिक, सालार कादिम, सलोने मियाँ और बड़े शेख़ व उल्लेख किया है।[78] जायसी ने यह भी उल्लेख किया है कि उनकी एक ही आँख थी। उन्होंने लिखा है कि *एक नयन कवि मुहम्मद गुनी*।[79] इसी तरह उन्होंने यह भी उल्लेख किया है कि उन्हें बाएँ कान से कम सुनाई पड़ता था। इस संबंध में उनकी पंक्ति है कि *मुहम्मद बाईं दिसि तजा। एक सरबन, एक आँखि।*[80] जायस में प्रचलित जनश्रुतियों के अनुसार वे अपने समय के बड़े सिद्ध और चमत्कारी फ़कीर थे।

जायसी सूफ़ी संत निज़ामुद्दीन ओलिया की शिष्य परंपरा में थे और उन्होंने अपने दो गुरुओं का नामोल्लेख किया है। *पद्मावत* और *अखरावट* में उन्होंने मनिकपुर के महीउद्दीन (शेख़ मोहिदी) और शैयद अशरफ़ जहाँगीर का अपने गुरु के रूप में उल्लेख किया है। *पद्मावत* में उन्होंने दोनों का नामोल्लेख करते हुए लिखा है कि- *सैयद असरफ पीर पियारा। जेइ मोहिं दीन्ह पंथ उजियारा। गुरु मोहिदी सेवक मैं सेवा। चलै उताइल जेहि कर खेवा।।* [81] रामचंद्र शुक्ल का अनुमान है कि उनके दीक्षा गुरु तो सैयद अशरफ़ जहाँगीर थे, लेकिन बाद में उन्होंने महीउद्दीन की भी सेवा की।[82] जायसी उस समय के गोरखपंथी, रसायनी, वेदांती साधु-संतों के निकट संपर्क में रहे होंगे। *पद्मावत* में इसके पर्याप्त साक्ष्य मिलते हैं।

पद्मावत सूफ़ी प्रेमकथात्मक महाकाव्य है। प्राकृत और अपभ्रंश की जो प्रबंध परंपरा थी, जायसी की *पद्मावत* उससे कुछ हटकर है। उस पर फ़ारसी प्रेमकाव्य और मसनवी शैली का गहरा प्रभाव है।[83] इस्लाम के सूफ़ी मत में भक्त अपने को आशिक और भगवान को माशूक समझकर उसको पाने के लिए साधना करता है। सूफ़ी यह भी मानते हैं कि भक्त और भगवान के संबंध में गुरु के मार्गदर्शन और सहयोग की

भी निर्णायक भूमिका होती है और शैतान (माया) इसमें बाधा बनता है। संबंधों का यही रूपक *पद्मावत* में जायसी ने इस्तेमाल किया है। यहाँ रत्नसेन-पद्मावती की कथा में पद्मावती ईश्वर, रत्नसेन भक्त, तोता गुरु और राघवचेतन शैतान या माया है। जायसी इसी रूपक को ध्यान में रखकर विस्तृत कथा-काव्य की रचना करते हैं और अंत में इसका साफ़ संकेत भी करते हैं। कथा लोक में पहले से प्रचलित है, सभी चरित्र भी प्रसिद्ध हैं। जायसी अपने प्रयोजन के लिए इनको अपनी कल्पना से पुनर्निर्मित करते हैं। जायसी का इतिहास के साथ व्यवहार लोक के इतिहास के साथ बर्ताव जैसा है। इतिहास यहाँ गल्प की तरह आता है- जायसी इसको अपनी तरह से कहते हैं। जायसी ने अंत में कहा भी है कि *कोई न रहा, जग रही कहानी।*[83] सही भी है- बीत जाने के बाद तो इतिहास भी गल्प, कहानी ही है। जायसी उच्च कोटि के कवि भी हैं, इसलिए रूपक के निर्वाह में भी उनका कवि निरंतर सजग और सक्रिय रहता है। यह अवश्य है कि इसमें कभी जायसी का सूफ़ी, तो कभी उनका कवि, ऊपर-नीचे होते रहते हैं। विजयदेवनारायण साही तो जायसी के कवि पर इतने मुग्ध हुए कि उन्होंने जायसी को कवि और उनके सूफ़ी को 'कुजात' कह दिया।[84] यह प्रबंध संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश की भारतीय चरित प्रबंध परंपरा में नहीं है। अलबता इसका कुछ प्रभाव इस पर ज़रूर है। यह ईरान के फ़ारसी कवियों की प्रसिद्ध और लोकप्रिय काव्यरूप 'मसनवी' के ढाँचे में है। इसमें मसनवी के ढाँचे के अनुसार कथा के आरंभ में ईश्वर स्तुति और पैग़ंबर की वंदना है। आरंभ में ही कवि शाहे वक़्त शेरशाह सूरि की सराहना भी करता है। भाषा इसकी अवधी है और इसमें दोहा-चौपाई वाली कड़वक शैली का प्रयोग हुआ है, जो प्राकृत और अपभ्रंश की प्रबंध रचनाओं में पहले से प्रयुक्त हो रही थी। यही पद्धति बाद में तुलसी के *रामचरितमानस* में भी इस्तेमाल की गई।[85] जायसी बहुज्ञ थे- सूफ़ी दर्शन के अलावा उनको भारतीय दर्शन, भूगोल, महाकाव्य, मिथक, हठयोग, ज्योतिष, आयुर्वेद, शगुन विचार, योगिनी चक्र, भोजन आदि की भी विस्तृत जानकारी थी। जायसी ने अपनी बहुज्ञता का उपयोग *पद्मावत* में विस्तार से किया है। भारतीय और उसमें भी अवध के लोक जीवन की उनकी समझ भी बहुत गहरी थी और *पद्मावत* में इसका निवेश भी बहुत गहरा और व्यापक है।

रत्नसेन-पद्मिनी संबंधी कथा बीजक पर निर्भर देशज ऐतिहासिक कथा-काव्यों की सोलहवीं से उन्नीसवीं सदी तक विस्तृत परंपरा में पाठ, प्रयोजन और शैली का वैविध्य है और जायसी के *पद्मावत* को छोड़कर ये सभी इतिहास और आख्यान की अपनी भारतीय परंपरा का स्वाभाविक देशज विकास हैं। चारण और धार्मिक परंपरा और निर्मिति में होने के कारण इतिहासकारों ने इनको महत्त्व नहीं दिया, जबकि इन

रचनाओं में अपने ढंग के इतिहास का आग्रह भी बराबर है और इसको कथा विस्तार और कवि-कथा समयों के बीच भी अलग से पहचाना जा सकता है। अज्ञात कवि कृत *गोरा-बादल कवित्त* इनमें से सबसे प्राचीन (1588 ई. से पूर्व) है। हेमरत्न, लब्धोदय और दलपति विजय की रचनाएँ जैन साहित्यिक परंपरा और निर्मिति में हैं, लेकिन इनमें धार्मिक आग्रह नहीं है। ख़ास बात यह है कि ये रचनाएँ परंपरा में हैं- पूर्ववर्ती रचना का आगे की रचनाओं में विकास और पल्लवन है। *पद्मिनीसमिओ, खुम्माणरासो, राणारासो और चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा* वंश परंपरा की रचनाएँ हैं, जिनमें वंश का विवरण और प्रशस्ति पारंपरिक कवि-कथा समयों के विन्यास में है, इसलिए आधुनिक संस्कार के इतिहासकारों को विचित्र लगता है। इनमें से कुछ ऐसी रचनाएँ हैं, जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होकर निरंतरता में हैं। ठहरे या मृत दस्तावेज़ पर निर्भर करने वाले विद्वानों के लिए यह निरंतरता भी अजूबे की तरह है। दरअसल यह अतीत की स्मृति के वर्तमान में व्यवहार का ख़ास भारतीय ढंग है। यह ढंग अतीत को ठहरने या मरने नहीं देता, उसको जीवंत और निरंतर रखता है। इन में से कुछ रचनाओं में उनके रचनाकारों के नाम, उनकी रचना का समय और स्थान का विवरण नहीं हैं। दरअसल एक तो परंपरा से भारतीय रचनाकार ही रचना में अपनी अस्मिता को लेकर बहुत आग्रही नहीं हैं और दूसरे, यहाँ कृति को रचना के बाद मुक्त करने की परंपरा रही है। यहाँ किसी रचना के समान विषय-वस्तुवाली या उससे हटकर या उसको उद्धृत करते हुए अपनी अलग रचना करने की स्वतंत्रता हमेशा रही है। यह भी सही है कि *पद्मावत* इसी कथा बीजक पर निर्भर रचना है, लेकिन इसकी कथा योजना सूफ़ी दार्शनिक रूपक पर एकाग्र है और देशज ऐतिहासिक कथा-काव्य रचनाएँ इससे संबंधित या प्रभावित नहीं हैं।

संदर्भ और टिप्पणियाँ:

1. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चउपई,* संपा. उदयसिंह भटनागर (जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, द्वितीय आवृत्ति 1997), 98.
2. लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* संपा. भँवरलाल नाहटा (बीकानेर: सादुल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, 1960), 1.
3. *हेमरतन, गोरा-बादल पदमिणी चउपई,* 25.
4. *स्वामि धरम धुरि भामौ साह, बइरी बंसी विधूसण राह।*
   तसु लघु भाई तारचंद, अवनि जाणि अवतिरिउ इंद॥
   ध्रू जिस अविचल पालइ धरा, सित्रु सबै कीधा पाधरा।
   तसु आदेश लही सुभ भाउ, सभा सहित पामियौ पसाउ॥ - वही, 98.

5. *तसु बंधव डुंगरसी ते पण दीपतौ रे, भागचंद कुल भाण।*
विनयवंत गुण्वंत सुभागी सेहरु रे, वड़दाता गुण गाय॥
तसु आग्रह करी संवत सतर अस्तोतरे रे, चैत्री पूनम शनिवार।
नवरस सहित सरस संबंध रच्यो रे, निज बुद्धि ने अनुसार ॥

– लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 1.

6. *गोरा बादलरा कवित्त* (पांडुलिपि), ग्रंथांक-7499 (बीकानेर: अभय जैन ग्रंथ भंडार-अगरचंद नाहटा संग्रह).

7. हेमरतन ने कवित्त के छंद सं. 22 को पृ. 21, छंद सं. 23-26 को पृ. 22 एवं 23, छंद सं. 31 को पृ. 25, छंद सं. 31 पृ. 25, छंद स. 35 को पृ. 31, छंद सं. 35 को पृ. 26, छंद स. 42 एवं 43 को पृ. 37 एवं 43, छंद सं. 52 को पृ. 60, छंद सं. 58 को पृ. 67, छंद सं. 59-60 को पृ. 68, और छंद सं. 77-78 को पृ. 611 पर उद्धृत किया है। लब्धोदय ने *कवित्त* के छंद सं. 22 को पृ. 28 एवं छंद सं. 41 को पृ. 58 पर उद्धृत किया है। इसी तरह दलपति विजय ने *कवित्त* के छंद सं. 41 को पृ. 129 (छंद सं. 2634) छंद सं. 58 को पृ.130 (छंद सं. 2635) और छंद सं. 77-78 को पृ. 170 (छंद सं. 2845) पर उद्धृत किया है। देखिए: *लब्धोदय, पद्मिनी चरित्र चौपई* (अज्ञात कवि कृत *गोरा-बादल कवित्त,* जटमल नाहर कृत *गोरा-बादल कथा* (1623 ई.) और दलपति विजय कृत *खुम्माणरासो* (1673-1713 ई.) (केवल पद्मिनी प्रकरण) इसमें सम्मिलित हैं), संपा. भँवरलाल नाहटा (बीकानेर: सादुल रिसर्च इंस्टीट्यूट, 1960).

8. मुनि जिनविजय, ''गोरा-बादल पदमिणी चउपई विषयक एक पर्यालोचन,'' हेमरतन कृत *गोरा-बादल चरित्र* (जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, तृतीय आवृत्ति 1997), 19.

9. ''गोरा-बादल कवित्त'', *पदमिनी चरित्र चौपई,* संपा. भँवरलाल नाहटा (बीकानेर: सादुल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, 1960), 109.

10. *गोरा-बादल कवित्त,* 113.

11. उदयसिंह भटनागर, संपा., ''प्रस्तावना,'' हेमरत कृत *गोरा-बादल पदमिणी चउपई,* 3.

12. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चउपई,* 21.

13. भँवरलाल नाहटा, संपा, ''प्रस्तावना,'' *पद्मिनी चरित्र चउपई,* संपा. (बीकानेर: सादुल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, 1960), 19.

14. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चउपई,* 98.

15. *गोरा-बादल पदमिणी चउपई* की रविशंकर देराश्री, बनेड़ा (भीलवाड़ा-राजस्थान) के पास सबसे प्राचीन प्रति (ग्रंथांक-4365) थी, जिसमें रचनाकाल 1588 ई. (वि.सं.1645) और लिपिकाल 1589 ई. (वि.सं. 1646) दिया गया है। मुनि जिनविजय के संकलन में इसकी 1604 ई. और 1672 ई. की दो प्रतियाँ थीं। ये सभी प्रतियाँ अब राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर में हैं। 1728 ई. में ढाका में लिपिबद्ध इसकी एक प्रति वर्धमान ज्ञान मंदिर, उदयपुर में है। इसी तरह गुजरात विद्या सभा, अहमदाबाद, भंडारकर ओरियंटल इंस्टीट्यूट, पूना, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी और माणिक्य

ग्रंथ भंडार, भींडर (उदयपुर) में भी इसकी प्रतियाँ सुरक्षित हैं। श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर में भी इसकी एकाधिक प्रतियाँ (ग्रंथांक-3598 और 3633) उपलब्ध हैं।

16. उदयसिंह भटनागर, संपा., ''भूमिका,'' *गोरा-बादल पदमिणी चउपई,* 3.

17. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चउपई,* 98.

18. उदयसिंह भटनागर, ''भूमिका,'' वही, 20.

19. वही, 21.

20. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चउपई, 9*8.

21. वही, 95.

22. मुनि जिनविजय, संपा., ''गोरा-बादल पदमिणी चउपई विषयक एक पर्यालोचन,'' *गोरा-बादल चरित्र* (जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, तृतीय संस्करण 2000), 22.

23. वही, 19.

24. जटमल नाहर की *गोरा-बादल कथा* की कई प्रतिलिपियाँ मिली हैं। इसकी सबसे अधिक प्रतिलिपियाँ बीकानेर के अभय जैन ग्रंथालय (ग्रंथांक- 3594, 3595, 3596, 3597,7303 और 7304) में हैं। राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (12580-4) और राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर (4157-3, 3855-32 और 4366) में भी इसकी प्रतियाँ उपलब्ध हैं।

25. जटमल नाहर, *गोरा-बादल कथा* (लब्धोदयकृत *पद्मिनी चरित्र चौपई* के साथ प्रकाशित), संपा. भँवरलाल नाहटा, (बीकानेर: सादुल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, 1960), 208.

26. वही, 208.

27. *प्रेम विलास* (वि.सं.1753) का यह अंश भँवरलाल नाहटा ने *गोरा-बादल कथा* की प्रस्तावना में पृ. 38 पर उद्धृत किया है।

28. जटमल नाहर, ''गोरा-बादल कथा'', 208

29. भँवरलाल नाहटा, ''प्रस्तावना,'' वही, 39.

30. वही, 38.

31. अगरचंद नाहटा, ''क्या कवि जटमल नाहर मुसलमान या जाट थे ?,'' *नागरी प्रचारिणी पत्रिका,* वर्ष- 61-62, अंक 40 (1956), 300.

32. जटमल नाहर, *गोरा बादलरी कथा* (पांडुलिपि), प्रति सं. 7304 (बीकानेर: श्री अभय जैन ग्रंथालय), 9.

33. लब्धोदय की *पद्मिनी चरित्र चौपई* की पांडुलिपि की प्रतियाँ आगम अहिंसा प्राकृत संस्थान, उदयपुर (ग्रंथांक-751), अगरचंद भैरोंदान सेठिया ग्रंथ भंडार, बीकानेर (ग्रथांक-75 और 340) आदि कई ग्रंथागारों में मिलती हैं।

34. लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* संपा. भँवरलाल नाहटा (बीकानेर: सादुल रिसर्च इंस्टीट्यूट,1960), 107.

35. भँवरलाल नाहटा, ''प्रस्तावना,'' वही, 21.

36. *श्रीजिनमाणिक्य सूरि प्रथम शिष्य परगड़ा रे, विनय समुद्र बड़गात।/ तास सीस वड़वखती जगमइं वाचियईरे, / श्री हर्षविशाल विख्यात॥ तास विनेय चवद विद्या गुण सागरु रे, वाणी सरस विलास॥ / जस नामी पाठिक श्रीज्ञानसमुद्रजी रे परगट तेज प्रकाश॥/ साध शिरोमणि सकल विद्या करि सोभतारे, / वाचक श्री ज्ञानराज।/ तास प्रसादे शील तणा गुण संथुण्या रे, / श्री लब्धोदय हित काज॥* - लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 108.

37. *शिष्य रत्नसुंदर गणिवाचक, कुशलसिंह मन हरषइ जी।/ सांवलदास शिष्य सोभागी, पास दत्त पतसिद्ध जी।/ खेतसी परमानंद रूपचंद, वांची ने जस लिद्ध जी।*-भँवरलाल नाहटा, ''प्रस्तावना,'' लब्धोदय कृत *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 35.

38. लब्धोदय, वही, 107.

39. उदयसिंह भटनागर, ''भूमिका,'' हेमरतन कृत *गोरा-बादल पदमिणी चउपई,* 3

40. लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 3.

41. वही, 64.

42. *पद्मिनीसमिओ* की पांडुलिपि राजस्थान के भीलवाड़ा निवासी इतिहासकार गौरीशंकर असावा के स्वामित्व में है। यह *परिषद पत्रिका,* वर्ष-14, अंक-3, अक्तूबर 1974 में प्रकाशित हुई थी। अब यह ब्रजेंद्रकुमार सिंहल के संपादन में यह वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली से भी 2017 प्रकाशित हुई है।

43. ''पद्मिनीसमिओ,'' *रानी पद्मिनी,* संपा. ब्रजेंद्रकुमार सिंहल (नयी दिल्लीः वाणी प्रकाशन, 2017), 151.

44. ''पदमिनीसमिओ,'' 18.

45. *चित्तौड़ रासो-पद्मिनीसमिओ* (गौरीशंकर असावा के स्वामित्ववाली मूल पांडुलिपि),112.

46. ब्रजेंद्रकुमार सिंहल, *रानी पद्मिनी-चित्तौड़ का प्रथम जौहर* (नयी दिल्लीः वाणी प्रकाशन, 2017), 34.

47. ''पद्मिनीसमिओ'', 99.

48. वही, 130.

49. वही, 107.

50. वही, 123.

51. *राणारासो* की प्रतिलिपि गिलूंड (जिला चित्तौड़गढ़, राजस्थान) के निवासी फुलेरिया मालियों के राव दयाराम के पास सुरक्षित है। बाद में इसकी प्रतियाँ करवायी गयीं। इन प्रतियों में से एक अब राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर (ग्रंथांक-2748) में उपलब्ध है।

52. दयालदास, *राणारासो,* संपा. ब्रजमोहन जावलिया, (उदयपुरः महाराणा प्रताप स्मारक समिति, 2007), 85.

53. वही, 85.

54. ब्रजमोहन जावलिया, संपा., ''भूमिका,'' दयालदास कृत *राणारासो,* 11.

55. दयालदास, *राणारासो,* 86.

56. ब्रजमोहन जावलिया, संपा., ''भूमिका,'' दयालदास कृत *राणारासो,* 18.

57. गौरीशंकर ओझा के अनुसार प्राचीन शिलालेखों में वि.सं. 810 से 1000 (753 से 943 ई.) तक तीन 'खुम्माण' नामक राजाओं को होना पाया जाता है। भाटों की ख्यातों के आधार पर कर्नल जेम्स टॉड ने इन तीनों को एक ही मान लिया। उसने अब्बासिया ख़ानदान के बग़दाद के ख़लीफ़ा अल्मामूं के जिस चित्तौड़ अभियान का ज़िक्र किया है, वह ओझा के अनुसार खुम्माण (दूसरे) के समय हुआ। (गौरीशंकर ओझा, *उदयपुर राज्य का इतिहास* (जोधपुर: राजस्थानी ग्रंथागार, 1996-97, प्रथम संस्करण 1928), 1: 118.)

58. *खुम्माणरासो* की दो पांडुलिपियाँ, एक भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट, पूना और दूसरी रॉयल एशियाटिक सोसायटी, लंदन में हैं।

59. जेम्स टॉड, *एनल्स एंड एंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान,* संपा. विलियम क्रूक (दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 1971, लंदन: प्र.सं.1920), 1: 291.

60. (i) जार्ज अब्राहम गियर्सन, *दि मोडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ़ हिंदुस्तान* (कलकत्ता: दि एशियाटिक सोसायटी, 1889), 1.

(ii) रामचंद्र शुक्ल, *हिंदी साहित्य का इतिहास* (काशी नागरी प्रचारिणी सभा, 1929), 32.

61. जेम्स टॉड, *एनल्स एंड एंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान,* 1: VIII.

62. अगरचंद नाहटा, ''खुम्माणरासो का रचनाकाल और रचयिता,'' *नागरी प्रचारिणी पत्रिका,* अंक-1, खंड-20. 1944, https://sufinama.org/poets/nagari-pracharini-patrika/articles.

63. ब्रजमोहन जावलिया, संपा., दलपति विजय कृत *खुम्माणरासो* (उदयपुर: महाराणा प्रताप स्मारक समिति, 2001), 1:V.

64. ब्रजमोहन जावलिया, संपा. दलपति विजय कृत खुम्माणरासो, 1: 147

65. दलपति विजय, *खुम्माणरासो,* 2: 226.

66. दलपति विजय, *खुम्माणरासो,* 3: 177.

67. *चित्तौड़-उदयपुर पाटानामा* की मूल पांडुलिपि बाड़ोदिया (मध्यप्रदेश) निवासी दलीचंद बड़वा के पास है। इसकी ज़िरोक्स प्रति श्रीनटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ और प्रताप शोध संस्थान, उदयपुर (फ़ोलियो- 91ए-131ए) में संग्रहीत है।

68. मनोहरसिंह राणावत, ''आमुख,'' *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* (सीतामऊ: श्री नटनागर शोध संस्थान, 2003), 1: VIII.

69. मनोहरसिंह राणावत, वही, 1: VIII.

70. गौरीशंकर ओझा, *उदयपुर राज्य का इतिहास,* 1: 179.

71. मलिक मुहम्मद जायसी, ''पद्मावत,'' *जायसी ग्रंथावली,* संपा. रामचंद्र शुक्ल (नयी दिल्ली: लोक भारती प्रकाशन, 2012), 196.

72. वही, 192.

73. रामचंद्र शुक्ल, संपा., ''जायसी,'' *जायसी ग्रंथावली,* 21.

74. मलिक मुहम्मद जायसी, ''आख़िरी कलाम,'' *जायसी ग्रंथावली,* 497.

75. रामचंद्र शुक्ल, संपा. ''*जायसी,''* *जायसी ग्रंथावली,* 21.

76. मलिक मुहम्मद जायसी, ''पद्मावत,'' 195.

77. जार्ज ए. ग्रियर्सन, *दि मोडर्न वरनाक्यूलर लिट्रेचर ऑफ़ हिंदुस्तान,* 15.

78. जायसी, ''पद्मावत,'' 195.

79. वही, 195.

80. वही, ''पद्मावत,'' 21.

81. वही, ''पद्मावत,'' 194–95.

82. रामचंद्र शुक्ल, संपा., ''जायसी,'' *जायसी ग्रंथावली,* 24.

83. मलिक मुहम्म्द जायसी, ''पद्मावत,'' 462.

84. विजयदेवनारायण साही, *जायसी* (इलाहाबाद: हिंदुस्तानी एकेडेमी, चतुर्थ संस्करण 2017), 4.

85. रामचंद्र शक्ल के अनुसार ''*पद्मावत* की रचना भारतीय चरित काव्यों की सर्गबद्ध शैली पर न होकर फ़ारसी मसनवियों के ढंग पर हुई है, जिसमें कथा सर्गों या अध्यायों में विस्तार के हिसाब से विभक्त नहीं होती, बराबर चलती रहती है, केवल स्थान–स्थान पर घटनाओं या प्रसंगों का उल्लेख शीर्षक के रूप रहता है। मसनवी के लिए साहित्यिक नियम तो केवल इतना ही समझा जा सकता है कि सारा काव्य एक ही मसनवी छंद हो, पर परंपरा के अनुसार उसमें कथारंभ में ईश्वर स्तुति, पैगंबर की वंदना और उस समय के राजा (शाहे वक़्त) की प्रशंसा होनी चाहिए। ये बातें *पद्मावत, इंद्रावती मृगावती* इत्यादि में पाई जाती है। (''जायसी,'' *जायसी ग्रंथावली,* 19.) वासुदेवशरण अग्रवाल की राय इससे कुछ हटकर है। उनके अनुसार *पद्मावत* पर फ़ारसी प्रेम काव्य और मसनवी शैली का प्रभाव है, लेकिन वे यह भी मानते है कि ''संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के प्रबंध काव्यों का जो क्रम प्राप्त–आदर्श रूप विकसित हुआ था, उसी के अनुसार जायसी ने *पद्मावत* का रूप पल्लवित किया।'' (''प्राक्कथन,'' *पदमावत,* इलाहाबाद: लोक भारती प्रकाशन, संस्करण 2000, 6.) यह सही बात है कि जायसी सबसे पहले सूफ़ी थे और मसनवी के रूप विधान से अच्छी तरह अवगत रहे होंगे। उनकी पैठ पारंपरिक भारतीय लोक और साहित्य में थी, इसलिए संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश की कड़वक शैली की प्रबंध परंपरा का भी उनको ज्ञान रहा था। लगता है कि उन्होंने प्रबंध के पारंपरिक भारतीय स्वरूप को मसनवी में ढालने का प्रयास किया। रामचंद्र शुक्ल ने भी यह बात कुछ हद स्वीकार की है। उन्होंने जायसी के *पद्मावत* में प्रयुक्त मसनवी शैली को ईरानी मसनवी शैली से कुछ हटकर माना है। उन्होंने एक जगह लिखा है कि ''इश्क़ की मसनवियों के समान *पद्मावत* लोकपक्षशून्य नहीं है।''

अध्याय - 3

कथा स्रोत

पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण पर एकाग्र ऐतिहासिक कथा-काव्यों का कथा स्रोत एक ही कथा बीजक पर निर्भर है और इनकी कथा योजना समान कथा बीजक के बावजूद एक-दूसरे से भिन्न और ख़ास तरह की है। पद्मिनी-रत्नसेन का कथा बीजक सदियों से गुजरात सहित उत्तरी-पश्चिमी भारत के कुछ इलाकों में प्रचलित था और इसके आधार पर कथा-काव्य रचना की यहाँ सुदीर्घ परंपरा रही है। बीसवीं सदी के छठे-सातवें दशक में जायसी के *पद्मावत* सहित पारंपरिक देशज कथा-काव्यों पर विचार की शुरुआत हुई और अधिकांश विद्वानों ने पद्मिनी-रत्नसेन कथा को कल्पित मानकर इसकी सर्वप्रथम कल्पना का श्रेय मलिक मुहम्मद जायसी को दे दिया। जायसी पारंपरिक देशज कथा-काव्यों के लेखकों की तुलना में अधिक ऊँची कोटि के कवि और विद्वान् थे और जार्ज ग्रियर्सन, रामचंद्र शुक्ल, वासुदेवशरण अग्रवाल और विजयदेवनारायण साही जैसे बड़े विद्वानों की निगाह में चढ़ चुके थे, इसलिए यह धारणा मान्य भी हो गई। वस्तुस्थिति यह है कि जायसी से बहुत पहले ही यह कथा बीजक लोक स्मृति में था और अधिक संभावना यही है कि जायसी ने भी अपनी कथा इस पारंपरिक कथा बीजक को आधार बनाकर गढ़ी होगी।

1.

रत्नसेन-पद्मिनी का कथा बीजक सदियों से लोक और साहित्य में 'मान्य सच' की तरह था, लेकिन इस वृत्तांत पर 1928 ई. में राजस्थान के आधुनिक इतिहासकार गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने अपने *उदयपुर राज्य का इतिहास* में विचार किया और सबसे पहले यह निष्कर्ष निकाला कि भाटों ने यह कथा जायसी से ली है।[1] इससे पहले, तीन प्रमुख आधुनिक इतिहासकार- लेफ्टिनेंट कर्नल जेम्स टॉड, श्यामलदास और वी.ए. स्मिथ इस प्रकरण पर विचार कर चुके थे, लेकिन उन्होंने इस संबंध

में कहीं भी जायसी का उल्लेख इस कथा की सर्वप्रथम कल्पना करने वाले के रूप में नहीं किया। जेम्स टॉड (1829 ई.) ने अपने राजस्थान के पहले आधुनिक इतिहास *एनल्स एंड एंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान* में इस प्रकरण पर विचार किया, लेकिन प्रकरण के लिए वे राजस्थान के *खुम्माणरासो* सहित कई पारंपरिक ऐतिहासिक कथा-काव्यों के ऋणी थे। उन्होंने इसकी भूमिका में यह उल्लेख भी किया।[2] प्रकरण की उनकी कथा कमोबेश वही है, जो जायसी के *पद्मावत* में है, लेकिन यह तय है कि टॉड को जायसी के *पद्मावत* के संबंध में कोई जानकारी नहीं थी और जिन पारंपरिक स्रोतों से उन्होंने यह कथा ली, उनका भी जायसी से कोई संबंध नहीं था। टॉड के अनुसार "चित्तौड़ का अल्पवयस्क राजा लखमसी 1275 ई. में सत्तारूढ़ हुआ। उसका चाचा भीमसी उसकी अल्प अवस्था में शासन करता था, जिसने श्रीलंका के शासक हमीरसिंह चौहान की पुत्री पद्मिनी से विवाह किया।"[3] यदि टॉड को पारंपरिक कथा-काव्यों की जायसी की *पद्मावत* पर निर्भरता के संबंध में जानकारी होती, तो वे रत्नसिंह की जगह भीमसिह उल्लेख नहीं करते। ख़ास बात यह है कि अधिकांश पारंपरिक स्रोतों में पद्मिनी से विवाह कर अलाउद्दीन के साथ युद्ध करने वाले शासक के रूप में रत्नसिंह का ही उल्लेख है। दरअसल टॉड के समय तक मेवाड़ की कोई मान्य वंशावली उपलब्ध नहीं थी और वे इस संबंध में वह काफ़ी उलझन में थे, इसलिए उन्होंने रत्नसिंह की जगह भीमसिंह लिख दिया। उनके इतिहास में ऐसी और कई त्रुटियाँ रह गई हैं।

टॉड के बाद श्यामलदास (1886 ई.) ने *वीरविनोद* नामक मेवाड़ का इतिहास लिखा और वे भी रत्नसिंह के बाद शुरू हुई रावल और राणा शाखा के शासकों को लेकर उलझन में थे, लेकिन समरसिंह के बाद सतारूढ़ रत्नसिंह की अलाउद्दीन ख़लजी से पद्मिनी को लेकर होने वाली लड़ाई को लेकर आश्वस्त थे। उन्होंने भी जायसी का उल्लेख इसकी सर्वप्रथम कल्पना करने वाले के रूप में नहीं किया। उन्होंने भी जायसी के *पद्मावत* की गणना 'बड़वा-भाटों और ख्याति की पोथियों' के साथ की। प्रकरण का उनका विवरण हेमरतन और अन्य पारंपरिक कथा-काव्यों के साथ अबुल फ़ज़ल आदि की फ़ारसी तवारीख़ों पर निर्भर है। ख़ास बात यह है कि वे पद्मावती के सिंघल द्वीप की होने पर भी अविश्वास नहीं करते। उनके अनुसार "पद्मावती की बाबत कई क़िस्से मशहूर हैं। बाजे लोगों का कौल है कि रावल रत्नसिंह की महारानी सिंघल द्वीप के राजा की बेटी थी। सौ ख़ैर इसका तो कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि बहुत समय से सिंघल- उक्त टापू के राजा सूर्यवंशी थे, और उनके साथ चित्तौड़ के राजा का संबंध होना संभव था; लेकिन मलिक मुहम्मद जायसी वग़ैरह ने कई बड़े-बड़े ख़याली क़िस्से गड़ लिए हैं, जिनसे हमको कुछ प्रयोजन नहीं।"[4] उनका प्रकरण

का 'अस्ल' विवरण इस तरह है कि रावल रत्नसिंह की ''महाराणी के पीहर का रघुनाथ नामी एक मुलाज़िम जो बड़ा जादूगर था, और रावल रत्नसिंह के पास रहकर अनेक चेटक दिखलाने से उसको ख़ुश करता था, एक बार रावल रत्नसिंह की नाराज़गी के सबब मुल्क से निकाल दिया गया। उसने दिल्ली पहुँचकर अपनी जादूगरी के ज़रीए से बादशाह अलाउद्दीन ख़ल्जी के दर्बार में रहने का दरजह हासिल किया, और वह ख़िल्वत के रूप में बादशाह के सामने राणी पद्मावती के रूप की तारीफ़ करने लगा। बादशाह भी चित्तौड़ पर चढ़ाई करने का बहाना ढूँढ ही रहा था, रावल रत्नसिंह को लिख भेजा, कि राणी पद्मिनी को यहाँ भेज दो, यह पढ़कर रत्नसिंह मारे क्रोध के आग का पुतला बन गया, और बादशाह के उस पत्र का बहुत ही सख़्त जवाब लिख भेजा, कि जिसको सुनकर अलाउद्दीन बड़ा गुस्से में आया। एक तो मज़हबी तअस्सुब, दूसरे रणथम्भोर व शिवाणा वग़ैरह क़िलों की फ़तह का गुरूर, तीसरे घर के भेदू रघुनाथ जादूगर का जा मिलना, और चौथे क़िला चित्तौड़ दक्षिण हिन्दुस्तान पर बादशाही कबज़े के लिये रोक होना, वग़ैरह कारणों से विक्रमी 1359 (हि. 702 = ई. 1302) में बादशाह ने बड़ी भारी फ़ौज के साथ दिल्ली से रवानह होकर क़िले चित्तौड़ को आ घेरा। रावल रत्नसिंह ने लड़ाई की ख़ूब तय्यारियाँ कर ली थीं, और मज़हबी जोश के सबब से इलाक़ेदारों के सिवा दूसरे राजपूत भी हज़ारों एकट्ठे हो गये थे। रावल के आदमी क़िले से बाहिर निकलकर बादशाही सेना पर हमले करने लगे, जिसमें दोनों ओर के हज़ारों बहादुर मारे गये, आख़रकार बादशाह ने रावल के पास यह पैग़ाम भेजा, कि हमको थोड़े से आदमियों के साथ क़िले में आने दो, कि जिससे हमारी बात रह जावे, फिर हम चले जायेंगे। रावल रत्नसिंह ने इस बात को क़ुबूल करके सौ-दो-सौ आदमियों सहित बादशाह को क़िले में आने दिया, लेकिन बादशाह दग़ाबाज़ी का दाव खेलने के लिए अपनी नाराज़गी को छिपाकर रत्नसिंह की तारीफ़ करने लगा, और विदा होते समय जब रत्नसिंह उसे पहुँचाने को निकला, तो उसका हाथ पकड़कर मुहब्बत की बातें करता हुआ आगे को ले चला। रावल उसके धोखे में आकर दुश्मनी को भूल गया, और क़िले के दर्वाज़े से कुछ कदम आगे निकल गया, जहाँ कि बादशाह की फ़ौज खड़ी थी। बादशाह तुरन्त ही रावल को गिरफ़्तार करके डेरों में ले आया। क़िलेवालों ने बहुतेरी कोशिश की, कि रावल को छुड़ा लेवें, लेकिन बादशाह ने उनको यही जवाब दिया, कि बग़ैर पद्मावती देने के रत्नसिंह का छुटकारा न होगा, तब तमाम राजपूतों ने एकत्र होकर अपनी अपनी बुद्धि के मुवाफ़िक सलाह ज़ाहिर की, लेकिन पद्मावती के भाई गोरा व बादल ने कहा, कि बादशाह ने हमारे साथ दग़ाबाज़ी की है, इसलिये हमको भी चाहिये, कि उसी तरह अपने मालिक को निकाल लावें; और इस बात को सबों ने क़ुबूल किया।

तब इन दोनों बहादुरों ने बादशाह से कहलाया, कि पद्मिनी इस शर्त पर आप के पास आती है कि पहिले वह रत्नसिंह से आख़री मुलाक़ात कर लेवे। बादशाह ने क़स्म खाकर इस बात को क़ुबूल किया इस पर गोरा व बादल ने एक महाजान और 800 डोलियों में शस्त्र रखकर हर एक डोली के उठाने के लिये सोलह-सोलह बहादुर राजपूतों को कहारों के भेस में मुकर्रर कर दिया, और थोड़ी सी जमइयत लेकर आप भी उन डोलियों के साथ हो लिये। बादशाह की इज़ाजत से ये सब लोग पहिले रावल रत्नसिंह के पास पहुँचे; जनानह बन्दोबस्त देखकर शाही मुलाज़िम हट गये। किसी को दग़ाबाज़ी का ख़्याल न हुआ, और इस हलचल में राजपूत लोगों ने रत्नसिंह को घोड़े पर सवार करके बादशाही लश्कर से बाहिर निकाला। जब वह बहादुर लश्कर से निकल गया, तो वे बनावटी कहार याने बहादुर राजपूत डोलियों से अपने-अपने शस्त्र निकालकर लड़ाई के लिये तय्यार हो गये। बादशाह ने भी अपनी दग़ाबाज़ी से राजपूतों की दग़ाबाज़ी को बढ़ी हुई देखकर अफ़सोस के साथ फ़ौज को लड़ाई का हुक्म दिया। गोरा व बादल, दोनों भाई अपने साथी बहादुर राजपूतों समेत मरते-मारते क़िले में पहुँच गये। कई एक लोग कहते हैं, कि गोरा रास्ते में मारा गया, और बादल क़िले में पहुँचा; और बाजों का कौल है, कि दोनों इस लड़ाई में मारे गये, परन्तु तात्पर्य यह कि इन ख़ैरख़्वाह राजपूतों ने अपने मालिक को बादशाह की क़ैद से छुड़ाकर क़िले में पहुँचा दिया, और फिर लड़ाई शुरू हो गई। आख़रकार हिज्री 703 मुहर्रम (विक्रमी 1660 भाद्रपद = ई. 1303 अगिस्ट) में अलाउद्दीन ने चारों तरफ़ से क़िले पर सख़्त हमला किया। इस वक़्त रावल रत्नसिंह ने सामान की कमी के सबब लकड़ियों का एक बड़ा ढेर चुनकर राणी पद्मिनी और अपने जनानख़ानह की कुल स्त्रियों तथा राजपूतों की औरतों को लकड़ियों पर बिठाकर आग लगा दी। हज़ारों औरत व बच्चों के आग में जल मरने से राजपूतों ने जोश में आकर क़िले के दर्वाज़े खोल दिये, और रावल रत्नसिंह मय हज़ार राजपूतों के बड़ी बहादुरी के साथ लड़कर मारा गया। बादशाह ने भी नाराज़ होकर क़त्ले आम का हुक्म दे दिया; और 6 महीना 7 दिन तक लड़ाई रहकर हिज्री 703 ता. 3 मुहर्रम (विक्रमी 1660 भाद्रपद शुक्ल 4 = ई.1303 ता.18 अगिस्ट) को बादशाह ने क़िला फ़तह कर लिया। इसके बाद बादशाह अपने बेटे ख़िज़रख़ां को क़िला सौंपकर वापस लौट गया।''[5]
स्पष्ट है कि श्यामलदास ने जायसी को पूर्व में प्रचलित इस प्रकरण को कल्पना से विस्तार देने वालों के साथ स्मरण तो किया, लेकिन उन्होंने उसे इस प्रकरण की पहली बार कल्पना का श्रेय नहीं दिया। उन्होंने यह भी कहीं नहीं लिखा कि चारण-भाटों और अन्य आख्यानकारों ने इसको जायसी से लिया। श्यामलदास प्रकरण की ऐतिहासिकता पर संदेह नहीं करते, अलबत्ता वे जायसी आदि द्वारा किए गए इसके अतिरंजित विस्तार

को इतिहास नहीं मानते। श्यामलदास ने राघवचेतन के लिए 'रघुनाथ' संज्ञा प्रयुक्त की है, जबकि जायसी सहित सभी पारंपरिक स्रोतों में उसका नाम राघवचेतन है। इससे यह लगता है कि श्यामलदास के ध्यान में इन ज्ञात स्रोतों के साथ कोई और स्रोत भी रहा होगा। टॉड के बाद *ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया* में वी.ए. स्मिथ (1921 ई.) ने लगभग टॉड को दोहराते हुए इस प्रकरण का संक्षिप्त विवरण दिया। ख़ास बात यह है कि उन्होंने भी कहीं भी इस कथा की कल्पना के लिए जायसी को श्रेय नहीं दिया। उन्होंने लिखा कि "1303 के चित्तौड़ के साके के विषय में राजपूत भाटों द्वारा अंकित की गई रोमांटिक जनश्रुतियों को टॉड के पन्नों में पढ़ा जा सकता है। उन्हें गंभीर इतिहास (sober history) नहीं माना जा सकता है और यहाँ उद्धृत किए जाने के लिहाज़ से वे बहुत लंबी भी हैं। लेकिन इस बात में कोई संदेह नहीं है कि रक्षकों ने पारंपरिक शैली से अपनी आख़िरी लड़ाई लड़ते हुए अपने प्राणों का बलिदान दिया और उनकी मृत्यु से पहले "वह भयानक संस्कार (हुआ), जिसमें महिलाओं को अपवित्रता या क़ैद से बचने के लिए आहुति देनी पड़ती है। जहाँ दिन का उजास भी नहीं पहुँचता है, ऐसी अभेद्य सुरंग में चिता प्रज्ज्वलित की गई और चित्तौड़ के रक्षकों ने एक जुलूस के रूप में हज़ारों की संख्या में अपनी पत्नियों और बेटियों को वहाँ भेजा...उन्हें सुरंग तक ले जाया गया और फिर उसे मूँद दिया गया तथा उन (स्त्रियों) को असम्मान से अपनी रक्षा के लिए मौत के हवाले कर दिया गया।" टॉड ने प्रवेश द्वार का अवलोकन तो किया, लेकिन उसने उस पवित्र सुरंग में जाने का कोई प्रयास नहीं किया।"[6]

2.

सबसे पहले इस 'मान्य सत्य' की ऐतिहासिकता पर संदेह गौरीशंकर ओझा (1928 ई.) ने किया। वे भी रत्नसेन, पद्मिनी, अलाउद्दीन ख़लजी का ऐतिहासिक अस्तित्व मानते हैं। वे यह भी मानते हैं कि अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया और इसमें जन संहार हुआ और पद्मिनी सहित कई स्त्रियों ने जौहर किया। वे यह भी मानते हैं कि दुर्ग बाद में लगभग दस वर्ष तक अलाउद्दीन के बेटे ख़िज़्रख़ाँ के अधीन रहा।[7] रत्नसेन का विवाह सिंघल की पद्मिनी से हुआ, अलाउद्दीन ने आक्रमण पद्मिनी के लिए किया, रत्नसेन छलपूर्वक बंदी हुआ, गोरा-बादल ने युक्ति से उसको मुक्त करवाया आदि घटनाएँ उनके अनुसार जायसी की कल्पना है।[8] ये सभी घटनाएँ राजस्थान के पारंपरिक जैन और चारण कथा-काव्यों में भी हैं, लेकिन गौरीशंकर ओझा का निष्कर्ष यह है कि "भाटों ने उसको *पद्मावत* से लिया।"[9] उनके बाद इतिहासकार किशोरीसरन लाल (1950 ई.) भी कथा की कल्पना का श्रेय जायसी

को ही देते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उनकी यह कथा बहुत जल्दी लोकप्रिय हो गई, सब जगह कही-सुनी जाने लगी और परवर्ती फ़ारसी इतिहासकार, जो कथा और तथ्य में बहुत फ़र्क नहीं करते थे, इस कहानी को ले उड़े। उनके अपने शब्दों में ''रोमांस, कुतूहल और दु:ख जायसी की इस कथा में इस तरह एक-दूसरे के साथ मिलाए गए थे कि यह बहुत जल्दी लोकप्रिय हो गई और यहाँ-वहाँ सब जगह कही-सुनी जाने लगी। तथ्य और कहानी में फ़र्क की बहुत चिंता नहीं करने वाले फ़ारसी इतिहासकारों ने इसको इतिहास की तरह स्वीकार कर लिया। बाद के फ़रिश्ता और हाजी उद्दबीर सहित बहुत से इतिहासों में इसीलिए इस प्रकरण का उल्लेख मिलता है।''[10] इतिहासकार कालिकारंजन कानूनगो ने 1960 ई. में विस्तार से इस प्रकरण की ऐतिहासिकता पर अपने एक लेख 'ए क्रिटिकल एनेलेसिस ऑफ़ पद्मिनी लिजेंड' में विचार किया और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यह पूरा प्रकरण केवल कथा है, जिसकी कल्पना जायसी ने की और अबुल फ़ज़ल, फ़रिश्ता और राजस्थान के भाटों ने यह प्रकरण जायसी से लिया।[11] वे तो इसमें दूर तक गए, उन्होंने रत्नसेन के अस्तित्व को ही संदेहास्पद कर दिया। उन्होंने आर.सी. मजूमदार के हवाले से यह भी दावा किया कि *पद्मावत* का चित्तौड़, मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ नहीं, इलाहाबाद के पास का चित्रकूट है।[12] फ़िल्म 'पद्मावत' पर हुए विवाद के दौरान मध्यकाल के विशेषज्ञ दो विख्यात इतिहासकारों, इरफ़ान हबीब और हरबंश मुखिया ने भी इसी तरह की राय ज़ाहिर की। इरफ़ान हबीब ने कहा कि पद्मिनी की कथा का उल्लेख बहुत बाद में पहली बार जायसी ने अपनी कविता में किया। हरबंश मुखिया के अनुसार ''पद्मिनी की अवधारणा *कामसूत्र* तक में मिलती है। यह एक कथानक फ़ार्मूला है, जिसमें एक पराक्रमी पुरुष सुंदर स्त्री को जीतने के लिए सभी बाधाओं को पार करता है। यह फ़ार्मूला *बैताल पच्चीसी* सहित सभी लोक कथाओं में मिलता है। जायसी ने यही फ़ार्मूला उठाकर अपनी कविता *पदमावत* लिखी।''[13] एक और इतिहासकार रजत दत्ता ने भी लिखा कि ''तत्कालीन परिस्थितियों के आधार यह निष्कर्ष निकालना युक्तिसंगत है कि पद्मिनी राजपूत इतिहास के एक वंश में, बाद में, संभवतया चारणों द्वारा जोड़ी गई, जिन्होंने यह कथा जायसी के लोकप्रिय और बहुप्रचारित आख्यान से उठायी।''[14] विवाद के दौरान रम्या श्रीनिवासन के शोधकार्य *दि मेनी लाइव्ज़ ऑफ़ ए राजपूत क्वीन* को बतौर साक्ष्य इतिहासकारों और पत्रकारों ने ख़ूब उद्धृत किया। श्रीनिवासन ने पद्मिनी-रत्नसेन कथा संबंधी सभी पारंपरिक ग्रंथ देखे-समझे थे। इस प्रकरण की ऐतिहासिकता पर उनकी राय कमोबेश कालिकारंजन कानूनगो, इरफ़ान हबीब और हरबंश मुखिया से मिलती-जुलती है, लेकिन वह इस संबंध में पूरी तरह आश्वस्त नहीं हैं कि यह कथा जायसी के यहाँ से राजस्थान के

चारण और जैन कवियों तक पहुँची। उन्होंने लिखा कि ''हम नहीं जानते कि क्या *पद्मावत* अवध से 600 मील दूर उस क्षेत्र में व्यापक रूप से प्रचारित हुई? जो साफ़ है वह यह कि स्थानीय संभ्रात राजपूतों द्वारा संरक्षित राजस्थान के आख्यान, जायसी के आख्यान से एकदम अलग हैं।''[15] रम्या श्रीनिवासन की राय को रहने भी दें, तो कुल मिलाकर वी.ए. स्मिथ, गौरीशंकर ओझा, किशोरीसरन लाल, कालिकारंजन कानूनगो, इरफ़ान हबीब, हरबंश मुखिया और रजत दत्ता की राय यह है कि जायसी की *पद्मावत* बहुत कम समय में लोकप्रिय हो गई और इसका व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ, इस्लामी वृत्तांतकारों के साथ यह अवध से बहुत दूर पश्चिम में राजस्थान के चारणों और जैन कवियों तक पहुँची और उन्होंने इसको आधार बनाकर अपनी रचनाएँ कीं।

3.

इतिहासकारों और विद्वानों में यह धारणा लगभग मान्य है, लेकिन इस पर व्यापक पुनर्विचार की ज़रूरत लगती है। जायसी की *पद्मावत* अपनी रचना के पचास-सौ वर्ष में ही इतनी लोकप्रिय हो गई और इसकी कथा की ख्याति सुदूर राजस्थान में पहुँच गई, यह विश्वसनीय नहीं लगता। जायसी सूफ़ी फ़कीर और कवि थे और जायस जैसे छोटे क़स्बे में रहते थे। यह सही बात है कि उनकी कवि प्रतिभा असाधारण थी और सूफ़ी धर्म-दर्शन के वे जानकर और मानने वाले थे, लेकिन अपने समय में और बाद में भी वे बहुत लोकप्रिय नहीं थे। जायसी की पहुँचे हुए फ़कीर के रूप में ख्याति का मिथ जार्ज ग्रियर्सन ने जायस में प्रचलित दंत कथाओं के आधार पर गढ़ा है। जार्ज ग्रियर्सन ने जायसी के संबंध में लिखा कि ''मलिक मुहम्मद अत्यंत पाक फ़कीर थे। अमेठी के राजा विश्वास करते थे कि उन्हें पुत्र प्राप्ति और सामान्य धन-धान्य की वृद्धि इसी संत के कारण हुई और वे इनके प्रमुख भक्तों में थे।''[16] ग्रियर्सन ने उनके संबंध में जो लिखा वह बहुत विश्वसनीय नहीं लगता। पारंपरिक इतिहास में जहाँ अन्य अल्पज्ञात और अज्ञात संत-फकीरों के उल्लेख हैं, जायसी का कोई उल्लेख नहीं मिलता। *आईन-ए-अकबरी* में अबुल फ़ज़ल ने 140 नए-पुराने फ़कीरों और दरवेशों की सूची दी है, लेकिन इसमें जायसी का नाम नहीं है।''[17] अब्द अल क़ादिर बदायूनी ने *मुंतख़ब-उल-तवारीख़* में अपने से पहले के और अपने समय के प्रसिद्ध और पहुँचे हुए सूफ़ी फ़कीरों और दरवेशों का परिचय दिया है। ख़ास बात यह है इसमें मुल्ला दाउद के *चंदायन* का और जायसी के बाद की पीढ़ी के *मधुमालती* के लेखक हजरत शाह मंझन का उल्लेख है, लेकिन इनमें इनसे बड़े कवि होने के बावजूद जायसी का उल्लेख नहीं है।[18] एक सूफ़ी फ़कीर के रूप में

जायसी की लोकप्रियता पर विजयदेवनारायण साही ने भी विस्तार से विचार किया है। वे आश्चर्यचकित हैं कि जायसी के संबंध में इतिहास और धर्म के पारंपरिक स्रोत मौन हैं। उनके अपने शब्दों में ''सूफ़ी-फ़कीरों और मुरशिदों के बारे में तो मध्यकाल की धार्मिक और ऐतिहासिक पुस्तकों में काफ़ी जानकारी मिल जाती है। यहाँ तक कि पर्याप्त श्रम करके चिश्तिया संप्रदाय और उसकी विभिन्न शाखाओं और दरगाहों के फ़कीरों की लंबी सूचियाँ भी विद्वानों ने तैयार कर ली हैं। लेकिन इन सूचियों में ख़ुद जायसी का ज़िक्र एक फ़कीर या सिद्ध पुरुष की तरह कहीं नहीं आता।''[19] जो व्यक्ति अपने संप्रदाय में मान्य और लोकप्रिय नहीं है, उसकी *पद्मावत* की कथा की प्रभावकारी रूप में पहुँच इतिहासकार अबुल फ़ज़ल, फ़रिश्ता, हाजी उद्‌बीर और उससे भी आगे राजस्थान के चारण-भाट और जैन कवियों तक रही होगी, यह संभव नहीं लगता।

3.

परवर्ती इस्लामी इतिहासकार मोहम्मद क़ासिम फ़रिश्ता (1560-1620 ई.) कृत *तारीख़-ए-फ़रिश्ता,* अबुल फ़ज़ल (1551-1602 ई.) कृत *आईन-ए-अकबरी* और अब्दुल्लाह मुहम्मद उमर अल-मक्की अल-आसफ़ी अल-उलुग़ख़ानी हाजी उद्‌बीर कृत (1540-1605 ई.) कृत *ज़फ़रुल वालेह बे मुज़फ़्फ़र वालेह* के पद्मिनी प्रकरण संबंधी वृत्तांत भी जायसी की *पद्मावत* के बजाय पारंपरिक आख्यानों और ख्यातों सहित अपने समय में इसके प्रचलित कथाबीज पर निर्भर हैं। यह कथाबीज फ़ारसी में भी लोकप्रिय था। 1894 ई. में प्रकाशित *एन ओरियंटल बायोग्राफ़िकल डिक्शनरी* में पद्मिनी के परिचय में इन रचनाओं का भी उल्लेख है। इस संबंध में लिखा गया है कि ''पद्मावती श्रीलंका के राजा की पुत्री थी, जिसे चित्तौड़ का राजा रत्नसेन अपनी शक्ति के बल पर विवाह करके ले आया। अलाउद्दीन ने जब 1303 ई. (703 हि.) में चित्तौड़ जीता, तो वह रत्नसेन से पद्मिनी भी ले गया। उसकी कथा *क़िस्से पदमावत* नाम से गजनी निवासी हुस्सेन ने फ़ारसी में लिखी। इसका एक संस्करण भाखा में मलिक मुहम्मद जायसी का पद्य में है। एक दूसरा फ़ारसी काव्य राय गोबिंद मुंशी का *तुहफ़त-उल-क़ुलूब,* जो उसने 1652 ई. (1062 हि.) मे लिखा, जो उस वर्ष का क्रोनोग्राम भी है। 1796 ई. (1211 हि.) में इसके उर्दू में अनुवाद दो कवियों- पहला भाग ज़ियाउद्दीन इबरात और अंतिम भाग गुलाम अली इशरत- ने किए।''[20] यह धारणा निराधार और मिथ्या है कि फ़रिश्ता, अबुल फ़ज़ल और हाजी उद्‌बीर के प्रकरण के वृत्तांत जायसी की *पद्मावत* पर आधारित हैं। कतिपय इतिहासकारों और विद्वानों ने यह धारणा इन वृत्तांतों को ठीक से पढ़े-समझे बिना ही बना ली है। समकालीन इस्लामी इतिहासकार

अमीर ख़ुसरो, ज़ियाउद्दीन बरनी, अब्दुल मलिक एसामी ने अपने वृत्तांतों में रत्नसिंह और पद्मिनी का नामोल्लेख नहीं किया और उन्होंने लड़ाई पद्मिनी के लिए हुई, इसकी भी चर्चा नहीं की, लेकिन इन परवर्ती वृत्तांतों में इनके नामोल्लेख भी हैं और लड़ाई पद्मिनी के लिए हुई, यह चर्चा भी है। इससे यह भी सिद्ध है कि फ़रिश्ता, अबुल फ़ज़ल और हाजी उद्दबीर जायसी के साथ अमीर ख़ुसरो, ज़ियाउद्दीन बरनी और अब्दुल मलिक एसामी पर भी निर्भर नहीं हैं और उन्होंने यह वृत्तांत पारंपरिक कथा-काव्यों और लोक से लिया है। फ़रिश्ता ने इस प्रकरण का वर्णन करते हुए लिखा है कि "इस समय (हि. 704, 1304 ई. और वि.सं.1361) चित्तौड़ का राजा राय रत्नसेन- जो सुल्तान ने उसका क़िला छीना, तब से क़ैद था अद्भुत रीति से भाग गया। अलाउद्दीन ने उसकी लड़की के अलौकिक सौंदर्य और गुणों का हाल सुनकर उससे कहा कि 'यदि तू अपनी लड़की मुझे सौंप दे, तो तू बंधन से मुक्त हो सकता है।' राजा ने, जिसके साथ क़ैदखाने में सख़्ती की जाती थी, इस कथन को स्वीकार कर अपनी राजकुमारी को सुल्तान को सौंपने के लिए बुलाया। राजा के कुटुम्बियों ने इस अपमानसूचक प्रस्ताव को सुनते ही अपने वंश के गौरव की रक्षा के लिए राजकुमारी को विष देने का विचार किया। परंतु उस राजकुमारी ने ऐसी युक्ति निकाली, जिससे वह अपने पिता को छुड़ाने तथा अपने सतीत्व की रक्षा करने में समर्थ हो सकती थी। तदनन्तर उसने अपने पिता को लिखा कि 'आप ऐसा प्रसिद्ध कर दें कि मेरी राजकुमारी अपने सेवकों के साथ आ रही है और अमुक दिन (दिल्ली) पहुँच जाएगी। इसके साथ उसने राजा को अपनी युक्ति से भी परिचित कर दिया। उसकी युक्ति यह थी कि अपने वंश के राजपूतों में से किसी एक को चुनकर डोलियों में सुसज्जित कर बिठा दिया और राजवंश की स्त्रियों की रक्षा के योग्य सवारों तथा पैदलों के साथ वह चली। उसने अपने पिता के द्वारा सुल्तान की आज्ञा की प्राप्त कर ली, जिससे सवारी बिना रोक-टोक के मंज़िल-दर-मंज़िल दिल्ली पहुँची। उस समय रात पड़ गई थी। सुलतान की ख़ास परवानगी से उसके साथ डोलियाँ क़ैदखाने में पहुँची और वहाँ के रक्षक बाहर निकल आए। भीतर पहुँचते ही राजपूतों ने डोलियों से निकलकर अपनी तलवारें सम्हाली और सुल्तान के सेवकों को मारने के पश्चात राजा सहित वे तैयार खड़े घोड़ों पर सवार होकर भाग निकले। सुल्तान की सेना आने न पाई, उसके पहले ही राजा अपने साथियों सहित शहर से बाहर निकल गया और भागता हुआ अपने पहाड़ी प्रदेश में पहुँच गया, जहाँ उसके कुटुम्बी छिपे हुए थे। इस प्रकार अपनी चतुर राजकुमारी की युक्ति से राजा ने क़ैद से छुटकारा पाया और उसी दिन से वह मुसलमानों के हाथ में रहे हुए (अपने) मुल्क को उजाड़ने लगा। अंत में, सुल्तान चित्तौड़ को अपने अधिकार में रखना निरर्थक समझकर ख़िज्रख़ाँ को हुक्म

दिया कि क़िले को खाली कर उसे राजा के भानजे (मालदेव सोनगरा) को सुपुर्द कर दे।''[21] ज़ाहिर है कि फ़रिश्ता का घटना का यह वृत्तांत जायसी और अमीर ख़ुसरो सहित सभी समकालीन इतिहासकारों से सर्वथा अलग है। कदाचित् फ़रिश्ता की जानकारी का स्रोत ही इस प्रकरण की आधी-अधूरी जानकारी रखने वाला कोई व्यक्ति है। जायसी सहित सभी आख्यानकार इस संबंध में एक राय हैं कि अलाउद्दीन ने युद्ध रत्नसिंह की बेटी के लिए नहीं, उसकी रानी के लिए किया था, जबकि फ़रिश्ता उसको राजा की बेटी लिखता है। कुटुम्बियों द्वारा अपनी मान-मर्यादा के लिए राजकुमारी को ज़हर देने के विचार का प्रसंग भी केवल फ़रिश्ता के यहाँ है। स्पष्ट है कि फ़रिश्ता जायसी सहित सभी आख्यानकारों से अपरिचित था और उसने यह वृत्तांत समकालीन इस्लामी इतिहासकारों से भी नहीं लिया। मुनि जिनविजय भी इस कथा के स्रोत की परख-पड़ताल के दौरान इसी निष्कर्ष पर पहुँचे और उन्होंने साफ़ लिखा कि ''फ़रिश्ता के उक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि उसको जायसी की *पद्मावत* वाली कथा का बिल्कुल परिचय नहीं था, इसलिए पद्मिनी की कथा को केवल जायसी की कल्पना बतलाने वाले तथा उसी के बाद *पद्मावत* के आधार पर ही राजस्थान के भाटों आदि द्वारा पद्मिनी की कल्पित कथा का प्रचार किया जाना कहने वाले विद्वानों का तर्क-वितर्क सर्वथा असिद्ध प्रमाणित होता है।''[22]

अकबरकालीन इतिहासकार अबुल फ़ज़ल ने इस प्रकरण का वृत्तांत दिया है, लेकिन वह भी किसी भी प्रकार से इसके लिए जायसी का ऋणी नहीं है। वृत्तांत के उसके मोड़-पड़ावों से लगता है कि उसको इससे संबंधित पारंपरिक देशज कथा-काव्यों का ज्ञान था और उसने एकाधिक बार इसका ज़िक्र भी अपने वृत्तांत में किया है। उसके अनुसार ''प्राचीन वृत्तांतों में लिखा है कि दिल्ली के बादशाह सुलतान अलाउद्दीन ख़लजी ने सुन रखा था कि मेवाड़ के राजा रावल रतनसी की स्त्री बहुत रूपवती है। उसने उसकी माँग की, परंतु अस्वीकृत कर दिए जाने पर अपनी इच्छा पूरी करने के लिए उसने एक फ़ौज के साथ चित्तौड़ पर चढ़ाई कर दी। एक अरसे तक उस स्थान पर घेरा डाले रहने पर जब कोई नतीजा न निकला, तो उसने कपट का मार्ग अपना कर सुलह और मित्रता का प्रस्ताव आगे रखा। राजा ने तुरंत ही अपनी सहमति प्रकट कर उसे जश्न का न्यौता दिया। अपने चुनिंदा साथियों को लेकर सुलतान ने क़िले में प्रवेश किया और आमोद-प्रमोद के वातावरण में दोनों की भेंट हुई। परंतु, अवसर पाते ही वह राजा को पकड़ कर वहाँ से ले आया। कहते हैं, सुलतान के नौकर-चाकरों की संख्या 100 थी तथा सिपाहियों के वेश में 300 चुनिंदा साथी साथ थे। राजा की फ़ौज एकत्रित होती इससे पहले ही विलाप करते हुए उसके लोगों के बीच से, उसे जल्दी से बादशाह के डेरे की तरफ़ ले जाया गया। अपनी इच्छा

को मनवाने हेतु बादशाह ने राजा को कड़ी क़ैद में रक्खा। उसे बहुत सताया गया, इसलिए राजा के विश्वासपात्र मंत्रियों ने बादशाह से याचना की कि उसके प्रेम पात्र को सौंप देने के अतिरिक्त उसके हरम के लायक अन्य स्त्रियाँ भी उसके पास भेज दी जावेंगी। उन्होंने उस धर्मपरायण नारी से एक जाली पत्र भिजवा कर उसकी आशंकाओं को भी बहला कर शांत कर दिया। बादशाह प्रसन्न हुआ और राजा पर बल प्रयोग के बजाय उससे नरम व्यवहार करने लगा। ऐसा वर्णन मिलता है कि 700 चुने हुए सिपाहियों को जनाने लिबास में डोलियों में बैठाकर बादशाह के ख़ेमे की ओर रवाना कर दिया गया तथा यह घोषणा कर दी गई कि रानी अपनी बहुत-सी दासियों के साथ शाही ख़ेमे को प्रस्थान कर चुकी है। ख़ेमे के निकट आने पर यह इच्छा व्यक्त की गई कि बादशाह के निवास स्थान में प्रविष्ट होने से पूर्व रानी राजा से भेंट करना चाहती है। मोहात्मक स्वप्न के चक्कर में पड़ कर बादशाह ने भेंट की अनुमति प्रदान कर दी; इसी समय सिपाहियों ने अवसर का लाभ उठाकर अपना भेष बदला और वे राजा को छुड़ा लाए। राजपूतों ने पीछा करने वालों का बड़ी मर्दानगी से बराबर मुकाबला किया और राजा के दूर निकल जाने तक बहुतों को मौत के घाट उतार दिया। अंत में, गोरा और बादल चौहानों ने मृत्यु पर्यन्त युद्ध किया, जिससे सर्वत्र जय-जयकार के बीच रावल सकुशल चित्तौड़ पहुँच गया। घेरा डाले रहने में बड़ी कठिनाइयों को सहन न कर सकने के कारण तथा इसे निरर्थक जानकर बादशाह वापस दिल्ली लौट आया। कुछ समय पश्चात उसने वापस इसी योजना पर दिलज़मी की, परन्तु हार कर लौट आया। इन आक्रमणों से उकता कर रावल ने सोचा कि बादशाह से मुलाक़ात करने से शायद कोई संबंध सूत्र बँधे और इस प्रकार इस स्थायी कलह से वह छुटकारा पा सके। एक बाग़ी के बहकावे में आकर चित्तौड़ से 7 कोस दूर एक स्थान पर वह बादशाह से मिला, जहाँ छलपूर्वक उसका वध कर दिया गया। इस घातक घटना के पश्चात उसके वंशज अरसी को गद्दी पर बैठाया गया। सुलतान ने चित्तौड़ को पुन: घेर कर उस पर अधिकार कर लिया। राजा लड़ते-लड़ते मारा गया तथा सभी नारियाँ स्वेच्छा से अग्नि में जल मरीं।''[23] अबुल फ़ज़ल का यह वृत्तांत भी जायसी के *पद्मावत* से अलग है। यह विवरण *पद्मावत* की जगह, इससे संबंधित *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा* से अधिक मिलता है। यह निश्चित है कि जायसी की *पद्मावत* से अलग कोई पारंपरिक देशज कथा-काव्य अबुल फ़ज़ल की निगाह में ज़रूर आया होगा, जिसको आधार बनाकर उसने यह प्रकरण लिखा। यह तय है कि पद्मिनी प्रकरण का अबुल फ़ज़ल का विवरण किसी प्राचीन वृत्तांत पर निर्भर है। यह उल्लेख उसने स्वयं किया है[24], लेकिन यह प्राचीन वृत्तांत *पद्मावत* नहीं है, क्योंकि *पद्मावत* की कथा के मोड़-पड़ाव अबुल फ़ज़ल से अलग हैं। अबुल फ़ज़ल जायसी

की तरह रत्नसेन को बंदी बनाकर दिल्ली ले जाने का उल्लेख नहीं करता। इसी तरह रानी का अलाउद्दीन को छद्म प्रेम पत्र लिखना, अलाउद्दीन का दिल्ली चले जाना और फिर लौटकर आक्रमण करना आदि प्रकरण अबुल फ़ज़ल के यहाँ हैं, लेकिन जायसी के यहाँ नहीं हैं। लगता तो यह है कि अबुल फ़ज़ल भी उन्हीं प्राचीन वृत्तांतों पर निर्भर है, जिन पर पारंपरिक देशज कथा-काव्यों के रचनाकार निर्भर हैं।

अब्दुल्लाह मुहम्मद उमर अल-मक्की अल-आसफ़ी अल-उलुग़ख़ानी हाजी उद्दबीर ने अपनी *ज़फ़रुल वालेह बे मुज़फ़्फ़र वालेह* (एन अरेबिक हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात) में इस प्रकरण का जो वृत्तांत दिया है, वह भी जायसी से अलग है। उसकी कुछ सूचनाएँ सर्वथा भिन्न और नयी हैं। वह लिखता है- ''अलाउद्दीन ने 1303 ई. में विशालकाय सेना के साथ चित्तौड़ के लिए प्रयाण किया। वह ख़ुद सेना के साथ था। (चित्तौड़ पहुँचकर) जब सुल्तान ने पहाड़ की तलहटी में अपना शिविर लगाया, तो वहाँ के शासक ने अपने को असहाय पाकर बिना अपने सामंतों, जो उसके मित्र थे, को सूचित किए बिना उसके ख़ेमे में जाकर उसके समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। उसने पहाड़ और जो भी वहाँ थे, उन पर सुल्तान का आधिपत्य मान लिया और मौक़े का इंतजार करता रहा। उसने एक व्यक्ति के साथ निर्णय लिया, जो सुलतान के ख़ेमे में जाने के लिए उसकी राय का समर्थक था। सुल्तान यह मानकर पहाड़ पर गया कि यह उसका है और वहाँ के निवासियों ने भी इसकी तस्दीक़ कर दी है। वे (पहाड़ के लोग) बाहर निकले और जितना संभव हुआ मजबूती से लड़े। अंतत: विजय सुल्तान की हुई। सूर्य जब मध्याह्न में था तब उसने तलवार के साथ दरवाज़े बंद कर दिए। पहाड़ के 30 हज़ार निवासी मारे गए। यह मंगलवार 1304 का दिन था। सूर्योदय पर सुल्तान वहाँ था और सब पहाड़ के शासक के साथ थे जो उससे अलग नहीं हुआ था। उन्होंने पहाड़ को अच्छी तरह घेर लिया। पहाड़ का शासन सुल्तान के बेटे ख़िज़्रख़ाँ को सौंप दिया गया और चित्तौड़ का नाम ख़िद्राबाद किया गया। सुल्तान इसके बाद पहाड़ से नीचे उतर कर अपने ख़ेमे में आ गया।.... जब अलाउद्दीन चित्तौड़ से दिल्ली चला आया, तो उसके कुछ लोग चित्तौड़ की रक्षा के लिए वहीं रुक गए। उसने (चित्तौड़ के शासक) अपनी पत्नी को सुल्तान के पास आत्म समर्पण के लिए भेजा। सुल्तान ने सुन रखा था कि वह सुंदर स्त्री थी और उसके जैसा दूसरा कोई नहीं था। उससे यह भी बताया गया था कि वह सर्वोत्तम स्त्री थी। वह एक ऐसी स्त्री थी, जिसे हिंद में पद्मिनी कहा जाता है। ऐसी स्त्री का होना दुर्लभ है। सुल्तान के दूत ने उसे सूचित किया कि सुल्तान चाहते हैं कि वह उसे भेज दे। उसने उसे सौंप देने का वचन दिया। संक्षेप में, वह ऐसा करने के लिए राजी हो गया। ऐसा कहा जाता है कि दिल्ली प्रयाण से पहले सुल्तान की पत्नी ने उसे छोड़ देने के लिए

कहा, जिस पर वह राजी हो गया। जब उसने प्रयाण किया, तो उसे उसके घोड़ों की टाप को देखते हुए उसके पीछे-पीछे जाना था, उसने उससे कहा कि वह खड़ा रहे और वह किसी और को उसे बुलाने के लिए भेजेगा। उसका समर्पण उसे प्रसन्न कर देगा। सुल्तान इस पर राजी हो गया। उसने दिल्ली की ओर चलना आरंभ किया। काफ़िर ने नौकर से कहा कि वह उसे उसके (सुल्तान) लिए भेज देगा, लेकिन वह अकेले नहीं आएगी, रनिवास की सभी स्त्रियाँ उस के साथ पर्वत पर आएँगी। जब वे अपने आपको समर्पित कर देंगी, तो मैं उसको आपको समर्पित कर दूँगा। ऐसा उसने उत्तर दिया। उसने अपने आदमियों को सूचना देने के लिए पर्वत पर भेजा। उसने कहलवाया कि पाँच सौ लोग पालकियों में बैठेंगे। प्रत्येक पालकी चार आदमियों द्वारा ले जायी जाएगी। ऐसा करते हुए वे शिविर में आए। सुल्तान के लोगों ने स्त्रियों की माँग की। जब पालकियाँ कंधे से उतारी गईं, तो शिविर चकित रह गया। 25000 आदमी तलवार लेकर शिविर में कूद पड़े। पालकी में आए हुए लोगों के बीच राजा घोड़े पर सवार हुआ। अलाउद्दीन के कुछ आदमी ही जीवित बचे, उनमें से बहुत से भाग खड़े हुए। जब सुल्तान को इसकी सूचना मिली कि पर्वत पर जो घटना हुई थी, उसे राजा की बहन की बेटी ने अंजाम दिया था, जो सुल्तान के साथ ब्याही गई थी। उसने पर्वत पर अपना आधिपत्य जमाया और इसे अपने नियंत्रण में रखा। शासक के वज़ीर ने आने वाले समय में लगभग सुल्तान का दर्ज़ा प्राप्त कर लिया।''[25]
चित्तौड़ के शासक का अपने साथियों को बिना बताए अलाउद्दीन के साथ जा मिलना और उचित मौक़े की तलाश में रहना और अलाउद्दीन से विवाहित राजा की किसी बहन राजा को मुक्त करवाने के लिए षड्यंत्र में शामिल होने जैसी घटनाएँ जायसी सहित और किसी इस्लामी वृत्तांतकार के यहाँ नहीं है। यदि हाजी उद्‌बीर को *पदमावत* के कथाक्रम की जानकारी होती, तो वह घटनाक्रम का विवरण इस तरह नहीं देता। स्पष्ट है की परवर्ती फ़ारसी-अरबी वृत्तांतकारों ने अपनी कथा किसी प्रचलित पारंपरिक कथा बीजक या आख्यान से ही ली। यह धारणा निराधार है कि जायसी की कथा अपनी रचना के बाद इतनी लोकप्रिय हुई कि परवर्ती अरबी-फ़ारसी वृत्तांतकार 'उसको ले उड़े।'

5.

जायसी की *पद्मावत* राजस्थान के पारंपरिक पद्मिनी कथा-काव्यकारों की पहुँच में नहीं थी, यह इससे भी प्रमाणित है कि गुजरात सहित उत्तरी-पश्चिमी भारत के किसी ग्रंथागार में *पद्मावत* की कोई पांडुलिपि उपलब्ध नहीं है।[26] यह भी कि यहाँ के किसी कवि-कथाकार ने जायसी की *पद्मावत* को उद्धृत नहीं किया है, जबकि यहाँ के

पारंपरिक कथा-काव्यों में ऐसी परंपरा थी। राजस्थान के चारण-भाट और जैन यति-मुनि दूरस्थ क्षेत्रों की यात्राएँ करते थे और पांडुलिपियों की प्रतियाँ बनाकर अपने पारंपरिक ग्रंथागारों में सुरक्षित रखते थे। राजस्थान-गुजरात आदि के ग्रंथागार प्राचीन पांडुलिपियों के मामले में बहुत समृद्ध हैं। इन ग्रंथागारों में बनारस और ढाका तक में लिपिबद्ध पांडुलिपियाँ हैं। दामोदर पंडित की *उक्तिव्यक्तिप्रकरण* की पांडुलिपि पाटन, गुजरात में संग्रहीत है। भोज की *शृगारमंजरीकथा* की पांडुलिपि जैसलमेर के ग्रंथागार में है। *छिताई वार्ता* की इलाहाबाद और होशियारपुर में संग्रहीत पांडुलिपियों की प्रति बीकानेर में भी है। आश्चर्यजनक यह है कि *पद्मावत,* जिसको आधुनिक इतिहासकार और विद्वान् राजस्थान में प्रभावकारी मानते हैं, उसकी कोई पांडुलिपि राजस्थान के किसी ग्रंथागार में नहीं है। प्राचीन साहित्य के अध्येता और विख्यात पुरातत्त्ववेत्ता मुनि जिनविजय ने भी इस संबंध में लिखा है कि ''जैन विद्वान् यति जो उस समय दिल्ली, पंजाब, बिहार और बंगाल आदि के पूर्व और उत्तर प्रदेशों में भी यथेष्ट विचरण करते रहते थे और साहित्य का संकलन, आकलन आदि निरंतर करते रहते थे, यदि उनकी जानकारी में जायसी की यह रचना आती, तो वे अवश्य इसकी प्रतिलिपि आदि कर लेते।''[27]

जायसी ने *पद्मावत* 1540 ई. में पूर्ण किया और इसके ठीक 48 वर्ष बाद हेमरतन ने 1588 ई. में *गोरा-बादल पदमिणी चउपई* लिखी। ऐसे समय में जब आवागमन और संचार के साधन नहीं थे, महज़ 48 वर्ष की अवधि में जायस (अवध) में लिखी हुई रचना की कथा का 600-700 मील दूर राजस्थान के पाली जिले के सादड़ी क़स्बे में चातुर्मास कर रहे जैन यति तक पहुँच जाना संभव नहीं लगता। यह तब और भी मुश्किल है, जब उसकी लिपि फ़ारसी है। यह कथा जायसी कल्पित है और राजस्थान के पारंपरिक कथा-काव्यों में यहीं से आई है, यह धारणा निराधार है और केवल आधुनिक इतिहासकारों का पूर्वाग्रह है। यह राय रखने वालों में से अधिकांश इतिहास और साहित्य के विद्वानों को पारंपरिक पद्मिनी-रत्नसेन विषयक कथा-काव्यों और राजस्थान के लोक जीवन में इसके कथा बीजक की सदियों से मौजूदगी के संबंध में कोई जानकारी नहीं थी। उन्होंने इन कथा-काव्यों को जाने-समझे बिना ही इनकी *पद्मावत* पर निर्भरता का निष्कर्ष निकाल लिया। इनमें से गौरीशंकर ओझा को इन पारंपरिक कथा-काव्यों की जानकारी थी, लेकिन फिर भी वे इस निष्कर्ष पर इसलिए पहुँचे कि एक तो उनके समय तक अधिकांश पारंपरिक स्रोत उजागर नहीं हुए थे और दूसरे, कुछ हद तक आधुनिक इतिहास के 'प्रत्यक्ष' और 'आनुभविक' का आग्रह उनमें भी था। रम्या श्रीनिवासन ने कालिकारंजन कानूनगो और रजत दत्ता की तरह आत्मविश्वासपूर्वक कुछ भी नहीं कहा। रम्या श्रीनिवासन

ने अधिकांश पारंपरिक स्रोतों को देखा-समझा था, वे जायसी की *पद्मावत* से इनकी भिन्नता से अवगत थीं, इसलिए उन्होंने कथा अवध से राजस्थान आई या राजस्थान से अवध गई, इस संबंध में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला।[28] कदाचित् जानती वे भी थीं कि इन पारंपरिक कथा-काव्यों की जैसी कथावस्तु, शैली और ढाँचा है, उससे तो यही लगता है कि जायसी ने अपनी कथा यहीं से ली होगी, लेकिन उनकी यह स्वीकृति उनको 'आधुनिकों' के बीच में 'अलग' कर देती, इसलिए उन्होंने ऐसा कहने से परहेज़ किया।

पद्मिनी-रत्नसेन विषयक पारंपरिक देशज कथा-काव्यों में जायसी को कहीं भी उद्धृत नहीं किया गया, जबकि इनमें पूर्व में ख्यात रचना के प्रसिद्ध कथनों को उद्धृत करने की परंपरा थी। यदि *पद्मावत* राजस्थान में भी लोकप्रिय होती या पारंपरिक काव्य-कथाकार उससे अवगत होते तो ज़रूर उसके प्रसिद्ध कथनों-उक्तियों का अपनी रचनाओं में उद्धृत करते। यह परंपरा थी- कवि-कथाकार जिस रचना में प्रवृत्त होता, वह पहले उसकी परंपरा को देखता-समझता। लब्धोदय और हेमतरन ने पूर्वकथा के आधार पर अपनी कथा कहने की बात कही है। हेमरतन ने लिखा है कि- *सुणिउ तिसौ भाष्यौ संबंधि* अर्थात् मैंने जैसा सुना है, वैसा ही संबंध कहा है।[29] लब्धोदय ने कहा कि- *कहस्यू कवित्त कल्लोल सूँ पूर्व कथा संपेख* अर्थात् प्रसन्नतापूर्वक पूर्व कथा को देखकर कहूँगा।[30] यदि वे दोनों *पद्मावत* की कथा से अवगत होते तो, वे यथावश्यकता इस पूर्वकथा की प्रसिद्ध उक्तियों और नीति कथनों को अपनी रचनाओं में यथावत उद्धृत करते। हेमरतन और लब्धोदय ने अपनी रचनाओं में *गोरा-बादल कवित्त* के कुछ अंश उद्धृत किए हैं। इसी तरह हेमरतन के कुछ प्रसिद्ध कथनों-उक्तियों को लब्धोदय और दलपति विजय ने उद्धृत किया है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि इनमें से किसी ने भी, कहीं भी जायसी को उद्धृत नहीं किया।

पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण राजस्थान लोक जीवन में बहुत पहले से कथा बीजक या कथा ज्ञापक के रूप में विद्यमान था। इस प्रकरण पर लिखे गए ऐतिहासिक कथा-काव्य इसी बीजक-ज्ञापक पर आधारित हैं। जायसी ने अपना *पद्मावत* भी इसी बीजक को आधार बनाकर लिखा। राजस्थान ही नहीं, हमारे देश के अधिकांश भागों में कथा बीजक की परंपरा रही है। ऐतिहासिक व्यक्तित्व और ख्यात घटनाएँ लोक स्मृति में पीढ़ी-दर-पीढ़ी यात्रा करती थीं और धीरे-धीरे समयानुसार ये संक्षिप्त और सरल होती जाती थीं। स्मृति में रहने वाली इन घटनाओं-प्रकरणों और व्यक्तियों को कथा बीजक कहा जाता था। लोग अपनी प्रतिभा और ज्ञान के आधार पर इन बीजकों का पल्लवन और विस्तार करते थे। यह पल्लवन और विस्तार कभी मौखिक होता था, तो कभी कोई कवि-कथाकार अपनी प्रतिभा और विवेक से इनको लिखित रूप

भी देता था। एक ही बीजक एकाधिक व्यक्तियों के यहाँ अलग-अलग तरह से पल्लवित और विकसित होता था। यह भारतीय परंपरा के अनुसार था- *ऋग्वेद* के कई कथा बीजक बाद के ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद ग्रंथों और परवर्ती साहित्य में विस्तारपूर्वक पल्लवित हुए हैं।[31] भारतीय ऐतिहासिक कथा-काव्य परंपरा में विक्रमादित्य, भोज, सातवाहन, शूद्रक आदि कई ऐतिहासिक व्यक्तित्व कथा बीजक की तरह रहे हैं।[32] जैन कथाकारों ने कथा बीजकों को आधार बनाकर कई रचनाएँ लिखीं। सतियों-साध्वियों के कथा बीजकों के आधार पर जैन यतियों-मुनियों की कई कथा रचनाएँ मिलती हैं। सती नर्मदा सुंदरी का कथा बीजक जैन यतियों-मुनियों में बहुत लोकप्रिय हुआ और इस पर कई रचनाएँ हुईं।[33] पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण का कथा बीजक भी राजस्थान की लोक स्मृति में सदियों से था और इस पर कई कवित्त, छप्पय, सोरठा आदि प्रचलित थे और इनको आधार बनाकर कथा-काव्य रचना की यहाँ परंपरा भी थी। मुनि जिनविजय ने राजस्थान के लोक जीवन में पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण की स्मृति के साहित्य-इतिहास में व्यवहार पर अच्छी रोशनी डाली है। उन्होंने हेमरतन की *गोरा-बादल पद्मिणी चउपई* की भूमिका में लिखा कि ''पद्मिनी विषयक कथा ज्ञापक, कवित्त आदि राजस्थान में प्राचीनकाल से प्रचलित थे। कवित्त, छप्पय, दोहा, सोरठा आदि मुक्तक पद्य राजस्थान के इतिहास और लोक जीवन में बीजक रहे हैं। इन बीजकों के आधार पर राजस्थान का प्राचीन इतिहास जनमानस में अपना स्थायी स्थान बनाए रखता था। इन्हीं बीजकों के आधार पर कथाकार-वार्ताकार आदि विज्ञ जन लोगों को अपनी जानी-सुनी कथा-कहानियाँ, बात-ख्यात आदि कहा करते थे और यह परा-पूर्व से सर्वत्र चला आता था। इनमें जो कोई कवि विशेष प्रतिभावाले व्यक्ति होते थे वे इन कथा बीजकों के आधार वाली कथा-वार्ताओं को कविताबद्ध भी कर लेते थे। पद्मिनी कथा को भी इसी तरह कथाकार रास, भास, प्रबंध, चउपई आदि रूप में स्थानिक लोगों के सम्मुख एक वीर, शौर्य और सतीधर्म की महत्ता बताये जाने वाली कथा के रूप में सुनाया करते थे। कवि लोग कविता के रूप में निबद्ध कर उसे एक स्थायी और अधिक व्यापक स्वरूप दे देते थे। जायसी, हेमरतन आदि कवि इसी प्रकार पद्मिनी की कथा को स्थायी स्वरूप देनेवाले कवि हैं। जिस प्रकार जायसी ने किन्हीं बीजकों के आधार पर अपनी *पद्मावत* कथा की रचना की, उसी प्रकार हेमरतन ने भी ऐसे ही किन्हीं बीजकों के आधार पर अपनी रचना की है।''[34]

6.

पद्मिनी-रत्नसेन कथा बीजक के आधार पर जायसी ने 1540 ई में और हेमरतन 1588 ई. में अपनी रचनाएँ कीं, लेकिन इससे पूर्व भी इस बीजक को कथा-काव्य का

स्वरूप देने के उपक्रम होते रहे हैं। प्राचीन साहित्य के विशेषज्ञ और पाठ संपादनकर्ता अगरचंद नाहटा के संग्रह में *गोरा-बादल कवित्त* नामक एक 82 छंदों की रचना उपलब्ध है, जो इन दोनों से प्राचीन है।[35] इस कृति का रचनाकार और रचना समय ज्ञात नहीं है, लेकिन एक तो इसके कवित्तों को परवर्ती सभी रचनाकारों ने उद्धृत किया है और दूसरे, इसकी भाषा और रचना शैली जायसी से पहले की है। *गोरा-बादल कवित्त* के कुछ कवित्त छंदों को पद्मिनी-गोरा-बादल प्रकरण पर कथा-काव्य रचना करने वालों- हेमरतन (1588 ई.), लब्धोदय (1649 ई.) और दलपति विजय (1673-1712 ई.) ने अपनी रचनाओं में उद्धृत किया है।[36] हेमरतन, लब्धोदय और दलपति विजय ने जिस तरह से इस रचना के कवित्तों को अपनी रचनाओं में उद्धृत किया है, उससे यह सिद्ध है कि यह जायसी-हेमरतन से पहले की, और पर्याप्त लोकप्रिय रचना थी। हेमरतन ने अपनी रचना में कुछ कवित्त *गोरा-बादल कवित्त* से अलग भी उद्धृत किए हैं, जो इस बात का प्रमाण हैं कि इसके अलावा भी इस प्रकरण पर जायसी-हेमरतन से पहले रचनाएँ हुई थीं। *गोरा-बादल कवित्त* की रचना शैली और भाषा, दोनों जायसी-हेमरतन से प्राचीन है। इसकी भाषा प्राकृत-अपभ्रंश के निकट की भाषा है और इसमें वियोगात्मकता की प्रवृत्ति उस तरह से नहीं है, जिस तरह से यह परवर्ती देश भाषाओं में बढ़ गई है। हेमरतन केवल दूहा-चौपई इस्तेमाल कर रहा है, जबकि *कवित्त* में छंद वैविध्य पर्याप्त है। इसमें संस्कृत श्लोक का भी प्रयोग भी हुआ है। इसमें प्रयुक्त क्रिया पद- ग्रहंति, झालंति फुट्टई, तुट्टई आदि भी प्राकृत की तरह हैं।[37] इसकी पुष्टि प्राचीन साहित्य के विशेषज्ञ मुनि जिनविजय और इतिहासकार दशरथ शर्मा ने भी की है। मुनि जिनविजय ने लिखा है कि ''इन कवित्तों के समय का कोई ज्ञापक निर्देश नहीं मिला, तथापि इनकी भाषा व रचना शैली से इतना तो ज्ञात होता है कि ये जायसी के समय से पूर्ववर्ती हैं।''[38] इतिहासकार दशरथ शर्मा की राय भी यही है। उनके अनुसार ''भाषा और शैली की दृष्टि से यह रचना *पद्मावत* से कुछ विशेष अर्वाचीन प्रतीत नहीं होती।''[39]

7.

पद्मिनी प्रकरण का *छिताई वार्ता* में उल्लेख भी यह भी प्रमाणित करता है कि जायसी के *पद्मावत* से पूर्व यह कथा बीजक लोक में प्रचलन में था। आरंभ में इस रचना के समय को लेकर अनिश्चय रहा। बीकानेर के खरतरगच्छीय ज्ञान भंडार और प्रयाग म्यूनिसिपल म्यूजियम की कुल दो प्रतियों को आधार बनाकर माताप्रसाद गुप्त के संपादन में *छिताई वार्ता* के नाम से इसका प्रकाशन 1958 ई. हुआ।[40] एक तो ये दोनों प्रतियाँ अधूरी थीं और दूसरे, इनका पाठ भी भ्रष्ट था। विद्वानों ने इस आधार पर इस

रचना के कुछ अंशों को प्रक्षिप्त मानकर इसको *पद्मावत* के बाद की रचना मान लिया। इसका परिचय देते हुए रुद्र काशिकेय ने इसको *पद्मावत* परवर्ती रचना सिद्ध करते हुए लिखा कि "चूँकि फ़रिश्ता ने अपना इतिहास जायसी के सत्तर बरस बाद लिखा, इसलिए बहुत संभव है नारायणदास ने जिस समय *छिताई वार्ता* की रचना की उस समय *पद्मावत* ही उनके सामने मौजूद हो और तब निश्चय ही पद्मिनी की कहानी उन्हें *पद्मावत* से ही ज्ञात हुई होगी।"[41] रुद्र काशिकेय ने इस रचना के प्रतिलिपिकाल 1590 ई. (वि.सं.1647) के आधार पर इसकी रचना इसके बीस वर्ष पहले 1570 ई. (वि.सं.1627) में मानी है।[42] *छिताई वार्ता* को *पद्मावत* के बाद की रचना मानने का रूद्र काशिकेय का आग्रह सही नहीं है। मुश्किल यह है कि वे *छिताई वार्ता* के अंत:साक्ष्य के बजाय उसमें उल्लिखित पद्मिनी विषयक कथा बीजक के आधार पर इसको *पद्मावत* परवर्ती रचना सिद्ध करते हैं, जो युक्तिसंगत नहीं लगता। माताप्रसाद गुप्त ने नारायणदास की *छिताई वार्ता* का समय सारंगपुर के शासक सलाहुद्दीन (सलहदी तँवर) संबंधी बाबर की आत्मकथा के उल्लेख के आधार पर 1526 ई. (वि.सं.1583) माना है।[43] *छिताई वार्ता* में इसकी रचना के समय का उल्लेख इस प्रकार है- *पंद्रह सइ रु तिरासी माता। कछूक सुनी पछ्ली बाता॥ सुदि आषाढ़ सातइं तिथि गई। कथा छिताई जंपन लई॥*[44] इतिहासकार दशरथ शर्मा ने भी इसके आधार पर लिखा है कि "सलहदी (सलाउद्दीन) की मृत्यु 6 मई, 1532 ई. को हुई। इससे स्पष्ट है कि *छिताईचरित* की रचना इससे पूर्व हुई होगी।"[45] माताप्रसाद गुप्त की संपादित *छिताई वार्ता* के प्रकाशन और इसके रचना समय को लेकर हुए विवाद के बाद संयोग से अगरचंद नाहटा को होशियारपुर के साधु आश्रम स्थित विश्वेश्वरानंद वैदिक शोध संस्थान से इसकी पूर्ण प्रति मिल गई। उपलब्ध तीन प्रतियों के आधार पर हरिहरनिवास द्विवेदी और अगरचंद नाहटा के संपादन में 1960 ई. में *छिताईचरित* नाम से इसका ग्वालियर से प्रकाशन हुआ। प्रस्तावना में इसके रचनाकाल को लेकर सभी संदेहों को दूर करते हुए हरिहरनिवास द्विवेदी ने इसके अंत:साक्ष्यों के आधार पर इसको लगभग 1475-1480 ई. के बीच की रचना सिद्ध किया।[46] छिताई कथा को आधार बनाकर काव्य रचना करने वाले चार कवि- नारायणदास, रतनरंग, देवचंद्र और जान कवि हैं। रतनरंग और देवचंद्र ने नारायणदास की रचना में अपनी तरफ़ से कुछ जोड़कर इसको केवल नया रूप दिया है, जबकि जान कवि की रचना तीनों से सर्वथा स्वतंत्र और अलग है। *छिताई वार्ता* या *चरित* दरअसल नारायणदास, रतनरंग और देवचंद्र की संयुक्त रचना है। रतनरंग नारायणदास का शिष्य था, जबकि देवचंद्र उसका समकालीन था। अंत:साक्ष्यों से लगता है कि नारायणदास ने 1480 ई. आसपास इसको ग्वालियर में लिखा और 1526 ई. सारंगपुर में उसने इसको खेमचंद को सुनाया *(कथा*

छिताई जंपन लई)। यहाँ इसी समय देवचंद्र ने इसको सुना और उसने बाद में अपनी तरह से इसका पुनर्लेखन किया। देवचंद्र ने *छिताई वार्ता* की अपनी प्रस्तावना में लिखा है कि- *जइसी सिनी खेमचंद पासा। तैसी कवियन कही प्रगासा।* अर्थात् इस कथा को जिस रूप में मैंने खेमचंद्र के पास सुनी थी उसे उस रूप में कविजन को लिखकर सुनाई थी।[47] आगे उसने और लिखा कि- *आधी कथा नराइन कही। संपूरन दिउचंद उचरी।* अर्थात् आधी कथा नारायणदास ने कही थी। अब मैं देवचंद उसे पूरी कर रहा हूँ।[48] हरिहरनिवास द्विवेदी के अनुसार खेमचंद्र ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर का सभासद था और आख्यानों का प्रेमी था। उसके आग्रह पर ही मानिक ने 1489 ई. *बैताल पच्चीसी* लिखी। मानसिंह का राज्यकाल 1480 से 1516 ई. तक है। इस तरह यह तय है कि "किसी भी दशा में नारायणदास और देवचंद की रचनाएँ खेमचंद्र (1490 ई.) परवर्ती नहीं है।"[49] नारायणदास के अपने रचित अंश में जिस तरह से मानसिंह निर्मित मान मंदिर के निर्माण का सजीव वर्णन (पंक्ति सं. 238 से 292) किया है, उससे यह लगता है कि नारायणदास ने स्वयं इसको बनते हुए देखा होगा। हरिनिवास द्विवेदी का अनुमान है कि मानसिंह ने मानमंदिर का निर्माण राज्यारोहण (1480 ई.) के बाद कम समय में ही पूरा कर लिया था।[50] स्पष्ट है कि *छिताई वार्ता* या *चरित्र* की रचना जायसी के *पद्मावत* से पहले हुई और उसमें पद्मिनी विषयक कथा बीजक था। विजयदेवनारायण साही ने जायसी को इस प्रकरण का पहला और असाधारण कोटि का कवि सिद्ध करने के लिए 'ऐसा नहीं, ऐसा हुआ होगा' की तर्ज़ पर *छिताई वार्ता* में पद्मिनी विषयक प्रकरण के उल्लेख को रतनरंग द्वारा प्रक्षिप्त मानने का आग्रह किया है, जो पूर्वाग्रह लगता है।[51] माताप्रसाद गुप्त की संपादित *छिताई वार्ता* अपूर्ण और अस्पष्ट प्रतियों पर निर्भर थी, इसलिए साही का यह संदेह कुछ हद तक मान्य था, लेकिन अब होशियापुर की प्रति मिल जाने के बाद इस संदेह का कोई आधार नहीं बचता। पद्मिनी विषयक प्रकरण अब तक उपलब्ध सभी प्रतियों में है, इसलिए इसके नारायणदास रचित होने की संभावना ही ज़्यादा है। यदि यह अंश रतनरंग या देवचंद का प्रक्षिप्त भी हो, तो भी अंत:साक्ष्यों से यह सिद्ध है कि ये दोनों भी या तो नारायणदास के समकालीन हैं या उसके आसपास के ही हैं। इस रचना के किस अंश का रचनाकार कौन है, यह तय करना बहुत मुश्किल काम है, लेकिन हरिहरनिवास द्विवेदी और अगरचंद नाहटा ने परिश्रमपूर्वक यह पहचान भी की है और उनके अनुसार इस रचना का पद्मिनी प्रकरण से संबंधित अंश नारायणदास द्वारा ही रचित है। कुल मिलाकर यह साफ़ है कि *छिताई वार्ता* या *चरित पद्मावत* से पूर्व की रचना है और इसमें आया पद्मिनी विषयक प्रकरण प्रक्षिप्त नहीं है। *छिताईचरित* में यह उल्लेख इस प्रकार है –

देवगिरि छोडि सौंरसी गईयो। पातसाहि मनु धओखौ भइयो।
मनमहि धोखौ उपनौ साहि। गई छिताए संगहि ताही।।422।।
ढोवा करति होइ दिन हारी। राधौचेतन लीलीयो हकारी।
मेरी कहिउ न मानइ राउ। बेटी देइ न छांडइ ठाऊं।।423।।
सेवा करई न कुत्बा पढई। अहै निसि जूझि बरबर चढई।
धसि सौंरसी देसतरु गयो। अति धोखौ मेरे जिय भयो।।424।।
रनथंभौर देवल लगि गयो। मेरो काज न एकौ भयो।
इउं बोलइ ढीली कौ धनी। मइ चित्तौर सुनी पदुमिनी।।425।।
बंध्यौ रतनसेन मइ जाइ। लइगो बादिल ताहि छंडाइ।
जो अबके न छिताई लेऊं। तो यह सीस देवगिरि देऊं।।426।।

अर्थात् बादशाह के मन में संदेह हो गया (उसे यह समाचार मिल गया) कि समरसिंह देवगिरि छोड़ कर चला गया है। बादशाह को यह संदेह भी हुआ कि उसके साथ छिताई भी चली गई है। (422) आक्रमण करते हुए दिन नष्ट (हारी) हो रहे हैं (यह जानकर उसने) राघवचेतन को बुलाया। (बादशाह ने) राघवचेतन को कहा कि राजा (रामदेव) मेरा कहा नहीं मानता। वह न बेटी देता है और न स्थान छोड़ता है। (423) वह न सेवा करता है, और न (अधीनतासूचक) ख़ुत्बा पढ़ता है। समरसिंह निकलकर देशांतर चला गया है। इससे मेरे जी में अत्यंत धोखा हुआ है। (424) ''मैं देवल (देवी) के लिए रणथंभोर गया; किंतु मेरा एक भी काम सिद्ध नहीं हुआ।'' (फिर) दिल्ली के स्वामी ने कहा, ''मैंने चित्तौड़ में पद्मिनी के संबंध में सुना। (425) मैंने जाकर रत्नसेन को बाँध लिया, किंतु बादल उसे छुड़ा ले गया। जो अबकी बार मैंने छिताई को न लिया, तो यह सिर मैं देवगिरी को अर्पित करूँगा।'' (426)[52] स्पष्ट है कि *छिताई वार्ता* या *चरित* की रचना जायसी की *पद्मावत* (1540 ई.) के पहले लगभग 1475-1480 ई. के बीच कभी हुई और इसके रचनाकार ने इसमें पद्मिनी प्रकरण के कथा बीजक का इस्तेमाल किया था। संभावना यही है कि जायसी से पहले यह कथा बीजक लोक की स्मृति में मौखिक और लिखित, दोनों रूपों में मौजूद था और यह यहीं से *छिताई वार्ता* या *चरित* में आया और इसी को आधार बनाकर जायसी और हेमरतन सहित अन्य कवि-आख्यानकारों ने अपनी रचनाएँ कीं। पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण (1303 ई.) संबंधी देशज ऐतिहासिक कथा-काव्य की सुदीर्घ परंपरा लोक में सदियों से प्रचलित कथा बीजक पर आधारित है और इनकी जायसी के *पद्मावत* (1540 ई.) पर निर्भरता की धारणा सर्वथा निराधार है। यह धारणा उन 'आधुनिक' इतिहासकारों-विद्वानों ने बनायी है, जिन्हें लोक में स्मृति के व्यवहार के ख़ास ढंग और इस प्रकरण से संबंधित देशज कथा-काव्यों के संबंध में कोई जानकारी

नहीं थी। *पद्मावत* की ख्याति इसकी रचना के पचास वर्ष में ही जायस से सुदूर राजस्थान में पहुँच गई, यह विश्वसनीय नहीं लगता। जायसी कवि तो बड़े थे, लेकिन वे बहुत लोकप्रिय नहीं थे– उनका उल्लेख पारंपरिक इतिहास और सांप्रदायिक साहित्य में नहीं मिलता। राजस्थान, पंजाब और गुजरात, जहाँ पारंपरिक पद्मिनी–कथा–काव्यों की रचना हुईं, के ग्रंथागारों में *पद्मावत* की कोई प्रति नहीं मिलती। इन कथा–काव्यों के रचनाकारों ने *पद्मावत* को कहीं भी उद्धृत नहीं किया, जबकि पारंपरिक कथा–काव्यों में पूर्व की संबंधित रचनाओं के प्रसिद्ध कथनों को उद्धृत करने की परंपरा थी। इस कथा बीजक के आधार पर जायसी ने 1540 ई. में और हेमरतन 1588 ई. में अपनी रचनाएँ कीं, लेकिन इससे पूर्व भी इस बीजक को कथा–काव्य का स्वरूप देने के उपक्रम होते रहे थे। इन दोनों से प्राचीन *गोरा–बादल कवित्त* नामक रचना उपलब्ध है। पद्मिनी प्रकरण का *छिताईचरित* (1475–1480 ई.) में उल्लेख भी यह भी प्रमाणित करता है कि जायसी के *पद्मावत* से पूर्व यह कथा बीजक लोक में प्रचलन में था। परवर्ती इस्लामी इतिहासकार मोहम्मद क़ासिम फ़रिश्ता, अबुल फ़ज़ल और हाजी उद्दबीर के पद्मिनी संबंधी प्रकरण के वृत्तांत भी जायसी की *पद्मावत* के बजाय पारंपरिक कथा बीजक या पारंपरिक देशज आख्यानों–ख्यातों पर निर्भर हैं।

संदर्भ और टिप्पणियाँ:

1. गौरीशंकर हीराचंद ओझा, *उदयपुर राज्य का इतिहास* (जोधपुर: राजस्थानी ग्रंथागार,1996–97), 1: 190.
2. जेम्स टॉड, ''ऑथर्स इंट्रोडक्शन'', *एनल्स एंड एंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान,* संपा. विलियम क्रूक (दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 1971, प्रथम संस्करण 1920), 1: IXII.
3. जेम्स टॉड, वही, 1: 307.
4. श्यामलदास, *वीरविनोद–मेवाड़ का इतिहास* (दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 1986, प्रथम संस्करण 1886), 1: 286.
5. वही, 286.
6. वि.ए. स्मिथ, *ओक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया* (लंदन: ओक्सफ़ोर्ड, संशोधित संस्करण 1921), 233.
7. गौरीशंकर ओझा, *उदयपुर राज्य का इतिहास,* 1: 190.
8. वही, 187.
9. वही, 190.
10. किशोरीसरन लाल, *हिस्ट्री ऑफ़ ख़लजीज़* (मुबई: एशिया पब्लिकेशन हाउस,1967), 122.

11. कालिकारंजन कानूनगो, *स्टीडीज़ इन राजपूत हिस्ट्री* (दिल्ली: एस चंद एंड कंपनी, 1960), 1.

12. वही, 19.

13. इरफ़ान हबीब और हरबंश मुखिया ने फ़िल्म 'पदमावत' पर विवाद के दौरान अपने विचार नितिन रामपाल की स्टोरी (''पदमावती कंट्रोवर्सी: हिस्ट्री इज एट रिस्क ऑफ़ बीइंग ट्रेप्ड बिटविन लेफ्ट राइट इंटरप्रिटेशन्स ऑफ़ दी पास्ट,'' *फर्स्ट पोस्ट,* 21 सितंबर 2019, https://www.firstpost.com/india/padmavati-controversy-history-is-at-risk-of-being-trapped-between-left-right-interpretations-of-the-past-ywwz4225695.html) में व्यक्त किए।

14. रजत दत्ता, ''रानी पदमिनी: ए क्लासिक केस ऑफ़ हाउ लोर वाज इंसरटेड इन टू हिस्ट्री,'' दि वायर, 1 दिसंबर 2017, https://thewire.in/200992 /rani-padmini-classic-case-lore-inserted-history/.

15. रम्या श्रीनिवासन, *दि मेनी लाइव्ज़ ऑफ़ ए राजपूत क्वीन* (सिएटले: युनिवर्सिटी ऑफ़ वाशिंगटन प्रेस, 2007), 3.

16. जार्ज अब्राहम गियर्सन, *दि मोडर्न वरनाक्यूलर लिटरेचर ऑफ़ हिंदुस्तान* (कलकत्ता: दि एशियाटिक सोसायटी, 1889), 15.

17. अबुल फ़ज़ल एल्लामी, *आईन-ए-अकबरी,* अनु. एवं संपा. एच.एस. जैरट (दिल्ली: लो प्राइस पब्लिकेशन, 2011, प्र. सं. 1927), 1: 274.

18. अब्द-अल-क़ादिर बदायूनी, *मुंतख़ब-अल-तवारीख़,* अंगेजी अनुवाद वोलेस्ले हेग (कलकत्ता: एशियाटिक सोसायटी, 1925), 3: 47.

19. थोमस विलियम बेयले, हेनरी जार्ज कीने, संपा., *एन ओरियंटल बायोग्राफ़िकल डिक्शनरी* (लंदन, 1894, न्यूयार्क: क्राउस रीप्रिंट कारपोरेशन, 1965), 309.

20. विजयदेवनारायण साही, *जायसी* (इलाहाबाद: हिंदुस्तानी एकेडेमी, चतुर्थ संस्करण 2017), 23.

21. मुहम्मद क़ासिम फ़रिश्ता, *हिस्ट्री ऑफ़ राइज दि मोहम्मडन पॉवर इन इंडिया* (टिल दि ईयर 1612 ए.डी.), अनु. एवं संपा., जॉन ब्रिग्ज (कलकत्ता: आर. केम्ब्रे एंड कंपनी, 1909), 1: 206.

22. मुनि जिनविजय, ''गोरा-बादल पदमिणी चउपई विषयक एक पर्यालोचन,'' *गोरा-बादल चरित्र* (जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, तृतीय संस्करण 2000), 34.

23. अबुल फ़ज़ल एल्लामी, *आईन-ए-अकबरी,* 1: 274.

24. वही, 274.

25. अब्दुल्लाह मुहम्मद उमर अल-मक्की अल-आसफ़ी अल-उलुग़ख़ानी हाजी उद्दबीर, *ज़फ़रुल वालेह बे मुज़फ़्फ़र वालेह- एन अरेबिक हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात* (बड़ौदा: ओरियंटल इंस्टिट्यूट, 1974), 1: 645-646.

26. *पदमावत* की फ़ारसी-अरबी में कई प्रतियों मिलती हैं। रामचंद्र शुक्ल ने उपलब्ध 13 प्रतियों

को आधार पर इसका पाठ संपादन किया, जिनमें से पाँच प्रतियाँ अच्छी थीं। इनमें से चार लंदन स्थित कॉमनवेल्थ ऑफ़िस में हैं और पाँचवीं प्रति गोपालचंद के पास है। वासुदेवशरण अग्रवाल ने गोपालचंदवाली प्रति के साथ प्रो. श्रीहसन असकरी के पास बिहार से उपलब्ध दो प्रतियों के आधार पर इसका पाठ संपादन किया है। वासुदेवशरण अग्रवाल ने मनेर शरीफ़ के ख़ानका पुस्तकालय की प्रति का भी अपने संपादन में उपयोग किया है। माताप्रसाद गुप्त ने 16 प्रतियों को आधार बनाकर इसका संपादन किया, जो 1963 ई. में प्रकाशित हुआ। *पद्मावत* मध्यकाल में ही लोकप्रिय हो गया था। 1650 ई. में अराकान के वज़ीर मगन ठाकुर ने इसका बँगला में अनुवाद करवाया। *पद्मावत* की अधिकांश प्रतियाँ अवध और बिहार क्षेत्र मिली हैं।

27. मुनि जिनविजय, ''गोरा-बादल पदमिणी चउपई विषयक एक पर्यालोचन,'' *गोरा-बादल चरित्र,* 18.

28. रम्या श्रीनिवासन, *दि मेनी लाइव्ज़ ऑफ़ ए राजपूत क्वीन,* 3.

29. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चऊपई,* संपा. उदयसिंह भटनागर (जोधपुर: राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, द्वि. संस्करण 1997), 98.

30. लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* संपा. भँवरलाल नाहटा (बीकानेर: सादुल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, 1960), 1.

31. *ऋग्वेद* में प्रयुक्त आख्यान संकेतों में से कुछ इस प्रकार हैं- 1. शुनःशेप (1.24), 2. अगस्त्य और लोपामुद्रा (1.179), 3. गृत्समद (2.12), 4. वसिष्ठ और विश्वामित्र (3.53, 7.33 आदि), 5. सोम का अवतरण (3.43), 6. त्र्यरुण और वृशजान (5.2), 7. अग्नि का जन्म (5.11), 8. श्यावाश्व (5.32), 9. बृहस्पति का जन्म (6.71), 10 राजा सुदास (7.18), 11. नहुष (7.95),12. अपाला (8.91), 13. नाभानेदिष्ठ (10.61.62), 14. वृषाकपि (10.86), 15. उर्वशी और पुरुरवा (10.95), 16. सरमा और पणि (10.108), 17. देवापि और शन्तनु (10.98), 18. नचिकेता (10.135) आदि।

32. राधावल्लभ त्रिपाठी, ''भारतीय कथा परंपरा,'' *कथा संस्कृति,* संपा. कमलेश्वर (नयी दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ, 2006), 56.

33. वही, 63.

34. मुनि जिनविजय, ''गोरा-बादल पदमिणी चउपई विषयक एक पर्यालोचन,'' 18.

35. *गोरा बादलरा कवित्त* की पांडुलिपि (ग्रंथांक-7499) अगरचंद नाहटा संग्रह (अभय जैन ग्रंथ भंडार, बीकानेर) में संग्रहीत है।

36. देखिए: अध्याय-2 की टिप्पणी सं. 7.

37. *गोरा-बादल कवित्त,* 115-124.

38. जिनविजय, ''गोरा-बादल पदमिणी चउपई विषयक एक पर्यालोचन,'' 19.

39. दशरथ शर्मा, ''रानी पदमिनी-एक विवेचन,'' *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 4.

40. नारायणदास, *छिताई वार्ता,* संपा. माताप्रसाद गुप्त (काशी: नागरी प्रचारिणी सभा, 1958).

41. रुद्र काशिकेय, ''भूमिका,'' वही, 20.

अध्याय - 4

कथा योजना

पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण पर आधारित ऐतिहासिक कथा-काव्यों की कथा योजना परंपरा से उपलब्ध इसके कथा बीजक पर आधारित है। यह कथा बीजक कमोबेश इन सभी रचनाओं में मौजूद है। भारतीय कथा-काव्य की प्राचीन परंपरा के अनुसार इनमें एक ही कथा बीजक का अलग-अलग तरह से पल्लवन और विस्तार भी है। आधुनिक इतिहास में जिस तरह से 'यथातथ्यता' और 'आनुभविक' का आग्रह होता है, वैसा इन रचनाओं में नहीं है, लेकिन इनमें 'इतिहास' का कथा में रूपांतरण है। यह रूपांतरण इतिहास को कथा और कभी-कभी मिथ में बदल देता है, जो हमारे लोक का स्वभाव है। वह इतिहास का कथा में रूपांतरण इस तरह करता है कि इसमें नाम संज्ञाएँ और घटनाओं के कुछ मोड़-पड़ाव तो इतिहास के रह जाते हैं और शेष कथा या गल्प हो जाता है। इन रचनाओं में इतिहास और उसकी कथा योजना में पर्याप्त देशज वैविध्य है, जो कथा योजना के समय की ख़ास सामाजिक-सांस्कृतिक ज़रूरत और प्रचलित कथा-कवि समयों, अभिप्रायों और कथा रूढ़ियों के अनुसार है। ख़ास बात यह है कि यह कथा बीजक जायसी की कल्पना नहीं है- यह एक ऐतिहासिक घटना की लोक में निरंतर स्मृति से बना है और स्मृति में निरंतर यात्रा के दौरान इसके मोड़-पड़ाव भी बदलते रहे हैं।

1.

पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण को लेकर इतिहासकार और विद्वान् एक राय नहीं हैं, लेकिन उनकी राय को ध्यान में रखकर यहाँ इस घटना के लगभग निर्विवाद और मान्य चरित्र, घटनाएँ और कुछ मोड़-पड़ाव तय किए जा सकते हैं। यह प्रकरण इतना विवादित है कि इस संबंध में किसी अंतिम निष्कर्ष पर पहुँचना बहुत मुश्किल काम है, लेकिन राजस्थान के आधुनिक और लगभग सर्वत्र मान्य इतिहासकार गौरीशंकर हीराचंद ओझा

के अनुसार चौदहवीं सदी के आरंभ में रत्नसिंह चित्तौड़ का शासक था और पद्मिनी उसकी रानी थी। दिल्ली में सत्तारूढ़ अलाउद्दीन ख़लजी ने रत्नसिंह के समय चित्तौड़ पर आक्रमण किया। यह अलग बात है कि कुछ आधुनिक इतिहासकार चौदहवीं सदी के आरंभ में रत्नसिंह और उसकी रानी पद्मिनी का अस्तित्व ही संदेहास्पद मानते हैं। गौरीशंकर ओझा ने रत्नसिंह, पद्मिनी और अलाउद्दीन ख़लजी, इन तीनों के अस्तित्व को ऐतिहासिक माना है।[1] पद्मिनी का उल्लेख समकालीन इस्लामी, अरबी-फ़ारसी स्रोतों में नहीं हैं, इसलिए इस आधार पर कुछ इतिहासकार उसके अस्तित्व को काल्पनिक मानते हैं, जबकि कुछ अन्य इतिहासकार अमीर ख़ुसरो के *ख़ज़ाइन-उल-फ़ुतूह* में मौजूद एक सांकेतिक उल्लेख के आधार पर उसके ऐतिहासिक अस्तित्व को स्वीकार करते हैं।[2] लोक स्मृति और देशज आख्यानों में तो वह सदियों से है। राघवचेतन का अस्तित्व भी कमोबेश प्रामाणिक है- उसका उल्लेख इस्लामी स्रोतों में तो नहीं है, लेकिन अन्य समकालीन जैन और पुरातात्त्विक स्रोतों में यह एकाधिक जगह पर मिलता है। समकालीन देशज जैन स्रोतों में राघवचेतन का उल्लेख एक तांत्रिक और 'अफंडी ब्राह्मण' के रूप में है।[3] इस तरह इतना तो लगभग इतिहास सिद्ध है कि रत्नसिंह और पद्मिनी, राजा और रानी के रूप में चौदहवीं सदी के आरंभ में चित्तौड़ में थे, अलाउद्दीन ख़लजी ने उनकी मौजूदगी में चित्तौड़ पर चढ़ाई की थी और राघवचेतन इस दौरान एक तांत्रिक के रूप में ख्यात था।

इतिहास की इस घटना या प्रकरण का कथा पल्लवन और विस्तार पारंपरिक देशज कथा-काव्यों में कुछ समानताओं के बावजूद अलग-अलग तरह से हुआ है। इन अधिकांश कथा-काव्यों में रत्नसेन, पद्मिनी, अलाउद्दीन ख़लजी और राघवचेतन के साथ गोरा-बादल भी हैं। पल्लवन और विस्तार रचनाकारों की विचारधारा, प्रयोजन और मूल्य निष्ठा के अनुसार है। स्वामिधर्म, सतीत्व, जातीय स्वाभिमान आदि मूल्यों की प्रतिष्ठा के साथ मनोरंजन भी इनका लक्ष्य है और इनके अनुसार यह प्रकरण सभी कथा-काव्यों में अलग-अलग तरह से आया है। उस समय संचार और आवागमन के साधन नहीं थे, इसलिए जानकारियों का प्रचार-प्रसार यथातथ्य नहीं होता था, इसलिए इन कथा-काव्यों में ऐतिहासिक चरित्रों के नाम, कुल-वंश आदि जानकारियाँ भी अलग-अलग तरह से आई हैं। एक ख़ास बात इनके कथा पल्लवन के संबंध में यह भी है कि इनके कुछ रचनाकारों के जैन यति-मुनि और श्रावक होने के बावजूद इनमें धार्मिक आग्रह कहीं भी नहीं है। रत्नसेन-पद्मिनी प्रकरण पर निर्भर इन कथा-काव्यों में कथा विस्तार और उसका पल्लवन समान धार्मिक-सामाजिक पृष्ठभूमिवाले जैन यति-मुनि रचनाकारों के यहाँ भी कुछ हद तक एक-दूसरे से अलग है।

2.

पद्मिनी–रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर देशज कथा–काव्यों के कथा विस्तार और उसके पल्लवन की ख़ास बात यह है कि इसमें रचनाकारों की प्राथमिकताएँ, चरित्रों की नाम संज्ञाएँ और उनकी पहचानें एकरूप और समान होने की जगह अलग–अलग हैं। यह कथा मुख्यत: पद्मिनी–रत्नसेन प्रकरण पर आधारित है, लेकिन सभी कथा–काव्यों में यह प्रकरण प्रमुख नहीं है। रचनाकारों ने अपनी रुचि और ज़रूरत के अनुसार गोरा–बादल के स्वामिधर्म, पराक्रम और बलिदान को भी कुछ कथा–काव्यों में प्रमुखता दी है। *गोरा–बादल कवित्त* में गोरा–बादल प्रकरण प्रमुख है, लेकिन हेमरत्न, लब्धोदय, जटमल नाहर और दलपति विजय के यहाँ पद्मिनी–रत्नसेन कथा में ही यह प्रकरण भी आ गया है। *पाटनामा* में और दयालदास के यहाँ इस संबंध में नज़रिया अलग है– दयालदास कृत *राणारासो* में गोरा–बादल प्रकरण नहीं है, तो *पाटनामा* में इसको प्रमुखता नहीं दी गई है। *पाटनामा* और *राणारासो* चारण रचनाएँ हैं, इसलिए इनमें प्रयोजन कुल–वंश की प्रशस्ति है। *राणारासो* में पारंपरिक चारण कवि–कथा समयों का भी इस्तेमाल हैं। *पाटनामा* में कुल–वंश प्रशस्ति के साथ कल्पना को, प्रामाणिक लगने वाले विवरणों के साथ, यथार्थ की तरह प्रस्तुत करने का पेशेवर कौशल भी है। यहाँ प्रशस्ति के साथ मनोरंजन के लिए रोचकता का भी ध्यान रखा गया है। रत्नसिंह और पद्मिनी के कुल–वंश के संबंध में सभी रचनाकार एक राय नहीं हैं। मलिक मुहम्मद जायसी की तरह जटमल नाहर के अनुसार रत्नसिंह चौहान वंश से है, जबकि शेष अधिकांश रचनाओं में वह गुहिल (गहलोत) वंशी है।[4] समिओकार रत्नसिंह के लिए 'चित्तौड़ाधिपति खुम्माण रत्नसिंह देव' लिखता है।[5] हेमरतन, लब्धोदय और दलपति विजय के अनुसार पद्मिनी सिंघल द्वीप के राजा की बहिन है, जिसने प्रण *(परतिज्ञा जे पूरबे रे, तासु ठवे वरमाल रे)* ले रखा है कि जो उसके भाई को शतरंज के खेल या युद्ध में हरायेगा, वह उसी से विवाह करेगी।[6] दलपति विजय के यहाँ खेल शतरंज की जगह चौपड़ है। कहा गया है– *अभिग्रह लीधो एहबो नार। जीपें मुझ थी परसा पार।*[7] पद्मिनी के कुल–वंश के संबंध में उल्लेख केवल *पाटनामा* और *समिओ* में है। *पाटनामा* के अनुसार वह सिंघल द्वीप के मनोहरगढ़ गाँव के समरसिंह पँवार की बेटी है। कहा गया है– *राजा समनसी री बेटी नाम मदनकुवरी।*[8] समिओकार ने सिंघल द्वीप के राजा को चाइल कुल–वंश का माना है और यह जानकारी भी *समिओ* के अतिरिक्त और कही नहीं मिलती। एक जगह उल्लेख है कि– *राव चाहिल सीख पदमावती कीनी।*[9] गोरा और बादल, दोनों काका–भतीजा हैं और *कवित्त* में और हेमरतन, लब्धोदय और दलपति विजय के यहाँ चौहान हैं। *कवित्त* में उल्लेख है कि *चहुणा कुल ऊपना।*[10] *कवित्त* में बादल

की उम्र 23 वर्षीय है। कहा गया है कि- *वरस वीस त्रणि अग्गलऊ।*[11] इन रचनाओं में अलाउद्दीन से लड़ते हुए गोरा का निधन हो जाता है और बादल जीवित रहता है। गोरा की पत्नी इनमें से अधिकांश में सती होती है। इन अधिकांश रचनाओं में बादल की माँ और पत्नी युद्ध के लिए आमादा बादल को रोकने का प्रयास करती है। बादल और उनके बीच हुए संवाद को इनमें से कुछ रचनाओं में ख़ास महत्त्व दिया गया है। *पाटनामा* में यह प्रकरण अलग तरह से है। यहाँ गोरा और बादल सहित फातिया और जेतमाल तथा सेवक रामा और कला विवाहोपरांत पद्मिनी के साथ सिंघल द्वीप से चित्तौड़ आते हैं। चित्तौड़ में रत्नसिंह इनको जागीरें देता है और इनके लिए आवास बनवाता है।[12] हेमरतन और लब्धोदय के यहाँ और *पाटनामा* में रत्नसिह की पटरानी का प्रभावती का भी नामोल्लेख है, जिससे भोजन के स्वादहीन होने पर नाराज़ होकर वह पद्मिनी लाने का निश्चय करता है। हेमरतन ने लिखा है-*पटराणी तसु प्रभावती* और लब्धोदय ने लिखा है- *पटराणी प्रभावती रंभारूप समान*[13], जबकि *पाटनामा* में यह रानी पाढ़ियारिनी है।[14] हेमरतन, लब्धोदय और दलपति विजय ने पद्मिनी से विवाह पूर्व उसकी पटरानी के एक पुत्र का नामोल्लेख भी किया है, जो सामंतों के साथ मिलकर यह निश्चय करता है कि पद्मिनी अलाउद्दीन ख़लजी को देकर राजा को ले लेना चाहिए। हेमरतन और लब्धोदय के अनुसार उसका नाम वीरभाण है[15], जबकि दलपति विजय के अनुसार उसका नाम जसवंत सिंह है।[16] राघवचेतन के संबंध में इन रचनाओं का रवैया अलग-अलग तरह का है और *पाटनामा* में तो यह अन्य रचनाओं से सर्वथा अलग है। *कवित्त* के अनुसार राघवचेतन परदेशी ब्राह्मण है, जो राजा के साथ निकटता क़ायम कर लेता है। *कवित्त* में एक जगह उल्लेख है कि- *विप्र एक परदेस थीं, फिरत आयउ तिण ठायह।*[17] हेमरतन और लब्धोदय के अनुसार वह देश का ही ब्राह्मण है और जटमल नाहर और समिओकार के अनुसार वह सिंघल द्वीप निवासी है, जो पद्मिनी के विवाहोपरांत उसके साथ चित्तौड़ आया है।[18] *पाटनामा* में राघव और चेतन दो व्यक्ति हैं, जो रत्नसिंह के पारंपरिक बहीबंचा, मतलब वंशावली लेखक हैं। ख़ास बात यह है कि *पाटनामा* में आरंभ में राघव और चेतन खलनायक हैं, लेकिन अंतिम चरण में उनको स्वामिभक्त दिखाया गया है। ये दोनों वंशावली में पद्मिनी के नामोल्लेख के बदले विवाह में प्राप्त दहेज का आधा अपने को देने की माँग करते हैं। जब यह नहीं मिलता है और राजा इसके लिए एकाधिक बार उनसे बादशाह चढ़ा लाने का आग्रह करता हैं, तो वे दिल्ली चले जाते हैं। अलाउद्दीन इन दोनों के परामर्श पर चित्तौड़ पर चढ़ाई करता है, लेकिन राजा से भेंट के बाद स्वामिभक्ति दिखाते हुए ये दोनों राजा को मुक्त करवाने की योजना बनाकर उसको अमल में लाने में गोरा-बादल और अन्य सामंतों की मदद करते हैं।[19]

3.

पद्मिनी–रत्नसेन विषयक देशज कथा–काव्यों के मोड़–पड़ाव भी एकरूप और समान नहीं हैं। इन कथा–काव्यों की शुरुआत एक–दूसरे से अलग है। जटमल नाहर, समिओकार और दयालदास की रचनाओं को छोड़कर शेष सभी कथा–काव्यों में कथा की शुरुआत स्वादहीन और अरुचिकर भोजन से राजा की नाराज़गी और इसके लिए पटरानी के पद्मिनी लाने के ताने–आग्रह से होती है। हेमरतन के यहाँ राजा कहता है– *आज न भोजन भावइ* तो रानी उत्तर में कहती है कि *भगति न भावई मुझ केळवी, तौ कई नारी आणउ नवी।* इसी तरह लब्धोदय के यहाँ राजा कहता है कि– *स्वाद रहित सब रसवती जी, कां न करो चित चेत* तो रानी जवाब देती है कि– *पदमिणी परणो नवी जी, जिम भोजन हुए सवाद।*[20] ख़ास बात यह है कि यह प्रकरण पहले से ही कुछ देशज कथा–कहानियों में कवि–कथा रूढ़ि की तरह प्रयुक्त होता रहा है। इन रचनाओं में कहीं इस कवि–कथा रूढ़ि का उल्लेख भर है, तो कहीं रचनाकारों ने इसको अपनी प्रतिभा से विस्तार दिया है। *कवित्त* सहित अन्य रचनाओं में यह बहुत संक्षिप्त है, जबकि *पाटनामा* में यह बहुत विस्तृत और रोचक है। कविता में विस्तार की गुंजाइश कम होती है, इसलिए कुछ रचनाओं में रचनाकार केवल इस घटना का उल्लेख करके आगे बढ़ गए हैं, लेकिन *पाटनामा* गद्य रचना है, इसलिए इसमें रचनाकार ने इस घटना को विवरणों के साथ प्रस्तुत किया है। इसमें राजा के आग्रह पर ब्राह्मणों के स्थान पर पटरानी सहित सभी रानियाँ अपने हाथों से भोजन बनाती हैं, जो उनसे अच्छा नहीं बनता। राजा सभी अतिथियों को भोजन कराने के बाद इसके स्वाद के संबंध में उनसे पूछता, तो वे सभी जान–बूझकर इसके अच्छे होने की बात कहते हैं। राजा बाद में स्वयं भोजन करता जाता है और इसे ख़राब पाकर रानियों को बुरा–भला कहता है। अंत में सभी की ओर से उत्तर में पटरानी कहती है कि उन्हें तो भोजन कराना नहीं आता, यदि राजा को अच्छा भोजन करना है, तो वह पद्मिनी ले आए। राजा नाराज़ होकर पद्मिनी लाने का निश्चय कर वहाँ से चल देता है। *पाटनामा* में यह घटना बहुत विस्तृत और बारीक विवरण के साथ है।[21] जटमल नाहर और समिओकार के यहाँ शुरुआत इससे भिन्न है– उनके अनुसार सिंघल द्वीप से चार भाट राजा के दरबार में आते हैं। राजा के पूछने पर वे बताते हैं कि सिंघल द्वीप ऐरावत हाथी और पद्मिनी स्त्रियों के लिए प्रसिद्ध है। राजा के पूछने पर वे बताते हैं कि स्त्रियाँ– शंखिनी, चित्रिणी, हस्तिनी और पद्मिनी, चार प्रकार की होती हैं और इनमें पद्मिनी सर्वश्रेष्ठ है। पद्मिनी स्त्री से कमल की गंध आती है ओर उसके चारों ओर भ्रमर मँडराते हैं। राजा के चित्त में पद्मिनी बस जाती है और वह इसको पाने के लिए सिंघल द्वीप जाने का निश्चय करता है।[22] दयालदास की शुरुआत और भी अलग

है। उसके अनुसार रत्नसिंह की राजधानी में गौरखनाथ या गोपीचंद नाम का एक योगी आता है। राजा उसके दर्शन के लिए जाता है और उसके पिछले चातुर्मास के संबंध में पूछता है, तो योगी उत्तर में कहता है कि उसका पिछला चातुर्मास सिंघल द्वीप में था, जहाँ कमल के समान सुगंधित पद्मिनी स्त्रियाँ हर घर में हैं। यह सुनकर राजा को प्रेम हो जाता और विरह संतप्त रहने लगता है। योगी उसकी यह अवस्था देखकर उसको योगबल से पद्मिनी प्रदान कर देता है।[23]

राजा का पद्मिनी से विवाह का निश्चय कर सिंघल द्वीप पहुँचने का वृत्तांत इन कथा काव्यों में बहुत संक्षिप्त और चामत्कारिक है। जायसी की तरह पारंपरिक कथाकारों ने इनमें सिंघल द्वीप के मार्ग का कोई विवरण नहीं दिया है। कवित्त में केवल यह उल्लेख है कि- *धरि मच्छर संघलि सांचरयउ, नेव जीत कन्या वरी* अर्थात् नाराज़ होकर रत्नसिंह सिंघल की ओर निकल पड़ा और प्रण जीतकर उसने कन्या (पद्मिनी) का वरण किया।[24] हेमरतन के यहाँ यह प्रकरण अपेक्षाकृत विस्तृत है। उसके अनुसार राजा अपने सेवक के साथ पद्मिनी की खोज में निकल पड़ा। पद्मिनी और सिंघल के मार्ग के संबंध में उसे एक पथिक ने बताया। वह दिन-रात एक करके समुद्र के किनारे पहुँचा, जहाँ उसकी भेंट एक उदास योगी से हुई। राजा के अनुरोध पर योगी ने उसको सेवक सहित आकाश मार्ग से सिंघल द्वीप पहुँचा दिया।[25] लब्धोदय ने इस संबंध में लगभग हेमरतन को दोहराया है। समिओकार और जटमल नाहर का यह वृत्तांत भी कमोबेश हेमरतन जैसा ही है। उनके अनुसार राजा के दरबार में चमत्कारी योगी आया और उसने राजा के अनुरोध पर अपनी मृगछाला बिछाई और दोनों को उस पर बैठाकर उसने उन्हें सिंघल द्वीप छोड़ दिया।[26] दलपति विजय का इस वृत्तांत का विवरण हेमरतन से मिलता-जुलता है। उसके अनुसार राजा सिंघल का मार्ग जानने वाले एक भाट को साथ लेकर समुद्र के किनारे पहुँचा, जहाँ उसकी भेंट एक सिद्ध योगी आयस से हुई। राजा के अनुरोध पर उसने दोनों को अपनी हथेलियों पर बैठाया और सिंघल द्वीप पहुँचा दिया।[27] दयालदास के यहाँ यह प्रकरण नहीं है, जबकि *पाटनामा* में यह सबसे अधिक विस्तृत है। *पाटनामा* के अनुसार राजा पद्मिनी से विवाह का निश्चय कर दुर्ग से नीचे तलहटी में आ गया, जहाँ उसकी भेंट एक दिन गोरखनाथ से हुई, जो अपने गुरु मच्छंदरनाथ से मिलने सिंघल द्वीप जा रहे थे। राजा ने पद्मिनी से विवाह और सिंघल द्वीप जाने की अपनी इच्छा उनको बताई। गोरखनाथ ने राजा को वचन दे दिया कि वह यह संभव कर देंगे। गोरखनाथ सिंघलद्वीप गए और अपने गुरु से अनुमति लेकर आए और राजा को आकाश मार्ग से अपनी उड़न खटोली में बैठाकर सिंघल द्वीप ले गए।[28] सभी कथा-काव्यों में विवाहोपरांत रत्नसेन की चित्तौड़गढ़ वापसी का केवल उल्लेख है, लेकिन *पाटनामा* में इसका विस्तृत विवरण

दिया गया है। *पाटनामा* में रत्नसेन के पद्मिनी सहित जहाज में बैठकर नौ दिन की यात्रा के बाद रामेश्वरम् पहुँचने, वहाँ रुककर रामेश्वरम् के दर्शन और वहाँ ब्रह्मभोज और दान-पुण्य आदि करने और फिर वहाँ से सेना सहित प्रस्थान कर तीर्थाटन करते हुए अठारह महीने बाद चित्तौड़गढ़ पहुँचने का वृत्तांत है।[29]

विवाह के बाद राजा की चित्तौड़ वापसी और राघवचेतन का नाराज़ होकर बादशाह के पास दिल्ली जाने का वृत्तांत भी इन सभी रचनाओं में अपनी-अपनी तरह से है- सभी ने इसे कमोबेश अपनी तरह से गढ़ा है। ख़ास बात यह है कि कुछ रचनाओं में तो सही मायने में कथा भी यहीं से शुरू होती है- इससे पूर्व की घटनाओं का इनमें केवल सांकेतिक उल्लेख है। राघव और चेतन *पाटनामा* में दो अलग व्यक्ति हैं[30] और हेमरतन *(राघव चेतन बेही जणा)* और लब्धोदय *(राघव चेतन दोई वसे चित्रकूट में व्यास)* भी उनको एक स्थान पर दो कहते हैं[31], शेष में वह एक व्यक्ति है। *कवित्त* में राघवचेतन एक परदेशी ब्राह्मण है, जो राजा के अत्यंत निकट है। खेल में एक दिन हार जाने पर राजा ने उससे दाँव माँगा। ब्राह्मण इससे अप्रसन्न होकर दिल्ली गया और बादशाह को प्रभावित कर चित्तौड़ पर चढ़ा लाया।[32] हेमरतन और उसके अनुवर्ती लब्धोदय के अनुसार पद्मिनी के साथ विलासरत होने के समय राघवचेतन के आगमन से क्षुब्ध होकर राजा ने उसको को देश निकाला दे दिया। राघवचेतन क्षुब्ध होकर दिल्ली गया और बादशाह को चित्तौड़ पर चढ़ा लाया।[33] समिओकार और जटमल नाहर का यह वृत्तांत अलग है और केवल उनके यहीं है। उनके अनुसार राजा और राघवचेतन, दोनों शिकार पर गए और लौटने में विलंब हो गया। राजा ने पद्मिनी को देखकर ही जल ग्रहण करने का प्रण ले रखा था, इसलिए दर्शन के लिए राघवचेतन ने पद्मिनी की प्रतिमा बनाई और उसकी जाँघ पर वैसा ही तिल बनाया, जैसा पद्मिनी की जाँघ पर था। राजा को इससे राघवचेतन के चरित्र पर संदेह हो गया और उसने उसको देश निकाला दे दिया।[34] दयालदास के वृत्तांत में राघवचेतन नहीं है। वह केवल यह लिखता है कि पद्मिनी से विवाहोपरांत दूसरे देशों के राजा रत्नसेन से ईर्ष्या करने लगे और दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन ख़लजी ने पद्मिनी पाने के लिए उस पर आक्रमण कर दिया।[35] *पाटनामा* में यह प्रकरण सर्वथा भिन्न है- इसमें राघव और चेतन, दोनों राजा रत्नसेन के बहीबंचा (वंशावली वाचक-लेखक) हैं। राजा की सिंघल द्वीप से विवाहोपरांत वापसी पर दोनों ने अपनी पारंपरिक बही में राजा की चौदह रानियों के साथ पंद्रहवीं रानी के रूप पद्मिनी का नाम दर्ज़ किया। बदले में उन्होंने परंपरानुसार विवाह में आए दहेज में से आधा अपने को देने की माँग की, जो राजा ने नहीं मानी। दोनों अपनी माँग पर अड़े रहे, तो राजा ने क्रुद्ध होकर इसके लिए उनको दिल्ली के बादशाह को चढ़ा लाने का ताना दिया। यह बात राजा ने

एकाधिक बार कही, तो वे दोनों इससे नाराज़ होकर आदेश की पालना के लिए दिल्ली गए और बादशाह को प्रभावित कर चित्तौड़ पर चढ़ा लाए।[36]

दिल्ली पहुँचकर राघवचेतन का अलाउद्दीन का विश्वासपात्र बनकर उसको पद्मिनी के संबंध में बताना और अलाउद्दीन का चित्तौड़ पर आक्रमण का निश्चय करना इस कथा की प्रमुख घटना है और यह कमोबेश सभी रचनाओं में कुछ भिन्नताओं के साथ मौजूद है। दयालदास के यहाँ यह घटना नहीं है। हेमरतन, लब्धोदय और दलपति विजय के अनुसार राघवचेतन दिल्ली में ज्योतिष विद्या और अपने ज्ञान के कारण प्रसिद्ध होकर बादशाह का विश्वस्त हो गया। दरबार में कोमल वस्तु के संबंध में बात चलने पर राघवचेतन ने पद्मिनी की चर्चा की। बादशाह ने राघवचेतन को अपने हरम की स्त्रियों में से पद्मिनी की तलाश करने के लिए कहा और जब इसमें कोई पद्मिनी स्त्री नहीं मिली, तो उसने राघवचेतन द्वारा उसके सिंघल द्वीप में होने का ज़िक्र करने पर वहाँ चढ़ाई की। समुद्र लाँघने में असफल रहने पर वह दिल्ली लौट आया। राघव के यह कहने पर कि पद्मिनी चित्तौड़ में है, तो उसने चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया।[37] *पाटनामा* में भी प्रकरण यही है, लेकिन यहाँ यह बहुत विस्तृत है। यहाँ कोमल वस्तु की चर्चा दरबार में नहीं, शिकार के समय जीवित खरगोश को चेतन द्वारा पकड़कर हाथ में लेने से होती है।[38] हेमरतन और उसके अनुवर्ती लब्धोदय और दलपति विजय के यहाँ कोमल वस्तु हंस का पंख है।[39] जटमल नाहर और समिओकार के यहाँ प्रकरण यही है, लेकिन यह कुछ अलग रूप में है– दिल्ली जाकर राघवचेतन जंगल के अंत में एक उद्यान में रहने लगा। एक दिन शिकार के समय अलाउद्दीन को कोई शिकार नहीं मिला, क्योंकि सभी हिरण राघवचेतन के संगीत पर मुग्ध होकर उसके पास आ गए। अलाउद्दीन इससे प्रभावित हुआ और उसकी मैत्री राघवचेतन से हो गई। पद्मिनी के लक्षणों की चर्चा का प्रसंग इसमें भी दरबार में लाए जीवित खरगोश से शुरू हुआ। सभी कथा–काव्यों में इस प्रकरण में पद्मिनी सहित स्त्रियों की सभी कोटियों– हस्तिनी, शंखिनी और चित्रिणी के लक्षणों आदि की विस्तृत चर्चा भी हुई है।[40] बादशाह के हरम की स्त्रियों के परीक्षण की पद्धति भी सभी रचनाओं में अलग तरह से है। *कवित्त* में राघवचेतन काँच के घड़े में तेल भरवाकर उसमें स्त्रियों के प्रतिबिंब के आधार पर परीक्षण करता है[41], जबकि हेमरतन और लब्धोदय के यहाँ बादशाह इस निमित्त माणिमय आवास बनवाता है।[42] *पाटनामा* में नीचे तेल का कड़ाह भर कर रखा गया और राघव और चेतन उसमें देखकर स्त्रियों की कोटि की परख करते हैं।[43] सिंघल द्वीप जाकर पद्मिनी पाने में असफल रहकर दिल्ली लौटने और फिर चित्तौड़ पर पद्मिनी के लिए चढ़ाई का वृत्तांत भी अधिकांश कथा–काव्यों में है।

बादशाह का चित्तौड़ पर आक्रमण, राजा को विश्वास में लेकर छलपूर्वक दुर्ग में प्रवेश, पद्मिनी देखना और राजा को बंदी बनाने संबंधी घटनाएँ दयालदास के *राणारासो* को छोड़कर सभी कथा-काव्यों में हैं और कुछ हद तक अलग-अलग तरह से हैं। *पाटनामा* में यह बहुत विस्तृत और अन्य सभी रचनाओं में ये संक्षिप्त हैं।[44] *कवित्त* के अनुसार चित्तौड़ पहुँचकर बादशाह ने जब दुर्ग को जीतना असंभव पाया, तो उसने मंत्रियों से परामर्श कर छलपूर्वक राजा को बंदी बनाने का निश्चय किया। उसके दुर्ग देखकर भोजन के उपरांत लौट जाने के प्रस्ताव को राजा ने स्वीकार कर लिया। बादशाह ने लौटते समय राजा को साथ लिया और दुर्ग के द्वार से बाहर आते ही उसको बंदी बना लिया।[45] यह वृत्तांत कमोबेश कुछ भिन्नताओं के साथ सभी रचनाओं में है। हेमरतन और लब्धोदय के यहाँ कुछ अलग है। इनमें राजा के साथ छल करने का परामर्श राघवचेतन देता है। ख़ास बात यह है कि इनमें अलाउद्दीन के प्रस्ताव में पद्मिनी के हाथ से भोजन करने की शर्त भी शामिल है। इनमें यह वृत्तांत अपेक्षाकृत विस्तृत भी है- समझौते से पूर्व दोनों पक्ष अपने सामंत-वकील एक-दूसरे को, प्रस्ताव और शर्तों के साथ भेजते हैं। वृत्तांतों में पद्मिनी को देखने की घटना भी शामिल है। शर्त के अनुसार पद्मिनी बादशाह को भोजन नहीं करवाती, लेकिन वह अपनी सखियों के आग्रह पर जब अलाउद्दीन को दखने के लिए झरोखे पर आती है, तो राघवचेतन के संकेत पर बादशाह उसको देख लेता है।[46] जटमल नाहर के यहाँ वृत्तांत इसी तरह से है, लेकिन यहाँ अलाउद्दीन पद्मिनी के स्थान पर सुंदर दासी को उसके सामने करने पर यह शिकायत करता है कि उसके साथ छल हुआ है। वह कहता है- *दिखलावत और त्रिय कपट कियो मुझ साथ।*[47] *पाटनामा* में यह प्रकरण बहुत विस्तृत और अलग भी है। इसमें वृत्तांत के मोड़-पड़ाव भी अलग हैं। यहाँ बादशाह लंबे समय तक जब दुर्ग को नहीं जीत पाता है, तो राघव और चेतन के परामर्श पर दुर्ग से नीचे महादेव के मंदिर में दर्शन के लिए आए राजा को बंदी बना लेता है और शर्त रखता है कि पद्मिनी दे दो और मुक्त हो जाओ। यहाँ राघव और चेतन, दोनों राजा की तरफ़ से दुर्ग में संदेश भेजते हैं कि पालकियों में पद्मिनी के नाम पर योद्धा भेजकर रत्नसिंह को मुक्त करवाना है। गोरा और बादल इस परामर्श के अनुसार रत्नसिंह को मुक्त करवाकर दुर्ग में ले जाते हैं। अलाउद्दीन सेना एकत्र कर फिर दुर्ग पर आक्रमण करता है, तो रत्नसिंह समझौते का प्रस्ताव रखता है। शर्त के अनुसार अलाउद्दीन दुर्ग में जाता है और दुर्ग के प्रमुख स्थानों और पद्मिनी को देखकर भोजनोपरांत लौट आता है। लौटकर वह फिर पद्मिनी पाने के लिए युद्ध छेड़ देता है।[48] कथा के ये पड़ाव सर्वथा भिन्न हैं और जायसी सहित पारंपरिक रचनाकारों से एकदम अलग हैं। समिओकार अन्य चारण-जैन कवियों की तरह अल्लाउद्दीन

ख़लजी के छलपूर्वक पद्मिनी देखने दुर्ग में जाने के प्रकरण के स्थान पर मौलिक प्रकरण की उद्भावना करता है। वह उसको मणिकर्णिका के एक सिद्ध के छद्मवेश में दुर्ग के द्वार पर तीन महीने तक आसन लगाकर बिठाता है और इस तरह रत्नसेन सहित सभी का मन जीतने की अलग और नयी कल्पना करता है। इसमें उल्लेख है कि सुल्तान ने अपने मीरों से मंत्रणा कर *जटा बंधि मुग्टं महा रिद्ध धारी। मिल्यो नाइकं जाई पोठं मँझारी* अर्थात् उसने मुकुट के स्थान पर जटा बाँधी, जिसमें कुछ धन रखा और फिर दुर्ग की पोल (दरवाज़ा) पर रहनेवाले अधिकारी से जाकर मिला।[49]

कथा के अंतिम चरण की घटनाएँ- सामंतों का पद्मिनी देकर राजा लेने का निश्चय, पद्मिनी का गोरा-बादल से राजा को मुक्त करवाने का अनुरोध, गोरा-बादल द्वारा युक्तिपूर्वक राजा की मुक्ति और बादशाह की पराजय *गोरा-बादल कवित्त,* हेमरतन, लब्धोदय और जटमल नाहर के यहाँ कमोबेश समान हैं। दयालदास के यहाँ गोरा-बादल नहीं हैं- यहाँ केवल युद्ध और उसमें बादशाह की पराजय है। वह लिखता है कि- *जीत्यो खुमानु खग जोर, जगु मग कित्ति विस्तार हुव* अर्थात् राणा रत्नसिंह ने अपनी तलवार के ज़ोर पर विजय प्राप्त की। उसके जगमगाते यश का चारों तरफ़ विस्तार हुआ।[50] *कवित्त* के अनुसार गोरा-बादल सहित सभी सामंत दूत भेजकर बादशाह को राजा के बदले पद्मिनी देने का संदेश भेजते हैं और डोलियों में पद्मिनी की जगह योद्धा भेजने का षड्यंत्र रचते हैं।[51] हेमरतन और लब्धोदय के यहाँ इससे अलग बादल स्वयं पद्मिनी का दूत बनकर बादशाह के पास जाता है और यहाँ 2000 पालकियों के बीच मुख्य पालकी में गोरा है।[52] इन वृत्तांतों में अल्पवय बादल की माता और पत्नी भी आती हैं, जो युद्ध के लिए सन्नद्ध अपने बेटे और पति को रोकने का प्रयत्न करती हैं। बादल और उसकी माँ और पत्नी के बीच संवाद इन अधिकांश रचनाओं में है। इन वृत्तांतों में गोरा का निधन और उसकी पत्नी के सती होने की घटनाएँ भी हैं।

चित्तौड़ के किले पर अलाउद्दीन के घेरे का विवरण *पाटनामा* में दिया गया है। इसके अनुसार 12 बड़े युद्ध, 19 झगड़े और छोटी कई लड़ाइयाँ हुईं और घेरा 10 बरस तक रहा।[53] गोरा-बादल के नेतृत्व में बादशाह के डेरे तक जाने वाली डोलियों की संख्या भी रचनाकारों ने अपने हिसाब से रखी हैं। *कवित्त* में षड्यंत्र के लिए केवल 500 डोलियाँ तैयार करने के उल्लेख है। इसमें कहा गया कि *डोली कीजई पंचसई*[54], जबकि हेमरतन और लब्धोदय के यहाँ यह संख्या 2000[55] और पाटनामा में 720[56] हैं। बादशाह की कैद से षड्यंत्र पूर्वक रत्नसिंह को छुड़ाने का वृत्तांत हेमरतन और लब्धोदय ने रोचक बनाया है। यहाँ बादल पद्मिनी के नाम का एक छद्म प्रेम

पत्र लेकर जाता है और वह बादशाह के समक्ष पद्मिनी के उसके लिए विरह की मौखिक चर्चा भी करता है।[57] लब्धोदय के यहाँ अंत में एक और मौलिक कल्पना की गई है। बादशाह पराजित होकर जब दिल्ली लौटता है, तो बेगम उससे पद्मिनी के संबंध में पूछती है, तो वह कहता है कि ''पद्मिनी का मुँह काला किया, ख़ुदा की दुआ से ख़ैरियत हुई।'' जवाब में बेगम उसको नसीहत देती हुई कहती है कि– ''स्त्री के कारण तो रावण का राज चला गया– अब ख़ुदा का ध्यान करते हुए आनंद से राज्य करो।''[58] हेमरतन और दलपति विजय अलाउद्दीन द्वारा राजा को विश्वास में लेने के प्रकरण में नया आयाम जोड़ते हैं। वे दोनों बादशाह से राजा को कहलवाते हैं कि वे दोनों पूर्वजन्म के एक ही माँ से उत्पन्न हुए भाई हैं *(जनमंतर भाई)* और अपकर्म के कारण बादशाह का जन्म मुसलमान घर में हुआ है, जबकि सत्कर्म और पुण्य के कारण राजा हिंदू घर में पैदा हुआ है।[59] अलाउद्दीन और रत्नसेन के बीच पद्मिनी के लिए हुए इस युद्ध में *पाटनामा* को छोड़कर सभी रचनाओं में बादशाह के ससैन्य भाग जाने का वर्णन मिलता है। इनमें बादल के पराक्रम और दोनों पक्षों को हुई जन–धन की हानि का भी वर्णन है। हेमरतन के अनुसार *लूटी लीधो लश्कर सहू के नाट्या के मार्या बहू* अर्थात् लशकर लूट लिया और ख़लजी के सैनिक या तो भाग गए या मारे गए।[60] लब्धोदय के अनुसार बादल ने बादशाह को जीवित छोड़कर उसका लशकर लूट लिया, बादशाह भूखा–प्यासा बेहाल दो दिन बाद नमाज़ के समय अपने लशकर तक पहुँच पाया और वहाँ से दिल्ली लौट गया।[61] *पाटनामा* की कथा का अंतिम पड़ाव अलग है– इसमें आश्चर्यजनक रूप से दोनों पक्षों की पराजय दिखाई गई है। अंत में कहा गया है कि *पातसाही फोज भागी अर अठीने गढ़ चीतोड़ भागो। पदमणी हेलो गढ़ चीतोड़ भागो संमत बरासे अठावन बरसे 1258 सावण बुदी 5 के दन चीतोड़ भागो* अर्थात् बादशाही फ़ौज भागी और इधर दुर्ग चित्तौड़ ध्वस्त हुआ। पद्मिनी के आह्वान पर विक्रम संवत श्रावण बुध 5, शुक्रवार के दिन (22 जून, 1201 ई.) चित्तौड़गढ़ ध्वस्त हुआ।[62] *पाटनामा* को छोड़कर सभी रचनाओं में अंत में रत्नसिंह की विजय दिखाई गई है और कुछ में उसके द्वारा बादल को आधा राज्य देने की बात भी आई है। *पाटनामा* में कथा का अंतिम चरण सबसे अलग और ख़ास है। इसमें बादशाह की फ़ौज के भागने और दुर्ग के ध्वंस और पराजय का स्पष्ट उल्लेख है। इसमें लंबे युद्ध के बाद आहत गोरा और बादल दुर्ग में लौटकर रत्नसेन और पद्मिनी से मिलते हैं। रत्नसिंह यह सोचकर कि गोरा और बादल, युद्ध में अपने पराक्रम का साक्ष्य देकर यह कहते रहेंगे कि चित्तौड़ उनके कारण है, दोनों का तलवार से वध कर देता है और पद्मिनी यह सुनकर आत्महत्या कर लेती है। दुर्ग में हुई इस घटना से अलाउद्दीन को बल मिलता है और वह आक्रमण कर दुर्ग

जीत लेता है।[63] ख़ास बात यह है कि इस प्रकरण में ख़ूब चर्चित और विवादित जौहर का उल्लेख या विवरण किसी रचना में नहीं है। इनमें से अधिकांश में अंत में गोरा की पत्नी के सती होने का वृत्तांत है।

4

पद्मिनी विषयक पारंपरिक देशज कथा-काव्यों के चरित्र और इसकी कथा के मोड़-पड़ाव एक-दूसरे से अलग होने के साथ मलिक मुहम्मद जायसी के *पद्मावत* से भी भिन्न हैं। जायसी की कथा बहुत विस्तृत, जटिल और कई मोड़-पड़ावों वाली है, इसमें कई उपकथाएँ हैं, जबकि देशज कथा-काव्यों की कथा अपेक्षाकृत सरल और सीधी है। देशज कथा-काव्यों की कथा में मोड़-पड़ाव भी बहुत कम हैं और ख़ास बात यह है कि इनमें कुछ मोड़-पड़ाव इन सभी कथा-काव्यों में है। पद्मिनी विषयक कथा बीजक के जायसी के कथा विस्तार और पल्लवन में अभिधार्थ और ध्वन्यार्थ अलग-अलग हैं, इसलिए इसके मोड़-पड़ाव विचित्र हैं और ये कई जगह अटपटे भी लगते हैं। देशज कथा-काव्यों में चरित्रों में से केवल तीन प्रमुख चरित्र-रत्नसेन, पद्मिनी और राघवचेतन *पद्मावत* में भी हैं। *पद्मावत* के शेष सभी चरित्र जायसी के अपने और मौलिक हैं। गंधर्वसेन, चंपावती, हीरामन, चित्रसेन, नागमती, यशोवती, कुमुदिनी और देवपाल नामवाचक संज्ञाएँ देशज कथा-काव्यों में नहीं हैं। गंधर्वसेन जायसी के अनुसार सिंघलद्वीप का राजा है[64], जबकि अधिकांश देशज कथा-काव्यों में पद्मिनी के पिता का नामोल्लेख नहीं मिलता। केवल *पाटनामा* में उसका समरसिंह पँवार के रूप में नामोल्लेख है। पदमिनी से विवाह से पूर्व रत्नसिंह की पटरानी का नाम जायसी के अनुसार नागमती है[65], जबकि पारंपरिक देशज कथा-काव्यों में से कुछ में यह नाम प्रभावती है। हीरामन की जायसी के *पद्मावत* में कथा के लगभग सभी मोड़-पड़ावों में निर्णायक भूमिका में है, लेकिन इस तरह का कोई पात्र देशज कथा-काव्यों में नहीं है।

जायसी के *पद्मावत* के कथा के अधिकांश मोड़-पड़ाव देशज कथा-काव्यों में नहीं है। *पद्मावत* का आरंभ देशज कथा-काव्यों से अलग है। जायसी के अनुसार रत्नसेन हीरामन की सराहना पर पद्मावती की खोज में सिंघल द्वीप के लिए प्रस्थान करता है[66], जबकि देशज कथा-काव्यों में इसका कारण स्वादहीन भोजन पर रानी से नाराज़गी और रानी का इसके लिए पद्मिनी ले आने के ताने का कवि-कथा समय है। हीरामन तोते का चित्तौड़ पहुँचने का वृत्तांत भी किसी देशज कथा-काव्य में नहीं है। जायसी ने रत्नसेन की सिंघल यात्रा का भौगोलिक विवरण भी दिया है[67], जबकि अधिकांश देशज कथा-काव्यों में यह नहीं मिलता। देशज कथा-काव्यों में रत्नसेन का सिंघलद्वीप पहुँचना चामत्कारिक है– इसमें योगी या योगियों की निर्णायक भूमिका

है। *पाटनामा* में यात्रा में लगने वाले समय के साथ सेतुबंध रामेश्वरम् का उल्लेख आया है[68], अन्यथा देशज काव्यों में यात्रा का भौगोलिक विवरण नहीं है। रत्नसेन की गजपति से भेंट[69], गंधर्वसेन द्वारा रत्नसिंह का बंदी बनाया जाना[70], नागमती का वियोग[71], समुद्र की दान याचना[72], रत्नसेन और पद्मिनी का जहाज के भँवर फँस जाने से अलग-अलग दिशाओं में बह जाना[73], समुद्र पुत्री लक्ष्मी से भेंट[74], देवपाल का कुमुदिनी को भेजकर पद्मिनी को आकृष्ट करने का प्रयास[75], सरजा के माध्यम से पद्मिनी देने का उल्लाउद्दीन का संदेश[76], अलाउद्दीन का पातुर भेजकर *पद्मावती* का मन बदलने की चेष्टा[77], सरजा द्वारा गोरा की हत्या[78], देवपाल द्वारा सांगी मारकर रत्नसेन को आहत करना[79], बादल को गढ़ सौंपकर रत्नसेन की मृत्यु[80], पद्मिनी-नागमती का सती होना[81] बादल की मृत्यु[82] और स्त्रियों का जौहर[83] आदि अनेक प्रकरण जायसी का अपना कथा पल्लवन और विस्तार है। जौहर का प्रकरण जायसी के यहाँ है, लेकिन यह केवल सांकेतिक है। जायसी अंत में लिखते हैं कि- *जौहर भई इस्तिरी, पुरुख भए संग्राम / पातसाहि गढ़ चूरा, चितउर भा इसलाम* अर्थात् स्त्रियों ने जौहर कर लिया, पुरुष संग्राम करते हुए अंत को प्राप्त हुए, बादशाह ने गढ़ ध्वस्त कर दिया और चित्तौड़ इस्लाम के नीचे आ गया।[84] कथा पल्लवन के ये रूप देशज कथा-काव्यों में नहीं हैं।

पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर इन कथा-काव्यों की कथा योजना से यह स्पष्ट है कि भारतीय ऐतिहासिक कथा-काव्य की प्राचीन परंपरा के अनुसार इनमें एक ही कथा बीजक का अलग-अलग तरह से पल्लवन और विस्तार है। इन कथा-काव्यों में इनके रचनाकारों के अपने जातीय-सांस्कृतिक आग्रहों के अनुसार भी कथा योजना में बदलाव हुए हैं। जैन धार्मिक रचनाकारों की कथा योजना में कोई धार्मिक आग्रह तो नहीं है, लेकिन स्वामिधर्म, पातिव्रत्य, यौन शुचिता आदि मूल्यों की प्रतिष्ठा के साथ मनोरंजन का उद्देश्य इनमें सक्रिय है। चारण और अन्य रचनाकारों का आग्रह इन मूल्यों की प्रतिष्ठा के साथ इतिहास और वंश प्रशस्ति का भी है। ख़ास बात यह है कि यहाँ कथा योजना किसी एक आशय या योजना में सीमित और रूढ़ नहीं है। यहाँ रचनाकार के अपने विवेक और प्रयोजन के अनुसार कथा बनती-बदलती है। इतिहास इनमें कहीं आधार है, तो कहीं रीढ़ और कहीं केवल सहारा, लेकिन यह इनमें है। यह इनमें कुछ दूर दिखता, फिर कुछ दूर ओझल रहता है और फिर एकाएक दिख जाता है। यह ऐतिहासिक कथा-काव्य रचना की ख़ास भारतीय पद्धति है। यहाँ इतिहास कथा में और कथा इतिहास में इस तरह घुल-मिल जाते हैं कि इनकी अलग पहचान मुश्किल हो जाती है।

संदर्भ और टिप्पणियाँ:

1. गौरीशंकर हीराचंद ओझा, *उदयपुर राज्य का इतिहास* (जोधपुर: राजस्थानी ग्रंथागार, प्रथम संस्करण 1928, पुनर्मुद्रण 1996-97), 1: 179-189.

2. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, *दिल्ली सल्तनत* (आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, 1992), 161.

3. अगरचंद नाहटा, ''राघवचेतन की ऐतिहासिकता,'' *नागरी प्रचारिणी पत्रिका,* वर्ष-64, अंक-1, 64.

4. रत्नसेन के कुल-वंश के संबंध में मलिक मुहम्मद जायसीकृत *पद्मावत* (संपा. वासुदेवशरण अग्रवाल, इलाहाबाद: लोक भारती प्रकाशन, संस्करण 2010) में *जंबुदीप अर चितउर देसू।/ चित्रसेनि तहाँ बड़ नरेसू।/ रतनसेन यहु ताकर बेटा।/ कुल चौहान नहिं मेंटा* (पृ. 255) और जटमलनाहर कृत *गोरा-बादल कथा* (संपा. भँवरलाल नाहटा, बीकानेर: सादुल रिसर्च इंस्टीट्यूट,1960) में *चतुर पुरस चहुँवान* (पृ. 182) उल्लेख हैं। हेमरतन की *गोरा-बादल पदमिणि चउपई* (संपा. उदयसिंह भटनागर, जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, द्वितीय आवृत्ति, 1997) *में तिण गढ़ि राज करई गहिलोत* (पृ. 3) और इसी तरह दलपति विजयकृत *खुम्माण रासो* (संपा. ब्रजमोहन जावलिया, उदयपुर: महाराणा प्रताप स्मारक समिति, 1999) में *राणो रतनसेन गहिलोत* (पृ. 3: 84)) उल्लेख हैं।

5. ''पद्मिनीसमिओ,'' *रानी पद्मिनी,* संपा. ब्रजेंद्रकुमार सिंहल [नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2017]) में *राना रतनसेन खुंमान* उल्लेख मिलता है।

6. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणि चउपई,* 10 और लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 11.

7. दलपति विजय, *खुम्माणरासो,* 3: 84.

8. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* संपा. मनोहरसिंह राणावत (सीतामऊ: नटनागर शोध संस्थान राणावत, 2003),1: 311.

9. ''पद्मिनीसमिओ'', 107.

10. ''गोरा-बादल कवित्त'', 109; हेमरतन, *गोरा बादल पदमिणि चउपई,* 109; लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 61 और दलपति विजय, *खुम्माणरासो,* 3:119.

11. ''गोरा-बादल कवित्त'', 109.

12. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* 1: 329.

13. हेमरतन, *गोरा बादल पदमिणि चउपई,* 3 और लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 3.

14. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* 1: 303.

15. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणि चउपई,* 75 और लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 4.

16. दलपति विजय, *खुम्माणरासो,* 3: 116.

17. ''गोरा-बादल कवित्त'', 110.

18. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणि चउपई,* 16; लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 24; *पद्मिनीसमिओ,* 107 और जटमल नाहर, ''गोरा-बादल कथा'', 186.

19. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* 1: 349.
20. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणि चउपई,* 5 और लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 5.
21. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* 1: 299-303.
22. ''पद्मिनीसमिओ'', 99 और जटमल नाहर, ''गोरा-बादल कथा'', 182.
23. दयालदास, *राणारासो,* संपा. ब्रजमोहन जावलिया (उदयपुर: महाराणा प्रताप स्मारक समिति, 2007), 184.
24. ''गोरा-बादल कवित्त'', 110.
25. हेमरतन, *गोरा बादल पदमिणि चउपई,* 8.
26. ''पद्मिनीसमिओ'', 102 और जटमल नाहर, ''गोरा-बादल कथा'', 184.
27. दयालदास, *राणारासो,* 84.
28. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* 1: 305.
29. वही, 335.
30. वही, 349.
31. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणि चउपई,* 19 और लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 24.
32. ''गोरा-बादल कवित्त'', 110.
33. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणि चउपई,* 17 और लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 24.
34. ''पद्मिनीसमिओ'', 110 और जटमल नाहर, ''गोरा-बादल कथा'', 187.
35. दयालदास, *राणारासो,* 197.
36. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* 352.
37. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणि चउपई,* 19; लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 26 और दलपति विजय, *खुम्माणरासो,* 3: 86.
38. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* 1: 353.
39. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणि चउपई,* 21 और लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 28.
40. ''पद्मिनीसमिओ'', 111 और जटमल नाहर, ''गोरा-बादल कथा'', 187.
41. ''गोरा-बादल कवित्त'', 115.
42. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणि चउपई,* 25 और लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 34.
43. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* 354.
44. वही, 380-400.
45. ''गोरा-बादल कवित्त'', 119.
46. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणि चउपई,* 41 और लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 49.
47. जटमल नाहर, ''गोरा-बादल कथा'', 196.
48. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* 1: 387-399.
49. ''पद्मिनीसमिओ'', 123.
50. दयालदास, *राणारासो,* 214.
51. ''गोरा-बादल कवित्त'', 125.

52. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणि चउपई,* 76 और लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 88.
53. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* 1: 380.
54. ''गोरा-बादल कवित्त'', 125.
55. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणि चउपई,* 8 और लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 88.
56. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* 1: 385.
57. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणि चउपई,* 79 और लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 83.
58. लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 101.
59. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणि चउपई,* 42 और दलपति विजय, *खुम्माणरासो,* 3: 100.
60. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणि चउपई,* 92.
61. लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 100.
62. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* 1: 406.
63. वही, 1: 402.
64. जायसी, *पदमावत,* 26.
65. वही, 81.
66. वही, 121.
67. वही, 132.
68. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* 1: 335.
69. जायसी, *पदमावत,* 136.
70. वही, 244.
71. वही, 340.
72. वही, 393.
73. वही, 402.
74. वही, 403.
75. वही, 638.
76. वही, 652.
77. वही, 600.
78. वही, 695.
79. वही, 707.
80. वही, 708.
81. वही, 709.
82. वही, 712.
83. वही, 712.
84. वही, 712.

अध्याय – 5

इतिहास और मिथ

अकसर पद्मिनी–रत्नसेन विषयक देशज ऐतिहासिक कथा–काव्यों को 'मिथ' कहा जाता है।[1] यहाँ 'मिथ' शब्द का यह प्रयोग व्यापक रूप से मान्य और प्रचारित झूठ के लिए हुआ है। आशय यह है कि चित्तौड़ के राजा रत्नसेन ने सिंघल द्वीप की राजकुमारी पद्मिनी से विवाह किया और इसको पाने के लिए दिल्ली के अलाउद्दीन ख़लजी ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया, यह धारणा या विश्वास लोकप्रिय और मान्य तो है, लेकिन यह ग़लत है और इतिहास में ऐसा कुछ नहीं हुआ। 'मिथ' का यह अर्थ 'इतिहास' की अठारहवीं सदी में बनी धारणा के बाद व्यापक रूप में चलन में आया। दरअसल इतिहास में प्रत्यक्ष, आनुभविक और दस्तावेज़ी का आग्रह इतना बढ़ गया कि इतिहास और मिथ एक–दूसरे के विपरीतार्थक समझे जाने लगे।[2] यह तथ्य लगभग हाशिए पर ही चला गया कि विश्व की सभी मानवीय सभ्यताओं में बहुत आरंभ से ही मिथ उनके सांस्कृतिक रूपों और अभिव्यक्तियों में सम्मिलित रहा है और यह पूरी तरह अर्थहीन और मिथ्या नहीं है। मिथ यथार्थ का ही प्रतिबिंबन है और पूर्व और पश्चिम, सभी जगह उसका यही सही अर्थ भी है। 'मिथ' और उसके गठन और विकास में सम्मिलित अभिप्राय और कथा रूढ़ियाँ केवल कल्पना नहीं हैं। दरअसल ये मानवीय स्वभाव और उसकी सांस्कृतिक ज़रूरतों के अंतर्गत हुआ यथार्थ का रचनात्मक विस्तार हैं। पद्मिनी–रत्नसेन प्रकरण में नियोजित इतिहास को उसके रचनात्मक विस्तार के लिए उसमें प्रयुक्त अभिप्रायों और कवि–कथा रूढ़ियों के बीच ही समझा जा सकता है। अच्छी बात यह है कि पद्मिनी–रत्नसेन प्रकरण बहुत पुराना नहीं है और इसमें यथार्थ के मिथकीकरण और इसमें जुड़ गए अभिप्रायों और कथा–रूढ़ियों के बनने–बदलने की यात्रा के मोड़–पड़ाव अभी पूरी तरह अदृश्य नहीं हुए हैं। यह यात्रा ऐसी है, जिसको समझने के लिए इतिहास के आधुनिक औज़ार–तर्क, युक्ति आदि का इस्तेमाल बहुत सावधानी से करने की ज़रूरत है, क्योंकि इन

रचनाओं का विकास एक समय और स्थान पर नहीं हुआ और ये अपनी प्रकृति में किसी एक रचनाकार की कृतियाँ भी नहीं हैं। इसी तरह इन रचनाओं में नियोजित अभिप्रायों और कवि-कथा रूढ़ियों में भी कोई एकरूपता नहीं है। यहाँ देशज ऐतिहासिक कथा-काव्यों में वर्णित घटनाओं उनसे संबंधित प्रमुख चरित्रों की दूसरे उपलब्ध पुरालेखीय और साहित्यिक साक्ष्यों से पहचान-परख की गयी है और इस्लामी वृत्तांतकारों के इस प्रकरण से संबंधित मौन या उनके अनुल्लेख के कारणों पर भी विचार किया गया है।

1.

पद्मिनी विषयक देशज ऐतिहासिक कथा-काव्यों में नियोजित इतिहास को जानने-समझने के लिए मिथ, अभिप्राय और कथारूढ़ि को समझ लेना ज़रूरी है। हिंदी में 'मिथ' शब्द ही चलन में है, क्योंकि इसके लिए प्रस्तावित हुए पुराण, आद्यकथा आदि शब्द न तो इसके समानार्थी थे और न ये चलन में ही आए।[3] 'मिथ' ग्रीक शब्द 'muthos' से बना है। पहले यह लेटिन में 'mythus' हुआ और उन्नीसवीं सदी के मध्य में यह 'मिथ' (myth) के रूप में प्रचलित हुआ।[4] सामान्यत: यह दो अर्थों- एक तो मनुष्य के आरंभिक इतिहास की प्राकृतिक-सामाजिक धारणा और दूसरे, व्यापक रूप में प्रचारित और मान्य ग़लत धारणा, विचार या विश्वास के लिए प्रयुक्त होता है। उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में जिस तरह से कला, साहित्य, इतिहास, समाजशास्त्र आदि अनुशासनों में आधुनिकता- मतलब युक्ति, तर्क, प्रत्यक्ष और आनुभविक का आग्रह बढ़ा, उससे मिथ को प्राय: 'झूठ' और 'कल्पित' का समानार्थी मान लिया गया। इस तरह पौराणिक या अतीत से संबंधित अधिकांश घटनाओं और चरित्रों को मिथ मानकर ख़ारिज करने की प्रवृत्ति बढ़ गई। 'मिथ' का व्यापक अर्थ 'पारंपरिक कथा' है।[5] 'मिथ' में सामान्यत: कथानक और चरित्र के साथ आरंभ, मध्य और अंत होता है और यह हमारे वर्तमान या निकट अतीत के बजाय दूरस्थ अतीत से संबंधित होता है। मिथ अकसर एक से दूसरे कथाकार को मौखिक हस्तांतरित होता है और इस दौरान कथाकार के उद्देश्य, रुचि और आग्रह के अनुसार इसमें संशोधन-संवर्धन भी होते हैं। मिथ को आमतौर पर दैवीय, निजंधरी (legend) और लोक कथा में वर्गीकृत किया जाता है, लेकिन इनको साफ़-साफ़ एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। इनमें आवाजाही होती रहती है- कभी लोक और निजंधरी कथा दैवीय कथा का रूप लेती है, तो कभी अलौकिक तत्त्व निजंधरी और लोक कथा में भी आ जाते हैं। दैवीय कथाओं में घटनाएँ और चरित्र प्राय: अलौकिक होते हैं, जबकि निजंधरी कथाओं में नायक असाधारण योद्धा और महापुरुष भी होते हैं।

लोककथाएँ इनसे कुछ हद तक अलग हैं– इनमें नायक सामान्य मनुष्य भी हो सकते हैं। निजंधरी और लोक कथाओं में अतिमानवीय तत्त्वों की भी निर्णायक भूमिका होती है और इनके चरित्र भी अलौकिक हो सकते हैं। अकसर मिथ और उसमें भी ख़ासतौर पर निजंधरी और लोक कथाओं का गठन अभिप्रायों से होता है।[6] अभिप्राय धीरे-धीरे कथा रूढ़ि बन जाते हैं। मिथ पूरी तरह मिथ्या या मनगढंत नहीं होते– उनमें सच्चाई भी रहती है। विख्यात अमरीकन नाट्यशास्त्री और साहित्य मर्मज्ञ जोसफ़ टी. शिप्ले ने मिथ का अर्थ करते हुए लिखा है कि ''मिथ अनिवार्य रूप से एक धार्मिक शब्द है: यह आनुष्ठानिक कर्मकाण्डों से भिन्न समझा जाता है। यद्यपि यह शब्द आधुनिक प्रयोगों में अर्थहीन, उपहासास्पद या असुंदर के अर्थों में आने लगा है, लेकिन कोई भी वास्तविक मिथ इस प्रकार का नहीं होता। यह अपने प्राथमिक और शुद्धतम स्वरूप में तत्त्वमीमांसा से सम्बन्धित होता है। यह यथार्थ के प्रातिभ ज्ञान को शब्दों में बाँधने का सदृशतम प्रयास है। यह देवशास्त्र का पूर्वरूप है, क्योंकि मिथ के नियम और कथन उनकी व्याख्याओं से पहले के होते हैं।''[7] कला मर्मज्ञ और चिंतक आनंद के. कुमारस्वामी ने अपनी पुस्तक *हिंदुइज़्म एंड बुद्धिइज़्म* में मिथ को अधिक समावेशी और पौर्वात्य नज़रिये से समझने की कोशिश की। ख़ास बात यह है कि उन्होंने 'मिथ' को 'इतिहास' का समानार्थी माना है। उन्होंने 'मिथ' के आगे कोष्ठक में 'इतिहास' शब्द का उल्लेख किया। उन्होंने इस संबंध में लिखा कि ''स्वयं श्रुति की ही भाँति, हमें शुरुआत उस उपांत्य (अंत से पहले) सत्य, मिथ (इतिहास) से करनी चाहिए जिसका सारा अनुभव पार्थिव का प्रतिबिम्बन है। यह मिथकीय आख्यान समयातीत और कालातीत वैधतावाला और कहीं भी सत्य नहीं तथा हर कहीं सत्य वाला है: ठीक वैसे ही जैसे ईसाइयत में बावजूद उन सहस्राब्दियों के जो इन अंकन योग्य शब्दों के बीच आती है, ''प्रारम्भ में प्रभु ने सिरजा'' और ''उसी के द्वारा सब कुछ रचा गया'' का अभिप्राय यह होता है कि सृजन ईसा मसीह के ''शाश्वत जन्म'' के समय हुआ। ''अग्रे'' या ''सर्वोपरि'' का अर्थ होता है ''सर्वप्रथम'': ठीक वैसे ही जैसे अब भी सुनाई जाने वाली हमारे मिथकों में ''एक बार की बात है'' का अर्थ केवल ''एक बार नहीं'' बल्कि ''सदा सर्वदा'' होता है। आज जिन अर्थों में इसे समझा जाता है, उस अर्थ में मिथ एक ''काव्यात्मक आविष्कार'' नहीं है, बल्कि अपनी वैश्विकता के कारण, इसे समान अधिकार के साथ अनेक कोणों से व्यक्त किया जा सकता है।''[8] मिथ की ये व्याख्याएँ उस प्रचलित धारणा को निर्मूल सिद्ध करती हैं, जो इसको पूरी तरह कल्पित और झूठ मानती हैं। कुमारस्वामी की स्पष्ट धारणा है कि मिथ मनगढ़ंत नहीं है– यह पार्थिव अनुभव का प्रतिबिंबन है। ज़ाहिर है, वे मिथ को यथार्थ नहीं, यथार्थ का प्रतिबिंबन मानते हैं। यथार्थ का प्रतिबिंब यथार्थ जैसा

ही हो, यह ज़रूरी नहीं है। अकसर प्रतिबिंबन के दौरान लौकिक या पार्थिव का रूप बदल जाता है, लेकिन इसका मतलब यह कतई नहीं है कि यह झूठ है। शिप्ले के अनुसार भी मिथ प्रातिभ ज्ञान को शब्दों में बाँधने का सदृशतम प्रयास है। कुमारस्वामी यह भी मानते हैं कि निरंतर व्यवहार के कारण मिथ का सत्य किसी समय और स्थान तक सीमित नहीं रहता। यह सार्वकालिक और सार्वदेशिक हो जाता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि यह अपने मूल से सर्वथा अलग हो जाता है। कुमारस्वामी ने संकेत किया है कि कथाओं में अकसर प्रयुक्त 'एक बार की बात है' इसीलिए 'हमेशा की बात है' की तरह प्रयुक्त किया जाता है। कुमारस्वामी यह भी मानते हैं कि मिथ को किसी एक अर्थ में भी सीमित नहीं किया जा सकता। मिथ का सच अपने निरंतर और वैविध्यपूर्ण व्यवहार के कारण अनेकार्थी हो जाता है। भारतीय परंपरा के महाकाव्य-*रामायण* और *महाभारत* मिथ के सबसे अच्छे उदाहरण हैं। ये पार्थिव का प्रतिबिम्बन भी हैं और साथ ही स्थान और समय की सीमा से ऊपर और अनेकार्थी भी हैं।

'अभिप्राय' और 'कथा रूढ़ि' मिथ की संरचना का ज़रूरी हिस्सा हैं, इसलिए मिथ को समझने में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। 'अभिप्राय' का आशय स्पष्ट करते हुए जोसफ़ टी. शिप्ले ने लिखा है कि "एक शब्द या निश्चित साँचे में ढले हुए विचार, जो समान स्थिति का बोध कराने या समान भाव जगाने के लिए किसी एक ही कृति अथवा एक ही जाति की विभिन्न कृतियों में बार-बार प्रयुक्त हों, अभिप्राय कहलाते हैं।"[9] हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार (i) संभावनाओं पर बल देने के कारण कथा अभिप्रायों का जन्म होता है, (ii) कथानक को गति और घुमाव देने के लिए इन अभिप्रायों का प्रयोग होता है और (iii) दीर्घकाल से व्यवहृत होने वाले ये अभिप्राय थोड़ी दूर तक यथार्थ होते हैं और आगे चलकर कथानक रूढ़ियों में बदल जाते हैं।[10] भारतीय कथा-काव्यों में इनकी निरंतरता का नतीजा यह हुआ कि युद्ध, ऋतु, विवाह, नगर, दुर्ग आदि से संबंधित अभिप्राय और रूढ़ियाँ कवि शिक्षा में भी सम्मिलित कर ली गयीं। "बारहवीं सदी की रचना *कविकल्पलता* और चौदहवीं सदी की रचना *वर्णरत्नाकर* में ये नुस्ख़े पाए जा सकते हैं।"[11] दरअसल भारतीय ऐतिहासिक कथा-काव्य इतिहास का कवि-कथाकार वर्णित रूप है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने विद्यापति की रचना *कीर्त्तिलता* को 'इतिहास का कविदृष्ट जीवंत रूप' कहा है।[12]

भारतीय ऐतिहासिक कथा-काव्य रचनाओं में कई अभिप्रायों और कवि-कथा रूढ़ियों का प्रयोग होता आया है। आमतौर पर प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय कवि-कथाकार का आग्रह वस्तु वर्णन में यथार्थ के बजाय यथार्थ की संभावना पर ज़्यादा होता था, इसलिए धीरे-धीरे कई अभिप्राय और कथा रूढ़ियाँ चलन में आ

गईं। कथा वाचक तोता, स्वप्न में देखकर किसी स्त्री से प्रेम, चित्र देखकर स्त्री से प्रेम, याचक या चारण-भाट से कीर्ति सुनकर प्रेम, मुनि शाप, रूप परिवर्तन, परकाया प्रवेश, आकाशवाणी, परिचारिका से राजा का प्रेम और फिर उसका राजकन्या के रूप में अभिज्ञान, षड्ऋतु या बारहमासा के रूप में विरह वर्णन, हंस-कपोत आदि द्वारा संदेश प्रेषण, आखेट के समय घोड़े का निर्जन वन में पहुँचना और वहाँ सुंदर स्त्री से भेंट और उससे प्रेम और विवाह, समुद्र मध्य सिंघल द्वीप की मौजूदगी, सिंघल द्वीप में सुंदर पद्मिनी स्त्रियों की मौजूदगी, पद्मिनी स्त्री के शरीर से कमल गंध आना और उस पर भँवरों का मँडराना, युद्ध या किसी खेल में पराजित कर स्त्री को जीतना, युद्ध में योगिनियों द्वारा रक्तपान, शिव का मुंडमाल पहनकर युद्ध स्थल में भ्रमण, बिना सिर के धड़ का तलवार चलाना, असाध्य साधन संकल्प आदि कई कवि-कथा अभिप्राय और रूढ़ियाँ भारतीय ऐतिहासिक कथा-काव्यों में आमतौर पर मिलती हैं।[13] कोमल कोठारी ने भी राजस्थान की लोक कथाओं में प्रयुक्त होने वाले कई अभिप्रायों की सूची दी है, जिनमें सौतेली माँ, सूर्य के प्रतिबिम्ब से सूरजमुखी घोड़े का जन्म, जनशून्य नगर, दैत्य और दैत्य कन्या का बावड़ी में निवास, काठ का हंस, पशु-पक्षियों द्वारा नायक-नायिका का सहयोग, विद्यालय में प्रेमी युगल का साथ पढ़ना, वस्तुओं का जादुई प्रभाव, लोभ बढ़ाने वाला तोता, हीरों-पन्नों से युक्त चीर, परियाँ, पुरुष या स्त्री का पत्थर की प्रतिमा में बदल जाना, दिव्यलोक के प्राणी का मनुष्य लोक में आगमन, नायिका के विवाह के लिए शर्तों का प्रावधान आदि प्रमुख हैं।[14]

2.

पदमिनी-रत्नसेन प्रकरण सभी विवेच्य ऐतिहासिक कथा-काव्यों का प्रतिपाद्य है। मलिक मुहम्मद जायसी के *पदमावत* सहित इस प्रकरण पर निर्भर पारंपरिक देशज कथा-काव्य रचनाओं की कथा के मोड़-पड़ाव कुछ 'आधुनिक' इतिहास से मिलते हैं और कुछ नहीं मिलते हैं। आधुनिक इतिहासकारों की निर्भरता अलाउद्दीन के समकालीन इस्लामी वृत्तांतों- अमीर ख़ुसरो कृत *ख़जाइन-उल-फ़ुतूह* (1311-12 ई.) और दिबलरानी तथा ख़िज़्र ख़ाँ (1318-19 ई.), ज़ियाउद्दीन बरनी कृत *तारीख़-ए-फ़िरोजशाही* (1357 ई.) तथा अब्दुल मलिक एसामी कृत *फ़ुतूह-उस-सलातीन* (1350 ई.) पर है, जिनमें इस प्रकरण का हवाला तो है, लेकिन इनमें पद्मिनी, गोरा-बादल आदि नहीं हैं और इनमें विजय अलाउद्दीन की हुई है।[15] अलाउद्दीन ने 1303 ई. में चित्तौड़ पर आक्रमण किया और विजय के पश्चात दुर्ग अपने बेटे ख़िज़्र ख़ाँ को सौंपकर वह वापस दिल्ली चला गया। इस आक्रमण में चित्तौड़ का राजा रत्नसिंह बंदी बनाया गया और तीस हज़ार हिंदू क़त्ल किए गए। यह प्रकरण तिथियों की

कुछ इधर-उधर के साथ सभी इस्लामी स्रोतों में कमोबेश मौजूद है। अलाउद्दीन के समकालीन जैन आचार्य कक्क सूरि का इस प्रकरण का उल्लेख भी इसकी पुष्टि करता है। कक्क सूरि पाटन के विख्यात धनाढ्य समरसाह के गुरु थे और पाटन उस समय गुजरात का बहुत समृद्ध नगर होने के साथ राजनीतिक गतिविधियों का केंद्र भी था। उलुग ख़ान ने पाटन पर आक्रमण कर उसको नष्ट कर दिया था। समरशाह अलाउद्दीन और उलुग ख़ान के निकट संपर्क में भी आया था। कक्क सूरि समरसाह के गुरु होने के कारण तत्कालीन राजनीतिक उठापटक से अच्छी तरह परिचित रहे होंगे। उन्होंने अपने प्रबंध *नाभिनंदनजिनोद्धारप्रबंध* की रचना घटना के कुछ वर्ष बाद 1336 ई. (वि.सं.1393) में राजस्थान के कांजरोटपुर नामक स्थान पर की। अलाउद्दीन के देवगीर और रणथंभोर के युद्ध अभियानों के साथ उन्होंने उसके चित्तौड़ पर आक्रमण का भी उल्लेख किया हैं। उन्होंने इस संबंध में लिखा कि- *श्रीचित्रकूट दुर्गेशं बद्ध्वा लात्वा च तद्धनम्। / कंठबद्धै कपिमिवाभ्रामयत्तं पुरे-पुरे॥* आशय यह है कि अलाउद्दीन ने चित्रकूट के राजा को भी क़ैद करके उसका धन ले लिया था और गले से बँधे बंदर के समान उस राजा को गाँव-गाँव घुमाया।[16] परवर्ती इस्लामी और देशज अधिकांश स्रोतों में पद्मिनी और गोरा-बादल आ गए। अबुल फ़ज़ल (1551-1602 ई.) ने *आईन-ए-अकबरी* में राजा रतनसी की बहुत ख़ूबसूरत स्त्री, जिसकी अलाउद्दीन ने माँग की थी, का उल्लेख किया है।[17] मोहम्मद क़ासिम फ़रिश्ता (1560-1620 ई.) का *तारीख़-ए-फ़रिश्ता* का विवरण भ्रामक है- उसने अलौकिक सौंदर्य और गुणोंवाली स्त्री को राजा रत्नसेन सेन की बेटी लिखा है।[18] परवर्ती देशज स्रोत *मुँहता नैणसीरी ख्यात* (1610-1670 ई.) में भी उल्लेख है कि *पदमणीरै मामले लखमसी नै अलावदीसूं लड़ काम आया।*[19] ख्यात में जौहर का भी उल्लेख है। लिखा गया है कि- *तेरमै दिन जुहर कर रांणों लखमसी रतनसी कांम आया।*[20] इसी तरह सत्रहवीं सदी के अंतिम चरण में हुई रचना *रावल राणारी बात* (1680-1689 ई.) में भी इस प्रकरण का उल्लेख मिलता है। लिखा गया है कि- *राणा रतनसीघ जी रे पदमणी थी पातस्याह अलावदीन गोरी पठान दली दिल्ली रो चित्रकोट ऊपरे चढ़ आयो। ब्रह्मचवदा सुदी लड्यो ने रांणा जी रा बेटा बारा, भाइ पाँच, काका बाबा ओर प्रगेही रजपुत कामदार वेपारी, ब्राहम्ण कस ओर के ही तरवारिया ऊतरया। लुगायां झमर चढी। गढ भागो, पछे पातशाह तो दिल्ली गयो ने सोनीगरा मालदे गढ़ दीधो। गढ़ ब्रस पेतीस सोनीगराँ रो राज रह्यो।* अर्थात् रत्नसेन के घर पद्मिनी थी, जिसके लिए दिल्ली का बादशाह उलाउद्दीन गढ़ पर चढ़ आया। रत्नसेन के बारह पुत्र, पाँच भाई, काका व बाबा, कई सगे-संबंधी, ब्राह्मण और अन्य जातियों के लोग मारे गए, स्त्रियों ने जौहर किया। चित्तौड़ परास्त हुआ। फिर बादशाह दिल्ली गया और उसने मालदेव सोनगरा का क़िला दे दिया। गढ़ पर पैंतीस बरस तक सोनगरा का राज्य रहा।[21]

सभी विवेच्य देशज ऐतिहासिक कथा-काव्यों में घटना का वृत्तांत कमोबेश एक जैसा है। इनमें से अधिकांश में रत्नसिंह के पद्मिनी से विवाह, राघव चेतन का नाराज़ होकर दिल्ली जाना, वहाँ जाकर पद्मिनी के रूप-सौंदर्य की सराहना कर अलाउद्दीन को युद्ध के लिए उकसाना, अलाउद्दीन का आक्रमण, गोरा-बादल का युक्तिपूर्वक रत्नसिंह को छुड़ाना आदि प्रसंग आए हैं। यही सही है कि समकालीन स्रोतों में प्रकरण का विवरण पूरा नहीं है, लेकिन लोक स्मृति में यह पूरा है और लोक स्मृति के आधार पर ही परवर्ती इस्लामी स्रोतों- अबुल फ़ज़ल (1551-1602), फ़रिश्ता (1560-1520 ई.) और हाज़ी उद्दबीर (1540-1605 ई.) के यहाँ आया और लोकस्मृति से ही यह प्रकरण जायसी के *पद्मावत* (1540 ई.) में रूपांतरित हुआ। यह धारणा सही नहीं है कि जायसी ने सर्वप्रथम इसकी कल्पना की, क्योंकि परवर्ती इस्लामी स्रोतों से जायसी की कथा के मोड़-पड़ाव मेल ही नहीं खाते।

3.

रत्नसेन के अस्तित्व को लेकर आरंभिक कुछ इतिहासकारों ने संदेह व्यक्त किया, लेकिन ऐतिहासिक देशज कथा-काव्यों में इस संबंध में कोई संदेह कभी नहीं रहा। रत्नसेन इन सभी ऐतिहासिक कथा-काव्यों का निर्विवाद नायक है। वह चित्तौड़ का शासक है और पद्मिनी उसकी विवाहिता है, यह उल्लेख भी सभी रचनाओं में है। जटमल नाहर कृत *गोरा-बादल कथा* को छोड़कर सभी रचनाओं में वह गुहिलवंशी है। *गोरा-बादल कवित्त* में कहा गया है कि- *चित्रकोट कैलास, वास वसुधा विख्यातह, रत्नसेन गहलोत, राय तिहाँ राज करंतह।*[22] हेमरतन ने भी लिखा है कि *तिणि गढि राज करइ गहिलोत रतनसेन राजा जस-जोत्त।*[23] इसी तरह लब्धोदय भी लिखता है कि- *रतनसेन राणो तिहां, जा सम भूपन ओर।*[24] *खुम्माणरासो* में स्पष्ट उल्लेख है कि- *राणो रतन सेन गहिलोत देसपति मोटो देसोत।*[25] *राणारासो* में भी कहा गया है कि- *वसै वास चीतोर राना रयन्नं।*[26] समिओकार ने राजा रत्नसेन के लिए 'खुंमान' शब्द का प्रयोग किया है। 'खुम्माण' मेवाड़ का नवीं सदी का यशस्वी शासक था, इसलिए यह संज्ञा मेवाड़ के शासकों के लिए प्रयुक्त होती आयी है। समिओकार लिखता है कि- *राजा रतनसेन खुंमान तव गढ़ चित्रकोट केरा धनी।*[27] *पाटनामा* के रत्नसेन के परिचय में चित्तौड़ और गुहिल के साथ उसके सूर्यवंशी होने का उल्लेख भी है। पाटनामाकार लिखता है कि "देस तो मेवाड़ कला को चत्रकोट राजा को नाम रतनसेण जात को सूरजबंसी गहलोत....।"[28] जटमल नाहर ने इन सबसे अलग जायसी की तरह रत्नसेन को चौहान लिखा है- *रतनसेन तिहाँ राय... चतुर पुरुस चहुवाँन।*[29]

रत्नसिंह ऐतिहासिक चरित्र है, इसकी पुष्टि शिलालेख, पारंपरिक इतिहास और

लोक स्मृति से होती है, लेकिन आधुनिक भारतीय इतिहासकारों ने पद्मिनी के साथ उसकी ऐतिहासिकता पर भी संदेह किया है। इस संदेह का आधार इस्लामी स्रोतों और कुछ पारंपरिक अभिलेखों में अलाउद्दीन के समय चित्तौड़ के राजा के रूप में उसका नामोल्लेख नहीं होना है। समकालीन इस्लामी वृत्तांतकार अमीर ख़ुसरो और अब्दुल मालिक एसामी ने चित्तौड़ के राजा के लिए 'राय' शब्द का इस्तेमाल किया है। ज़ियाउद्दीन बरनी का चित्तौड़ पर आक्रमण का वर्णन ही दो पंक्तियों में है और वह चित्तौड़ के किसी राजा या राय का उल्लेख ही नहीं करता। ज़ियाउद्दीन बरनी ने *तारीख़-ए-फ़िरोजशाही* में केवल इतना लिखा कि "सुल्तान अलाउद्दीन ने पुनः शहर देहली से सेना लेकर चित्तौड़ पर चढ़ाई कर दी। चित्तौड़ को घेर लिया और शीघ्रातिशीघ्र क़िले पर विजय प्राप्त करके शहर लौट आया।"[30] अबुल मलिक एसामी का वर्णन भी बहुत संक्षिप्त है, लेकिन वह चित्तौड़ के राजा को 'राय' लिखता है। उसके शब्दों में "इसके उपरांत सुल्तान ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया। राय 8 मास तक युद्ध करता रहा, किंतु 8 मास के उपरांत राय ने क्षमा याचना की और सुल्तान ने ख़िलअत देकर सम्मानित किया।"[31] अमीर ख़ुसरो का घटना का वर्णन अपेक्षाकृत विस्तृत है, लेकिन उसने भी चित्तौड़ के शासक के रूप रत्नसिंह का नामोल्लेख नहीं किया।[32] अलाउद्दीन के समय चित्तौड़ में सत्तारूढ़ शासक के संबंध में पारंपरिक वंशावली अभिलेखों में से कुछ में रत्नसिंह का उल्लेख है, जबकि कुछ में नहीं है। दरअसल अधिकांश वंशावली अभिलेख महाराणा कुंभा (1433–1468 ई.) के समय के हैं और घटना के सदियों बाद पारंपरिक कथा-काव्यों और लोक स्मृति के आधार पर तैयार किए गये हैं। कुंभा हम्मीर का वंशज था और हम्मीर गुहिलवंश की राणा शाखा से संबंधित था। गुहिलवंश की रावल शाखा रत्नसिंह की मृत्यु के साथ समाप्त हो गई। मेवाड़ के वंशानुक्रम से संबंधित अधिकांश शिलालेख और कथा-काव्य कुंभा के समय और उसके बाद बने, इसलिए इनमें हम्मीर के राणा शाखा के पूर्वजों के भी नामोल्लेख हैं, लेकिन इनमें से कोई सत्तारूढ़ नहीं हुआ। ये सभी मेवाड़ की एक जागीर सिसोदा के सामंत थे। हम्मीर और उसके परवर्ती सभी शासक सिसोदा की राणा शाखा से संबंधित थे, इसलिए सिसोदिया कहलाए। रणकपुर (1439 ई.)[33], जगदीश मंदिर (1651 ई.)[34] और एकलिंगजी (1652 ई.)[35] के शिलालेखों में रत्नसिंह का उल्लेख नहीं है, जबकि राजसिंहकालीन *राजप्रशस्तिमहाकाव्य* (1675 ई.)[36] में रत्नसिंह का नामोल्लेख सत्तारूढ़ लक्ष्मसिंह के छोटे भाई के रूप में है, जिसने पद्मिनी से विवाह किया। यह सही है कि इस्लामी स्रोतों और कुछ पारंपरिक वंश रचनाओं और शिलालेखों में रत्नसिंह का नामोल्लेख नहीं है, लेकिन केवल इस आधार पर रत्नसिंह की ऐतिहासिकता संदिग्ध नहीं हो जाती। दरअसल इस्लामी इतिहासकारों

में नामोल्लेख करने की कोई एकरूप परंपरा नहीं मिलती। वे कभी बहुत ज़रूरी और महत्त्वपूर्ण नाम नहीं लिखते और कभी-कभी बहुत ग़ैरज़रूरी और मामूली नामों की चर्चा करते हैं। परवर्ती इस्लामी इतिहासकार अबुल फ़ज़ल ने 'राय रतनसी'[37] और मोहम्मद कासिम फ़रिश्ता ने 'राय रत्नसेन'[38] के रूप में रत्नसिंह का नामोल्लेख किया है। कुछ शिलालेखों और वंश रचनाओं में रत्नसिंह नामोल्लेख नहीं होने का कारण उसके साथ ही उससे संबंधित रावल शाखा समाप्त हो जाना है। उसके बाद चित्तौड़ पर फिर अधिपत्य क़ायम करनेवाला हम्मीर गुहिलवंश की सिसोदा राणा शाखा से संबंधित था, इसलिए वंशावलियों में हम्मीर के पूर्वजों में रत्नसिंह का नामोल्लेख सब जगह नहीं है।

रत्नसिंह गुहिलवंश की रावल शाखा के समरसिंह का पुत्र था और अलाउद्दीन ख़लजी के आक्रमण के समय वह चित्तौड़ में सत्तारूढ़ था, यह अन्य कई प्रमाणों से सिद्ध है। रत्नसिंह के समय का एक शिलालेख दरीबा के पास स्थित एक मंदिर के स्तंभ पर वि.सं. 1869 माघ सुदी 5 बुधवार (शनिवार 24 जनवरी, 1303 ई.) का खुदा हुआ है और इसमें स्पष्ट उल्लेख है कि *संवत् 1359 वर्ष माघ सुदि 5 बुधवार दिने अद्येह श्रीमेदपाट मंडले समस्त राजावलि समलंकृत महाराज कुल श्री रतनसिंह देव का कल्याण विजय राज्ये तन्नियुक्त महं, श्री महणसीह समस्त मुद्रा व्यापारान् परिपांथियति......* ।अर्थात् समस्त राजगुणों से समलंकृत महाराज कुल अर्थात् महारावल श्री रत्नसिंह देव का कल्याणकारी राज्य प्रर्वतमान था और उनका समस्त राज्य कार्य भार वहन करने वाला अर्थात् मुख्य प्रधान महं (महत्तम-महेता) महणसिह था।[39] दरीबा शिलालेख के उत्कीर्ण होने के चार दिन बाद 28 जनवरी,1303 ई. को उलाउद्दीन ख़लजी ने चित्तौड़ पर आक्रमण करने के लिए दिल्ली से प्रस्थान किया और 26 अगस्त, 1303 ई. को उसने दुर्ग जीत लिया। इसकी पुष्टि अमीर ख़ुसरो अपने आक्रमण के विवरण में भी करता है।[40] कुंभा के समय विशेष शोध और परिश्रम से तैयार किए गए कुंभलगढ़ के शिलालेख वि.सं.1517 (1460 ई.) में भी स्पष्ट उल्लेख है कि समरसिंह के बाद उसका पुत्र रत्नसिंह (श्लोक-176) सतारूढ़ हुआ। मेवाड़ की कनिष्ठ राणा शाखा का लक्ष्मसिंह (श्लोक-180) जागीर सिसोदा का शासक था, जो 1303 ई. में रत्नसिंह के शासनकाल में अलाउद्दीन के विरुद्ध लड़ाई में अपने सात पुत्रों सहित मारा गया।[41] यही प्रशस्ति महाराणा कुंभाकालीन (1433-1468 ई.) *एकलिंगमाहात्म्य* में भी मिलती है।[42] स्पष्ट है कि अलाउद्दीन ख़लजी की चित्तौड़ पर चढ़ाई के समय गुहिलवंश की रावल शाखा के समरसिंह का पुत्र रत्नसिंह चित्तौड़ का शासक था।

4.

पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर सभी काव्यों में पद्मिनी नायिका है। ख़ास बात यह है कि इन सभी में यह उल्लेख है कि वह चार कोटि की- शंखिनी, चित्रिणी हस्तिनी और पद्मिनी में से एक सर्वश्रेष्ठ पद्मिनी स्त्री के लक्षणोंवाली स्त्री है। यों इन सभी रचनाओं में विस्तार या संक्षेप में स्त्री की इन कोटियों का वर्णन आया है। *गोरा-बादल कवित्त* में रत्नसेन की स्त्री को सिंघल की पद्मिनी *(रत्नसेन घरि नारि, नारि सिंघली सुणिज्जइ)*[43] कहा गया है। हेमरतन ने यह संकेत किया है कि सिंघल द्वीप के राजा की बहन 'प्रत्यक्ष पद्मिनी' *(तासु बहिनी परतिख पदमिणी)*[44] है। दलपति विजय का उल्लेख *(बहिन अछें सींघल पति तणी, परतिख आप अछें पदमणी)*[45] भी ठीक हेमरतन की तरह ही है। लब्धोदय ने इसको कुछ अधिक स्पष्ट किया है। उसके अनुसार सिंघल द्वीप के राजा की बहन पद्मिनी है और वह रूप में रंभा के समान है *(तास बहिन पदमणी रे, रूपें रंभ समान रे)*।[46] जटमल नाहर[47] के यहाँ और *पद्मिनीसमिओ*[48] में यह उल्लेख *(पद्मपुत्री सुखदायक)* इसी तरह का है। *पाटनामा* में यह उल्लेख बहुत स्पष्ट है। यहाँ वह सिंघल द्वीप के राजा की पुत्री है और उसका नाम मदन कुँवर है और वह पद्मिनी कोटि की स्त्री है। पाटनामाकार उसका परिचय देता हुआ साफ़ लिखता है कि- *गाम मनोहरगढ़ का राजा की बेटी राजा को नाम समनसी पुवार। राजा समनसी की बेटी नाम मदन कुवरी असत्री की जात पदमणी..।* अर्थात् मनोहरगढ़ के राजा की बेटी। राजा का नाम समरसिंह पंवार। राजा की बेटी का नाम मदनकुंवरी। स्त्री की जाति पदमिनी...।''[49] पाटनामाकार यह स्पष्ट उल्लेख करता है कि कि मदन कुँवर स्त्रियों की चार कोटियों में से एक पद्मिनी कोटि की स्त्री है। वह लिखता है कि- *परंत एके अरज मारी सांमलो असत्री जात की चारु बरण हुवे है। पदमणी, हस्तणी, चत्रणी संखणी, ए च्यार ही बरण माहे पदमणी को बरण राजा है। च्यार जात महे अणा बाई हे लोग संसार कहे है क या पदमणी हे। अणी हे आप परणिया हो।* अर्थात् मेरा एक निवेदन सुनिए। स्त्री चार प्रकार की- पद्मिनी, हस्तिनी, चित्रणी और शंखिनी होती है और इनमें राजा मतलब सर्वोपरि पद्मिनी है। संसार और लोग कहते हैं कि जिससे आपने विवाह किया है, वह पद्मिनी है।[50] स्पष्ट है कि इन कथा-काव्यों में रत्नसेन की विवाहिता स्त्री को पद्मिनी इसलिए कहा गया हैं, क्योंकि उसमें शास्त्र वर्णित पद्मिनी स्त्री के लक्षण हैं। *पाटनामा* में उसका नाम मदन कुँवर है।

लोक स्मृति और पारंपरिक देशज ऐतिहासिक कथा-काव्यों में पद्मिनी इस प्रकरण का केंद्रीय चरित्र है, लेकिन अधिसंख्य आधुनिक इतिहासकारों की निगाह में इतिहास में इस तरह का कोई चरित्र नहीं हुआ। अलाउद्दीन ख़लजी के समकालीन

इस्लामी वृत्तांतकार चित्तौड़ पर आक्रमण का उल्लेख तो करते हैं, लेकिन वे वहाँ किसी रानी या पद्मिनी का उल्लेख नहीं करते। अमीर ख़ुसरो, अब्दुल मलिक एसामी और ज़ियाउद्दीन बरनी, तीनों हो इस्लामी वृत्तांतकार रानी या पद्मिनी का नाम नहीं लेते। अलबत्ता कुछ इतिहासकारों ने अमीर ख़ुसरो के प्रकरण के वृत्तांत में पद्मिनी या रत्नसेन की रानी के सांकेतिक उल्लेख की बात स्वीकार की है। अमीर ख़ुसरो अलाउद्दीन का समकालीन था। ख़ास बात यह है कि वह चित्तौड़ पर आक्रमण के दौरान अलाउद्दीन ख़लजी के साथ था, इसलिए इतिहासकारों की राय में उसका वृत्तांत प्रत्यक्ष और आनुभाविक है। अमीर ख़ुसरो के वृत्तांत के संबंध में ख़ास बात यह है कि यह बहुत अतिरंजित और अलंकरणप्रधान है, इसलिए फ़ारसी के जानकारों ने इसके एकाधिक रूपांतरण किए हैं और ये सभी इस कारण एक-दूसरे से मिलते नहीं हैं। एच.एम. इलियट ने *हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, एज टोल्ड बाई इट्स ऑन हिस्टोरियन* में *ख़जाइन-उल-फ़ुतूह* को इतिहास की अपेक्षा काव्य अधिक माना है और उन्होंने इसका केवल सार-संक्षेप प्रस्तुत किया है।[51] सैयद अतहर अब्बास रिज़वी ने भी *ख़लजी कालीन भारत* में *ख़जाइन-उल-फ़ुतूह* का सार ही प्रस्तुत किया है। पहली बार *ख़जाइन-उल-फ़ुतूह* का शब्दश: अंग्रेज़ी भाषांतर इतिहास और फ़ारसी के विद्वान् प्रो. मुहम्मद हबीब ने किया। इलियट और रिज़वी के प्रकरण के सार-संक्षेप में अलाउद्दीन ख़लजी की चित्तौड़ के विरुद्ध चढ़ाई में किसी स्त्री का ज़िक्र नहीं है, लेकिन प्रो. हबीब के इस प्रकरण के शब्दश: अंग्रेजी रूपांतरण में आए 'हुद-हुद' का संबंध कुछ इतिहासकारों और विद्वानों ने पद्मिनी से जोड़ा है। यह उल्लेख इस तरह है-

"11 मुहर्रम हिजरी सन् 703 सोमवार के दिन इस युग का सुलेमान (अलाउद्दीन) अपने ऊँचे सिंहासन पर बैठकर उस क़िले में दाख़िल हुआ, जिसकी बुलंदी तक परिंदे भी उड़ान नहीं भर सकते थे। ख़ाकसार (अमीर ख़ुसरो), जो इस सुलेमान (अलाउद्दीन) का पक्षी है, उसके साथ था। वे बार-बार "हुद हुद! हुदहुद!" चिला रहे थे, किंतु मैं (अमीर ख़ुसरो) हाज़िर नहीं हुआ, क्योंकि मुझे भय था कि शायद सुल्तान गुस्से में पूछ बैठे, "क्या बात है, हुदहुद क्यों नहीं दिखाई पड़ा। क्या वह भी अनुपस्थितों में है? और यदि मेरी अनुपस्थिति की 'ठीक कैफ़ियत माँगे', तो मैं क्या बहाना बनाऊँगा? यदि गुस्से में आकर बादशाह कह दे "मैं तुझे दंड दूँगा" तो बेचारा यह पक्षी उसको सहन करने का हौंसला कर सकेगा?"[52]

दरअसल *क़ुरान* में 'हुदहुद' का उल्लेख एक पक्षी के रूप में है, जो सुलेमान के पास शेबा की रानी बिलक़ीस के समाचार लाता था। कुछ इतिहासकारों और विद्वानों की राय है कि अमीर ख़ुसरो इस प्रकरण में ख़ुद को हुदहुद और अलाउद्दीन ख़लजी

को सुलेमान मानता है। उसके अनुसार अलाउद्दीन ख़लजी चित्तौड़ के क़िले में प्रविष्ट होने के बाद पद्मिनी को नहीं पाकर अमीर ख़ुसरो को उसका संदेशवाहक 'हुदहुद' मानते हुए उससे पद्मिनी की अनुपस्थिति की क़ैफ़ियत माँग रहा है। 'हुदहुद' का उल्लेख पद्मिनी के संदेशवाहक के लिए हुआ है, इसकी पुष्टि करते हुए इतिहासकर आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने लिखा है कि "अमीर ख़ुसरव अवश्य इस घटना की ओर संकेत करता है, जबकि वह अलाउद्दीन की सुलेमान से तुलना करता है, सेबा को चित्तौड़ के क़िले के भीतर बताता है और अपनी उपमा उस 'हुदहुद' पक्षी से देता है, जिसने युथोपिया के राजा सुलेमान को सेबा की सुंदर रानी बिलक़ीस का समाचार दिया था।"[53] *ख़जाइन-उल-फ़ुतूह* का शब्दश: अनुवाद करने वाले मोहम्मद हबीब का भी यही मानना है कि "हुदहुद (और ज़ाहिर है, इससे संबंधित सेबा की रानी से भी) से ख़ुसरो का आशय अपने लिए है, जिसे अलाउदीन को सुंदर पद्मिनी का समाचार देना है।"[54] विख्यात पुरातत्त्वविद् मुनि जिनविजय की धारणा भी यही है। उनकी स्पष्ट धारणा है कि यह उल्लेख पद्मिनी से संबंधित है और "अमीर ख़ुसरो के उक्त कथन का इसके सिवा और कोई अर्थ नहीं घट सकता, और न ही सुलेमान और सेबा की रानी बिलक़ीस के साथ 'हुदहुद' पक्षी की उपमा का ज़िक्र इस, संदर्भ में अन्य रूप में सार्थक हो सकता है।"[55] एक और इतिहासकार सुबीमलचंद्रा दत्ता ने भी अमीर ख़ुसरो के हुदहुद संबंधी उल्लेख का निहितार्थ पद्मिनी ही माना है। उन्होंने इसे अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा कि- "कहानी इससे संबंधित है कि कैसे डेविड के बेटे सुलेमान ने सैनिकों, जानवरों और पक्षियों सहित विशाल सेवकों के दल सहित एक अभियान किया, जिनमें से 'हुदहुद' भी एक था। जब उन्होंने रेगिस्तान के पास डेरा डाला, तो 'हुदुहुद' को याद किया और घोषणा की कि वे इसे कड़ी से कड़ी सज़ा देंगे, जब तक कि पक्षी संतोषजनक ढंग से अपनी अनुपस्थिति का कारण स्पष्ट नहीं करता। 'हुदहुद' तुरंत प्रकट हुआ और उसने सूचित किया कि वह सेबा और उसकी रानी बिलक़ीस की ख़बर लाया है, जो सूर्य की पूजा करती थी। सुलेमान ने तुरंत हुदहुद को पत्र के साथ बिलक़ीस को ख़ुद को समर्पित करने के लिए संदेश भेजा। उसने अपने सलाहकारों को इकट्ठा किया और अपने दूत को सुलेमान के पास उपहारों के साथ भेजा, जिसने हालाँकि घोषणा की कि वह बिलक़ीस की व्यक्तिगत अधीनता के अलावा किसी और चीज़ से संतुष्ट नहीं होगा। चित्तौड़ के ख़िलाफ़ अलाउद्दीन के अभियान और सेबा की भूमि के ख़िलाफ़ सोलोमन के कार्यों के बीच समानता उचित होगी, क्योंकि चित्तौड़ में सेबा की प्रतिकृति थी। ज़ाहिर है, इसलिए ख़ुसरो का तात्पर्य है कि अलाउद्दीन ने चित्तौड़ में शासक परिवार की महिला पद्मिनी के आत्मसमर्पण पर ज़ोर दिया।"[56] यह सही है कि इस्लामी

समकालीन स्रोतों में पद्मिनी का उल्लेख नहीं है, लेकिन केवल इस आधार पर उसे अनैतिहासिक और कल्पित चरित्र मान लेना ग़लत होगा। पद्मिनी पारंपरिक देशज कथा-काव्यों और लोक स्मृति में है और उसके अस्तित्व का सांकेतिक उल्लेख अमीर ख़ुसरो के *ख़जाइन-उल-फ़ुतूह* में भी है।

5.

अलाउद्दीन ख़लजी का ऐतिहासिक अस्तित्व असंदिध है और वह इन देशज ऐतिहासिक कथा-काव्यों में खलनायक की हैसियत में है। उल्लेखनीय और आश्चर्यकारी तथ्य यह भी है कि सल्तनत और मुग़लकाल के सभी शासकों में से वही एक ऐसा शासक है, जिसकी लोक स्मृति में मौजूदगी बहुत निरंतर और सघन है। वह संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और देश भाषा काव्यों में वर्णित है और उससे संबंधित कुछ लोक कथाएँ भी मिलती हैं।[57] देशज ऐतिहासिक कथा-काव्यों में वह खलनायक है और यह जानकर कि रत्नसेन की विवाहिता स्त्री पद्मिनी है, वह उसको पाने के लिए चित्तौड़ पर आक्रमण करता है। *गोरा-बादल कवित्त* में उसको 'आलिमशाह अलावदी' कहा गया।[58] उसकी प्रशस्ति में भाट कहता है कि- *एक छत्र जिण प्रथीय, धरीय निश्चल धरणि पर, आंण किद्ध नव खंड, अदल किद्धु दुनि भीतर।* अर्थात् जिसका संपूर्ण पृथ्वी पर एक छत्र साम्राज्य है और जिसने दुनिया के नौखंडों में न्याय क़ायम किया है।[59] हेमरतन ने भी उसका वर्णन इसी तरह किया है। वह लिखता है कि- *डिलीपति पतिसाह प्रचंड अवनि एक तसु आंण अखंड। / अलावदीन नव खंडे नाम, नृप सहु तेहनइँ करइ सिलाँम॥* अर्थात् दिल्ली का बादशाह बहुत प्रचंड है और उसने संपूर्ण पृथ्वी को अविभाजित एक कर दिया है। उसका नाम नौ खंडों में है और सभी राजा उसको सलाम करते हैं।[60] जटमल नाहर के अनुसार *पातसाह तिहाँ अलावदी करै राज सिर नर सुथिर* अर्थात् वहाँ (दिल्ली का) का बादशाह अलाउद्दीन है और वह देवताओं और मनुष्यों पर अच्छी तरह शासन करता है।[61] *खुम्माणरासो* उसे 'आलम' 'असपति' आदि[62] और *राणारासो* में 'अलावदी' और *समिओ* में उसे 'साहि', 'पतिसाहि' आदि[63] कहा गया है। उसके सैन्य बल का इन सभी कवि-कथाकारों ने अतिरंजनापूर्ण वर्णन किया है। उसकी सेना में सम्मिलित हाथियों, घोड़ों, पैदल सैनिकों आदि का विवरण अपनी तरह से ये सभी कवि-कथाकर देते हैं।

अधिकांश इतिहासकर यह मानते हैं कि अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण राजनीतिक प्रयोजन- साम्राज्य विस्तार के लिए किया[64], लेकिन सभी देशज कथा-काव्यों के अनुसार चित्तौड़ पर उसके आक्रमण का एक मात्र प्रयोजन पद्मिनी पाना था। इन रचनाओं में उसके स्त्री लोलुप स्वभाव और कामांधता का वर्णन है। *गोरा-*

बादल कवित्त में अलाउद्दीन कहता है कि *मारुउ देस हिंदुआण कूं, त्रीया एक जीवित धरउं* अर्थात् हिंदू देश की ख़त्म कर स्त्री (पद्मिनी) को जीवित पकड़ लूँगा।[65] *गोरा-बादल पदममिणी चउपई* में पद्मिनी के लिए अलाउद्दीन की व्याकुलता का विस्तृत वर्णन है। वह राघव व्यास से कहता है कि- *एहनउ रूप अनोपम एह रूप तणी इण लाधी रेह। एहना एक अँगूठा जिसी अवर नारि नहु दीसइ इसी*। अर्थात् इसका रूप अनुपम है, इसके जैसी और कोई नहीं है। यहाँ इसके अँगूठे जैसी भी कोई नहीं है।[66] आगे कवि कहता है कि- *पद्मिणी नारि हिया महि वसी और मूर्च्छित चित्त हुए पातसाहि* अर्थात् पद्मिनी स्त्री उसके हृदय में बस गई और वह मूर्च्छित हो गया।[67] *पाटनामा* में भी उल्लेख है कि- *पातसाह पद्मिणी जी देखेर सुध भूल ही गीयो अर्थात् बादशाह पद्मिनी देखकर सुध भूल गया।*[68]

इतिहास में अलाउद्दीन के संबंध में परस्पर विरोधी धारणाएँ मिलती हैं। अफ़्रीकी यात्री इब्न बतूता के अनुसार वह सबसे अच्छा सुल्तान था[69], जबकि उसके अपने समकालीन वृत्तांतकार ज़ियाउद्दीन बरनी के अनुसार वह बहुत क्रूर और नृशंस शासक था।[70] बरनी उसकी अत्यधिक मदिरापान की आदत और उसके अंत:पुर में स्त्रियों पर होने वाले भारी व्यय का ज़िक्र भी करता है।[71] यों उसके समकालीन वृत्तांतकारों ने साफ़ उल्लेख नहीं किया है, लेकिन पारिस्थितिक साक्ष्य इस तरह के हैं, जो उसके स्त्री लोलुप और कामांध होने की ओर संकेत करते हैं। अलाउद्दीन स्त्री लोलुप और कामांध था, यह अन्य इस्लामी स्रोतों से भी सिद्ध है। गुजरात के अरबी इतिहास के लेखक हाजी उद्दबीर (1605 ई.) ने अलाउद्दीन के चरित्र का जो विवरण दिया है, वह इसी तरह का है। विवरण के अनुसार उसके विवाहेतर संबंधों के कारण उसकी धर्मपत्नी उससे खिन्न और रुष्ट रहती थी।[72] पारंपरिक देशज आख्यानों से यह भी सिद्ध है कि उसने स्त्रियाँ पाने के लिए ही युद्ध अभियान किए। उसने गुजरात पर कमला, रणथंभोर पर देवल देवी और देवगीर पर छिताई के लिए चढ़ाई की। *छिताईचरित्र* में अलाउद्दीन राघवचेतन से कहता है कि ''वह न बेटी देता है और न स्थान छोड़ता है। ''मैं देवल (देवी) के लिए रणथंभोर गया; किंतु मेरा एक भी काम सिद्ध नहीं हुआ।'' दिल्ली के स्वामी ने कहा, ''मैंने चित्तौड़ में पद्मिनी के संबंध में सुना। मैंने जाकर रत्नसेन को बाँध लिया, किंतु बादल उसे छुड़ा ले गया। जो अबकी बार मैंने छिताई को न लिया, तो यह सिर मैं देवगीर को अर्पित करूँगा।''[73] नयचंद्र सूरि ने भी अपने *हम्मीरमहाकाव्य* (1390 ई.) में स्पष्ट उल्लेख किया है कि अलाउद्दीन का दूत हम्मीर से कहता है कि- ''हे हम्मीर! यदि राज्य को भोगने की तुम्हारी इच्छा है तो एक लाख स्वर्ण मुद्रा, चार मदमत्त हाथी, तीन सौ घोड़े और भेड़ें तथा अपनी पुत्री को हमें देकर हमारे आदेश को सिर आँखों पर चढ़ा लो।[74] नयचंद सूरि के

इस उल्लेख पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। इतिहासकार दशरथ शर्मा का मानना है कि "उनका सब वर्णन इतना ब्यौरेवार है कि उन्हें असत्य मानना संभवत: केवल धृष्टता मात्र या हिंदू इतिहासकारों के प्रति व्यर्थ अश्रद्धा का सूचक होगा।"[75] भांडा व्यास की 1481 ई. की रचना *हम्मीरायण* में भी उल्लेख है कि "ख़लज़ी ने हम्मीर को दूत भेज कर कहलवाया कि "वह राजकुमारी देवल दे, धारू-वारू (दो वेश्याओं के नाम) और अनेक गढ़ों और हाथियों को बादशाह को नज़र कर दे।"[76] आश्चर्यजनक यह है कि देशज आख्यानों में अलाउद्दीन के युद्ध अभियानों में उसकी स्त्रियाँ पाने की लालसा प्रमुख है, लेकिन समकालीन इस्लामी वृत्तांतकार इस संबंध में मौन हैं। अमीर ख़ुसरो ने रणथंभोर, चित्तौड़ और देवगीर पर अलाउद्दीन ख़लजी के अभियान के पीछे अलाउद्दीन ख़लजी की स्त्री पाने की इच्छा का ज़िक्र नहीं किया, जबकि पारंपरिक सभी आख्यानों मे यही सर्वोपरि है। उसने तो चित्तौड़ में स्त्रियों के जौहर का भी उल्लेख नहीं किया। अलबत्ता अपने रणथंभोर पर चढ़ाई के दौरान राय द्वारा क़िले में आग लगवाकर अपनी स्त्रियों को आग में जलवाने का उल्लेख किया है।[77] देवगीर अभियान में अमीर ख़ुसरो ने छिताई का उल्लेख तो कहीं नहीं किया, लेकिन आक्रमण के बाद राय तथा उसके परिवार की रक्षा के विशेष प्रबंध करने संबंधी सुल्तान के आदेश का ज़रूर हवाला दिया है।[78]

6.

गोरा और बादल, रत्नसेन के ये दो योद्धा सामंत पदमिनी-रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर इन अधिकांश रचनाओं में हैं। ख़ास बात यह है कि उलाउद्दीन के साथ युद्ध और उसके कब्ज़े से रत्नसेन को मुक्त करवाने में इनकी निर्णायक भूमिका है और अपने स्वामिधर्म के निर्वाह के कारण इन अधिकांश काव्यों में ये नायक की हैसियत में भी हैं। इन अधिकांश कथा-काव्यों में यह उल्लेख कि ये दोनों रत्नसेन के ग्रास (जागीर) से वंचित सामंत थे और इनकी किसी कारणवश रत्नसेन से अनबन थी। *गोरा-बादल कवित्त* के अनुसार दोनों काका-भतीजा थे और बादल के पिता का नाम गाज्जन था।[79] हेमरतन के यहाँ यह उल्लेख इसी प्रकार से है। वह गोरा के संबंध में लिखता है कि- *तिणि पुरि गोरउ रावत रहइ, खित्रवट रीति खरी निरवबइ।*[80] फिर आगे वह बादल के संबंध में कहता है कि- *तासु भत्रीजउ बादिल बाल वेरी कंद तणउ कुद्दाल।*[81] लब्धोदय का उल्लेख भी इसी प्रकार का है। वह लिखता है कि- *गोरो रावत तिन गढै, वादल तस भत्रीज।*[82] *खुम्माणरासो* में भी इन दोनों का परिचय इसी प्रकार दिया गया है।[83] *पाटनामा* में यह परिचय कुछ अलग है। पाटनामाकार के अनुसार ये दोनों योद्धा सिंघल द्वीप के राजा और पद्मिनी के पिता समरसिंह पंवार के सामंत थे और

पद्मिनी के राखीबंध भाई थे। विवाह के बाद ये दोनों पद्मिनी के आग्रह पर उसके साथ चित्तौड़ आए।[84]

पद्मिनी की तरह समकालीन इस्लामी वृत्तांतकार गोरा और बादल का भी उल्लेख नहीं करते, लेकिन परवर्ती कुछ मुस्लिम वृत्तांतों और आधुनिक इतिहासकारों के यहाँ इन दोनों योद्धाओं का रत्नसेन को मुक्त करवानेवाले योद्धाओं के रूप में उल्लेख आता है। अबुल फ़ज़ल (1551–1602 ई.) के अनुसार "अंत में, गोरा और बादल चौहानों ने मृत्यु पर्यन्त युद्ध किया, जिससे सर्वत्र जय-जयकार के बीच रावल सकुशल चित्तौड़ पहुँच गया।"[85] बाद में जेम्स टॉड (1829 ई) ने भी लिखा कि "गोरा और बादल के नेतृत्व में राजपूत वीरों ने अपने राजा और रानी के सम्मान की रक्षा के लिए अद्भुत वीरता के साथ शत्रुओं का सामना किया।"[86] टॉड भी देशज कथा-काव्यों की तरह मानता है कि युद्ध में गोरा खेत रहा और बादल जीवित लौटकर आया। *वीरविनोद* (1886 ई.) में श्यामलदास ने इस गोरा-बादल को चौहानवंशी बताकर उनकी वीरता का अपेक्षाकृत विस्तृत विवरण दिया। उनके अनुसार "क़िलेवालों ने बहुतेरी कोशिश की, कि रावल को छुड़ा लेवें, लेकिन बादशाह ने उनको यही जवाब दिया, कि बग़ैर पद्मावती देने के रत्नसिंह का छुटकारा न होगा, तब तमाम राजपूतों ने एकत्र होकर अपनी अपनी बुद्धि के मुवाफ़िक सलाह ज़ाहिर की, लेकिन पद्मावती के भाई गोरा व बादल ने कहा, कि बादशाह ने हमारे साथ दग़ाबाज़ी की है, इसलिये हमको भी चाहिये, कि उसी तरह अपने मालिक को निकाल लावें; और इस बात को सबों ने क़ुबूल किया। तब इन दोनों बहादुरों ने बादशाह से कहलाया, कि पद्मिनी इस शर्त पर आपके पास आती है कि पहिले वह रत्नसिंह से आख़री मुलाक़ात कर लेवे। बादशाह ने क़स्म खाकर इस बात को क़ुबूल किया। इस पर गोरा व बादल ने एक महाजान और 800 डोलियों में शस्त्र रखकर हर एक डोली के उठाने के लिये सोलह-सोलह बहादुर राजपूतों को कहारों के भेस में मुकर्रर कर दिया, और थोड़ी सी जमइयत लेकर आप भी उन डोलियों के साथ हो लिये। बादशाह की इज़ाजत से ये सब लोग पहिले रावल रत्नसिंह के पास पहुँचे; जनानह बन्दोबस्त देखकर शाही मुलाज़िम हट गये। किसी को दग़ाबाज़ी का ख़्याल न हुआ, और इस हलचल में राजपूत लोगों ने रत्नसिंह को घोड़े पर सवार करके बादशाही लश्कर से बाहिर निकाला। जब वह बहादुर लश्कर से निकल गया, तो वे बनावटी कहार याने बहादुर राजपूत डोलियों से अपने-अपने शस्त्र निकालकर लड़ाई के लिये तय्यार हो गये। बादशाह ने भी अपनी दग़ाबाज़ी से राजपूतों की दग़ाबाज़ी को बढ़ी हुई देखकर अफ़सोस के साथ फ़ौज को लड़ाई का हुक्म दिया। गोरा व बादल, दोनों भाई अपने साथी बहादुर राजपूतों समेत मरते-मारते क़िले में पहुँच गये। कई एक लोग कहते

हैं, कि गोरा रास्ते में मारा गया, और बादल क़िले में पहुँचा; और बाजों का कौल है, कि दोनों इस लड़ाई में मारे गये, परन्तु तात्पर्य यह कि इन ख़ैरख़्वाह राजपूतों ने अपने मालिक को बादशाह की क़ैद से छुड़ाकर क़िले में पहुँचा दिया, और फिर लड़ाई शुरू हो गई।''[87] गोरा और बादल की स्मृति लोक में सदियों से है। चित्तौड़ दुर्ग में पद्मिनी महल से दक्षिण-पूर्व में दो गुम्बदाकार इमारतें हैं, जिन्हें लोग सदियों से गोरा और बादल के महल के रूप में जानते हैं। इसी तरह गोरा-बादल के मृत्यु स्थल पर गंभीरी और बेड़च नदी के पास मालीखेड़ा गाँव में उनकी स्मृति में दो प्रस्तर स्तंभ लगे हुए हैं।[88] अपवाद हो सकते हैं, लेकिन यह तय है कि स्मारक अनैतिहासिक व्यक्तियों के नहीं बनते।

7.

पद्मिनी-रत्नसेन संबंधी देशज ऐतिहासिक कथा-काव्यों में राघवचेतन प्रमुख चरित्र है, लेकिन उसके ऐतिहासिक अस्तित्व को लेकर भी आधुनिक इतिहासकार पूरी तरह आश्वस्त नहीं हैं। *छिताई वार्ता* के परिचय में रुद्र काशिकेय ने लिखा कि ''जायसी से पूर्व राघवचेतन नाम का प्रयोग शायद किसी काव्य में नहीं किया गया था। कहने का तात्पर्य यह है कि राघवचेतन विषयक कल्पना भी जायसी की प्रतीत होती है, जो उनके पद्मिनी प्रवाद के साथ ही फैली है।''[89] प्रकरण संबंधी देशज ऐतिहासिक कथा-काव्यों में से तीन में राघव और चेतन दो अलग-अलग व्यक्ति, चार में एक एक व्यक्ति, जबकि *राणारासो* में इस तरह का कोई चरित्र नहीं है। हेमरतन के यहाँ उल्लेख है कि- *वास्या गाम ग्रास दइ घणा राघव चेतन बेही जणा।*[90] लब्धोदय ने यही उल्लेख किया है- *राघव चेतन दोइ वसे चित्रकूट में व्यास।*[91] इसी तरह *पाटनामा* में राघव और चेतन रत्नसेन के पारंपरिक बहीबंचा (वंशावली वाचक-लेखक), दो भाई हैं और पाटनामाकार ने उन दोनों का अलग परिचय भी दिया है। वह इनके संबंध में लिखता है कि- *पछै श्री जी हुजूर का घर का बही बंचा राघाचेतन दोई भाई उमेदवार हुवा थाका जुआ की उमर बरस तेवीस की दूजा भाई की उमर बरस बीस की वाने आन आसका दीदी।* अर्थात् इसके बाद श्री हुजूर (रत्नसेन) के घर के बहीबंचा उम्मीद लेकर आए। दोनों भाइयों, जिनमें से एक उम्र तेईस वर्ष और दूसरे की बीस वर्ष थी, ने आकर आशीर्वाद दिया।[92] शेष सभी रचनाओं-*गोरा-बादल कवित्त*[93], *खुम्माणरासो*[94], *पदमिनीसमिओ*[95] और *गोरा-बादल कथा*[96] में 'राघवचेतन' एक ही व्यक्ति है। इनमें कहीं उसका नाम 'राघवचेतन', तो कहीं 'राघव व्यास' लिखा गया है।

रत्नसिंह और पद्मिनी की तरह राघवचेतन का ऐतिहासिक अस्तित्व भी एकाधिक

साहित्यिक स्रोतों और कांगड़ा की ज्वालामुखी प्रशस्ति संबंधी शिलालेख से पुष्ट है। यह सभी स्रोत यह पुष्टि करते हैं कि जायसी की *पद्मावत* की रचना से पहले राघवचेतन 'विद्वान् किंतु कुटिल ब्राह्मण'[97] के रूप में पर्याप्त ख्याति अर्जित कर चुका था। *जैन सिद्धान्त भास्कर* में भी राघव और चेतन, दो ब्राह्मणों के रूप में वर्णित हैं।[98] राघवचेतन प्राचीन साहित्य के विद्वान् अगरचंद नाहटा के अनुसार एक ही व्यक्ति है और वह जायसी की कल्पना नहीं है।[99] राघवचेतन का उल्लेख जायसी के पूववर्ती कई देशज स्रोतों में मिलता है। *वृद्धाचार्य प्रबंधावली* में संकलित *जिनप्रभसूरिप्रबंध* में राघवचेतन का उल्लेख आता है। इसके अनुसार मुहम्मद तुग़लक़ पर जिनप्रभ सूरि का गहरा प्रभाव था और यह बात राघवचेतन को अच्छी नहीं लगती थी, इसलिए उसने षड्यंत्र कर सुल्तान की मुद्रिका जिनप्रभ सूरि के रजोहरण में रख दी। बाद में इसकी पोल खुली। यह विवरण प्रबंध में इस प्रकार दिया गया है- ''एक दिन जब ख़लजी सुलतान का दरबार लगा हुआ था, उसी अवसर पर वाराणसी से चौदह विद्याओं में निपुण मंत्र जप जानने वाला राघवचेतन आ पहुँचा। वह आकर सुल्तान को मिला व सुल्तान ने उसका बहुमान किया। वह सुल्तान के पास हमेशा आता। एक अवसर पर सभा लगी हुई थी; जिनप्रभसूरि, राघवचेतन आदि कथा-कुतूहल कर रहे थे, तब राघवचेतन ने विचार किया कि यह जिनप्रभ सूरि दुष्ट स्वभाववाला है; इसे दोषी घोषित कर इस स्थान से हटा देता हूँ। इस प्रकार विचार कर राजा के हाथ से अँगूठी का विद्याबल से अपहरण कर जिनप्रभ सूरि के रजोहरण के बीच डाल दिया, जिसे जिनप्रभ सूरि नहीं जान सके। तब पदमावती (देवी) ने सूरि को निवेदन किया कि यह राघवचेतन तुम्हारे ऊपर चोरी का इल्ज़ाम लगाने की इच्छा रखता है; इसने राजा के पास से मुद्रारत्न ग्रहण कर तुम्हारे रजोहरण के बीच में रख दिया है, तुम सावधान हो जाओ। तब सूरि ने उस मुद्रारत्न को ग्रहण कर राघवचेतन के शीर्ष वस्त्र के नीचे छिपा दिया, जिसे वह नहीं जान सका। उसी समय मोहम्मद सुल्तान देखते हैं कि मुद्रारत्न नहीं है; वे आगे-पीछे देखते हैं, लेकिन मुद्रारत्न नहीं पाते, तब पूछते हैं, यहाँ मेरा मुद्रारत्न था, किसने लिया। तब राघवचेतन ने कहा कि वह सूरि के पास है। सुल्तान सूरि से माँगने लगे, तब सूरि ने कहा कि हे सुल्तान! यह इसी राघव के सिर के ऊपर है। सुल्तान ने उस मुद्रारत्न को देखा और ग्रहण किया; फिर राघवचेतन को कहा, तुम निश्चित रूप से सत्यवादी नहीं हो। स्वयं ग्रहण करके जिनप्रभसूरि पर दोषारोपण कर रहे हो। वह काला मुँह लेकर अपने घर गया।''[100] *जिन प्रभसूरि अने सुल्तान मुहम्मद* नामक अपनी रचना में लालचंद भगवानदास गांधी ने इस *वृद्धाचार्य प्रबंधावली* की रचना 15वीं सदी में होने का अनुमान किया है, जबकि प्राचीन साहित्य के विद्वान् अगरचंद नाहटा ने इसकी

हस्तलिखित प्रति का अवलोकन किया था और उनके अनुसार इसकी रचना वि.सं.1626 (1569 ई.) में हुई।[101] जिनप्रभसूरि और मुहम्मद तुग़लक़ की भेंट एक ऐतिहासिक तथ्य है। दोनों की यह भेंट वि.सं.1385 (1328 ई.) की पौष सुदी 8 शनिवार को हुई।[102] कांगड़ा की ज्वालामुखी प्रशस्ति (1433–1446 ई.) में वहाँ के शासक संसारचंद्र की प्रशस्ति के बाद 'साहि मुहम्मद' (मुहम्मद तुग़लक़) की प्रशस्ति के प्रसंग में राघवचेतन का भी उल्लेख आता है। प्रशस्ति में लिखा गया है कि– *श्रीमद्राघवचैतन्यमुनिना ब्रह्मवादिना। (स्तव) रत्नावली सेयं ज्वालामुखीसमर्पिता॥... श्रीमत्साहिमहम्मदस्य जयतात् कीर्तिः परा योगिनी।* अर्थात् ब्रह्मवादी श्रीमान् राघचैतन्य मुनि के द्वारा स्तुतियों की यह रत्नावली (माला) ज्वालामुखी देवी को अर्पित की गयी।... श्रीमान् शाहमुहम्मद की परम कीर्ति विजयी हो रही है।[103] स्पष्ट है कि यह राघवचैतन्य और जिनप्रभ सूरि प्रकरण में उलिखित राघवचेतन एक हैं। शार्गंधर राघवचेतन का पौत्र था और उसने संस्कृत छंदों के अपने संकलन *शार्गंधरपद्धति* (13वीं सदी का अंतिम चरण) में राघवचेतन के भी कई छंद संकलित किए हैं। उसने अपने कवि वंश वर्णन में अपने राघवचेतन का पौत्र होने का भी उल्लेख किया है। वह लिखता है कि– *तस्याभवत्सभजनेषु मुख्यः परोपकारव्यसनै कनिष्ठः। पुरंदरस्येव गुरुर्गरीयांद्विजाग्रणी राघवदेव नामाः॥*[104] उसने इसी वंश वर्णन में अपने आश्रयदाता हम्मीर की भी सराहना की है। वह लिखता है कि– *पुराशाकंभरी देशे श्रीमान् हम्मीर भूपतिः। चाहुवाण न्वये जातः ख्यातः शौर्य इवार्जुनः॥* शार्गंधर ने *हम्मीररासो* की भी रचना की थी, जो अब अनुपलब्ध है, लेकिन उसके कुछ छंद *प्राकृतपैंगलम* में संकलित हैं।[105] अगरचंद नाहटा के अनुमान के अनुसार निर्णय सागर प्रेस से 1929 ई. में प्रकाशित *काव्यमाला* के प्रथम गुच्छक (प्रथम भाग) में 'राघवचैतन्यविरचितं महागणपतिस्तोत्रम्' भी इसी राघवचेतन की रचना है।[106] स्पष्ट है कि यह धारणा निराधार है कि राघवचेतन जायसी का कल्पित चरित्र है। विवेच्य देशज कथा-काव्यों में वह प्रमुख चरित्र है और जायसी से बहुत पहले उसका नामोल्लेख शिलालेख सहित एकाधिक साहित्यिक रचनाओं में मिलता है।

8.

युद्ध के परिणाम और जौहर को लेकर पद्मिनी-रत्नसेन विषयक देशज कथा-काव्यों की धारणाएँ प्रचारित से अलग हैं। प्रकरण के अंत में जौहर और अलाउद्दीन ख़लजी की विजय, ये दोनों कुछ हद तक आधुनिक इतिहास में हैं, लेकिन देशज ऐतिहासिक कथा-काव्यों में यह उल्लेख नहीं मिलते। यही नहीं, मेवाड़ के पारंपरिक संस्कृत और देश भाषा वंशावली ग्रंथों और शिलालेखों में भी यह उल्लेख केवल एक *मुँहता नैणसीरी ख्यात* और *रावल राणारी वात* में ही है। जायसी और हेमरतन दोनों से पहले की

रचना *गोरा–बादल कवित्त* में जौहर का उल्लेख नहीं है। *कवित्त* का समापन रत्नसेन की विजय और गोरा की पत्नी के सती होने से होता है। कवित्तकार लिखता है कि– *उवरी बात बादल की सो पदमणी कंत उवेलीउ* अर्थात पद्मिनी के पति के उद्धार के बादल के प्रण का निर्वाह हुआ।[107] परवर्ती सभी रचनाओं में कमोबेश यही बात आयी है। हेमरतन ने कथा का समाहार इसी तरह करते हुए लिखा है कि–*पदमिणि राखी राजा लीउ, गढ़नउ भार घणउ झीलिउ। / रिणवट करीनइ राखी रेह नमो नमो बादिल गुण गेह।* अर्थात् पद्मिनी को रखते हुए बादल ने राजा को मुक्त करवा लिया। उसने युद्ध करके मर्यादा की रक्षा की। गुणों के घर बादल को नमन है।[108] यही बात लब्धोदय ने भी कही है। लब्धोदय ने लिखा है कि अलाउद्दीन पराजित होकर भाग गया और दो दिन बाद भूखा–प्यास भटककर अपने लशकर के पास पहुँचा। यही नहीं, लब्धोदय ने तो इस प्रकरण को और आगे बढाया है। उसके अनुसार दिल्ली लौटने पर बीबी ने अलाउद्दीन से पद्मिनी के संबंध में पूछा, तो उसने कहा कि *पदमणी का मुंह काला किया, हम खैर करी है खुदाय रे* अर्थात् ईश्वर की कृपा से हम बच गये, पद्मिनी का मुँह काला करो।[109] *खुम्माणरासो* में भी रत्नसेन की विजय और अलाउदीन की पराजय का उल्लेख है। दलपति विजय लिखता है कि– *पातसाह दिल्ली गए, भई दुनि सर वात। वादल भिड़ रण सोझियो, उवारी अखियात।* अर्थात् बादशाह दिल्ली लौट गया, यह बात सारी दुनिया में फैल गयी। वीर योद्धा बादल ने रण क्षेत्र में संग्राम करके शत्रुओं का संहार किया और अपनी ख्याति को सुरक्षित रखा।[110] *राणारासो* में भी प्रकरण इसी तरह है। दयालदास कहता है कि *जीत्यो खुमानु खग जोर, जगु मग कित्ति विस्तार हुव। आलंदमिंत अलावदी अजस असंखि भंडारु भुव* अर्थात् राणा रत्नसिंह ने अपनी तलवार के ज़ोर पर विजय प्राप्त की। उसके जगमागते यश का चारों ओर विस्तार हुआ और शत्रुतापूर्ण विचार रखनेवाले अलाउद्दीन का पृथ्वी में अपार अपयश का आगार स्थापित हो गया।[111] *गोरा–बादल कथा* में रत्नसेन की विजय तो है, लेकिन जौहर का उल्लेख नहीं है। जटमल नाहर कहता है कि– *भागउ तौ साह अलावदी अपछर मंगल गाइयइ। / रणजीत राव छुड़ाइ कइ तब बादल घर आवियइ।* अर्थात् सुलतान अलाउद्दीन भाग गया। अप्सराओं ने मंगलगीत गाए। राजा रत्नसेन को बंधन मुक्त करके, रण को जीतकर बादल, वापस आ गया।[112] *पद्मिनीसमिओ* में भी कहा गया है कि– *भई जीत खुम्मान भज्यो सुलतान अलावदी।* अर्थात् खुम्माण रत्नसेन की जीत हुई। सुल्तान अलाउद्दीन भाग गया।[113] *पाटनामा* में प्रकरण का समापन सर्वथा भिन्न है, जो और किसी रचना में नहीं मिलता। यहाँ विजय के पश्चात, यह सोचकर कि आजीवन ये दोनों जीत का श्रेय लेकर उपकार जताते रहेंगे, रत्नसेन ने गोरा और बादल की हत्या कर दी और पद्मिनी ने भी यह सुनकर आत्महत्या कर

ली। जब यह घटना पराजित अलाउद्दीन को पता लगी, तो उसने फिर आक्रमण किया। *पाटनामा* के अनुसार इस युद्ध में दोनों पक्षों की पराजय हुई है। पाटनामाकार लिखता है कि *पछै पातशाही फौज भागी, अर अठीनै गढ़ चित्तौड़ भागो* अर्थात् इधर बादशाह की फ़ौज भागी और और साथ में चित्तौड़ का दुर्ग भी ध्वस्त हुआ।[114] यहाँ विजय-पराजय के संबंध में अनिश्चय है और ख़ास बात यह है कि इसमें भी जौहर का कोई उल्लेख नहीं है।

महाराणा कुंभा और उनके बाद संस्कृत और देशभाषाओं में वंशावली अभिलेखों की रचना और शिलालेखों के निर्माण का चलन बढ़ा। मुग़लों से संधि (1681 ई.) के बाद इस तरह के काम में और तेज़ी आयी, लेकिन अब इन अभिलेखों में 'रावल' की जगह 'राणा' शाखा के पूर्वजों के नामोल्लेख का आग्रह बढ़ गया। यही कारण है कि इनमें से कुछ में समरसिंह के उत्तराधिकारी के रूप में रत्नसिंह का नामोल्लेख नहीं मिलता। कुछ अभिलेखों में पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण तो है, लेकिन इनमें रत्नसिंह का उल्लेख लक्ष्मसिंह के छोटे भाई के रूप में है। रणछोड़ भट्ट ने (1661 से 1690 ई.) राजसिंह (1652-1680 ई.) और जयसिंह (1680-1698 ई.) के समय दो वंशवाली काव्य संस्कृत में लिखे। इन दोनों में मेवाड़ की पराजय का उल्लेख तो है, लेकिन इनमें जौहर का उल्लेख नहीं है। रणछोड़ भट्ट ने *राजप्रशस्तिमहाकाव्य* की रचना 1661 से 1681 ई. के बीच की। यह रचना उदयपुर पास स्थित राजसमंद में 24 शिलाओं पर खुदी हुई है। *राजप्रशस्तिमहाकाव्य* में रत्नसिंह का राणा शाखा के राहप के वंशज लक्ष्मसिंह के छोटे भाई के रूप में उल्लेख है, जिसने सिंघल द्वीप की राजकुमारी पद्मिनी से विवाह किया। प्रशस्ति में इस घटना का बहुत संक्षिप्त विवरण है, जिसके अनुसार "लक्ष्मसिंह 'गढ़ मंगलीक' कहलाता था। उसका छोटा भाई रत्नसी था, जो पद्मिनी का पति था। अलाउद्दीन ने जब पद्मिनी के लिए चित्रकूट को घेर लिया तब अपने बारह भाइयों और सात पुत्रों सहित लक्ष्मसिंह उसके विरुद्ध लड़ा और मारा गया। लक्ष्मसिंह के बाद हमीर ने राज्य किया।"[115] रणछोड़ भट्ट के ही 1683 से 1693 ई. के बीच लिखे गये *अमरकाव्यम्* में यह प्रकरण अपेक्षाकृत विस्तृत है। इसमें कहा गया है कि "सं.1334 में राठौड़ वंश की लालबाई से उत्पन्न जयसिंह का पुत्र 'गढ़ मंडलीक' के नाम से प्रसिद्ध लक्ष्मसिंह चित्तौड़ का स्वामी बना। उसके सात पुत्र हुए। उसने मालवा के राजा गोगादेव को तलवार के घाट उतार दिया और सिंधुल का राज्य लूट लिया। लक्ष्मसिंह का छोटा भाई रत्नसी मालव देश की सेवा में चला गया। रत्नसी ने वहाँ उज्जेन के गूँध और लंघा को मारकर उनके सिर मालव नरेश के सामने लाकर रख दिए। वहाँ के राजा ने रत्नसी को बहुत साधन और चित्तौड़ दे दिया। रत्नसी ने सिंघलद्वीप की राजकुमारी पद्मिनी से विवाह किया। लक्ष्मसी ने

पद्मिनी की रक्षा की ज़िम्मेदारी ली। पद्मिनी की सुंदरता के बारे में सुनकर अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया, छल से रत्नसी को बंदी बना लिया। बुद्धिमान गोरा और बादल के परामर्श और नेतृत्व में महिला वेषधारी युवकों ने रत्नसिंह को मुक्त कराया। लक्ष्मसिंह ने बारह वर्षों तक दुर्ग की रक्षा की। अलाउद्दीन एक बार पराजित होकर चला गया और पद्मिनी की आशा छोड़कर जीवित रहा। उसने दुबारा आक्रमण किया और इस युद्ध में लक्ष्मसिंह ने अन्य भाइयों को राजा बनाकर युद्ध किया। 12 भाइयों सहित लक्ष्मसिंह एवं रत्नसिंह युद्ध में मारे गए।''[116] राजसिंह के ही शासन काल में सदाशिव ने *राजत्नाकरमहाकाव्य* नामक एक काव्य लिखा, लेकिन इसमें राहप के वंशज हरसू, यशकर्ण, नाकपाल, पूर्णमल, पृथ्वीमल, भवनसिंह, भीमसिंह, जयसिंह, लक्ष्मण सिंह अरिसिंह और हम्मीर का उल्लेख तो है, लेकिन इसमें कहीं भी रत्नसिंह और पद्मिनी प्रकरण का उल्लेख नहीं है।[117]

जौहर का उल्लेख ज्ञात स्रोतों में सबसे पहले जायसी की *पद्मावत* (1540 ई.) में मिलता है। जायसी ने अपने इस विशालकाय ग्रंथ के अंत में जौहर का उल्लेख बहुत सांकेतिक ढंग से किया। जायसी लिखते हैं कि- *जौंहर भई इस्तिरी पुरुख भये संग्राम। / पातसाहि गढ़ चूरा चितउर भा इसलाम॥* अर्थात् स्त्रियों ने जौहर कर लिया और पुरुष युद्ध के लिए निकले। बादशाह ने दुर्ग ध्वस्त कर दिया और चित्तौड़ इस्लाम के अधीन हो गया।[118] इस्लामी वृत्तांतकार अबुल फ़ज़ल (1551-1602 ई.) ने भी जौहर उल्लेख किया है। उसने लिखा कि ''कुछ समय पश्चात उसने (अलाउद्दीन) वापस इसी योजना पर दिलज़्मी की, परन्तु हारकर लौट आया। इन आक्रमणों से उकताकर रावल ने सोचा कि बादशाह से मुलाक़ात करने से शायद कोई संबंध सूत्र बँधे और इस प्रकार इस स्थायी कलह से वह छुटकारा पा सके। एक बाग़ी के बहकावे में आकर चित्तौड़ से 7 कोस दूर एक स्थान पर वह बादशाह से मिला, जहाँ छलपूर्वक उसका वध कर दिया गया। इस घातक घटना के पश्चात उसके वंशज अरसी को गद्दी पर बैठाया गया। सुलतान ने चित्तौड़ को पुन: घेर कर उस पर अधिकार कर लिया। राजा लड़ते-लड़ते मारा गया तथा सभी नारियाँ स्वेच्छा से अग्नि में जल मरीं।''[119] इस्लामी इतिहासकार मोहम्मद क़ासिम फ़रिश्ता (1560-1620 ई.)[120] और अब्दुलाह मुहम्मद उमर अल-मक्की अल-आसफ़ी अल-उलुग़ख़ानी हाजी उद्दबीर (1540-1605 ई.)[121] ने पद्मिनी संबंधी वत्तांत का विवरण तो दिया, लेकिन उन्होंने कहीं भी 'जौहर' का उल्लेख नहीं किया। अबुल फ़ज़ल के अनुसार उसका यह विवरण प्राचीन आख्यानों पर आधारित है, लेकिन उसने इन आख्यानों का उल्लेख नहीं किया। नैणसी (1610-1670 ई.) की ख्यात में यह उल्लेख आता है। वह लिखता है कि- *रतनसी अजैसी रो, भड़ लखमसी रो भाई। पदमणी रै मामले लखमसी नै*

रतनसी अलवादीन सू लड़ काम आया। एक वार पातसाह चढ़ खड़िया हुता से पछै पुररा डैरांसू इणा पाछो तेड़ायो। बारै दिन एक एक बेटो लखमणसी रो गढ़सूं उतर लड़िया। तैरमें दिन दिन जुहर कर रांणो लखमणसी, रतनसी कांम आया। भड़ लखमसी, रतनसी, करन तीनै भाई गढ़ रोहै- काम आया। अर्थात् रत्नसिंह अजयसिंह और योद्धा लक्ष्मसिंह का भाई। पद्मिनी के मामले में लक्ष्मसिंह और रत्नसिंह, दोनों काम आए। एक बार बादशाह ने चढ़ाई की, जिसको पुर के डेरे से वापस भेजा। बारह दिन तक लक्ष्मसिंह का एक-एक बेटा दुर्ग से नीचे उतर कर लड़ा। तेरहवें दिन जौहर कर राणा लक्ष्मसिंह और रत्नसिंह काम आए। योद्धा लक्ष्मसिंह, रत्नसिंह और कर्ण, तीनों भाई दुर्ग की रक्षा में काम आए।[122] सत्रहवीं सदी की रचना *रावल राणारी* बात में भी में जौहर का उल्लेख है। लिखा गया है कि- *लुगायां झमर चढ़ी।* अर्थात् स्त्रियों ने जौहर किया।[123]

आधुनिक इतिहास में पद्मिनी प्रकरण का उल्लेख सबसे पहले जेम्स टॉड (1829 ई.) ने अपने राजस्थान के पहले आधुनिक इतिहास *एनल्स एंड एंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान* में किया। उसने जौहर सहित इस प्रकरण का विस्तृत और रूमानी वर्णन किया है। उसका वर्णन कुछ देशज कथा-काव्यों से और कुछ अबुल फ़ज़ल के विवरण से मिलता है। इसमें गोरा-बादल भी हैं, जिन्होंने युक्तिपूर्वक राणा को मुक्त करवाया। टॉड के इस वृत्तांत में रत्नसिंह नहीं है- यहाँ उसकी जगह अल्पवयस्क लक्ष्मसिंह का अभिभावक चाचा भीम सिंह है, जिसने सिंघल की पद्मिनी से विवाह किया है।[124] टॉड के बाद *ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया* में वी.ए. स्मिथ (1921 ई.) ने लगभग टॉड को दोहराते हुए इस प्रकरण का संक्षिप्त विवरण दिया। यद्यपि उसने इसको गंभीर इतिहास का दर्जा नहीं दिया।[125] श्यामलदास (1886 ई.) के *वीरविनोद* (1886 ई.) और गौरीशंकर ओझा के *उदयपुर राज्य का इतिहास* (1928 ई.) में यह प्रकरण विस्तार से आया, जिससे कुछ वंशावली संबंधी भूलें ठीक हुईं। दोनों ने मान लिया कि अलाउदीन आक्रमण के समय रत्नसिंह चित्तौड़ का शासक था और पद्मिनी उसकी पत्नी थी। दोनों ने अपने ढंग से रत्नसिंह की पराजय और जौहर का उल्लेख किया है। श्यामलदास ने लिखा कि ''रत्नसिंह ने सामान की कमी के सबब लकड़ियों का एक बड़ा ढेर चुनकर राणी पद्मिनी और अपने जनानख़ानह की कुल स्त्रियों तथा राजपूतों की औरतों को लकड़ियों पर बिठाकर आग लगा दी। हज़ारों औरत व बच्चों के आग में जल मरने से राजपूतों ने जोश में आकर क़िले के दर्वाज़े खोल दिये, और रावल रत्नसिंह मय हज़ार राजपूतों के बड़ी बहादुरी के साथ लड़कर मारा गया।''[126] बाद में 1928 ई. में गौरीशंकर ओझा भी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ''अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर चढ़ाई कर छः मास के घेरे के अनंतर उसे विजय किया;

वहाँ का राजा रत्नसिंह लक्ष्मणसिंह आदि कई सामंतों के साथ मारा गया, उसकी राणी पद्मिनी ने कई स्त्रियों के साथ जौहर की अग्नि में प्राणाहुति दी; इस प्रकार चित्तौड़ पर थोड़े समय के लिए मुसलमानों का अधिकार हो गया।''[127]

देशज ऐतिहासिक कथा-काव्यों में युद्ध के परिणाम और जौहर के संबध में दिया गया विवरण इस्लामी और अधिकांश आधुनिक इतिहासकारों से अलग है। कुछ परवर्ती इस्लामी वृत्तांतकार और आधुनिक इतिहासकार मानते हैं कि रत्नसिंह और मेवाड़ की पराजय हुई और स्त्रियों ने जौहर किया, जबकि देशज ऐतिहासिक कथा-काव्यों पराजय और जौहर का कोई उल्लेख नहीं है। केवल *पाटनामा* में युद्ध के परिणाम को लेकर अनिश्चय है, अन्यथा सभी देशज कथा-काव्य मानते हैं कि रत्नसिंह की विजय हुई और जौहर नहीं हुआ। परवर्ती कुछ देशज रचनाओं में रत्नसिंह सहित कुछ योद्धाओं के इस युद्ध में मारे जाने और कुछ समय के लिए चित्तौड़ के मुसलमानों के अधीन हो जाने का विवरण तो है, लेकिन जौहर का उल्लेख इनमें भी नहीं है। जौहर का सबसे पहले उल्लेख जायसी ने किया, इसके बाद अबुल फ़ज़ल और नैणसी ने किया और फिर जेम्स टॉड से होकर यह आधुनिक इतिहास में आया। विवेच्य देशज कथा-काव्यों के अनुसार मेवाड़ और रत्नसेन की इस युद्ध में विजय हुई, इसकी पुष्टि पुरालेखीय और अन्य साहित्यिक साक्ष्यों से नहीं होती, लेकिन इस तरह का उल्लेख बहुत स्वाभाविक है। सभी पराभूत जातियों के साहित्य में अपनी पराजयों को विजय में बदलने की प्रवृत्ति मिलती है। यही नहीं, नियतिवाद और कर्मफल में विश्वास के कारण कुछ जाति समाज लौकिक घटनाओं के लिए अलौकिक कारण भी देते हैं। कुछ जाति-समाज अपनी पराजय का अपने सांस्कृतिक रूपों में लोकोत्तर औचित्य भी खोजते हैं। *कान्हड़देप्रबंध* में कुछ ऐसा ही हुआ है। यहाँ अलाउद्दीन ख़लजी को शिव का अवतार मान लिया गया है, जिससे जीतना संभव ही नहीं है।[128] इन रचनाओं में जौहर का अनुल्लेख आश्चर्यकारी है। जिन रचनाओं में रत्नसेन की विजय दिखाई गयी है, उनमें तो इसका कारण समझ में आता है कि जब विजय हुई है, तो स्त्रियाँ के जौहर करने का कोई कारण ही नहीं बनता। ख़ास बात यह है कि जौहर का अनुल्लेख उन रचनाओं में भी है, जिनमें रत्नसेन की पराजय हुई है।

9.

मिथ, मतलब अभिप्रायों और कथा रूढ़ियों के आधार पर पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर कथा-काव्यों को अनैतिहासिक मानना ग़लत है और इनके युक्तिकरण का भी कोई औचित्य नही है। दरअसल यह भारतीय ऐतिहासिक कथा-काव्यों की अपनी विशेषता है, ऐसा सदियों से होता आया है और यह पारंपरिक भारतीय कवि शिक्षा

में भी सम्मिलित है, इसलिए इन कथा–काव्यों में विन्यस्त इतिहास को इन अभिप्रायों और रूढ़ियों के साथ ही अच्छी तरह समझा जा सकता है। अकसर भारतीय परंपरा में इतिहास कथा–कविता में विन्यस्त होकर आता है, इसलिए इतिहासकार विश्वंभरशरण पाठक ने साफ़ लिखा है कि ''आधुनिक इतिहासकार यह भूलने लगते हैं कि ये इतिहास–महाकाव्य जानबूझकर कलात्मक बनाए गये हैं और इसलिए इनके आधार पर इतिहास का पुनर्निर्माण करने के लिए इन ग्रंथों से लिए गये तथ्यों को अपने संदर्भ से बाहर निकालकर विवेकहीन तरीके से उपयोग नहीं किया जा सकता।''[129] पद्मिनी–रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर कथा–काव्यों में मुख्यत: भोजन पर राजा की नाराज़गी और रानी का ताना, राजा का सिंघल द्वीप जाकर पद्मिनी से विवाह, सिद्ध योगी द्वारा इस कार्य में सहयोग, राजकुमारी या राजा द्वारा विवाह के लिए रखी गई शर्त और ऋतु और युद्ध वर्णन संबंधी कवि–कथा रूढ़ियों का प्रयोग हुआ है। भोजन के स्वादहीन होने पर या किसी अन्य कारण से राजा की नाराज़गी और इस पर उसका कोई संकल्प लेना भारतीय कथा–काव्यों में रूढ़ि की तरह प्राय: इस्तेमाल हुआ है। यह कथानक रूढ़ि कुछ इधर–उधर के साथ संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और परवर्ती देश भाषाओं की कथा–काव्य परंपरा में भी मिलती है। भोजन के स्वादहीन या अरुचिकर होने पर दंपती में कलह–क्लेश के प्रकरण ने संस्कृत कविता में जगह बना ली थी। अज्ञात कविकर्तृक *सुभाषितावली* के एक श्लोक में यह प्रकरण इस तरह आया है– *क्षारं राद्धमिदं किमद्य दयिते राध्नोषि किं न स्वयमाः पापे प्रतिजल्पसे प्रतिदिनं पास्तवदीयः पिता। / धिक्त्वां क्रोधमुखीखीमलीकमुखरसरस्त्वत्तोह्यपि कः क्रोधनो दंपत्योरिति नित्य दत्त कलह क्लेशांतयोः किं सुखम् ?॥* अर्थात् हे घरवाली! यह आज कैसा खारा भोजन राँध दिया है। (घरवाली) पका नहीं तो, ख़ुद क्यों नहीं पका लेते? अरी पापिनी, रोज–रोज मुँह पर जवाब देती हो। (घरवाली) पापी होंगे पिता तुम्हारे.. धिक्कार है तुझ क्रोधमुखी को। तुम जैसा है कोई क्रोधी और झुठेला। इसी तरह प्रतिदिन दंपती कलह के क्लेश में नष्ट होते हैं और उनको कोई सुख नहीं है।[130] नरपतिनाल्ह कृत *बीसलदेवरास* (1343 ई.) में विग्रहराज (तृतीय) विवाह के पहले दिन ही रानी के यह कहने पर कि– *गरब म करि हो संइंभरवाल था सरीषा अवर घणा रे भुआल* (अर्थात् हे सांभर! नरेश गर्व मत करिए, आप जैसे और कई राजा हैं) नाराज़ हो जाता है और संकल्प लेकर बारह वर्ष के लिए उळगाने (चाकरी) पर उड़ीसा चला जाता है।[131] यह कथा रूढ़ि *गोरा–बादल कवित्त, गोरा–बादल पदमिणी चउपई, गोरा–बादल चरित्र चौपई, खुम्माणरासो* और *चित्तौड़–उदयपुर पाटनामा* में प्रयुक्त हुई है। अज्ञात कविकर्तृक *गोरा–बादल कवित्त* में इसका उल्लेख सांकेतिक है[132], लेकिन परवर्ती रचनाओं में इसका पल्लवन और विस्तार हुआ है। अपनी रुचि के अनुसार

इन कवि–कथाकारों ने इस रूढ़ि का पल्लवन और विस्तार किया है। इसका सर्वाधिक विस्तृत पल्लवन *चित्तौड़–उदयपुर पाटनामा* में है।[133] *राणारासो, पद्मिनीसमिओ* और *गोरा–बादल कथा* में यह कथानक रूढ़ि नहीं है। *गोरा–बादल कथा* में चार चतुर वेताल सिंघल द्वीप से राजा रत्नसेन के पास माँगने आते हैं और उसे सिंघल की पद्मिनी स्त्रियों के संबंध में बताते हैं।[134] *पद्मिनीसमिओ* में यही कथानक रूढ़ि है। *राणारासो* में भाटों के स्थान पर एक योगी का आगमन और उसके द्वारा पद्मिनी स्त्रियों की सुंदरता के वर्णन है। यहाँ रत्नसेन सिंघल द्वीप नहीं जाता– योगी ही अपनी आराध्यदेवी का स्मरण कर उसके लिए पदमिनी और दोनों के आवास के लिए महल उपलब्ध करवा देता है।[135]

सिंघल द्वीप जाकर पद्मिनी से विवाह की कथा रूढ़ि इन सभी रचनाओं में है। संकल्पबद्ध होकर पद्मिनी से विवाह के लिए सिंघल प्रस्थान, समुद्र के मध्य सिंघल द्वीप, वहाँ पद्मिनी स्त्रियाँ की मौजूदगी, पद्मिनी स्त्री से कमल की गंध आना और इस कारण उस पर भँवरे मंडराना, ये इस कथा रूढ़ि के विभिन्न आयाम हैं। रचनाकारों ने अपनी सुविधा के अनुसार इनका उपयोग अपनी तरह से किया है। कहीं यह रूढ़ि सांकेतिक है, तो कहीं इसका पल्लवन और विस्तार हुआ है। *पाटनामा* में यह सबसे अधिक विस्तृत है और यहाँ इस कथारूढ़ि का विकास भी हुआ है।[136] सिंघल द्वीप जाकर वहाँ की स्त्री से विवाह करना भारतीय चरित और प्रबंध कथा–काव्यों में प्रयुक्त लोकप्रिय कथा रूढ़ि है। हर्षदेव की संस्कृत नाटिका *रत्नावली* (7वीं सदी) की नायिका रत्नावली (सागरिका) भी सिंहलनरेश विक्रमबाहु की बेटी थी, जिससे कोशाम्बी के राजा उदयन ने विवाह किया।[137] प्राकृत–अपभ्रंश में कोऊहल कृत *लीलावई* (8वीं सदी)[138] धनपाल कृत *भविसयत्तकहा* (10वीं सदी)[139], मुनि कनकामर कृत *करकंडचरिउ* (11वीं सदी)[140] और राजसिंह *जिणदत्त चरित* (13वीं सदी)[141] में इस रूढ़ि का प्रयोग हुआ है। जिनहर्ष सूरि की 1430 ई. चित्तौड़ में ही लिखी गयी *रयणसेहरनिवकहा* में भी नायक सिंघल द्वीप जाकर विवाह करता है।[142]

सिद्ध योगी की लक्ष्य प्राप्ति में सहयोग की कथा रूढ़ि का प्रयोग भी इन कथा–काव्यों में मिलता है। सिंघल द्वीप समुद्र के मध्य स्थित है और और यह बहुत दुर्गम है, इसलिए इन कथा–काव्यों में सिद्ध योगी राजा रत्नसेन को वहाँ पहुँचने में मदद करता है। आरंभिक रचना *गोरा–बादल कवित्त* में यह रूढ़ि नहीं है। यहाँ केवल राजा के रानी के ताने पर नाराज़ होकर सिंघल की राजकुमारी से विवाह का उल्लेख है *(धरि मछर संघलि सांचर्यउ, नेव जीत कन्या वरी)*।[143] परवर्ती रचनाओं में यह रूढ़ि आ गयी है। हेमरतन के यहाँ योगी आ गया है– इस 'उदास' योगी की राजा से

भेंट समुद्र के समीप होती है और राजा के अनुरोध पर अपनी आकाश में उड़ने की विद्या *(वीद्या अंबरि ऊडण तणी)* से वह उसको सेवक सहित अपनी बाँहों में भरकर सिंघल द्वीप पहुँचा देता है।[144] यही कथा रूढ़ि परवर्ती सभी रचनाओं में है। *खुम्माणरासो* में इस योगी को 'जालिम सिंघ जोगी' (पराक्रमी सिद्ध योगी) कहा गया है।[145] *राणारासो* में यह योगी गोरख्खु के गोपीचंदा (गोरख नाथ या गोपीचंद) है।[146] *पदमिनीसमिओ* में चमत्कारी योगी राजद्वार पर आता है और विरहग्रस्त राजा को मृगछाला पर बिठाकर सिंघल द्वीप ले जाता है। *पदमिनीसमिओ*[147] और *गोरा-बादल कथा*[148] में योगी सिंघल द्वीप पहुँचकर राजा को भी योगी के भेष में राजद्वार पर जाकर भिक्षा माँगने *(इक-सबदी भिक्ष्या करो यह मेरा उपदेश)* का कहता है। राजद्वार पर जाकर पद्मिनी को देखकर राजा बेहोश हो जाता है। *पाटनामा* में यह रूढ़ि बहुत विकसित हो गई। यहाँ आकाशमार्गी योगी गोरखनाथ के साथ सिंघल द्वीप निवासी उसके गुरु मछंदरनाथ भी है। गोरखनाथ पद्मिनी से विवाह के लिए संकल्पबद्ध राजा को अपनी उड़नखटोली में सिंघलद्वीप ले जाता है और उसके गुरु पद्मिनी से उसका विवाह संपन्न करवाते हैं। *पाटनामा* में गोरखनाथ रत्नसेन और पद्मिनी सहित कई लोगों के आयुबल में वृद्धि भी करते हैं।[149] आकाश मार्ग से विचरण करने वाले सिद्ध योगियों की कथा रूढ़ि भारतीय ऐतिहासिक और चरित्र प्रधान कथा-काव्यों में आमतौर पर पर प्रयुक्त होती रही है। ये सिद्ध योगी अकसर नायक-नायिका को उसकी लक्ष्य प्राप्ति में मदद करते हैं। तंत्र साधना से आकाश में सिद्धों-योगियों के विचरण की कथा रूढ़ि सोमदेव कृत *कथासरित्सागर* में संकलित 'कालरात्रि' सहित अन्य एकाधिक कहानियों में प्रयुक्त हुई है।[150] राजस्थानी लोक कथाओं में भी इस तरह के सिद्ध साधु आम हैं। कहानी *गूटियौ* राजा में संतान के अभाव में वैराग्य लेकर भटकने वाले राजा को सिद्ध साधु पुत्र प्राप्ति का वरदान देता है।[151]

विवाह के लिए राजकुमारी या उसके राजा पिता द्वारा लिए गए प्रण की कथा रूढ़ि भी इनमें से कुछ रचनाओं में प्रयुक्त हुई है। आरंभिक रचना *गोरा-बादल कवित्त* में यह रूढ़ि नहीं है, लेकिन परवर्ती रचनाओं में इसका समावेश हो गया है। हेमरतन के यहाँ पद्मिनी ने प्रण ले रखा है कि जो युद्ध या शतरंज के खेल में मेरे भाई से जीतेगा मैं उसी का वरण करूँगी *(तेइ नइ कंठ ठंवू वरमाल)*।[152] लब्धोदय के यहाँ भी यह रूढ़ि इसी तरह से है।[153] *खुम्माणरासो* में यह अलग तरह से है। यहाँ कहा गया है कि- *अभिग्रह लीधो एहबो नार। जीपे मुझ थी पासा पार* अर्थात् उस स्त्री (पद्मिनी) ने यह प्रण ले रखा था कि (वही मेरा पति होगा) जो चौपड़ खेल में मुझ पर विजय प्राप्त करेगा।[154] *राणारासो* और *पाटनामा* में यह रूढ़ि नहीं है। यह रूढ़ि दरअसल प्राचीनकाल में प्रचलित स्वयंवर का सरलीकरण है। दरअसल मध्यकाल

तक आते-आते स्वयंवर जैसी प्रथाएँ बंद हो गई थीं, लेकिन कवि-कथाकारों की स्मृति में अभी भी ये थीं और रूढ़ि की तरह इनका प्रयोग जारी था।[155] सोमदेवकृत *कथासरित्सागर* की कथा 'दो धूर्तों की कथा' में भी यह रूढ़ि आयी है। यहाँ राजकुमारी कनकनगरी देख लेने वाले युवक से विवाह की शर्त रखती है।[156] बिल्हण की 1125 ई. रचना *विक्रमांकदेवचरित* में स्वयंवर का वर्णन मिलता है।[157]

राघवचेतन ऐतिहासिक चरित्र है, लेकिन राजा से उसकी नाराज़गी के रचनात्मक विस्तार के लिए इन रचनाकारों ने अलग-अलग कथा रूढ़ियों का सहारा लिया है। राघवचेतन का रत्नसेन और पद्मिनी को विलासरत देखना और रत्नसेन का उसे देश निकाला देना की घटना के भी एकाधिक रूपांतरण हैं। जटमल नाहर कृत *गोरा-बादल कथा*[158] और *पद्मिनी समिओ*[159] में यह रत्नसेन और राघवचेतन साथ शिकार पर जाने और राजा के पद्मिनी को देखे बिना पानी नहीं पीने के संकल्प पर राघव चेतन द्वारा उसकी प्रतिमा बनाने की कथारूढ़ि के रूप में है।

वस्तु वर्णन में युद्ध वर्णन की कवि-कथा रूढ़ियों का प्रयोग इन सभी रचनाओं में है, जबकि ऋतु वर्णन की कवि-कथा रूढ़ि केवल *राणारासो* में प्रयुक्त हुई। युद्ध वर्णन में खून के परनाले बहना, गिद्धों का मांस नोचना, बिना सिर के धड़ों का लड़ना, रणचंडी द्वारा रक्तपान, योगिनियों का नृत्य, क्षेत्रपालों का शिव को रुंडमाल भेंट करना, देवताओं का आकाश युद्ध देखना आदि कई पारंपरिक कथा रूढ़ियों का प्रयोग इनमें हुआ है।[160] ऋतु वर्णन केवल *राणारासो* में है और यह पारंपरिक है। ऋतुवर्णन की परंपरा कालिदास के *ऋतुसंहार*[161] से होती हुई मध्यकाल तक आती है। मध्यकालीन रचनाकार रचनाओं में परंपरा के निर्वाह के लिए और कवि शिक्षा के कारण बारहमासा या षडऋतु वर्णन का अवसर खोजते थे। यह *संदेशरासक* और *पृथ्वीराजरासो* में भी मिलता है। *संदेशरासक* में नायिका जाने को उत्सुक पथिक को बार-बार रोकती है और उसके यह पूछने पर पर कि क्या तुम्हे कुछ और कहना है, तो नायिका अलग-अलग ऋतुओं में अपने विरह का वर्णन शुरू कर देती है।[162] *पृथ्वीराजरासो* में भी जब पृथ्वीराज जयचंद के यज्ञ के विध्वंस के लिए प्रस्थान से पहले रानियों से विदा लेने जाता है, तो हर रानी उस समय की ऋतु का हवाला देकर उसे रोक लेती है। रानी इंछिनी उसे वसंत ऋतु का वर्णन करके रोकती है, रोकने का यह सिलसिला आगे बढ़ता रहता है और इस तरह कवि सभी ऋतुओं का वर्णन कर देता है।[163] *पृथ्वीराजरासो* दयालदास का आदर्श है, इसलिए उसके षड्ऋतु वर्णन पर इसका प्रभाव है। *राणारासो* में जब योगी से यह ज्ञात होता है कि सिंघल में पद्मिनी स्त्रियाँ हैं, तो उसे प्रेम हो जाता है *(यह सुनि रान खुमांन, कान श्रोतान राग हुव)*। योगी चला जाता है, लेकिन प्रेमी रत्नसेन ऋतुओं के अनुसार विरहग्रस्त रहता है। यह ऋतु वर्णन छंद

सं. 83 से आरंभ होकर 96 तक चलता है। अंतिम छंद में कवि कहता है कि- *रितु षट खटपट गई, घटपट विरह समंद। लटपट लीयें आसिखा, फिरि आयो जोगिंदु॥* अर्थात् छह ही ऋतुएँ इस उधेड़बुन में बीत गईं। रत्नसेन के शरीर रूपी पट (हृदय) में विरह रूपी समुद्र लहरा रहा था। योगीराज अपनी इश्क़ (प्रेम) की लुभानेवाली बातें लेकर फिर आ गया।[164] दुर्ग, नगर आदि का पारंपरिक वर्णन भी रचनाओं में यथास्थान है।[165]

कथानक अभिप्रायों और रूढ़ियों का प्रयोग भारतीय कथा-काव्यों में बहुत प्राचीनकाल से होता है। *ऋग्वेद, उपनिषद्, पुराण, जातक, आगम, बृहत्कथा, कथासरित्सागर, पंचतंत्र, हितोपदेश* के अभिप्राय बहुत बाद तक प्रयुक्त होते रहे हैं। लोक कथाओं में भी इनका प्रयोग जारी रहा।[166] ख़ास बात यह है कि एक ही कथा रूढ़ि अकसर निरंतर और कई बार अलग-अलग भारतीय रचनाओं में प्रयुक्त हुई है।[167] अभिप्राय और कथा रूढ़ियाँ यथार्थ के रचनात्मक विस्तार की तरह है, इसलिए इनको अभिधेय अर्थ में नहीं लिया जाना चाहिए और इनके युक्तिकरण का भी कोई औचित्य नहीं है। कुछ विद्वानों ने सिंघल द्वीप की स्थिति और वहाँ पहुँचने के मार्ग के इन रचनाओं में उल्लेख का युक्तिकरण किया है, जो किसी युक्तिसंगत निष्कर्ष पर नहीं ले जाता।[168] यथार्थ के रचनात्मक विस्तार के लिए कवि-कथाकार संभावना का सहारा लेते हैं- कई बार यह संभावना नयी कथा रूढ़ि का प्रस्थान बनती है और कई बार यह प्रचलित रूढ़ि का नवीनीकरण होता है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस संबंध में लिखा है कि ''संभावनाओं पर बल देने का परिणाम यह हुआ कि हमारे देश के साहित्य में कथा को गति और घुमाव देने के लिए कुछ ऐसे अभिप्राय दीर्घकाल से व्यवहृत होते आए हैं, जो थोड़ी दूर तक यथार्थ होते हैं और आगे चलकर कथानक रूढ़ि में बदल गए हैं।''[169] स्पष्ट है कि कथानक रूढ़ि का प्रस्थान अकसर यथार्थ से होता है। पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर कथा-काव्यों के मोड़-पड़ावों में विन्यस्त कथानक रूढ़ियों को इसी तरह समझा जाना चाहिए। भोजन के स्वादहीन होने पर राजा की नाराज़गी और रानी के इस निमित्त पद्मिनी से विवाह कर लेने के ताने की रूढ़ि का प्रस्थान तो कमोबेश यथार्थ है। राजा और रानी के बीच नाराज़गी और राजा के दूसरे विवाह के लिए संकल्पबद्ध होने में कुछ भी असाधारण या मनगढ़ंत नहीं है। राजा एकाधिक विवाह करते ही थे और ऐसा नाराज़गी के कारण भी होता था। रानी से नाराज़गी या किसी अन्य कारण से दूसरा विवाह राजाओं के लिए मध्यकाल और उससे पहले भी आम बात थी। लोककथाओं में इसको 'दुहाग' कहा गया है। राजस्थान की एक वात (कथा) 'डाकण रा चाळा' में राजा एक अप्सरा

पर मुग्ध होकर अपनी गर्भवती छह रानियों को दुहाग दे देता है।[170] रानी द्वारा राजा की अवमानना पर राजा उससे नाराज़ होकर दुहाग दे देते थे– मतलब दूसरा विवाह कर लेते थे। सिंघल में पद्मिनी स्त्रियों के होने और उनसे पद्म गंध आने की अतिरंजना कवि–कथाकार की संभावना है, लेकिन इसमें इतना सत्य तो है कि पद्मिनी अपने समय में अत्यंत सुंदर स्त्री रही होगी। शास्त्र में वर्णित स्त्रियों की कोटियों में पद्मिनी स्त्री सबसे सुंदर मानी गयी है, इसलिए यही नाम रत्नसेन की विवाहित स्त्री के लिए रूढ़ हो गया है। किसी कवि–कथाकार ने एक बार संभावना की, तो यह परवर्तियों के लिए आदर्श हो गई। उन्होंने इसको यथावत इस्तेमाल किया या अपनी तरफ़ से कुछ संभावनाएँ और इसमें जोड़ दीं। राघवचेतन प्रकरण में प्रयुक्त कथा रूढ़ियों के एकाधिक रूपांतरणों के प्रस्थान में इतना सच तो है कि रत्नसेन का राघवचेतन से किसी कारण विवाद हुआ और इस कारण राघवचेतन नाराज़ होकर अलाउद्दीन के पास गया। मध्यकाल में एक शासक से नाराज़ होकर दूसर के यहाँ आश्रय लेने के कृत्य आम थे। राजकुमारी से विवाह के लिए शर्त के प्रावधान की कथानक रूढ़ि भारतीय कथा–काव्यों में बहुत पहले से चली आ रही है। *श्रीमद्भागवत* में कृष्ण सत्या से विवाह के लिए उसके पिता कौशलनरेश नग्नजित् द्वारा रखी गयी सात दुर्दांत बैलों को जीतने की शर्त पूरी करते हैं। बैलों को जीतने से पूर्व सत्या कृष्ण पर उसी तरह मुग्ध है, जिस तरह से पद्मिनी रत्नसेन पर होती है।[171] लोककथाओं में इस रूढ़ि का प्रयोग ख़ूब हुआ है। राजस्थान की प्रसिद्ध लोककथा 'चौबोली' का बीज रूप *बृहत्कथा* और *कथासरित्सागर* में मिल जाता है। कहानी में राजकुमारी निर्णय लेती है कि जो भी उसे एक रात्रि मे चार बार बुलवा लेगा, वह उससे विवाह करेगी।[172] पद्मिनी–रत्नसेन संबंधी कथा–काव्यों में इनका नियोजन पारंपरिक है। यहाँ सच केवल इतना है कि मध्यकाल में इस तरह के विवाह सामान्य विवाहों से अलग होते थे। विवाह के लिए युद्ध या आक्रमण आम थे। स्वयंवर की परंपरा बहुत पहले राज परिवारों में रही होगी। यह कथानक रूढ़ि इसी परंपरा का देशज सरलीकरण लगती है। युद्ध संबंधी कई कवि–कथानक रूढ़ियों का इस्तेमाल इन कथा काव्यों में हुआ है, जो युद्ध के भीषण होने की ओर संकेत करती हैं। युद्ध के भीषण होने की पुष्टि इस्लामी स्रोत भी करते हैं। अमीर ख़ुसरो ने भी यह उल्लेख किया है इस युद्ध में 30 हज़ार हिंदुओं का क़त्ल हुआ। ख़ुसरो लिखता है कि "उसने (अलाउद्दीन) ने राय को कोई हानि नहीं पहुँचाई, किंतु उसके क्रोध द्वारा 30 हज़ार हिंदुओं का क़त्ल हो गया।"[173] *राणारासो* का ऋतुवर्णन पारंपरिक है और यह भारतीय रचनाओं में रूढ़ि की तरह सदियों से निरंतर है।

10.

पद्मिनी प्रकरण को मिथ्या ठहरानेवाले अधिकांश आधुनिक विद्वानों की इस धारणा का आधार इस प्रकरण के संबंध में अलाउद्दीन के समकालीन तीन वृत्तांतकारों का मौन है। अलाउद्दीन के समकालीन चारों इस्लामी वृत्तांतों- अमीर ख़ुसरो कृत *ख़जाइन-उल-फ़ुतूह* (1311-12 ई.) और *दिबलरानी तथा ख़िज्र ख़ाँ* (1318-19 ई.), ज़ियाउद्दीन बरनी कृत *तारीख़-ए-फ़िरोजशाही* (1357 ई.) तथा अब्दुल मलिक एसामी कृत *फ़ुतूह-उस-सलातीन* (1350 ई.) में अलाउद्दीन के चित्तौड़ पर आक्रमण और उसकी विजय का उल्लेख तो है, लेकिन इनमें पद्मिनी प्रकरण और गोरा-बादल का उल्लेख नहीं है। ये तीनों वृत्तांतकार अपने समय के बड़े कवि या इतिहासकार और ओहदेदार थे। मध्यकालीन, परवर्ती और आधुनिक इतिहासकारों ने इनकी सराहना की है, लेकिन पद्मिनी प्रकरण पर इनके मौन को समझने के लिए उस समय के कवि-इतिहासकारों के पूर्वाग्रहों और सुल्तानों की उनसे अपेक्षा पर विचार करना ज़रूरी है। विडंबना यह है कि अधिकांश आधुनिक इतिहासकार, जिनका साक्ष्य देकर पद्मिनी के ऐतिहासिक अस्तित्व को संदिग्ध मानते हैं, उन इतिहासकारों के अपने पूर्वाग्रह हैं और उनका वर्णन आग्रहपूर्वक अपने आश्रयदाता सुल्तान की अपेक्षाओं के अनुसार है, इसलिए संदिग्ध है। अमीर ख़ुसरो इतिहासकार नहीं, मूलतः कवि था। उसके मित्र समकालीन ज़ियाउद्दीन बरनी के अनुसार "अमीर ख़ुसरो की मिसाल नहीं, वह तो शायरों का सुल्तान था।" उसने आगे और लिखा कि "ख़ुदा की क़सम, शायद ही इस नीले आकाश के नीचे उसकी बराबरी का कोई हुआ होगा।"[174] अमीर ख़ुसरो की इतिहास से संबंधित किताब *ख़जाइन-उल-फ़ुतूह* को एच.एम. इलियट ने इतिहास कम, कविता अधिक कहा है।[175] पी. हार्डी का निष्कर्ष भी यही है कि "अमीर ख़ुसरो ने इतिहास नहीं लिखा, उसने कविता लिखी है।"[176] अलाउद्दीन का दरबारी तवारीख़कार तो कबीरूद्दीन ताजुद्दीन इराकी था। ख़ुसरो के रग-रग में कला थी, लेकिन दुनियावी मामलों में वह बहुत चतुर व्यक्ति था। ख़ुसरो का अपने संरक्षक के साथ शुद्ध व्यावहारिक रिश्ता था और वह अपने संरक्षक के राजनीतिक मंसूबों से अपने को अलग रखता था। मोहम्मद हबीब ने उसके संबंध में लिखा है कि "वह उनकी प्रशंसा के गीत गाता था, क्योंकि इसके लिए उसको बहुत पैसा मिलता था। पूरे पचास साल तक रंग-बिरंगे फूल उसके सामने से गुज़र गए, जिनकी वह प्रसंशा में अत्युक्ति करता था। लेकिन ज्यों ही बबूला फूटता, वह उसे भूल जाता था। क्षितिज पर कोई नया नक्षत्र उठता कवि उसके पास चला जाता। कोई मर्त्य पूरी तरह ख़ुश हो ही नहीं सकता। लेकिन अमीर ख़ुसरो का कैरियर ऐसा था, जिस पर किसी तितली को रश्क होता।"[177] अमीर ख़ुसरो विद्वान् था, पर दरबारी भी था और दरबारी अपने वक़्त का ग़ुलाम

होता है। कबीरुद्दीन और उसके पूर्ववर्तियों ने इस फ़ैशन की शुरुआत कर दी थी। ख़ुसरो ने आँख मूँदकर उसको अपना लिया।[178] मोहम्मद हबीब ने उसकी चार ख़ूबियाँ गिनवाईं, जो इस प्रकार हैं- (i) अलंकारों से कृत्रिम बोझिल शैली, (ii) सिर्फ़ युद्धों और विजयों तक सीमित रहना, (iii) उन सभी तथ्यों की अनदेखी कर देना, जिससे अलाउद्दीन की छवि प्रभावित होती हो और (iv) सुल्तान की अत्यधिक चापलूसी।''[179] सराहना ख़ुसरो का स्वभाव और मजबूरी, दोनों थे। उसकी व्यावहारिक बुद्धि उसको उस सच को छिपा लेने पर मजबूर कर देती थी, जिससे सुल्तान नाराज़ हो जाएँ। उसके दो संरक्षकों- मलिक छज्जू और हातिम ख़ान का बग़ावत के कारण अलाउद्दीन ने सर क़लम कर दिया, लेकिन ख़ुसरो ने सुल्तान को इसके लिए बधाई दी। अपने चाचा जलालुद्दीन की अलाउद्दीन ने हत्या कर दी, लेकिन उसकी ज़बान से अपने इस संरक्षक और चाहने वाले की हत्या के विरोध में एक भी शब्द नहीं निकला। मोहम्मद हबीब ने लिखा है कि कि ''यदि अमीर ख़ुसरो पुराणों के युग में लिखते होते, तो वे अलाउद्दीन को विष्णु का अवतार बताते और उनके विरोधियों को राक्षस।''[180] मोहम्मद हबीब के अनुसार इसीलिए *ख़जाइन-उल-फ़ुतूह* के ''विवरण को सही मानना ख़तरनाक होगा।''[181] अलाउद्दीन का दूसरा समकालीन इतिहासकार ज़ियाउद्दीन बरनी इतिहास को 'साइंस' मानता था। उसका मानना था कि इतिहसकर सुल्तानों की 'अच्छी बातों' का उल्लेख करे, लेकिन उसे उसकी 'बुराई-शठता' की भी अनदेखी नहीं करनी चाहिए।[182] विडंबना यह है कि *तारीख़-ए-फ़िरोजशाही* उसने उस दौर में लिखी, जब उसका सर्वस्व छिन गया था, उसकी याददाश्त कमज़ोर हो गयी थी और अन्वेषण और अनुसंधान उसके बूते से बाहर की बात थी। इस्लाम के इतिहास और भारतीय इतिहास की जो मशहूर पुस्तकें थीं, वे भी उसे सुलभ नहीं थीं। किसी तारीख़ या घटना की पुष्टि करने के लिए भी साधन उसे प्राप्त न थे। मोहम्म्द हबीब के अनुसार ''हम शक को दिमाग़ में रखकर *तारीख़-ए-फ़िरोजशाही* का अध्ययन करते हैं, तो शक की पुष्टि हो जाती है। बहुत से वाक़यात उसकी याददाश्त से बाहर छूट गए हैं। कुछ को ग़लत ढंग से पेश किया गया है और कुछ मामले तो ऐसे हैं, जिनमें अपनी बद्धमूल धारणाओं की वजह से बरनी की याददाश्त ने कहर बरफ़ा दिया है।''[183] अब्दुल मलिक एसामी (1311 ई.) मुहम्मद बिन तुग़लक़ का समकालीन था, लेकिन उसका ग्रंथ *फ़ुतूह-उस-सलातीन,* जिसमें से 999 से 1350 ई. तक का वर्णन है, मुहम्मद बिन तुग़लक़ की बजाय बहमनी वंश (1347 ई.) के संस्थापक अलाउद्दीन बहमनशाह को समर्पित है। एसामी 1327 ई. मुहम्मद बिन तुग़लक के समय दौलताबाद आया और फिर वह कभी दिल्ली नहीं गया। उसने *फ़ुतूह-उस-सलातीन* दौलताबाद में ही लिखी, इसलिए दक्षिण का उसका विवरण अधिक आनुभविक और प्रामाणिक है।

वह उत्तर के संबंध में बहुत विस्तार में नहीं जाता।[184] वैसे एसामी की महत्वाकांक्षा भी इतिहासकार के बजाय साहित्यकार बनने की थी।[185] वह भी ख़ुसरो और बरनी से अलग नहीं था। सुल्तानों की महिमा के विरुद्ध जानेवाली सभी बातों की सजग अनदेखी इस्लामी वृत्तांतकारों का स्वभाव है, इसलिए पद्मिनी प्रकरण के संबंध में इन वृत्तांतकारों का मौन बहुत स्वाभाविक है। यह प्रकरण लोक स्मृति सहित देशज स्रोतों में इतना निरंतर और विस्तृत है कि इस पर अविश्वास का कोई कारण नहीं है। पारिस्थितिक साक्ष्य और स्त्रियों के लिए किए गए अलाउद्दीन के दूसरे युद्ध अभियान भी इस प्रकरण के सच होने का संकेत करते हैं।

स्पष्ट है कि पदमिनी–रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर ऐतिहासिक कथा–काव्य सर्वथा मिथ्या या मनगढ़ंत नहीं है। उनमें इतिहास का नियोजन भारतीय ऐतिहासिक कथा–काव्य परंपरा के अनुसार है, इसलिए इनमें इतिहास के साथ रचनात्मक विस्तार के लिए प्रयुक्त मिथ–अभिप्रायों और कथा–रूढ़ियों को समझना ज़रूरी है। ये अभिप्राय और कथा रूढ़ियाँ भी केवल कल्पना नहीं हैं– इनके प्रस्थान में यथार्थ की मौजूदगी है। कथा–काव्यों में वर्णित प्रकरण की पुष्टि दूसरे पुरालेखीय, साहित्यिक अभिलेखों से भी होती है। विवेच्य कथा–काव्यों के अनुसार अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण केवल राजीनितिक प्रयोजन के लिए नहीं किया– पद्मिनी पाने की लालसा की इसमें निर्णायक भूमिका थी। इस तथ्य का समर्थन दूसरे साहित्यिक और पारिस्थितिक साक्ष्य भी करते हैं। विवेच्य रचनाओं में अलाउद्दीन को स्त्री लोलुप और कामांध वर्णित किया गया है। यह बात सही है, क्योंकि इस्लामी स्रोतों सहित सभी देशज स्रोत और स्त्रियाँ पाने के लिए किए गए उसके युद्ध अभियान भी इसी ओर संकेत करते हैं। विवेच्य रचनाओं में वह अपार शक्तिशाली और क्रूर भी दिखाया है, जो वह था। इस्लामी स्रोतों में भी वह इसी तरह का है। समरसिंह का उत्तराधिकारी रत्नसेन अलाउदद्दीन के 1303 ई. के आक्रमण के समय शासक था और वह इन कथा–काव्यों का निर्विवाद नायक है। यह अलग बात है कि कुछ आधुनिक इतिहासकारों को आरंभ में उसके ऐतिहासिक अस्तित्व लेकर संदेह था। यह संदेह इसलिए हुआ कि मेवाड में राणा शाखा के शासन के दौर में बने कुछ शिलालखों सहित साहित्यिक साक्ष्यों में रावल शाखा से संबंधित होने के कारण रत्नसिंह का नाम नहीं है। बाद में दरीबा और कुंभलगढ़ के शिलालेखों में 1303 ई. में उसका मेवाड़ में सत्तारूढ़ होना प्रमाणित हो गया। पद्मिनी इन रचनाओं के केंद्र में है, लेकिन कतिपय इतिहासकारों ने उसको जायसी की कल्पना मान लिया, जो ग़लत है। पदमिनी सभी देशज अभिलेखों और साहित्यिक रचनाओं में है और सदियों से वह लोक स्मृति का हिस्सा रही है। वह पद्मिनी कोटि की स्त्री है, जिसका विवाह रत्नसेन से हुआ है। *पाटनामा* में उसका

नाम मदन कुँवर है। विवेच्य अधिकांश रचनाओं में रत्नसेन को युक्तिपूर्वक अलाउद्दीन की क़ैद से मुक्त करवाने वाले योद्धा गोरा-बादल हैं और इन रचनाओं में से कुछ का नामकरण ही उनके नाम के आधार पर हुआ है। अलाउद्दीन के समकालीन वृत्तांतकारों ने उनका उल्लेख नहीं किया, लेकिन सभी दूसरे साहित्यिक और परवर्ती इस्लामी साक्ष्यों में उनका उल्लेख मिलता है। उनसे संबंधित सदियों पुराने स्मारक भी हैं, जो उनके ऐतिहासिक होने की पुष्टि करते हैं। राघवचेतन इन रचनाओं में से कुछ में एक, तो कुछ में दो व्यक्ति हैं। आधुनिक इतिहासकारों को राघवचेतन के ऐतिहासिक अस्तित्व पर भी संदेह है। राघवचेतन का उल्लेख भी अलाउद्दीन के समकालीन वृत्तांतकारों ने नहीं किया, लेकिन उससे संबंधित पर्याप्त पुरालेखीय और साहित्यिक साक्ष्य उपलब्ध हैं। राघवचेतन से संबंधित जैन साहित्यिक साक्ष्य और कांग़ड़ा की ज्वालामुखी प्रशस्ति तो अलाउद्दीन की समकालीन हैं।

पाटनामा को छोड़कर ये सभी रचनाएँ एक राय हैं कि विजय रत्नसेन की हुई और बादशाह भाग गया, जबकि जौहर का उल्लेख इनमें से किसी भी रचना में नहीं है। *पाटनामा* के अनुसार दुर्ग ध्वस्त हुआ और बादशाह की फ़ौज भाग गयी। रत्नसेन की इन रचनाओं में विजय हुई, लेकिन देशज कुछ साहित्यिक स्रोत और पुरालेखीय अभिलेख मानते हैं कि रत्नसेन की पराजय हुई और कुछ समय के लिए दुर्ग सल्तनत के अधीन रहा। रचनाओं में रत्नसेन की विजय का उल्लेख स्वाभाविक है- अकसर रचनाकार पराजय को विजय के रूप चित्रित कर अपने जाति-समाज के स्वाभिमान को खाद-पानी देते हैं। जौहर का उल्लेख इनमें से किसी भी रचना में नहीं है और यह भी स्वाभाविक है, क्योंकि जौहर की परिस्थिति तो तब बनती, जब रत्नसेन की पराजय होती। परवर्ती देशज साहित्यिक वंशावली अभिलेखों-*राजप्रशस्तिमहाकाव्य, अमरकाव्य* और *राजरत्नाकरकाव्य* में भी जौहर का उल्लेख नहीं है, जबकि इस तरह का उल्लेख प्रतिष्ठाकारी था। जौहर केवल जायसी, अबुल फ़ज़्ल और मुँहता नैणसी के यहाँ है और यह इनके कहाँ से आया, यह कहना बहुत मुश्किल काम है। पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण पर अलाउद्दीन के समकालीन इस्लामी वृत्तांतकारों का मौन बहुत स्वाभाविक है। आधुनिक इतिहासकारों ने इस आधार पर इस प्रकरण को जायसी की कल्पना मान लिया, जो पूरी तरह ग़लत है। अलाउद्दीन की सराहना और उसकी कमज़ोरियों की छिपाना इन इस्लामी वृत्तांतकारों की आदत और मजबूरी है।

भारतीय ऐतिहासिक कथा-काव्य परंपरा के अनुसार ये रचनाएँ सीधे यथार्थ नहीं, यथार्थ का प्रतिबिंबन है। यह यथार्थ कवि-कथाकर का अपना देखा गया यथार्थ है। यह यूरोपीय इतिहास के यथार्थ की तरह 'दस्तावेज़ी' और 'आनुभविक' नहीं है, इसलिए कल्पना है, यह यह धारणा सही नहीं है। रवींद्रनाथ ठाकुर ने कहा भी था

कि सब खेतों एक जैसी फ़सलें नहीं होतीं। यह फ़सल आपके खेत की फ़सल से अलग है, इसलिए फ़सल ही नहीं है, यह मानना एक तरह का दुराग्रह है। अलाउद्दीन का चित्तौड़ पर पद्मिनी के लिए आक्रमण और इसके चरित्र– रत्नसेन, पद्मिनी, गोरा–बादल और राघवचेतन पूरी तरह ऐतिहासिक हैं और इसकी पुष्टि हमारे अपनी तरह के साक्ष्यों से होती है।

संदर्भ और टिप्पणियाँ:

1. फ़िल्म 'पद्मावत' पर विवाद के दौरान कई विद्वानों ने इस प्रकरण पर विचार रखे। इरफ़ान हबीब और हरबंश मुखिया ने अपने विचार नितिन रामपाल की स्टोरी (''पदमावती कंट्रोवर्सी: हिस्ट्री इज एट रिस्क ऑफ़ बीइंग ट्रेप्ड बिटविन लेफ्ट राइट इंटरप्रिटेशन्स ऑफ़ द पास्ट,'' *फ़र्स्ट पोस्ट,* 21 सितंबर 2019.
https://222.firstpost.com/india/padmavati-controversy-history-is-at-risk-of-being-trapped-between-left-right-interpretations-of-the-past-4225695.html) में व्यक्त किए।
2. वाल्टर हेराल्सन, ''मिथ एंड हिस्ट्री,'' *दि इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ रिलीजन,* संपा. मिरेसा इलियाडे (न्यूयार्क: मैकमिलन पब्लिशिंग हाउस कंपनी, 1987), 10: 273.
3. बच्चन सिंह, *आधुनिक हिंदी आलोचना के बीज शब्द* (नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2004), 82.
4. कीस. डब्यू. बोले, ''मिथ,'' *दि इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ रिलीजन,* 10: 261.
5. बेरी बी. पोवेल, *क्लासिकल मिथ* (लंदन: प्रेंटिस हॉल इंटरनेशनल, 2001), 2.
6. वही, 4.
7. जोसफ़ टी. शिप्ले, *डिक्शनरी ऑफ़ वर्ल्ड लिटरेचर* (लंदन: दि फ़िलोसोफिकल लाइब्रेरी, 1943), 391.
8. आंनंद के. कुमारस्वामी, *हिंदुइज्म एंड बुद्धिइज्म* (नयी दिल्ली: मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स प्रा. लि., 2015), 6.
9. जोसफ़ टी. शिप्ले, *डिक्शनरी ऑफ़ वर्ल्ड लिटरेचर,* 335.
10. हजारीप्रसाद द्विवेदी, *हिंदी साहित्य का आदिकाल* (पटना: बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, तृतीय संस्करण, 1991), 80.
11. वही, 91.
12. वही, 80.
13. वही, 80.
14. कोमल कोठारी, ''भूमिका,'' विजयदान देथा कृत *बातां री फुलवाड़ी* (बोरूंदा: रूपायन संस्थान, 1966), 8: 8.

15. देखिए: *ख़लजी कालीन भारत,* अनुवाद एवं संपादन सैयद अतहर अब्बास रिज़वी (नयी दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, चतुर्थ संस्करण 2015, प्र. सं. 1995).

16. कक्क सूरि ने अलाउद्दीन ख़लजी के दूसरे अभियानों का भी विवरण दिया है। वह लिखता है–

तदा तत्र सुरतत्राणेऽलावदीनोनदीवत्।
उद्वेलिद्वाजिकलोलोर्वराव्यापी नृपोऽभवत्॥1॥
यः श्रीदेवगिरौ गत्वा बद्ध्वा च तदधीश्वरम्।
न्यवेशयत् तं तत्रैव जयस्तंभमिवात्मनः॥2॥
सपादलक्षाधिपतिं वीरं हम्मीरभूपतिम्।
हत्वाऽभिमानिनं सर्वं स तत्सर्वमुपाददे॥3॥
श्रीचित्रकूटदुर्गेशं बद्ध्वा लात्वा च तद्धनम्।
कंठबद्धं कपिमिवाभ्रामयत्तं पुरे पुरे॥4॥

– कक्क सूरि, *नाभिनंदनजिनोद्धारप्रबंध,* संपा. भगवानदास हरखचंद (पालीताणा: सोमचंद डी. शाह, 1925), 104.

17. अबुल फ़ज़ल एल्लामी, *आईन-ए-अकबरी,* अनु. एवं संपा. एच.एस. जारेट्ट (दिल्ली: लो प्राइस पब्लिकेशन, 2011, प्र.सं.1927), 1: 274.

18. मुहम्मद कासिम फ़रिश्ता, *हिस्ट्री ऑफ़ राइज दि मोहम्मडन पॉवर इन इंडिया* (टिल दि ईयर 1612 ए.डी.), अनु. एवं संपा. जॉन ब्रिग्ज (कलकत्ता: आर. केम्ब्रे एंड कंपनी, 1909), 1: 206.

19. मुँहता नैणसी, *मुँहता नैणसीरी ख्यात,* संपा. बद्रीप्रसाद साकरिया (जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, तृतीय संस्करण, 2006),1: 14.

20. वही, 14.

21. *मेवाड़ रावल राणाजीरी बात,* संपा. हुकुमसिंह भाटी (उदयपुर: प्रताप शोध प्रतिष्ठान 1994), 10.

22. "गोरा-बादल कवित्त," लब्धोदयकृत *पद्मिनी चरित्र चौपई,* संपा. भँवरलाल नाहटा (बीकानेर: सादुल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, 1960), 109.

23. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चऊपई,* संपा. उदयसिंह भटनागर (जोधपुर: राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, द्वितीय संस्करण 1997), 3.

24. लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* संपा. भँवरलाल नाहटा (बीकानेर: सादुल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, 1960), 3.

25. दलपति विजय, *खुम्माणरासो,* संपा. ब्रजमोहन जावलिया (उदयपुर: महाराणा प्रताप स्मारक समिति, 2001), 3:83.

26. दयालदास, *राणारासो,* संपा. ब्रजमोहन जावलिया (उदयपुर: महाराणा प्रताप स्मारक समिति, 2007), 184.

27. ''पद्मिनीसमिओ,'' रानी पद्मिनी, संपा. ब्रजेंद्रकुमार सिंहल (नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2017), 99.

28. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* संपा. मनोहरसिंह राणावत (सीतामऊ: नटनागर शोध संस्थान, 2003), 1: 312.

29. जटमल नाहर, ''गोरा-बादल कथा,'' लब्धोदय कृत *पद्मिनी चरित्र चौपई,* संपा. भँवरलाल नाहटा (बीकानेर: सादुल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, 1960), 182.

30. ज़ियाउद्दीन बरनी, ''तारीख़-ए-फ़िरोजशाही,'' *ख़लजी कालीन भारत,* 76.

31. अब्दुल मलिक एसामी, ''फ़ुतूह-उस-सलातीन,'' *ख़लजी कालीन भारत,* 201.

32. अमीर ख़ुसरो, ''खजाइन-उल-फ़ुतूह,'' *ख़लजी कालीन भारत,* 160.

33. ''चौमुखा टेम्पल एट रनपुर,'' *एन्यूएल रिपोर्ट-1907-08* (कलकत्ता: आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया, 1911), 215.

34. अक्षय कीर्ति व्यास, ''जगन्नाथराय टेम्पल एट उदयपुर,'' *एपिग्राफ़िया इंडिका,* खंड-24 (1937-38), संपा. एन.पी. चक्रवर्ती (कलकत्ता: आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया, 1942), 56-64.

35. श्यामलदास, ''एकलिंगजी के निज मंदिर के दक्षिणी द्वार की प्रशस्ति,'' *वीर विनोद* (दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, प्रथम संस्करण 1886, पुनर्मुद्रण 1986), 1: 417.

36. रणछोड़ भट्ट, *राजप्रशस्तिमहाकाव्य,* संपा. मोतीलाल मेनारिया (उदयपुर: साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, 1973). 39

37. अबुल फ़ज़ल एल्लामी, *आईन-ए-अकबरी,* 1: 274.

38. मुहम्मद कासिम फ़रिश्ता, *हिस्ट्री ऑफ़ राइज दि मोहम्मडन पॉवर इन इंडिया,* 1: 206.

39. गौरीशंकर हीराचंद ओझा, *उदयपुर राज्य का इतिहास* (जोधपुर: राजस्थानी ग्रंथागार, 1996-97), 1: 192.

40. अमीर ख़ुसरो, *''खजाइन-उल-फ़ुतूह,''* 160.

41. आर.आर. हालदार, ''महाराणा कुंभा के समय के कुभलगढ़ शिलालेख की चौथी शिला, वि.सं.1517,'' *एपिग्राफ़िया इंडिका,* खंड-XXI (1931-32 ई.), संपा. हिरेंद्र शास्त्री एवं के.एन. दीक्षित (दिल्ली: आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया, पुनर्मुद्रण,1991), 279.

42. *एकलिंगमाहात्म्य,* संपा. प्रेमलता शर्मा, (दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 1976), 133.

43. ''गोरा-बादल कवित्त,'' 117.

44. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चऊपई,* 42.

45. दलपति विजय, *खुम्माणरासो,* 3:84.

46. लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 11.

47. जटमल नाहर, ''गोरा-बादल कथा,'' 186.

48. ''पद्मिनीसमिओ,'' 104.

49. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* 1: 311.

50. वही, 326.

51. *हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया- एज टोल्ड बाइ इट्स ऑन हिस्टोरियन,* संपा. एच.एम. इलियट, (इलाहाबाद: किताब महल प्रा. लि., 1996, प्रथम संस्करण 1866), 1: 76-77.

52. अमीर ख़ुसरो, *''ख़जाइन-उल-फ़ुतूह,''* अनु. मोहम्मद हबीब, *जर्नल ऑफ़ इंडियन हिस्ट्री,* अंक-VIII, खंड-1, क्रम सं.-22 (अप्रैल, 1929), 371.

53. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, *दिल्ली सल्तनत* (आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, 1992), 161.

54. अमीर ख़ुसरो, ''ख़जाइन-उल-फ़ुतूह,'' 371.

55. मुनि जिनविजय, ''रत्नसिंह की समस्या,'' *गोरा-बादल चरित्र* (जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, तृतीय संस्करण 2000), 63.

56. सुबीमल चंद्रदत्ता, ''दि फर्स्ट साका ऑफ़ चित्तौड़,'' संपा. नरेंद्रनाथ लॉ, *दि इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली,* खंड-7 (1931), 297.

57. (i) विवेच्य इन आठ रचनाओं के अलावा अलाउद्दीन ख़लजी *कान्हड़देप्रबंध* (पद्मनाभ), *हम्मीररासो* (नयचंद सूरि), *हम्मीरायण* (भांडउ व्यास), *छिताईचरित* (नारायणदास, रतनरंग और देवचंद) आदि रचनाओं में भी है।

(ii) अलाउद्दीन ख़लजी का उल्लेख राजस्थान-गुजरात की प्रसिद्ध लोककथा 'सयणी चारणी री वात' में भी है। - *राजस्थानी वात संग्रह,* संपा. मनोहर शर्मा (जोधपुर: राजस्थानी ग्रंथागार. 2007), 57 एवं विजयदान देथा, *बातां री फुलवाड़ी* (जोधपुर: राजस्थानी ग्रंथागार. 2007), 14: 295.

58. ''गोरा-बादल कवित्त,'' 103.

59. वही, 103.

60. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चऊपई,* 19.

61. जटमल नाहर, ''गोरा-बादल कथा,'' 187.

62. दलपति विजय, *खुम्माणरासो,* 3:86.

63. दयालदास, *राणारासो,* 111.

64. कालिकारंजन कानूनगो, *स्टडीज़ इन राजपूत हिस्ट्री* (दिल्ली: एस चांद एंड कंपनी, 1960), 15.

65. ''गोरा-बादल कवित्त,'' 118.

66. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चऊपई,* 51.

67. वही, 51.

68. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* 1: 398.

69. ''वह (अलाउद्दीन ख़लजी) सबसे अच्छा सुल्तान था। भारतीय उसकी बहुत तारीफ़ करते हैं। - इब्न बतूता, *रहेला ऑफ़ इब्न बतूता,* अनुवाद और व्याख्या मेहदी हुसेन (बड़ौदा: ओरियंटल इंस्टीट्यूट, 1976) 41.

70. अलाउद्दीन अपने चाचा और ससुर जलालुद्दीन की निर्मम हत्या करके सत्तारूढ़ हुआ। उसने सत्तारूढ़ होते ही जलालुद्दीन के सभी पुत्रों का विनाश कर दिया। यही नहीं, उसने जलालुद्दीन के साथ विश्वासघात करके अलाउद्दीन को सत्तारूढ़ होने में मदद करने वाले तीन अमीरों को छोड़कर शेष सभी अमीरों को भी मरवा दिया और कुछ को अंधा कर दिया। उनकी संपत्ति और माल असबाब भी उसने अपने अधीन कर लिया। – ज़ियाउद्दीन बरनी, ''तारीख़-ए-फ़िरोजशाही,'' *ख़लजी कालीन भारत,* संपा. सैयद अतहर अब्बास रिज़वी (दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, चौथा संस्करण 2016), 36–47.

71. वही, 58, 72.

72. अब्दुलाह मुहम्मद बिन उमर अल मक्की अल-आसफ़ी उलुग़ ख़ानी, ''जफरुल वालेह बे मुजफ्फर वालेह,'' वही, 230.

73. नारायणदास, रतनरंग और देवचंद, *छिताईचरित,* संपा. हरिहरनिवास द्विवेदी एवं अगरचंद नाहटा (ग्वालियर: विद्यामंदिर प्रकाशन,1960), 41.

74. नयचंद सूरि, *हम्मीर महाकाव्य,* हिंदी अनुवाद नाथूराम त्रिवेदी (राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, 1997), 130.

75. दशरथ शर्मा, ''हम्मीर महाकाव्य में ऐतिह्य सामग्री,'' वही, 23.

76. *'मोल्हउ' कहइ मोकल्यउ सुरताणि, कहइ सु सुणइ हमीरदे राण; 'देवलदे' कुंवरी परणावि, 'धारू''वारू' साथि अलावि।* – भांडउ व्यास, *हम्मीरायण,* संपा. भंवरलाल नाहटा (बीकानेर: सादुल राजस्थनी इंस्टीट्यूट,1960), 17.

77. अमीर ख़ुसरो, ''खजाइन-उल-फुतूह,'' *ख़लजी कालीन भारत,* 159.

78. वही, 161.

79. ''गोरा-बादल कवित्त,'' 121.

80. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चऊपई,* 58.

81. वही, 66.

82. लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 66.

83. दलपति विजय, *खुम्माणरासो,* 3:119.

84. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* 1: 330.

85. अबुल फ़ज़ल एल्लामी, *आईन-ए-अकबरी,* 1: 274.

86. जेम्स टॉड, *एनल्स एंड एंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान,* संपा. विलियम क्रूक (दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 1971, प्रथम संस्करण 1920), 1: 308.

87. श्यामलदास, *वीरविनोद-मेवाड़ का इतिहास (*दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 1986, प्रथम संस्करण 1886), 1: 286.

88. देव कोठारी, ''महारानी पदमिनी की ऐतिहासिकता,'' *महारानी पद्मिनी* (उदयपुर: वीर शिरोमणि महराणा प्रताप समिति, 2010), 26.

89. रुद्र काशिकेय, ''भूमिका,'' नारायणदासकृत *छिताई वार्ता,* संपा. माताप्रसाद गुप्त (काशी:

नागरी प्रचारिणी सभा, 1958), 20.

90. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चऊपई,* 19.

91. लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 24.

92. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* भाग-1, 337.

93. ''गोरा-बादल कवित्त,'' 110.

94. दलपति विजय, *खुम्माणरासो,* 3:86.

95. ''पद्मिनीसमिओ,'' 110.

96. जटमल नाहर, *''गोरा-बादल कथा,''* 187.

97. अगरचंद नाहटा, ''राघवचेतन की ऐतिहासिकता'', *नागरी प्रचारिणी पत्रिका,* वर्ष-64, अंक-1, 64.

98. *जैन सिद्धांत भास्कर,* भाग-5 (3), दिसंबर,1938, 138.

99. अगरचंद नाहटा, ''राघवचेतन की ऐतिहासिकता'', 65.

100. *वृद्धाचार्य प्रबंधावली* के *जिनप्रभसूरिप्रबंध* का यह अंश उक्त संदर्भ सं. 96 में वर्णित आलेख में पृ. 65 से उद्धृत किया है।

101. अगरचंद नाहटा, ''राघवचेतन की ऐतिहासिकता'', 66.

102. वही, 66.

103. (i) ''कांगराज्वालामुखीस्तोत्रसंसारचंद्रप्रशस्ती,'' *प्राचीन लेख माला,* संपा. दुर्गाप्रसाद, काशीनाथ पांडुरंग (मुम्बई: निर्णय सागर प्रेस, 1887), 2: 120 और (ii) जी. बूलर, ''कांगड़ा जावालामुखी प्रशस्ति,'' *एपिग्राफ़िया इंडिका,* भाग-1, संपा. जे. वर्गेज (कलकत्ता: इंडियन आर्कियोलोजिकल सर्वे, 1892), 192-194.

104. शार्गंधर, *शार्गंधरपद्धति,* संपा. पीटर पीटर्सन (दिल्ली: चौखंभा संस्कृत संस्थान, 1987), 1.

105. *प्राकृतपैंगलम्,* 1.71, 1.204, संपा. भोलाशंकर व्यास (वाराणसी: प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, 1959) 1: 64 एवं 174.

106. ''राघवचैतन्यविरचितं महागणपतिस्तोत्रम्,'' *काव्यमाला,* संपा. दुर्गाप्रसाद, काशीनाथ पांडुरंग (मुम्बई: निर्णय सागर प्रेस, 1851), 1: 1-6.

107. ''गोरा-बादल कवित्त,'' 127.

108. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चऊपई,* 97.

109. लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 101.

110. दलपति विजय, *खुम्माणरासो,* 3: 170.

111. दयालदास, *राणारासो,* 214.

112. जटमल नाहर, ''गोरा-बादल कथा,'' 206.

113. ''पद्मिनीसमिओ,'' 149.

114. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* 1: 406.

115. *लक्ष्मसिंह स्त्वेष गढ़मंडलीकाभिधोस्य तु।*
कनिष्ठो रत्नसीभ्राता पद्मिनी तत्प्रियात् भवत॥4॥
तत्कृतेलावदीनेन रुद्धे श्रीचित्रकूटके।
लक्ष्मसिंहो द्वादश भ्रातृभिः सप्तभिः सुतैः॥5॥ – रणछोड़ भट्ट, *राजप्रशस्तिमहाकाव्यम्*, संपा. मोतीलाल मेनारिया (उदयपुर: साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, 1973), 38.

116. *रानाख्यातेऽवददि (ति) सदा म्लेच्छपो रत्नसिहं,*
नेत्यूचे वा मम कुरुभवान् रावलाख्यां यदस्ति।
पूर्वेषां में तदुचितमियं येन तूक्तं तथा स्या-
त्तस्मात्कालागतिविदिना रत्नसी रावलोऽभूद्॥10॥
सोऽयं द्वीपे गमनमतनोत् सिंहले पद्मिनीं वा,
दृष्ट्वा यां च सपदि कृतवांस्तत्पितुः पार्श्व एव।
तत्पित्रोक्तं यदि च नृपतिः पद्मिनीप्राप्तये चेत्,
युद्धं कुर्यात्तव तु सहजो लक्ष्मसी ज्येष्ठ एव॥11॥
लेखं कृत्वा स विशतु मया पद्मिनी करेभ्यः
रक्ष्या देवी तदनु च मया कारितो लेख ईदृक।
लेखं राणा सपदि कृतवान् लक्ष्मी सोदसीयुक्,
रक्ष्यास्माभिर्यवनभयतः पद्मिनी संकटेषु॥12॥
पद्मिन्यास्ते यवननृपतिश्चित्रकूटाख्यदुर्गे,
श्रुत्वा दिल्लीनगरतः प्रस्थितोऽलावदीनः।
हिन्दूवृन्दैर्मुगलनिवहैः सत्यवन्तैः समेता-
नग्रे धृवातुलबल-महाशौर्यधैर्यप्रयुक्तः॥13॥
तत्र स्थित्वा यवननृपतिश्चित्रकूटाख्यदुर्गे,
श्रीपद्मिन्यास्ते सुकरकमलप्राप्तभोज्याशनेन।
तोषः स्यान्मेऽन्यदिह न च किं संदिशन्लक्ष्मसिंह-
पार्श्वे दूतं सविनयमयं प्रेषयामास दूतम्॥14॥
गत्वा तत्रावददिति तदा रावलः शुद्धभावं,
दिल्लीशं तं मनसि कलयन्नागतस्तस्य पार्श्वे।
देवः दिल्लीपतिरपि च तं रावलं रत्नभूषा-
वासो- दानप्रकटकपटाद्वाग्विबन्धाथ तूर्णम्॥15॥
देशिन्येषात्विति कथितवांस्तच्छतं चित्रकूटे,
प्रोक्तं गोरा प्रयुरमतियुक् बादलाद्यैः सखीयुक्।
प्रेका वा यवननृपति संजगादालियुक्ताः,
कूटं कृत्वा सभटशिविका प्रेषितास्तैस्ततस्ता॥16॥

दृष्ट्वा दंभाश्रुमयदृगभूर्द्रत्नसी म्लेच्छभर्ता,

पद्मिन्यास्ते त्विह नृप इतो वाष्पवान् जातमेव।

राज्ञा प्रोक्तं कपटपटुना पद्मिनीं द्रष्टुमाज्ञा,

देया मह्यं तव तु निकटे ह्यागताथैकवारम्॥17॥

श्रुत्वा ज्ञातं मम तु निकटे स्वागतैवेति नून-

मूचे गच्छेति सकरुणया मुक्तबंधः स यातः।

राणाभ्राता सकलशिविकारोहणेनैव दुर्गे,

प्राप्तो म्लेच्छाधिप इति मुदा पद्मिनीं द्रष्टुमागात्॥18॥

तस्मिन्काले सकलशिविकोत्तोर्णवीरैः कृतं द्राक्,

म्लेच्छेशस्य प्रबलकदनं म्लेच्छपोऽभूत्सुगुप्तः।

स्थाने कस्मिंश्चिदपि च ततो जीवति स्मेति नष्टः,

पद्मिन्याशारहित इति वा स्वल्पसैन्येन युक्तः॥19॥ - रणछोड़ भट्ट, *अमरकाव्यम्,* संपा. देव कोठारी (उदयपुरः साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ,1985), 124-129.

117. सदाशिव, *राजरत्नाकरमहाकाव्य,* संपा. मूलचंद पाठक (जोधपुरः राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान), 127-133.

118. मलिक मुहम्मद जायसी, *पदमावत,* संपा. वासुदेवशरण अग्रवाल (चिरगाँव (झाँसी): साहित्य सदन, द्वितीय संस्करण 1961), 875.

119. अबुल फ़ज़ल एल्लामी, *आईन-ए-अकबरी,* 1: 274.

120. मुहम्मद क़ासिम फ़रिश्ता, *हिस्ट्री ऑफ़ राइज दि मोहम्मडन पॉवर इन इंडिया* (टिल दि ईयर 1612 ए.डी.), अनु. एवं संपा., जॉन ब्रिग्ज (कलकत्ताः आर. केम्ब्रे एंड कंपनी, 1909), 1: 206.

121. अब्दुलाह मुहम्मद उमर अल-मक्की अल-आसफ़ी अल-उलुग़ख़ानी हाजी उद्दबीर, *ज़फ़रुल वालेह बे मुज़फ़्फ़र वालेह- एन अरेबिक हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात* (बड़ौदाः ओरियंटल इंस्टिट्यूट,1974), 1: 645-646.

122. मुँहता नैणसी, *मुंहता नैणसीरी ख्यात,* 1: 14.

123. *मेवाड़ रावल राणारी बात,* 10.

124. जेम्स टॉड, *एनल्स एंड एंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान,* 1: 308.

125. वि.ए. स्मिथ, *ओक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया* (लंदनः ओक्सफ़ोर्ड, संशोधित संस्करण 1921). 233.

126. श्यामलदास, *वीर विनोद-मेवाड़ का इतिहास,* 1: 286.

127. गौरीशंकर ओझा, *उदयपुर राज्य का इतिहास,* 1: 191.

128. पद्मनाभ, *कान्हड़देप्रबंध,* 2/131-141, संपा. कांतिलाल बलदेवराम व्यास (जयपुरः राजस्थान प्राच्यविद्या मंदिर, 1953), 90-92.

129. विश्वम्भर शरण पाठक, *एंशियन्ट हिस्टोरियन्स ऑफ़ इंडिया* (मुंबईः एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1966), 139.

130. *संस्कृत कविता की लोकधर्मी परंपरा,* चयन एवं संपा. राधावलभ त्रिपाठी (दिल्ली: यश पब्लिकेशन्स, 2000), 140.

131. नरपति नाल्ह, *बीसलदेवरास,* संपा. माताप्रसाद गुप्त (इलाहाबाद: हिंदी परिषद्, इलाहाबाद, विश्वविद्यालय, द्वितीय संस्करण 1959), 109.

132. ''गोरा-बादल कवित्त,'' 110

133. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* 1: 337.

134. जटमल नाहर, ''गोरा-बादल कथा,'' 197.

135. दयालदास, *राणारासो,* 197.

136. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* 1: 305-335.

137. हर्षदेव, *रत्नावली-नाटिका,* संपा. एवं टीका रामचंद्र मिश्र (बनारस: चौखंभा संस्कृत सीरीज, 1953), 9-52.

138. कोऊहल, *लीलावइ,* संपा. एवं अनुवाद एंड्रयु ओलट (लंदन: मूर्ति क्लासिकल लाइब्रेरी ऑफ़ इंडिया, 2021), 199.

139. धनपाल, *भविसयत्तकहा,* संपा. सी.डी. दलाल (बडोदा: ओरियंटल इंस्टीट्यूट, 1967), 13.

140. मुनि कनकामर, *करकंड चरिउ,* 7.6,7,8, संपा. एवं अनुवाद हीरालाल जैन (दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ, द्वितीय संस्करण, 1964), 94-96.

141. राजसिंह, *जिणदत्त चरित,* 201-216, संपा. एवं हिंदी अनुवाद माताप्रसाद गुप्त (जयपुर: दिगंबर जैन अं. क्षेत्र, 1973), 66-70.

142. जिनहर्षगणि, *रयणसेहरनिवकहा,* संपा. रामप्रकाश पोद्दार (मुजफ्फरपुर: प्राकृतशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, 1993), 16.

143. ''गोरा-बादल कवित्त,'' 110.

144. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चऊपई,* 9.

145. दलपति विजय, *खुम्माणरासो,* 3:84.

146. दयालदास, *राणारासो,* 184.

147. ''पद्मिनी समिओ,'' 103.

148. जटमल नाहर, ''गोरा-बादल कथा,'' 185.

149. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* 1: 305-335.

150. सोमदेव, *कथासरित्सागर,* हिंदी रूपांतर राधावलभ त्रिपाठी (नयी दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 1995), 73.

151. विजयदान देथा, *बातां री फुलवाड़ी* (बोरूंदा: रूपायन संस्थान, 1967), 9: 114.

152. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चऊपई,* 10.

153. लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 11.

154. दलपति विजय, *खुम्माणरासो,* 3:84.

155. हजारीप्रसाद द्विवेदी, *हिंदी साहित्य का आदिकाल,* 88.

156. सोमदेव, *कथासरित्सागर,* 182.

157. विद्यापति बिल्हण, *विक्रमांकदेवचरित,* संपा. डब्ल्यू. एच. स्टोक्स (मुम्बई: गर्नवमेंट सेंट्रल बुक डिपो, 1875), 56.

158. जटमल नाहर, ''गोरा-बादल कथा,'' 187.

159. ''पद्मिनीसमिओ,'' 110

160. देखिए: अध्याय-7 का अनुच्छेद- 6.

161. कालिदास, *ऋतुसंहारम्,* संपा. रेवाप्रसाद द्विवेदी (नयी दिल्ली: साहित्य अकादेमी, 1990).

162. अद्दहमाण, *संदेशरासक,* संपा. हजारीप्रसाद द्विवेदी (मुम्बई: हिंदी ग्रंथ रत्नाकर लि., 1960), 33-55.

163. चंद बरदाई, *पृथ्वीराजरासो,* संपा. मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या (वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा,) 2: 759.

164. दयालदास, *राणारासो,* 189-196.

165. देखिए: अध्याय-7 का अनुच्छेद- 5.

166. कोमल कोठारी, ''भूमिका,'' विजयदान देथा कृत *बातां री फुलवारी* (बोरूंदा: रूपायन संस्थान, 1966), 8: 4.

167. मोरिस ब्लूमफील्ड, ''ऑन रेकरिंग साइकिक मोटिफ, एंड लाफ़ एंड क्राइ मोटिफ़.'' *जर्नल ओफ़ अमरीकन ओरियंटल सोसायटी,* खंड-36 (1916), 54.

168. फ़िल्म 'पद्मावत' पर हुए विवाद के दौरान और पहले, इस कथा में आयी सिंघल द्वीप संबंधी कथा रूढ़ि के युक्तिकरण और निहितार्थ खोजने के कई प्रयास हुए। इतिहासकार गौरीशंकर ओझा ने कहा कि मध्यकाल में सिंघल द्वीप जाकर विवाह करना संभव नही है और वहाँ कभी चौहानों का शासन ही नहीं रहा। *(उदयपुर राज्य का इतिहास, 1: 187)* सरदार ए.ए. के सालू के अनुसार सिंघल मध्यप्रदेश और राजस्थान की सीमा पर स्थित गाँव सिंगोली है। (*सरस्वती,* खंड-1, संख्या-2, 1958), 90-100.) देव कोठारी की धारणा है कि पद्मिनी सवाई माधोपुर जिले में रणथंभोर के समीप स्थित गाँव सिंहपुरी की रहनेवाली थी। (*महारानी पदमिनी,* 18) ब्रजभूषण सिंहल के अनुसार वह रणथंभोर के शासक हम्मीर की पुत्री थी। (''रानी पद्मिनी,'' 45) इसी तरह चंद्रमणिसिंह ने नंदकिशोर वर्मा के एक आलेख के आधार पर पद्मिनी को सिंध के सिंहराव (वर्तमान पाकिस्तान में) की रहनेवाली जैसलमेर के निर्वासित रावल पुण्यपाल की बेटी माना है। (चंद्रमणिसिंह, *पदमिनी की ऐतिहासिकता* [जयपुर: प्राकृत भारती अकादमी, 2020], 60.)

169. हजारीप्रसाद द्विवेदी, *हिंदी साहित्य का आदिकाल,* 80.

170. ''अर अठे राजाजी उण नवी अपछरा रै आणंद में ऐड़ा वावळा व्हीया के पैला री छवूँ रांणियां ने दुहाग दे दियौ। छंवा रे पेट में आसा ही, घणो लटापोरियां करी पण राजा नी मांन्या।'' - विजयदान देथा, *बातां री फुलवाड़ी,* (बोरूंदा: रूपायन संस्थान,1967), 9: 250.

171. महर्षि व्यास, *श्रीमद्भागवतपुराणम्*, 10.58-32-45, संपा. एवं टीका जगदीशलाल, शास्त्री (दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, पुनर्मुद्रण 1999), 551.

172. विजयदान देथा, *बातां री फुलवाड़ी,* 9: 209-257.

173. अमीर ख़ुसरो, ''खजाइन-उल-फ़ुतूह,'' 160.

174. मोहम्मद हबीब, *जीवन चरित भारत के बाहर इस्लामी संस्कृति और ऐतिहासिक पद्धति,* संपा. इरफान हबीब (दिल्ली: ग्रंथ शिल्पी, हिंदी संस्करण 2010), 138.

175. एच.एम. इलियट, संपा. *हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया- एज टोल्ड बाइ इट्स ऑन हिस्टोरियन,* 1: 76-77.

176. पी. हार्डी, *हिस्टोरियन्स ऑफ़ मे मेडिईवल पीरियड* (लंदन: लुज़ाक एंड कंपनी लि. 1960), 92 .

177. मोहम्मद हबीब, *जीवन चरित भारत के बाहर इस्लामी संस्कृति और ऐतिहासिक पद्धति,* 21.

178. वही, 74.

179. वही, 74.

180. वही, 76.

181. वही, 72.

182. वही, 105.

183. वही, 101.

184. हरिशंकर श्रीवास्तव, *मध्यकालीन भारतीय इतिहास लेखन* (दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2000), 102.

185. पी. हार्डी, *हिस्टोरियन्स ऑफ़ मेडिईवल पीरियड,* 110.

अध्याय - 6

संस्कृति

पद्मिनी–रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर ऐतिहासिक कथा–काव्यों में तत्कालीन राजनीतिक–प्रशासनिक व्यवस्था, विचारधारा, जीवन मूल्य और आस्था–विश्वास के अंत:साक्ष्य बहुत सीमित हैं। ये साक्ष्य और इनके संकेत, इन रचनाओं के चरित्रों के आचरण और घटनाओं के मोड़–पड़ावों में हैं। आवश्यकता और अवसर के अनुसार रचनाकारों ने आदर्श आचरण और नीति की सूक्तियों और कहावतों–मुहावरों में भी इनका वर्णन किया है। प्रकरण चौदहवीं सदी का है, जबकि इन कथा–काव्यों की रचना सोलहवीं से उन्नीसवीं सदी के बीच हुईं, लेकिन इस समयांतराल का कोई बहुत निर्णायक महत्त्व इसलिए नहीं है, क्योंकि मध्यकालीन सांस्कृतिक इकाइयाँ कमोबेश स्वायत्त थीं, उनमें परिवर्तन की गति भी बहुत धीमी थी और विचार–विश्वास दीर्घकाल तक अपरिवर्तित रहते थे। चौदहवीं से उन्नीसवीं सदी के समय के विस्तार में पली–बढ़ी राजनीतिक–प्रशासनिक व्यवस्था, विचारधारा, जीवन मूल्य और आस्था–विश्वास आदि बहुत प्राचीनकाल से पारंपरिक निरंतरता में भी हैं, इसलिए इनके बीज प्राचीन भारतीय शास्त्रों–स्मृतियों, संहिताओं आदि में हैं, इसलिए इनका संदर्भ भी यथास्थान दिया गया है। मध्यकाल में भी इन स्मृतियों और संहिताओं का सरलीकृत और श्रुत रूप जनसाधारण के संस्कार और स्मृति में था। उस समय के प्रमुख जीवन मूल्यों- क्षत्रियत्व, युद्ध, शौर्य–पराक्रम, स्वामिधर्म, यौन शुचिता आदि में प्राचीन स्मृतियों और संहिताओं के संस्कार और स्मृति मिलती हैं। निरंतर बाह्य आक्रमणों के कारण इन मूल्यों का लेकर सजगता का भाव मध्यकाल में बहुत बढ़ गया था। क्षत्रियत्व, युद्ध, शौर्य–पराक्रम, शील और यौन शुचिता तत्कालीन कवि–कथाकारों की प्रमुख चिंता और सरोकार हो गये थे। उन्होंने ऐतिहासिक ज़रूरत के तहत आग्रहपूर्वक इनको कुछ हद तक अतिरंजित महत्त्व भी दिया।

आरंभिक यूरोपीय विद्वानों ने इस समय की राजनीतिक–प्रशासनिक, सामाजिक

और सांस्कृतिक व्यवस्था की तुलना यूरोपीय फ़्यूडेलिज्म से करते हुए उसको 'सामंतवाद' में सीमित कर दिया है। विडंबना यह है कि कतिपय भारतीय विद्वानों ने भी उनका ही अनुकरण किया और कुछ हद तक यह आज भी जारी है। यह व्यवस्था यूरोपीय सामंतवाद से अलग थी और यहाँ की ख़ास प्रकार की सांस्कृतिक ज़रूरतों के अनुसार पली-बढ़ी। पद्मिनी-रत्नसेन विषयक रचनाओं में इसके संकेत बहुत कम हैं, इसलिए इसकी रूपरेखा बनाने के लिए इन उपलब्ध संकेतों को तत्कालीन दूसरे साहित्यिक अभिलेखों और पुरातात्त्विक साक्ष्यों से भी पुष्ट करने की कोशिश की गई है। पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण के दौरान की राजनीतिक-प्रशासनिक और सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था को जानने के सीमित स्रोत उपलब्ध हैं, लेकिन इसका यह आशय नहीं है कि यहाँ के राजा, उनके अधीनस्थ सामंत और उपसामंत आदि अभिलेखीकरण को लेकर सचेत नहीं थे, जैसाकि अधिकांश आधुनिक इतिहासकार और विद्वान् मानते हैं। दरअसल इस तरह के अभिलेखीकरण की यहाँ परंपरा थी। यहाँ शिलालेख, पट्टे-परवाने, पत्र, रुक्के आदि लिखे जाते थे, लेकिन निरंतर बाह्य आक्रमणों से यह अधिकांश सामग्री सुरक्षित नहीं रही।[1] यह इस तथ्य से प्रमाणित है कि उत्तरमध्यकाल में जब मुग़लों से संधि हो गई और शांति का वातावरण हो गया, तो इस तरह के अभिलेख फिर मिलने लगते हैं। मेवाड़ के अधीनस्थ प्रमुख सामंतों से संबंधित सत्रहवीं सदी के बाद के अभिलेख उपलब्ध हैं और इनमें से कुछ का प्रकाशन भी हुआ है। इनसे भी यहाँ की राजनीतिक-प्रशासनिक-आर्थिक व्यवस्था, भूराजस्व प्रशासन, शासक-सामंत संबंध, विचारधारा, आस्था-विश्वास आदि पर अच्छी रोशनी पड़ती है।[2] यहाँ उत्तर भारत के राजपूत समूहों का अभ्युदय और उनमें से भी गुहिल राजवंश का मेवाड़ में आगमन और छठी सदी से इसकी यहाँ निरंतर वर्चस्वकारी मौजूदगी को जानने-समझे कोशिश की गयी है। दरअसल इसका महत्त्व और उपयोगिता पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर ऐतिहासिक कथा-काव्यों में वर्णित राजनीतिक-प्रशासनिक व्यवस्था, विचारधारा, दर्शन, जीवन मूल्य और आस्था-विश्वास की समझ बनाने में है।

1.

अधिकांश उपनिवेशकालीन यूरोपीय और परवर्ती भारतीय इतिहासकारों ने 'क्षत्रिय' और 'राजपूत' दो अलग जातियाँ ठहराकर राजपूतों की उत्पत्ति विदेशी मानी है, लेकिन यह धारणा सही नहीं है। दरअसल 'राजपूत' प्राचीन भारतीय क्षत्रिय परंपरा का ही मध्यकालीन विस्तार है। यह धारणा आधारहीन है कि राजपूत 'क्षत्रिय' से भिन्न जातीय समूह है, जो बाहर से आकर यहाँ के क्षत्रिय जातीय समूहों में घुल-मिल गया। 'राजपूत' शब्द का व्यापक व्यवहार मुग़लकाल में शुरू हुआ, लेकिन इससे पहले भी

यह शब्द क्षत्रिय जातीय समूह के लिए लगभग समानार्थी शब्द की तरह चलन में था। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि पदमिनी-रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर कथा-काव्यों में सर्वत्र 'खित्रिवट' (क्षत्रियत्व) शब्द का व्यवहार हुआ है। केवल दो-तीन स्थानों पर ही इनमें 'राजपूत' शब्द का उल्लेख मिलता है।[3] *महाभारत* सहित और कई प्राचीन ग्रंथों, शिलालेखों और दानपत्रों में 'राजपुत्र' शब्द का व्यवहार हुआ है। *महाभारत* में एकाधिक स्थानों पर इस शब्द का शासक राजा के उत्तराधिकारी के रूप में उल्लेख मिलता है। एक जगह कहा गया है कि *एते रुक्मरथा नाम राजपुत्रा महारथाः। रथेष्वस्त्रेषु निपुणा नागेषुच विशांपते॥* इसी तरह *महाभारत* में ही एक और जगह उल्लेख है कि *शूद्रं वैश्यं राजपुत्रं च राजन् / लोकाः सर्वे संश्रिता धर्मकामाः॥*[4] कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* सहित सभी प्राचीन अभिलेखों और साहित्य में 'क्षत्रिय' के साथ 'राजपुत्र' शब्द भी हमेशा यहाँ व्यवहार में रहा है।[5]

भारतीय इतिहास में राजपूत जातीय समूहों का प्रभुत्व और राजनीतिक उत्थान नवीं और दसवीं सदी में हुआ। इतिहास में नवीं से लगाकर बारहवीं सदी तक के समय को इसीलिए राजपूत युग भी कहा जाता है।[6] राजपूत क्षत्रिय परंपरा में ही थे, लेकिन आरंभिक यूरोपीय और उनके अनुवर्ती भारतीय विद्वानों ने अपुष्ट प्रमाणों के आधार पर राजपूतों को विदेशी मूल का मानकर इस विषय को इतना विवादास्पद और जटिल बना दिया है कि अब भी कुछ विद्वान् इसको अनिर्णीत छोड़कर ही आगे बढ़ जाते हैं। इतिहासकार अनिलचंद्र बनर्जी ने इस विषय पर बहुत गंभीरतापूर्वक विचार किया और अंत में वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि "वर्तमान परिस्थितियों में हम अपने को असंतोषजनक निष्कर्षों से ही संतुष्ट कर सकते हैं।"[7] जेम्स टॉड, वी.ए. स्मिथ, डी.आर. भंडारकर, सी.वी. वैद्य, आर.सी. मजूमदार, गौरीशंकर ओझा, रोमिला थापर आदि कई विद्वानों ने इस विषय पर विचार किया और इन सबकी राय इस संबंध में अलग-अलग है। उपलब्ध अभिलेखीय और साहित्यिक साक्ष्य भी एक-दूसरे से मेल नहीं खाते। *पृथ्वीराजरासो* में वर्णित अग्निकुंड से चार प्रमुख राजपूत समूहों की उत्पत्ति के मिथ[8] और बाद में सूर्यमल्ल मिश्रण के *वंशभास्कर* में इसके विस्तृत रूपांतर[9] को आधार बनाकर कुछ यूरोपीय और भारतीय विद्वानों ने यह मान लिया कि ये सभी जातीय समूह प्राचीन भारतीय क्षत्रिय परंपरा से असंबद्ध और विदेशी मूल के हैं और ब्राह्मणों के सहयोग से इन्होंने अपने को प्राचीन भारतीय क्षत्रिय परंपरा से संबद्ध कर लिया। राजपूतों की विदेशी उत्पत्ति से संबंधित मत सर्वप्रथम कर्नल जेम्स टॉड ने इतिहास ग्रंथ *एनल्स एंड एंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान* में दिया। यज्ञों के चलन, रथों द्वारा युद्ध, मांसाहार, रहन-सहन तथा वेश-भूषा की समानता आदि के आधार पर टॉड ने राजपूतों को विदेशी सीथियन मतलब शक जाति का वंशज

माना।[10] इस मत का समर्थन विलियम क्रूक ने भी किया है।[11] बाद में वि.ए. स्मिथ ने भी कहा कि उत्तर-पश्चिम की राजपूत जातियों- प्रतिहार, चौहान, परमार, चालुक्य आदि की उत्पत्ति भारत में बाहर से आने वाली मध्य एशियायी शक, हूण आदि जनजातियों से हुई। इसी तरह उसके अनुसार गाहड़वाल, चंदेल, राष्ट्रकूट आदि मध्य तथा दक्षिणी क्षेत्र की जातियाँ गोंड, भर जैसी देशी आदिम जातियों की वंशज हैं।[12] आगे चलकर भारतीय विद्वानों- डी.आर. भंडारकर[13], रोमिला थापर आदि ने भी इस मत का समर्थन किया। रोमिला थापर के अनुसार "इनकी उत्पत्ति विदेशी थी। इसका पता इस बात से चलता है कि ब्राहमणों ने उन्हें राजीय वंश परंपरा का बताने और उन्हें 'क्षत्रिय' का स्थान दिलाने का पूरा प्रयत्न किया, और राजपूतों ने भी इस बात का आग्रह आवश्यकता से अधिक बल देकर किया।"[14] यह धारणा कमोबेश मान्य हो गई। यह मान लिया गया कि गुप्त साम्राज्य से पहले और बाद में हूण, शक, पहलवी आदि कई जातियाँ बाहर से यहाँ आईं और यहाँ पहले से मौजूद क्षत्रियों के रीति-रिवाज़ और जीवन शैली में रच-बस कर यहाँ के उत्तरी-पश्चिमी इलाकों में बस गईं। बाद में ब्राह्मणों के सहयोग से इनमें से कुछ जातियों ने अपने अग्नि, सूर्य और चन्द्रवंशी होने के दावे किए। आरम्भ में माउंट आबू के अग्निकुंड से उत्पत्ति के मिथ से संबंधित प्रतिहार, परमार, चालुक्य और चौहान जातियों ने प्रादेशिक राज्य क़ायम किए। अपने सूर्य एवं चन्द्रवंशी होने का दावा करने वाली गुहिल, चंदेल, गहड़वाल, राठौड़, कछवाहा, तोमर आदि अन्य जातियाँ उतरी-पश्चिमी भारत में क्षेत्रीय शासकों के रूप में स्थापित हो गईं।

राजपूत जातीय समूहों के विदेशी मूल का होने की धारणा वर्चस्वकारी ढंग से मान्य और प्रचारित है, लेकिन इसकी पुष्टि के लिए पर्याप्त साक्ष्य नहीं हैं। सी.वी. वैद्य और गौरीशंकर ओझा ने इस विषय पर बाद में विस्तार से विचार किया है, लेकिन इसको महत्त्व बहुत कम लोगों ने दिया। सी.वी. वैद्य की स्पष्ट मान्यता है कि राजपूत वैदिक आर्यों के उत्तराधिकारी थे और उनकी अपनी परंपराएँ यह घोषित करती हैं कि वे सूर्य और चंद्रवंशी प्राचीन क्षत्रिय प्रजातियों से संबंधित हैं[15] गौरीशंकर ओझा की भी धारणा है कि नवीं सदी में एकाएक उभरकर प्रमुख हो जानेवाली राजपूत जातियाँ प्राचीन सूर्य और चंद्रवंशी क्षत्रिय जातियों की वंशज हैं और जिन विदेशी प्रजातियों से उनकी उत्पत्ति मानी गई है, उनमें से अधिकांश प्राचीन भारतीय क्षत्रिय राजवंशों में शामिल हैं। उनका यह भी मानना है कि जहाँ से उनका भारत आगमन माना जाता है, वहाँ छठी-सातवीं सदी में भारतीय सभ्यता और संस्कृति की मौजूदगी के प्रमाण मिलते हैं।[16] यद्यपि इतिहासकार अनिलचंद्र बैनर्जी इस संबंध में किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचते, लेकिन वे भंडारकर आदि की राजपूत समूहों के विदेशी

होने की धारणा को कामचलाऊ संभावना से ज़्यादा महत्व नहीं देते।[17] सुल्तान महमूद की चढ़ाई के समय अल्बेरुनी उसके साथ था और उसने अपनी प्रसिद्ध किताब *किताबुल हिंद* (1017–31 ई.) में सभी जगह 'क्षत्रिय' शब्द का ही व्यवहार किया है।[18]

यूरोपीय और उनके अनुवर्ती भारतीय विद्वानों की यह धारणा कि इन जातियों ने अपने हिंदूकरण और शुद्धता के लिए ब्राहमणों का सहारा लिया और उनका यह सहयोग व्यापक जनसाधारण में मान्य भी हो गया, यह तत्काल गले उतरने वाली बात नहीं है। स्वयं वी.ए. स्मिथ भी इस संबंध में आश्वस्त नहीं था। उसने लिखा कि "निस्संदेह शक और कुषाणवंशी राजाओं ने जब हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया, तब वे हिंदू जाति की प्रथा के अनुसार क्षत्रियों में मिला लिए गए होंगे, किंतु इस कथन के लिए हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है।"[19] इन आरंभिक विद्वानों ने इनके विदेशी मूल की होने धारणा माउंट आबू के अग्निकुंड से इनके उत्पन्न होने के मिथ के आधार पर बनाई, लेकिन इस मिथ के भी एकाधिक रूपांतरण हैं और इनमें से कुछ बहुत बाद में अस्तित्व में आए हैं।[20] इन राजपूत समूहों की प्रजातीय विशेषताएँ और जीवन शैली भी इनके भारतीय मूल के होने की पुष्टि करती है।[21] टॉड ने राजपूत तथा सीथियन, मतलब शक जातियों में जिन समान प्रथाओं का संकेत किया है, वे सभी प्रथायें भारत की प्राचीन क्षत्रिय जातियों में भी देखी जा सकती हैं।[22] विलियम क्रूक का 'खजर' और 'गुर्जर' शब्द में साम्य का विचार युक्तिसंगत नहीं है। इस तरह की जबरन समानता को प्रमाणों के अभाव में बहुत दूर तक नहीं खींचा जा सकता।[23] दरअसल खजर जनजाति ने कभी भी भारत पर आक्रमण नहीं किया, जिसका संबंध कुछ उत्तर भारतीय राजपूत समूहों से जोड़ा जाता है और यह जाति स्वभाव से घुमक्कड़ भी नहीं है।[24] *पृथ्वीराजरासो* में वर्णित अग्निकुल की उत्पत्ति की मिथ कथा में कोई ऐतिहासिक सच्चाई नहीं है और इस कथा का उल्लेख *रासो* की कुछ प्राचीन पांडुलिपियों में नहीं मिलता है। इस संबंध में सी.वी. वैद्य की धारणा यह है कि "यह एक कवि के मस्तिष्क में उत्पन्न हुआ, दूसरे ने इसका ग़लत अर्थ लगाया और फिर यह इस तरह प्रभावकारी हुआ कि स्वयं राजपूत इस पर मुग्ध हो गए।"[25]

पृथ्वीराजरासो में वर्णित अग्निकुंड से उत्पत्ति के जिस मिथ के आधार पर प्रतिहार, परमार, चालुक्य और चौहान जातियों को अग्निवंशी माना गया, वे स्वयं अपने को उपलब्ध शिला और ताम्र अभिलेखों में पाँचवीं सदी से पूर्व तक अग्निवंशी मानती ही नहीं थी। ग्वालियर (सगर ताल) के भोज के प्रशस्ति अभिलेख में कन्नौज के प्रतिहारों को सूर्यवंशी राम के भाई लक्ष्मण का वंशज लिखा गया है।[26] राजशेखर ने भी अपने आश्रयदाता चौहानवंशी महेंद्रपाल को 'रघुवंश का आभूषण' और 'रघुकुल

तिलक' कहा है।[27] जहाँ तक 'प्रतिहार' के साथ 'गुर्जर' शब्द के प्रयोग का प्रश्न है, तो यह केवल राजोर शिलालेख[28] में ही प्रयुक्त हुआ है, लेकिन यह यहाँ भौगोलिक अर्थ में नहीं है। इसी तरह हर्ष के शिलालेख[29] और *हम्मीरमहाकाव्य*[30] में भी चौहानों को स्पष्टतया सूर्यवंशी कहा गया है। अणहिलवाड़ा के चालुक्यों के शिलालेखीय प्रमाण भी उनको चंद्रवंशी कहते हैं।[31] राजा मुंज के समय तक परमार भी अपने को अग्निवंशी की जगह 'ब्रह्मक्षत्र' कहते थे। वाक्पति द्वितीय के राजकवि हलायुध ने अपने आश्रयदाता नरेश को 'ब्रह्मक्षत्र' कहा है।[32] हरसोला के ताम्रपत्रों में चालुक्यों को कहीं भी अग्निवंशी नहीं माना गया है।[33] इतिहासकार डी.सी. गांगुली ने तो परमारों को हरसोला के ताम्रपत्रों के आधार पर राष्ट्रकूटों की संतान सिद्ध किया है।[34] स्वयं चंद बरदाई का आशय भी इस वृत्तांत के आधार पर इन जातीय समूहों को अग्निवंशी सिद्ध करना नहीं था। रासो में 36 राजपूत वंशों का उल्लेख है। उसने लिखा है कि– *रवि ससि जाधव वंस। ककुस्थ परमार सदावर। चहुआन चालुक्क। छंदक सिलार अभियर।* स्पष्ट है कि चंद 36 राजपूत जातीय समूहों में परमार, चालुक्य, चहुआन और यादव राजवंशों को सम्मिलित मानता है।[35] सी.वी. वैद्य के अनुसार यह उल्लेख परवर्ती नहीं, पृथ्वीराज चौहान के समय का ही है।[36] डी.आर. भंडारकर का यह कहना कि प्रतिहार अपने कुछ अभिलेखों में अपने को गुर्जर कहते हैं[37], इसलिए शेष परमार, चालुक्य और चौहान भी गुर्जर होने चाहिए, यह धारणा युक्तिसंगत नहीं है। दरअसल शक आदि जातियों का भारत में आना और यहाँ के क्षत्रिय जातीय समूहों में घुलमिल जाना यहाँ की बहुत मजबूत जातीय व्यवस्था में संभव ही नहीं था। 300 ई. पू. के आसपास यहाँ आए मेगास्थनीज का स्पष्ट कथन है कि "यहाँ किसी दूसरी जाति में विवाह करने और अपना व्यवसाय बदलने की अनुमति नहीं है।"[38] 600 ई. के आसपास भारत आए चीनी यात्री ह्वेनत्सांग का भी यही मानना है। वह लिखता है कि "यहाँ के लोग अपनी ही जाति में विवाह करते हैं।"[39] दरअसल सही यह है कि जिन विदेशी जातीय समूहों से राजपूतों की उत्पत्ति मानी गई है, वे विदेशी नहीं थे। मध्य एशिया, जहाँ से ये समूह आए, वहाँ इस्लाम के प्रसार से पूर्व भारतीय सभ्यता और आर्यों की मौजूदगी के प्रमाण मिलते हैं। विदेशी मूल की जिन जातियों से राजपूतों की उत्पत्ति मानी गई है, उनका उल्लेख बहुत पहले से भारतीय क्षत्रिय जातियों में होता आया है। *मनुस्मृति* में उल्लेख है कि "पौंड्रक, चोड, द्रविड, कांबोज, यवन, शक, पारद, पल्हव, चीन, किरात, दरद और खश ये सब क्षत्रिय जातियाँ थीं, परंतु शनैः शनैः क्रियालोप होने से वृषल (विधर्मी, धर्मभ्रष्ट) हो गईं।"[40] गौरीशंकर ओझा के अनुसार "इसका अभिप्राय यह है कि वैदिक धर्म को छोड़कर अन्य (बौद्ध आदि) धर्मों के अनुयायी हो जाने के कारण वैदिक धर्म के आचार्यों ने उनकी गणना विधर्मियों

(धर्म भ्रष्टों) में की।''[41] पुराणों में शक आदि जातियों के क्षत्रिय होने के वृत्तांत मिलता है।[42] *कुमारपालप्रबंध* में भी हूणों की गणना 36 राजवंशों में की गई है।[43] हूणों के साथ राजपूत वंशों के वैवाहिक संबंध भी इस बात पुष्टि करते हैं कि यह जाति विदेशी नहीं थी।[44] चीनी यात्री फाहियान के विवरणों से भी यह स्पष्ट है कि ईसा की तीसरी-चौथी सदी में मध्य एशिया में भारतीय सभ्यता का विस्तार था।[45] चीनी तुर्कीस्तान में मिले लौकिक भाषा मिश्रित प्राकृत के दस्तावेज़ों में महाराजा, प्रियदर्शन, देवपुत्र, भट्टारक आदि शब्द मिले हैं। इसी तरह इनमें भारतीय समय सूचक संवत्सर, मास, दिवस आदि भी दिए हुए हैं।[46]

2.

उत्तर भारत के गुहिलवंशीय राज्य मेवाड़ का प्राचीन नाम मेदपाट था। यह अत्युक्ति है, लेकिन आबू के अचलेश्वर मंदिर के समरसिंह के समय एक शिलालेख (1258 ई.) के अनुसार बापा के समय यहाँ इतने दुर्जनों का संहार हुआ कि उनकी चर्बी से यहाँ की भूमि गीली हो गई और इसको मेदपाट कहा गया।[47] यही एक ऐसा राज्य था, जो भारतीय इतिहास के राजपूत युग के बाद दीर्घकालीन विदेशी प्रभुत्व के दौरान भी अपना अस्तित्व और गौरव सुरक्षित रखने में सफल रहा। मेवाड़ का राजवंश अपने को सूर्यवंशी मानता है, जिसमें भगवान राम, महात्मा बुद्ध आदि हुए। ऐसा माना जाता था कि राम के पुत्र कुश के वंशज राजा सुमित्र के वंश में 560 ई. के आसपास गुहिल नामक प्रतापी राजा हुआ, जिससे इस वंश का नाम गुहिल वंश पड़ा।[48] मेवाड़ में इस गुहिल राजवंश के आगमन को लेकर अभी भी अनिश्चय है। आरंभ में विद्वानों ने इस संबंध में जो मत व्यक्त किए, वे नये अभिलेखों, सिक्कों, साहित्य आदि की उपलब्धता से निराधार सिद्ध हुए हैं। सबसे पहले अबुल फ़ज़ल ने बिना किसी आधार के इस राजवंश का संबंध ईरान के बादशाह नौशरवाँ आदिल से जोड़ दिया।[49] यह बात चल निकली और 'मासिरुल उमरा' और 'बिसातुल ग़नाइम्' से होती हुई जेम्स टॉड तक पहुँच गई।[50] टॉड ने प्राचीन जैन साहित्य में वर्णित वलभी के शासक शीलादित्य को मेवाड़ के शासक शीलादित्य से मिलाकर यह मान लिया कि गुहिल राजवंश वलभी से मेवाड़ आया।[51] बाद में डी.आर. भंडारकर ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि यह राजवंश नागर ब्राह्मणों से उत्पन्न है।[52] दरअसल ये दोनों धारणाएँ पुरानी है, जब इनसे संबंधित पर्याप्त ऐतिहासिक स्रोत उजागर नहीं हुए थे। यह राजवंश सूर्यवंशी है- यह बापा (734-753 ई.) के समय एक सोने सिक्के पर चँवर और छत्र के बीच सूर्य के चिह्न से प्रमाणित है।[53] आहाड़ के शिलालेख वि.सं.1034 (976 ई.) का गुहिल के ब्राह्मण होने का जो साक्ष्य भंडारकर दिया है, उसमें गुहिल को

ब्राह्मण नहीं, 'आनंदपुर के ब्राह्मण कुल का सम्मान करनेवाला' कहा गया है और इसी के छठे श्लोक में उसके वंशज नरवाहन को 'क्षत्रियों का क्षेत्र' भी कहा गया है।[54] राजा नरवाहन के समय के एकलिंगजी मंदिर के शिलालेख वि.सं.1028 (971 ई.) में यहाँ के राजवंश के पाशुपत संप्रदाय के लकुलीश मत के गुरुओं को 'रघुवंश की कीर्ति का प्रसार करनेवाला' कहा गया है[55] और रघुवंश से यहाँ आशय मेवाड़ राजवंश से है।[56] इसी तरह मेवाड़ में यह जनश्रुति प्रसिद्ध है कि यहाँ के क्षत्रिय आदिपुरुष गुहिल का लालन-पालन उसकी पिता की मृत्यु के पश्चात एक ब्राह्मण ने किया और इसकी पुष्टि *मुँहता नैणसीरी ख्यात* का गुहिल राजवंश की उत्पत्ति संबंधी वृत्तांत भी करता है। ख्यात में भी उल्लेख है कि गुहिल की माँ ने अपने क्षत्रिय पुत्र को ब्राह्मण विजयादित्य को सौंपकर यह वचन दिया कि दस पीढ़ी तक उसके वंशज ब्राह्मण धर्म का निर्वाह करेंगे।[57] रावल समरसिंह की माता के चित्तौड़ में बनवाये गए श्यामपार्श्वनाथ मंदिर के शिलालेख वि.स.1335 (1278 ई.) में भी गुहिल को क्षत्रिय कहा गया है।[58] समरसिंह के ही समय आबू के शिलालेख वि.सं.1342 (1285 ई.) में भी गुहिलवंशी राजाओं को मूर्तिमान क्षात्र धर्म कहा गया है।[59] मोकल की रानी वाघेली गौरांबिका ने एकलिंगजी के समीप शृंगी ऋषि नामक स्थान पर एक बावड़ी बनवायी, जिसके वि.सं.1485 (1428 ई.) शिलालेख में भी महाराणा मोकल के दादा क्षेत्रसिंह (खेता) को क्षत्रिय वंश का मंडनमणि कहा गया है।[60] रायमल के समय नारलाई गाँव में बने एक मंदिर के वि.सं.1557 (1500 ई.) के शिलालेख में भी गुहिल, बप्पा, खुम्माण आदि राजाओं को क्षत्रिय ही कहा गया है।[61] चाटसू (जयपुर) के शिलालेख में भी यह उल्लेख कि गुहिल के वंश में राम के समान पराक्रमी और शत्रुओं का नाश करनेवाला ब्रह्मक्षत्र गुणयुक्त भर्तृभट्ट हुआ, लेकिन यहाँ 'ब्रह्मक्षत्र' का आशय केवल ब्राह्मण नहीं है, जैसाकि भंडारकर कहते हैं।[62] दरअसल यहाँ इसका आशय ब्रह्मत्व और क्षात्रत्व, दोनों गुणों से युक्त व्यक्ति है और ऐसे उल्लेख पुराणों में भी कई जगह मिलते हैं। स्पष्ट है कि दसवीं से लगाकर पंद्रहवीं सदी तक के शिलालेखों और अन्य अभिलेखों में मेवाड़ के राजवंश को सूर्यवंशी और क्षत्रिय कहा गया है। *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा* में भी रत्नसेन को रघुवंश से संबंधित कहा गया है।[63] जेम्स टॉड ने गुहिलवंश के वलभी से मेवाड़ आने की जो धारणा बनायी है, वह जैन साहित्य पर आधारित है। वलभी में शीलादित्य नाम के छह राजा हुए, लेकिन जैन लेखकों का ज्ञान अंतिम एक तक सीमित था, जिसकी विद्यमानता 766 ई. तक है। उन्होंने वलभी के इस शीलादित्य और मेवाड़ के शीलादित्य को एक मान लिया।[64] टॉड ने यह धारणा जैन यति मान के 1677 ई. में रचित काव्य *राजविलास* के आधार पर बनायी।[65] इससे पहले यह उल्लेख किसी अभिलेख में नहीं मिलता। मेवाड़ में

वलभी के शीलादित्य से अलग गुहिलवंशी शीलादित्य राजा हुआ, यह सामोली की वि.सं.703 (646 ई.) शिलालेख से प्रमाणित है।[66] इस तरह गुहिल वंश के वलभीपुर से मेवाड़ आने और उसके नागर ब्राह्मण कुल से उत्पन्न होने की धारणाएँ सही नहीं हैं।

आगरा में 1865 ई. में राजा गुहिल के 2000 से अधिक चांदी के सिक्कों की उपलब्धता[67], चाटसू (जयपुर) के शिलालेख में वहाँ गुहिलवंशी राजा भर्तृभट्ट के वंशजों के वि.सं.1000 (943 ई.) के आसपास शासक होने के उल्लेख और अजमेर जिले के नासूण गाँव के शिलालेख वि.सं. 887 (830 ई.)[68] के आधार पर इतिहासकार गौरीशंकर ओझा ने अनुमान किया है कि गुहिलवंशियों का शासन पहले आगरा के आसपास के क्षेत्र पर रहा होगा और वहीं से वे मेवाड़ में आए होंगे। उनका यह भी अनुमान है कि कदाचित् बहुत पहले मेवाड़ के किसी छोटे इलाके पर उनका शासन रहा और धीरे-धीरे उन्होंने इसका विस्तार किया होगा। यह भी संभावना है कि आरंभ में गुहिल यहाँ सामंत की हैसियत में रहे हों और धीरे-धीरे उन्होने अपना स्वतंत्र राज्य क़ायम किया।[69] गौरीशंकर ओझा की मेवाड़ राजवंश के सूर्यवंशी क्षत्रिय होने की धारणा युक्तिसंगत है और इस संबंध पर्याप्त पुरातात्त्विक साक्ष्य भी हैं, लेकिन मेवाड़ में उनके आगमन को लेकर पर्याप्त साक्ष्यों के अभाव में अभी भी अनिश्चय बरकरार है। ओझा ने भी लिखा है कि ''इसका ठीक उत्तर देना अशक्य है, क्योंकि इस विषय का संतोषजनक निर्णय करने के लिए आवश्यक साधन उपलब्ध नहीं हुए हैं'' लेकिन वे इस संबंध में निश्चित हैं कि यह राजवंश वलभी से मेवाड़ नहीं आया।[70]

अधिकांश उपलब्ध शिलालेखों में मेवाड़ राज्य की वंशावली गुहिल (गुहदत्त) से शुरू होती है, लेकिन उसके संबंध में कोई ख़ास विवरण इनमें नहीं है। 'श्रीगुहिल' के उल्लेखवाले आगरा में मिले सिक्कों[71], जयपुर के चाटसू के शिलालेख में गुहिल के वंशज भर्तृभट्ट की बारह पीढियों नाम[72] और अजमेर के खरवा के पास नासूण गांव के मिले शिलालेख[73] के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि गुहिल एक स्वतंत्र राजा था और उसका राज्य आगरा से लगाकर चाटसू तक विस्तृत था। गुहिल के बाद भोज, महेंद्र और नाग सतारूढ़ हुए, लेकिन उनके संबंध में कोई विवरण नहीं मिलता। नाग (नागादित्य) के बाद शीलादित्य (शील) सत्तारूढ़ हुआ, जिससे संबंधित वि.सं.703 (661 ई.) का सामोली का शिलालेख मिलता है।[74] गौरीशंकर ओझा ने उससे संबंधित एक सिक्के की उपलब्धता का भी उल्लेख किया है।[75] शीलादित्य के बाद अपराजित राजा हुआ, जिसके समय का एक वि.सं.718 (661 ई.) शिलालेख उपलब्ध है, जिसमें उल्लेख है कि उसने शत्रुओं का संहार किया और कई राजा उसके समक्ष सिर झुकाते थे।[76] अपराजित के बाद महेंद्र (द्वितीय) सतारूढ़

हुआ, लेकिन उसके संबंध कोई जानकारी नहीं मिलती। महेंद्र के बाद काला भोज मेवाड़ का राजा हुआ, जो इतिहास में बापा या बप्पा रावल के नाम से प्रसिद्ध है। उसके समय का एक सोने का सिक्का अजमेर में मिला है।[77] कुछ शिलालेखों में उसका नाम नहीं मिलता, लेकिन अधिकांश शिलालेखों, आख्यानों में उसका नाम है, जिनसे यह प्रमाणित है कि वह बहुत पराक्रमी था और उसने मोरियों से चित्तौड़ का किला लेकर अपने राज्य में मिलाया। बापा का समय 734 से 753 ई. तक रहा होगा।[78] बापा के बाद क्रमशः खुम्माण, मत्तट, भर्तृभट्ट और सिंह राजा हुए, जिनमें खुम्माण बहुत विख्यात था। उसका नाम मेवाड़ के परवर्ती राजाओं का विशेषण हो गया। सिंह के बाद खुम्माण (द्वितीय) महायक और खुम्माण (तृतीय) सत्तारूढ़ हुए। गौरीशंकर ओझा का अनुमान है कि खुम्माण (दूसरे) के समय बगदाद के ख़लीफ़ा अल्मामूं ने मेवाड़ पर आक्रमण किया होगा।[79] खुम्माण (तीसरे) का उत्तराधिकारी भर्तृभट्ट था, जिसके समय के दो शिलालेख–आहाड़ का वि.स. 999 (942 ई.) और प्रतापगढ़ का वि.सं.1000 (943 ई.) के मिले हैं।[80] कहते हैं कि मेवाड़ का भटेवर गाँव उसका बसाया हुआ है। भर्तृभट्ट के बाद उसका पुत्र अल्लट वि.सं.1008 (951 ई.) राजा हुआ, जो आलू रावल के नाम से भी प्रसिद्ध है। उसके शिलालेखों से लगता है कि आहाड़ उस समय बहुत प्रसिद्ध नगर था।[81] उसने हूण राजा की पुत्री हरियादेवी से विवाह किया था।[82] अल्लट का उत्तराधिकारी नरवाहन हुआ। परवर्ती गुहिल शासक शक्तिकुमार वि.स.1034 (977 ई). के शिलालेख में उसको कलाओं का घर, विजय निवास स्थान, क्षत्रियों का क्षेत्र आदि कहा गया है। नरवाहन का एक शिलालेख एकलिंगजी के लकुलीश में मिला है, जिसमें नरवाहन की प्रशंसा है।[83] नरवाहन के बाद सत्तारूढ़ शालिवाहन का शासन कम समय तक रहा। उसके वंशजों के अधीन जोधपुर का खेड़ इलाका था। उसके कुछ वंशज गुजरात के चालुक्य राजा सिद्धराज जयसिंह के सामंत भी रहे।[84] शालिवाहन के उत्तराधिकारी शक्तिकुमार के समय के तीन शिलालेख मिलते हैं– आहाड– वि.सं.1034 (977 ई), आहाड़ के जैन मंदिर का शिलालेख और आहाड़ ही के ही जैन मंदिर की सीढ़ियों में लगा शिलालेख है।[85] परवर्ती वंशावली अभिलेखों में उसका नाम मिलता है। शक्तिकुमार के बाद क्रमशः अंबाप्रसाद, शुचिवर्मा, नरवर्मा, कीर्तिवर्मा, योगराज और बैरट सत्तारूढ़ हुए। इनके नाम कुछ वंशावली अभिलेखों में हैं और कुछ में नहीं हैं।[86] वैरट के बाद क्रमशः हंसपाल, वैरीसिंह, विजयसिंह, अरिसिंह, चौड़सिंह और विक्रमसिंह सतारूढ़ हुए। इनमें कुछ के नाम भेराघाट (जबलपुर) वि.सं.1212 (1155 ई.) के शिलालेख में मिलते हैं।[87] विक्रमसिंह के बाद सत्तारूढ़ हुए रणसिंह (कर्णसिंह, कर्ण) का मेवाड़ के इतिहास में महत्त्व है। *एकलिंगमाहात्म्य* में उल्लेख है उसके समय मेवाड़ के गुहिल वंश की

दो शाखाएँ–राणा और रावल अलग हुईं।[88] उसके बाद राणा शाखा में जैत्रसिंह, तेजसिंह, समरसिंह और रत्नसेन हुए, जबकि रावल शाखा में माहप, राहप आदि हुए। रणकपुर और कुंभलगढ़ के शिलालेखों उनका उल्लेख मिलता है।[89] रणसिंह का उत्तराधिकारी क्षेमसिंह था, जिसका विवरण नहीं मिलता। क्षेमसिंह का उत्तराधिकारी उसका पुत्र सामंतसिंह हुआ, जिसके संबंध में दो शिलालेख मिलते हैं, जिनमें से एक वि.सं.1228 (1172 ई.) का मेवाड़ के जगत गाँव में देवी मंदिर में है और दूसरा वि.स.1236 (1174 ई.) का डूंगरपुर के सोलज गाँव के महादेव मंदिर में लगा हुआ है।[90] माउंट आबू लूणवसही मंदिर के शिलालेख में उल्लेख है कि उसका गुजरात के राजा के साथ युद्ध हुआ।[91] परवर्ती समरसिंह के समय के एक शिलालेख से यह प्रतीत होता है कि नाडोल के कीतू राजा ने उससे मेवाड़ छीन लिया, जो उसके उत्तराधिकारी कुमारसिंह ने वापस लिया।[92] नैणसी की ख्यात में यह भी उल्लेख है कि उसने अपना राज्य अपने छोटे भाई कुमारसिंह को देकर नया राज्य वागड़ क़ायम किया।[93] यह उल्लेख डूंगरपुर की ख्यात में भी मिलता है। कुमारसिंह गुजरात के राजा के सहयोग से कीतू से मेवाड़ वापस लेकर सत्तारूढ़ हुआ। कुमारसिंह के बाद क्रमश: मथनसिंह और पदमसिंह सत्तारूढ़ हुए, जिनके उल्लेख परवर्ती शिलालेखों में मिलते हैं। पद्मसिंह के बाद उसका पुत्र जैत्रसिंह उत्तराधिकारी हुआ, जिसने कई युद्ध किए। चीरवा के शिलालेख में उल्लेख है कि वह प्रलय मारुत की तरह था और उसने मालवा के परमारों के साथ भी युद्ध किया।[94] समरसिंह के समय के आबू के शिलालेख में लिखा है कि उसने नाडौल को जड़ से उखाड़ डाला।[95] चीरवे के शिलालेख में यह भी उल्लेख है कि भूताला के युद्ध में सुल्तान को भी पराजित किया।[96] जैत्रसिंह के समय शिलालेखों और हस्तलिखित पुस्तकों के आधार पर उसका समय वि.सं.1270 से 1309 (1213 से 1253 ई.) तक निश्चित किया जा सकता है।[97] जैत्रसिंह के बाद सत्तारूढ़ तेजसिंह को शिलालेखों में परम भट्टारक, महाराजाधिराज आदि कहा गया है।[98] गुजरात के राजा वीसलदेव के शिलालेख से लगता है कि तेजसिंह की रानी जयत्तल्लदेवी ने चित्तौड़ में श्यामपार्श्वनाथ का मंदिर बनवाया।[99] तेजसिंह के समय का वि.सं.1317 (1261 ई.) एक हस्तलिखित ग्रंथ पाटन गुजरात में मिलता है।[100] तेजसिंह के समय के दो शिलालेख– वि.सं.1322 (1265 ई.) का घागसा गाँव की बावड़ी पर और वि.सं.1324 (1267 ई.) का गंभीरी नदी के पुल की मेहराब पर मिले हैं।[101] तेजसिंह के बाद सत्तारूढ़ समरसिंह को आबू के वि.सं.1342 (1258 ई.) के शिलालेख तुरुष्क (मुसलमान) रूपी समुद्र में गहरे डूबे हुए गुजरात का उद्धार करनेवाला कहा गया है।[102] जिनप्रभ सूरि की रचना *विविधतीर्थकल्प* में उल्लेख वि.सं.1356 (1299 ई.) में समरसिंह ने अलाउद्दीन ख़लजी के भाई उलग़ ख़ाँ के गुजरात पर आक्रमण के

दौरान दंड भरकर मेवाड़ की रक्षा की।[103] समरसिंह के समय के सर्वाधिक शिलालेख मिलते हैं। उसके समय के शिलालेखों में चीरवा का 1273 ई., चित्तौड़ के 1274, 1287, 1299 और 1302 ई., आबू के 1285 और कांकरोली के 1299 ई. के शिलालेखों से यह प्रमाणित है कि समरसिंह 1273 से 1302 ई. तक जीवित था।[104] समरसिंह के बाद उसका पुत्र रत्नसेन सत्तारूढ़ हुआ। मेवाड़ के कुछ वंशावली अभिलेखों और जेम्स टॉड के इतिहास में समरसिंह के बाद कर्णसिंह के राजा होने का उल्लेख मिलता है और कुछ अभिलेखों में रत्नसेन का नामोल्लेख नहीं मिलता।[105] मुँहता नैणसी ने भी अपनी ख्यात में लिखा है कि– ''रतनसी (रत्नसेन) पदमणी के मामले में अलाउद्दीन से लड़कर काम आया''[106], लेकिन उसने एक जगह रत्नसेन को समरसी (समरसिंह) का पुत्र और दूसरी जगह अजैसी (अजयसिंह) का पुत्र और भड़ लखमसी का भाई लिख दिया। इन सब कारणों से कुछ इतिहासकारों ने समरसिंह के बाद सत्तारूढ़ उसके पुत्र रत्नसेन के सत्तारूढ़ होने को ही संदिग्ध कर दिया।[107] वस्तुस्थिति यह है कि कर्णसिंह समरसिंह से आठ पीढी पहले हुआ। वह लक्ष्मसिंह का पुत्र होने के स्थान पर उसका पिता था और सिसोदा की जागीर का स्वामी था। रत्नसेन का समय का एक शिलालेख दरीबा मंदिर में 1302 का मिलता है।[108] *एकलिंगमाहात्म्य*[109] और कुंभलगढ़ शिलालेख[110] में रत्नसेन का नाम मिलता है। इसी तरह उसके समय के दो तांबे के समय के सिक्के भी उपलब्ध हुए हैं[111], जिन पर उल्लेख अस्पष्ट है, लेकिन विशेषज्ञों की राय यह है ये रत्नसेन से संबंधित हैं।[112] समरसिंह के पुत्र रत्नसेन ने कुछ समय तक ही शासन किया था कि दिल्ली के सुल्तान ने चित्तौड़गढ़ पर आक्रमण किया और छह महीने के संघर्ष के बाद क़िला जीत लिया। अलाउद्दीन ख़लजी के समकालीन अमीर ख़ुसरो, अब्दुल मलिक एसामी और ज़ियाउद्दीन बरनी के वृत्तांतों में अनुल्लेख के कारण यह विवादित है[113] कि ख़लजी ने चित्तौड़गढ़ पर यह आक्रमण पद्‌मिनी के लिए किया, लेकिन समकालीन और परवर्ती ऐतिहासिक साक्ष्यों से इतना तो तय है कि 1303 ई. अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया और उस समय रत्नसेन वहाँ का राजा और पद्मिनी उसकी रानी थी। चित्तौड़ जीतने बाद उसने वहाँ का शासन अपने पुत्र ख़िज़्र ख़ाँ को दिया और बाद में निरंतर उपद्रवों के कारण ख़िज़्र ख़ाँ की जगह उसने क़िला जालोर के मालदेव सोनगरा को सौंप दिया। गुहिल वंश के ही सिसोदा नाम की एक छोटी जागीर के स्वामी हम्मीर ने 1326 ई. के आसपास दिल्ली सल्तनत के कमज़ोर होते ही मालदेव को परास्त कर मेवाड़ पर अपना आधिपत्य क़ायम कर लिया। इस तरह मेवाड़ में सिसोदिया राजवंश की बुनियाद रखी गई। उसने चित्तौड़गढ़ में अपना राज्याभिषेक करवाया और 'महाराणा' की उपाधि धारण की।

3.

पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण (1303 ई.) पर निर्भर कथा-काव्यों में इस बात के संकेत हैं कि घटना के समय मेवाड़ में विकेंद्रीकरण पर आधारित अपने की ढंग की अलग सामंतवावादी प्रशासनिक व्यवस्था थी। राजा के अधीन उसके सगोत्रीय और दूसरे लगभग बराबर की हैसियत के सामंत आदि थे, जो अपने-अपने क्षेत्रों में प्रशासन आदि के लिए उत्तरदायी थे।[114] भारत में सामंतवादी व्यवस्था की शुरुआत रामशरण शर्मा के अनुसार गुप्त साम्राज्य के पतन के साथ चौथी सदी में हुई और ग्यारहवीं-बारहवीं सदी में यह अपनी चरम परिणति तक पहुँची।[115] मेवाड़ सहित राजस्थान के कुछ इलाकों में इसकी मौजूदगी के साक्ष्य पाँचवीं सदी से ही मिलने लगते हैं। चित्तौड़गढ भ्रामरमाता के शिलालेख (450 ई.) सामंत की अपने स्वामी के प्रति स्वामिभक्ति का उल्लेख है।[116] बसंतगढ़ अभिलेख (625 ई.) में भी उल्लेख है कि आबू और उसके आसपास का क्षेत्र वर्मलात राजा के अधीन उसके सामंत राज्जिल के शासन में था।[117] सातवीं या आठवीं सदी के कल्याणपुर के एक शिलालेख में महाराज पद्र को गुहिल शासक का सामंत लिखा गया है।[118] मेवाड़ में बाद में भी सामंतों के लिए 'महाराज' का प्रयोग चलन में रहा है। चाटसू के शिलालेख (837 ई.) से भी पता लगता है कि वहाँ के गुहिल बड़े पराक्रमी थे और वे प्रतिहारवंशीय शासकों के सामंत थे।[119] नारलाई के शिलालेख (1171 ई.) में भी उल्लेख है कि इस भूभाग में कुमारपाल देव का शासन था और नाडोल में केल्हण, वोरीपद्यक में राणा लक्ष्मण और सोनाणा में ठाकुर अणसीह उसके सामंत थे।[120] *पाटनामा* की उपलब्ध प्रति बहुत बाद की है और उसका सिंघल द्वीप संबंधी वर्णन भी कुछ हद तक काल्पनिक है, लेकिन उसके विवरण में तत्कालीन भूराजस्व प्रशासन के संकेत मिलते हैं। कथाकार कहता है कि *देस को नाम सीघलदीप गाम मनोहरगढ़ राजा का नाम राजा समनसी पुवार बारा कोटड़ी को मालक बाराबसी गाम तो जादीरदारां का खालसा का गाम तीन सो सत्ताइस 327 जागीरादारा का एक सो चालीस धरमादा अगतालीस 41 अकंदर गाम पाँच से आठ 508 और देस महे करसाणी का हक अणीरीत दोई बेल एक सामद को राज महे हांसल लागे रुपिया सवा। जी को राजमहे उपजे खालसो जागीरी धरमादा सुदा दस लाकह ओगणीस हजार उपजे 1019000/- करसाणी हक का उपजता ओर समंदर की उपज नग माणक ... जिके गणती नहीं।*[121]

पद्मिनी प्रकरण के समय मेवाड़ के सामंत-जागीरदार अपनी शक्ति, स्वामिभक्ति और हैसियत के आधार पर पदानुक्रम व्यवस्था के अधीन रहे होंगे। हम्मीर रत्नसेन के बाद सत्तारूढ़ हुआ, लेकिन अलाउद्दीन के आक्रमण के समय वह रत्नसेन के अधीन सिसोदा की छोटी जागीर का सामंत था और उसने रत्नसेन की ओर से युद्ध में

सहभागिता की। *मुँहता नैणसीरी ख्यात* के अनुसार में इस युद्ध में रत्नसिंह और उसके कई कुटुम्बी सामंत काम आए।[122] घटना के लगभग दो सौ वर्ष बाद *बाबरनामा* में भी राजा के अधीन 104 रावल और राजा उपाधिधारी सामंतों का उल्लेख मिलता है।[123] मेवाड़ की इस सदियों पुरानी विकेंद्रीकृत प्रशानिक-राजनीतिक व्यवस्था को सबसे पहले कर्णसिंह (1620-28 ई.) ने अमरसिंह द्वितीय (1698-1710 ई.) औपचारिक रूप दिया गया।[124] सामंतों के राजवंश से संबंध और हैसियत के आधार तीन वर्ग किए गए। पहला वर्ग उमरावों का था, जिनको संख्या 16 के आधार पर 'सोला' कहा जाता था। इस तरह का उल्लेख *पाटनामा* में भी आता है। इसमें कहा गया है कि *रावल श्री रतनसेणजी सोला ही प्रकारा के मंडलीक री नीति परमाणे राज करे छत्तीस ही पवण सुखिया रहे गढ़ चत्र राजा रावल श्री रघुवंशी।*[125] राजा उच्च सम्मान प्राप्त इन सामंतों से युद्ध, संधि आदि मामलों में परामर्श करता था। *पाटनामा* में इस तरह के उल्लेख मिलते हैं। अलाउद्दीन जब अपने प्रतिनिधि के माध्यम से पद्मिनी देने का प्रस्ताव करता है, तो रत्नसेन अपने सामंतों से परामर्श करता है। आख्यानकार कहता है कि- *पछै श्री हुजूर ने चवदे मिसल का उमरावाँ ने बुलाया ओर अमराव ओर उमराव चौरासी छत्रपति अठारा 18 सगला हे एकठ करने दरीखानो कीदो।*[126] दूसरी श्रेणी को 32 की संख्या के आधार पर 'बत्तीसा' कहा जाता है। इस श्रेणी के सामंतों की संख्या महाराणा के विवेकानुसार घटती-बढ़ती रहती थी। तृतीय श्रेणी के सामंत 'गोल के सरदार' कहलाते थे और इनकी संख्या सौ के आसपास होती थी। महाराणा इनकी सेवाओं के आधार पर इनको द्वितीय श्रेणी में लेकर पुरस्कृत करते थे।[127] मेवाड़ के सामंतों में चौथी श्रेणी भोमियाओं की थी और इस तरह की श्रेणी केवल मेवाड़ में थी। इनको प्रदत्त भूमि अद्यापि थी, अर्थात् इस भूमि पर इनका स्वामित्व स्थायी था। इस श्रेणी के सामंत करहीन भूस्वामी थे। इनको भूमि के लिए पट्टा और उसका नवीनीकरण कराने की आवश्यकता नहीं थी और इन पर ज़ब्ती भी नहीं भेजी जाती थी। युद्धकाल में यथावश्यकता ये अपनी सैन्य सेवाएँ देते थे।[128] महाराणा अपने विवेकानुसार सैन्य या अन्य सेवाओं के लिए सामंतों को भूमि देकर पुरस्कृत भी करता था। उत्कृष्ट सेवाओं के लिए बाठरड़ा आदि के सामंतों को महाराणा जगतसिंह ने नयी जागीरें दीं।[129] राजा ब्राह्मण, मंदिर, कर्मचारी, शिल्पकार, चित्रकार, वैद्य, चारण, भाट, बड़वा आदि को भी वेतन के बदले जागीरें देता था, लेकिन उनका इन पर मौरूसी अधिकार नहीं था।[130] पट्टों में दी गई भूमि, गाँव और इसके बदले ली जाने वाली सैन्य सेवा या चाकरी, उपत और रेख का उल्लेख होता था।[131] मेवाड़ में प्रशासन में महामात्य, मंत्री, आमात्य और मुद्रा व्यापार मंत्री जैसे पद भी होते थे। चित्तौड़ के शिलालेख (1266 ई.) में उल्लेख है कि वि.सं.1309 में मेवाड़ के शासक

तेजसिंह का महामात्य समुद्धर था और वि.सं.1316 मेवाड़ में तल्हण महामात्य और रामेश्वर मंत्री पद पर काम कर रहे थे।[132] इसी तरह रत्नसेन के समय एक मात्र उपलब्ध दरीबा के शिलालेख (1302 ई.) में उल्लेख है कि महणसिंह उसका मुद्रा व्यापार मंत्री था।[133] राजा को दहेज में प्राप्त सामग्री राज्य धन होती थी और यह राज्य कोष में जमा होती थी। *पाटनामा* इस तरह का उल्लेख आता है। पाटनामाकार लिखता है कि- *पछै माहाराणी श्री पदम्मणीजी की डाईचा की चीजां भंडार में जमा होबा लागी।... ।*[134]

कुछ विद्वानों ने इस व्यवस्था को यूरोपीय 'फ़्यूडलिज़्म' या 'सामंतवाद' में सीमित करने का प्रयास किया है, जो सही नही है।[135] यह व्यवस्था यूरोपीय 'फ़्यूडल सिस्टम' से कुछ हद तक 'अलग' थी। दरअसल सबसे पहले कर्नल टॉड ने हैलम की रचना *मिडल एजेज़* (1824) में वर्णित पश्चिमी यूरोपीय फ़्यूडल व्यवस्था से राजस्थान की तुलना करते हुए पाया कि फ़्यूडेलिज्म के वर्णित छह में से चार तत्त्व राजस्थान में विद्यमान हैं।[136] बाद में रामशरण शर्मा ने मंदिरों और ब्राह्मणों को दिए गए भूमि अनुदानों को आधार बनाकर भारत में सामंतवाद का प्रसार सिद्ध करने की चेष्टा की और यह कुछ हद तक मान्य भी हो गया।[137] गत सदी के सातवें दशक में इस धारणा का खंडन करते हुए इतिहासकार हरबंश मुखिया ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि यूरोप की तरह भारत में कभी फ़्यूडेलिज़्म की अवस्था नहीं आई। उन्होंने कहा कि कृषि दासता की जैसी अवस्था यूरोप में थी, भारत में कभी नहीं रही। दरअसल यहाँ किसान की उत्पादन की प्रक्रिया पर कभी कोई बाहरी नियंत्रण नहीं रहा। यहाँ का किसान, आर्थिक रूप (वैधानिक नहीं) से स्वतंत्र रहा है। खाद की उपलब्धता, कृषि तकनीक के विकास, एक वर्ष में एकाधिक फ़सलें, सिंचाई की उन्नत तकनीक और जीवन यापन के निम्न स्तर के कारण यूरोप की तुलना में यहाँ उत्पादन अधिक था और इस कारण किसान के पास जीवन निर्वाह के अलावा राजस्व के रूप में देने के लिए पर्याप्त अधिशेष था और इस कारण यहाँ दासता या बाधित श्रम का व्यापक चलन कभी नहीं हुआ।[138] दरअसल राजस्थान और मेवाड़ की यह व्यवस्था अपने ढंग से विकसित हुई और यह यूरोप सहित शेष भारत से कुछ हद तक अलग थी। टॉड को राजस्थान से लगाव था और इस कारण उसने खींचतान कर यूरोपीय और राजस्थान की सामंती व्यवस्था में समानताएँ खोज लीं। अल्फ्रेड लयाल का मानना कि जागीरों और केंद्रीय सत्ता का यह संगठन राजपूत जाति और उसके गोत्र संगठन पर आधारित था और गोत्र का प्रमुख राजा एवं अन्य प्रमुख लोग राजा के अधिकार से शासक थे[139], इस संबंध में पूरा सच नहीं है। दरअसल मेवाड़ मे आरंभ से राजा के सगोत्रीय के अलावा दूसरी गोत्र के भी उमराव श्रेणी के सामंत रहे हैं। इसी तरह

रामशरण शर्मा और हरबंश मुखिया ने सार्वदेशिक सामंतवाद और उसके खंडन की अपनी धारणाएँ बनायीं, लेकिन राजस्थान और उसमें भी ख़ासतौर पर मेवाड़ की इस प्रशासनिक और भूराजस्व व्यवस्था की अपनी विशेषताएँ हैं। इस व्यवस्था में शासक कुछ हद तक 'बराबर में प्रथम' जैसा था। राजा और उसके अधीनस्थ सामंत इस व्यवस्था में एक-दूसरे पर निर्भर थे। राजा अपने अधीनस्थ सामंतों का परामर्श मानने के लिए बाध्य था, तो अधीनस्थ सामंत भी उस के आदेशों से बँधे हुए थे और उनकी अनुपालना उनके लिए कर्त्तव्य जैसी थी।[140] इसकी पुष्टि इस क्षेत्र से अच्छी तरह वाकिफ़ ब्रिटिश प्रशासक जे. सदरलेंड ने भी की है।[141]

मेवाड़ में सत्ता की विकेंद्रीकृत सैन्य सेवा (चाकरी) के बदले सामंतों को दी गयी भूमि पर आधारित थी, जो रामशरण शर्मा की भारत में सामंतवाद के प्रसार की धारणा से मेल नहीं खाती। रामशरण शर्मा के अनुसार सामंती व्यवस्था या राजनीतिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण ब्राह्मणों और मंदिरों को दिए गए भूमि अनुदानों से हुआ। उनके अपने शब्दों में "भारत में राजनीतिक सत्ता का विकेंद्रीकरण वह नहीं था, जो यूरोप में था। यहाँ यह परिवर्तन सैनिक सेवा प्रदान करनेवालों को दी गई जागीरों का परिणाम नहीं था। यहाँ तो विकेंद्रीकरण की प्रवृत्ति का सबसे बड़ा कारण ब्राहमणों और मंदिरों को भूमिदान देना था।"[142] उनकी यह धारणा उनके अध्ययन के क्षेत्र बंगाल, बिहार आदि क्षेत्रों के संबंध सही हो सकती है, लेकिन मेवाड़ के संबंध में यह धारणा सही नहीं है। यहाँ मंदिरों और ब्राह्मणों को भूमि अनुदान के उल्लेख भी परवर्ती कई शिलालेखों में हैं और ये निरंतर उपनिवेशकाल तक मिलते हैं, लेकिन ये अनुदान केवल मंदिरों के रख-रखाव और ब्राह्मणों को जीविका के लिए दिए गए हैं। मेवाड़ में जैसाकि यूरोपीय सामंती व्यवस्था से तुलना करते जेम्स टॉड ने कहा है कि सामंतवादी व्यवस्था का प्रसार व्यापक रूप सैनिक सेवा या चाकरी करने वालों को दिए गए ग्रास (जागीर) से हुआ। ये सैन्य सेवा देने वाले अधिकांश लोग राजा के रक्त सम्बन्धी कुटुम्ब वाले लोग थे। उपनिवेशकाल में जारी इस प्रथा के सामंतों के बारे में कर्नल जेम्स टॉड ने लिखा है कि "सोलह उमरावों से चड़स भूमि के स्वामित्व तक सभी सामंत राजा के साथ रक्त सम्बन्ध अर्थात् उसके वंश के साथ सम्बन्धित होने का दावा करते हैं।"[143] यह इस बात से भी प्रमाणित है कि मेवाड़ में ब्राह्मणों और मंदिरों को भूमि अनुदान तो दिए गए, लेकिन ये सैन्य सेवा देने वाले सामंतों की दिए भूमि अनुदानों की तुलना में बहुत सीमित संख्या में थे। राज्य की अधिकांश भूमि उपनिवेशकाल में भी सैन्य सेवा देने वालों के पास थी। उपनिवेशकाल में राजस्थान के इतिहासकार गौरीशंकर ओझा ने जो राज्य की भूमि का विवरण दिया है उसमें से सबसे अधिक 52% भूमि जागीर और 26% खालसा की तुलना में केवल

22% भूमि ही शासनिक थी।[144] इससे सिद्ध है कि अधिकांश भूमि अनुदान यहाँ यूरोप की तरह सैन्य सेवा के लिए ही दिए गए। यही व्यवस्था-रत्नसेन पद्मिनी प्रकरण के समय भी रही होगी, क्योंकि सभी ऐतिहासिक कथा-काव्यों में राजा का अपने कुटुम्बी सामंतों सहित शासन का उल्लेख आया है। राज भोजनादि के लिए निमंत्रण पर अपने भाई-बेटों और कुटुम्बियों के यहाँ जाता है। *पाटनामा* में यह उल्लेख आया है।[145]

मध्यकालीन मेवाड़ और राजस्थान के अन्य राज्यों- मारवाड़, बूंदी आदि में सैन्य सेवा या चाकरी के बदले दी गयी भूमि को 'ग्रास' कहा जाता था। 'जागीर' शब्द का चलन यहाँ मुग़लकाल में हुआ। कर्नल जेम्स टॉड ने भी इसका यही अर्थ करते हुए इसकी व्युत्पत्ति को केल्टिक भाषा के शब्द 'ग्वास' (gwas) शब्द से जोड़ा है, जिससे 'वेशल' शब्द निकला है, जिसका अर्थ अधीनस्थ जागीरदार है।[146] मेवाड़ में पट्टों में यह उल्लेख होता था कि 'ग्रास मया कीधो' (यथा- *महाराज कुअर श्री अमरसिंघजी आदेशात् सिसोदिया कुशलसिंघ वीजावत कस्य ग्रास मया कीधो। संवत 1752 री उनांला थी।*)[147] इसका लक्ष्यार्थ यही है कि राजा सैनिक सेवा या चाकरी के बदले सामंत को भरण-पोषण के लिए भूमि प्रदान करता है। मेवाड़ में अधीनस्थ सरदार के लिए 'ग्रास्या' शब्द अभी भी चलन में है।[148] घाणेराव के शिलालेख (1156 ई.) सामंत के लिए 'भुक्ति' और उसके भाग के लिए 'वाट' शब्द का प्रयोग हुआ है।[149] इसी तरह बिजोलिया के शिलालेख (1170 ई.) में सामंत के लिए 'भुक्ति' और और भूमि अनुदान को 'डोहली' कहा गया है।[150] पद्मिनी संबंधी ऐतिहासिक कथा-काव्यों में 'ग्रास' शब्द का ही प्रयोग हुआ है। यह शब्द इन कथा-काव्यों में गोरा और बादल, दो सामंतों के संदर्भ में एकाधिक बार प्रयुक्त हुआ है। दरअसल अलाउद्दीन के आक्रमण के समय गोरा और बादल, दोनों सामंत राजा से नाराज़ थे और वे उसके दिए ग्रास (जागीर) उपभोग नहीं कर रहे हैं। *गोरा-बादल कवित्त* में एक जगह उल्लेख है कि *वरस पाँच तस विखउ राव सूं कुरखे चलई। ग्रामग्रास नवि लीइ कुण गु गुण मोहि उथलई।*[151] हेमररतन *गोरा-बादल पदमिणी चउपई* में एक जगह कहता है कि *राउ थकी रिसाणा रहइँ, ग्रास न कांइ नृप नउ ग्रहई। घरे रहइँ न करई चाकरी, रतनसनि मूंक्या परिहरि॥* इसी तरह बादल की माँ भी उसको समझाते हुए कहती है कि *ग्राम ग्रास को नहीं नृप तणउ आपए खरचा करऊ आपणउ।*[152] वह उसको समझाती है कि *घणा जिके खाइं छइ ग्रास सुभट रह्या छइ उदास* अर्थात् ऐसे योद्धा बहुत हैं, जो ग्राम ग्रास खा रहे हैं, मतलब राजा द्वारा दिए ग्रास या जागीर उपभोग कर रहे हैं, लेकिन वे इस प्रकरण में उदासीन हैं।[153] स्पष्ट है कि रत्नसेन के समय मेवाड़ में सैन्य सेवा या चाकरी के बदले ग्राम ग्रास के रूप में सामंती व्यवस्था का चलन था और राजा की नाराज़गी पर ग्रास वापस लिया जाता था या सामंत भी

राजा से नाराज़गी या मुनमुटाव पर किसी कारण से ग्रास छोड़ देता था। लब्धोदय लिखता है कि *तजी सेवा रावल तणी किणहि कुबोल विशेष। / चाकर गयर थका रहे ग्रास गोठ तजि रेख।*[155] चाकरी या सैन्य सेवा के बदले भूमि की जगह रोकड़ धन देने का भी प्रावधान था। *खुम्माणरासो* में यह उल्लेख आता है। उसमें गोरा-बादल के संबंध में कहा गया है कि *रोकड़ ग्रास नहीं को गांम। घरे रहे न करे चाकरी रतनसेन मूंक्या परिहरि।*[156]

मेवाड़ की देशज प्रशासनिक व्यवस्था के अंतर्गत बहुत पहले से राज्य के प्रशासन के अधीन सीधे आने वाली खालसा भूमि के अलावा सैन्य सेवा के बदले दी गई जागीरदारी के भूमि दो तरह की थी। एक जागीरदारी वह भूमि थी, जो वंशानुगत राजवंश के कुटुम्बी सामंतों के पास थी और दूसरी सैन्य सेवा के बदले बाहर से आए राठौड़, झाला, पँवार, डोडिया, सोलंकी आदि सामंतों के अधीन थी। सबसे पहले ग्यारहवीं-बारहवीं सदी में यहाँ बाहर से आए हटुंडिया और ड्योढिया राठौड़ रहे। चौदहवीं और फिर पंद्रहवीं सदी में यहाँ कई बाहरी राजपूतों को सैन्य सेवा के बदले जागीरें दी गईं। इसको काले पट्टे की जागीर कहते थे और इसको बेचा और गिरवी नहीं रखा जा सकता।[157] सैन्य सेवा के बदले सगोत्रीय के अलावा दूसरे गोत्र के योद्धाओं को 'ग्रास' (जागीर) देने की परम्परा रत्नसेन-पद्मिनी प्रकरण के समय में भी थी। विवेच्य अधिकांश कथा-काव्यों में गोरा-बादल, दोनों शासक राजवंशी गुहिल सामंतों से अलग चौहान थे, जिन्हें सैन्य सेवा के बदले जागीरें दी गई थीं। *पाटनामा* में उल्लेख है कि- *पछै गोराजी, बादलजी, फातियाजी, जेतमलातजी च्यार ही सरदारां ने श्री हुजूर हत खरच रे बदले जागीरी बकसी।*[158] अस्थायी सैन्य सेवा और प्रबंध में सहयोग के लिए भोमिया और ग्रासियों के पास जागीरें थीं। इनके अलावा माफ़ी और 'उदक' अर्थात् धर्मार्थ दी गई कुछ जागीरें भी थीं, जिनको 'सासण' और 'डोली' की जागीरें कहते थे।[159] चाकरी के बदले विश्वस्त सेवकों को भी जागीरें दी जाती थीं। *पाटनामा* में पद्मिनी के साथ आए सेवक रामा और कला को भी रत्नसेन ने जागीरें दीं। *पाटनामा* में लिखा गया है कि- *पदमणीजी का घरू लोक रामो कलो दोवाई है एक एक लाख को रूजक बकस्यो। रामा कला हे सरदार जागीरदार कर बरजिया।*[160]

खालसा भूमि पर काश्तकारों का अधिकार था और आमतौर पर यदि कोई असामान्य बात नहीं हो, तो उनको इससे बेदख़ल नहीं किया जाता था। सर हेनरी इलियट की यह धारणा निराधार है कि यहाँ पट्टेदारी जैसी कोई चीज नहीं थी।[161] इतिहासकर मोहम्मद हबीब की स्पष्ट मान्यता है कि मध्यकाल में ''किसान अपनी ज़मीन का शरह मुअय्यन मालिक होता था, उसे बेदख़ल करने का प्रश्न ही नहीं

था।''[162] खालसा भूमि पर राजस्व लगता था और इस पर समय-समय पर यथावश्यकता अन्य करों का प्रावधान किया जाता था। इस काश्त भूमि पर कुछ हद तक इसके काश्तकार को वैधानिक अधिकार भी था। *पाटनामा* में 'करसाणी हक' की ज़मीन और उस पर लगनेवाले 'हांसल' (राजस्व) का उल्लेख मिलता है।[163] किसान अपनी जोत की ज़मीन के लगभग मालिक जैसे थे। यह व्यवस्था बहुत पहले से चली आती थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कहा गया है *करदेभ्यः कृतक्षेत्राण्येकपुरुषकाणि प्रयच्छेत॥ अकृतानि कर्तृभ्यो नादेयात्॥* अर्थात् लगान आदि देनेवाले किसानों के लिए, जो खेती के लिए उपयोगी ठीक तैयार की हुई ज़मीन दी जावे, वह जिस पुरुष को दी जावे उस ही के जीवनकाल तक उसके पास रह सकती है, तदनंतर राजा को अधिकार है कि वह ज़मीन को, उस पुरुष के पुत्रादि को देवे, अथवा अन्य किसी को। जिन लगान आदि देनेवाले किसानों को बंजर भूमि दी गई है, और उन्होंने अपने परिश्रम से उसे खेती योग्य बनाया है; राजा को चाहिए कि उन किसानों से उस ज़मीन कभी न लेवे। ऐसी ज़मीनों पर किसानों को पूर्ण अधिकार होना चाहिए।[164] हरबंश मुखिया की यह धारणा यहाँ के संबंध में सही नहीं है कि काश्तकार को भूमि पर वैधानिक अधिकार नहीं है[165], उन्हें एक नियत शुल्क राशि देकर इसको बेचने-गिरवी रखने का अधिकार भी था।[166] यह प्रावधान भी *मनुस्मृति* में ही था। उसमें *स्थाणुच्छेदस्य केदारमाहुः शाल्यवतो मृगम्* अर्थात् जो खुत्थ (ठूंठ पेड़) काट (कर भूमि को समतल करके खेत बनाने) वाले का खेत मानते हैं और पहले बाण मारनेवाले का मृग मानते हैं।[167] खालसा से प्राप्त होने वाला राजस्व राज्य की मुख्य आय थी। मेवाड़ में किसानों से आमतौर पर राजस्व के रूप में उपज का ¼ से लगाकर ½ लिया जाता था। कभी-कभी यह जातियों के अनुसार भी लिया जाता था और यह बदलता भी रहता था।[168] यह राजस्व व्यवस्था भी पहले से चली आती थी। *शुक्रनीति* में प्रावधान था कि *तडागवापिकाकूपमातृकाद्देव मातृकात्। देशान्नदीमातृकात् तु राजानुक्रमतः सदा॥ तृतीयांशचतुर्थांश मर्द्धांशंतु हरेत् फलम्। षष्ठांशमूषरात् तद्वत् पाषाणादिसमाकुलात्॥* अर्थात् राजा क्रमानुसार हमेशा तालाब, बावड़ी या कुँए से सींचे जानेवाले खेतों की उपज का तीसरा हिस्सा, वर्षा के द्वारा सिंचाई होनेवाले खेतों की उपज का चौथा भाग तथा नदी से सिंचाई होनेवाले खेतों की उपज का आधा हिस्सा और बंजर या पथरीली धरती का उपज का छठा हिस्सा मालगुजारी के रूप में ग्रहण करे।[168] इसी तरह यूरोपीय सामंतवाद से अलग यहाँ काश्तकारों को एक से दूसरी जगह स्थानांतरित होने के आधिकार था। यदि सामंत इस संबंध में आपत्ति करते थे, तो राज्य इसमें हस्तक्षेप करता था।[169]

रत्नसिंह-पद्मिनी प्रकरण के दौरान प्रदत्त भूमि पर सामंत का अधिकार अंतिम

या वंशानुगत नहीं था। यह व्यवस्था भी बहुत पहले से थी। प्रकरण से सम्बन्धित सभी ऐतिहासिक कथा-काव्यों में उल्लेख आता है कि गोरा-बादल राजा से नाराज़गी के कारण ग्रास (जागीर) छोड़ कर क़िले में ही रह रहे थे। इससे यह सिद्ध है कि या तो उनकी जागीर ज़ब्त की गई या उन्होंने इसे स्वेच्छा से छोड़ दिया। दरअसल मेवाड़ में सामंत को प्रदत्त भूमि या जागीर पर उसका वंशानुगत अधिकार नही था। सामंत की मृत्यु पर उसके उत्तराधिकारी को एक निश्चित शुल्क, मतलब नज़राना देकर कुछ औपचारिकताओं के बाद भूमि के पट्टे का नवीनीकरण करवाना होता था। इस तरह का प्रावधान भारत में और कहीं कम मिलता है। प्रथा यह थी कि सामंत की मृत्यु के बाद उसकी जागीर पर आठ-दस अधिकारियों-सैनिकों का एक दल भेजा जाता था। इस दल को तदर्थ नज़राना जमा करा देने पर उत्तराधिकारी को दरबार में बुलाया जाता, जहाँ उसे तलवार बँधाई जाती और जागीर का नया पट्टा प्रदान किया जाता था। यदि सामंत निस्संतान मरता, तो उसके वंश में से किसी को उत्तराधिकारी बनाकर यह रस्म अदा की जाती।[170] जागीर ज़ब्त करने का राजा का यह अधिकार पारम्परिक था, लेकिन सामंतों के शक्तिशाली होते जाने के कारण यह औपचारिक रह गया था और कुछ सामंतों को इसमें छूट भी प्रदान कर दी गई थी।[171] सामंत अपने क्षेत्रों में प्रशासन, न्याय आदि के लिए स्वतंत्र थे। आमतौर पर जागीर के प्रशासन आदि में कुछ हद तक सामंत अपने विवेकानुसार कार्यवाही करते थे, लेकिन राज्याज्ञाओं की अनुपालना उनके लिए बहुत ज़रूरी था। आज्ञाओं की अवमानना या पालना नहीं करने की स्थिति में ज़ब्ती दल भेजा जाता था, जो तब तक सामंत के यहाँ रहता था, जब तक आज्ञाओं की पालना सुनिश्चित नहीं हो जाती। टॉड के अनुसार ''किसी भी सामंत को राज्य दरबार में उपस्थित होने के लिए बाध्य करने अथवा किसी काम सम्बन्धी कार्यवाही में उसके द्वारा किए जा रहे विलंब को समाप्त कर शीघ्र कार्यवाही करवाने के लिए यही एकमात्र उपाय है।''[172]

मेवाड़ की विकेंद्रीकृत राजनीतिक-प्रशासनिक व्यवस्था मे उत्तराधिकार में ज्येष्ठता का सिद्धांत पद्मिनी प्रकरण के समय भी प्रभावी था। उत्तराधिकार की इस व्यवस्था के संबंध में *शुक्रनीति* में कहा गया है कि *नानायकं क्वचिदपि कर्तुतुमीहेत भूमिपः। राजकुले तु बहवः पुरुषाः यदि संति हि॥ तेषु ज्येष्ठो भवेद्राजा शेषास्तत्कार्य्यसाधकाः। गरियामसो वराः सरवसहायेभ्योऽभिवृद्धये॥* अर्थात् राजा कभी भी बिना राजा के राज्य को रखने की अभिलाषा न करे। यदि किसी राजकुल में से एक से अधिक उत्तराधिकारी हों, तो उनमें से जो सबसे बड़ा हो, राजगद्दी का वही अधिकारी हो, शेष उसके सहकारी होंगे। राज्य की समृद्धि के लिए सहायकों की अपेक्षा ज्येष्ठ ही श्रेयकर होते हैं।[173] मेवाड़ की प्रशासनिक व्यवस्था के दीर्घकाल तक क़ायम रहने में

इस ज्येष्ठता के सिद्धान्त की मुख्य भूमिका है। ख़ास बात यह है कि सदियों तक इस पर कठोरता से अमल भी होता रहा है। इसका आशय है कि ज्येष्ठ उत्तराधिकारी जागीर का मालिक होता है और दूसरे भाइयों को भरण-पोषण के लिए कुछ गाँव दे दिये जाते हैं। साठ से अस्स्सी हजार वार्षिक आय वाली जागीर में से पाँच हजार तक की आय वाला गाँव उसके हिस्से में आता है। टॉड ने लिखा है कि जो ''सतारूढ़ होता है, और वही जागीर का मालिक भी होता है। दूसरे वहीं दरबार या विदेशों में अपना भाग्य आजमाते थे।[174] गौरीशंकर ओझा के अनुसार समरसिंह के बाद ज्येष्ठ होने के कारण रत्नसेन सत्तारूढ़ हुआ, जबकि उसके छोटे भाई कुंभकर्ण ने नेपाल में जाकर अलग और नया राज्य क़ायम किया।[175] कुंभा की हत्या करने वाले उदयसिंह के बेटे सूरजमल रायमल के सत्तारूढ़ होने बाद भी सत्ता लेने का उद्योग करते रहे, लेकिन अंतत: उन्होंने कांठल में नया राज्य प्रतापगढ क़ायम किया। *पाटनामा* में यह विवरण अलग तरह से आया है। इसके अनुसार कुंभकर्ण ज्येष्ठ था, लेकिन उसकी देह खंडित थी, इसलिए ज्योतिषियों के परामर्श पर उससे कनिष्ठ रत्नसेन सत्तारूढ़ हुआ।[176] मेवाड़ से बाहर जाकर भूमि पर आधिपत्य करने और नए राज्य क़ायम करने के और भी कई उदाहरण मिलते हैं। ज्येष्ठता के उत्तराधिकार सिद्धान्त में भूमि और सैन्य सेवा का विभाजन नहीं होता, जिससे जागीर क़ायम रहती है। टॉड ने इस प्रथा की सराहना करते हुए लिखा है कि ''उत्तराधिकार में ज्येष्ठता का सिद्धान्त सामंती व्यवस्था की आधारशिला है।''[177]

4.

पद्मिनी विषयक ऐतिहासिक कथा-काव्यों में क्षत्रियत्व एक प्रमुख जीवन मूल्य के रूप में उभरकर आता है और ये कथा-काव्य इस जीवन मूल्य को चरितार्थ करते भी प्रतीत होते हैं। आरंभ में क्षत्रिय एक वर्ण था, लेकिन धीरे-धीरे शौर्य, पराक्रम, युद्ध, शरणागति और प्रजा की रक्षा आदि जीवन मूल्यों के समूह को धारण करने वाली जाति के रूप में इसकी पहचान होने लगी। *महाभारत* के शांति पर्व में विस्तारपूर्वक क्षत्रियत्व की सराहना की गई है।[178] *गीता* में क्षत्रिय के कर्मों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि *शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्। / दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥* अर्थात् वीरता, तेज, धैर्य, दक्षता, युद्ध से पलायन न करना, दान और ईश्वरभाव (राजा या स्वामी होने का भाव) क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं।[179] *मनुस्मृति* में उल्लेख है कि *ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि। सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्तव्यं परिरक्षणम्॥* अर्थात् शास्त्रानुसार वेदों को प्राप्त (उपनयन संस्कार से युक्त) क्षत्रियत्व (अभिषिक्त राजा) न्यायपूर्वक (अपने राज्य में रहनेवाली) सब

प्रजा की रक्षा करे।[180] *शुक्रनीति* में भी क्षत्रिय के लक्षण स्पष्ट करते हुए लिखा गया है कि *सद्रक्षणं दुष्टनाशः स्वांशादानन्तु क्षत्रिये* अर्थात् सज्जनों की रक्षा, दुष्टों का विनाश तथा जीविका के लिए कर ग्रहण करना- ये तीन कर्म क्षत्रियों के अधिक हैं।[181] *याज्ञवल्क्यस्मृति* के अनुसार *प्रधानं क्षत्रिये कर्म प्रजानां परिपालनम्* अर्थात् क्षत्रिय का प्रधान कर्म प्रजा का परिपालन है।[182] *याज्ञवल्क्यस्मृति* में युद्ध में मृत्यु प्राप्त योद्धा को स्वर्ग मिलने की बात कही गई है। इसमें कहा गया है कि *य आहवेषु वध्यन्ते भूम्यर्थमपरांगमुखाः। अकूटैरायुधैर्यान्ति ते स्वर्गं योगिनो यथा।* अर्थात् जो भूमि के लिए युद्ध में परांगमुख न होकर तथा विष से बुझे अस्त्रों से नहीं लड़ते, वे मारे जाने पर जैसे योगी स्वर्ग जाते हैं, वैसे ही स्वर्ग जाते हैं।[183] इसी तरह *याज्ञवल्क्यस्मृति* में शरणागत की रक्षा को क्षत्रिय का लक्षण माना गया है। इसमें कहा गया है कि *तवाहंवादिनं क्लीबं निर्हेतिं परसंगतम्। न हन्याद्विनिवृतं च युद्धप्रेक्षणकादिकम्॥* अर्थात् 'मैं आपका हूँ' ऐसा कहने वाले, हिजड़े, शस्त्रहीन, दूसरे से युद्ध कर रहे, युद्ध से विरत तथा युद्ध के दर्शक आदि को न मारें।[184] आगे चलकर मध्यकाल में युद्ध में मरना-मारना क्षत्रियत्व का पर्याय हो गया। *पृथ्वीराजरासो* में कहा गया है कि *रजपूत मुक्ति खिति खग्गगिरि* अर्थात् शुद्ध क्षत्रिय वही है, जो खड्ग द्वारा युद्ध भूमि में कट जाने से मुक्ति पाता है।[185] अल्बेरुनी (1017-31) के अनुसार "वह प्रजा का शासक है। उनकी रक्षा करता है, क्योंकि उसका जन्म ही इसके लिए हुआ है।"[186] अल्बेरुनी ने एक जनश्रुति का उल्लेख किया है, जो क्षत्रियों के लिए नियत कार्यों की ओर संकेत करती है। उसके अनुसार "हिंदू बताते हैं कि प्रारंभ में शासन और युद्ध संबंधी सभी अधिकार ब्राह्मणों के पास थे। लेकिन इससे देश में विशृंखलता पैदा हो गयी। क्योंकि वे अपने शास्त्रों के अनुसार शासन चलाते थे। ये शास्त्र बदमाशों और दुष्टों के दमन के लिए अपर्याप्त थे। उनके हाथ से धार्मिक अधिकार निकलते जा रहे थे, इसलिए वे ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने उन्हें मात्र वे कार्य दिए, जो वे संप्रति संपादित करते थे। ब्रह्मा ने शासन और युद्ध का अधिकार क्षत्रियों को दिया।"[187]

क्षत्रियत्व का शौर्य, पराक्रम, युद्ध आदि जीवन मूल्यों का यह समूह पद्मिनी प्रकरण के समय पूर्ण विकसित रूप में मौजूद था। अधिकांश तत्संबंधी कथा-काव्यों में इसकी चर्चा भी हुई है और यह इनके चरित्रों के आचरण का ज़रूरी हिस्सा भी है। हेमरतन ने *गोरा-बादल पदमिणी चउपई* में कहा है कि- *खित्री ते खित्रवट धरई, अपजस थी मन माहे डरइ। रूधे जाताँ न रहइ माम, करइ अहो निसी नृपनउ काम।* अर्थात् क्षत्रिय वे हैं, जो क्षत्रियत्व धारण करते हैं, अपयश से भयभीत होते हैं, रोकने पर भी नहीं रुकते और रात-दिन राजा का कार्य करते हैं।[188] गोरा और बादल, दोनों

राजा से नाराज़गी के बावजूद दुर्ग छोड़कर नहीं जाते, क्योंकि *जाताँ लागइ खित्रीवट खेह* अर्थात् जाने से उनके क्षत्रियत्व पर धूल पड़ती है।[189] बादल की माँ जब उसे उसकी कम उम्र का हवाला देकर युद्ध में जाने से रोकती है, तो बादल उत्तर में कहता है कि *खित्रवटि रिणवटि पाछउ खिसुं, तउ तुं मात कहे मुझ इसुं।* अर्थात् यदि मैं क्षत्रियत्व और युद्ध भूमि से पीछे हटूँ, तो ही माँ आपको कुछ कहना चाहिए।[190] क्षत्रियत्व का आशय स्पष्ट करते हुए दलपति विजय कहता है कि *खत्री सोही खत्रवट चले। मरण दिए पिण नवि नीकळें॥* अर्थात् जो क्षात्रधर्म के मार्ग अनुसरण करता है वही क्षत्रिय है। वह मरने को तैयार हो जाता है, लेकिन दुर्ग से नहीं निकलता।[191] हेमरतन का बादल क्षत्रियत्व को लेकर चिंतित है। वह सामंतों को सचेत करता है कि *मत किणी वातइँ हुअ आखता, खित्रिवट काँइ न आणिसूँ खता।* अर्थात् किसी बात पर उतावले मत होना। क्षत्रियत्व को कोई आँच नहीं आनी चाहिए।[192] जटमल नाहर कृत *गोरा-बादल कथा* के आरंभ में ही रत्नसेन की महिमा में कहा गया है कि *सूरवीर सुखदाय, राजपूत, रनकौ धणी* अर्थात् सुखदायक रत्नसेन युद्ध भूमि का स्वामी क्षत्रिय है।[193] *कथा* में ही युद्ध के लिए उत्सुक राजपूतों के संबंध में कहा गया है कि- *जुड़ आये राजपूत, भूत भये कारण भिड़ण, परिहरि जोरू पूत खत्री आए खेत पर॥* अर्थात् भिड़ने के लिए राजपूत अपनी पत्नियों और पुत्रों को छोड़कर युद्धभूमि में एकत्र हुए।[194]

युद्ध, शौर्य, पराक्रम आदि क्षत्रियत्व के आचार-विचार में सम्मिलित जीवन मूल्य थे। मध्यकाल में ऐतिहासिक ज़रूरतों के तहत युद्ध संस्कृति का विकास हुआ। यों मध्यकालीन शासक जातियों के राजनीतिक-सांस्कृतिक व्यवहार में युद्ध हमेशा सम्मिलित रहा है। वर्णाश्रम धर्म के नियमानुसार शूरवीर धर्मनिष्ठ क्षत्रिय आवश्यकता पड़ने पर अन्याय के विरुद्ध शस्त्र हाथ में लेकर खड़े होने के लिए लोकत: और धर्मत: बाध्य होते थे।''[195] मध्यकाल में निरंतर होने वाले बाह्य और आंतरिक आक्रमणों के कारण इसका आग्रह बहुत बढ़ गया। युद्ध एक निरंतर और ज़रूरी कर्म हो गया। पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण पर एकाग्र कथा-काव्यों में मध्यकालीन युद्ध संस्कृति के लिए 'रिणवट' शब्द का प्रयोग हुआ है। मर्यादा की रक्षा के लिए युद्ध आवश्यक था। हेमरतन बादल के लिए कहता है कि *रिणवट करीनइ राखी रेह* अर्थात् युद्ध करके मर्यादा की रक्षा की।[196] *खुम्माणरासो* में क्षात्र संस्कृति का निर्वाह मिलता है। यहाँ गोरा और बादल का विरुद क्षत्रियत्व माना गया है। यहाँ कहा गया है कि *तिण गढ़ गोरो रावत रहें, खित्रवट तणी विरुद भुज वहे।*[197] अर्थात् उस दुर्ग में गोरा रावत रहता था, जिसकी भुजाओं में क्षत्रियत्व का विरुद बहता था। यहाँ भी गोरा-बादल के संबंध में कहा गया है कि दुर्ग अवरुद्ध से जाने से दोनों वहाँ से नहीं गए, क्योंकि उनके क्षत्रियत्व पर कलंक लग जाता *(रावत बे जाता था जिसे। गढ़ रोहो मंडाणो तिसें/ रूंधे गढ़*

नवि जाइ तेह, जाता खत्रवट लागे खेह।)।[198] *खुम्माणरासो* में ही आगे कहा गया है कि- *षत्री सोही क्षत्रवत चलें। मरण दिए पिण नवि निकले। भुंडा भला पटांतर काम। खांपा जेम हुवें खग जाम॥* अर्थात् वही क्षत्रिय अच्छा लगता है, जो क्षात्र धर्म का पालन करता है। वह मरने को तैयार हो जाएगा, पर दुर्ग से निकलेगा नहीं। जैसी म्याँने होंगी, वैसी तलवारें होंगी। समय के अनुसार अच्छाई और बुराई के कामों का प्रत्यंतर होता रहता है।[199] *पद्मिनीसमिओ* में भी गोरा-बादल प्रकरण में क्षत्रियत्व और उसके मूल्यों की अनुगूँज मिलती है। बादल अपनी पत्नी के उसे युद्ध विरत करने के प्रयास पर कहता है कि *मों भागे नर अरि हँसै, सुभटि सु लज्जै॥ / अहिबात अचल जिन तिन घटनि साम काम जूझत अनी।* अर्थात् रणक्षेत्र से मेरे भागने पर दुश्मन तो हँसेगा ही, जनता भी हँसेगी। इतना ही नहीं मेरी वीरता भी लज्जित होगी। उन पत्नियों का सौभाग्य अचल रहता है, जिनके पति स्वामी के लिए युद्ध करते हैं।[200] वह अपनी माँ को भी यही कहता है कि *तोहि कलंक जो लगै, रान छाँड़िव भंगुर तन* अर्थात् यदि मैं राजा को छोड़ता हूँ, तो सभी तुझे कलंकित करेंगे कि कैसे कायर को पैदा किया है, जो मरने से डर गया, जबकि शरीर तो क्षण भंगुर है।[201]

युद्ध की इस मध्यकालीन संस्कृति में युद्ध से भागना या उससे मुँह मोड़ना कायरता थी। यह धारणा सदियों से शास्त्र पुष्ट होती आ रही थी। *मनुस्मृति* में उल्लेख है कि *यस्तु भीतः परावृत्तः संग्रामे हन्यते परैः। / भर्तुर्यद् दुष्कृतं किंचित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते॥* अर्थात् युद्ध में डरकर विमुख जो योद्धा शत्रुओं से मारा जाता है; वह स्वामी का जो कुछ पाप है उसे प्राप्त करता है। यह बात इन रचनाओं में भी कई तरह से कही गई है।[202] *गोरा-बादल कवित्त* में बादल पत्नी के सम्मुख युद्ध में प्रवृत्त होने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ है। वह कहता है कि *चरण तेहि गलि जाउ जेण रिण पाछा नासी।* अर्थात् चरण गल जाए, यदि में युद्ध छोड़कर भाग जाऊँ।[203] हेमरतन का बादल अपनी माँ से यह कहता है कि- *भिड़ता पाछउ पग जिऊ दीउँ तऊ तऊ माता फाटउ हिऊँ* अर्थात् युद्ध में भिड़ते हुए, जो मैं अपने पाँव पीछे रखूँ, तो हे माँ! आपका हृदय फटना चाहिए।[204] बादल कायर के लक्षण बताते हुए कहता है कि- *कायर बात करई हँसि-हँसि वेला पड़ियाँ जाइँ खिसी* अर्थात् कायर हँस-हँस कर बात करता है और समय आने पर खिसक जाता है।[205] *पदमिनीसमिओ* में तो साफ़ कहा गया है कि- *को काइर कैं जियौ कौन काल पहिं छुट्टो* अर्थात् कायर होकर जीने से कोई काल से मुक्त तो नहीं होता।[206]

यह ऐसी युद्ध संस्कृति थी, जिसमें माँ, पत्नी आदि परिजन योद्धा को युद्ध विमुख करने के बजाय युद्ध के लिए प्रेरित करते थे। *गोरा-बादल कवित्त* में बादल की पत्नी उससे कहती है कि *जू प्रिय कायर होय पेखि गय जूह गाजंता। तु मोहि आवइ लज्ज,*

जू तुं रिणि भजसि॥ अर्थात् हे प्रिय! तू हाथियों के समूह से जूझते हुए कायर हुआ तो मुझे लज्जा आयेगी।[207] *गोरा-बादल कथा* में तो वह और अधिक साफ़ कहती है कि- *कंता रिण पैसता मत तू कायर होइ। तुम्हे लज्ज, मुझ मेहणो, भलो न भाखे कोइ।* अर्थात् रण में प्रवेश करते समय तू कायर मत होना। इससे तुम्हे लज्जा आयेगी और मुझे उलाहना मिलेगा। कोई इसको अच्छा नहीं कहेगा।[208] हेमरतन के बादल की स्त्री उसे अपने यौवन का हवाला देकर युद्ध विमुख करने की चेष्टा करती है, लेकिन जब वह उसमें सफल नहीं होती, तो वह क्षत्रिय धर्म का निर्वाह करने का आग्रह करती हुई कहती है कि- *जिम बोलइ छइ तिम निरवहे, मत किणी वातइ जायइ ढहे। लाजउ म आणइ कुलि आपणइ, साँमी सुंबे साहसि घणउ।* अर्थात् जैसा बोलते हो, उसका निर्वाह करना, अपने कुल को लज्जित मत करना और हे स्वामी! युद्ध में बहुत साहसपूर्वक जूझना।[209] *पद्मिनीसमिओ* में भी कहा गया है कि- *धनि पराक्रम पुरखपति, पतनी हाम पुराम। छैह गंठि छंड़ि नह बंधि करौ सिद्ध जुध काम।* अर्थात् हे पौरुषवान पति! आपका पराक्रम धन्य है। आप स्नेह बंधन तोड़कर स्वामी का युद्ध कार्य संपन्न करें।[210] यही नहीं, अंततः बादल की पत्नी भी यही कहती है कि- *भगिही न कंत जब रन भिरत तबहि मुहि चढ़ि र उपनौ* अर्थात् जब युद्ध में भिड़ंत हो, तो तब वहाँ से पीठ दिखाकर न भागने पर मुख उज्जवल होता है।[211]

यह ऐसी युद्ध संस्कृति थी, जिसमें साहस पर बहुत ज़ोर दिया गया है। *खुम्माणरासो* में दलपति विजय कहता है कि-*सीह न जोवे चंदबळ, नवि जोवे घर रिद्ध। एकलो ही भांजे किलो, जहां साहस तिहाँ सिद्ध॥* अर्थात् योद्धा कभी मुहूर्त नहीं देखता, न वह अपने घर की समृद्धि की चिंता करता है। वह तो अकेला ही दुर्ग को ध्वस्त करता है। जहाँ साहस है, वहाँ सिद्धि है।[212] हेमरतन का बादल भी क्षत्रिय योद्धा की तुलना सिंह से करते हुए कहता है कि- *सिंह सदाई साँम्हों धँसई, वाढ्यउ ई नवि पाछउ खिसइ* अर्थात् सिंह सदा ही सामने की ओर धँसता है, वह मोड़ने पर भी नहीं मुड़ता। इसी तरह हाथी बहुत सारे होते हैं और उनमें सिंह अकेला होता है, लेकिन वह भयभीत नहीं होता।[213]

5.

कर्मफल और नियतिवाद भारतीय विचार और आचरण में सदैव रहे हैं। युद्ध के साथ इस विचार का संबंध भी बहुत पहले चला आ रहा है। *पराशरसंहिता* में कहा गया है कि- *द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ। / परिव्राड्योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः॥* अर्थात् इस संसार में दो ही पुरुष सूर्यमंडल का भेदन करके उर्ध्व गति को प्राप्त करते हैं- एक तो योगमुक्त संन्यासी और दूसरा युद्धभूमि में वीरगति को प्राप्त

करनेवाला मनुष्य।[214] *पराशरसंहिता* में ही आगे कहा गया है कि- *जितेन लभ्यते लक्ष्मीर्मृतेनापि सुराङ्गनाः। क्षणध्वंसिनि कायेऽस्मिन्का चिन्ता मरणे रणे॥* अर्थात् युद्ध में वीर पुरुष यदि जय लाभ करे, तो लक्ष्मी हाथ आवे और आहत हो, तो सुरलोक में सुरांगना मिले।[215] *महाभारत* के शांति पर्व में कहा गया है कि *अधर्मः क्षत्रियस्यैष यच्छय्यामरणं भवेत्। / विसृजन् श्लेष्ममूत्राणि कृपणम् परिदेवयन्॥* अर्थात् बिस्तर में पड़े रहकर दुर्गत रोगी तरह मरना क्षत्रिय के लिए अधर्म है। उसे तो वीर की तरह युद्ध में प्राण त्यागने चाहिए, उसी में उसका जीवन सार्थक है।[216] टीका में नीलकंठ ने राजा के कर्तव्य के संबंध में लिखा है कि-*विक्रमेण महीं लब्ध्वा प्रजा धर्मेण पालयन्। / आह्वे निधनं कुर्याद्राजा धर्मपरायणः॥* अर्थात् पराक्रम से भूभाग जीतकर धर्मपूर्वक आचरण करते हुए धर्मपरायण राजा को युद्ध में मृत्यु प्राप्त करनी चाहिए।[217] इस तरह बहुत पहले राजा या योद्धा के कर्म और मुक्ति के साथ युद्ध भी जोड़ दिया गया। मध्यकाल में निरंतर होने वाले युद्धों के कारण इस पर ज़ोर दिया जाने लगा। मध्यकाल में युद्ध में खेत रहना या मरना यश और कीर्ति से भी जुड़ गया। पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण विषयक रचनाओं में यह धारणा और विश्वास बार-बार दोहराये गये हैं। *खुम्माणरासो* में साफ़ शब्दों में कह दिया गया है कि *काया साटे कीरत जुड़े। मोले मुंहगी नवी पड़े* अर्थात् काया के बदले यदि कीर्ति मिले तो यह महँगा सौदा नहीं है।[218] लब्धोदय की *चौपई* में भी यह प्रकरण इसी तरह है। यहाँ बादल दृढ़ प्रतिज्ञ है- वह कहता है- *काया माया कारमी, जात न लागइं वार। सूरपणे कायरपणै, मरणो छै एक वार॥* अर्थात् काया-माया, दोनों नाशवान हैं, इन दोनों को जाते देर नहीं लगती। योद्धा होकर मरना या कायर होकर, मरना तो एक ही बार है।[219] आगे वह फिर कहता है कि- *तउ ढांढ़ा हुई किम मरौ, मरउ तउ मरण समारि। पत जास्यै पद्मिणी दिया अमचउ एह विचारि॥* अर्थात् फिर पशु होकर क्यों मरना, इस तरह मरना चाहिए कि मृत्यु स्मरण रखी जाए। पद्मिनी देने से प्रण भी जाएगा, इस पर विचार करना चाहिए।[220] यहाँ विश्वास यह है कि शरीर तो नाशवान है, इसलिए इसकी चिंता करने के बजाय यश मिलता हो, तो उसे लेना चाहिए। हेमरतन कहता है कि- *काया चाबतणी कोथली, खिण इक मेली, खिण ऊजली। / तिण साटइ जउ कीरति मिलइ तउ लेतां कुण पाछइ टलइ॥* अर्थात् शरीर तो चमड़े की थैली है। यह एक क्षण में मैली तो दूसरे ही क्षण में उजली लगती है। इसके बदले यदि कीर्ति मिलती हो, तो उसको लेने में कौन पीछे हटेगा।[221]

मध्यकालीन युद्ध संस्कृति में शौर्य, पराक्रम और युद्ध पुण्य कर्म मान लिए गये और इसके साथ ही यह विश्वास भी प्रबल और मान्य हो गया कि इससे स्वर्ग मिलता है। यह धारणा भी बहुत पहले से चली आ रही थी। *मनुस्मृति* में कहा गया है कि

आहवेषु मिथोऽन्योन्यं जिघासंतो महीक्षितः। युध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः॥ अर्थात युद्ध में परस्पर प्रहार (चोट) करने की इच्छा करते हुए अपार शक्ति से युद्ध करते हुए राजा विमुख न (युद्ध से) होकर स्वर्ग को जाते हैं।[222] हेमरतन के यहाँ गोरा की स्त्री जब उससे पूछती है कि *काकउ केम रणगंणि रहइ* अर्थात काका (गोरा) ने युद्ध कैसे किया, तो वह उत्तर में कहता है कि *तिल-तिल छेदी तनु आपणउ, अमरपुरी पुहतउ पाँहुणउ। / कुल अजुआलिउ गोरइ आज सुभटाँ तणी उतारी लाज।* अर्थात् अपने शरीर को तिल-तिल छिदवा कर वे अतिथि की तरह स्वर्ग गये। गोरा ने अपने कुल को उज्ज्वल कर दिया और उन्होंने योद्धाओं की लाज रखी।[223] हेमरतन के अनुसार उसकी पत्नी भी सती होकर पति के पास स्वर्ग में पहुँच गई। हेमरतन लिखता है कि *पासइ जइ पुहती जिसइ, अर्धासण दीउ इंद्रइ तिसइ। / अमरपुरी पुहता अवगाहि, जयजयकार हुअ जगमाहिं।* अर्थात् गोरा की पत्नी भी सती होने के बाद उसके (गोरा) पास पहुँच गई। इंद्र ने गोरा की पत्नी को गोरा के साथ का अर्धासन दिया।[224] उसके स्वर्ग में पहुँचने से संसार में जय-जयकार हुआ। जटमल नाहर की *गोरा बादल कथा* में गोरा के खेत रहने का प्रकरण और भी प्रभावी बनाकर प्रस्तुत किया गया है। जटमल नाहर ने लिखा है कि-

गोरा का सिर ताँम, तुरत तिण गिरज उठायो, मुखतै छूटो गिरझ उठायो।
देवांगाना तें छूटि, सोइ सिर गंगा पडियो, गंगा ते लियो संभु, रुंड्माला में जड़ियो।
सो सोह गोरल भरतार इम,
सापवित्र मस्तक भयो, यों जूझै परकाज पर सो गोरो सिवपुर गयो।

अर्थात् जब गोरा युद्ध में खेत रहा, तो गिरने से पूर्व उसका सिर गिद्ध ने उठा लिया। वह सिर गिद्ध के मुँह से छूटा, तो उसको देवांगना ने ले लिया। देवांगना के हाथ से सिर गंगा में गिरा, जिसको भगवान शंकर ने लेकर अपनी रुंडमाला में पिरो लिया। अब वह पार्वती पति भगवान शंकर के गले की शोभा है।[225]

5.

स्वामिधर्म पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण पर आधारित कथा-काव्यों का प्रतिपाद्य है। ख़ासतौर पर उन रचनाओं में जहाँ गोरा-बादल प्रकरण को प्राथमिकता दी गई है, स्वामिधर्म केंद्रीय सरोकार की तरह रहा है। मेवाड़ की प्रशासनिक-राजनीतिक व्यवस्था में आरंभ से ही स्वामिभक्ति को एक सर्वोपरि मूल्य के रूप में विकसित किया गया और यह इस व्यवस्था की दृढ़ता और निरंतरता का प्रमुख कारण भी है। स्वामी के प्रति विश्वासघात या उसका साथ छोड़ने वाले को यहाँ घृणा की नज़र से देखते थे और उसको मैत्री और संबंध के दायरे से बाहर रखा जाता था। बहुत बाल्यकाल से क्षत्रिय

समाज में यह धारणा संस्कार की तरह मजबूत की जाती थी कि स्वामी के प्रति विश्वासघात घोर पाप है। चारण-भाट यह धारणा कथा-कहानियों से मजबूत करते थे। जब कोई सामंत उत्तराधिकारी होता था, तो वह राजा के समक्ष यह शपथ लेता था कि ''मैं आपका छोरू अर्थात् बालक हूँ और मेरा सिर और तलवार आपके हैं, आपकी आज्ञा का सेवक हूँ।''[226] राजा और उसके अधीनस्थ सामंतों का संबंध बहुत घनिष्ठ और निकट का होता था। सामंत राजा के प्रति स्वामिभक्त रहे और उसकी सर्वोच्चता की मान्यता दे, इस निमित्त कई प्रथाएँ थीं। राजा जब दरबार में आता, तो उसके सभी अधीनस्थ सामंत दोनों और पंक्ति में खड़े होकर 'अन्नदाता' कहकर उसका अभिवादन करते थे।[227] राजा एक-एक कर सभी से अभिवादन लेकर बैठने का संकेत करता, तो सभी बैठते थे। राजा जब भोजन करने बैठता, तो वह अपनी थाली में से कुछ निकालकर अपने अधीनस्थ सामंतों को देता, जिसे वे कृपापूर्वक ग्रहण करते थे। सत्तारूढ़ सामंत से उम्र में बड़े उसके काका-मामा आदि भी पाँव बड़ा मानकर उसका उसी तरह से सम्मान करते थे, जैसे दूसरे अधीनस्थ सामंत करते थे। स्वामिधर्म की यह प्रथा उपनिवेशकाल तक मौजूद थी। जेम्स टॉड ने इसकी सराहना करते हुए लिखा कि ''राजपूतों में कदाचित् ही कोई अपने ठाकुर के साथ विश्वासघात करता है, किंतु स्वामिभक्ति में प्राण अर्पित करने के उदाहरण अनगिनत हैं, जिनमें से कई एक पत्रों में जहाँ-तहाँ मिलेंगे। इनकी प्रतिष्ठा की दृष्टि से यह अवश्य कहना होगा कि नीचतावश अपने स्वामी का साथ छोड़ देना प्राय: इनमें नहीं पाया जाता, और जब कोई ऐसा कर्म करता है, तो वह सबकी घृणा का पात्र हो जाता है। अपने सरदार के प्रति स्वामिभक्ति 'स्वामिध्रम्म' समस्त सद्गुणों में सर्वोपरि माना जाता है।''[228]

रत्नसेन-पद्मिनी प्रकरण विषयक इन ऐतिहासिक कथा-काव्यों में स्वामिधर्म की महिमा का वर्णन भी है और यह इनके चरित्रों और घटनाओं में चरितार्थ भी हुआ है। हेमरतन ने तो *गोरा-बादल पदमिणी चउपई* में वीर, श्रृंगार, और हास्य रस के साथ 'स्वामिधर्म रस' की उद्भावना की है। हेमरतन कहता है कि- *वीररस सिणगार रस हासा रस हितहेज। सामिधरम रस साँभलउ, जिम हुइ तनि अति तेज॥''* अथार्त् वीर, श्रृंगार और हास्य रस हितकारी है, लेकिन स्वामिधर्म रस सुनो, जिससे शरीर में तेज का संचार होता है।[229] *समिओ* में तो स्वामिधर्म की महिमा को स्त्री के सौभाग्य से संबद्ध किया गया है। उसमें कहा गया है कि- *अहिबात अचल जिन घरनि साम काम झूझत अनि॥* अर्थात् उन स्त्रियों का सौभाग्य अचल रहता है, जिनके पति अपनी स्वामी के लिए युद्ध करते हैं।[230] लब्धोदय ने *पद्मिनी चरित्र चौपई* के आरंभ में ही यह कह दिया है कि *गोरा-बादल अति सगुण सूर वीर सिरदार। चित्रकूट कीधो चरित स्वामी धर्म साधार।* अर्थात् गोरा और बादल योद्धा हैं और उन्होंने स्वामिधर्म

को चित्रकूट में आधार प्रदान किया है।[231] *खुम्माणरासो* के इस प्रकरण के अंत में समाहार करता हुआ कवि दलपति विजय कहता है कि– *सामधरम सापुरषा होय, सील दृढ़ कुलवती जोय।* अर्थात् गोरा–बादल की यह कथा सुनने से सत्पुरुषों में स्वामिधर्म की भावना और कुलीन नारियों को शील की दृढ़ता प्राप्त होती है।[232] *खुम्माणरासो* में तो स्वामिधर्म के गुण को संसार में यश का आधार कहा गया है। दलपति विजय ने बादल की पत्नी से कहलवाया है कि– *भलो कहेंसी संसार। सामधरम रहेसी आचार॥* अर्थात् सारा संसार आपकी प्रशंसा करेगा और स्वामिधर्म की परंपरा जीवित रहेगी।[233]

पद्मिनी–रत्नसेन प्रकरण पर आधारित इन कथा–काव्यों में स्वामिधर्म चरितार्थ भी हुआ है। गोरा और बादल का पद्मिनी के आग्रह पर युक्ति और वीरता के साथ बंदी रत्नसेन को मुक्त करवाने का कार्य स्वामिधर्म का अच्छा उदाहरण है। दरअसल गोरा और बादल, दोनों रत्नसेन के अधीनस्थ सामंत है, लेकिन नाराज़गी के कारण राजा द्वारा प्रदत्त ग्रास (जागीर) का उपयोग नहीं कर रहे हैं। अलाउद्दीन द्वारा दुर्ग पर घेरा डाल देने के कारण वे दोनों दुर्ग छोड़कर भी नहीं जा रहे हैं। पद्मिनी के आग्रह पर नाराज़गी के बावजूद वे दोनों स्वामिधर्म का निर्वाह करते हुए रत्नसेन की मुक्ति के लिए पराक्रम दिखाते हैं। यह प्रकरण कुछ मामूली असमानताओं के साथ इन अधिकांश ऐतिहासिक कथा–काव्यों में मौजूद हैं। दोनों के संबंध में हेमरतन कहता है कि *ब्यूँही तीरइ अधिकउ त्रेष, सामिधरम पालइ सविशेष।* अर्थात् दोनों ही अधिक तेज़ युक्त हैं और स्वामिधर्म का अनुपालन विशेष रूप से करते हैं।[234] *खुम्माणरासो* में दलपति विजय कहता है कि– *राम तणें भिड़या (जिम) हणुमान। तिम बादल रतनसी राण। पद्मणी सत सीता सारिषि। बादल भिड़े लंका आरषी।* अर्थात् भगवान राम के लिए जिस प्रकार हनुमान ने युद्ध किया, उसी प्रकार बादल ने राणा रतनसिंह के लिए युद्ध किया। पद्मिनी सीता के समान है और बादल समुद्र लाँघकर रक्षा करने वाले वीर योद्धा हनुमान के समान।[235] *गोरा–बादल कवित्त* में गोरा पद्मिनी से कहता है कि– *सांमि काज अणसरउं, नारि पद्मिणी उवेलउं* अर्थात् स्वामी का कार्य करूँगा और पद्मिनी का उद्धार करूँगा।[236] बादल लब्धोदय की निगाह में स्वामिधर्म का पर्याय है। वह उसकी पत्नी से कहलवाता है कि– *भलो सांमिधर्म बादल समो हुओ न होसी कोय* अर्थात् स्वामिधर्म के निर्वाह में बादल जैसा और कोई नहीं हुआ।[237]

6.

यौन शुचिता और शील की रक्षा का आग्रह पद्मिनी–रत्नसेन पर एकाग्र ऐतिहासिक कथा–काव्यों में बहुत है। मध्यकालीन क्षत्रिय समाज में स्त्रियों से यौन शुचिता और

शील के निर्वाह अपेक्षा की जाती थी। यौन शुचिता आम भारतीय के संस्कार में बद्धमूल है। शास्त्रों और स्मृति-संहिताओं में पहले से ही इस निमित्त कई प्रावधान हैं। *मनुस्मृति* में उल्लेख है कि *व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निंद्यताम्। / शृगाल योनिं प्राप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते॥* अर्थात् परपुरुष के साथ संभोग करनेवाली स्त्री इस लोक में निंदित होती है, मरकर शृगाल की योनि में उत्पन्न होती है और (कुष्ठ आदि) रोगों से दुःखी होती है।[238] स्त्री की रक्षा को भी *मनुस्मृति* में मनुष्य का कर्त्तव्य माना गया है। इसमे उल्लेख है कि- *स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च। स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन्हि रक्षति॥* अर्थात् (ब्राह्मण-क्षत्रियादि) स्त्री की रक्षा करता हुआ मनुष्य अपनी संतान, आचरण, कुल, आत्मा और धर्म- इनकी रक्षा करता है। (इस कारण स्त्रियों की रक्षा का यत्न करना चाहिए।)[239] मध्यकाल में निरंतर युद्ध और बाहरी आक्रमण हो रहे थे। तुर्क आक्रांताओं की मंशा भूमि पर आधिपत्य के साथ स्त्रियों पर आधिपत्य की भी होती थी। यह प्रथा थी कि आक्रमणकारी अकसर पराजित शत्रु की स्त्रियों को ले जाते थे और उनको अपने सैनिकों में बाँट देते थे।[240] यह बहुत अपमानजनक और त्रासकारी था। रत्नसिंह के पिता समरसिंह के समय भी अलाउद्दीन ने आक्रमण किया और वह दंड लेकर आगे गुजरात निकल गया।[241] 1303 ई. उसने मेवाड़ पर आधिपत्य के लिए फिर आक्रमण किया। उसने गुजरात, रणथंभोर और देवगीर पर आक्रमण किया। इन सभी आक्रमणों में समान यह है कि उसने स्त्रियों की माँग रखी। *पद्मावत* (1540 ई.) से पहले की *छिताई चरित्र* (1475-1480 ई.) में इसका स्पष्ट उल्लेख है। अलाउद्दीन कहता है कि- *मेरी कहिउ न मानइ राउ। बेटी देइ न छांडइ ठाऊ...। / रनथंभौर देवल लगि गयो। मेरो काज न एकौ भयो॥ / मइ चित्तौर सुनी पदुमिनी॥ / बंध्यौ रतनसेन मइ जाइ। लइगो बादिल ताहि छंडाइ। / जो अबके न छिताई लेऊं। तो यह सीस देवगिरि देऊं॥*[242] यह तय है कि तुर्क और परवर्ती आक्रांता स्त्री लोलुप थे, जिससे यहाँ के शासकों में स्त्रियों की यौन शुचिता और शील की रक्षा का आग्रह बहुत बढ़ गया। यह आग्रह इस सीमा तक बढ़ा कि कई बार यह जीवन-मरण का प्रश्न हो जाता था। स्त्रियाँ अकसर इसके लिए प्राण दे देती थी और पुरुष लड़कर मर जाते थे। पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण संबंधी कथा-काव्यों में युद्ध का असल कारण यही है। अलाउद्दीन ने यह जानकर कि राजा रत्नसेन के पास पद्मिनी है, चित्तौड़ पर आक्रमण किया। *गोरा-बादल कवित्त* में अलाउद्दीन कहता है कि *मारुउ देस हिंदुआण कूं, त्रीया एक जीवित धरउं* अर्थात् हिंदू देश की ख़त्म कर स्त्री (पद्मिनी) को जीवित पकड़ लूँगा।[243] *गोरा-बादल पदमिणि चउपई* में पद्मिनी के लिए अलाउद्दीन की व्याकुलता का विस्तृत वर्णन है। वह राघव व्यास से कहता है कि *एहनउ रूप अनोपम एह रूप तणी इण लाधी रेह। एहना एक अँगूठा*

जिसी अवर नारि नहु दीसइ इसी। अर्थात् इसका रूप अनुपम है, इसके जैसी और कोई नहीं है यहाँ इसके अँगूठे जैसी भी कोई नहीं है।[244] आगे कवि कहता है कि *पद्मिणी नारि हिया महि वसी और मूर्च्छित चित्त हुए पातसाहि* अर्थात् पद्मिनी स्त्री उसके हृदय में बस गई और वह मूर्च्छित हो गया।[245] *पाटनामा* में भी उल्लेख है कि *पातसाह पद्मिणी जी देखेर सुध भूल हो गीयो* अर्थात् बादशाह पद्मिनी देखकर सुध भूल गया।[246]

पद्मिनी स्वयं अपनी यौन शुचिता और शील को लेकर बहुत चिंतित है। वह *गोरा–बादल कवित्त* में अपने को अलाउद्दीन को सौंपने के निर्णय से व्यथित होकर कहती है कि *तदिन जीभ खंडवि मरउं, योगिणीपुर नवि दिखसऊं* अर्थात् उस दिन मैं अपनी जिह्वा खंडित कर मृत्यु का वरण कर लूँगी, लेकिन दिल्ली नहीं देखूँगी।[247] हेमरतन कृत *गोरा–बादल पद्मिणी चउपई* में उसका स्वर और उग्र है। वह साफ़ और दो टूक शब्दों में कहती है कि– *खंडू जीभ दहूँ निज देह। पिण नवि जाऊँ असुराँ गेह। लाखा जमहर लरि नई बलूं, पिण नवि कोट थकी निकलूँ।* अर्थात् मैं अपनी जीभ खंडित कर देह त्याग दूँगी, लेकिन राक्षस के घर नहीं जाऊँगी। लाखों चिताएँ जलाकर जल जाऊँगी, लेकिन दुर्ग से बाहर नहीं निकलूँगी।[248] लब्धोदय की *पद्मिनी चरित्र चउपई* में भी वह कमोबेश यही बात कहती है कि– *सील न खंडुं, जीभड़ी खंडस्यं रे कै नखूँ सिर काट।* अर्थात् जीभ और सिर काट दूँगी, लेकिन शील खंडित नहीं होने दूँगी।[249] *खुम्माणरासो* में भी वह यही कहती है– *सील न खंडू देह अखंड। जो फिर उलटे ए ब्रमांड। / सुहड़ करावे वलि भरतार। मुझ कुळ नहीं ए आचार।* आशय यह है कि मैं अपने शरीर के अखंड शील को खंडित नहीं होने दूँगी, चाहे ब्रह्मांड उलट जाए। ये योद्धा मेरे लिए नया पति लाना चाहते हैं, लेकिन मेरे कुल की रीति नहीं है।[250] आगे वह और कहती है कि *हिंदुवाण वंश लांछन लगे, थूक थूक कहई दुनि* अर्थात् इससे हिंदू कुलवंश को लांछन लगेगा, दुनिया इस पर थूकेगी, मतलब धिक्कारेगी।[251] वह अपने पति को भी यही परामर्श देती है कि *तजियै पीव पिराँन और को नारि न दीजै। काल न छूटै कोय सीस दै जग जस लीजै* अर्थात् हे प्रिय! प्राण छोड़ दीजिए, लेकिन अपनी स्त्री किसी को मत दीजिए। मृत्यु किसी का नहीं छोड़ती, इसलिए सिर देकर यश लेना चाहिए।[252]

पदमिनी रत्नसेन संबंधी काव्यों में गोरा और बादल भी स्त्री देकर राजा को लेने के विचार से असहमत हैं और वे इसे क्षत्रियत्व के विरुद्ध मानते हैं। हेमरतन कृत *गोरा–बादल पद्मिणी चउपई* में बादल सामंतों की सभा में साफ़ कहता है कि पद्मिनी देकर राजा लेने से *छाटूँ पड़सी सगलइ देसी, मस्तकि कोई न रहसी केस। खित्रवट सहू लोपसी खरी आ थें बात भला नादरी।* अर्थात् पूरे देश में हम पर कलंक

लगेगा सिर पर बाल नहीं रहेंगे और क्षत्रियत्व का लोप हो जाएगा।[253] आगे वह और कहता है कि *मांडा सुमट भरइ गह गही, पिण निज माण मेल्लहि सही माण पखइ नर कहहि किसउ, कण विण ठाला कूकस जिसउ* अर्थात् योद्धा सब खोकर भी कभी अपना मान नहीं खोता। मान छोड़ देने वाला मनुष्य वैसा ही है, जैसा कण के बिना व्यर्थ भूसा होता है।[254] *खुम्माणरासो* का बादल कहता है कि– *वळि मरबो रजपूतां भलो। आमो सांमो करबो भलो॥ स्त्री दीई न नें लीजें राव। सकज न था (पि) इं एह कुदाव॥* अर्थात् राजपूतों के लिए शत्रु का युद्ध में सामना करते हुए मरा जाना श्रेयकर है। रानी को देकर राजा को छुड़ा लाने की नीति का विचार शक्तिशाली वीर नहीं किया करते।[255]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि पद्मिनी–रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर कथा–काव्यों में तत्कालीन राजनीति, प्रशासन और जीवन मूल्यों और आस्था–विश्वास का जो रूप बनता है, वह उपलब्ध अन्य पुरालेखीय और साहित्यिक साक्ष्यों से बहुत अलग नहीं है। मेवाड़ में सदियों से गुहिलवंश का वर्चस्व रहा है, जो सूर्यवंशी क्षत्रीय राजपूत है। यह धारणा निराधार है कि क्षत्रिय और राजपूत, दो अलग जातियाँ हैं और राजपूतों की उत्पत्ति विदेशी मूल की है। दरअसल राजपूत प्राचीन क्षत्रिय परंपरा का ही मध्यकालीन विस्तार है। विवेच्य रचनाओं में 'क्षत्रिय' शब्द का ही व्यवहार हुआ है। शक, हूण आदि जिन जातियों से राजपूतों की उत्पत्ति मानी जाती है, वे सभी जातियाँ हमारे प्राचीन शास्त्रों में क्षत्रिय जातियों में परिगणित की गयी हैं। इसी तरह मध्य एशिया, जहाँ से उनका आगमन माना जाता है, वहाँ छठी–सातवीं सदी में भारतीय सभ्यता की मौजूदगी के प्रमाण मिले हैं। गुहिल वंश की ईरान के नौशरवाँ आदिल वंश से संबद्धता और मेवाड़ में उसके वल्लभी से आने की धारणा भी युक्तिसंगत नहीं है। पुरालेखीय प्रमाण इसके आगरा की तरफ़ से आने की पुष्टि करते हैं। यह धारणा भी निराधार है कि गुहिल वंश की उत्पत्ति नागर ब्राह्मणों से हुई। सभी पुरालेखीय साक्ष्य उसके क्षत्रिय होने की पुष्टि करते हैं। यह माना जाता है कि गुहिल राम के पुत्र कुश के वंशज राजा सुमित्र के वंश में 560 ई. राजा गुहिल हुआ, जिससे इस वंश की शुरुआत हुई। गुहिल के बाद इसमें बप्पा, खुम्माण आदि कई शासक हुए। बप्पा ने मोरियों से चित्तौड़ छीनकर अपने राज्य में मिलाया। खुम्माण भी बहुत पराक्रमी था– बाद में यह नाम मेवाड़ के शासकों का विशेषण हो गया। कई शासकों के बाद तेरहवीं सदी में तेजसिंह के उत्तराधिकारी समरसिंह (1273–1301 ई.) के बाद उसका पुत्र रत्नसेन (1302–1303 ई.) सत्तारूढ़ हुआ। मेवाड़ के कुछ वंशावली अभिलेखों में रत्नसेन का नामोल्लेख नही मिलता, लेकिन विवेच्य रचनाओं और नये उपलब्ध पुरालेखीय साक्ष्यों से इतना तो तय है कि 1303 ई.

अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया और उस समय रत्नसेन वहाँ का राजा और पद्मिनी उसकी रानी थी। चित्तौड़ जीतने बाद उसने वहाँ का शासन अपने पुत्र ख़िज्र ख़ाँ को दिया। बाद में निरंतर उपद्रवों के कारण ख़िज्र ख़ाँ की जगह अलाउद्दीन ने क़िला जालोर के मालदेव सोनगरा को सौंप दिया। गुहिल वंश के ही सिसोदा की जागीर के स्वामी हम्मीर ने 1326 ई. के आसपास दिल्ली सल्तनत के कमज़ोर होते ही मालदेव को परास्त कर मेवाड़ पर अपना आधिपत्य क़ायम कर लिया।

विवेच्य कथा-काव्यों और दूसरे उपलब्ध साक्ष्यों से लगता है कि प्रकरणकालीन मेवाड़ की राजनीतिक-प्रशासनिक व्यवस्था यूरोपीय और शेष देश की सामंतवादी व्यवस्था से कुछ हद तक अलग और ख़ास प्रकार की थी। यहाँ राजनीतिक-प्रशासनिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण ब्राह्मणों को भूमिदान से नहीं हुआ। यह सही है कि यहाँ बहुत शुरू से ब्राह्मणों और मंदिरों को भूमिदान दिया जाता रहा है और इस तरह के अभिलेख भी निरंतर मिलते हैं, लेकिन यह उनको आजीविका के लिए दिया जाता था और इस पर उनका स्वामित्व स्थायी नहीं था। यहाँ भूमि सैन्य सेवा के बदले अपने कुटुम्बियों और अन्य बाहरी योद्धाओं की दी गयी और सत्ता का विकेंद्रीकरण भी इसी आधार पर हुआ। राजाज्ञा यहाँ सर्वोपरि थी और उसकी अनुपालना भी आवश्यक थी, लेकिन अधीनस्थ सामंतों का युद्ध आदि मसलों में परामर्श भी आवश्यक था और कुछ मामलों में वे स्वायत्त और ताक़तवर भी थे। मेवाड़ की यह व्यवस्था शेष राजस्थान की रियासतों से भी अलग थी- वहाँ अधीनस्थ सामंतों को इतने अधिकार नहीं थे। दरअसल मेवाड़ राजस्थान के दूसरे राज्यों की तुलना में बहुत पुराना राज्य था। टॉड के शब्दों में ''यह वंश ऐसे प्राचीन समय में स्थापित हो चुका था, जबकि अन्य पुनर्जीवित या अभी गर्भावस्था में ही थे। इस कारण मेवाड़ की रीति-नीति और विधि विधान अन्य राज्यों से स्पष्ट रूप से भिन्न हैं।''[256] यहाँ के सामंत और उपसामंत केवल सैन्य सेवा के लिए उपलब्ध व्यक्ति नहीं थे, उनके कुछ पारम्परिक अधिकार थे और राज्य की रीति-नीति के निर्धारण में उनकी निर्णायक भूमिका थी। कई बार वे राजा के चयन और अयोग्य शासक की पदच्युति में भी प्रभावी भूमिका निभाते थे। राजा उनसे परामर्श और सहयोग लेने के लिए लगभग बाध्य था। काश्तकार उत्पादन और आर्थिक मामले में लगभग स्वतंत्र थे और इसके अलावा कुछ हद तक उनका अपनी काश्तभूमि भूमि पर विधिक अधिकार भी था। उनसे आमतौर पर उत्पादन का 1/2 से लगाकर 1/4 तक बतौर राजस्व लिया जाता था और कृषि दासता जैसी स्थिति यहाँ कभी नहीं रही।

विवेच्य रचनाओं और दूसरे साक्ष्यों से यह भी लगता है बाह्य आक्रमणों और निरंतर होनेवाले युद्धों के कारण यहाँ कुछ ख़ास प्रकार के सांस्कृतिक मूल्यों का विकास

हुआ, जिनकी जड़ें हमारे शास्त्रों और स्मृतियों में थीं। क्षत्रियत्व की प्रमुख अभिलक्षणाएँ- शौर्य, पराक्रम, युद्ध, शरणागति और प्रजा की रक्षा आदि इस दौरान बहुत प्रमुख हो गयीं। युद्ध की भी एक संस्कृति बन गयी, जिसमें मरना-मारना और पीठ नहीं दिखाना योद्धा के ज़रूरी गुण मान लिए गए। विवेच्य रचनाओं में 'खित्रिवट' (क्षत्रियत्व) 'रिणवट' (युद्ध की रीत) की ख़ूब सराहना हुई है। कर्मफल और नियतिवाद मध्यकालीन विचार और आचरण में सम्मिलित थे, लेकिन ये धीरे-धीरे युद्ध संस्कृति के साथ भी जुड़ गए। विवेच्य रचनाओं में इस धारणा को बार-बार पुष्ट किया गया है कि शरीर नश्वर है, इसलिए इसका मोह नहीं करना चाहिए और युद्ध में मृत्यु से यश और स्वर्ग मिलते हैं। स्वामिधर्म भी इन रचनाओं में केंद्रीय सरोकार है। गोरा-बादल के चरित्रों की योजना इस मूल्य को चरितार्थ करने के लिए ही हुई है। निरंतर बाह्य आक्रमणों और आक्रांताओं के स्त्रीलोलुप आचरण और स्वभाव के कारण मध्यकाल में स्त्रियों के शील और यौन शुचिता का आग्रह और चिंता भी बहुत बढ़ गयी। विवेच्य रचनाओं में इसका आग्रह बहुत है। यहाँ पद्मिनी अपने शील और यौन शुचिता की रक्षा के निमित्त मर जाने के लिए संकल्पित है और उसके परिजन भी इसके लिए मरने और मारने के लिए प्रतिश्रुत हैं।

संदर्भ और टिप्पणियाँ

1. माइकेल विटज़ेल की धारणा है कि भारत में इतिहास लेखन की परंपरा उसी तरह से रही है, जैसे यह दूसरी सभ्यताओं मिलती है। चक्रीय कालबोधवाले इतिहास बोध के साथ यहाँ एक रेखिक कालबोधवाले इतिहास की रचनाएँ भी पर्याप्त संख्या में हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण बात उन्होंने सप्रमाण यह कही है कि इस परंपरा में व्यवधान मध्यकालीन इस्लामी हस्तक्षेप से आया। उनके अपने शब्दों में ''ऐतिहासिक लेखन की कमी और ऐतिहासिक अर्थों की कथित कमी, बड़े पैमाने पर, भारतीय सभ्यता के धार्मिक और दार्शनिक सिद्धांतों की तुलना में मध्ययुगीन इतिहास की दुर्घटनाओं के कारण अधिक है।''- माइकेल विटज़ेल, ''ऑन इंडियन हिस्टोरिकल राइटिंग्ज़- दि रोल ऑफ़ वंशावलीज़,'' *जर्नल ऑफ़ जपानीज़ साउथ एशियन स्टडीज़-2,* 1990, 57.

2. मेवाड़ से संबंधित उत्तर मध्यकालीन भूराजस्व आदि दस्तावेज़ों पर कई अध्ययन हुए हैं और इनमें से अधिकांश का प्रकाशन भी हुआ है। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं-

(i) हुकुमसिंह भाटी, संपा., *मेवाड़ जागीरदारां री विगत- सं. 1761-1880* (उदयपुर: प्रताप शोध प्रतिष्ठान, भूपाल नोबल्स संस्थान,1993).

(ii) हुकुमसिंह भाटी, संपा, *मेवाड़ के ऐतिहासिक परवाने- ठिकाना विजयपुर संग्रह* (उदयपुर: प्रताप शोध प्रतिष्ठान, भूपल नोबल्स संस्थान, 1993).

(iii) मीना गौड़, *मेवाड़ ठिकाने के पट्टे परवाने-17वीं से 19वीं शताब्दी* (उदयपुर: अंकुर प्रकाशन, 2008).

3. पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण संबंधी रचनाओं में सर्वत्र 'क्षत्रिय' या उसके अपभ्रंश शब्दों का इस्तेमाल हुआ है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं- *खत्री सोहि **खत्रवट** चले, मरण दिए पिण नवि निकले।* (दलपति-119), ***खत्री** धरम लज्जियो मिट्यो भिड मांन गुमानह॥* (दलपति-120), *प्रथवी **खत्रीवट** हुई हीण।* (दलपति-121), ***राखी** खित्रवट रेख* (हेमरतन-1, लब्धोदय-3), ***खित्रवटि** हुई खीण* (हेमरतन-59), *भलउ भवाड़े **खित्रि** वंश पुहवी करावे सबल प्रशंस* (हेमरतन-72), ***खित्रिवटि** काँइ न आणिसूँ खता* (हेमरतन-84). *खोई **खित्रिवट** लीको रे* (लब्धोदय-68). *लाजत छै नीची दियां कुल **खत्री** धर्म सार* (लब्धोदय-69), ***खित्रिवट** राखजो खरो रे* (लब्धोदय-91) आदि। मध्यकालीन होते हुए भी इन रचनाओं में 'राजपूत' शब्द का व्यवहार बहुत सीमित है। इससे संबंधित दो उदाहरण मिलते हैं, जो इस प्रकार हैं- (i) *वळि मरबो **रजपूतां** भलो। आमो सांमो करबो भलो॥*(ii) *तीन सहस **रजपूत,** खाय अमल, घूँमै खड़े।* (जटमल नाहर-204)

4. (i) वेद व्यास, *महाभारत* (द्रोण पर्व), 7.112.20. संपा. रामचंद्र शास्त्री (दिल्ली: ओरियंटल बुक्स रीप्रिंट कारपोरेशन, द्वितीय संस्करण 1979), 160.

(ii) वेद व्यास, *महाभारत* (शांति पर्व),12.63.9, 111.

5. (i) *राजपुत्रः कृच्छ्रवृत्तिरसदृशे कर्मणि नियुक्तः पितरमनुवर्तेत॥1॥ / अन्यत्र प्राणाबाधक प्रकृतिकोपकपातकेभ्य॥2॥* - कौटिल्य, *कौटलीय अर्थशास्त्र,* 18.1, संपा. एवं व्याख्या उदयवीर शास्त्री (नयी दिल्ली: मेहरचंद लछमनदास, 2016), 51.

(ii) *अथ तेजस्विसदनं तपःक्षत्रं तमाश्रमम्। / केचिदिक्ष्वाकवो जग्मू राजपुत्रा विवत्सवः॥* - अश्वघोष, *सौदरानंद काव्य,* 1.18, संपा एवं अनुवाद सूर्यनारायण चौधरी (कठौतिया (झांसी): संस्कृत भवन, 1948), 4.

(iii) भालिभाडाप्रभृतिग्रामेषु संतिष्ठमानश्रीप्रतिहावंशीयसर्व्वराजपुतैश्च। - एच. लूडर्स, ''आबू पर नेमिनाथ मंदिर का वि.सं.1287 का शिलालेख,'' *एपिग्राफ़िया इंडिका,* 1905-06, खंड-VIII, संपा. ई. हल्सटेक (कलकत्ता: आरिकियोलोजिल सर्वे ऑफ़ इंडिया, 1906), 222.

6. इतिहास में नवीं से लगाकर बारहवीं सदी तक के समय को 'राजपूत युग' सबसे पहले वी.ए. स्मिथ ने कहा। बाद में यह प्रयोग यूरोपीय और भारतीय इतिहाकारों में चलन में आ गया। - वी.ए. स्मिथ, *ऑक्सफ़ोर्ड हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया* (लंदन : ऑक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1923), 172.

7. अनिलचंद्र बनर्जी, *लेक्चर्स ऑन राजपूत हिस्ट्री* (कलकत्ता: फर्म के.एल. मुखोपाध्याय, 1962), 29.

8. चंद बरदाई, *पृथ्वीराजरासो,* संपा. मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या (वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा, 1904-1912), 1: 51.

9. सूर्यमल्ल मीसण, *वंश भास्कर,* संपा. चंद्रप्रकाश देवल (नयी दिल्ली: साहित्य अकादेमी, द्वितीय सस्करण 2017), 1: 498-564.

10. जेम्स टॉड, *एनल्स एंड एंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान,* संपा. विलियम क्रूक (दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 1971, प्रथम संस्करण 1920),1: 70.

11. विलियम क्रूक, ''इंट्रोडक्शन'', जेम्स टॉड कृत *एनल्स एंड एंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान,* 1: XXXI.

12. वि.ए. स्मिथ, *अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया* (ओक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1914), 409.

13. डी.आर. भंडारकर, ''फोरेन एलिमेन्ट्स इन दि हिन्दू पोपूलेशन,'' *इंडियन एंटिक्वेरी,* खंड-40, संपा. रिचर्ड क्रेंक टेंपल एवं डी.आर. भंडारकर (बम्बई: ब्रिटिश इंडिया प्रेस,1911), 7.

14. रोमिला थापर, *प्राचीन भारत का इतिहास* (नयी दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, बारहवाँ संस्करण 1990, मूल अंग्रेजी संस्करण 1966), 205.

15. सी.वी. वैद्य, *हिस्ट्री ऑफ़ मेडिईवल हिंदू इंडिया* (पूना: दि ओरियंटल बुक सप्लाइंग एजेंसी, 1924), 2: 7.

16. गौरीशंकर ओझा, *राजपूताने का इतिहास,* (अजमेर: वैदिक यंत्रालय, 1937), 1: 41-78.

17. अनिलचंद्र बनर्जी, *लेक्चर्स ऑन राजपूत हिस्ट्री,* 29.

18 मोहम्मद हबीब, *भारतीय इतिहास का आरंभिक मध्यकाल,* संपा. इरफ़ान हबीब (दिल्ली: ग्रंथ शिल्पी, हिंदी संस्करण 2010), 51.

19. वी.ए. स्मिथ, *अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया,* 411.

20. सी.वी. वैद्य, *हिस्ट्री ऑफ़ मेडिईवल हिंदू इंडिया,* 2: 17.

21. वही, 6.

22. गौरीशंकर ओझा, *राजपूताने का इतिहास,* 1: 58.

23. अनिलचंद्र बनर्जी, *लेक्चर्स ऑन राजपूत हिस्ट्री,* 7.

24. सी.वी. वैद्य, *हिस्ट्री ऑफ़ मेडिईवल हिंदू इंडिया,* 2: 10.

25. वही, 17.

26. हीरानंद, ''ग्वालियर के शिलालेख,'' *एन्यूअल रिपोर्ट*-203-4, (कलकत्ता: आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया, 203-204), 277- 281.

27. *रघुकुलतिलको महेंद्रपाल: सकलकलानिलय: स यस्य शिष्य: ॥*- राजशेखर, *विद्धशालभंजिका,* 1.6, संपा. एवं व्याख्या रमाकांत त्रिपाठी (वाराणसी: चौखंभा विद्या भवन, 1953), 3.

28. एफ. कीलहोर्न, ''मथनदेव का राजोर शिलालेख (वि.सं.1016),'' *एपिग्राफ़िया इंडिका,* खंड-III (कलकत्ता: आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया, 1894-95, पुनर्मुद्रण, 1979), 263-267.

29. एफ. कीलहोर्न, ''चहमान विग्रहराज का हर्ष शिलालेख (वि.सं.1030),'' संपा. जेस बर्गेज, *एपिग्राफ़िया इंडिका,* खंड-II (कलकत्ता: आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया, 1892), 121.

30. नयचंद सूरि, *हम्मीर महाकाव्य,* संपा. मुनि जिनविजय (जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान,1997), 1.

31. गौरीशंकर ओझा ने लिखा है कि ''सोलंकी बघेल अपने को अग्निवंशी बताते हैं और वशिष्ठ ऋषि द्वारा अपने आदि पुरुष चालुक्य को उत्पन्न मानते हैं, परंतु सोलंकियों के वि.स. 635 से 1600 तक के अनेक शिलालेखों, दानपत्रों और पुस्तकों में कहीं उनके अग्निवंशी होने की कथा का लेश मात्र

भी नहीं पाया जाता। उनका चंद्रवंशी और पांडवों की परंपरा में होना लिखा है।''– गौरीशंकर ओझा, *राजपुताने का इतिहास,* 1: 239.

32. (i) *ब्रह्मक्षत्रकुलीनः समस्तसामन्तचक्रनुतचरणः ।/ सकल सुकृतैक पुंजः श्रीमान्मुंजश्चिरं जयति ॥* – *श्रीपिंगलाचार्य विरचितम् छंदःशास्त्रम्* (श्रीहलायुध भट्ट विरचतया मृत संजीवनी व्याख्या), संपा. पंडित केदारनाथ (बम्बई: निर्णय सागर प्रेस, 1938), 49.

(ii) परमार अभिलेखों के अध्येता ए.सी. मित्तल का भी मानना है कि परमारों के अग्निवंशी होने के बजाय ब्रह्मक्षत्र होने की संभावना अधिक है। उन्होंने लिखा है कि ''यह संभावना व्यक्त की जा सकती है कि यद्यपि वे मूलत: वशिष्ठ गोत्री ब्राह्मण थे, परंतु क्षात्रधर्म स्वीकार कर लेने के कारण ब्रह्म क्षत्रिय कहलाने लगे।'' – ए.सी. मित्तल, संपा. *दि इंसक्रिप्सन्स ऑफ़ इंपीरियल परमार्स* (अहमदाबाद: एल.डी. इंस्टीट्यूट 1979), 14.

33. के.एन. दीक्षित एवं के.बी. दिसकलकर, ''परमार सियाका के दो हारसोला के ताम्रपत्र,'' *एपिग्राफ़िया इंडिका,* खंड-XIX (दिल्ली: आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया, 1927-28, पुनर्मुद्रण, 1983), 236-244.

34. डी.सी. गांगुली, ''दि गुर्जर्स इन दि राष्ट्रकूट इनस्क्रिप्सन्स,'' *प्रोसिडिंगज ऑफ़ इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस,* 1939, खंड-III (इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, 1939), 513-515.

35. चंद बरदाई, *पृथ्वीराजरासो,* 1: 54.

36. सी.वी. वैद्य, *हिस्ट्री ऑफ़ मेडिईवल हिंदू इंडिया,* 2: 25.

37. डी.आर. भंडारकर, ''फोरेन एलिमेन्ट्स इन दि हिन्दू पोपूलेशन,'' 7.

38. जे.डबल्यू. मेकक्रिंडले, *एंशियन्ट इंडिया ऑफ़ मेगास्थनीज एंड एरियन* (लंदन: टूबनर एंड कंपनी,1870), 85.

39. थोमस वाट्टर्स, *ऑन ह्वेनत्सांग ट्रेवल्स इन इंडिया* (लंदन: रॉयल एशियाटिक सोसायटी, 1904), 168.

40. *शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः । वृषलत्वं गता लोकेब्राह्मणादर्शनेन च ॥ (10/43) पौण्ड्रकाश्चौड्द्रविडाः काम्बोजाः यवनाः शकाः ॥ पारदाः पह्लवाः किराता दरदाः खशाः ॥* (10/44) – *मनुस्मृति,* श्री कुल्लोक भट्ट प्रणीत, संपा. हरगोविंद शास्त्री (वाराणसी: चौखंभा संस्कृत संस्थान, सातवाँ संस्करण 2003), 546.

41. गौरीशंकर ओझा, *राजपूताने का इतिहास,* 1: 49.

42. *विष्णु पुराण* (अंश-4, अध्याय-3) में इक्ष्वाकु राज वृक के पुत्र बाहु के वृत्तांत में यह उल्लेख है। इसी तरह *वायु पुराण* (अध्याय-18, श्लोक-121-43) में भी यह उल्लेख आता है।

43. *हुणाण राइणा इह उअ रायणो इमे पहु रमंते; अंगाण रण्णा राइणो तह सगेण राएण।* – हेमचंद्राचार्य, *कुमारपालचरित,* 4.61, संपा. रूपेंद्रकुमार पगारिया (तिरपाल (उदयपुर): श्री वर्धमान जैन विद्यापीठ, 1985), 128.

44. मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा अल्लट (953 ई.) की पत्नी राणी हरियादेवी हूण वंश की थी।

ऐसे ही चेदी के कलचुरी हैहयवंशी राजा गांगेय देव के पुत्र कर्ण (1042 ई.) का विवाह हूण कुमारी अल्लदेवी के साथ हुआ था। – गौरीशंकर ओझा, *राजपूताने का इतिहास,* 1: 63.

45. जेम्स लेग्गे, *दि चाइनीज़ मोंक फ़ाहियान एंड हिज ट्रेवल्स इन इंडिया एंड सिलोन* (लंदन: ओक्सफ़ोर्ड, 1886), 12–14.

46. सर ऑरेल स्टाइन के 427 प्राकृत लेखों का संकलन इस पुस्तक में मिलता है। – ए.एम. वोयर, ई.जे. राप्सन एवं ई. सेनार्ट, संपा., *खरोष्ठी इंस्क्रिप्सन्स डिसकवर्ड बाई सर ऑरेल स्टाइन इन चाइनीज़ तुर्किस्तान* (लंदन: ओक्सफ़ोर्ड, 1920).

47. श्लोक सं. 7, ''माउंट आबू के अचलेश्वर मंदिर का वि.सं.1342 (1258 ई.) का शिलालेख,'' *ए कलेक्शन ऑफ़ प्राकृत एंड संस्कृत इंसक्रिप्सन्स भावनगर क्षेत्र* (भावनगर: आर्कियोलोजिल डिपार्टमेंट ऑफ़ भावनगर, 1894), 84.

48. गौरीशंकर ओझा, *उदयपुर राज्य का इतिहास* (जोधपुर: राजस्थानी ग्रंथागार 1996–97, प्रथम संस्करण 1828), 1: 9.

49. ''राज्य (चित्तौड़) को पहले 'रावल' कहा जाता था, लेकिन अतीत में लंबे समय से इसको 'राणा' के नाम से जाना जाता है। वह गहलोत कबीले का है और नोशीरवान से (की तरह) सभ्य होने का दिखावा करता है।''– अबुल फ़ज़ल एल्लामी, *आईन-ए-अकबरी,* अनु. एवं संपा. एच.एस. जैरट (दिल्ली: लो प्राइस पब्लिकेशन, 2011, प्र. सं. 1927), 1: 273.

50. जेम्स टॉड, *एनल्स एंड एंटिक्विटीज़ एड ऑफ़ राजस्थान,* 1: 251–260.

50. वही, 1: 251–260.

52. डी. आर. भंडारकर, ''गुहिल,'' *जर्नल एंड प्रोसिडिंगज़ ऑफ़ एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल 1909,* खंड-5 (कलकत्ता: एशियाटिक सोसायटी, 1910), 167–187.

53. गौरीशंकर ओझा, ''बापा रावल का सोने का सिक्का,'' *नागरी प्रचारिणी पत्रिका,* खंड-11, 241–247.

54. डी.आर. भंडारकर, ''आटपुर (आहाड़) का शक्तिकुमार शिलालेख,'' *इंडियन एंटिक्वेरी*-XXXIX, मई 1910, 191.

55. डी.आर. भंडारकर, ''एकलिंगजी शिलालेख और लकुलीश संप्रदाय की उत्पत्ति और इतिहास,'' *जर्नल ऑफ़ दि बम्बई ब्रांच ऑफ़ रायल एशियाटिक सोसायटी,* 1908, खंड-5 (बम्बई: एशियाटिक सोसायटी, 1908), 166–167.

56. गौरीशंकर ओझा, *उदयपुर राज्य का इतिहास,* 1: 75 .

57. मुंहता नैणसी, *मुंहता नैणसीरी ख्यात,* संपा. बद्रीप्रसाद साकरिया (जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, तृतीय संस्करण 2006) 1: 1.

58. ''श्याम पार्श्वनाथ मंदिर चित्तौड़ का शिलालेख,'' *जर्नल ऑफ़ एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल,* 1886, खंड-55 (कलकत्ता: एशियाटिक सोसायटी, 1887), 47.

59. एफ. केलहोर्न, ''आबू का समरसिंह वि.सं.1342 शिलालेख,'' इंडियन एंटिक्वेरी, दिसंबर

1887, संपा. जोन फेथफुल एवं रिचर्ड करनेक टेंपल, खंड-XVI (दिल्ली: स्वाति पब्लिकेशंस 1994), 347.

60. गौरीशंकर ओझा: *उदयपुर राज्य का इतिहास,* 1: 77

61. नरलाई के आदिनाथ मंदिर का वि.स.1597 (1541 ई.) का शिलालेख, *ए कलेक्शन ऑफ़ प्राकृत एंड संस्कृत इंसक्रिप्सन्स*- भावनगर क्षेत्र, 140.

62. डी.आर. भंडारकर, ''चाटसू का बालादित्य का शिलालेख,'' *एपिग्राफ़िया इंडिका*-1912-13, खंड-12, संपा. स्टेन नो (नयी दिल्ली: आर्कियोजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया, 1982), 12-13.

63. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* संपा. मनोहरसिंह राणावत (सीतामऊ : नटनागर शोध संस्थान,2003), 1: 335.

64. गौरीशंकर ओझा: *उदयपुर राज्य का इतिहास,* 1:81

65. मान, *राजविलास,* संपा. लाला भगवानदीन (वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा,1912), 18.

66. संपादक का स्पष्ट उल्लेख है कि- ''कर्नल टॉड साहिब भी वलभीपुर के अंतिम राजा शीलादित्य को गुहिल वंश का मूल पुरुष मानकर गुहिलुतों आदि का स्थान वलभीपुर बताते हैं, परंतु वह शीलादित्य हमारे शिलालेख का शीलादित्य नहीं है।'' - पंडित रामकर्ण, ''गुहिल शीलादित्य का सामोली का वि.सं.703 का शिलालेख,'' *नागरी प्रचरिणी पत्रिका,* भाग-1, 319.

67. गौरीशंकर ओझा: *उदयपुर राज्य का इतिहास,* 1: 85.

68. वही, 1: 85.

69. वही, 1: 85

70. वही, 1: 85.

71. वही, 1: 96

72. डी.आर. भंडारकर, ''चाटसू का बालादित्य का शिलालेख,'' *एपिग्राफ़िया इंडिका* -1912-13, खंड-12, 12-13.

73. गौरीशंकर ओझा: *उदयपुर राज्य का इतिहास,* 1: 96.

74. पंडित रामकर्ण, ''गुहिल शीलादित्य वि.सं 703 का सामोली का शिलालेख,'' *नागरी प्रचारिणी पत्रिका,* भाग-1, 13-17.

75. यह सिक्का उदयपुर शास्त्री शोभालाल के पास था, जिसे इतिहासकार गौरीशंकर ओझा ने देखा था। - गौरीशंकर ओझा, *उदयपुर राज्य का इतिहास,* 1: 99.

76. यह शिलालेख इतिहासकार गौरीशंकर ओझा को नागदा (उदयपुर) में मिला था, जिसे उन्होंने उदयपुर राज्य के तत्कालीन संगहालय विक्टोरिया हॉल में रखवाया। - वही, 99.

77. गौरीशंकर ओझा, ''बापा रावल का सोने का सिक्का,'' *नागरी प्रचारिणी पत्रिका,* खंड-11, 241-247.

78. गौरीशंकर ओझा: *उदयपुर राज्य का इतिहास,* 1: 106.

79. वही, 1: 118.

80. (i) गौरीशंकर ओझा, ''प्रतापगढ के राजा महेंद्रपाल-II का वि.स.1003 का शिलालेख,'' *एपिग्राफ़िया इंडिका*-1917-1918, खंड-XIV (कलकत्ता: आरिकियोलोजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया, 1918), 187, (ii) *राजपूताना म्यूजियम, अजमेर 2013 की एन्यूएल रिपोर्ट,* 2.

81. गौरीशंकर ओझा: *उदयपुर राज्य का इतिहास,* 1: 122.

82. डी. आर. भंडारकर, ''शक्तिकुमार का आटपुर शिलालेख,'' *इंडियन एंटिक्वेरी-XXXIX* (1910), 186.

83. वही, 186.

84. ''एकलिंगजी के पास स्थित नाथ मंदिर का वि.सं.1028 (972 ई.) शिलालेख'', *ए कलेक्शन ऑफ़ प्राकृत एंड संस्कृत इंसक्रिप्सन्स भावनगर क्षेत्र* (भावनगर आर्कियोलोजिल डिपार्टमेंट ऑफ़ भावनगर, 1894), 69.

85. देखिए: टिप्पणी सं. 81 एवं गौरीशंकर ओझा, *उदयपुर राज्य का इतिहास,* 1: 125.

86. गौरीशंकर ओझा, *उदयपुर राज्य का इतिहास,* 1: 131.

87. के. केलहोर्न, ''जबलपुर के भेराघाट का रानी अल्हणदेवी द्वारा निर्मित मंदिर का शिलालेख'', एपिग्राफ़िया इंडिका, खंड-II (कलकत्ता: आरिकियोलोजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया, 1892), 7.

88. *एकलिंगमाहात्म्य,* संपा. प्रेमलता शर्मा (दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 1976), 133.

89. (i) ''रणपुर का वि.सं.1485 (1429 ई.) का शिलालेख'', *ए कलेक्शन ऑफ़ प्राकृत एंड संस्कृत इंसक्रिप्सन्स भावनगर क्षेत्र,* 113 (ii) अक्षयकीर्ति व्यास, ''कुंभलगढ़ की पहला और तीसरा का शिलालेख'', *एपिग्राफ़िया इंडिका,* 1937-38, खंड-XXIV, संपा. एन.पी. चक्रवर्ती (कलकत्ता: आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया, पुनर्मुद्रण,1991), 304.

90. गौरीशंकर ओझा, *उदयपुर राज्य का इतिहास,* 1: 145.

91. श्लोक सं. 36-38, एच. लुडर्स, ''माउंट आबू के नेमीनाथ लूणवसही मंदिर का शिलालेख'', *एपिग्राफ़िया इंडिका,* 1905-06, खंड-VIII, संपा. ई. हल्टशेक (कलकत्ता: आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया, पुनर्मुद्रण,1991), 211.

92. श्लोक सं. 36-37, एफ. कीलहोर्न, ''माउंट आबू का समरसिंह का वि.सं.1342 का शिलालेख,'' *इंडियन एंटिक्वेरी,* खंड-VII,1887, संपा. जोन फेथफुल फ्लीट (दिल्ली: स्वाति पब्लिकेशन, 1964), 350.

93. *''रावळ करण लोहड़ा बेटासूं बोहत राजी हुवो। रांणो पकड़ ल्यायो तेथी इणनुं राणरो किताब दे आपरे पाटवी कीयो। माहपनुं अगळी रावळाई दे नै डूंगरपुर बांसवाळो दियो।''* — मुँहता नैणसी, *मुँहता नैणसीरी ख्यात,* 1: 14.

94. श्लोक सं. 6, आर. आर. हालदार, ''चीरवा का समरसिंह वि.सं.1330 का शिलालेख,'' *एपिग्राफ़िया इंडिका,* खंड-XXII, 1887, संपा. एन.पी. चक्रवर्ती (*दिल्ली: आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया,* 1938), 289.

95. एफ. कीलहोर्न, ''माउंट आबू का समरसिंह का वि.सं.1342 का शिलालेख,'' *इंडियन एंटिक्वेरी*-खंड-VII,1887, 350.

96. श्लोक सं. 16, आर. आर. हालदार, ''चीरवा का समरसिंह वि.सं.1330 का शिलालेख,'' *एपिग्राफ़िया इंडिका,* 1887, खंड-XXII, 289.

97. गौरीशंकर ओझा, *उदयपुर राज्य का इतिहास,* 1: 167.

98. वही, 1: 167.

99. देखिए: टिप्पणी सं. 57.

100. *'श्रावकप्रतिक्रमणसूत्रचूर्णि'* नामक यह ग्रंथ तेजसिंह के समय आघाट (आहाड़) में लिखा और चित्रित किया गया। यह संप्रति पाटन में सुरक्षित है।

101. (i) यह शिलालेख घाघसा गाँव (चित्तौड़गढ़) की बावड़ी पर लगा हुआ था और कुछ बिगड़ गया है। इसको गौरीशंकर ओझा ने वहाँ से हटाकर तत्कालीन विक्टोरिया हॉल उदयपुर में रखवाया था।(ii) ''गंभीरी नदी के पुल में 1267 ई. का शिलालेख,'' *जर्नल ऑफ़ एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल-1886,* खंड-55 (कलकत्ता: एशियाटिक सोसायटी, 1887), 46-47.

102. श्लोक सं. 46, एफ. कीलहोर्न, ''माउंट आबू का समरसिंह का वि.सं.1342 का शिलालेख,'' *इंडियन एंटिक्वेरी,* खंड-VII,1887, 350.

103. जिनप्रभ सूरि, *विविध तीर्थकल्प* (वि.स.1389), अनुवाद एवं संपा. अगरचंद, भँवरलाल नाहटा (बालोतरा: जैन श्वेतांबर नाकोड़ा तीर्थ, 1978), 67.

104. (i) एफ. कीलहोर्न, ''माउंट आबू का समरसिंह का वि.सं.1342 का शिलालेख,'' *इंडियन एंटिक्वेरी-* खंड-VII, 1887,845. (ii) आर. आर. हालदार, ''चीरवा का समरसिंह वि.सं.1330 का शिलालेख,'' *एपिग्राफिया इंडिका,* खंड-XXII,1887, 289. (iii), 'माउंट आबू के अचलेश्वर मंदिर का वि.सं. 1342 (1258 ई.) का शिलालेख,'' *ए कलेक्शन ऑफ़ प्राकृत एंड संस्कृत इंसक्रिप्सन्स-* भावनगर क्षेत्र, 84. (iv) ''चित्तौड़ का शिलालेख'' *ए कलेक्शन ऑफ़ प्राकृत एंड संस्कृत इंसक्रिप्सन्स-* भावनगर क्षेत्र, 74. आदि.

105. लेफ्टिनेंट कर्नल जेम्स टॉड *(एंटिक्विटीज़ एंड एनल्स ऑफ़ राजस्थान)* ने रत्नसिंह का नामोल्लेख नहीं किया है। उसने समरसिंह के बाद कर्णसिंह के सत्तारूढ़ होने का उल्लेख किया है, लेकिन यह निराधार है। दरअसल कर्णसिंह समरसिंह के आठ पीढ़ी पहले हुआ था।- रणछोड़ भट्ट कृत *राजप्रशस्ति काव्य,* 3/28 (संपा. मोतीलाल मेनारिया, साहित्य संस्थान, उदयपुर, 1973, 35.), रणकपुर (*ए कलेक्शन ऑफ़ प्राकृत एंड संस्कृत इंसक्रिप्सन्स- भावनगर क्षेत्र,* 113) और एकलिंगजी (*ए कलेक्शन ऑफ़ प्राकृत एंड संस्कृत इंसक्रिप्सन्स-भावनगर क्षेत्र,* 117) सहित और कुछ अभिलेखों में रत्नसिंह का नामोल्लेख नहीं है।

106. मुँहता नैणसी, *मुँहता नैणसीरी ख्यात,* 1: 14.

107. कालिकारंजन कानूनगो, *स्टीडीज़ इन राजपूत हिस्ट्री* (दिल्ली: एस. चांद एंड कंपनी, 1960), 17.

108. गौरीशंकर ओझा, *उदयपुर राज्य का इतिहास,* 1: 191.

109. *एकलिंगमाहात्म्य,* संपा. प्रेमलता शर्मा, (दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 1976), 133.

110. श्लोक सं. 175-76, अक्षयकीर्ति व्यास, ''कुंभलगढ़ की पहली और तीसरी पट्टिका का शिलालेख,'' *एपिग्राफ़िया इंडिका,* खंड-XXIV, 1937-38, 328.

111. *जर्नल ऑफ़ न्युमिसेमेटिक सोसायटी ऑफ़ इंडिया,* खंड-20, प्लेट-1, 35.

112. जोगेंद्रप्रसाद सिंह, *गुहिला डायनेस्टीज़ ऑफ़ मेवाड़,* युनिवर्सिटी ऑफ़ लंदन की डॉक्टर ऑफ़ फिलोसोफ़ी के लिए प्रस्तुत शोध प्रबंध, 1965, 330.

113. देखिए: अध्याय-5 का अनुच्छेद-3.

114. अधिकांश रचनाओं में रत्नसिंह के अपने सामंतों सहित शासन करने का उल्लेख है। *गोरा-बादल कवित्त* में कहा गया है कि *राजकुली छत्तीस सोहड़ भड सेव करंता।* (*गोरा- बादल कवित्त,* 110) लब्धोदय ने भी लिखा है कि- *मानी मरदाना वली / दरबारइं दो लाख। / सुभट खड़ा सेवा कर इ सुरपति वद इ ज्युं साख॥ पाटनामा* में रत्नसिंह के अधीनस्थ सगोत्रीय और दूसरे सामंतों के नाम उनके उनके ठिकानों (स्थानों) सहित दिए गये हैं। यहाँ इन सामंतों को ''चौदह मिसल के सरदार'' कहा गया। यह पद स्वतंत्रता से पहले प्रमुख सामंतों के लिए चलन में था। (*उदयपुर-चित्तौड़ पाटनामा,* 1: 370-380) यह भी कि जब रत्नसेन कोई निर्णय लेता है, तो वह अपने अधीनस्थ सामंतों की बैठक आहूत करता है।

115. रामशरण शर्मा, *भारतीय सामंतवाद* (नयी दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, द्वितीय हिंदी संस्करण, 1990), 237.

116. प्रस्तुत शिलालेख में ''अपाराजित राजपुत्र गोभट्टपादानुध्यानात्'' पंक्ति 'राजपुत्र' शब्द से आशय किसी के अधीनस्थ सामंत होने की प्रतीति होती है।- डी.सी. सरकार, ''भ्रामर माता (गौरी) का शिलालेख,'' *एपिग्राफ़िया इंडिका,* भाग-30, अक्टूबर,1953 संपा. एन. लक्ष्मीनारायण राव (नयी दिल्ली: आरकियोलोजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया, 1987), 120.

117. डी.आर. भंडारकर, ''वर्मलात का बसंतगढ़ शिलालेख,'' *एपिग्राफ़िया इंडिका,* भाग-09, संपा. ई. हुल्त्स, 1907-08 (कलकत्ता: गवर्नमेंट प्रिंटिंग,1908), 187.

118. गोपीनाथ शर्मा, *राजस्थान के इतिहास के स्रोत* (जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, 1972), 52.

119. डी.आर. भंडारकर, ''बालादित्य का चाटसू शिलालेख,'' *एपिग्राफ़िया इंडिका,* भाग-12, संपा., 1913-14 (नयी दिल्ली: आरकियोलोजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया, 1982), 10.

120. गोपीनाथ शर्मा, *राजस्थान के इतिहास के स्रोत,* 95.

121. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* संपा. मनोहरसिंह राणावत (सीतामऊः नटनागर शोध संस्थान, 2003), 1:319.

122. मुंहता नैणसी, *मुंहता नैणसीरी ख्यात,* 1: 14.

123. ज़हीरूद्दीन मुहम्मद बाबर, *बाबरनामा,* हिन्दी अनुवाद युगजीत नवलपुरी (नयी दिल्ली: साहित्य अकादेमी, पुनर्मुद्रण 2012), 405

124. गौरीशंकर ओझा, *उदयपुर राज्य का इतिहास,* 1: 20.

125. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* 1: 298.

126. वही, 391.

127. गौरीशंकर ओझा, *उदयपुर राज्य का इतिहास,* 1: 21.

128. धर्मपाल शर्मा, *मेवाड़-संस्कृति और परंपरा* (उदयपुर: प्रताप शोध प्रतिष्ठान, 1999), 120.

129. हुकुमसिंह भाटी, *मेवाड़ के ऐतिहासिक पट्टे-परवाने,* (उदयपुर: प्रताप शोध प्रतिष्ठान, 1999), XXIV.

130. जेम्स टॉड, *एनल्स एंड एंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान,* 1: 165.

131. हुकुमसिंह भाटी, *मेवाड़ के ऐतिहासिक पट्टे-परवाने,* XIX.

132. गोपीनाथ शर्मा, *राजस्थान के इतिहास के स्रोत,* 109.

133. गौरीशंकर ओझा, *उदयपुर राज्य का इतिहास,* 1: 192.

134. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* 1: 339.

135. (i) रोमिला थापर, *भारत का इतिहास* (नयी दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, बारहवाँ हिंदी संस्करण 1990), 218. (ii) रामशरण शर्मा, *भारतीय सामंतवाद,* 11.

136. जेम्स टॉड, *एनल्स एंड एंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान,* 1: 153.

137. रामशरण शर्मा, *भारतीय सामंतवाद,* 61.

138. हरबंश मुखिया, "क्या भारतीय इतिहास में फ़्यूडलिज़्म रहा है?," *फ़्यूडलिज़्म और गैर यूरोपीय समाज,* संपा. हरबंश मुखिया (नयी दिल्ली: ग्रंथ शिल्पी, हिंदी संस्करण 1998), 1-49.

139. अल्फ्रेड सी. लायल, *एशियाटिक स्टडीज़: रिलीजन्स एंड सोशियल इन इंडिया, चाइना एंड एशिया* (लंदन: जोन मुर्रे, अल्मबरेले स्ट्रीट, 1884), 207-219.

140. गोपीनाथ शर्मा, *राजस्थान का इतिहास* (आगरा: शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी,1971), 1: 476.

141. जे. सदरलेंड, *स्केचेज़ ऑफ़ दी रिलेशन सबसिस्टिंग बिटवीन दी ब्रिटिश गवर्नमेंट एंड दि डिफरेंट नेटिव स्टेट्स* (कलकत्ता: जी.एच. हट्टमान मिलेट्री ओरफन प्रेस,1837), 179.

142. रामशरण शर्मा, *भारतीय सामंतवाद,* 61.

143. जेम्स टॉड, *एनल्स एंड एंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान,* 1: 156. (इसकी पुष्टि इतिहासकार देवीलाल पालीवाल ने भी की है। उनके शब्दों में "राजस्थान और यूरोपीय सामंती प्रथाओं में कई समान बातें मिलती हैं, जिनकी ओर टॉड ने संकेत किया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह प्रथा मूलतः यूरोप और भारत, दोनों में, सैनिक सेवा के बदले जागीरें देने के स्वरूप उत्पन्न हुई है।" - देवीलाल पालीवाल, संपा. एवं अनुवाद, "आमुख," जेम्स टॉड कृत *राजस्थान में सामंतवाद* (जोधपुर: राजस्थानी ग्रंथागार, 1995), VII.

144. गौरीशंकर ओझा, *उदयपुर राज्य का इतिहास,* 1: 20.

145. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* 1: 339.

146. जेम्स टॉड, *एनल्स एंड एंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान,* 1: 191.

147. हुकुमसिंह भाटी, *मेवाड़ के ऐतिहासिक पट्टे-परवाने,* 1.

148. धर्मपाल शर्मा, *मेवाड़: संस्कृति और परंपरा,* 120.

149. पूर्णचंद नाहर, *जैन लेख संग्रह* (बनारस: ऑफिस जैन साहित्य शास्त्रमाला, 1918), 1: 218-19.

150. शास्त्री पंडित अक्षय कीर्ति, "बिजोलिया का 1170 ई. का शिलालेख," *एपिग्राफ़िया इंडिका,* भाग-26 (1941), संपा. एन.पी. चक्रवर्ती (कलकत्ता: आरकियोलोजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया, 1942), 90-100.

151. "गोरा-बादल कवित्त," *पद्मिनी चरित्र चौपई,* संपा. भँवरलाल नाहटा (बीकानेर: सादुल रिसर्च इंस्टीट्यूट, 1960), 120.

152. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चऊपई,* संपा. उदयसिंह भटनागर (जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, द्वि. सं. 1997), 58.

153. वही, 65.

154. वही, 65.

155. लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* संपा. भँवरलाल नाहटा (बीकानेर: सादुल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, 1960), 66.

156. दलपति विजय, *खुम्माणरासो,* संपा. ब्रजमोहन जावलिया (उदयपुर: महाराणा प्रताप स्मारक समिति, 2001), 119.

157. धर्मपाल शर्मा, *मेवाड़: संस्कृति और परंपरा,* 112-113.

158. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* भाग-1, 338.

159. धर्मपाल शर्मा, *मेवाड़: संस्कृति और परंपरा,* 113.

160. वही, 339.

161. "यहाँ पट्टेदारी जैसी कोई चीज़ नहीं है- उसे चाहे जिस नाम से पुकारें- कानूनन सिद्धांत रूप में राज्य कोई भी ज़मीन किसी भी समय अपने अधिकार ले सकता है- व्यवहार में बारंबार अपने अधिकार में लेता रहा है।" - एच.एम. इलियट एंड जॉन डाउसन, *हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया एज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन* (इलाहाबाद: किताब महल, प्रथम संस्करण 1949), XXI.

162. पाद टिप्पणी-10, मोहम्मद हबीब, *भारतीय इतिहास का आरंभिक मध्यकाल,* संपा, इरफ़ान हबीब (नयी दिल्ली: ग्रंथ शिल्पी, हिंदी संस्करण 2010), 43.

163. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* 1: 319.

164. कौटिल्य, *कौटलीय अर्थशास्त्र,* व्याख्या एवं संपा. उदयवीर शास्त्री (नयी दिल्ली मेहरचंद लछमनदास पब्लिकेशंस, 2016), 69.

165. हरबंश मुखिया, "क्या भारतीय इतिहास में फ़्युडलिज्म रहा है?," 19.

166. जेम्स टॉड, *एनल्स एंड एंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान,* 1: 186.

167. *मनुस्मृति,* 9/44, संपा. हरगोवंद शास्त्री (वाराणसी: चौखंभा संस्कृत संस्थान, सातवाँ संस्करण 2003), 466.

168. गोपाल व्यास, *मेवाड़ का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन* (जोधपुर: राजस्थान साहित्य संस्थान, 1988), 62

169. हुकुमसिंह भाटी, *मेवाड़ के ऐतिहासिक पट्टे-परवाने* (संकलित पत्र सं. 79, पृ.103) वि. सं. 1895), XXI.

170. धर्मपाल शर्मा, *मेवाड़: संस्कृति और परंपरा,* 121.

171. जेम्स टॉड, *एनल्स एंड एंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान,* 1: 185.

172. वही, 172.

173. शुक्राचार्य, *शुक्रनीतिः,* 1/342, व्याख्या एवं संपा. जगदीशचंद्र (दिल्ली: चौखंभा विद्या भवन, 1998), 129.

174. जेम्स टॉड, *एनल्स एंड एंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान,* 1: 199.

175. गौरीशंकर ओझा, *उदयपुर राज्य का इतिहास,* 2: 1089.

176. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* 1: 295.

177. जेम्स टॉड, *एनल्स एंड एंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान,* 1: 203.

178. वेद व्यास, *महाभारत* (शांति पर्व), 12.65, 114

179. *श्रीमद्भगवद्गीता* (हिंदी टीकासहित), 18.43, संपा. स्वामी रामसुखदास (गोरखपुर: गीता प्रेस), 1174.

180. *मनुस्मृति,* 7.2, 304.

181. शुक्राचार्य, *शुक्रनीतिः,* 4.17, 591.

182. याज्ञवल्क्य, *याज्ञवल्क्यस्मृति,* 1.119, संपा. गंगासागर राय (नयी दिल्ली: चौखंभा संस्कृत प्रतिष्ठान,1998), 58.

183. वही, 1.324,

184. वही, 13.326. 144.

185. चंद बरदाई, *पृथ्वीराजरासो,* संपा. मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या (वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा,1904-1912), 1: 247.

186. अल्बेरुनी, *अल्बेरुनीज इंडिया,* संपा. सी. जाखो (लंदन: स्केनर एंड कंपनी, लुडहेट हिल, 1888), 1: 103.

187. अल्बेरुनी, *अल्बेरुनीज इंडिया,* 2: 161.

188. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चऊपई,* 58.

189. वही, 58.

190. वही, 66.

191. दलपतिविजय, *खुम्माणरासो,* 3: 120.

192. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चऊपई,* 84.

193. जटमल नाहर, ''गोरा-बादल कथा,'' लब्धोदयकृत *पद्मिनी चरित्र चौपई,* संपा. भँवरलाल

नाहटा (बीकानेर: सादुल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, 1960), 182.

194. जटमल नाहर, ''गोरा-बादल कथा,'' 204.

195. सुखमय भट्टाचार्य, *महाभारतकालीन समाज,* हिंदी अनुवाद पुष्पा जैन (इलाहाबाद: लोक भारती प्रकाशन, 1966), 470.

196. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चऊपई,* 195.

197. दलपतिविजय, *खुम्माणरासो,* 3: 150.

198. वही, 120.

199. वही, 120.

200. ''पद्मिनीसमिओ,'' *रानी पद्मिनी,* संपा. ब्रजेंद्रकुमार सिंहल (नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2017), 135.

201. वही, 135.

202. *मनुस्मृति,* 7.94, 327.

203. *''गोरा-बादल कवित्त, ''*लब्धोदय कृत *पद्मिनी चरित्र चौपाई,* संपा. भँवरलाल नाहटा (बीकानेर: सादुल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, 1960), 124.

204. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चऊपई,* 66.

205. वही, 69.

206. ''पद्मिनी समिओ,'' 105.

207. ''गोरा-बादल कवित्त,'' 124.

208. जटमल नाहर, ''गोरा-बादल कथा,'' 202.

209. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चऊपई,* 71.

210. ''पद्मिनीसमिओ,'' 137.

211. वही, 136.

212. दलपति विजय, *खुम्माणरासो,* 3: 138.

213. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चऊपई,* 120.

214. *पराशर-स्मृतिः,* 3.30, संपा. चंद्रकांत तर्कालंकार (कोलकाताः दि एशियाटिक सोसायटी, 1947,) 626.

215. वही, 3.37, 929.

216. वेद व्यास, शांति पर्व, 12.97.23, *श्रीःमहाभारतम्,* संपादन एवं अनुवाद रामचंद्र शास्त्री किंजवेडकर (नयी दिल्ली: ओरियंटल बुक्स रिप्रिंट कारपोरेशन, द्वितीय संस्करण 1979), 5: 168.

217. *धर्मकोश,* संपा. लक्ष्मण शास्त्री जोशी (वाई (सतारा): प्राज्ञपाठशाला, 1973), 1075.

218. दलपतिविजय, *खुम्माणरासो,* 3: 160.

219. लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* संपा. भँवरलाल नाहटा (बीकानेर: सादुल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, 1960), 81.

220. वही, 81.
221. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चऊपई,* 75.
222. *मनुस्मृति,* 7.89. 326.
223. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चऊपई,* 95.
224. वही, 96.
225. जटमल नाहर, ''गोरा-बादल कथा,'' 207.
226. जेम्स टॉड, *एनल्स एंड एंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान,* 1: 200.
227. गोपाल व्यास, *मेवाड़ का समाजिक एवं आर्थिक जीवन,* 36.
228. जेम्स टॉड, *एनल्स एंड एंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान,* 1: 200.
229. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चऊपई,* 1.
230. ''पद्मिनीसमिओ,'' 135.
231. लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 1.
232. दलपति विजय, *खुम्माणरासो,* 3: 177.
233. वही, 134.
234. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चऊपई,* 58.
235. दलपति विजय, *खुम्माणरासो,* 3: 177.
236. ''गोरा-बादल कवित्त,'' 121.
237. लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 104.
238. *मनुस्मृति,* 9.30, 423.
239. वही, 9.7, 458.
240. जेम्स टॉड, *एनल्स एंड एंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान,* 1: 200.
241. जिनप्रभ सूरि, *विविध तीर्थकल्प* (वि.स.1389), 67.
242. नारायणदास, रतनरंग और देवचंद, *छिताईचरित,* संपा. हरिहरनिवास द्विवेदी एवं अगरचंद नाहटा (ग्वालियर: विद्यामंदिर प्रकाशन,1960), 51.
243. ''गोरा-बादल कवित्त,'' 118.
244. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चऊपई,* 51.
245. वही, 51.
246. *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा,* 1: 398.
247. ''गोरा-बादल कवित्त,'' 120.
248. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चऊपई,* 123.
249. लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* 70.
250. दलपति विजय, *खुम्माणरासो,* 3: 124.
251. वही, 117.

252. जटमल नाहर, ''गोरा-बादल कथा,'' 198.

253. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चऊपई,* 74.

254. वही, 74.

255. दलपति विजय, *खुम्माणरासो,* 3: 122.

256. जेम्स टॉड, *एनल्स एंड एंटिक्विटीज़ ऑफ़ राजस्थान,* 1: 157.

अध्याय-7

भाषा और शिल्प

प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक कथा-काव्यों की साहित्यिक प्रवृत्तियों का भी मध्यकाल की सामाजिक-सांस्कृतिक ज़रूरतों के अनुसार देशज रूपांतरण हुआ। काव्यरूप, भाषा, छंद, वस्तुविधान, अलंकरण आदि की जो प्रवृत्तियाँ इन कथा-काव्यों मिलती हैं, उनकी शुरुआत और कुछ हद तक विकास प्राकृत और अपभ्रश के ऐतिहासिक चरित कथा-काव्यों में ही हो गया था।[1] ये रचनाएँ सोलहवीं से उन्नीसवीं सदी के बीच हुईं, इसलिए संस्कृत-प्राकृत और ख़ासतौर पर अपभ्रंश में जो साहित्यिक और भाषिक प्रवृत्तियाँ विकसित हुईं, कुछ हद तक उनकी निरंतरता इनमें हैं। यह वह समय था, जब उत्तरी-पश्चिमी भारत में चारण और जैन रचना प्रवृत्तियों का विकास और विस्तार हुआ। यह ऐसा समय भी था, जब कवि-कथा रूढ़ियों का निर्वाह करना कवि होने की अर्हता थी। विवेच्य रचनाओं में इसलिए परम्परा का आग्रह बहुत है और यह इनमें कथा और काव्य संबंधी रूढ़ियों के निर्वाह में ख़ासतौर पर दिखता है। तत्कालीन सामाजिक-सांस्कृतिक ज़रूरतों के अनुसार इनमें पारंपरिक काव्यरूप, अलंकरण और वस्तुविधान आदि का सरलीकरण हुआ और इसको ध्यान में रखकर नवीं से लगाकर उन्नीसवीं सदी तक कवि शिक्षा संबंधी कई ग्रंथों की रचनाएँ होती रहीं।[2] विवेच्य रचनाएँ कथा और इतिहास की एक-दूसरे में आवाजाही में बनती-बढ़ती हैं, इसलिए इनमें साहित्यिक विधान और रचनात्मकता सामान्य काव्य रचनाओं से अलग तरह की है। इन रचनाओं की साहित्यिक-भाषिक बुनावट में कवि शिक्षा की भी निर्णायक भूमिका है। कवि शिक्षा की यह परंपरा संस्कृत-प्राकृत और अपभ्रंश से होती हुई इन रचनाकारों तक पहुँची। ये रचनाकार कमोबेश कवि शिक्षा प्राप्त हैं- कई बार यह शिक्षा वंशानुगत है, तो कई बार यह गुरु परंपरा की देन है। यह तय है कि इनको अपनी परम्परा के साहित्य का ज्ञान है और उसके शास्त्र का व्यवहार इनको आता है। ये ऐतिहासिक कथा-काव्य हैं और इनके मोड़-पड़ाव में बदलाव

की रचनात्मक गुंजाइश ज़्यादा नहीं है, इसलिए इनमें रचनात्मकता का निवेश वस्तु विधान में अधिक है। रचनात्मकता का निवेश इनमें कथा कवि-अभिप्रायों और रूढ़ियों के व्यवहार और तत्संबंधी नवाचार में हुआ है। युद्ध, नगर, ऋ तु, दुर्ग आदि का वर्णन इनके कथा विस्तार और प्रवाह में टापुओं की तरह अलग ही दिखाई पड़ता है। भाषा इनकी पारंपरिक है और यह अपने समय और स्थान से भी प्रभावित है। विवेच्य रचनाओं में से सात कथा-काव्य हैं, जबकि *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा* एक गद्य रचना है। *पाटनामा* का गद्य दैनंदिन बोलचाल का मुहावरेदार और व्यंजक दक्षिणी-पश्चिमी राजस्थान की सांस्कृतिक और भौगोलिक इकाई मेवाड़ की बोली का गद्य है। यह गद्य पारंपरिक क़िस्सागोई की सभी विशेषताओं से पूर्ण है। यहाँ इन रचनाओं की काव्य भाषा, कथा-कवि रूढ़ि, वस्तु विधान, अलंकरण, छंद आदि पर विचार किया गया है।

1.

काव्य प्रतिभा यद्यपि प्राचीन काल से जन्मजात मानी जाती रही है, फिर भी संस्कृत काव्यशास्त्र के लगभग सभी प्रमुख आचार्यों ने कवि के लिए सुशिक्षित एवं बहुश्रुत होना आवश्यक बताया है। भामह, दंडी आदि आचार्यों के अनुसार कवि होने की अर्हताओं में कवि शिक्षा ज़रूरी है।[3] राजशेखर (900 ई.) का *काव्य मीमांसा* ग्रंथ इस संबंध में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। यह ग्रंथ परवर्ती कवियश प्रार्थी विद्वानों के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हुआ। *काव्य मीमांसा* के 18 अध्यायों में शास्त्र परिचय, पदवाक्य विवेक, पाठ प्रतिष्ठा, काव्य के स्रोत, अर्थव्याप्ति, कविचर्या, राजचर्या, काव्यहरण, कविसमय, देशविभाग, कालविभाग आदि कविशिक्षोपयोगी विषयों पर प्रकाश डाला गया है।[4] क्षेमेंद्र ने भी अपने ग्रंथ *कविकंठाभरण* (1050 ई)[5] में काव्यरचना में रुचि रखनेवाले व्यक्तियों के लिए कुछ दिशा-निर्देश तय किए हैं। बारहवीं सदी के पूर्वार्ध में वाग्भट की *वाग्भटालंकार:*[6] का योगदान भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण है। अमरचंद्र (बारहवीं सदी) की *काव्यकल्पलतावृत्ति,*[7] तथा केशव मिश्र (सोलहवीं सदी) की *अलंकारशेखर*[8] आदि रचनाएँ कवि शिक्षामूलक रचनाएँ हैं। संस्कृत के समानांतर प्राकृत-अपभ्रंश में भी जब कवि कर्म ज़ोर पकड़ने लगा, तो कवि शिक्षा-छंद, अलंकार आदि से संबंधित ग्रंथ संस्कृत के साथ प्राकृत और अपभ्रंश में भी होने लगे। इन भाषाओं में नये विकसित छंद और अलंकरण को भी शास्त्रबद्ध किया जाने लगा। स्वयंभू की *स्वंभूछंद* नवीं-दसवीं सदी में कभी हुई संस्कृत-प्राकृत छंदों के साथ अपभ्रंश छंदों का स्वरूप निरूपण करने वाली बहुत महत्त्वपूर्ण और प्राचीन रचना है।[9] विरहांक का समय भी कमोबेश यही रहा होगा। विरहांक ने अपभ्रंश की

दो शैलियाँ– आभीरी और मरुवाणी करते हुए *वृत्तजातिसमुच्च्य* में इसके छंदों का स्वरूप विवेचन किया है।[10] हेमचंद्र (1088–1172 ई.) का *छंदोनुशासन*[11], अज्ञातकर्तृक *प्राकृतपैंगलम्*[12], श्रीनंदिताढ्यकृत *गाथालक्षणम्*[13] आदि भी इसी तरह की रचनाएँ हैं। ग्यारहवीं सदी के उत्तरार्ध में राजस्थान और गुजरात में नये मात्रिक छंदों का विकास हुआ और इनकी पहचान के लिए कई रचनाएँ हुईं। *कविदर्पण*[14] (चौदहवीं सदी) में नये विकसित मात्रिक छंदों का सोदाहरण स्वरूप निरूपण है। *संदेशरासक* में प्रयुक्त सभी छंद इसमें आ गए हैं। श्रीकृष्ण भट्ट कृत *वृत्तमुक्तावली*[15] (1699–1743 ई.), चंद्रशेखर भट्ट कृत *वृत्तमौक्तिक*[16] (सोलहवीं सदी) भी इसी तरह की रचनाएँ हैं। *वृत्तमुक्तावली* में दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया, छप्पय आदि का भी संस्कृत में निरूपण है। *वृत्तमौक्तिक* छंदशास्त्र की दृष्टि से एक परिपूर्ण रचना है और इसमें सर्वाधिक छंदों का निरूपण हुआ है। चारण कवि किशनाजी आढ़ा के *रघुवरजसप्रकास* की रचना 1823–24 ई. में हुई। यह मरुधर भाख़ा (राजस्थानी) छंदशास्त्र विषयक सबसे अधिक विस्तृत और वैविध्यपूर्ण ग्रंथ है।[17] इन रचनाओं के रचनाकार जैन और चारण, दोनों थे। स्पष्ट है कि पदमिनी–रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर ऐतिहासिक कथा–काव्यों के रचनाकारों को छंद और अलंकरण का शास्त्र ज्ञान संस्कृत, प्राकृत–अपभ्रंश और देश भाषाओं में उपलब्ध था और ज़ाहिर है, यह ज्ञान चारण कवियों को वंशानुगत और जैन यति–मुनियों को गुरु परंपरा से मिलता था। चंद बरदाई ने *पृथ्वीराजरासो* में एक जगह लिखा है कि *छंद प्रबंध कवित्त जति। साटक गाह दुहत्थ॥ / लघु गुरु मंडित खंडि यह, पिंगल अमर भरत्थ॥* अर्थात् (मेरे प्रबंध काव्य रासो में) कवित्त (षट्पदी), साटक (शार्दूलविक्रीडित), गाहा (गाथा) और दोहा नामक वृत्त प्रयुक्त हुए हैं, जिनमें मात्रादि नियम पिंगलाचार्य के अनुसार और संस्कृत (अमरवाणी) के छंद भरत के मतानुकूल हैं।[18]

2.

कथा–काव्यरूप की दृष्टि से पद्मिनी–रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर कथा–काव्य ऐसे कथा–काव्य रूपों में हैं, जो संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश से होते हुए देशभाषाओं में क्षेत्रीय सांस्कृतिक ज़रूरतों के तहत रूपांतरित हुए हैं। चरित, गाथा, आख्यान आदि कथा–काव्य रूपों ने अपभ्रंश और परवर्ती देश भाषाओं में कई रूप धारण किए। ऐतिहासिक काव्य की चारण और जैन परंपराएँ निरंतर समृद्ध रही हैं, इसलिए इनका देशज रूपांतरण भी विविध रूपों में हुआ। चारण काव्य की प्रवृत्ति के रूप में विकसित 'रासो' और जैन काव्य की प्रवृत्ति के रूप में विकसित 'रास' आरंभ में अलग प्रवृत्तियाँ नहीं थीं, लेकिन बाद में ये अलग हो गईं। हेमचंद्र के *काव्यानुशान* में 'रासक' को

गेय रूपक कहा गया।[19] आरंभ में यह गेय रूपक था, लेकिन कालांतर में यह चरित प्रधान रास में बदल गया। युद्ध, आखेट आदि पर एकाग्र रचनाओं को कालांतर में 'रासो' और इससे अलग कथा प्रधान रचनाओं को 'रास' कहा जाने लगा।[20] चरित रचनाओं में कथा विस्तार और वर्णन के लिए चौपाई का प्रयोग होता था, इसलिए इनका नाम 'चरित्र' या 'चउपई' भी होने लगा। पद्मिनी चरित्र विषयक रचनाओं के नामकरण उपलब्ध प्रतियों में 'चरित्र' के साथ 'चउपई' भी मिलते हैं। लिपिकर्ताओं ने इनको कहीं 'चउपई', तो कहीं 'चरित्र' लिखा है। 'रासो' वंश और ख्यात के संयोग से विकसित कथा-काव्यरूप है, जिसका चारण और जैन, दोनों रचनाकारों ने इस्तेमाल किया। 'समिओ' भी 'समय' से विकसित काव्य रूप है। विस्तृत चारण रासो रचनाओं का विभाजन 'समयों' में होता था। 'समिओ' केवल पद्मिनी-रत्नसेन विषयक एक प्रकरण पर निर्भर रचना है, इसलिए इसका नामकरण कदाचित् *पद्मिनीसमिओ* हुआ है। 'पाटनामा' ख्यात और वंश का मिला-जुला चारण रचना रूप है।[21] इस तरह की रचना रूप की कोई परंपरा नहीं मिलती। इन रचनाओं में प्रयुक्त कथा-काव्य रूप रूढ़ और सर्वथा पारंपरिक नहीं हैं। कवि-लेखकों ने अपनी आवश्यकता के अनुसार इनमें परिवर्तन किए हैं।

गोरा-बादल कवित्त 82 छंदों की एक सुगठित लघुकाय प्रबंध रचना है। यह एक चारण चरित रचना है, लेकिन यहाँ कथा कथन और विस्तार के लिए छप्पय (कवित्त) छंद का व्यवहार सबसे अधिक है, इसलिए इसको 'कवित्त' कहा गया है। चारण काव्य परंपरा में इस तरह की 'कवित्त' रचनाओं की परंपरा है। यहाँ कथा इतनी संक्षिप्त और सुगठित है कि इसका विभाजन नहीं किया गया है। आरंभ में गणपति की वंदना और फिर कथा संकेतक है, जिसमें कवि ने गोरा के 'गूण गूँथने' को अपना प्रयोजन बताते हुए और कथा को संकेत में कहा है।[22] अन्य रचनाओं की तरह यहाँ कथा के सभी मोड़-पड़ाव हैं, लेकिन इनके विस्तार में जाने के बजाय कवि-कथाकार केवल इनकी ओर संकेत कर आगे बढ़ गया है। यह रचना एक तरह का कथा बीज है, जिसमें विस्तार और पल्लवन की संभावनाएँ हैं। उत्तरी-पश्चिमी भारत के लोक में इस तरह कथा बीजों को स्मृति में सुरक्षित रखने की परंपरा थी। प्रबंध रचना रूपों के लिए जिस तरह की औपचारिकताएँ अपेक्षित हैं, कवि-कथाकार ने इसमें उनका निर्वाह नहीं किया है। दरअसल यह रचना रूप इस तरह का है कि यह इसमें अपेक्षित भी नहीं है। हेमरतन कृत *गोरा-बादल पदमिणी चउपई* एक पारंपरिक चरित काव्य रूप की जैन रचना है। एक तो इसमें चौपाई छंद की प्रधानता है, इसलिए इसे 'चरित' के बजाय 'चउपई' रचना कहा गया है। यह एक संक्षिप्त प्रबंध रचना है, जो दस खंडों में विभक्त है। यह विभाजन घटना या प्रकरण पर आधारित है।

खंडों का नामकरण भारतीय परंपरा के अनुसार पहलो, दूजो, तीजो आदि में किया गया है। यह रचना 620 छंदों की अपेक्षाकृत संक्षिप्त रचना है, लेकिन इसमें प्रबंध संबंधी औपचारिकताओं का निर्वाह है। आरंभ में गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सरस्वती की वंदना है और उसके बाद कथा प्रयोजन और कथा संकेतक है। हेमरतन ने आरंभ में अपने गुरु पद्मराज वाचक की वंदना की है। इसके बाद चित्रकूट की प्रशस्ति के साथ ही कथा आरंभ की गई है।[23] प्रभावती के व्यंग्यात्मक आग्रह पर सिंघल द्वीप की पद्मिनी से रत्नसेन का विवाह, राघव का अंत:पुर में प्रवेश और उसका देश निकाला, राघव का दिल्ली पहुँचकर पद्मिनी की सराहना और अलाउद्दीन का आक्रमण, रत्नसेन और अलाउद्दीन का युद्ध, अलाउद्दीन का दुर्ग में प्रवेश और झरोखे में पद्मिनी को देखकर मूर्च्छित होना, अलाउद्दीन द्वारा पद्मिनी की माँग और इस पर रत्नसेन के पुत्र वीरभाण सहित सामंतों की सहमति और पद्मिनी की नाराज़गी, पद्मिनी की सहायता के लिए गोरा-बादल का आगमन और बादल की माता और पत्नी का प्रतिरोध, गोरा-बादल का युक्तिपूर्वक रत्नसेन को क़ैद से मुक्त कराना, गोरा की मृत्यु और गोरा की पत्नी का सती होना- इस रचना की मुख्य घटनाएँ और मोड़-पड़ाव हैं। अंत में कवि ने जैन परंपरा के अनुसार रचना प्रशस्ति लिखी है, जिसमें उसने अपने समय के शासक महाराणा प्रताप, रचना के प्रणेता ताराचंद और गुरु पद्मराज वाचक की सराहना की है और इसमें इसकी रचना का समय संवत् 1646 का उल्लेख भी किया है। समापन पर हेमरतन ने कथा का समाहार करते हुए लिखा है कि- *पद्मिणी राखी राजा लीहु, गढनउ भार घणा झीलीऊ। रिणवट करीनई राखी देह, नमो, नमो बादिल गुण गेह॥*[24]

हेमरतन की *चउपई* से प्रभावित होते हुए भी लब्धोदय की *पद्मिनी चरित्र चौपई* का संगठन अलग तरह का है। यह तीन खंडों में विभक्त है और इसके तीनों खंडों के आरंभ में मंगलाचरण है और अंत में पुष्पिका लेख में उस खंड की कथावस्तु का सांकेतिक उल्लेख है। पहले खंड की पुष्पिका के अंत में लिखा गया है कि *इति श्री राणा श्री रतनसिंह पदमणी परणी पनोता प्रथम खंड।*[25] इसी तरह द्वितीय खंड के अंत में..*राणा श्री रतनसिंह सिंहलद्वीप गमन श्री पदमिनी पाणिग्रहणं श्री चित्रकूट दुर्गागमन संबंध प्रकाशो लिखा गया है।*[26] सभी पुष्पिका लेखों में रचना के प्रेरक परिवार के सदस्यों की प्रशस्ति भी है। यह एक प्रकार की चरित्र रचना है और इसको अधिकांश प्रतियों में 'चरित्र' ही कहा गया है। यह 33 ढालों और 24 देशी राग-रागिनियों में निबद्ध है। तृतीय खंड में कवि ने लिखा भी है कि *इतिश्री शील प्रभावे पद्मिनी चरित्रे ढाल भाषा बंधे श्री रतनसेन रावल तास सुभट गोराबादल रिण जय प्रतापै: तृतीय खंड संपूर्णम्।*[27] ढाल एक प्रकार का गेय जैन काव्य रूप है, जो विभिन्न देशी राग-रागिनियों में होता है।[28]

पद्मिनीसमिओ अज्ञात कवि की रचना है और इसके काव्य रूप का नामकरण 'समिओ' किया गया है। यह संपूर्ण पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर रचना है और जटमल नाहर कृत *गोरा-बादल कथा* और हेमरतनकृत *गोरा-बादल पदमिणी चउपई* जैसी ही रचना है। कथा के मोड़-पड़ाव और छंद योजना भी कमोबेश जटमल नाहर की रचना के समान है, लेकिन कवि ने इसका नामकरण 'कवित्त' करने के बजाय 'समिओ' किया है।[29] 'समिओ' दरअसल 'समय' का अपभ्रंश रूप है। रासो काव्यों का विभाजन समयों- पद्मावती समय, कनवज्ज समय आदि में होता था। रचनाकार शैली और भाषा के आधार पर चारण लगता है, इसलिए शायद उसने अपनी रचना का एक घटना पर एकाग्र होने के कारण नामकरण 'समिओ' किया होगा। *समिओ* की कथा के मोड़-पड़ाव *गोरा बादल-पदमिणी चउपई* और *पद्मिनी चरित्र चौपई* से कुछ हद तक अलग हैं। भोजन पर राजा रत्नसेन को नाराज़गी की जिस कथा रूढ़ि को अधिकांश रचनाओं का आधार बनाया गया है, वह यहाँ नहीं है। यह रचना खंडों आदि में विभक्त भी नहीं है। कवि ने आरंभ में लिखा है कि *अथ श्री पद्मिणीजी रौ समिऔ लिख्यते।*[30] कवि ने युद्ध वर्णन में विशेष रुचि ली है। उसने भुजंगी छंद में छंद सं. 54 से लगाकर 88 तक युद्ध और छलपूर्वक रत्नसेन के बंदी बनाये जाने की घटना का विस्तृत वर्णन किया है।[31] आगे फिर युद्ध वर्णन 109 से लगाकर 130 तक निरंतर है, जिसमें कवित्त, मोतीदाम (मोक्तिकदाम), पाड्गत, वीरारस और रसावलू छंदों का प्रयोग हुआ है।[32] 'समिओ' काव्य की कोई परंपरा नहीं मिलती। यह 'कवित' या रास-रासो' जैसे पारंपरिक काव्य रूपों का संक्षिप्त रूप लगता है। जटमल नाहर कृत *गोरा-बादल कथा* एक जैन श्रावक की रचना है और चरित कथा-काव्य परंपरा में है। यह रचना अपनी प्रबंध योजना में *पद्मिनीसमिओ* के समान है। यह भी ऐसी रचना है, जिसमें कोई विभाजन नहीं है। *पद्मिनीसमिओ* से भिन्न इस रचना के आरंभ में परंपरा के अनुसार सरस्वती की वंदना है। कवि कहता है कि *चरण कमल चित लाइ समरूँ श्री श्री सारदा / मूझ अखर दे माइ, कहिस कथाचित लाइबकई।*[33] रचना के अंत में परंपरा के अनुसार जटमल नाहर ने अपने गाँव, शासक, पिता और रचना समय का उल्लेख किया है।[34] कवि का आग्रह कथा कथन पर ज़्यादा है, इसलिए इसमें वस्तु वर्णन अपेक्षाकृत कम है।

खुम्माणरासो, राणारासो और *पाटनामा* में पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण विस्तृत वंश कथा-काव्य का एक हिस्सा है। *खुम्माणरासो* 'रास' और 'रासो' के बीच की एक जैन यति की रचना है। इसका संगठन दलपति विजय ने अपनी सुविधा और ज़रूरत के अनुसार तय किया है। आठ खंडों में विभक्त इस रचना में बापा रावल से महाराणा राजसिंह तक का मेवाड़ का कथा-इतिहास है। पहले खंड में बापा रावल, दूसरे तीसरे

और चौथे खंड में खुम्माण, पाँचवे खंड में आलसणी, समरसी और राहप का वर्णन है। रचना का छठा खंड पद्मिनी-रत्नसेन और गोरा-बादल प्रकरण पर आधारित है। सातवें खंड में हम्मीर से लगाकर महाराणा सांगा तक का संक्षिप्त इतिहास है। आठवाँ खंड खंडित है, जिसमें रत्नसिंह (द्वितीय) से राजसिंह तक का वर्णन है। *खुम्माणरासो* नामकरण से ऐसा प्रतीत होता है कि यह खुम्माण पर एकाग्र रचना है, लेकिन ऐसा नहीं है। इसमें दो प्रकरण- खुम्माण और पद्मिनी-रत्नसेन प्रमुख हैं। दलपति विजय ने इन दोनों प्रसंगों का काव्यात्मक और विस्तृत वर्णन किया है[35], जबकि शेष खंडों में आग्रह वंश वर्णन और इतिहास का अधिक है। पद्मिनी रत्नसेन की कथा कमोबेश वही है, जो हेमरतन कृत *गोरा-बादल पदमिणी चउपई* में है। रत्नसेन और पदमिनी का विवाह, राघव व्यास का पद्मिनी और रत्नसेन को विलासमग्न देखना और राजा का कुद्ध होकर उसको देश निकाला देना, राघव का अलाउद्दीन को प्रभावित कर चित्तौड़ पर चढ़ा लाना, अलाउद्दीन का शक्ति से पद्मिनी पाने पर असफल रहने पर छद्म पूर्वक रत्नसेन को बंदी बनाना, गोरा-बादल का पद्मिनी के आग्रह पर रत्नसेन को युक्तिपूर्वक मुक्त करवाना और अलाउद्दीन की पराजय जैसी घटनाएँ *खुम्माणरासो* के इस प्रकरण में भी हैं। कवि आरंभ में अंबिका को प्रणाम कर अपने गुरु हिम्मत विजय को नमस्कार करता है। उसके बाद वह सरस्वती और गणेश वंदना कर चित्तौड़ दुर्ग के साथ इक्ष्वाकु कुल से लगाकर गुहिल वंश तक का वर्णन करता है।[36] दलपति विजय का रासो का संगठन और व्यवस्था इस तरह की है कि इसके सभी खंड स्वतंत्र लगते हैं। पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण माता अंबा की वंदना से आरंभ होता है। राणाओं की वंशावली देने के बाद इसमें विस्तार से रत्नसेन-पद्मिनी की कथा कही गई है। खंड के अंत में दलपति विजय ने पुष्पिका में कहा है कि इसमें कुछ 'पूर्वोक्त' है और कुछ 'ग्रन्थाधिकारेण' है। वह लिखता है- *इति श्री चित्रकोटाधिपति बाया खुमाणन्वये राण रतनसेन पदमिणी गोरा बादल संबंध किंचित ग्रंथाधिकारेण पं. दौलतराम ग. विरचितियां (अ) धिकार संपूर्णम्।*[37]

राणारासो के काव्यरूप को लेकर इसका कवि दयालदास दुविधाग्रस्त है। उसने पुष्पिका लेखों में इसको 'वंशावली' (महाराणा श्री जगतसिंह वंशावली) और 'चरित' (महाराणा जगतसिंह चरित, अमरसिंह चरित आदि) लिखा है[38], लेकिन कवि का अंततः उद्देश्य रासो की रचना है और वह *पृथ्वीराजरासो* जैसी ही कोई रचना करना चाहता है। उसने लिखा है कि- *चंद छंद चहुवान के बोली उमा विसाल। राजरास अतिहास कूँ, दोरे न पलत पयान।*[39] यह रचना *पृथ्वीराजरासो* से इस अर्थ में अलग है कि इसमें आरंभ और आगे कहीं भी श्रोता-वक्ता का प्रावधान नहीं किया गया है। यह रचना खंडों, समयों या सर्गों में विभक्त भी नहीं है। दयालदास गणेश और

सरस्वती वंदना से आरंभ कर तीसरे दोहे में कहता है कि इस रचना का प्रयोजन राजसिंह के निष्कलंक वंश का वर्णन करना है और फिर ब्रह्मा-विष्णु से आरंभ कर उसकी वंशावली का वर्णन शुरू कर देता है। आरंभिक वंशावली पुराणों पर निर्भर है। *राणारासो* में पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण छंद सं. 68 से आरंभ होकर 126 तक चलता है और अन्य रचनाओं की तुलना में यह संक्षिप्त है।[40] यहाँ आग्रह कथा की जगह वस्तु वर्णन है। आरंभ में ही योगी द्वारा सिंघल द्वीप की स्त्रियों के वर्णन से राणा रत्नसेन को प्रेम हो जाता है। उसके प्रेमासक्त होते ही षड्ऋतु वर्णन की शुरुआत हो जाती है, जो निरंतर 14 छंदों तक चलता है।[41] उसके बाद जल्दी से कथा को आगे बढ़ाकर कवि युद्ध वर्णन पर आ जाता है, जो अंतिम छंद 126 तक चलता है।[42] बीच में कवि कथा केवल संकेत में कहता है। *राणारासो* के अंत में कोई पुष्पिका नहीं है। कवि दयालदास यह कहकर रचना समाप्त कर देता है कि- *राणा राजसिंह के पाट अब बैठे जयसिंह रान। धरा ध्रम्भ अवतार ले, मनो भान के भान।*[43] 'पाटनामा' का साहित्य रूप अपारंपरिक है। ख्यात और वंश जैसे साहित्य रूप पारंपरिक है और समयांतराल से इन्होंने कई रूप धारण किए हैं। *पाटनामा* भी वंश और ख्यात से विकसित साहित्य रूप है। *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा* अपने ढंग को अकेली रचना है। यहाँ आख्यान, इतिहास और गल्प, एक साथ हैं। यह मेवाड़ के पारंपरिक राजकीय इतिहास लेखक की रचना है, जो टोकराँ गाँव का रहने वाला है और उसका पद बड़वा है।[44] यह परिवार मेवाड़ राजवंश की पीढ़ी-दर-पीढ़ी वंशावली और प्रमुख घटनाओं का वर्णन करने और उसके संरक्षण के लिए उत्तरदायी है। इस निमित्त दो ग्रंथ- (1) हथबही और (2) पाटनामा होते हैं। बड़वा यजमान के घर वंशावली लिखने के लिए जाता है, तो 'हाथबही' लेकर जाता है और वह यजमान के यहाँ से लौटकर यह विवरण मूल ग्रंथ 'पाटनामा' में दर्ज़ करता है।[45] 'पाटनामा' घर से बाहर नहीं जाता। यह वरिष्ठ, मतलब 'पाटवी' ग्रंथ है, इसलिए इसका नामकरण 'पाटनामा' हुआ। यह एक गद्य रचना है, जिसमें मेवाड़ के आरंभ से लगाकर महाराणा शंभुसिंह (1847-1874 ई.) के समय तक विवरण दर्ज़ किया गया है। यह कथा-उपकथाओं, प्रासंगिक कथाओं और जनश्रुतियों का भंडार है। यह ऐसी रचना है, जिसमें तिथियाँ, नाम और संख्याएँ दी गई हैं, यद्यपि इनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। यहाँ विवरण असाधारण प्रकार की क़िस्सागोई के साथ अत्यंत रोचक और नाटकीय बनाकर प्रस्तुत किया गए हैं। *पाटनामा* में रत्नसेन-पद्मिनी प्रकरण बहुत विस्तार से आया है। ख़ास बात यह है कि इसमें रत्नसिंह और अलाउद्दीन ख़लजी का युद्ध पद्मिनी की सुंदरता, इसकी जानकारी अलाउद्दीन तक पहुँचने का विवरण के साथ इसमें आगे यह उल्लेख भी है कि इसके बाद हम्मीर ने क़िले पर फिर अधिपत्य क़ायम किया।

इसमें कहीं-कहीं कवित्त भी हैं, जो बीच में कथा बीज की तरह आते हैं। यह रचना यजमान के यहाँ पढ़ी-कही जाती थी, इसलिए इसकी भाषा का मुहावरा और शैली 'पढ़ने-कहने' की है। कथाकार बीच-बीच में वंशावली का उल्लेख करता चलता *(अथ नामावली लिखते)* है। वह राजा की रानियों और संततियों का भी नामोल्लेख *(महारावल जी श्री रतनसेन जी घरे पढियार रेण राजा की सुहागकवर जी के बेटा, दुजी चावड़ी चंदराई की सूरज कवर जी का बेटा राजो जी ... ।)* करता है। हर शासक के वंशावली उल्लेख के बाद लेखक उस शासक के कार्यकाल की ख्यात घटनाओं पर आता है और उनको बारीक और विस्तृत विवरणों के साथ रोचक ढंग से प्रस्तुत करता है। वह बीच-बीच में प्रचलित ख्यातों के वृत्तांत भी देता जाता है; जैसे पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण में उसने चित्तौड़ क़िले की ख्यात विस्तार से दी है।[46]

3.

पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण पर आधारित कथा-काव्यों की भाषा प्राकृत-अपभ्रंश परवर्ती देश भाषा है। यह ऐसी भाषा है, जिसमें संस्कृत के समानांतर विकसित प्राकृत-अपभ्रंश की कुछ प्रवृत्तियाँ परम्परा से हैं और इसमें बाद में विकसित देशभाषाओं की कुछ क्षेत्रीय विशेषताएँ भी आ गयी हैं। कुछ समान प्रवृत्तियों के बावजूद चारण और जैन प्रवृत्तियों में भाषिक भिन्नताएँ हैं, जबकि *पाटनामा* की भाषा दक्षिणी-पश्चिमी राजस्थान के मेवाड़ इलाके में प्रयुक्त बोली मेवाड़ी है। चारण रासो रचनाओं की भाषा के वैशिष्ट्य पर विस्तार से विचार हुआ है, क्योंकि रासो पारंपरिक काव्य है और इनके रचनाकारों को इसकी ख़ास प्रकार की भाषा का प्रशिक्षण और अभ्यास भी है। *राणारासो* की रचना *पृथ्वीराजरासो* को आदर्श मानकर हुई है[47], इसलिए इसकी भाषा पर *पृथ्वीराजरासो* की भाषा का प्रभाव है। *खुम्माणरासो* की भाषा भी कमोबेश वही है, जो रासो काव्यों पर प्रयुक्त होती रही है। विद्वानों में रासो की भाषा के स्वरूप को लेकर विवाद रहा है। दशरथ शर्मा सहित कुछ विद्वानों ने माना है कि मूल *पृथ्वीराजरासो* की रचना अपभ्रंश में हुई और अब इसी अपभ्रंश के विकसित रूप में जो रासो उपलब्ध हैं, वो डिंगल या पुरानी राजस्थानी में हैं।[48] सुनीतिकुमार चटर्जी[49], धीरेन्द्र वर्मा[50], ग्रिर्यसन[51], नरोत्तम स्वामी[52] आदि ने इनकी भाषा को प्राचीन 'पश्चिमी हिंदी' या 'पुरानी ब्रजभाषा कहा है। तैस्सीतोरी का विचार है कि रासो की भाषा पिंगल है और यह *प्राकृतपैंगलम* की परम्परा में है।[53] नामवर सिंह का मानना है कि ''पिंगल होते हुए भी रासो की भाषा अधिक विकसित है, इसमें प्राकृत-अपभ्रंश के रूढ़ रूपों के अवशेष अपेक्षाकृत कम हैं।''[54]

पदमिनी-रत्नसेन प्रकरण पर आधारित इन अधिंकांश रचनाओं की भाषिक प्रवृत्तियों

में सबसे प्रमुख उकारांत शब्दों की प्रचुरता है। यह प्रवृत्ति इनमें संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश से आई है। संस्कृत के *ललित विस्तर*[55] और प्राकृत के *धम्मपद*[56] में यह प्रवृत्ति मिलती है। भरत के नाट्यशास्त्र में हिमालय, सिन्धु और सौवीर की भाषा को उकार बहुला कहा गया है। भरत मुनि के अनुसार *हिमवत्सिन्धुसौवीरान्ये जनाः समुपाश्रिताः। / उकारबहुला तज्ज्ञस्तेषु भाषां प्रयोजयेत्॥* अर्थात् हिमालय, सिंधु तथा सौवीर के निवासी प्रायः उकार बहुला भाषा का प्रयोग करते हैं।[57] *राणारासो* में उकार शब्दों (जोग्यंदु-184, वासु-184, कपूरु-185, घनसारु-187, नरिंदु-188, चितु-190, वासारु-194, प्रानु-196, दसकंधु-214 आदि) का ख़ूब प्रयोग हुआ है। यह प्रवृत्ति *गोरा-बादल पदमिणी चउपई* (उठिउ-5, भलउ-5, गयउ-5, नितु-19, बइठउ-27, जुडिउ-27, हठीउ-9 मोटउ-33, आविउ-55, सांभलीउ-55 आदि) और *गोरा-बादल कवित्त* (सांचरयउ-110, कहयउ-111, उठायउ-112, धरयउ-112, सूरऊ-112, अणसरउ-121, मीठउ-124, चलायउ-126, कहंतउ-127) में भी पायी जाती है। ख़ास बात यह है कि जहाँ *गोरा-बादल पदमिणी चउपई* में क्रिया शब्द उकारांत किए गए हैं, वहीं *राणारासो* में यह प्रवृत्ति संज्ञा शब्दों में अधिक दिखती है। (ii) व्यंजन द्वित्वीकरण की, जो प्रवृत्ति प्राकृत अपभ्रंश में थी, उसका प्रयोग रासो सहित इन सभी रचनाओं- *गोरा-बादल कवित्त* (बादल्ल-108, झल्ल-108, कच्चीय-112, सच्ची-112, अल्लावदीन-113, कज्जि-113, सज्जि-113, सुमिठ्ठउ-115, किज्जइ-115, गोरल्ल-121, साहस्स-121, फुट्टइ-122, मग्गउ-122 आदि), *गोरा-बादल पदमिणी चउपइ* (सक्कई-2, जस-जोत्त-3, मज्झ-21, गंध्रव्व-42, जम्म-42, सन्नाहे-91 आदि), *खुम्माणरासो* (समप्पो-82, हत्थे-87, मुत्ताहल-94, गड़क्के-101, धड़क्के-101, षट्टिह-103, फट्टिह-103, चुक्कां-111, बालक्क-130, षग्ग-160, बुल्लहुं-160, झल्लक्कें-162, विलग्गी-165, पक्के-165, सरग्ग-168 आदि), *राणारासो* (भूम्मि-183, दुख्ख-185, लग्गे-189, गज्ज-192, सज्ज-192 ,कज्ज-192, मुख्ख-195, भख्ख-198, आभख्ख-198, तुरक्कंति-198, सन्नह-202, इच्छ-203, खलभ्भल-206 आदि) और *पद्मिनीसमिओ* (विचख्खन-183, विज्झण-185, विड्डारण-186, कुच्च-190, घुरक्कति-190, आतस्सबाजी-194, खग्ग-199, वक्कील-199, कट्टारी-199, पलट्टूँ-200, दड़ब्बड़- 201 आदि) में ख़ूब मिलता है। (iii) स्वर-व्यंजन संबंधी विकृति के कारण शब्दों के रूप में परिवर्तन की प्रवृत्ति इन रचनाओं में बहुत है और यह प्रवृत्ति भी इनको प्राकृत-अपभ्रंश से विरासत मिली है। प्राकृत-अपभ्रंश में प्रचलित शब्दों में भी यहाँ तक आते-आते स्वर-व्यंजन संबंधी बहुत परिवर्तन हुए हुए हैं। दिल्ली>डिली (कवित्त-109), मंगोल>मंइगल (कवित्त-116), सागर>साइर (कवित्त-117), सुत>सुय (कवित्त-124), लोचन>लोय, (कवित्त-124),

ब्राहमण>ब्राभण (दलपति-86), नायिका>नायका (दलपति-89), पृथ्वी>पुहवी (दलपति-135), त्रिभुवन>तुभुवन (दलपति-135), वासुकि>वासिग (दलपति-94), पूर्व>पुव्व (दलपति-100), स्वामी>सांमी, (दलपति-155), विचक्षण>विच्चखण (दलपति-156), सम्मुख>सामाँ (दलपति-160), मानस>माणस (दलपति-161), जिह्वा>जीभ (दलपति-162), वृक्ष>विरख (दयालदास-186), भ्रमर>भामर (दयालदास-187), पर्यंक>परजंक (दयालदास-189), दृगनि>द्रिगनि (दयालदास-189), केलि>केल (दयालदास-190), प्राहुणउ>पाहुनो (दयालदास-186), मित्र>मिंत (हेमरतन-187), पंक्ति>पग्ति (हेमरतन-193), अवधूत>औधूत (हेमरतन-167), गंधर्व>गंध्रव (हेमरतन-22), शशि>सिसि, (हेमरतन-23), वक्र>बंक (हेमरतन-23), तूर्य>तुरी (हेमरतन-30), ब्राह्मण>बंभ (हेमरतन-36), सकल>सयल (हेमरतन-63), भीष>बीह (हेमरतन-69), अंबर>डंबर (हेमरतन-89), धनुष>धनक (समिओ-101), नृपति>न्रपत (समिओ-102), गुह्य>गुझ (समिओ-100), हरित>हरिव (समिओ-106), म्लेच्छ>मछाइव (समिओ-132), पयोधर>पयोहर (नाहर-190), परिवेषण>पररूसई (लब्धोदय-53) अन्न>नाज (लब्धोदय-5), वृत्तांत>विरतंत (लधोदय-24), वैर>वयर (लब्धोदय-27), गज गामिनी>गय गमणि (लब्धोदय-59), गृह>गयर (लब्धोदय-66), तरुणी>तुरणी (लब्धोदय-66), तपस्या>तुपस्या (पाटनामा-305), ख़ुशी>कुसी (पाटनामा-315), पुरोहित>परोथ (पाटनामा-315), इनाम>अन्याम (पाटनामा-342), ज्योतिषी>जोतसी (पाटनामा-343) आदि प्रयोग इन रचनाओं की भाषा में मिलते हैं।
(iv) न को ण और ल को ळ में परिवर्तित करने की मध्यकालीन डिंगल-राजस्थानी की प्रवृत्ति इन अधिकांश रचनाओं में मिलती है। वयण (कवित्त-110), दांण (कवित्त-110) योगिणी (कवित्त-1130), सिणगार (कवित्त-115), फुरमांण (कवित्त-126), काणि (हेमरतन-1), अणजाणिउ (हेमरतन-2), राजभवणि (हेमरतन-3), हाणि (हेमरतन-18), सुजाँण (हेमरतन-25) विणसई (हेमरतन-55), सणीजा (हेमरतन-94), भाइपणो (दलपति-85), घमसाण (दलपति-89), सोहामणी (दलपति-92), इण (दलपति-95), पठाण (दलपति 97), अप्पणो (दलपति-99) पकड़ाणो (दलपति-112), लेण (दलपति-142), सुणे (नाहर-185), विड्डारण (नाहर-186), जाणो (नाहर-189), पलाँण (नाहर-193), परवाँण (नाहर-201), सामणि (लब्धोदय-1), कामिणा (लब्धोदय-2), वणाया (लब्धोदय-5), जणें (लब्धोदय-7), ऊख़ाणो (लब्धोदय-9), सुणताँ (लब्धोदय-30), पीणो (लब्धोदय-37), छूटण (लब्धोदय-62), आपणो (लब्धोदय- 64), ख़ाण-पाण (पाटनामा-302), रणवास (पाटनामा-303), दरसण (पाटनामा-311), जाणा (पाटनामा-315) आदि कुछ ऐसे ही उदाहरण हैं। इसी तरह 'ल' अकसर डिंगल-राजस्थानी में 'ळ' में बदलता है। यह प्रयोग इन

रचनाओं में ख़ासतौर पर दलपति विजय के यहाँ ख़ूब मिलता है। केळवस्यूँ (हेमरतन-1), राजकुळी (दलपति-83), षळभळियो (दलपति-95), गोळा (दलपति-96), वादळ (दलपति-102), छळ (दलपति-102), कचोळी (दलपति-106), ढोळे (दलपति-106), साळ (दलपति-106) दाळ (दलपति-106), तंबोळ (दलपति-110), भळे (दलपति-111), रावळो (दलपति-111) आदि ऐसे ही प्रयोग हैं।

रूप रचना की दृष्टि भी इन रचनाओं की भाषा में क्षेत्र और शैली के कारण कहीं-कहीं वैविध्य मिलता है और इनमें अपभ्रंशोत्तर और उदयकालीन नयी देशभाषाओं की प्रवृत्तियाँ भी मिलती हैं। (i) अपभ्रंश में विभक्तियों से परसर्गों विकास शुरू हो गया था और यह प्रक्रिया परवर्ती देश भाषाओं में भी जारी रही। इनमें अपभ्रंश के परसर्गों का प्रयोग तो हुआ ही है, इनमें प्रचलित परसर्गों का रूपांतरण और कुछ नये परसर्गों का विकास भी हुआ। पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर कथा-काव्यों में मध्यकालीन राजस्थानी के परसर्गों का प्रयोग हुआ है और इनमें कुछ स्थानिक प्रवृत्तियाँ दिखायी पड़ती है। का (अउर का, *कवित्त*-112), कउँ (कवित्त-112), कूँ (*विप्र कूँ,* नाहर-187), स्यूँ (*थल स्यूं,* कवित्त-128, *कल्लोल स्युं,* लब्धोदय-1), थी (*चित्रकोट थी,* हेमरतन-20), नउ (*आलिम नउ,* हेमरतन-28), तणउ (*गोरल तणउ,* कवित्त-128), तणइ (*सरसती तणइ*- हेमरतन-1), तणी (*सिंघलपति तणी,* दलपति-84), सुं, (*पटणाणी सूं,* हेमरतन-4), नुं (*नृपनुं,* हेमरतन-13), थीं (*वित्तथीं,* हेमरतन-14), नी (*पगनी*- हेमरतन-32), केरा (*चित्रकोट केरा,* समिओ-99, चित्तौड़ केरा, नाहर-182), सों (*पीर सों*- दयालदास-188), कहूं (*रान कहूं,* दयालदास 188), कूँ (*हम कूँ,* दलपति-87), नो (*ढंढोरा नो,* लब्धोदय-21), नी (*पंखी नी,* लब्धोदय-28) री (*चित्तौड़ री,* लब्धोदय- 43), तै (*जहाँ ते,* नाहर-196), के (*बारी कै,* नाहर-196, *रतनसेनजी के,* पाटनामा-296), रे (*दरिया रे,* दयालदास-130) थकी (*कोट थकी,* दलपति-127), रा (*पदमणी रा,* दलपति-94, *गोठा रा,* पाटनामा-299), सूं (पाटनामा-299) आदि मुख्य परसर्ग हैं, जो इनमें प्रयुक्त हुए हैं। (ii) अपभ्रंश में अनुनासिक का विभक्ति के रूप प्रयोग शुरू हुआ था, जो परवर्ती विकसित देश भाषाओं में भी जारी रहा। पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण विषयक कथा-काव्यों की भाषा में यह प्रवृत्ति निरंतर मिलती है। ख़ासतौर पर संबंध, अधिकरण, कर्म और करण के लिए इसका प्रयोग बहुत मिलता है। असुरां (संबंध, कवित्त-109), चहुआणां (संबंध, कवित्त-121), अश्वे (अधिकरण, दलपति-84), निजरें (अधिकरण, दलपति-86), बगसीसां (कर्म, दलपति-132). रोसें (अधिकरण, दलपति-137), पद्मिनि हाथें (करण, दलपति-98), व्यासें पदमिणी (कर्म, दलपति-108), असुरां (संबंध, हेमरतन-59), महिलां (अधिकरण, लब्धोदय-19) आदि प्रयोग इन रचनाओं

में कई हैं। (iii) निर्विभक्तिक शब्दों का प्रयोग इन रचनाओं में आम है। ख़ासतौर पर चारण रचनाओं में यह कवि भाषा का स्वभाव है। सुरताण निवाजीयु (कवित्त-113), रत्नसेन घरनारि (कवित्त-117), मांण मूंछ मरोड़ी (कवित्त-116), कवित्त सुणि रीझउ सुलतान (हेमरतन-21), असपति कीउ आरंभ (हेमरतन-27), सुभट घणा सज कीधा भला (हेमरतन-30), सुभट सहु संक्या मन माहि (हेमरतन-81), हरिपुर किये विलास (दयालदास-183), लोंग लता लपटान (दयालदास-185), ग्रीषम कुंदन कीच (दयालदास-186), वीति नीठी वसंत रितु (दयालदास-191), चढ़ि घेर्यो चित्तौड़ (दयालदास-197), आराधी क्वांरी कुंवरि (दयालदास197), रतनसेन पकड़ां जीवतां (दलपति-137), आस करि मंगन आयो (समिओ-99), दीप सिंघल पदमावती (समिओ-102), मानि वचन राजिंद्र सबै (समिओ-105), एक दिवस त्रिप कोय सुसा जीवत ग्रिह लाया (समिओ-115), साह कटल परि सोर (समिओ-144), सरस पूतली सँवारी (नाहर-187), जो खग मारूं साह सिर (नाहर-200), साह कटक पर्यो सोर (नाहर-204), चाबक चंचल लाइ (नाहर-206), मारे मनुख तुरंग (नाहर-207), पदमिनी पुन्य पखें किम मिलें (दलपति-137), रतनसेन पकड़ूँ (दलपति-94) आदि ऐसे कई उदाहरण हैं। (iii) पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण पर आधारित कथा-काव्यों में मध्यकाल में प्रचलित सर्वनामों का प्रयोग तो है ही, इनमें चारण परंपरा की अपभ्रंश और डिंगल के और जैन परंपरा की प्राकृत-अपभंश के सर्वनाम भी मिलते हैं। सर्वनामों के प्रयोग में कोई एकरूपता नहीं है। रचनाओं में इनका पर्याप्त वैविध्य है। तिहाँ (कवित्त-122), मोरउ (कवित्त-122), तूअ (कवित्त-128), तुम (दलपति-83), थे (दलपति-83), आंपे (दलपति-84), आपां (दलपति-84), म्हे (दलपति- 85, लब्धोदय-67), मांनू (दलपति- (85), तसु (हेमरतन-3), तिणि (हेमरतन-3), अम्हे (हेमरतन-4), तुझ (हेमरतन-22) त्रिस (हेमरतन-85), हूँ (समिओ-99, नाहर-186, पाटनामा-307), तुम (समिओ-99), मुहि (समिओ-102), अमने (लब्धोदय-68), ए (पाटनामा-305) आदि कई ऐसे सर्वनाम इन रचनाओं में आये हैं। (iv) अव्ययों के प्रयोग में भी इन रचनाओं में वैविध्य है। देश भाषाओं के नये विकसित अव्ययों के साथ इन रचनाओं में प्राकृत-अपभ्रश के अव्यय भी प्रयुक्त हुए हैं। नवि (दलपति-97), पिण (दलपति-140) जिण (दलपति-140) नहीं (दलपति-155), न (गोला न (और) बाण, दलपति-156), हिवें (हेमरतन-9), लगइ (हेमरतन-41), न (हेमरतन-47), जिसइ-तिसइ (हेमरतन-56), सथ (समिओ-110), केड़े (पाटनामा-345), नखे (पाटनामा-313), अबारु (पाटनामा-385), बी (पाटनामा-368) आदि अव्यय प्रयोग इन रचानओं में हैं। (v) क्रिया प्रयोग भी कमोबेश वहीं हैं, जो प्राकृत और बाद में अपभ्रंश में थे। इन पर कुछ

स्थानिक प्रभाव दिखाई पड़ता है। कहई बोलई, सुणई, कट्टई, मिलई (कवित्त-112) और प्रीसइ (हेमरतन-4) वर्तमानकालिक क्रिया रूप हैं, जो इन सभी रचनाओं में अक्सर प्रयुक्त हुए हैं। आयउ, कीधउ (कवित्त-112), उतर्यो, तेड़ाव्यो (दलपति-86), रीझवउ खुनीसऊ (हेमरतन-16-17), जनम्यो (लब्धोदय-4) आदि उदाहरण भूतकालिक क्रिया रूपों के हैं, जो इन रचनाओं इस्तेमाल हुए हैं। इसी तरह बूझिसी, झूझिसी (कवित्त-123), करस्यूं, लेस्यूं (दलपति-88), मारिहें, पकडिहें (दलपति-99) आदि इन रचनाओं में प्रयुक्त भविष्यकालिक क्रिया रूपों के कुछ उदाहरण हैं। फरवीजे (दलपति-104), जीपीजई (हेमरतन 67), वजावेयो (हेमरतन 87), कर्मवाच्य, जबकि आपो, सम्म्पो (कवित्त 82), देखाडो (लब्धोदय-49) आदि आज्ञार्थक प्रयोग के उदाहरण हैं। *पाटनामा* में पूर्वकालिक क्रिया प्रयोग 'कर' (सामलेरे-317, बलाईर-321, उठेर-328, जोड़ेर-345) का प्रयोग ख़ूब हुआ है। सहायक क्रियाओं का विकास भी इस दौरान हो गया था। इन कवि-कथाकारों ने इनका प्रयोग किया है। हुंती (दलपति-105), हुंता (दलपति-111), छूं (दलपति-138), अछइ (हेमरतन-10), अछै (लब्धोदय-2), थयो (लब्धोदय-11), छै (लब्धोदय-36), हूं (पाटनामा-327) आदि इसी तरह के प्रयोग हैं।

पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर कथा-काव्यों के शब्द समूह में पर्याप्त वैविध्य है। तत्सम शब्द इन रचनाओं कम हैं। वे ही तत्सम शब्द इनमें इस्तेमाल हुए हैं, जो देश भाषा काव्य व्यवहार शामिल हो गये थे। चरित्र (कवित्त-109), वसुधा (109), कन्या (कवित्त-110), अमृत (कवित्त-110), विप्र (कवित्त-110), चित्त (कवित्त-111), योगिनी (कवित्त-111), विलंब (कवित्त-112), धरणि (कवित्त-113), अनिल (कवित्त-113), पतिव्रता (कवित्त-114), प्रभात (कवित्त-115), हय (कवित्त-118), कटि (कवित्त-122), वारि (दयालदास-188), कामिनी (हेमरतन-3), पराक्रम (हेमरतन-3), समुद्र (हेमरतन-7), पयोनिधि (हेमरतन-8), उदधि (हेमरतन-7) धवल (हेमरतन-24), कुसुम (हेमरतन-24), कुंकुम (हेमरतन-49), अगर (हेमरतन-49), पश्चाताप (हेमरतन- 15), वित्त (हेमरतन-18), विद्या (हेमरतन-19), तनु लंक (हेमरतन-35), तुरंग (हेमरतन-27), तुष्ट (समिओ-3), प्रोलि (नाहर-195), उदक (लब्धोदय-7), जलधि (लब्धोदय-8), तरणि (लब्धोदय-43), निधि (दयालदास-183), इंदु (दयालदास-184), वधू (दयालदास-185), मृगमद (दयालदास-186), पल्लव (दयालदास-190), नीर (दयालदास-192), अलिन (दयालदास-195), गिरि (दयालदास-195), दिनकर (दलपति-196), पंकज, रवि (दलपति-91), वारिज (दलपति- 92), अंब (दलपति-112), पारधी (दलपति-119), रिपु (दलपति-124), उदक (पाटनामा-308) आदि ऐसे कुछ शब्दों के उदाहरण हैं।

रासो और जैन रचनाएँ परंपरागत हैं, इसलिए इनमें प्राकृत-अपभ्रंश के अर्धतत्सम और परवर्ती देश भाषाओं उनसे विकसित तद्‌भव शब्दों का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है। उपना (कवित्त 109), तुरिय (कवित्त-110), मूंधि (कवित्त-110), उतपन (कवित्त-111), सबद (कवित्त-112)), पुहवी (कवित्त-114), पुप्फ (कवित्त-115), त्रिय (कवित्त-120), सांमि (कवित्त-121), मुगट (दलपति-82), परतिख (दलपति-108, हेमरतन-10), प्रथवी (दलपति-103), प्रीसणो (दलपति-104), खिति (हेमरतन-7), विघन (हेमरतन-1), वसुहा (हेमरतन-2), गोख (हेमरतन-3), सिणगार (हेमरतन-1), खेत्र (हेमरतन-6), साखि (हेमरतन-3), प्रीसई (हेमरतन-4), सरीखउ (हेमरतन-7), ओपम (हेमरतन-10), भमर (हेमरतन-14), सिसि (हेमरतन-23), लख्यन (समिओ-101), पोलि (लब्धोदय-51), प्रथिमी (दयालदास-183), उरध (दयालदास-183), विरख (186), भोंन (दयालदास-186), वेपारु (दयालदास-188), ग्रेह (दयालदास-190), द्योस (दयालदास-190), अनुरत्त (दयालदास-190), अलप (दयालदास-191), जुर (दयालदास-192), अगिनी (दयालदास-194), ओधूत (दयालदास-197), वरस (दयालदास-200), दुरग (दयालदास-201), परिष्षा (दलपति-87), सूछिम (दलपति-91), वृछ (दलपति-107), विथा (दलपति-107), मयमत (दलपति-134), उछाह (दलपति-174), नोतो (पाटनामा-299), एकठा (पाटनामा-301), पछाण (पाटनामा-302), नंदरा (पाटनामा- 307), अकसत (पाटनामा-315), उच्छब (पाटनामा-318), अबलाखा (पाटनामा-325), दसटी (पाटनामा-314), सन्दीया (पाटनामा-325), बदस (पाटनामा-366), बावड़िया (पाटनामा-386) ऐसे कुछ शब्दों के उदाहरण हैं।

ये अधिकांश रासो और जैन रचनाएँ मध्य-पश्चिमी राजस्थान में हुईं, इसलिए इनमें मध्यकालीन राजस्थानी के देशज शब्दों का प्रयोग भी बहुतायत से हुआ है। *पाटनामा* में दक्षिण-पश्चिमी राजस्थानी के मेवाड़ी शब्दों की भरमार है। ख़ास बात यह है कि इसकी प्रतिलिपि अठारहवीं सदीं में हुई, इसलिए कदाचित् इसमें प्रयुक्त अपभ्रंश के शब्दों की जगह मेवाड़ी शब्दों का प्रयोग हुआ है। नीन्हू (कवित्त-95), कुरखे (कवित्त-120), चिट्ठी (दयालदास-140), छानउ (हेमरतन-31), गोफणि (हेमरतन-49), फोकट (हेमरतन-51) आमण-दुमणी (हेमरतन-64), ढांढा (हेमरतन-74), हेठी (हेमरतन-77), लारो-लारि (हेमरतन-77), ऊभां (हेमरतन-85), नैड़ी (नाहर-193), भूंडो (नाहर-195), छाना (लब्धोदय-7), चलु (लब्धोदय-57), भत्रीज (लब्धोदय-66), जीमुं (हेमरतन-5), खवास (हेमरतन-5), ऊंडी (हेमरतन-8), पहिरामणी (हेमरतन-10), हाटे (हेमरतन-14), धाया (हेमरतन-14), खुणीसउ (हेमरतन-17), तेड्या (हेमरतन-18), खटपट (दयालदास-196), गरद (दयालदास-

200), टुंक टुंक (दयालदास-200), चटपट्ट (दयालदास-208), भसुंड (दयालदास-208), वाट (दलपति-94), मोसो (दलपति-85), नीठ (दलपति-86), धड़हड़्यो (दलपति-96), अलाव (दलपति-95), गोळा (दलपति-96), आहड़ूं (दलपति-99), बावड़ूं (दलपति-99), गादी (दलपति-105), मेवा (दलपति-106), गोरू (दलपति-111), हेठ (दलपति-116), ग्रास (दलपति-119), सीख (दलपति-121), जंजाल (दलपति-127), झुझार (दलपति-130), मूंके (दलपति-144), फिट (दलपति-155), पवाड़ा (दलपति-169), कोको (पाटनामा-299), कासा (पाटनामा-302), लुगाई (पाटनामा-302) लाद (पाटनामा-308) मोकली (पाटनामा-318) डाइचे (पाटनामा-329), पाथे (पाटनामा-341), टहल (पाटनामा-310), ठकाणां (पाटनामा-310), अनसो (पाटनामा-306), पेतावा (पाटनामा-305), खुलिया (पाटनामा-307), पेज (पाटनामा-309), सगारथ (पाटनामा-312), डूंगरा (पाटनामा-326), आसंग (पाटनामा ?342), लेण (पाटनामा-353) बीजलबायो (पाटनामा-352), रतस (पाटनामा-372), मचख (पाटनामा-374), क्राटी (पाटनामा-397) आदि इस तरह के उदाहरण हैं

ये रचनाएँ प्राकृत-अपभ्रंश की रचनाओं से इस मामले में अलग हैं कि इनमें फ़ारसी-अरबी शब्दों का पर्याप्त प्रयोग मिलता है। प्रकरण में आक्रांता तुर्क है, इसलिए इनके रचनाकारों ने आग्रहपूर्वक फ़ारसी-अरबी शब्दों का प्रयोग किया है। जैन रचनाओं में भी इनका प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हुआ है। फ़ारसी शब्दों के प्रयोग के संबंध में ख़ास यह है कि इनको राजस्थानी के अपने उच्चारण में ढालकर प्रयुक्त किया गया है। बजीर (कवित्त-111), तसलीम, दरवेस, इंनाम (कवित्त-112), किताब (कवित्त-116), काइम (कवित्त-113), दुनि (कवित्त-113), साहिजादी (कवित्त-115), मुसाफ (कवित्त-118), फुरमाण (कवित्त-136, दलपति-95), बगसीस (दलपति-86), मकमूल (दलपति-87) कासीद (दलपति-94), हजरत (दलपति-87) महिरी (दलपति-87), महबूब (दलपति-87), मसकल (दलपति-89), दुळीचा (दलपति-105), तारीफ, आफताब, महिताब (दलपति-107), निबाब (दलपति-140), मिहिर (दलपति-143), स्याबास (दलपति-153), उसताद (दलपति-168), सिलाँम (हेमरतन-19), इलगार (हेमरतन-22), हुसियार (हेमरतन-30), सहलदार (हेमरतन-37), आतसबाजी (हेमरतन-38), शाबासि (हेमरतन-39), फुजदार (हेमरतन-40), माफक (समिओ-103), इतबार (समिओ-131), कतेब (समिओ-131), खोदबंध (समिओ-131), फौज (नाहर-194), महबूब (लब्धोदय-38), पेसकसी (लब्धोदय-39), दीदार (लब्धोदय-40), तोपची, तुपक (दयालदास-193), जादा (पाटनामा-301), बकस्या (पाटनामा-301), अरज (पाटनामा- 301), फरेब (पाटनामा-329),

फजर (पाटनामा–312), फरेब (पाटनामा–328), नगा (पाटनामा–354), अकतियार (पाटनामा– 395) आदि कुछ ऐसे ही उदाहरण हैं।

पदमिनी–रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर काव्यों में प्रयुक्त संख्यावाची शब्द प्राकृत–अपभ्रंश से आगत या उनसे विकसित हैं। इनके प्रयोग में कोई ख़ास एकरूपता नहीं है। कवि–कथाकारों ने दोनों तरह के संख्यावाचक शब्दों का प्रयोग किया है। त्रीस, वीस (कवित्त–119), पंच (कवित्त–120), दोय (कवित्त–122), सत्ताविस (दलपति–95), बिहुं (दलपति–104) बीजा (दलपति–150), बिहूँ (हेमरतन–2), बेही (हेमरतन–11), त्रिहुं (हेमरतन–36), दुआदस (हेमरतन–139), सैं, सौं (हेमरतन–139), इकसत आठ (समिओ–183), दुजी (पाटनामा–296) पचमी, चठी, सातमी, आठमी. दसमी (पाटनामा–297), चवदा (पाटनामा–300), छव (पाटनामा–323), सत्ररासे (पाटनामा–318) आदि प्रयोग इन रचनाओं में मिलते हैं।

संस्कृत या संस्कृत जैसे बनाकर शब्दों का प्रयोग करने की प्रवृत्ति प्राकृत और अपभ्रंश में थी और यहीं से यह देश भाषाओं में भी आयी। इस तरह के प्रयोग कई बार मात्रा पूर्ति के लिए भी किए गए हैं। ग्रहंति, झालंति (कवित्त–124), त्रुटंति, वाजंति (कवित्त–127), रयन्नं, मय्यनं (दयालदास–184), लोचनं, मोचनं (दयालदास–184), लपटंत (दयालदास–192), उचरीयं (समिओ–113), दख्यं (समिओ–117), सुभटं (समिओ–116), ऊपरं (समिओ–116), कज्जं, उज्जं (समिओ–118) आदि इसी तरह के प्रयोग हैं। प्राकृत के कुछ प्रयोग (गरज्जिए, बज्जिए, समिओ–125) भी इनमें मिलते हैं।

4.

मध्यकाल में छंद का ज्ञान और उसका कुशल व्यवहार कवि होने की ज़रूरी अर्हता थी। नयी जातियों के संपर्क में आने और निरंतर बाह्य आक्रमणों से मध्यकालीन समाज की सांस्कृतिक ज़रूरतें कुछ हद तक बदल गयीं। युद्ध करना और युद्ध के लिए प्रोत्साहित करना, दोनों मध्यकालीन समाज की आवश्यकताएँ थीं। शौर्य, पराक्रम, त्याग आदि शासक जातियों के नये जीवन मूल्य हो गए। यह कहा जाता है कि ''नया छंद नये मनोभाव की सूचना देता है।''[58] संस्कृत–प्राकृत से अलग अपभ्रंश में दोहा, रोला, उल्लाला, छप्पय, कुंडलियाँ, वीर, कव्व आदि कई छंदों का विकास का विकास हुआ। ये नये छंद मात्रिक थे और इनमें से अधिकांश तुकांत भी थे। लौकिक संस्कृत का छंद श्लोक और प्राकृत का छंद गाहा (गाथा) का प्रयोग भी जारी रहा। दूहा और छप्पय को इस दौर नयी प्रतिष्ठा मिली। दोहे का सर्वप्रथम प्रयोग *विक्रमोर्वशीय*[59] में मिलता है, लेकिन अपभ्रंश और परवर्ती देश भाषाओं का बहुत प्रिय छंद हो गया।

छप्पय (षट्पदी) और कुंडलियाँ युद्ध, वीरता और पराक्रम की व्यंजना के लिए सर्वाधिक उपयुक्त छंद सिद्ध हए। ये तीनों छंद बाद में डिंगल में सर्वाधिक इस्तेमाल हुए। 'कडवक' का विकास प्राकृत में ही हो गया था, लेकिन आरंभ में यह पद्धडिया बंध में था। पद्धड़िया के आठ चरणों के बाद धत्ता (ध्रुवक) लगाया जाता था। बाद यह चौपाई बंध मे होने लगा और धत्ता (ध्रुवक) दोहे या सोरठे का लगाया जाने लगा।[60]

पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर कथा-काव्यों का छंद विधान प्राय: पारंपरिक है, लेकिन वैविध्यपूर्ण है। ऐतिहासिक कथा-काव्य की प्राकृत-अपभ्रंश की जैन और चारण परंपरा में प्राय: यही छंद विधान प्रयुक्त हुआ है। चारण और जैन छंद विधान बहुत अलग नहीं है। केवल इतना अंतर है कि चारण काव्यों में छंद वैविध्य ख़ूब है, जो जैन काव्यों में अपेक्षाकृत कम है। इन कथा-काव्यों में कथा विस्तार के लिए कुछ सीमित छंदों का उपयोग हुआ है। चारण रचनाओं में कथा विस्तार के लिए दूहा और कवित्त (छप्पय) का प्रयोग हुआ है, जबकि जैन रचनाओं में इसके लिए चौपाई और दूहा छंद प्रयुक्त किए गए हैं। *राणारासो* में दोहा, चौपाई और छप्पय, तीनों का प्रयोग कथा वर्णन या विस्तार के लिए हुआ है। *पद्मिनीसमिओ* भी चारण रचना है, लेकिन इसमें कथा वर्णन या विस्तार के लिए दोहा और कवित्त (छप्पय) का ही इस्तेमाल है। *पद्मिनीसमिओ* में इसके लिए कवित्त छप्पय और कुंडलियाँ के साथ युद्ध वर्णन के लिए भुजंगी (पृ. 117-124) का प्रयोग हुआ है। *समिओ* में गाहा छंद (पृ. 126) का प्रयोग भी मिलता है। *राणारासो* में जहाँ वस्तु वर्णन है, वहाँ छंद में परिवर्तन हुआ है। इसके लिए कवि ने मोतीदाम (पृ. 206), भुजंगी (पृ. 208), नारांच (पृ. 211) और भुजंगप्रयात (पृ. 184,198) का प्रयोग किया है। *राणारासो* में विवेच्य प्रकरण से बाहर कवि ने आवश्यकतानुसार वहमान, नारी और कारिबंधु जैसे अल्पज्ञात छंद भी प्रयुक्त किए हैं। युद्ध वर्णन के लिए सभी रचनाओं में अलग छंद प्रयुक्त हुआ है। जटमल नाहर कृत *गोरा-बादल कथा* में युद्ध वर्णन के लिए वीरारस (पृ. 201), रसावलु (पृ. 193, 208) और पद्धरी (मोतीदाम) (पृ. 201) छंद प्रयुक्त हुए हैं। युद्ध वर्णन में छंद वैविध्य जटमल नाहर की *गोरा बादल कथा* में सबसे अधिक है। *गोरा बादल कथा* में एक जगह कलश छंद का प्रयोग मिलता है।

इन सभी रचनाओं में दोहा, सोरठा, चौपाई, कवित्त और कुंडलियाँ समान रूप से प्रयुक्त हुए हैं। हेमरतन (पृ .21) और *पद्मिनीसमिओ* (पृ. 126) के अज्ञात रचनाकार ने एक-एक स्थान पर गाहा (गाथा) छन्द का भी प्रयोग किया है। हेमरतन ने अपनी रचना में पूर्व रचना का जो अंश उद्धृत किया है, वह गाहा छंद में है।

पद्मिनीसमिओ में भी प्रयोजन यही है। चारण रचना *गोरा-बादल कवित्त,* जो इस परंपरा की सबसे प्राचीन रचना है, में छंद वैविध्य कम है। यहाँ केवल सोरठा, दोहा, कवित्त और कुंडलियाँ छंद ही प्रयुक्त हुए हैं। रचना संक्षिप्त है, इसलिए इसमें छंद वैविध्य की गुंजाइश भी बहुत नहीं है। इसमें पारंपरिक छंद कुंडलियाँ का भी प्रयोग हुआ है। *गोरा-बादल कवित्त* (पृ. 115), लब्धोदय कृत *पद्मिनी चरित्र चौपई* (पृ. 32), जटमल नाहर कृत *गोरा*-बादल कथा (पृ. 190) में एकाधिक स्थानों पर, संस्कृत अंशों में, श्लोक (अनुष्टुप् छंद) का प्रयोग भी मिलता है। लब्धोदय की रचना में यह प्रयोग सबसे अधिक विस्तृत है। देशभाषाओं में रचना करने वालों के लिए उस समय संस्कृत के मूल छंदों का प्रयोग प्रतिष्ठकारी रहा होगा। लब्धोदय की रचना में छंद कमोबेश हेमरतन के यहाँ प्रयुक्त छंद ही हैं, लेकिन उन्होंने इस रचना को विभिन्न राग-रागिनियों, जिनमें ठेठ देशी रागिनियाँ भी हैं, में ढाल दिया है। इन रचनांशों की देशी राग-रागिनियों में 'ढाल' देने के कारण ही इस पद्धति का नामकरण कदाचित् 'ढाल' हुआ होगा। राग मारू, गौड़ी, मल्हार, धन्यासी, आसा सिंधु आदि रागों में यह रचना ढली हुई है। इसमें मेवाड़ी दरजी-दरजन, तैहिज, ढूंढणियाँ, लहरीले गोरिला रे, श्रेणिक, वाल्हेसर आदि कई ढालें प्रयुक्त हुई हैं।[61]

5.

पद्मिनी-रत्नसेन पर निर्भर कथा-काव्य कथा प्रधान हैं, इसलिए इनमें रचनात्मकता का निवेश उस तरह से नहीं है, जिस तरह से काव्य प्रधान रचनाओं में होता है। रचनात्मकता का निवेश इन रचनाओं में वस्तु विधान में सर्वाधिक दिखता है। कवि कथाकार के लिए अलंकरण आदि की गुंजाइश भी इन रचनाओं में वस्तुविधान के दौरान ही निकलती है। यह वस्तु विधान भी कमोबेश कवि-कथा रूढ़ि की तरह है। पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर रचनाओं में इसका विधान युद्ध, दुर्ग, ऋतु, भोजन और पद्मिनी के सौंदर्य वर्णन के रूप में हुआ है। कवि-कथाकारों ने यहाँ अपनी रचनात्मक प्रतिभा और कौशल भी दिखाया है। यह अलग बात है कि यह प्रतिभा और कौशल पारंपरिक रूढ़ियों के निर्वाह में ही अधिक दिखता है। प्रबंध रचना के पारंपरिक लक्षणों में वस्तु वर्णन है और कवि से यह अपेक्षित है कि वह कथा प्रवाह में आने वाली वस्तुओं का ठहर कर वर्णन करे। पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण पर आधारित कमोबेश सभी रचनाओं के कथा प्रवाह में ऐसे स्थल मिलते हैं या इनके लिए ख़ास प्रावधान किया गया है। *गोरा-बादल कवित्त* लघुकाय रचना है, इसलिए उसमें वस्तु वर्णन नहीं हैं, लेकिन हेमरतन कृत *गोरा-बादल पदमिणी चउपइ* में दुर्ग (पृ. 1) और पदमिनी सौंदर्य वर्णन (पृ. 23) हुआ है। रचना का आरंभ ही चित्तौड दुर्ग की प्रशस्ति

से हुआ है। कवि कहता है-

चित्रकूट पर्वत चउसाल, वसुधा लोचन जेसु विसाल।
सुर-नर किंनर तणउ निवास, राँम रहयाँ था जिहाँ वनवास॥

(हेमरतन-1)

अर्थात् चारों और फैला हुआ चित्रकूट पृथ्वी के विशाल नेत्रों के समान है। देवता, मनुष्य और किन्नरों का यहाँ निवास है और राम यहाँ वनवास में रहे थे। आगे यह वर्णन छह चौपाइयों तक चलता है, जिसमें यहाँ के घाट, द्वार, आवास, महल और निवासियों का अतिरंजना पूर्ण वर्णन हुआ है। *पद्मिनीसमिओ* में सैन्य और युद्ध वर्णन के रूप में वस्तु वर्णन हुआ है। *समिओ* में कवि अलाउद्दीन और रत्नसिंह, दोनों की सेनाओं का विस्तृत वर्णन करता है, जिसमें सेनाओं में सम्मिलित योद्धाओं के नाम, उनके अस्त्र-शस्त्र, सवारी- घोड़ा-हाथी आदि का विस्तृत विवरण दिया गया। अलाउद्दीन की सेना के प्रस्थान का विवरण कवि इस तरह देता है -

गुराब चले गुंजते गुग्ध घट्टं। उपाड़ंत भारं पहाडंत पोठं॥
चल्यो अति हिं आराबा जूह चोजं। चले बान जंबूर हथनाल होजं॥

(समिओ-118)

अर्थात् अराहड़ा आवाज करते हुए ऊँटों का समूह पीठ पर तोपों को लादकर वृक्षों को उखाड़ते हुए और पहाड़ों को रौंदते हुए चला। युद्ध करने का उत्साह मन में लेकर योद्धाओं के समूह चलने लगे। ऊँट और हाथियों पर बैठकर काम में ली जाने वाली तोपें चल पड़ीं। *समिओ* से ही युद्ध वर्णन का एक और उदाहरण प्रस्तुत है-

भमक्के हब्बकैं धुरक्कै सधावं। झड़क्के उलक्के मधूके मिनावं।
मरे मीर केते लुटैं खेत मज्झं। मनौं मीन तर्पंत रेतं स बज्जं॥

(समिओ-145)

अर्थात् योद्धाओं के घावों से उछलकर उबलता हुआ रक्त निकलकर नालियों में बह रहा है। कई मीर मर गये हैं। वे रणक्षेत्र में पड़े हुए इस तरह आकुल-व्याकुल हैं, जैसे बिना पानी के रेत पर मछली तड़पती है। ख़ास बात यह है कि यह 54 से 81वें छदं तक निरंतर चलता है। जटमल नाहर की रचना में भी युद्ध वर्णन का प्रसंग 117 से लगाकर निरंतर 130वें छंद तक चलता। युद्ध वर्णन में जटमल ने ख़ास रुचि ली है। उसका इससे संबंधित एक छंद इस प्रकार है-

सुभट सुभट सु लड़िग पड़िग तिहाँ खड़ग भड़ाभड़।
हुड़ग जुड़ग जहाँ जुड़ग, जुड़ग तहाँ खड़ग भड़ाभड़॥ (नाहर-206)

अर्थात् योद्धा, योद्धा से लड़ता है। उसकी खड्ग, खड्ग पर भड़ा-भड़ पड़ती है। वे जुड़-जुड़कर जुड़ते हैं और जुड़ते हैं, वहाँ धड़ा-धड़ गिरते हैं। युद्ध वर्णन हेमरतन के

यहाँ भी प्रभावी है। उसका एक छंद उदाहरण के लिए यहाँ प्रस्तुत है-

हवलक्या खल खल लोही खाल, पावस जेम वहई परनाला।
रज रुँधाणी थयउ प्रगास, गिर झरणी मंस तणा ले ग्रास॥ (हेमरतन-91)

अर्थात् खून के नाले खल-खल चलने लगे, जैसे वर्षा में परनाले बहते हैं। धूल ने सूर्य के प्रकाश को अवरुद्ध कर दिया और गिद्ध मांस के ग्रास ले रहे थे। युद्ध और सैन्य वर्णन *राणारासो* में विस्तृत है। उसमें दुर्ग और नगर वर्णन भी है, लेकिन प्रासंगिक अंश में अलाउद्दीन ख़लजी के युद्ध अभियान का अतिरंजना पूर्ण वर्णन है। कवि कहता है कि -

हय हुंक धुंक नीसान नह, टुंक टुंक हुव हिमगिरी।
सुख सेन चेन रेन दिन, सहज नेन निरझकि परि। (दयालदास-200)

अर्थात् घोड़ों की हिनहिनाहट और नगाड़ों की कड़कड़ाहट की आवाज़ से हिमालय पर्वत के शिखर टूट-टूटकर गिरने लगे। रात की सुखदायक निद्रा और दिन का विश्राम ख़त्म हो गया। आँखो से स्वत: ही आँसू झरने लगे। *राणारासो* में युद्ध वर्णन विस्तृत है। भुजंगप्रयात छंद में संख्या 103 का छंद 14 पंक्तियों में विस्तृत है। आगे भी यह वस्तु वर्णन इसी तरह छंद सं.107 तक चलता है। युद्ध और सैन्य वर्णन का विस्तार हेमरतन और लब्धोदय के यहाँ भी है। यह अलग बात है कि यहाँ यह इतना विस्तृत नहीं है। यह वर्णन देसी राग *'नाथ गई मोरी'* में है। लब्धोदय के इस वर्णन और हेमरतन के युद्ध वर्णन में पर्याप्त समानता है। *खुम्माणरासो* में विवेच्य प्रसंग में वस्तु वर्णन नहीं है, लेकिन अन्यत्र यह बहुत है।

राणरासो का यह प्रसंग वस्तु वर्णन की दृष्टि से सबसे अलग है। इस प्रसंग में कथा के मोड़-पड़ाव की जगह वस्तु वर्णन ने ले ली है। प्रसंग आते ही योगी सिंघलद्वीप का वर्णन (छंद सं. 69) करता है। वह कहता है -

भोग भवन के कवनु सुख, कहै सुरो श्री रान।
नालिकेल जंगल जटै, लोंग लता लपटान॥ (दयालदास-185)

अर्थात् हे राणा! उस भोग भूमि सिंहल में कौन-कौन से सुख प्राप्त हैं, उनके विषय में सुनो। उस भूमि के वन नारियल के वृक्षों से अच्छादित हैं, जिन पर लवंग की बेलें लिपट रही हैं। इसके बाद 11 छंदों (छंद सं. 80) में वहाँ निवासियों, सुख, भूमि आदि का वर्णन करता है। यह सुनकर राजा को प्रेम हो जाता है, तो कवि षड्ऋतु वर्णन के लिए ठहर जाता है। वह ऋतु वर्णन शुरू करते हुए कहता है -

भयो भूमि ऋतुराज को, आगम दस दिसि आइ।
मानहु मुग्धा की भई, तरुन अरुन इकाई॥ (दयालदास-189)

अर्थात् पृथ्वी पर सर्वत्र ऋतुराज बसंत आगमन हो गया। ऐसा प्रतीत होने लगा मानो

नवयौवना बसंत ऋतु के साथ लालिमा लिए हुए युवा प्रेमी सूर्यदेव का ऐक्य (मिलन) हो गया है। आरंभ के बाद बसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमंत और शिशिर ऋतु का वर्णन है। हेमंत और शिशिर का वर्णन करते हुए कवि कहता है-

हिम रितु चित्त विरसोसु, रत्त पद्मिनी पेमु।

सिसिर धसिर आई धरा, सब जग हुलस्यो हेम॥ (दयालदास-195)

अर्थात् हेमंत ऋतु में पद्मिनी के अनुराग में अनुरक्त रत्नसेन का मन उदासीन था। शिशिर ऋतु ने धरती पर बलात् प्रवेश कर लिया। सारा संसार हेमंत ऋतु से उल्लसित हो गया। यह ऋतु वर्णन इस प्रकरण की सबसे अधिक जगह घेरता है और 14 छंदों (छंद सं. 82-96) तक है। *राणारासो* के इस प्रकरण अगला अधिकांश भाग युद्ध और सैन्य वर्णन में निकलता है और कथा केवल संकेतों में अत्यंत संक्षिप्त है।

पद्मिनी और स्त्री की शेष तीन कोटियों- चित्रिणी, हस्तिनी और शंखिनी का वर्णन इन सभी रचनाओं में मिलता है। यहाँ कवियों ने अपनी कल्पनाशीलता का परिचय दिया है। कहीं यह बहुत संक्षिप्त, तो कहीं बहुत विस्तृत है, लेकिन इन सब वर्णनों का प्रस्थान *गोरा-बादल कवित्त* से होता है। कवित्त में केवल इतना उल्लेख है कि *सुरनर गंध्रव, देखि मुनिवर मन मोहइ* और *पद्मिनी पद्म गंधाच,* लेकिन आगे की रचनाओं में इस प्रस्थान का पल्लवन हुआ है। हेमरतन और दलपति विजय के यहाँ यह कमोबेश समान है और इस प्रकार है-

वीज जेम झलकंत कांति कुंदण जिम सोहें। सुरनर गुण गंधर्व, रूप तृभुवन मन मोहें।

त्रिवली, मयतन लंक, वंक नहु वयण पयंपे। पति सूं प्रेम अपार, अवर सुं जीह न जंपे।

सांम धरम ससनेहणी, अति सुकमाल सोहामण। कहें राघव सुलतान सुण पुहवी इसी हे पदमणी।

(हेमरतन-24 और दलपति विजय-93)

अर्थात् पद्मिनी बिजली की समान प्रकाशमान होती है। वह देवताओं, मनुष्यों और गंधर्वों के मन मोहती है, वह स्वामिभक्त और स्नेहवान है, वह कटु वचन नहीं बोलती और अत्यंत सुकुमार और मनमोहक है। वह पति से प्रेम करती है और किसी और से वार्तालाप नहीं करती। राघव कहता है कि हे सुल्तान! सुनो, पृथ्वी पर पद्मिनी ऐसी है।

लब्धोदय की *पद्मिनी चरित्र चौपाई* में दुर्ग, पद्मिनी आदि के साथ भोजन का भी बहुत सरस और विस्तृत वर्णन मिलता है। जायसी ने अपनी रचना में अलाउद्दीन के आतिथ्य में रत्नसेन द्वारा परोस गये व्यंजनों का विवरण (पृ. 54-57) दिया है, लेकिन यह स्थानिक प्रकृति का नहीं है। लब्धोदय के विवरण में आये सभी व्यंजन

स्थानिक, मतलब मेवाड़ी या वहाँ आसानी से उपलब्ध हैं। उल्लेखनीय यह है कि इस विवरण में कोई अतिरंजना नहीं है। लब्धोदय वर्णन की शुरुआत में कहता है कि- *नाना व्यंजन नव नवा रे लाल, चतुर समार्‍या चाख। खाटा मीथा चरपरा रे लाल, रूड़ै स्वादै राखि॥* अर्थात् नये नये विविध प्रकार के व्यंजन अच्छी तरह चखकर बनाये गये और फिर वह व्यंजनों का विवरण देना शुरू करता है। आम और नींबू के बूरा डाले हुए कतरे, केले, हरे चँवले की फली, ककड़ी, काचरी, परवल, टींडसी, मूंगबड़ी, पेठाबड़ी, खाराबड़ी, डबकबड़ी, दाधाबड़ी, अनार, दाख, खरबूजा, घोलबड़ा, कांजीबड़ा, कारेली, काचरा, पापड, पपीता, मोठ, मटर, आचार, सालन, बादाम, चिरोंजी आदि सभी मेवे, शक्कर के खाजे, बूरा डला हुआ घेवर, मोतीचूर के लड्डू, डीडवाना के पेड़े, पूड़ी, लापसी, तिलपट्टी, बीकानेर की जलेबी, धनपुर के पोहे, ग्वालियर की गुपचुप, बीकानेर के करणशाही लड्डू, दाणा, गूंदपाक, फीणी, साबूदाना, राजभोग, दहीबड़ा, मूंग, मोठ, तूअर, मसूर, उड़द की दालें, छाछ, लोंग-सुपारी आदि व्यंजनों, फलों, मेवों, पेयों, सब्जियों, दालों और भोजनोपरांत प्रयुक्त सामग्री का उल्लेख इस विवरण में हुआ है।

6.

पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर ऐतिहासिक कथा-काव्य पारंपरिक हैं, इसलिए इनमें कथा-कवि रूढ़ियों और अभिप्रायों का प्रयोग ख़ूब हुआ है। इन रचनाओं की ख़ास बात यह है कि यह कथा और कवि रूढ़ियों और समयों के लिए ये अपनी पूर्ववर्ती रचनाओं की ऋणी हैं। प्राय: हुआ यह है एक ही कथा-कवि रूढ़ि इनमें आंशिक रूपातंरण के साथ निरंतर प्रयुक्त होती रहती है। ये रचनाएँ कथा-काव्य रचनाएँ हैं, इसलिए इनमें कथा और कवि, दोनों प्रकार के अभिप्रायों या रूढ़ियों का प्रयोग मिलता है। भोजन के स्वादहीन होने पर रानी की व्यंग्योक्ति से नाराज़ होकर अन्य स्त्री से विवाह के राजा के संकल्प करने की कथा रूढ़ि राजस्थान के लोक साहित्य में अन्यत्र भी प्रयुक्त हुई है। यह घटना कथा समय की तरह हेमरतन, लब्धोदय, दलपति विजय की रचनाओं सहित *पाटनामा* और *कवित्त* में प्रयुक्त हुई है। *गोरा-बादल कवित्त* में यह कथा रूढ़ि बहुत संक्षिप्त है। यह इस तरह से है -

एक दिवस गहलउत, राय बड्ठउ भूंजाई,
सत्तर भख्य भोजन मूंध हस का ले आई।
के खारा के मीठ, केइ कछु स्वाद न आवइ।
तब पटरानी कह्यड, बेग पद्मिनी क्यों न लावइ।
(गोरा-बादल कवित्त-110)

अर्थात एक दिन राजा भोजन के लिए बैठा। मुग्धा रानी हँस कर उसके लिए सत्तर व्यंजन ले आई। व्यंजन खारे या मीठे थे, राजा को कोई स्वाद नहीं आया। तब पटरानी ने कहा कि आप इसके लिए शीघ्र पद्मिनी क्यों नही ले आते। यही कथा रूढ़ि परवर्ती रचनाओं में विस्तृत और पल्लवित होती गयी। *पाटनामा* में यह सबसे अधिक रोचक और विस्तृत होकर प्रयुक्त हुई है। जटमल नाहर, दयालदास की रचनाओं सहित *पद्मिनीसमिओ* में यह कथा रूढ़ि नहीं है। *पद्मिनीसमिओ* और जटमल नाहरकृत *गोरा-बादल कथा* में चार भतुर भाट माँगने के लिए आते हैं और पद्मिनी के संबंध में रत्नसेन को बताते हैं। *राणारासो* में एक योगी का आगमन है, जो राजा को सिंघल और वहाँ की पद्मिनी स्त्रियों के संबंध में बताता है। पद्मिनी स्त्री के असाधारण सौंदर्य और उसके सिंघल द्वीप में होने की कवि-कथा रूढ़ि का भी प्रयोग भी इन सभी रचनाओं में प्रयुक्त हुआ है। पद्मिनी के असाधारण रूप सौंदर्य के संबंध में *गोरा-बादल कवित्त* में केवल यह उल्लेख है कि पद्मिनी के शरीर से पद्म (कमल) की गंध आती है (*पद्मिनी पद्म गंधाच*-115) और सिंहल द्वीप में पद्मिनियाँ बहुत होती है (*संघल द्वीप समुद्र, अछइ पद्मिण बहु भत्तीय*-116)। बाद में इस कवि-कथा रूढ़ि का विस्तार और पल्लवन होता गया। हेमरतन के पद्मिनी का सौंदर्य में बिजली की चमक (*वीज जेम झबकंति*-24), स्वर्ण की कांति की तरह उजली (*कंति कुंदण ज्यों सोअहइ*-24) आदि विशेषताओं के साथ उस पर भ्रमर गुंजार (*भमर बहु भमइ वलावल*-23)) की बात जुड़ गई। *खुम्माणरासो* सहित परवर्ती रचनाओं में इस विशेषता पर आग्रह बढ़ता ही गया। दलपति विजय ने पदमिनी का वर्णन इस तरह किया है-

चंपक वरण तन, अति कोमल सब अंग।
चिहुं ओर गुंजित भ्रमर, निभष न छारत संग॥ (दलपति विजय-91)

अर्थात् उसका शरीर चंपकवर्णी है, उसके सभी अंग कोमल हैं, उसके चारों भ्रमर गुंजार करते हैं और वे एक क्षण के लिए उसका साथ नहीं छोड़ते। पद्मिनी स्त्री सिंघल द्वीप में होती है और समर्थ राजा उसे पाने के लिए समुद्र लाँघकर परीक्षा देता है, यह कथा-कवि समय और रूढ़ि भी इन सभी रचनाओं में है। *गोरा-बादल कवित्त* में इस ओर केवल संकेत है और केवल एक पंक्ति में राजा के सिंघल जाकर पद्मिनी से विवाह कर ले आने का उल्लेख है। (*धरि मछर संघलि सांचरयउ, नेव जीत कन्या वरी, पद्मनी ज आणि पयज करि, राय रत्नसेन अइसी करी।* -110) परवर्ती रचनाओं इस नेव (नियम, प्रण) का विस्तार है। हेमरतन और लब्धोदय के यहाँ सिंघल के राजा ने प्रण ले रखा है कि जो कोई उसे युद्ध या शतरंज में पराजित करेगा वह अपनी बहन का विवाह उससे करेगा। राजा रत्नसेन यह शर्त पूरी कर पद्मिनी से विवाह करता है। (*कंठ ठवी कोमल वरमाल जय जय शबद जगावइ बाल।* -

11) *खुम्माणरासो* में कवि-कथा समय कुछ भिन्न है। यहाँ स्वयं पद्मिनी ने प्रण ले रखा है कि जो उससे चौपड़ के खेल में जीत जाएगा, वह उससे विवाह कर लेगी। कई राजा उससे हार गये, जबकि रत्नसेन उससे जीत गया। (*अधिपति खावी हार अनेक। जीपें तस परणूं सविवेक।। रमवा बैठो रतन नरेश हारवी पद्मणी लघुवेश-* 85)। *पाटनामा* में यह कथा समय सर्वथा भिन्न हैं। यहाँ पद्मिनी के परिजन पद्मिनी सहित बाबा मंछदरनाथ की धूणी पर रत्नसेन को देखकर प्रभावित होते हैं और उनके आग्रह पर पद्मिनी का विवाह रत्नसेन से करने का निर्णय लेते हैं। रत्नसेन को सिंघल द्वीप गोरखनाथ अपनी उड़नखटोली पर ले जाते हैं।

युद्ध वर्णन के कवि-कथा समय और रूढ़ियाँ इन सभी कथा-काव्यों में हैं। इस तरह के कवि-कथा समय जैन और चारण, दोनों तरह के काव्यों में हैं। धूल आकश पर इस तरह उड़ी कि सूर्य दिखाई नहीं पड़ता *(खेहा डंबर ऊडिउ खरउ, सूझउ सूर नहीं पाधरऊ-89)*, तलवारें बिजलियों की तरह चमकती हैं (*खड़ग् विछूटरइ करता खीज, जाणिक बादलि झबकइ बीज*-89), खून के प्रवाह बरसाती नालों की तरह चल निकले (*खल खलखल लोही खाल, पावस जेम वहइ परनाल*-91), योगिनियाँ पात्र खून से भर रही है और गिद्ध मांस नोच रहे हैं (*पूरई पत्र रुहिर जोगिणी, मुंडमाल ले ईसरधणी*-91), सिंचाण उड़ान भर रहे हैं और आकाश से देवता विमान से देख रहे हैं (*झडवड झडप भरई सींचाण अंबर जोवई अमर विमाण*- 91) जैसे कई कवि-कथा समय हेमरतन ने प्रयुक्त किए हैं। इसी तरह के कवि कथा समय लब्धोदय के यहाँ भी है। युद्ध में गोरा के पराक्रम के संबंधित दलपति विजय ने कुछ कवि समयों का प्रयोग किया है। वह कहता है -

षमा षमा कहि अपछरा, हरि जोड़े सिर हाथ।
गिलें डळा भख ग्रीधणी भुजां वदे दिननाथ॥ (दलपति विजय-166)

अर्थात् अप्सराएँ गोरा का खमा-खमा कहकर जयघोष कर रही थी, सिर तक हाथ उठाकर भगवान को प्रणाम करती थीं। गिद्धनियाँ मांस के टुकड़ों का भक्षण करती हुई निगल रही थीं। भगवान सूर्य उसके भुजबल की प्रशंसा कर रहे थे। *राणारासो* का रचनाकार चारण है, इसलिए युद्ध वर्णन के कवि समयों का प्रयोग उसके यहाँ अधिक जीवंत और व्यापक है। पृथ्वी पर उसके (अलाउद्दीन) सैन्य दल के भार से शेष नाग दब गया और भागने लगा (*लच्च्यो शेषु भार भुवं भार*), पृथ्वी को अपनी पीठ पर सँभालकर रखनेवाला (कच्छप) कष्ट पाने लगा और उसने अपनी भार वहन की क्षमता को परित्याग दिया (*कच्च्यो कष्ट करंभु आरंभु छोड़्यो*), आठों दिशाओं के हाथियों में खींचतान होने लग गई (खच्यो जत्थु मातंग को लार घाटं), कटे हुए मुंडों के समूह को लेकर चामुंडा (दुर्गा) ने हार बनाया और अंबिका देवी ने मस्तकों

से रक्तपान किया (*मुड़े मुंड डढ्ढी बड़ी तुंड स्त, भखे भख्ख आमख्ख ते भेष तत्ते*) आदि कई प्रयोग दयालदास ने किए हैं। (दयालदास-108)

पाटनामा गद्य रचना है, लेकिन उसमें इस तरह के युद्ध वर्णन की रूढ़ियों की भरमार है। इसमें *'तीन कोस ताही धड़ ओर मुंड मील गए'* (तीन कोस तक धड़ और सिर एक-दूसरे में मिल गए), *'रगत को ढेपो गंभीरी (नदी का नाम) महे मिल गयो'* (रक्त का प्रवाह गंभीरी (नदी) में मिल गया), *उबा थका आदमी की डूटी बराबर रगत्र बीयो* (खड़े हुए आदमी ड्योठी जितनी ऊँचाई तक रक्त बहा) जैसे प्रयोग इसमें कई हैं। (पाटनामा-405-406) सिर विहिन धड़ों के युद्ध करने के दृश्य वर्णन इन रचनाओं में कई हैं। *पाटनामा* में गोरा बादल के धड़ वध के बाद बहुत दूर तक जाते हैं। पाटनामा में कहा गया है कि- *पछे दोई भया का धड़ चाल नीसरिया दोई हीया का कलल उखड़ गीया अर खांडा की मुठा उपर हात देर गोरा बादल का धड़ चाल नीसरीया* (फिर दोनों भाइयों के धड़ चल निकले। दोनों का रंग उड़ गया और खांडे (तलवार) की मूठ पर हाथ रखकर गोरा-बादल के धड़ चल निकले)। (पाटनामा-403)

ऋतु वर्णन का कथा-कवि समय इन काव्यों में से केवल एक *राणारासो* में है। *राणारासो* के रचनाकार दयालदास ने रत्नसेन को अलग-अलग ऋतुओं में अलग-अलग तरह से प्रेम व्यथित दिखाया है। दयालदास का विरह और ऋतु वर्णन, दोनों में कवि समयों का प्रयोग हुआ है। उसने राजा के विरह का वर्णन इस तरह किया है -

नेहन न लग्गे ग्रेह देह ओतापु जापु मुख।
प्यास गई तजि पासु, वासु तजि भूख दुःख॥
वन-उपवनु न सुहाई, पाई परसे न पुहिमि थिरू।
मन न रमे रनिवास सांस पर सांस लेइ चिरू।
निंदतु चंद चंदन चढ़त, इंदीवर उद्वेग मय।
परजंक संक ढंकत, द्रिगनि, भोज सोंज भइ दानि मय (दयालदास-189)

अर्थात् उसका राजप्रसाद में मन नहीं लगता। शरीर ज्वर से संतप्त रहने लगा। वह सदा ही पद्मिनी का नाम रटता रहता था। प्यास उसका साथ छोड़कर चली गई। उसकी आत्मा की सुख-दुःख की प्रतीति ख़त्म हो गई। वन-उपवन उसे अच्छे नहीं लगते। चलते समय पृथ्वी पर उसके पाँव स्थिर नहीं पड़ते। अंत:पुर से उसका मन ऊब गया। वह निरंतर निश्वास छोड़ता। चाँद की चाँदनी और चंदन को शीतलता उसको बुरी लगने लगी। कमल के फूल उसको व्याकुल करते थे। शय्या पर जाने से पहले वह आशंका के कारण अपनी आँखें ढक लेता था। विषय भोग की सामग्री उसे भयभीत

करती थी। कवि को ऋतु वर्णन के कवि समयों की भी अच्छी जानकारी है। बसंत का उसका वर्णन परंपरानुसार होकर भी जीवंत है। वह लिखता है –

तरुन अरुन तरपत्त अरुन तरपत्त तरुन छवि।
अंब मोर जनु दरत चौंरं, झौरं नित भौरं फनि॥
करति केल द्रुम लपटि, वेलि लटकंति कंठ लगि॥
उड़ि पराग बन बाग, भाग त्रय पोंन गोंन जगि॥
नमि डार भार किंसुक कुसुम असम बांन संधान ऋतु॥
कोकिल कुहक नहि जकम जिय, विरहिनी अंत वसंत रितु॥
(दयालदास–190)

अर्थात् जहाँ वसंत का सूर्य की लालिमा से मिलन हुआ, वृक्षों में लालिमा लिए नये पत्रांकुर अपनी कोमल शोभा धारण किए हुए थे। आम के वृक्षों में आए बौर ऐसे लगते थे, मानो चँवर ढोले जा रहे हों। लताएँ वृक्षों से लिपटकर ऐसे क्रीड़ा करती थीं, मानो उनके कंठ से लगकर आलिंगन करती हुई झूल रही हों। वायु की गति तीन गुनी हो गई थी, जिससे पुष्परज उड़कर सर्वत्र फैल गई थी। पलाश की टहनियाँ टेसू के भार से इस तरह झुक गई थीं, मानो कामदेव पुष्प बाण का संधान कर रहा हो। बसंत ऋतु में निरंतर बोलती कोयल अपने पंचम राग में स्त्रियों के हृदय अशांत कर रही है। यह उनका अंत करने वाली है।

6.

पद्मिनी–रत्नसेन प्रकरण पर आधारित कथा–काव्यों में वस्तु और कथा वर्णन की प्रधानता है, लेकिन इनमें अलंकरण और संवादों के कविता में नियोजन का कौशल भी सघन और निरंतर है। प्राकृत–अपभ्रंश की परंपरा में अलंकरण कथा–काव्य का ज़रूरी उपादान था। *णायकुमार चरिउ* में आये एक उल्लेख से लगता है कि उस समय यह धारणा प्रबल थी कि अलंकार का अभाव कथा–काव्य को नीरस कर देता है। सौत के कुचक्र से राजा ने नागकुमार की माता के सब अलंकार उतरवा लिए। नागकुमार जब लौटा तो उसको अपनी माता कुकवि की अलंकार विहीन कविता की तरह लगी।[62] यह परंपरा परवर्ती देश भाषा काव्यों में जारी रही। यहाँ भाव व्यंजना और उत्कर्ष के लिए निर्भरता वस्तु वर्णन और कथा के मोड़–पड़ावों पर अधिक है, लेकिन अलंकरण भी कवि स्वभाव की तरह इन रचनाओं में बराबर है। ये अधिकांश रचनाएँ अपनी प्रकृति में गेय या वाच्य हैं, इसलिए सांगीतिकता के लिए यहाँ अर्थालंकारों के बजाय आग्रह वर्ण और शब्द निर्भर अलंकारों पर ज़्यादा है। कवियों ने इनके नियोजन के लिए सजग भाव से कुछ किया हो, ऐसा नहीं लगता है। लगता यह है

कि वर्ण और शब्द निर्भर अलंकरण इन कवियों की कवि शिक्षा में सम्मिलित है, इसलिए यह उनके कवि संस्कार और स्वभाव में आ गया है। हेमरतन, लब्धोदय और दलपति विजय की रचनाओं में छंद और सांगीतिकता का निर्वाह करते हुए संवादों की नाटकीयता की मौजूदगी भी बहुत प्रभावी है। इसका निर्वाह इन कवियों ने बहुत कौशल के साथ किया है। सादृश्यमूलक पारंपरिक अलंकारों का प्रयोग इन अधिकांश कवियों के यहाँ भी है। रचनाएँ ऐतिहासिक और कथा प्रधान हैं, इसलिए आलंकारिक चमत्कार का आग्रह इन रचनाओं में नहीं के बराबर है। अलंकरण में कवि रूढ़ियों और कवि समयों का इस्तेमाल चारण कवियों के यहाँ ज़्यादा है। जैन कवियों ने इनका इस्तेमाल अपेक्षाकृत कम किया है।

अनुप्रासिकता इन कवि-कथाकारों का कवि स्वभाव है। इसके लिए न तो इनमें कोई सजगता और न इन्होंने कोई प्रयास किया है। अनुप्रासिकता इनकी काव्य भाषा का सहज और अनायास गुण है। इन रचनाओं में कोई पंक्ति ऐसी नहीं है, जो अनुप्रासिकता रहित हो। अनुप्रासिकता के कुछ उदाहरण इस प्रकट हैं -

1. *गज बदन गणपति नमूं, माहा-माय बाधे देय।*
   गुण गूंथू गोरल का, जस बादल जंपेय॥ (गोरा-बादल कवित्त-109)
2. *सुख संपति दायक सकल, सिधि बुधि सहित गणेस।*
   विघन विडारण विनयसुं, पहिलि तुझ प्रणमेस॥ (हेमरतन-25)
3. *कनक कुंभ श्रमिज जिसा रे कुच कटि कठिन कठोर।*
   पाका वील नारिंग सा रे मानुं युगल चकोर।
4. *रूपवंत रतिरंभ कमल जिम काय सुकोमल।*
   परिमल पुहुप सुगंध भमर बहु भमें विलोवल॥ (दलपतिविजय-92)
5. *पान हुँतै पातरी प्रेम पून्यो सो झल्लैं।*
   भ्रम मिनाल सुविसाल चालि हंस गति चल्ले॥ (समिओ-100)
6. *मुकता मनि मानिक मिलै, चूनो कीनो वारि।*
   के हाटक, के फटिक के रचिये सान सँवारि॥ (दयालदास-186)

संस्कृत और प्राकृत के बाद में अपभ्रंश और परवर्ती देश भाषाओं में सांगीतिकता के आग्रह या अनुरोध पर अनुप्रासिकता के नए रूपांतरण 'वयणसगाई' का विकास हुआ। कालांतर में राजस्थानी के कतिपय विद्वानों ने इसकी पहचान और वर्गीकरण भी किया। वयण सगाई का अर्थ वर्ण मैत्री है। सांगीतिक और वाच्य होने के कारण चारण और जैन रचनाओं का यह अनायास लक्षण हो गया। 'वयणसगाई' के कुछ रूपों- शब्द, वर्ण और अखरोट की पहचान हुई।[63] इस तरह की शब्द-वर्ण मैत्री संस्कृत में भी थी, लेकिन उसमें सांगीतिकता का आग्रह नहीं था, इसलिए यह बहुत

मुखर और व्यापक नहीं हुई और इसकी अलग से पहचान की ज़रूरत भी महसूस नहीं हुई। वयण सगाई ने काव्य भाषा को सुगठित और ध्वन्यात्मक किया। वयण सगाई के चिह्नित रूपों में शब्द, वर्ण और अखरोट (मित्र वर्ण मैत्री) हैं। शब्द वयण सगाई में आदि या मध्य या अंतिम वर्ण की चरण की अंतिम चरण में आवृत्ति होती है, जिसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

1. *जंबू दीप झँझार, भरथ खंड सिरै।*
   नगर भलौ तहाँ सार, गढ चित्रंग अनूप गढ। (समिओ–99)
2. *छपद छत्रु सिर पर अछै, अछै ताम रस वासु।*
   सखि-मुख सारस लोचनी, शोभा सील निवासु। (दयालदास–197)

वर्ण संख्यक वयण सगाई जटिल है। इसमें आदि वर्ण का संबंध चरण के अंत में विपरीत क्रम से मिलाया जाता है। यह अलंकार भी इन रचनाओं में प्राय: नहीं मिलता। वयण सगाई का तीसरा प्रकार अखरोट है। अखरोट में मित्र वर्णों का प्रयोग होता है। इन मित्रों वर्णों का भी तीन भागों– अधिकाधिक मित्र वर्ण (आ, इ, ई, ऊ, ऐ, य, व, अे), सममित्र वर्ण (ज, झ, ऊ, ब, फ, व, ण, ग, घ) और न्यून मित्र वर्ण (त, ट घ, ठ, द, उ, च, छ) में वर्गीकृत किया गया है। अखरोट का प्रयोग सांगीतिकता के अनुरोध पर इन रचनाकारों ने अनायास किया है। शास्त्रकारों मानना है कि किसी भी छंद में केवल अधिकाधिक या सम या न्यून का अलग-अलग प्रयोग संभव नहीं है। इन रचनाओं में कवियों ने भी सजग रहकर इनका अलग-अलग प्रयोग नहीं किया। यह अवश्य है इन रचनाओं के छंदों में मित्र वर्णों का प्रयोग बहुत व्यापक रूप में हुआ है, जो कमोबेश अनायास है। कुछ उदाहरण इस पकार हैं–

1. *काया चाबतणी कोथली, खिण इक मेली खिण उजली।*
   तिण साइठ जउ कीरति मिलइ, तउ लेताँ कुण पाछइ टलई॥
   (हेमरतन–75)
2. *दल असंख्य जिणी गंजिया असपति मोड्या भाण।*
   राणी सरण पद्मावती बंध छोड़ायउ रांण॥ (कवित्त–109)

अर्थालंकारों में सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग ही इन रचनाओं में अधिक मिलता है। ये सभी कवि अनौपचारिक कवि शिक्षा प्राप्त हैं, इसलिए इनका ज्ञान इनको होगा, यह निश्चित है, लेकिन इनका आग्रह काव्य भाषा और छंद विधान पर अधिक है। शायद इनके प्रशिक्षण में भी इसी का ज़ोर रहा होगा। सादृश्यमूलक अलंकारों का यह प्रयोग बहुत सायास या सजगतापूर्वक नहीं है। प्रवाह में आ गया है, तो उनका प्रयोग अनायास हो गया है। अतिशयोक्ति अलंकार है, लेकिन इन रचनाओं में इसका कई तरह से प्रयोग हुआ है और यह इन कवियों की कवि शिक्षा के कारण है। मध्यकाल

में अतिरंजना भी अलंकरण के लिए कमोबेश ज़रूरी हो गई थी। कवियों का आग्रह भी 'वाणी विलास' पर अधिक था। दलपति विजय ने सरस्वती से यही माँगा। उसने कहा कि *आपो दोलत ईश्वरी, वाणी वयण विलास* अर्थात् हे ईश्वरी ! मुझ दौलत विजय को ललित या प्रांजल भाषा का सुख प्रदान करो।[64]

सादृश्यमूलक अलंकारों में अतिशयोक्ति के साथ उत्प्रेक्षा का व्यापक प्रयोग मिलता है। कदाचित् यह अलंकार इन कवियों की आदत में आ गया हो और इस तरह असंभव तुलना को कविता का पर्याय समझ लिया गया है। इन कवियों का मन उत्प्रेक्षा और उपमा में ही सर्वाधिक रमता है, क्योंकि ये दोनों अर्थालंकार सहज और अनायास काव्य भाषा का हिस्सा हैं। ख़ास बात यह है कि कथा प्रवाह में जब तक सहज और अनायास न हों, ये कवि केवल चमत्कार के लिए अलंकारों का प्रयोग नहीं करते। आग्रहपूर्वक अलंकरण उन्हीं स्थानों पर है, जहाँ वस्तु, ऋतु और सौंदर्य वर्णन है। पद्मिनी के सौंदर्य वर्णन में अलंकरण ख़ूब है। हेमरतन, जटमल नाहर और *पद्मिनीसमिओ* के रचनाकार ने पद्मिनी के सौंदर्य वर्णन में जो पारंपरिक ढंग का अलंकरण किया है, कमोबेश वैसा अलंकरण अन्य रचनाओं में भी है-

1. *रूपवंत रतिरंभ कमल, जिम काय सुकोमल।*
   परिमल पुहुप सुगंध भमर बहुत भमई वलावल।
   चंपकली जिम रंग रंग, गति गयंद समाणी।
   सिसि वयणी सुकुमाल मधुर मुख जंपइ वाणी।
   चंचल चपल चकोर जिम नयण कांति सोहई घणी।
   कहि राघव सुलिताण सुणि! पहुबी इसी हुइ पद्मिणी। (हेमरतन-23)
2. *कमल नैन करि झीन, वेण ज्यूं नागन कारी।*
3. *म्रिग नैन बैन कोकिल सरस केहरिंकी कामिनी।*
   अधर लाल हीरा रतन भौंह धनक गहि गामिनी। (समिओ-101)

राणारासो में उत्प्रेक्षा कमोबेश कवि का स्वभाव है। इसमें उत्प्रेक्षा का प्रयोग ख़ूब मिलता है। सिंघल द्वीप के वर्णन में यह ख़ूब प्रयुक्त हुआ है-

1. *पनगलता पुंगी बिरख, यदि हालति लगि वाइ*
   लखि परभूमि पाहुनो मानहु लेति बुलाइ। (दयालदास-186)
2. *वहरू भ्रम ऐसा भयो सुनहु रतनसी रान।*
   पय सागर महि पैठिके मानहु लग्यो नहान। (दयालदास-187)

उदाहरण और उसके जैसे अलंकार भी इन लोक में रचे-बसे कवियों के कवि स्वभाव में हैं। इन रचनाओं में यही एक ऐसा अलंकार है, जिसके व्यवहार में कवियों ने अपने लोक के अनुभव का उपयोग किया है। यह सरल है और इसका व्यवहार

भी आसान है, इसलिए इसका प्रयोग इन कवियों ख़ूब किया है। इनमें प्रयुक्त अप्रस्तुत या तो पारंपरिक है या अपने आसपास के जीवन से लिया गया है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

1. *चदन तरवरि जिम चढइ रहइ वीटइ नागर वेलि।*
   तिम ते कामणी कंत सूं विलगी रहइ न गुण गेलि॥ (हेमरतन–15)
2. *खड्ग बिछूटइ करताँ खीज, जाणि कि बादलि झबकइ बीज॥*
   (हेमरतन–89)
3. *रामति रमण रंगस्यूं, बैठा बेऊँ आय, जाणै सूर अनैं ससी मिलिया एकण ठाय॥*
   (लब्धोदय–12)
4. *प्रेम मगन ऐसी खुले, ज्यों पंकज रवि तेज।* (दलपति विजय–134)
5. *गढ़पति पकड़्यो साह राहु जिम चंद गरासे।* (दलपति विजय–148)
6. *एम सुणी बहुअर निकली झबकंती जाणें वीजली।* (दलपति विजय–157)
7. *गढ़पति पकड़्यो साह राहु जिम चंद गरासे। (दलपति विजय–148)*
   एम सुणी बहुअर निकली झबकंती जाणें वीजली। (दलपति विजय–157)
8. *बेड़ी घालि वेसाणियोरे राह ग्रह्यो जिम चंद।*
   जोरो कोई चालियो रे सिंह पड़्यो जिम फंद। (लब्धोदय–61)

पद्मिनी–रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर इन कथा काव्यों में संवादों के नियोजन का कौशल इनकी रचनात्मकता एक बहुत ज़रूरी और उल्लेखनीय आयाम है। कविता में संवादों का निर्वाह बहुत मुश्किल काम है, लेकिन हेमरतन, लब्धोदय, जटमल नाहर सहित *कवित्त* और *रासो* काव्यों में यह बहुत कौशल के साथ हुआ है। संवाद भी इसमें भी बहुत छोटे और असरदार हैं और अकसर एक ही छंद के दो या चार चरणों में इनको नियोजित कर दिया गया है। यह सबसे पुरानी रचना *गोरा–बादल कवित्त* में भी जगह–जगह है। एक उदाहरण इस प्रकार है–

तब कोप किलंकदर कहइ, क्या तूफान उठायउ
तू बोलइ सब झूठ, राज मुझ पइं किहां आयउं
एह बात सुणइं सुरताण करइ टुक टुक तव मेरा
करइ नहीं कछु विलंब, अउर सिर कट्टर तेरा।
उच्चाइ विप्र दरवेस सुं, अलख लिख्या सो पइं कहुं
जउ सीस छत्र तुझ कउँ मिलइ, क्या इनाम हूं भालए हूं॥
(गोरा–बादल कवित्त–112)

हेमरतन के यहाँ यह कौशल अपने उत्कर्ष पर है। इसके सभी खंडों और ख़ास तौर पर छठे खंड में यह नियोजन बहुत सघन और निरंतर है है। राघवचेतन और अलाउद्दीन के बीच का एक संवाद दृष्टव्य है–

दासी आवइँ इम जु जूई, आलिम मति विह्वल हुई।
''पद्मिणी आ कह, आ पद्मिणी सरीखी दीसइ सहु कमिणी
व्यास कहइ ''संभलि मुझ घणी! ए सहु दासी पद्मिणी।
वार वार हयूँ सब कउ एम? पद्मिणी इहाँ पधारइ केम॥ (हेमरतन-48)

संवाद नियोजन का यह कौशल *समिओ* में भी है। एक उदाहरण इस प्रकार है-

राउ कहै सुनि राज पदम पुत्री सुखदायक।
बरस दुवादस भई नहीं कोई बर लायक॥
हूँ ले आयौ वर राज तोहि पुत्री के कारन।
गढ़ चित्रंग नरेस दुष्ट दानव संहारन॥ (समिओ-104)

7.

किसी भाषा में मुहावरों-कहावतों और सूक्तियों की मौजूदगी इस बात का सबूत है कि उसकी जड़ों के खाद-पानी का स्रोत उसका लोक है। मध्यकाल में लोक व्यवहार भी कवि शिक्षा संबंधी ग्रंथों में कवि होने की अर्हताओं में सम्मिलित था। मुहावरे-कहावतें और सूक्तियाँ भाषा को लोक के अनुभव से समृद्ध और जीवंत रखती हैं। पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर रचनाएँ कुछ हद तक लोक रचनाएँ भी हैं और इनके रचनाकारों को लोकभाषा की ही आदत और संस्कार है, इसलिए इनमें लोक की भाषा में इस्तेमाल होनेवाले मुहावरे, कहावतें और सूक्तियाँ सहज ही आ गयी हैं। 'नाक नमणि' ऐसा मुहावरा है, जो इन अधिकांश रचनाओं (दलपति-98, हेमरतन-32, लब्धोदय-39 और नाहर-195) में प्रयुक्त हुआ है। 'नाक नमणि' अर्थ है नाक नीची करना। मध्यकाल में आक्रांताओं के पास प्रतिरोध के समाप्त करने का यह एक सांकेतिक हथियार था। वे आक्रमण करते और यदि सामनेवाला उनका आतिथ्य कर नाक नीची कर देता, मतलब वह उनकी अधीनता स्वीकार कर लेता, तो वे लौट जाते थे। मध्यकालीन राजस्थानी के कई और मुहावरे- 'पाँनइ पड़इ', 'हाथइ चढइ' (हेमरतन-51, दलपति-109) अर्थात् अधिकार में आना, 'दूध दही तुँ माहरे एक' (दलपति-149) अर्थात् और कोई नहीं होना, 'बात सिराडई चढी' (हेमरतन-82) अर्थात् बात अंतिम सिरे तक पहुँच गयी है, 'मुँह मीठो मन माहे दूठ' अर्थात् मुँह पर मीठा और मन में दुष्ट है (हेमरतन-44), 'धोलो सहु दूध लेखवे' (दलपति-136) अर्थात् सभी दूध सफ़ेद ही होता है, 'अलगा डूंगर रलियामणा' (दलपति-128) अर्थात दूर के पर्वत सुहावने दिखाई पड़ते हैं, 'उड़द की सफ़ेदी मिले नहीं' (पाटनामा- 352) अर्थात् अच्छा नहीं मिलेगा, 'आँख उगडेगा' (पाटनामा- 356), अर्थात् पता लगेगा, 'कास काट जावे' (पाटनामा-392) अर्थात् समस्या का हल हो जाए जैसे कई मुहावरे

इन रचनाओं की भाषा का हिस्सा हैं। कहावतें भी लोक की भाषा और व्यवहार का हिस्सा हैं, इसलिए इनमें जगह-जगह आयी हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-

(i) *सिल हेठ हाथ आयो सु तो छल हिकमत काढ़ही सी पर* (दलपति-116) अर्थात् हाथ शिला के नीचे यदि आ गया है, तो छल या साहसपूर्वक उसको निकालना ही पड़ता है।

(ii) *जैसे सांप छंछदरी पकर पकर पछिताय* (दलपति-162) अर्थात् सांप छछूंदर पकड़कर पछताता है।

(iii) *खील्यो बादल गारूड़ी पदमिणि मंत्र पिरोय* (दलपति-164) अर्थात् बादल ने गारूड़ी की तरह (अल्लाउदीन को) पद्मिनी मंत्र में बाँध दिया है।

पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर रचनाओं की काव्य भाषा में सूक्तियाँ और प्रसिद्ध कथन भी पर्याप्त संख्या में हैं। मध्यकाल और उससे पहले कवि से बहुश्रुत और विद्वान् होने अपेक्षा की जाती थी। कवि शिक्षा संबंधी ग्रंथों में यह उल्लेख मिलता है।[65] इन रचनाओं में जब कोई ऐसी घटना या प्रकरण आता है, जो ख़ास है, तो कवि-कथाकार उससे संबंधित कोई सूक्ति या नीति कथन उद्धृत करते हैं। इस तरह की सूक्तियाँ या तो लोक से या किसी पूर्व रचना या शास्त्र ली जाती हैं। इन कवि-कथाकारों ने ऐसा ही किया है। अलाउद्दीन जब रत्नसेन को बंदी बनाने के लिए मैत्रीपूर्ण व्यवहार करता है, तो दलपति विजय इस संस्कृत नीति कथन को उद्धृत करता है- *मुख पन दलाकारं, वाचा चंदन शीतलम्। / हृदय कर्तरी तुल्यं त्रिविधं धूर्तलक्षणं।* (दलपति विजय-100)। इसी तरह जब रत्नसेन अलाउद्दीन के साथ दुर्ग से बाहर आ जाता है, तो राघवचेतन उसे बंदी बनाने का परामर्श इस नीति कथन के साथ देता है- *खड़ सूका गोरू मुआ वाला गया विदेश। / अवसर चूका मेहड़ा वूठा कहा करेश॥* (दलपति विजय-100)। यह प्रवृत्ति हेमरतन के यहाँ भी मिलती है। रानी विनय भूलकर जब रत्नसेन को ताना देती है, तो इस बात के समर्थन में कवि तत्काल यह नीति कथन उद्धृत करता हैं- *विनय गयइ न रहइ सोहाग न लागइ भाग। ऊषर खेत न लाग इ बीज विण झगड़ा नवि थापई धीज।* (हेमरतन-5)। इसी तरह जब राघव व्यास अनामंत्रित अंत:पुर में प्रवेश करता है, तो कवि उसके कृत्य को ग़लत मानकर इसकी पुष्टि इस नीति कथन से करता हैं- *चतुर तणई ए नहीं चातुरी, अण तेड़िउ अवाइ फिरी फिरी। / वात गोठ अण रुचति करइ, काढंताई नवि नीसरई॥'* (हेमरतन-17) लब्धोदय ने इस तरह के नीति या प्रसिद्ध कथन अपनी रचना में सबसे अधिक इस्तेमाल किए। रत्नसेन के सिंघल द्वीप जाने और वहाँ पर उसके पासे के खेल में जीत जाने पर लब्धोदय इस नीति कथन का उल्लेख करता है- *हंसा न सरवर घणा, कुसुम घणा भमराहं। / सुगुणा सज्जन घणा देश विदेश गयांह॥* (लब्धोदय-13) लब्धोदय ने बादल

की पत्नी द्वारा अपने पति को प्रेरित करने के संदर्भ में भी एक नीति कथन का उल्लेख किया है। बादल की पत्नी बादल से कहती है कि– *बोलइं मोटा बोल, निश्चइं निरवाइ नहीं। / तिण माणस रौ मोल कोड़ी कापड़ियो कहइ॥* (लब्धोदय–75) *राजा मित्र कदी नवि होइ, नवि दीट्ठउ नवि सुणीउ कोइ* (हेमरतन–18), *सापुरुष बोल्या नवि टलइ, मूँवा अवर बिहाई* (हेमरतन–64), *विण आदर न रहे कदे सिंह, सूर न सयण* (लब्धोदय–6) आदि कई सूक्तियाँ और नीति कथन इन रचनाओं में उद्धृत किए गए हैं। लब्धोदय ने अवसरानुसार संस्कृत सूक्तियाँ (पृ. 25, 37, 65 और 80) सबसे अधिक इस्तेमाल की हैं।

पद्मिनी–रत्नसेन पर निर्भर कथा–काव्यों की रचनात्मकता के मूल्यांकन के दौरान यह ध्यान में रखना ज़रूरी है कि ये रचनाकार शास्त्र सिद्ध और निष्णात कवि नहीं हैं। इनकी कवि शिक्षा अनौपचारिक ढंग की पैतृक या गुरु प्रदत्त है। मध्यकाल में काव्यशास्त्रीय स्थापनाओं का भी प्राकृत–अपभ्रंश और परवर्ती देश भाषाओं में समय की ज़रूरतों के अनुसार सरलीकरण और विस्तार हुआ। संस्कृत के साथ इन भाषाओं में छंद, अलंकार आदि से संबंधित कवि शिक्षा ग्रंथ लिखे गए। ख़ासतौर पर पश्चिमी भारत में इस तरह के कई ग्रंथों की रचना हुईं। ये सरलीकृत ग्रंथ जैन और जैनेतर, दोनों तरह के विद्वानों ने लिखे। ये कवि शिक्षा ग्रंथ इन अधिकांश रचनाकारों के आदर्श थे। ये रचनाएँ मूलत: कथा रचनाएँ थीं, इसलिए इनमें रचनात्मकता के निवेश की गुंजाइश भी सामान्य काव्य रचनाओं की तुलना में कम थी। यह भी कि इन रचनाओं का लक्ष्य श्रोता भी मध्यम श्रेणी का जनसाधारण यजमान या लोक था, इसलिए इनकी रचना के दौरान उनकी रुचियाँ और समझ का स्तर भी इनके मन में रहा होगा।

काव्यरूप इन रचनाओं का चरित वर्णन पर एकाग्र संस्कृत और प्राकृत–अपभ्रंश में प्रचलित काव्य रूप का सरलीकृत रूप हैं, जिसको इन्होंने अपनी ज़रूरतों के अनुसार रूपांतरित किया है। भाषा इनकी सोलहवीं से लगाकर उन्नीसवीं सदी के विस्तार बनने–बदलनेवाली उत्तरी–पश्चिमी भारत के कुछ इलाकों प्रयुक्त होनेवाली देश भाषा है, जिसमें प्राकृत, अपभ्रंश और डिंगल की कई प्रवृत्तियाँ अवशेष के रूप में मौजूद हैं। जैन रचनाओं में स्थानीय बोलियों का भी मुखर प्रभाव दिखता है। शब्दों में तत्सम, अर्धतत्सम और देशज के साथ फ़ारसी–अरबी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। छंदों का प्रयोग इनमें पारंपरिक है और इनका महत्त्व भी बहुत है। इनमें से कई रचनाओं के नाम उनमें प्रयुक्त प्रमुख छंद के आधार पर कवित्त, चउपई और चौपाई किए गए हैं। मध्यकाल में कथा के छंद चौपाई और दोहा थे, इसलिए इनमें इनका सबसे अधिक इस्तेमाल हुआ है। वस्तु वर्णन, ख़ासतौर पर युद्ध वर्णन के लिए छप्पय

आदि छंद इस्तेमाल किए गए हैं। अलंकरण में अनुप्रासिकता इनके कवि स्वभाव में है। उपमा, उत्प्रेक्षा और उदाहरण अलंकारों का प्रयोग इनके यहाँ ख़ूब है। ऐसा लगता है जैसे इनका प्रयोग कर ये रचनाकार अपने कवि होने को सिद्ध कर रहे हैं। वस्तु वर्णन की गुंजाइश इन सभी रचनाकारों ने निकाली है, क्योंकि रचनात्मकता की गुंजाइश यहीं निकलती है। अवसर आने पर दुर्ग, नगर, ऋतु वर्णन इनके यहाँ है। युद्ध वर्णन इन सभी के यहाँ है। परंपरा आग्रही होने के कारण इन्होंने कथा रूढ़ियों और अभिप्रायों का प्रयोग किया है। भोजन के स्वादहीन होने के कारण राजा की नाराज़गी और रानी के इस निमित पद्मिनी लाने के आग्रह की लोक प्रचलित कथा रूढ़ि इनमें से अधिकांश में है। ये सभी कवि-कथाकार बहुश्रुत और लोक व्यवहार में कुशल लगते हैं। अवसर आते ही ये मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग ज़रूर करते हैं। यथावश्यकता इन्होंने शास्त्र और लोक के प्रसिद्ध कथनों को भी उद्धृत भी किया है।

संदर्भ और टिप्पणियाँ:

1. विवेच्य रचनाओं [(i) अज्ञात कवि कृत *गोरा-बादल कवित्त,* (ii) लब्धोदयकृत *पद्मिनी चरित्र चौपई,* (iii) जटमल नाहर कृत *गोरा-बादल कथा* संपा. भंवरलाल नाहटा (बीकानेर: सादुल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, 1960), (iv) हेमरतन कृत *गोरा-बादल पदमिणी चउपई,* संपा. उदयसिंह भटनागर (जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, द्वितीय संस्करण 1997), (v) दलपति विजय कृत, *खुम्माणरासो,* भाग-3, संपा. ब्रजमोहन जावलिया (उदयपुर: महाराणा प्रताप स्मारक समिति, 2001), (vi) दयालदास कृत, *राणारासो,* संपा. ब्रजमोहन जावलिया, (उदयपुर: महाराणा प्रताप स्मारक समिति, 2007) (vii) *चित्तौड़-उदयपुर पाटानामा,* भाग-1, संपा. मनोहरसिंह राणावत (सीतामऊ: श्री नटनागर शोध संस्थान, 2003) और (viii) ''पद्मिनीसमिओ,'' *रानी पद्मिनी,* संपा. ब्रजेंद्रकुमार सिंहल (नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2017)] की भाषा, छंद, कथा-कवि रूढ़ि आदि के उदाहरणों की पृष्ठ संख्याएँ अध्याय में यथास्थान दी गयी हैं। अन्य संदर्भ यहाँ अंत में दिए गये हैं।
2. कवि शिक्षा संबंधी इन रचनाओं का नयी काव्य प्रवृत्तियों की पहचान और प्रशिक्षण, दोनों में निर्विवाद महत्त्व था। भारतीय काव्यशास्त्र के विद्वान् एस.के. डे ने इनके महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि ''इस तथ्य को भी अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए कि संस्कृत में इस प्रकृति के कार्यों का, प्रकटत: यह आशय है कि वे यशप्रार्थी कवि के मार्गदर्शन के लिए हैं और अपने विमर्श में यह प्रदर्शित करते हैं कि कविता में क्या सही और क्या उचित है। यह रूढ़िवादी काव्यशास्त्र के पिष्ट पेषित पथ से हटकर एक प्रकार की वास्तविक आलोचना पद्धति है। इन्होंने इसके अतिरिक्त अपने देशज तरीके से, स्वाद और आलोचनात्मक निर्णय का एक मानक, चाहे वह जैसा भी हो, स्थापित किया।'' - एस.के. डे, *हिस्ट्री ऑफ संस्कृत पोईटिक्स,* (लंदन: सुज़ाक एंड कंपनी, 1925), 2: 285.

3. (i) कवि प्रतिभा पर सभी भारतीय आचार्यों ने विचार किया और कमोबेश सभी का विचार

है कि प्रतिभा को 'युत्पत्ति' और 'अभ्यास' की भी ज़रूरत पड़ती है। (1) मम्मट ने कहा है- *शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्। / काव्यज्ञशिक्षायाह्यऽभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे॥* (अर्थात् काव्य रचना के तीन कारण- (1) शक्ति (प्रतिभा), (2) लोक, शास्त्रज्ञान आदि के अध्ययन से प्राप्त होने वाली निपुणता तथा (3) काव्य मर्मज्ञ की शिक्षा से अभ्यास, ये तीन काव्य रचना के कारण हैं।) - मम्मट, *काव्यप्रकाश,* 1/3, व्याख्या एवं अनुवाद रघुनाथप्रसाद चतुर्वेदी (वाराणसी: चौखंभा संस्कृत संस्थान, द्वि. सं. 2003). 5.

(ii) दण्डी ने भी इन्हीं दोनों को 'श्रुतं च बहुनिर्मलम्' तथा 'अमंद अभियोग' कहकर इस तरह निर्धारित किया है। *नैसर्गिकी च प्रतिभा श्रुतं च बहुनिर्मल्म्। / अमंद श्रुतं च अमन्दः अभियोगः तथा अस्याः काव्यसम्पदः कारणं। अमंदश्चाभियोगाह्यस्याः कारणं काव्यसंपदः॥* (अर्थात् पूर्व जन्म संस्कारासादित प्रतिभा, नाना शास्त्रपरिशीलन और काव्य करने का सतत अभ्यास, ये ही तीनों वस्तु मिलितरूप में काव्य के प्रति कारण हैं।) - दंडी, *काव्यादर्श,* 1/103, संपा. आचार्य रामचंद्र मिश्र (वाराणसी: चौखंभा विद्याभवन, 1972), 71.

(ii) अमरचंद ने *काव्यकल्पलतावृत्ति* में कवि प्रतिभा के विकास और उदात्तीकरण के लिए के लिए कई विषयों का प्रावधान किया है। संपादक आर.एस. बेताई ने इस संबंध में टिप्पणी करते हुए लिखा है कि "कवि की प्रतिभा के उदात्तीकरण के लिए, इन दोनों (व्युत्पत्ति और अभ्यास) के साथ और कई विषयों को भी कवि को समाहित करना होता है, जिनका अमरचंद्र ने वर्णन किया है, क्योंकि ये कवि के प्रशिक्षण और उसके कर्म के उपकरण हैं।" - आर.एस. बेताई *काव्यकल्पलतावृत्ति* (अहमदाबाद: एल.डी. इंस्टीट्यूट, 1997), 7.

4. राजशेखर, *काव्यमीमांसा,* संपा. सी.डी. दलाल (बड़ौदा: ओरियंटल इंस्टिट्यूट, तृतीय संस्करण 1934).
5. क्षेमेंद्र, *कविकंठाभरण,* संपा. वा.के. लेले (वाराणसी, मोतीलाल, बनारसीदास, 1967).
6. वाग्भट, *वाग्भटालंकारः,* संपा. दुर्गाप्रसाद आदि (मुम्बईः निर्णय सागर प्रेस, 1815).
7. अमरचंद्र यति, *काव्यकल्पलतावृत्ति,* संपा. आर.एस. बेताई (अहमदाबादः एल.डी. इंस्टीट्यूट, 1997).
8. केशव मिश्र, *अलंकारशेखर,* संपा. पंडित शिवदत्त (मुम्बई निर्णय सागर प्रेस, 1926).
9. स्वयंभू, *स्वयंभूछंद,* संपा. एच.डी. वेलणकर (जोधपुरः राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान,1962).
10. विरहांक, *वृत्तजाति समुच्चय* (जोधपुरः राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, 1962).
11. हेमचंद्राचार्य, *छंदोनुशासन,* संपा. एच.डी. वेलणकर (मुम्बई, सिंघी जैनशास्त्र विद्यापीठ, भारतीय विद्या भवन, 1961).
12. *प्राकृतपैंगलम्,* संपा. भोलाशंकर व्यास (वाराणसीः प्राकृत ग्रंथ परिषद्, 1926).
13. श्रीनंदिताढ्य, *गाथालक्षणम्,* संपा. एच.डी. वेलणकर (जोधपुरः राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, 1962).

14. *कविदर्पण,* संपा. एच.डी. वेलणकर (जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, 1962).

15. कृष्णभट्ट, *वृत्तमुक्तावली,* संपा. एच.डी. वेलणकर (जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, 1963).

16. चंद्रशेखर भट्ट, *वृत्तमौक्तिक,* संपा. महोपाध्याय विनय सागर (जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, 1965).

17. किशना आढ़ा, *रघुवरजसप्रकाश,* संपा. सीताराम लालस (जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, 1960).

18. चंद बरदाई, *पृथ्वीराज रासो,* संपा. मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या (वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा, 1964), 22.

19. *गेयं दिम्भिकाभाणप्रस्थानशिंगकभाणिकाप्रेरणराका*
क्रीडहल्लीसकरासगोष्ठीश्रीगदितराग्काव्यादि। – हेमचंद्राचार्य, *काव्यानुशासन,* 8/4, संपा. पंडित शिवदत्त (मुम्बई: निर्णयसागर प्रेस, 1901), 341.

20. हजारीप्रसाद द्विवेदी, *हिंदी साहित्य का आदिकाल* (पटना: बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् तृतीय संस्करण, 1961), 64.

21. मनोहरसिंह राणावत, ''आमुख,'' *चित्तौड़-उदयपुर पाटानामा,* (सीतामऊ: श्री नटनागर शोध संस्थान, 2003), 1: II.

22. *गजबदन गणपति नमूं माहा माय बुधि देय। गुण गूंथूं गोरल का, जस बादल जंपेय॥* – ''गोरा-बादल कवित्त,'' *पद्मिनी चरित्र चौपई,* संपा. भँवरलाल नाहटा (बीकानेर: सादुल रिसर्च इंस्टीट्यूट, 1960), 109.

23. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चउपई,* संपा. उदयसिंह भटनागर (जोधपुर: राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, द्वि. संस्करण 1997), 1.

24. वही, 97.

25. लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* संपा. भँवरलाल नाहटा (बीकानेर: सादुल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, 1960), 20.

26. वही, 41.

27. वही, 107.

28. *पदमिनी चरित्र चौपाई* के संपादक भंवरलाल नाहटा ने इसके अंत (पृ. 209) इसमें प्रयुक्त ढालों और देशी राग-रागिनियों की सूची दी है।

29. *श्री गणपति प्रसादातु / अथ पदमिनीजी रौ समिऔ लिख्यते* – ''पद्मिनीसमिओ,'' *रानी पद्मिनी,* संपा. ब्रजेंद्रकुमार सिंहल (नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2017), 99.

30. वही, 99.

31. वही, 117-125.

32. वही, 132–143.

33. जटमल नाहर, *गोरा–बादल कथा* (लब्धोदय कृत *पद्मिनी चरित्र चौपई* के साथ प्रकाशित), संपा. भँवरलाल नाहटा, (बीकानेर: सादुल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, 1960), 182.

34. वही, 208.

35. दलपतिविजय (i) पदमिनी–रत्नसेन प्रकरण, भाग–3, पृ. 83–170 और (ii) खुम्माण प्रकरण, भाग–2, पृ. 227–415) – *खुम्माणरासो,* संपा. ब्रजमोहन जावलिया (उदयपुर: महाराणा प्रताप स्मारक समिति, 2001).

36. वही, 3: 21.

37. वही, 3: 177.

38. *सीसोदा जगपति नृपति, ता सुत राज 'र रांन। तिनके निर्मल वंस को, करयो प्रसंस बखानु॥* – दयालदास, *राणारासो,* संपा. ब्रजमोहन जावलिया, (उदयपुर: महाराणा प्रताप स्मारक समिति, 2007), 146, 460 और 733 आदि.

39. वही, 704.

40. वही, 184–214.

41. वही, 189–196.

42. वही, 197–214.

43. वही, 720.

44. मनोहर सिंह राणावत, ''आमुख,'' *चित्तौड़–उदयपुर पाटानामा,* 1: III.

45. वही, IV.

46. *चित्तौड़–उदयपुर पाटानामा,* 1: 360.

47. दयालदास, *राणारासो,* 704.

48. दशरथ शर्मा, ''संयोगिता,'' *राजस्थान भारती,* भाग– अंक–1 अप्रैल, 1946, 22–23.

49. सुनीतिकुमार चटर्जी, *ओरिजन एंड डेवलपमेंट ऑफ दि बेंगाली लेंगवेज* (कलकत्ता, युनिवर्सिटी प्रेस, 1926), 11.

50. धीरेंद्र वर्मा, *ब्रजभाषा,* फ्रेंच से हिंदी अनुवाद (प्रयाग: हिंदी साहित्य सम्मेलन, 1954, मूल फ्रेंच संस्करण 1935), 18.

51. जार्ज ग्रियर्सन, *दि मोडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिंदुस्तान* (कलकत्ता: एशियाटिक सोसायटी, 1888), 3.

52. नरोत्तम स्वामी, ''पृथ्वीराज रासो की भाषा,'' *राजस्थान भारती,* भाग–1, अंक–2–3, जुलाई–अक्टूबर, 1946, 51.

53. एल.पी. तैस्सीतोरी, *पुरानी राजस्थानी,* हिंदी अनुवाद नामवर सिंह (वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा, 1955), 6.

54. नामवर सिंह, *पृथ्वीराज रासो की भाषा* (बनारस, सरस्वती प्रेस, 1956), 53.

55. *ललित विस्तर,* संपा. शांति भिक्षु शास्त्री (लखनऊ: उत्तरपदेश हिंदी संस्थान, 1984).

56. *धम्मपद,* मूल पालि और हिंदी अनुवाद एवं संपादन भदंत आनंद कौशल्यायन (इलाहाबाद: हिंदुस्तानी पब्लिकेशन्स, 1946).

57. भरत मुनि, *नाट्यशास्त्र,* 17/62, संपा एवं हिंदी अनुवाद ब्रजवल्लभ मिश्र (नयी दिल्ली: सिद्धार्थ पब्लिकेशन, 1997), 503.

58. ''नया छंद नये मनोभाव की सूचना देता है। श्लोक का उदय नये साहित्यिक मोड़ की सूचना है। वह बताता है कि संवेदनशील कवि चित्त में नये युग के उष:काल की किरण नवीन जागरण का संदेशा दे चुकी थी। इसी प्रकार गाथा का उदय दूसरी सूचना है और दोहा का तीसरी।''- हजारीप्रसाद द्विवेदी, *हिंदी साहित्य का आदिकाल,* 97.

59. कालिदास, *विक्रमोर्वशीयम्,* संपा. आशानंद वर्म्मणा (लाहोर: मेहरचंद, लक्ष्मणदास अध्यक्ष संस्कृत पुस्तकालय, 1926).

60. हजारीप्रसाद द्विवेदी, *हिंदी साहित्य का आदिकाल,* 100.

61. देखिए: पाद टिप्पणी-28

62. पुष्पदंत, *णायकुमार चरिउ,* 3/12, संपा. अनु, हीरालाल जैन (दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ, द्वि. सं. 1972), 48.

63. पारितोष आसोपा, *राजस्थानी काव्यशास्त्र* (बीकानेर: राजस्थानी साहित्य एवं संस्कृति जनहित प्रन्यास, 2012), 42.

64. दलपति विजय, *खुम्माणरासो,* 3: 82.

65. राजशेखर की भी कवि से अपेक्षा है कि वह बहुश्रुत हो। वह लिखता है कि- *श्रुतिः, स्मृतिः, इतिहासः, पुराणं, प्रमाणविद्या, समयविद्या राजसिद्धांतत्रयी, लोको, विरचना, प्रकीर्णकं च काव्यार्थानां द्वादश योनयः।* (- राजशेखर, *काव्यमीमांसा,* 35). मम्मट ने निपुणता में लोक कौशल को भी सम्मिलित किया है। वह लिखता है- *लोकस्य स्थावर जंगमात्मकलोकवृत्तस्य* अर्थात् स्थावर (वृक्ष, पर्वत आदि) जंगम (मनुष्य, पशु, पक्षी आदि)- जगत् के व्यवहार का सूक्ष्म दृष्टि द्वारा देखना। (- मम्मट, *काव्यप्रकाश,* 6.)

उपसंहार

पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण सदियों से लोक स्मृति में 'मान्य सत्य' की तरह रहा है। सोलहवीं से उन्नीसवीं सदी तक इस प्रकरण पर निरंतर कथा-काव्य रचनाएँ होती रही हैं और ये अपने चरित्र और प्रकृति में कुछ हद तक 'इतिहास' भी हैं। विडंबना यह है कि यह प्रकरण बीसवीं सदी के छठे-सातवें और इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में व्यापक चर्चा में तो रहा, लेकिन इसकी परख-पड़ताल में इस्लामी, फ़ारसी-अरबी स्रोतों की तुलना में इन रचनाओं का उपयोग नहीं के बराबर हुआ। अधिकांश आधुनिक इतिहासकारों ने इन देशज रचनाओं के बजाय अलाउद्दीन ख़लजी के समकालीन इस्लामी वृत्तांतों- अमीर ख़ुसरो कृत *ख़ज़ाइन-उल-फ़ुतूह* (1311-12 ई.) और *दिबलरानी तथा ख़िज़्र ख़ाँ* (1318-19 ई.), ज़ियाउद्दीन बरनी कृत *तारीख़-ए-फ़िरोजशाही* (1357 ई.) तथा अब्दुल मलिक एसामी कृत *फ़ुतूह-उस-सलातीन* (1350 ई.) को ही अपनी स्थापनाओं में साक्ष्य की तरह इस्तेमाल किया। उन्होंने इनमें अनुल्लेख के आधार पर देशज रचनाओं को मलिक मुहम्मद जायसी की *पद्मावत* (1540 ई.) पर निर्भर मानते हुए इस प्रकरण और इन रचनाओं को कल्पित ठहरा दिया। कालिकारंजन कानूनगो की 1960 ई. में प्रकाशित पुस्तक *स्टडीज़ इन राजपूत हिस्ट्री* के एक लेख "ए क्रिटिकल एनेलेसिस ऑफ़ दि पद्मिनी लिजेंड" की ख़ूब चर्चा हुई, जिसमें उन्होंने इस प्रकरण को पूरी तरह कल्पना मानकर ख़ारिज़ कर दिया। इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस के 1961 ई. अधिवेशन में इतिहासकार दशरथ शर्मा ने कालिकारंजन कानूनगो द्वारा इस्लामी वृत्तांतों की चुप्पी के आधार पर इस प्रकरण को कल्पित ठहराये जाने पर आपत्ति की थी। उन्होंने कहा था कि "उन्होंने (कालिकारंजन कानूनगो) इस तथ्य को ध्यान में नहीं रखा कि मौन से बहस करना तार्किक रूप से भ्रांति है और मात्र मौन के आधार पर की गई परिकल्पना किसी दिन ग़लत साबित हो सकती है।"[1] दशरथ शर्मा कालिकारंजन कानूनगो की तुलना में छोटे इतिहासकार थे- उनकी हैसियत क्षेत्रीय इतिहासकार की थी। यह आज़ादी के तत्काल बाद का समय था- इतिहास लेखन में आधुनिकता और उससे प्रभावित सार्वदेशिक वृत्तांतों और आख्यानों का दौर

था। उनकी बात आयी–गयी हो गयी– उस पर ध्यान बहुत कम लोगों ने दिया। अब जब इतिहास लेखन में सार्वदेशिक वृत्तांतों और आख्यानों की जगह क्षेत्रीय और देशज का आग्रह और उन पर निर्भरता बढ़ रही है, तो दशरथ शर्मा की इन पंक्तियों का महत्त्व बढ़ गया है। क्या किसी एक रचना या दस्तावेज़ में जो नहीं है या उसका रचनाकार जिसके संबंध में मौन है, उसको महज़ इस आधार पर 'नहीं है' कहा जा सकता है? क्या इस तरह का निष्कर्ष तर्कसंगत है? जो एक जगह नहीं है, तो फिर किसी और जगह भी नहीं होगा– यह केवल संभावना या परिकल्पना है और संभावना और परिकल्पना पर निर्भरता तो 'आधुनिक' इतिहास की अभिलक्षणाओं में नहीं आती। विडंबना यह है कि जिस तर्क से कानूनगो पद्मिनी कथा को 'मिथ' या 'कल्पित' कहकर ख़ारिज करते हैं, उसी तर्क से वे पद्मिनी के संबंध में 'नहीं है' का निष्कर्ष निकाल लेते हैं। पद्मिनी देशज कथा–काव्यों में है, वंश–प्रशस्ति प्रधान संस्कृत रचनाओं में है और सदियों से लोक स्मृति और स्मारकों में है, लेकिन उनके हिसाब से कोई एक इस संबंध में मौन है, इसलिए वह दूसरी जगह भी कैसे हो सकती है? दशरथ शर्मा की बात उस समय नही सुनी गयी, लेकिन जो उन्होंने कहा उसमें में वे यही तो कहना चाहते थे कि अगर वह वहाँ नहीं है, तो उसके कहीं और होने की संभावना तो है। विडंबना यह है कि पद्मिनी एक अमीर ख़ुसरो की 'चुप' के बाहर सब जगह थी, लेकिन केवल एक 'चुप' के आधार पर उसका अस्तित्व संदिग्ध कर दिया गया। क्या इस तरह एक चुप पर पर निर्भरता और उसका इस तरह आग्रह दुराग्रह नहीं है?

साहित्य में कल्पना भी होती है, लेकिन यह कहना सरलीकरण होगा कि उसमें इतिहास नहीं होता। सही तो यह है कि उसमें इतिहास भी होता है, कल्पना भी होती है और कभी–कभी कल्पना और इतिहास, दोनों एक साथ भी होते हैं। इतिहास साहित्य नहीं होता– वह केवल तथ्यों का समूह होता है, यह कहने वाले भी जानते हैं कि इतिहास में तथ्य होता है, लेकिन उसमें तथ्य से आगे और अलग भी बहुत कुछ होता है– उसमें संभावना और परिकल्पना भी होती है। किसी भी आख्यान का, यदि यह तथ्यनिर्भर आख्यान भी है तो भी, उसका प्रस्थान कमोबेश कल्पना से ही होता है और आगे भी उसके तथ्यों के संयोजन में कल्पना का भी कुछ योग तो रहता ही है। यह तो ई.एच. कार ने भी कहा था कि ''इतिहास के तथ्य कभी हमें शुद्ध रूप में नहीं मिलते, क्योंकि शुद्ध रूप में न वे कभी रहते हैं और न रह सकते हैं; वे हमेशा लेखक के मस्तिष्क में रंगकर आते हैं।''[12] *ख़ज़ाइन–उल–फ़ुतूह* पद्मिनी के संबंध में मौन है, तो यह केवल तथ्यों का समूह है, यह तो किसी इतिहासकार या विद्वान् ने नहीं कहा। विशेषज्ञ तो इसके संबंध में यह भी कहते हैं कि यह घोर अलंकरण और

अतिरंजना प्रधान रचना है।[3] कहा तो यह भी गया है कि अमीर ख़ुसरो ने इसमें इतिहास नहीं, कविता लिखी है।[4] कविता तो हेमरतन, लब्धोदय, दलपति विजय आदि ने भी लिखी और उसमें पद्‌मिनी है, लेकिन कानूनगो सहित कई आधुनिक इतिहासकारों का मानना है कि उनकी पद्मिनी के संबंध में 'मुखरता' तथ्य नहीं है, लेकिन *ख़ज़ाइन-उल-फ़ुतूह* का 'मौन' तथ्य है। यह कैसा इतिहास बोध है, जो मुखरता की अनदेखी और मौन का सम्मान करता है? किसी ने भी इस तथ्य भी पर ध्यान ही नही दिया कि इस्लामी वृत्तांतकारों का मौन प्रयोजनपूर्वक है। ये वृत्तांतकार एक तो इस्लामी धर्मशास्त्र से बँधे हुए थे और दूसरे, उस समय के रिवाज़ के मुताबिक सुल्तान की सराहना और उसकी कमज़ोरियों को छिपाना इनकी आदत और मजबूरी है।

अधिकांश आधुनिक इतिहासकार मध्यकालीन देशज ऐतिहासिक कथा-काव्यों से उन्नीसवीं सदी के यूरोपीय ढंग के इतिहास की अपेक्षा करते हैं, जो ग़लत है। यह मध्यकालीन शरीर में आधुनिक आत्मा के प्रवेश द्वारा मध्यकालीन अनुभव पाने का निरर्थक प्रयास है। ज़ाहिर है, इस तरह का प्रयास मध्यकालीन और आधुनिक, दोनों प्रकार के अनुभवों से अलग, विचित्र क़िस्म का अनुभव होगा। मध्यकाल को उसके अपने शरीर में, उसकी अपनी आत्मा के साथ अच्छी तरह से समझा जा सकता है। विवेच्य रचनाओं को यहाँ उनके अपने मध्यकालीन सरोकारों, सांस्कृतिक व्यवहारों, विचारधाराओं, साहित्यिक प्रथाओं आदि के साथ समझने का विनम्र प्रयास है। यहाँ आग्रहपूर्वक निर्भरता कथित 'आधुनिक' के बजाय 'देशज' स्रोतों पर है ज़्यादा है। 'देशज' का 'प्रामाणिक' के विलोम शब्द के रूप में चलन इतिहास की आधुनिक धारणा के विकास के साथ हुआ। अधिकांश यूरोपीय विद्वानों की धारणा यह है कि इतिहास का ज्ञान के एक अनुशासन के रूप में विकास उनके पूर्वजों ने किया। उनको अपने ग्रीक और रोमन पूर्वजों के स्मृति के रख-रखाव की पद्धति और ढंग पर गर्व भी बहुत है। मार्क ब्लाख़ ने लिखा है कि "औरों से भिन्न हमारी सभ्यता अपनी स्मृतियों के प्रति बेहद सतर्क रही है।"[5] इतिहास की उनकी अपनी ख़ास ऐतिहासिक-सांस्कृतिक ज़रूरतों के अनुसार विकसित यह पद्धति उनकी दूसरी चीजों की तरह सार्वभौमिक आदर्श और मानक बन गई। अपने साम्राज्य के अधीन होने के कारण विश्व के कई देश-समाजों का आरंभिक इतिहास भी यूरोपीय इतिहासकारों ने इसी पद्धति के आधार पर लिखा। उन्होंने अपने शासित क्षेत्रों की ज्ञान संपदा को 'देशज' (vernacular), इसलिए कुछ हद तक अप्रामाणिक की श्रेणी में रख दिया। यूरोप से अभिभूत और उससे प्रभावित आरंभिक अधिकांश भारतीय मनीषा भी यही करती रही। आरंभिक अधिकांश उत्साही 'आधुनिक' भारतीय विद्वान् भी 'आधुनिक' इतिहास के आदर्श और मानक लेकर अपनी विरासत की पहचान और पड़ताल करने निकल

पड़े। उन्होंने भी यूरोपीय विद्वानों की तरह अपने पूर्वजों के स्मृति के रख-रखाव के ढंग को बेतुका और 'अपरिष्कृत' मान लिया। कुछ भारतीय विद्वानों का यह मानना कि यूरोपीय विद्वानों ने भारतीय स्रोतों को अच्छी तरह समझा-परख़ा है[6], कुछ हद तक ही सही है। देशज के प्रति हिकारत का औपनिवेशक संस्कार अधिकांश यूरोपीय विद्वानों की चेतना में बद्धमूल है। यह 'देशज' हमेशा अप्रामाणिक ही होता है, यह एक तरह का सरलीकरण है। किसी समाज की आत्मा को अच्छी और पूरी तरह से देशज स्रोतों से समझा जा सकता है। रवींद्रनाथ ठाकुर ने सही कहा था कि "अंग्रेज़ हो चाहे फ्रेंच या किसी अन्य देश का वासी, कोई भी इस मामले में एक शब्द में जवाब नहीं दे सकते: किसी के अपने देश का विशिष्ट दृष्टिकोण क्या है या उसकी आत्मा का वास्तविक स्थान कहाँ है? शरीर के अंदर जीवन की तरह यह आत्मा एक सीधी अवधारणात्मक वास्तविकता है। और जीवन की तरह, केवल तार्किक परिभाषाओं के माध्यम से इसे समझना बेहद मुश्किल है। बचपन से ही यह विभिन्न रूपों में, विविध मार्गों के माध्यम से हमारे अन्दर प्रविष्ट होती है; और यह हमारे ज्ञान, हमारे प्यार, हमारी कल्पना में समाहित हो जाती है।"[7] विवेच्य ऐतिहासिक देशज कथा-काव्यों की यह परंपरा सोलहवीं से उन्नीसवीं तक, चार शताब्दियों में फैली हुई है, इसलिए इसमें देशकाल के वैविध्य के अनुसार पर्याप्त 'इधर-उधर' हुआ है, लेकिन बावजूद इसके मूल प्रकरण की स्मृति इन सभी रचनाओं की बुनियाद में है।

भारतीय ऐतिहासिक कथा-काव्य परंपरा के अनुसार, विवेच्य पद्मिनी विषयक देशज रचनाएँ सीधे-सीधे यथार्थ नहीं, यथार्थ का प्रतिबिंबन हैं- यह यथार्थ कवि-कथाकर का अपना देखा गया यथार्थ है। यह यूरोपीय इतिहास के यथार्थ की तरह 'दस्तावेज़ी', 'प्रत्यक्ष' और 'आनुभविक' नहीं है, इसलिए केवल कल्पना है, इस तरह का आग्रह भी सही नहीं है। रवींद्रनाथ ठाकुर ने कहीं कहा था कि "सब खेतों में एक जैसी फ़सलें नहीं होतीं।"[8] यह फ़सल आपके खेत की फ़सल से अलग है, इसलिए फ़सल ही नहीं है, यह मानना एक तरह का दुराग्रह है। आरंभिक भारतीय मनीषा ने 'श्रुत' को बहुत महत्त्व दिया था और उसकी निर्भरता भी कमोबेश श्रुत पर ही थी। बहुत महत्त्वपूर्ण भारतीय आख्यान श्रुत की परंपरा से ही हम तक आए हैं। यह विडंबना है कि जिस समाज में श्रुत की इतनी निरंतर और समृद्ध परंपरा है, वहाँ लोक स्मृति पर निर्भर रचनाओं को केवल 'गल्प' की श्रेणी में रखा जाता है। ये रचनाकार गाँव-क़स्बों के अनौपचारिक कवि शिक्षा प्राप्त कवि-कथाकार थे और 'श्रुत' पर निर्भर थे। अपनी तरफ़ से इन्होंने नया बहुत कम गढ़ा है- इन्होंने रचनात्मक आग्रह के कारण प्रकरण के मोड़-पड़ावों को केवल इधर-उधर या उनका सरलीकरण किया है। यह इधर-उधर भी इन्होंने उतना ही किया है, जितने की अनुमति परंपरा

देती है। यह बात इनमें से से कुछ ने ज़ोर देकर कही भी है। हेमरतन ने कहा भी है कि– *सुणिउ तिसौ भाष्यौ संबंधि* अर्थात् मैंने जैसा सुना है, वैसा ही संबंध कहा है।[9] लब्धोदय ने भी कहा है कि– *कहस्यू कवित्त कल्लोल सूँ पूर्व कथा संपेख* अर्थात् प्रसन्नतापूर्वक पूर्व कथा को देखकर कहूँगा।[10] दलपति विजय ने *खुम्माणरासो* के पद्मिनी खंड का समाहार करते हुए इसको 'किंचित पूर्वोक्तम्' और 'किंचित ग्रंथाधिकारेण' कहा है।[11]

विवेच्य रचनाएँ चारण और जैन साहित्य की पारंपरिक कथा–काव्य निर्मितियों में हैं, इसलिए भी विद्वानों ने इनको 'राज्याश्रित' या 'धार्मिक' कहकर दरकिनार किया। मध्यकालीन यूरोपीय और भारतीय इस्लामी इतिहास लेखन के विपरीत, भारत में पारंपरिक इतिहास लेखन धर्मशास्त्र का भाग कभी नहीं रहा। ये रचनाएँ पूरी तरह ग़ैर धार्मिक रचनाएँ हैं। यूरोपीय मध्यकालीन इतिहास अनिवार्यत: क्रिश्चियन धर्म–शास्त्र के अंतर्गत था और यह प्राय: पादरियों द्वारा चर्च में लिखा गया।[12] मार्क ब्लाख़ का तो साफ़ कहना था कि "ईसाइयत इतिहासकारों का धर्म है।"[13] भारतीय इस्लामी इतिहास लेखन भी धर्मशास्त्र के अंतर्गत और उसका एक भाग था।[14] 'राज्याश्रय' भी इन रचनाओं की विषयवस्तु के नियमन में बहुत निर्णायक नहीं है, क्योंकि मध्यकालीन क्षेत्रीय शासक बहुत वर्चस्वकारी नहीं थे। चारण और जैन कवि 'राज्याश्रय' या शासकीय प्रभाव के बजाय पारंपरिक और पैतृक कवि शिक्षा पर अधिक निर्भर थे।

परंपरानुसार ये रचनाएँ 'कथा–काव्य' भी हैं, इसलिए भी अधिकांश आधुनिक इतिहासकारों ने इनको 'काल्पनिक' और 'मनगढ़ंत' की श्रेणी डाल दिया गया। ख़ास बात यह है कि इन रचनाओं का विन्यास इतिहास और कथा–काव्य की सदियों पुरानी जुगलबंदी की भारतीय परंपरा में है। यह तथ्य नज़रअंदाज़ कर दिया गया कि भारतीय परंपरा में 'इतिहास' कथा–काव्य में ही रच–बसकर ही आता है, इसलिए यहाँ कई बार इतिहास रचनाओं को 'कथा' कहा गया है। इतिहास और साहित्य दो अलग स्वायत्त अनुशासन हैं, यह चेतना भारतीय परंपरा में बहुत मुखर कभी नहीं रही, इसलिए इसमें कथा प्रकृति की रचनाओं में इतिहास का योग हमेशा रहा है। रवींद्रनाथ ठाकुर ने एक जगह लिखा है कि– "एक समय था, जब *रामायण–महाभारत* इतिहास थे। आजकल का इतिहास उसके साथ पारिवारिक रिश्ता स्वीकार करने में अनवरत कुंठित महसूस करता है; कहता है काव्य के साथ परिणीत होकर उसका कुल नष्ट हुआ है। अब उसके कुल का उद्धार करना इतना कठिन हो गया है कि इतिहास काव्य कह कर उसका परिचय देना चाहता है। काव्य कहता है, भाई इतिहास तुम्हारे भीतर बहुत कुछ मिथ्या है, मेरे भीतर भी बहुत कुछ सच है। आओ, हम पहले की तरह एक–दूसरे के साथ मिलकर रहें।"[15]

1.

पद्मिनी–रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर देशज ऐतिहासिक कथा–काव्य भारतीय ऐतिहासिक कथा–काव्य परंपरा की निरंतरता में उसका देशज रूपांतरण हैं। सभी देश–समाजों का इतिहास एक जैसा हो, यह आग्रह सिरे से ही ग़लत है। सभी समाजों की अपनी ऐतिहासिक–सांस्कृतिक ज़रूरत, दर्शन और विचारधारा के तहत बनी अपनी इतिहास चेतना होती है। ऋग्वैदिककाल से ही स्मृति के संरक्षण की भारतीय इतिहास चेतना और उसकी परंपरा भी है। भारतीय इतिहास चेतना और उसके साहित्य में निवेश की पद्धति की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं और इनमें से कुछ ऐसी विशेषताएँ भी हैं, जो इसको यूरोपीय इतिहास चेतना से अलग करती हैं। यह कहा गया है कि भारतीय इतिहास चेतना का, चक्रीय कालबोध और सनातनता के आग्रह के कारण, विकास अलग और ख़ास ढंग से हुआ। कुछ हद तक यह बात सही भी है, लेकिन कुछ विद्वानों का यह आरोप निराधार है कि इसमें रेखाकारीय बोध, मतलब देशकाल के संदर्भ का सर्वथा अभाव है। दार्शनिक अरविन्द शर्मा ने तो भारतीय कालबोध के केवल चक्राकारीय होने की धारणा को पूरी तरह ख़ारिज कर दिया। उन्होंने लिखा है कि यह ''इतना उलटा–पल्टा है कि हमें भूल की दिशा में ले जाता है।''[16] वे आगे कहते हैं कि ''समय की हिन्दू धारणा एकरंगी नहीं है बल्कि एक बहुरंगी चित्र है। यह एक जटिल अवधारणा है, जिसे केवल चक्राकारीय कहकर समझा नहीं जा सकता।''[17] अनिन्दिता एन. बाल्सलेव ने भी यही बात दोहरायी है कि ''समय का चक्राकारीय विचार हिन्दू बौद्धिक परम्परा का एक मात्र लक्षण न हो कर ''किसी विशिष्ट ब्राह्मणवादी विचारधारा तक का लक्षण नहीं है; यहाँ तक कि यह किसी वाद–विवाद का विषय भी नहीं है।''[18] उनके अनुसार हिन्दू दार्शनिक परम्पराओं में अनेक विविधताएँ हैं। स्पष्ट है कि समय का चक्राकारीय विचार हिन्दू बौद्धिक परम्परा का एक मात्र लक्षण नहीं है और तदनुसार इसकी इतिहास चेतना भी केवल चक्रीय कालबोध तक सीमित नहीं है। देशकाल की चेतना भी इसमें निरंतर और सघन है और इसकी परंपरा में इसके पर्याप्त साक्ष्य भी हैं।

यूरोपीय अध्येताओं को भारतीय इतिहास के काव्यमय होने पर आपत्ति है। उनका मानना है कि इतिहास का काव्य में होना उसका इतिहास से विचलन है। उनके अनुसार काव्य में होकर इतिहास अपने बुनियादी गुण–धर्म–तथ्य पर निर्भरता, निरपेक्ष दृष्टि आदि से भटक जाता है। प्राचीन भारतीय वाङ्मय का अधिकांश पद्य में ही है–गद्य इसमें बहुत विरल है, इसलिए ऐतिहासिक कथा–काव्यों का काव्यमय होना बहुत स्वाभाविक और परंपरासम्मत है। भारतीय कवि, केवल कवि नहीं है, उससे बहुश्रुत या बहुज्ञ होने की अपेक्षा की जाती थी। भारतीय ज्ञान का संग्रह और संकलन पद्य

में ही होता आया है। यह एक तरह से ज्ञान को सूत्रबद्ध करने का ढंग है और इससे ज्ञान का सदियों तक स्मृति में परिवहन आसान हो जाता है। ऐतिहासिक घटनाएँ और चरित्र इसीलिए इस परंपरा में काव्य में ढले हुए मिलते हैं। इस बात पर भी कम लोगों का ध्यान गया है कि इतिहास के काव्य में होने का भी अपनी जगह महत्त्व है। यह पाठक-श्रोता के लिए दोहरा लाभकारी है। रवींद्रनाथ ठाकुर ने एक जगह इस ओर संकेत किया है। वे लिखते हैं कि- ''काव्य में ग़लती पाऊँ तो इतिहास में उसका संशोधन कर लूँगा। किंतु जिस व्यक्ति को इतिहास पढ़ने का सुअवसर नहीं मिलेगा वह काव्य पढ़ेगा और वह अभागा है। लेकिन जिस व्यक्ति को काव्य पढने का सुअवसर नहीं मिलेगा, वह इतिहास पढ़ेगा और संभवत: वह सबसे अधिक दुर्भाग्यशाली है।''[19]

इतिहास की यह भारतीय परंपरा भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक ज़रूरतों के अनुसार बनी, इसलिए इतिहास की यूरोपीय ग्रीक-रोमन ईसाई परंपरा से बहुत अलग है। युक्तियुक्तता, कार्यकारण संबंध, तथ्य पर निर्भरता, प्रत्यक्ष अनुभव आदि इसमें उस तरह से नहीं हैं, जिस तरह से यूरोपीय कथित 'आधुनिक' इतिहास में होते हैं। इस परंपरा में एक तो स्मृति के दस्तावेज़ी ठहराव के बजाय उसको निरंतर और जीवंत रखने का आग्रह है, दूसरे, इसमें अतीत के यथार्थ का अमूर्तन इस तरह है कि यह वर्तमान में प्रासंगिक और उपयोगी बना रहे और तीसरे, इसमें साहित्यिक प्रथाएँ, कवि-कथा समय भी इस परंपरा के दस्तावेज़ों में पर्याप्त हैं।

उपनिवेशकालीन यह धारणा कि भारतीयों में इतिहास चेतना नहीं है, कुछ हद तक गुज़रे जमाने की बात हो गयी है। उपनिवेशकालीन यूरोपीय अधिकांश इतिहासकारों की लगभग मान्य इस धारणा पर अब काफ़ी पुनर्विचार हुआ है और यह मान लिया गया है कि किसी भी अन्य इतिहास सजग समाज की तरह भारतीय समाज भी इतिहास सचेत समाज है और उसकी परंपरा में इसके पर्याप्त साक्ष्य भी हैं। इतिहास सहित इतिहास के 19 आनुषंगिक रूप- *ऐतिह्य, पुराकल्प, परक्रिया, अवदान, आख्यान, आख्यायिका, उपाख्यान, अन्वाख्यान, चरित, अनुचरित, कथा, परिकथा, अनुवंश, श्लोक, नाराशंसी, गाथा, आख्यान और पुराण* 'इतिहास' के समानार्थक शब्दों के रूप में यहाँ सदियों से प्रयुक्त हो रहे हैं।[20] इतिहास शब्द का व्यवहार भी वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् ग्रंथों सहित परवर्ती साहित्य में कई जगह मिलता है। राजाओं के वीरतापूर्ण कार्यों और दानों की सराहना में कहे गए छंद इतिहास के प्राचीनतम भारतीय रूप हैं, जिनको वेदों में *गाथा* और *नाराशंसी* कहा गया है। परवर्ती ग्रंथ, ख़ासतौर पर *निरुक्त* और *बृहद्देवता ऋग्वेद* में *इतिहास* और *आख्यान* की मौजूदगी स्वीकार करते हैं। उत्तर वैदिककाल में इतिहास की इस मौखिक परंपरा

का विस्तार हुआ और इस दौर में यह मुख्यत: *नाराशंसी, गाथा, आख्यान, इतिहास* और *पुराण* के रूप में विकसित हुई। ये सभी इतिहास रूप वैदिक साहित्य में भी थे, लेकिन उत्तर वैदिककाल में आकर ये विशिष्ट साहित्यिक स्वरूप के साथ प्रवृत्तियों के रूप में अस्तित्व में आए। उत्तर वैदिककाल के अंतिम चरण में इतिहास-पुराण परंपरा का विस्तार हुआ। इतिहास की प्राचीन भारतीय परंपरा के निर्माण और विस्तार में भृग्वंगिरसों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है और यह परंपरा बहुत बाद तक जारी रही। *महाभारत* और *रामायण* इस समूह की देन हैं। पुराणों में भृग्वंगिरसों के साथ इतिहास की परंपरा के विकास में सूतों ने भी निर्णायक योग दिया। अब तक इतिहास की मौखिक परंपरा अनुश्रुतियों और अनुभव के रूप मौजूद रही, लेकिन उत्तर वैदिककाल के अंतिम चरण, 400 ई. पूर्व से 400 ई. के बीच यह निश्चित साहित्यिक स्वरूप में ढलने लगी और कुछ हद तक इसका मानकीकरण भी हुआ। धर्म के नये रूप की ज़रूरतों ने इतिहास-पुराण को एक निश्चित साहित्यिक ढाँचे में सीमित कर दिया गया, जिससे कुछ हद तक यह अपने ऐतिहासिक चरित्र से हट गया। *वंश* की परंपरा जारी रही और इसका ऐतिहासिक चरित्र भी बना रहा। इसकी बौद्ध, जैन और दरबारी, तीन अलग-अलग प्रवृत्तियाँ विकसित हुईं। दरबारी परंपरा का ख़ूब विकास हुआ। मौर्यकाल के बाद राजकीय अभिलेखागारों की परंपरा शुरू हुई। *वंश* की परंपरा की एक शाखा का विकास राजदरबारों में *चरित* या जीवनी लेखन के रूप में हुआ। पूर्व मध्यकाल के अंतिम चरण में भारतीय ऐतिहासिक कथा-काव्य की परंपरा में निर्णायक मोड़ आया, जब ऐतिहासिक व्यक्तियों को उपजीव्य बनाकर इतिवृत्तात्मक काव्य रचना की आरंभ हुई और इसका और विस्तार हुआ। 600 से लगाकर 1200 ई. के बीच इसी तरह के कई इतिवृत्त लिखे गए। बाण का *हर्षचरित,* बिल्हण का *विक्रमांकदेवचरित,* सोमश्वर तृतीय का *विक्रमांकाभ्युदय,* जयानक का *पृथ्वीराजविजय* आदि इसी तरह के रचनाएँ हैं। इतिहास-पुराण की परंपरा भी जारी थी- यह कश्मीर में *राजतरंगिणी* (1444 ई.) के रूप में फलीभूत हुई, लेकिन कुछ हद तक यह उससे अलग और नवीन भी थी।

संस्कृत के समानांतर प्राकृत सहित देश भाषाओं में साहित्य रचना की परंपरा बहुत पहले से थी। यहाँ तक कि जब ''संस्कृत भाषा का प्रसार उत्कर्ष पर था, उस समय भी ग़ैर संस्कृत भाषाओं का प्रयोग करनेवालों की सृजनात्मकता न तो कम हुई और न ही शायद संस्कृत से कम थी।''[21] ईसा की दूसरी सहस्राब्दी में देश भाषाओं का तेज़ी प्रसार हुआ, इन्होंने संस्कृत के सामने चुनौती पेश की और अंतत: इसकी जगह ले ली, हो सकता है भारतविद् शेल्डन पोलक की यह धारणा कुछ हद तक सरलीकरण हो[22], लेकिन इससे इतना तो साफ़ है कि इस दौरान संपूर्ण दक्षिण एशिया

में देश भाषाओं का चलन और उनका साहित्यिक व्यवहार तेज़ी से बढा, जिससे संस्कृत के कुछ अभिव्यक्ति रूपों का रूपांतरण हुआ और क्षेत्रीय ऐतिहासिक-सांस्कृतिक ज़रूरतों के तहत कुछ नये रूप अस्तित्व में आए। गुजरात सहित उत्तरी-पश्चिमी भारतीय प्रदेशों में चौदहवीं-पंद्रहवीं सदी के आसपास इस प्रक्रिया ने ज़ोर पकड़ा। क्षेत्रीय सामाजिक-सांस्कृतिक ज़रूरतों के तहत संस्कृत में प्रचलित साहित्यिक इतिहास रूपों के देश भाषाओं में सरलीकृत नये साहित्यिक इतिहास रूप- *रास-रासो, चरित, ख्यात, बही, पाटनामा, कवित्त, चउपई* आदि सामने आए। अभिव्यक्ति के इन नये साहित्यिक इतिहास रूपों में कई रचनाएँ हुईं। साहित्यिक इतिहास रूपों की इस परंपरा को राज्याश्रय भी मिला। ख़ासतौर पर देश के पश्चिमी और मध्यवर्ती भागों में इनका चलन बढ़ा। यह चलन इतना व्यापक था कि इनमें प्रयुक्त वस्तु, छंद भाषा आदि पर नयी शास्त्र रचनाएँ भी हुईं। चारण, भाट और जैन यति-मुनियों का इस परंपरा के विस्तार और समृद्धि में महत्त्वपूर्ण योगदान है।

2.

रत्नसेन-पद्मिनी संबंधी कथा बीजक पर निर्भर ऐतिहासिक कथा-काव्यों की सोलहवीं से उन्नीसवीं सदी तक विस्तृत परंपरा में पाठ, प्रयोजन और शैली का पर्याप्त वैविध्य है। मलिक मुहम्मद जायसी की *पद्मावत* (1540 ई.) को छोड़कर ये सभी रचनाएँ इतिहास और आख्यान की भारतीय परंपरा का स्वाभाविक देशज विकास हैं। इन रचनाओं में अपने ढंग के 'इतिहास' का आग्रह भी बराबर है और इसको कथा विस्तार और कवि-कथा समयों के बीच भी अलग से पहचाना जा सकता है। अज्ञात कवि कृत *गोरा-बादल कवित्त* इनमें से सबसे प्राचीन (1588 ई. से पूर्व) है और इसके कुछ अंश इस परंपरा की परवर्ती रचनाओं में उद्धृत किए गए हैं, इसलिए यह रचना हेमरतन और जायसी की इस प्रकरण पर निर्भर रचनाओं से पहले की रचना है। हेमरतन कृत *गोरा-बादल पदमिणी चउपई* (1588 ई.), जटमल नाहरकृत *गोरा-बादल कथा* (1623 ई.), लब्धोदय कृत *पदमिनी चरित्र चौपई* (1649 ई.) और दलपति विजय कृत *खुम्माणरासो* (1715-1733 ई.) जैन साहित्यिक परंपरा और निर्मिति में हैं, लेकिन इनमें धार्मिक आग्रह नहीं है। ख़ास बात यह है कि ये रचनाएँ परंपरा में हैं- यहाँ पूर्ववर्ती रचना का आगे की रचनाओं में विकास और पल्लवन है। अज्ञात कवि कृत *पद्मिनीसमिओ* (1616 ई.), दयालदास कृत *राणारासो* (1668-1681 ई.) और अज्ञात रचनाकार कृत *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा* (प्रतिलिपि 1870 ई.) चारण-भाट परंपरा की रचनाएँ हैं, जिनमें वंश और प्रशस्ति का विवरण पारंपरिक कवि-कथा समयों, अभिप्रायों और कथा रूढ़ियों के विन्यास में है। इनमें से *राणारासो* और

चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा चारण रचनाएँ हैं, जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होकर निरंतरता में हैं। ठहरे या मृत दस्तावेज़ पर निर्भर करने वाले विद्वानों के लिए यह निरंतरता भी अजूबे की तरह है। दरअसल यह अतीत की स्मृति के वर्तमान में व्यवहार का ख़ास भारतीय ढंग है। इनमें से कुछ रचनाओं में उनके रचनाकारों के नाम, उनकी रचना का समय और स्थान का विवरण नहीं हैं। दरअसल एक तो परंपरा से भारतीय रचनाकार ही रचना में अपनी अस्मिता को लेकर बहुत आग्रही नहीं हैं और दूसरे, यहाँ कृति को रचना के बाद मुक्त करने की परंपरा रही है। यहाँ किसी रचना के समान विषय-वस्तुवाली या उससे हटकर या उसको उद्धृत करते हुए अपनी अलग रचना करने की स्वतंत्रता हमेशा रही है। यह भी सही है कि *पद्मावत* (1540 ई.) इसी कथा बीजक पर निर्भर रचना है, लेकिन इसकी कथा योजना सूफ़ी दार्शनिक रूपक पर एकाग्र है और देशज ऐतिहासिक कथा-काव्य रचनाएँ इससे संबंधित या प्रभावित नहीं हैं। *पद्मावत* सहित अन्य सूफ़ी प्रेमाख्यानों का काव्यरूप और संगठन अलग प्रकार का है। शेल्डन पोलक ने भी फ़ारसी के प्रभाव में देशभाषा (हिंदावी, हिंदवी और हिंदुई) में चौदहवीं-पंद्रहवीं और इसके बाद विकसित प्रेमाख्यान परंपरा को भारतीय परंपरा से अलग माना है।[23] ''ये काव्य फ़ारसी और भारत की पुरानी शास्त्रीय परंपराओं दोनों से अलग हैं, ये भारतीय इस्लामिक रचना रूप में हैं। दोनों पुराने सिद्धांतों से ये दोहरा अंतर रखते हैं, भले ही महत्त्वपूर्ण विचारों और रूढ़ियों को ये उनसे ले लेते है। इस विधा के कवियों ने हिंदवी का प्रयोग किया, यह बोलचाल की स्थानीय भाषा थी, जिसे साहित्य का माध्यम बनाकर उन्होंने ऊँचा स्थान प्रदान किया। उनके काव्यों की प्राचीनतम पांडुलिपियाँ फ़ारसी लिपि में लिखी हुई हैं। उनके प्रेमाख्यान काव्य ऐसी काव्यशास्त्र के द्वारा सूफ़ी संदेश प्रकट करते हैं, जो अंशतः फ़ारसी से, अंशतः संस्कृत और अंशतः क्षेत्रीय परंपराओं से लिया गया है।''[24]

3.

पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण (1303 ई.) संबंधी देशज ऐतिहासिक कथा-काव्य की सुदीर्घ परंपरा लोक में सदियों से प्रचलित कथा बीजक पर आधारित है और इनकी जायसी के *पद्मावत* (1540 ई.) पर निर्भरता की धारणा सर्वथा निराधार है। पद्मिनी का जन्म सोलहवीं सदी के सूफ़ी आख्यान *पद्मावत* से हुआ[25], यह धारणा उन 'आधुनिक' इतिहासकारों-विद्वानों ने बनायी है, जिन्हें लोक में स्मृति के व्यवहार के ख़ास ढंग और इस प्रकरण से संबंधित देशज कथा-काव्यों के संबंध में कोई जानकारी नहीं थी। *पद्मावत* की ख्याति इसकी रचना के पचास वर्ष में ही जायस से सुदूर राजस्थान में पहुँच गई, यह विश्वसनीय नहीं लगता। जायसी कवि तो बड़े थे, लेकिन वे अपने

समय में बहुत लोकप्रिय नहीं थे- उनका उल्लेख पारंपरिक इतिहास और सांप्रदायिक साहित्य में नहीं मिलता। राजस्थान, पंजाब और गुजरात, जहाँ पारंपरिक पद्मिनी-कथा-काव्यों की रचना हुई, के ग्रंथागारों में *पद्मावत* की कोई प्रति नहीं मिलती। इन कथा-काव्यों के रचनाकारों ने *पद्मावत* को कहीं भी उद्धृत नहीं किया, जबकि पारंपरिक कथा-काव्यों में पूर्व की संबंधित रचनाओं के प्रसिद्ध कथनों का उद्धृत करने की परंपरा थी। इस कथा बीजक के आधार पर जायसी ने 1540 ई. में और हेमरतन 1588 ई. में अपनी रचनाएँ कीं, लेकिन इससे पूर्व भी इस बीजक को कथा-काव्य का स्वरूप देने के उपक्रम होते रहे थे। इन दोनों से प्राचीन *गोरा-बादल कवित्त* (1588 ई. से पूर्व) नामक रचना उपलब्ध है। पद्मिनी प्रकरण का *छिताईचरित* (1475-1480 ई.) में उल्लेख भी यह भी प्रमाणित करता है कि जायसी के *पद्मावत* से पूर्व यह कथा बीजक लोक में प्रचलन में था। परवर्ती पद्मिनी प्रकरण संबंधी फ़ारसी-अरबी वृत्तांत- मोहम्मद क़ासिम फ़रिश्ता (1560-1620 ई.) कृत *तारीख़-ए-फ़रिश्ता,* अबुल फ़ज़ल (1551-1602 ई.) कृत *आईन-ए-अकबरी* और अब्दुल्लाह मुहम्मद उमर अल-मक्की अल-आसफ़ी अल-उलुग़ख़ानी हाजी उद्दबीर कृत (1540-1605 ई.) कृत *ज़फ़रुल वालेह बे मुज़फ़्फ़र वालेह* भी जायसी की *पद्मावत* के बजाय पारंपरिक कथा बीजक या पारंपरिक देशज आख्यानों-ख्यातों पर निर्भर हैं। इन परवर्ती अरबी-फ़ारसी वृत्तांतों की कथा के मोड़ जायसी से अलग और अपनी तरह के हैं।

4.

पद्मिनी विषयक पारंपरिक देशज कथा-काव्यों कथा और चरित्र योजना एक-दूसरे से अलग होने के साथ मलिक मुहम्मद जायसी के *पद्मावत* से भी भिन्न हैं। जायसी की कथा बहुत विस्तृत, जटिल और कई मोड़-पड़ावों वाली है, इसमें कई उपकथाएँ हैं, जबकि देशज कथा-काव्यों की कथा अपेक्षाकृत सरल और सीधी है। देशज कथा-काव्यों की कथा में मोड़-पड़ाव भी बहुत कम हैं और ख़ास बात यह है कि इनमें कुछ मोड़-पड़ाव इन सभी कथा-काव्यों में हैं। पद्मिनी विषयक कथा बीजक के जायसी के कथा विस्तार और पल्लवन में अभिधार्थ और ध्वन्यार्थ अलग-अलग हैं, इसलिए इसके मोड़-पड़ाव विचित्र हैं और ये कई जगह अटपटे भी लगते हैं। देशज कथा-काव्यों में चरित्रों में से केवल तीन प्रमुख चरित्र- रत्नसेन, पद्मिनी और राघवचेतन *पद्मावत* में भी हैं। *पद्मावत* के शेष सभी चरित्र जायसी के अपने और मौलिक हैं। गंधर्वसेन, चंपावती, हीरामन, चित्रसेन, नागमती, यशोवती, कुमुदिनी और देवपाल नामवाचक संज्ञाएँ देशज कथा-काव्यों में नहीं हैं। गंधर्वसेन जायसी के अनुसार सिंघलद्वीप का राजा है, जबकि अधिकांश देशज कथा-काव्यों में पद्मिनी के पिता का नामोल्लेख

नहीं मिलता। केवल *पाटनामा* में उसका समरसिंह पँवार के रूप में नामाल्लेख है। पद्मिनी से विवाह से पूर्व रत्नसिंह की पटरानी का नाम जायसी के अनुसार नागमती है, जबकि पारंपरिक देशज कथा-काव्यों में से कुछ में यह नाम प्रभावती है। हीरामन की जायसी के *पद्मावत* में कथा के लगभग सभी मोड़-पड़ावों में निर्णायक भूमिका में है, लेकिन इस तरह का कोई पात्र देशज कथा-काव्यों में नहीं है।

जायसी के *पद्मावत* के कथा के अधिकांश मोड़-पड़ाव देशज कथा-काव्यों में नहीं हैं। *पद्मावत* का आरंभ देशज कथा-काव्यों से अलग है। जायसी के अनुसार रत्नसेन हीरामन की सराहना पर पद्मावती की खोज में सिंघल द्वीप के लिए प्रस्थान करता है, जबकि देशज कथा-काव्यों में इसका कारण स्वादहीन और अरुचिकर भोजन पर रानी से नाराज़गी और रानी का इसके लिए पद्मिनी ले आने के ताने का कवि-कथा अभिप्राय है। हीरामन तोते का चित्तौड़ पहुँचने का वृत्तांत भी किसी देशज कथा-काव्य में नहीं है। जायसी ने रत्नसेन की सिंघल यात्रा का भौगोलिक विवरण भी दिया, जबकि अधिकांश देशज कथा-काव्यों में यह नहीं मिलता। देशज कथा-काव्यों में रत्नसेन का सिंघलद्वीप पहुँचना चामत्कारिक है- इसमें योगी या योगियों की निर्णायक भूमिका है। *पाटनामा* में यात्रा में लगने वाले समय के साथ सेतुबंध रामेश्वरम् का उल्लेख आया है, अन्यथा देशज कथा-काव्यों में यात्रा का भौगोलिक विवरण नहीं है। रत्नसेन की गजपति से भेंट, गंधर्वसेन द्वारा रत्नसिंह का बंदी बनाया जाना, नागमती का वियोग, समुद्र की दान याचना, रत्नसेन और पद्मिनी का जहाज के भँवर फँस जाने से अलग-अलग दिशाओं में बह जाना, समुद्र पुत्री लक्ष्मी से भेंट, देवपाल का कुमुदिनी को भेजकर पद्मिनी को आकृष्ट करने का प्रयास, सरजा के माध्यम से पद्मिनी देने का उल्लाउद्दीन का संदेश, अलाउद्दीन का पातुर भेजकर पद्मावती का मन बदलने की चेष्टा, सरजा द्वारा गोरा की हत्या, देवपाल द्वारा सांगी मारकर रत्नसेन को आहत करना, बादल को गढ़ सौंपकर रत्नसेन की मृत्यु, पद्मिनी-नागमती का सती होना बादल की मृत्यु और स्त्रियों का जौहर आदि अनेक प्रकरण जायसी का अपना कथा पल्लवन और विस्तार है। जौहर का प्रकरण जायसी के यहाँ है, लेकिन यह केवल सांकेतिक है। जायसी लिखते हैं कि *जौहर भई इस्तिरी, पुरुख भए संग्राम / पातसाहि गढ़ चूरा, चितउर भा इसलाम* अर्थात् स्त्रियों ने जौहर कर लिया, पुरुष संग्राम करते हुए अंत को प्राप्त हुए, बादशाह ने गढ़ ध्वस्त कर दिया और चित्तौड़ इस्लाम के नीचे आ गया। कथा पल्लवन के ये रूप देशज ऐतिहासिक कथा-काव्यों में नहीं हैं।

पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर इन कथा-काव्यों की कथा योजना से यह स्पष्ट है कि भारतीय ऐतिहासिक कथा-काव्य की प्राचीन परंपरा के अनुसार इनमें

एक ही कथा बीजक का अलग-अलग तरह से पल्लवन और विस्तार है। जैन धार्मिक रचनाकारों की कथा योजना में कोई धार्मिक आग्रह तो नहीं है, लेकिन स्वामिधर्म, पातिव्रत्य, यौन शुचिता आदि मूल्यों की प्रतिष्ठा के साथ मनोरंजन का उद्देश्य इनमें सक्रिय है। चारण और अन्य रचनाकारों का आग्रह इन मूल्यों की प्रतिष्ठा के साथ इतिहास और वंश प्रशस्ति का भी है। ख़ास बात यह है कि यहाँ कथा योजना किसी एक आशय या योजना में सीमित और रूढ़ नहीं है। यहाँ रचनाकार के अपने विवेक और प्रयोजन के अनुसार कथा बनती-बदलती है। इतिहास इनमें कहीं आधार है, तो कहीं रीढ़ और कहीं केवल सहारा, लेकिन यह इनमें है। यह इनमें कुछ दूर दिखता, फिर कुछ दूर ओझल रहता है और फिर एकाएक दिख जाता है। यह ऐतिहासिक कथा-काव्य रचना की ख़ास भारतीय पद्धति में है। यहाँ इतिहास कथा में और कथा इतिहास में इस तरह घुल-मिल जाते हैं कि इनकी अलग पहचान मुश्किल हो जाती है।

5.

पदमिनी-रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर ऐतिहासिक कथा-काव्य सर्वथा मिथ्या या मनगढ़ंत नहीं है। उनमें इतिहास का नियोजन भारतीय ऐतिहासिक कथा-काव्य परंपरा के अनुसार है, इसलिए इनमें इतिहास के साथ रचनात्मक विस्तार के लिए प्रयुक्त मिथ-अभिप्रायों और कथा-रूढ़ियों का नियोजन ख़ूब है। ये अभिप्राय और कथा रूढ़ियाँ भी केवल कल्पना नहीं हैं- इनके प्रस्थान में यथार्थ की मौजूदगी है और भारतीय ऐतिहासिक काव्यों की निर्मिति, कवि स्वभाव और शिक्षा के कारण ये इनमें सहज ही आ गयी हैं। इन कथा-काव्यों में वर्णित पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण की आंशिक पुष्टि अलाउद्दीन ख़लजी के समकालीन इस्लामी वृत्तांतकार अमीर ख़ुसरो (1253-1325 ई.) के वृत्तांत से भी होती है, जिसमें उसने अपने को सेबा की रानी बिलक़ीस का समाचार लाने वाले सुलेमान के पक्षी 'हुद हुद' के समान बताया है। ज़ियाउद्दीन बरनी (1285-1357 ई.) और अब्दुल मलिक एसामी (1311 ई.) ने अलाउद्दीन के चित्तौड़ अभियान का विवरण तो दिया है, लेकिन इसमें इन दोनों ने पद्मिनी और गोरा-बादल के उल्लेख नहीं किया। इस्लामी इतिहास लेखन की परंपरा के अनुसार इन्होंने इस प्रकरण का वही विवरण दिया, जो शासक अलाउद्दीन ख़लजी को अच्छा लगता था। परवर्ती इस्लामी वृत्तांतकारों- अबुल फ़ज़ल (1551-1602 ई.), महम्मद क़ासिम फ़रिश्ता (1560-1620 ई.) और हाजी उद्दबीर (1540-1605 ई.) ने भी इस प्रकरण का अपनी-अपनी तरह से विवरण दिया है और इनमें पद्मिनी और गोरा-बादल का उल्लेख आ गया है। अलाउद्दीन के समकालीन कक्क सूरि का *नाभिनंदनजिनोद्धारप्रबंध*

(1336 ई.) और परवर्ती रचना *मुँहता नैणसीरी ख्यात* (1610–1670 ई.) और *रावल राणारी वात* (1680–1698 ई.) में इस प्रकरण का संदर्भ मिलता है। विवेच्य कथा-काव्यों के अनुसार रत्नसेन ने चित्तौड़ पर आक्रमण केवल राजीनितिक प्रयोजन के लिए नहीं किया- पद्मिनी पाने की लालसा की इसमें निर्णायक भूमिका थी। इस तथ्य का समर्थन *छिताईचरित्र* (1475–1480 ई), *हम्मीररासो* (1390 ई.), *हम्मीरायण* (1481 ई.) आदि देशज रचनाओं के साहित्यिक साक्ष्य भी करते हैं। विवेच्य रचनाओं में अलाउद्दीन स्त्री लोलुप और कामांध वर्णित किया गया है। यह बात सही है, क्योंकि सभी देशज स्रोत और स्त्रियाँ पाने के लिए किए गए उसके युद्ध अभियान भी इसी ओर संकेत करते हैं। रचनाओं में वह अपार शक्तिशाली और क्रूर भी दिखाया है, जो वह था। इस्लामी स्रोतों- ख़ासतौर पर *तारीख़-ए-फ़रिश्ता* में जियाउद्दीन इस तरह का विवरण देता है। समरसिंह (1273–1303 ई.) का उत्तराधिकारी रत्नसिंह (1302–1303 ई.) अलाउदद्दीन के 1303 ई. के आक्रमण के समय चित्तौड़ का शासक था और वह इन कथा-काव्यों का निर्विवाद नायक है। यह अलग बात है कि कुछ आधुनिक इतिहासकारों को आरंभ में उसके अस्तित्व लेकर संदेह था। यह संदेह इसलिए हुआ, क्योंकि मेवाड में राणा शाखा के शासन के दौर में बने कुछ शिलालेखों सहित कुछ साहित्यिक साक्ष्यों में रावल शाखा से संबंधित होने के कारण रत्नसिंह का नाम नहीं है। बाद में दरीबा (1303 ई.) और कुंभलगढ़ (1460 ई.) के शिलालेखों में 1303 ई. में उसका मेवाड़ में सत्तारूढ़ होना प्रमाणित हो गया। पद्मिनी इन रचनाओं के केंद्र में है, लेकिन कतिपय इतिहासकारों ने उसको जायसी की कल्पना मान लिया, जो ग़लत है। पद्मिनी का उल्लेख अलाउद्दीन के समकालीन वृत्तांतकारों ने नहीं किया, लेकिन ख़ुसरो के *ख़जाइन-उल-फ़ुतूह* में उसका सांकेतिक उल्लेख है। परवर्ती देशज स्रोत- *मुँहता नैणसीरी ख्यात* (1610–1670 ई.), *रावल राणारी वात* (1680–1698 ई.) सहित *राजप्रशस्तिमहाकाव्य* (1661–1681 ई.) और *अमरकाव्यम्* (1683 से 1693 ई.) में उसका उल्लेख मिलता है। पद्मिनी सदियों से लोक स्मृति का भी हिस्सा रही है। वह पद्मिनी कोटि की स्त्री है, जिसका विवाह रत्नसेन से हुआ है। *पाटनामा* में उसका नाम मदन कुँवर है। विवेच्य अधिकांश रचनाओं में रत्नसेन को युक्तिपूर्वक अलाउद्दीन की क़ैद से मुक्त करवाने वाले योद्धा गोरा-बादल हैं और इन रचनाओं में से कुछ का नामकरण ही उनके नाम के आधार पर हुआ है। अलाउद्दीन के समकालीन वृत्तांतकारों ने उनका उल्लेख नहीं किया, लेकिन सभी दूसरे साहित्यिक और परवर्ती इस्लामी स्रोतों में उनका उल्लेख मिलता है। उनसे संबंधित सदियों पुराने स्मारक भी भी हैं, जो उनके ऐतिहासिक होने की पुष्टि करते हैं। राघवचेतन इन रचनाओं में से कुछ में एक, तो कुछ में दो व्यक्ति हैं। आधुनिक इतिहासकारों को

राघवचेतन के ऐतिहासिक अस्तित्व पर भी संदेह है। राघवचेतन का उल्लेख भी अलाउद्दीन के समकालीन वृत्तांतकारों ने नहीं किया, लेकिन उससे संबंधित कांगड़ा की ज्वालामुखी प्रशस्ति (1433–1446 ई.), *वृद्धाचार्य प्रबंधावली* (1569 ई.), *शार्गंधरपद्धति* (तेरहवीं सदी के अंतिम चरण में) आदि पर्याप्त पुरालेखीय और साहित्यिक साक्ष्य उपलब्ध हैं। राघवचेतन से संबंधित जैन साहित्यिक साक्ष्य और कांग़ड़ा की ज्वालामुखी प्रशस्ति तो अलाउद्दीन की लगभग समकालीन हैं।

पाटनामा को छोड़कर ये सभी रचनाएँ एक राय हैं कि रत्नसेन और अलाउद्दीन ख़लजी के बीच हुए युद्ध में विजय रत्नसेन की हुई और बादशाह भाग गया, जबकि जौहर का उल्लेख इनमें से किसी भी रचना में नहीं है। *पाटनामा* के अनुसार दुर्ग ध्वस्त हुआ और बादशाह की फ़ौज भाग गयी। रत्नसेन की इन रचनाओं में विजय हुई, लेकिन देशज कुछ साहित्यिक स्रोत और पुरालेखीय अभिलेख मानते हैं कि रत्नसेन की पराजय हुई और कुछ समय के लिए दुर्ग सल्तनत के अधीन रहा। रचनाओं में रत्नसेन की विजय का उल्लेख स्वाभाविक है– अकसर रचनाकार पराजय को विजय के रूप में चित्रित कर अपने जाति–समाज के स्वाभिमान को खाद–पानी देते हैं। जौहर का उल्लेख इनमें से किसी भी रचना में नहीं है और यह भी स्वाभाविक है, क्योंकि जौहर की परिस्थिति तो तब बनती, जब रत्नसेन की पराजय होती। परवर्ती देशज साहित्यिक वंशावली अभिलेखों– *राजप्रशस्तिमहाकाव्य, अमरकाव्य* और *राजरत्नाकरकाव्य* में भी जौहर का उल्लेख नहीं है, जबकि इस तरह का उल्लेख प्रतिष्ठाकारी था। जौहर केवल जायसी की *पद्मावत,* अबुल फ़ज़ल की *आईन–ए–अकबरी* और *मुँहता नैणसीरी ख्यात* और *रावल राणारी वात* में है और यह इनमें कहाँ से आया, यह कहना बहुत मुश्किल काम है। पद्मिनी–रत्नसेन प्रकरण पर अलाउद्दीन के समकालीन इस्लामी वृत्तांतकारों का मौन बहुत स्वाभाविक है। आधुनिक इतिहासकारों ने इस आधार पर इस प्रकरण को जायसी की कल्पना मान लिया, जो सही नहीं है। यह विडंबना है कि आधुनिक कुछ इतिहासकारों ने मध्यकालीन भारत के सन्दर्भ में दरबारी इतिहास को ही प्राथमिक स्रोत या आधिकारिक स्रोत का दर्जा देते हुए इनमें दर्ज़ हुई हर सूचना को वस्तुपरक सत्य मान लिया गया, जो पूरी तरह ग़लत है। पी. हार्डी ने इस संबंध में साफ़ सचेत करते हुए लिखा है कि ''आधुनिक इतिहासकारों के लिए मध्ययुगीन मुस्लिम भारत के इतिहास के संबंध में इन लेखकों के विवरणों पर अंध निर्भरता ठीक नहीं है। जो वे कहते हैं वह इतिहास नहीं है, बल्कि इतिहास का कच्चा माल है, जिसे तैयार उत्पाद में बदलने के लिए उसके निर्माण की आवश्यकता होती है।''[26] अलाउद्दीन के समकालीन तीनों समकालीन वृत्तांतकारों– अमीर ख़ुसरो, ज़ियाउद्दीन बरनी और अब्दुल मलिक एसामी पर पूरी तरह निर्भरता इस प्रकरण के संबंध में

ग़लत निष्कर्ष पर पहुँचा देती है। दरअसल एक तो इन तीनों वृत्तांतकारों में से अमीर ख़ुसरो तो मूलतः कवि था और एसामी की इच्छा भी कवि होने की ही थी और दूसरे, उस समय का रिवाज़ के मुताबिक अलाउद्दीन की सराहना और उसकी कमज़ोरियों की छिपाना उनकी आदत और मजबूरी थी।

6.

पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण निर्भर कथा-काव्यों में तत्कालीन संस्कृति-प्रशासन और जीवन मूल्य और आस्था-विश्वास आदि का जो रूप बनता है, वह उपलब्ध अन्य पुरालेखीय और साहित्यिक साक्ष्यों से बहुत अलग नहीं है। मेवाड़ में सदियों से गुहिलवंशियों का वर्चस्व रहा है, जो सूर्यवंशी क्षत्रीय राजपूत हैं। यह धारणा निराधार है कि क्षत्रिय और राजपूत, दो अलग जातियाँ हैं और राजपूतों की उत्पत्ति विदेशी मूल की है। दरअसल राजपूत प्राचीन क्षत्रिय परंपरा का ही मध्यकालीन विस्तार है। विवेच्य रचनाओं में 'खित्रिवट'' (क्षत्रियत्व) शब्द का ही व्यवहार हुआ है। शक, हूण आदि जिन जातियों से राजपूतों की उत्पत्ति मानी जाती है, वे सभी जातियाँ हमारे प्राचीन शास्त्रों में क्षत्रिय जातियों में परिगणित की गयी हैं। इसी तरह मध्य एशिया, जहाँ से उनका आगमन माना जाता है, वहाँ छठी-सातवीं सदी में भारतीय सभ्यता की मौजूदगी के प्रमाण मिले हैं। गुहिल वंश का ईरान के नौशरवाँ आदिल वंश से संबंध और मेवाड़ में उसके वल्लभी से आने की धारणा भी युक्तिसंगत नहीं है। पुरालेखीय प्रमाण- आगरा में 1865 ई. में राजा गुहिल के 2000 से अधिक चांदी के सिक्कों की उपलब्धता, चाटसू (जयपुर) के आसपास वि.सं 1000 (943 ई.) के शिलालेख में वहाँ गुहिलवंशी राजा भर्तृभट्ट के वंशजों शासक होने के उल्लेख और अजमेर जिले के नासूण गाँव के शिलालेख वि.सं. 887 (830 ई.) इसके आगरा की तरफ़ से आने की पुष्टि करते हैं। यह धारणा भी निराधार है कि गुहिल वंश की उत्पत्ति नागर ब्राह्मणों से हुई। सभी पुरालेखीय साक्ष्य- आहाड़ का शिलालेख वि.सं.1034 (976 ई.), एकलिंगजी मंदिर का राजा नरवाहन के समय का शिलालेख वि.सं.1028 (971 ई.), श्यामपार्श्वनाथ मंदिर का शिलालेख वि.स.1335 (1278 ई.), आबू का शिलालेख वि.सं.1342 (1285 ई.), *मुँहता नैणसीरी ख्यात* आदि इसके क्षत्रिय होने की पुष्टि करते हैं।

यह माना जाता है कि गुहिल राम के पुत्र कुश के वंशज राजा सुमित्र के वंश में 560 ई. में राजा गुहिल हुआ, जिससे इस वंश की शुरुआत हुई। गुहिल के बाद बाद इसमें बप्पा, खुम्माण आदि कई शासक हुए। बप्पा ने मोरियों से चित्तौड़ छीनकर अपने राज्य में मिलाया। खुम्माण भी बहुत पराक्रमी था- बाद में यह नाम मेवाड़ के शासकों का विशेषण हो गया। कई शासकों के बाद तेरहवीं सदी में तेजसिंह के

उत्तराधिकारी समरसिंह (1273–1301 ई.) के बाद उसका पुत्र रत्नसेन (1302–1303 ई.) सत्तारूढ़ हुआ। मेवाड़ के कुछ वंशावली अभिलेखों में रत्नसेन का नामोल्लेख नहीं मिलता, लेकिन विवेच्य रचनाओं और नये उपलब्ध पुरालेखीय साक्ष्यों से इतना तो तय है कि 1303 ई. अलाउद्दीन ने जब चित्तौड पर आक्रमण किया, तो उस समय रत्नसेन वहाँ का राजा और पद्मिनी उसकी रानी थी। चित्तौड़ जीतने बाद अलाउद्दीन ने वहाँ का शासन अपने पुत्र ख़िज्र ख़ाँ को दिया। बाद में निरंतर उपद्रवों के कारण ख़िज्र ख़ाँ की जगह अलाउद्दीन ने क़िला जालोर के मालदेव सोनगरा को सौंप दिया। गुहिल वंश के ही सिसोदा की जागीर के स्वामी हम्मीर ने 1326 ई. के आसपास दिल्ली सल्तनत के कमज़ोर होते ही मालदेव को परास्त कर मेवाड़ पर फिर अपना आधिपत्य कायम कर लिया।

विवेच्य कथा–काव्यों और दूसरे उपलब्ध साक्ष्यों से लगता है कि प्रकरणकालीन मेवाड़ में अपने ढंग की सामंती प्रशासनिक व्यवस्था थी। यह व्यवस्था यूरोपीय और शेष भारत की सामंतवादी व्यवस्था से कुछ हद तक अलग और ख़ास प्रकार की थी। कुछ विद्वानों की 'भारतीय फ़्यूडलिज़्म' की अवधारणा के साथ इसका कोई मेल नहीं है। 'भारतीय फ़्यूडलिज़्म की परिकल्पना' वास्तव में यूरोप में विकसित और पतित फ़्यूडलिज़्म की हेनरी पिरेन द्वारा प्रतिपादित परिकल्पना के अनुरूप थी, जिसे रामशरण शर्मा ने कार्बन कॉपी की तरह भारतीय तथ्यों और साक्षियों पर चस्पा कर दिया।[27] मेवाड़ में राजनीतिक–प्रशासनिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण ब्राह्मणों को भूमिदान से नहीं हुआ। यह सही है कि यहाँ बहुत शुरू से ब्राह्मणों और मंदिरों को भूमिदान दिया जाता रहा है और इस तरह अभिलेख भी निरंतर मिलते हैं, लेकिन यह उनको आजीविका के लिए दिया जाता था और इस पर उनका स्वामित्व स्थायी नहीं था। यहाँ भूमि सैन्य सेवा के बदले अपने कुटुम्बियों और अन्य बाहरी क्षत्रिय योद्धाओं को दी गयी और सत्ता का विकेंद्रीकरण भी इसी आधार पर हुआ। राजाज्ञा यहाँ सर्वोपरि थी और उसकी अनुपालना भी आवश्यक थी, लेकिन अधीनस्थ सामंतों का युद्ध आदि मसलों में परामर्श भी आवश्यक था और कुछ मामलों में वे स्वायत्त और ताक़तवर भी थे। मेवाड़ की यह व्यवस्था शेष राजस्थान की रियासतों से भी अलग थी– अन्य रियासतों में अधीनस्थ सामंतों को मेवाड़ जितने अधिकार नहीं थे। दरअसल मेवाड़ राजस्थान के दूसरे राज्यों की तुलना में बहुत पुराना राज्य था। टॉड के शब्दों में "यह वंश ऐसे प्राचीन समय में स्थापित हो चुका था, जबकि अन्य पुनर्जीवित या अभी गर्भावस्था में ही थे। इस कारण मेवाड़ की रीति–नीति और विधि–विधान अन्य राज्यों से स्पष्ट रूप से भिन्न हैं।"[28] यहाँ के सामंत और उपसामंत केवल सैन्य सेवा के लिए उपलब्ध व्यक्ति नहीं थे, उनके कुछ पारम्परिक अधिकार थे और राज्य की

रीति-नीति के निर्धारण में उनकी निर्णायक भूमिका थी। कई बार वे राजा के चयन और अयोग्य शासक की पदच्युति में प्रभावी भूमिका निभाते थे। राजा उनसे परामर्श और सहयोग लेने के लिए लगभग बाध्य था। काश्तकार उत्पादन और आर्थिक मामले में लगभग स्वतंत्र थे और इसके अलावा कुछ हद तक उनका अपनी काश्तभूमि भूमि पर विधिक अधिकार भी था। उनसे आमतौर पर उत्पादन का 1/3 या 1/4 बतौर राजस्व लिया जाता था और कृषि दासता जैसी स्थिति यहाँ कभी नहीं रही।

विवेच्य रचनाओं और दूसरे साक्ष्यों से यह भी लगता है बाह्य आक्रमणों और निरंतर होनेवाले युद्धों के कारण यहाँ कुछ ख़ास प्रकार के सांस्कृतिक मूल्यों का विकास हुआ, जिनकी जड़ें हमारे प्राचीन शास्त्रों और स्मृतियों में थीं। सांस्कृतिक मूल्यों का विकास और उनमें परिवर्तन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में होता है। उनका मूल्यांकन हम अपने समय की ज़रूरतों के आधार पर करने लगते हैं, जो ग़लत हैं। समता, स्वाधीनता, न्याय और इन पर निर्भर विचारधाराएँ और विमर्श मनुष्य की विकास यात्रा की हमारे समय की उपलब्धियाँ हैं। हमारे समय के सांस्कृतिक मूल्यों और व्यवहार की कसौटी पर इसलिए मध्यकालीन सांस्कृतिक व्यवहार और मूल्यों के महत्त्व का आकलन नहीं हो सकता। अलग और ख़ास प्रकार के मध्यकालीन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में ही इनको समझा जाना चाहिए। शौर्य, पराक्रम, युद्ध, शरणागति और प्रजा की रक्षा आदि मूल्य क्षत्रियत्व की प्रमुख अभिलक्षणाओं में हमेशा से थे, लेकिन मध्यकाल में इनका आग्रह बढ़ गया। मध्यकाल में युद्ध की एक संस्कृति बन गयी, जिसमें मरना-मारना और पीठ नहीं दिखाना योद्धा के ज़रूरी गुण मान लिए गए। ''युद्ध उन दिनों के राजपूत राजाओं के लिए आवश्यक कर्त्तव्य हो गया था। लड़नेवाली जातियों के लिए सचमुच ही चैन से रहना असंभव हो गया था। क्योंकि उत्तर, पूरब, दक्षिण, पश्चिम सब ओर से ओर आक्रमण की संभावना थी। निरंतर युद्ध के लिए प्रोत्साहित करने के लिए भी एक वर्ग आवश्यक हो गया था। चारण इसी श्रेणी के लोग थे। उनका कार्य ही था- हर प्रसंग में आश्रयदाता के युद्धोन्माद को उत्पन्न कर देने वाली घटना योजना का आविष्कार।''[29] विवेच्य रचनाओं में 'खित्रिवट' (क्षत्रियत्व) और 'रिणवट' (युद्ध की रीत) की ख़ूब सराहना हुई है। कर्मफल और नियतिवाद मध्यकालीन आचरण में सम्मिलित था, लेकिन धीरे-धीरे यह युद्ध संस्कृति के साथ भी जुड़ गए। विवेच्य रचनाओं में इस धारणा को पुष्ट किया गया है कि युद्ध में मृत्यु से यश के साथ स्वर्ग भी मिलता है। स्वामिधर्म भी इन रचनाओं में केंद्रीय सरोकार है। गोरा-बादल के चरित्रों की योजना इस मूल्य को चरितार्थ करने के लिए ही हुई है। निरंतर बाह्य आक्रमणों और आक्राताओं के स्त्रीलोलुप आचरण और स्वभाव के कारण मध्यकाल में स्त्रियों की शील की रक्षा और यौन शुचिता का आग्रह और चिंता में भी वृद्धि

हुई। विवेच्य रचनाओं में इसका आग्रह बहुत है। यहाँ पद्मिनी अपने शील और यौन शुचिता की रक्षा के निमित्त मर जाने के लिए संकल्पित है और उसके परिजन भी इसके लिए मरने और मारने के लिए तत्पर हैं।

7.

पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण पर निर्भर ऐतिहासिक कथा-काव्य इस्लामी विजय की हिंदवी फारसी साहित्यिक प्रवृत्ति का प्रतिरोध नहीं है, जैसाकि कुछ विद्वान् मानते हैं। अज़ीज़ अहमद सहित कुछ विद्वान् रासो आदि रचनाओं को इस्लामी विजय की साहित्यिक रचनाओं- *ख़जाइन-उल-फ़ूतूह* आदि का प्रतिरोध मानते हैं। अज़ीज़ अहमद ने इस इस संबंध में लिखा कि ''मुस्लिम प्रभाव और शासन ने दो साहित्यिक प्रवृत्तियों को जन्म दिया : विजय का एक मुस्लिम महाकाव्य, और प्रतिरोध और मनोवैज्ञानिक अस्वीकृति का एक हिंदू महाकाव्य। दो साहित्यिक प्रवृत्तियाँ दो अलग-अलग संस्कृतियों; दो अलग-अलग भाषाओं- फ़ारसी और हिंदी और दो समान रूप ख़ास धार्मिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टिकोणों द्वारा अपनपायी गयीं। ये दोनों प्रवृत्तियाँ आक्रामक शत्रुता के साथ एक-दूसरे का सामना करती हैं।''[30] यह धारणा सही नहीं है- ये रचनाएँ सदियों पुरानी ऐतिहासिक प्रबंध-चरित कथा-काव्य की परंपरा में हैं और ये किसी प्रवृत्ति का प्रतिरोध नहीं हैं। इन रचनाओं में कहीं भी कोई हिंदू धार्मिक आग्रह नहीं है। यहाँ तक कि जैन यतियों, मुनियों और श्रावकों की रचनाएँ भी कहीं भी धार्मिक नहीं हैं। अधिकांश आधुनिक इतिहासकार इस प्रकरण के लिए जिन इस्लामी वृत्तांतकारों पर निर्भर करते हैं वे सभी आग्रहपूर्वक धार्मिक हैं। वे समकालीन अवश्य थे, लेकिन अपने समय के शासकों के सभी कृत्यों और उनके परिणामों का मूल्यांकन धार्मिक नज़रिये से करते थे। ''ये सभी इतिहासकार उलेमा थे। ये प्रत्येक घटना का इस्लामी धर्मशास्त्र के आधार पर आकलन करते थे। वे सल्तनत को धर्मतंत्र का आधार मानते थे।.....ये लेखक ग़ैर मुसलमानों के साथ युद्ध को ज़िहाद कहते हैं।''[31] इनके विपरीत चारण या जैन वृत्तांतकार ऐसा नहीं करते। अलाउद्दीन ख़लजी की विजय इस्लामी वृत्तांतकारों लिए इस्लाम की विजय है और युद्ध में हिंदुओं की मौत काफ़िरों की मौत की तरह है, लेकिन चारण-जैन वृत्तांतकार इसमें धर्म को बीच में नहीं लाते। चित्तौड़ की विजय के बाद वहाँ से अलाउद्दीन के प्रस्थान का वर्णन करते हुए अमीर ख़ुसरो लिखता है कि ''10वीं मुहरर्म के बाद पैग़ंबर के ख़लीफ़ा के झंडे को (अल्लाह उसे ऊँचे से ऊंचे ले जाए) आश्चर्यजनक रीति से हिंदुओं के सिर पर फहराने के बाद इस्लाम के शहर दिल्ली की तरफ़ चलने का हुक्म हुआ। उसने सभी हिंदुओं को जो इस्लाम की पहुँच के बाहर हों, वध करना अपनी जुल्फ़कार (काफ़िर को मारनेवाली तलवार) का ऐसा कर्तव्य बनाया कि अग्र मुसलमान राफ़िज़ी (सांप्रदायिक

भेद मानने वाले) नाम मात्र को अपना हक़ माँगे तो ख़ालिस सुन्नी इस अल्लाह की क़सम खा लेंगे।''[32] जैन और चारण वृत्तांतकारों का नज़रिया इससे अलग है। उनके लिए यह धर्म युद्ध नहीं है। यह केवल रत्नसेन और अलाउद्दीन, दो शासकों की सेनाओं के बीच का युद्ध है। हेमरतन लिखता है कि- *पदमिणी राखी राजा लीउ, गढनउ भार घणौ झीलीउ। / रिणवट करीनइ राखी रेह नमो नमो बादिल गुणगेह॥* अर्थात् (बादल ने) पद्मिनी की रक्षा करते हुए राजा को मुक्त करवा लिया। उसने दुर्ग की रक्षा का दायित्व निभाया। उसने यद्ध करके मर्यादा की रक्षा की। गुणों के घर बादल को नमन है।[33] *पाटनामा* का समापन भी कमोबेश इसी तरह होता है। पाटनामाकार लिखता है कि-*''पछै पातशाही फ़ौज भागी अर अठीने गढ़ चीतोड़ भागो।''*अर्थात् फिर बादशाह की फ़ौज भागी और और चित्तौड़ गढ़ ध्वस्त हुआ।[34] अलाउद्दीन के समकालीन अन्य इस्लामी वृत्तांतकारों- ज़ियाउद्दीन बरनी और अब्दुल मलिक एसामी का नज़रिया भी अमीर ख़ुसरो से अलग नहीं था। ज़ियाउद्दीन बरनी के लिए इतिहास धर्मशास्त्र का एक अंग है और अतीत उसके अनुसार अच्छाई और बुराई का संघर्ष है।[35] वह कट्टर सुन्नी मुसलमान था और उसका दृष्टिकोण बड़ा ही संकीर्ण था।[36] एसामी की *फ़तूह-उस-सलातीन* (1350 ई.) भी एक सांप्रादायिक और संकीर्ण दृष्टिकोणवाली रचना है।[37]

8.

पद्मिनी-रत्नसेन पर निर्भर कथा-काव्यों की रचनात्मकता के मूल्यांकन के दौरान यह ध्यान में रखना ज़रूरी है कि ये रचनाकार शास्त्र सिद्ध और निष्णात कवि नहीं हैं। इनकी कवि शिक्षा अनौपचारिक- पैतृक या गुरु प्रदत्त है। मध्यकाल में संस्कृत की काव्यशास्त्रीय स्थापनाओं का भी प्राकृत-अपभ्रंश और परवर्ती देश भाषाओं में समय की ज़रूरतों के अनुसार सरलीकरण और विस्तार हुआ। संस्कृत के साथ इन भाषाओं में भी छंद, अलंकार आदि से संबंधित कवि शिक्षा ग्रंथ लिखे गये। ख़ासतौर पर पश्चिमी भारत में इस तरह के कई ग्रंथों की रचना हुई। ये सरलीकृत ग्रंथ जैन और जैनेतर, दोनों तरह के विद्वानों ने लिखे और ये ही इन अधिकांश रचनाकारों के आदर्श थे। ये रचनाएँ मूलतः ऐतिहासिक कथा रचनाएँ थीं, इसलिए इनमें रचनात्मकता के निवेश की गुंजाइश भी सामान्य काव्य रचनाओं की तुलना में कम थी। यह भी कि इन रचनाओं का लक्ष्य श्रोता भी मध्यम श्रेणी का जनसाधारण यजमान या लोक समाज था, इसलिए इनकी रचना के दौरान उनकी रुचियाँ और समझ का स्तर भी रचनाकारों के मन में रहा होगा।

काव्यरूप इन रचनाओं में चरित वर्णन पर एकाग्र संस्कृत और प्राकृत-अपभ्रंश

में प्रचलित काव्य रूप हैं, जिनका इनमें क्षेत्रीय सांस्कृतिक ज़रूरतों के अनुसार सरलीकरण हुआ। ''अपभ्रंश में मंगलाचरण, काव्य लिखने का कारण, विषय वस्तु की महत्ता, कवि का विनम्रता प्रदर्शन, पूर्व कवियों की प्रशस्ति, नायक के देश और नगर का वर्णन करने प्रथा प्रचलित रही है। यह अपभ्रंश कवियों की निजी विशेषता थी, जिसे हिंदी काव्य ने भी अपनाया।''[38] चरित, गाथा, आख्यान आदि कथा-काव्य रूपों ने अपभ्रंश और परवर्ती देश भाषाओं में कई रूप धारण किए। अज्ञात कवि कृत *गोरा-बादल कवित* का काव्य रूप कथा बीजक काव्य रूप है। छप्पय (कवित्त) में होने के कारण इसको 'कवित्त' कहा गया है। डिंगल और राजस्थानी में इस तरह का काव्य रूप मिलता है। दयालदास कृत *राणारासो* और दलपति विजय कृत *खुम्माणरासो* 'रास-रासो' काव्य रूप में हैं। 'रास' जैन परंपरा और 'रासो' चारण काव्य परंपरा के लोकप्रिय काव्य रूप हैं। हेमरतन कृत *गोरा-बादल पदमिणी चउपई* और लब्धोदय कृत *गोरा-बादल चरित्र चौपाई* में कथा विस्तार के लिए चौपाई छंद का प्रयोग हुआ है, इसलिए इनको 'चउपई' या 'चौपाई' कहा गया है। दरअसल ये दोनों ही चरित काव्य रूप में हैं। *पदमिनीसमिओ* को 'समिओ' कहा गया, जो खंड या अध्याय का पर्याय है। यह रास-रासो का संक्षिप्त काव्य रूप प्रतीत होता है। *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा* वंश और ख्यात का मिलाजुला रूप है।'ख्यात' राजस्थानी भाषा का लोकप्रिय साहित्य रूप है, जो आख्यान का देशज रूपांतरण है। *चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा* अपनी तरह की अकेली वंश और ख्यात रचना है। जटमल नाहर कृत *गोरा-बादल कथा* भी दरअसल चरित काव्य रूप में है। चरित काव्य के लिए प्राकृत-अपभ्रंश और परवर्ती देश भाषाओं में 'कथा' या 'कहा' शब्द का प्रयोग चलन में रहा है। भाषा इन रचनाओं की सोलहवीं से लगाकर उन्नीसवीं सदी के विस्तार में बनने-बदलनेवाली उत्तरी-पश्चिमी भारत के कुछ क्षेत्रों में प्रयुक्त देशभाषा है, जिसमें प्राकृत-अपभंश और डिंगल की कई प्रवृत्तियाँ अवशेष रूप में मौजूद हैं। जैन रचनाओं में स्थानीय बोलियों का भी मुखर प्रभाव दिखता है। शब्दों में तत्सम, अर्धतत्सम और देशज के साथ फ़ारसी-अरबी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। छंदों का प्रयोग इनमें पारंपरिक है और इनका महत्त्व भी बहुत है। इनमें से कई रचनाओं के नामकरण उनमें प्रयुक्त प्रमुख छंद के आधार पर कवित्त, चउपई और चौपाई किए गए हैं। मध्यकाल में कथा के छंद चौपाई और दोहा थे, इसलिए इनमें इनका सबसे अधिक इस्तेमाल हुआ है। वस्तु वर्णन, ख़ासतौर पर युद्ध वर्णन के लिए छप्पय आदि छंद इस्तेमाल किए गए हैं। अलंकरण में अनुप्रासिकता इनके कवि स्वभाव में है। उपमा, उत्प्रेक्षा और उदाहरण अलंकारों का प्रयोग इनके यहाँ ख़ूब है। ऐसा लगता है जैसे इनका प्रयोग कर ये रचनाकार अपने कवि होना प्रमाणित कर रहे हैं। वस्तु वर्णन की गुंजाइश इन

सभी रचनाकारों ने निकाली है, क्योंकि रचनात्मकता के लिए जगह इसी में निकलती है। अवसर आने पर दुर्ग, नगर, ऋतु वर्णन इनके यहाँ है। युद्ध वर्णन इन सभी के यहाँ है। परंपरा आग्रही होने के कारण इन्होंने कथा रूढ़ियों और अभिप्रायों का प्रयोग आग्रहपूर्वक किया है। भोजन के स्वादहीन होने के कारण राजा की नाराज़गी और रानी के इस निमित्त पद्मिनी ले लाने के ताने की लोक प्रचलित कथा रूढ़ि इनमें से अधिकांश में है। लोक व्यवहार में ये सभी कुशल लगते हैं- अवसर आते ही मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग इनके कवि स्वभाव में शामिल है। यथावश्यकता इन्होंने शास्त्र और लोक के प्रसिद्ध कथन या कवि सूक्तियों को भी यथास्थान उद्धृत किया है।

संदर्भ और टिप्पणियाँ:

1. दशरथ शर्मा, "वाज ए पद्मिनी मीयर फिगमेंट ऑफ़ जायसीज़ इमेजिनेशन ?," *प्रोसिडिंग्ज़ ऑफ़ इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस,* खंड-24 (1961), 176-177.
2. ई.एच. कार, *इतिहास क्या है,* 'व्हाट इज हिस्ट्री' का हिंदी अनु. अशोक चक्रधर (दिल्ली: मैकमिलन, 1976, अंग्रेज़ी संस्करण 1961), 19.
3. एच.एम. इलियट, संपा., *हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया- एज टोल्ड बाइ इट्स ऑन हिस्टोरियन,* 1: 76-77.
4. पी. हार्डी, *हिस्टोरियन्स ऑफ़ मेडिईवल पीरियड* (लंदन: लुज़ाक एंड कंपनी लि. 1960), 92.
5. मार्क ब्लाख़, *इतिहास का शिल्प,* हिंदी अनुवाद बृजबिहारी पांडेय (दिल्ली: ग्रंथ शिल्पी, पुनर्मुद्रण 2013), 21.
6. डी.डी. कोसांबी, "वॉट कंसिस्ट्स इंडियन हिस्ट्री," *कोसांबी* (दिल्ली: ओक्सफ़ोर्ड युनिवर्सीटी प्रेस, 2009), 791.
7. रबींद्रनाथ टैगोर, *विजन ऑफ हिस्ट्री,* अनुवाद सिबेश भट्टाचार्य एवं सुमिता भट्टाचार्य (शिमला: इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडी, 2003), 29.
8. वही, 29.
9. हेमरतन, *गोरा-बादल पदमिणी चउपई,* संपा. उदयसिंह भटनागर (जोधपुर: राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, द्वितीय आवृत्ति 1997), 98.
10. लब्धोदय, *पद्मिनी चरित्र चौपई,* संपा. भँवरलाल नाहटा (बीकानेर: सादुल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, 1960), 1.
11. दलपति विजय कृत *खुम्माणरासो,* संपा. ब्रजमोहन जावलिया (उदयपुर: महाराणा प्रताप स्मारक समिति, 2001), 3: 177.
12. मैथ्यू केंपशाल, *रेटोरिक एंड राइटिंग हिस्ट्री,* 400-1500 (मैनचेस्टर: मैनचेस्टर युनिवर्सिटी प्रेस, 2011), 536-551 और ए. मोमीगिलिनो, संपा., *दि कनफ्लिक्ट्स बिटवीन पेगलनिज्म एंड*

क्रिश्चेनिटी इन दि फोर्थ सेंच्यूरी (ओक्सफ़ोर्ड, 1963), 77–99.

13. मार्क ब्लाख़, *इतिहास का शिल्प,* 21.

14. पी. हार्डी, *हिस्टोरियन्स ऑफ़ मेडिईवल इंडिया,* 122–131.

15. रवींद्रनाथ ठाकुर, *रवींद्रनाथ के निबंध,* हिंदी अनुवाद चंद्रकिरण राठी (नयी दिल्ली: साहित्य अकादेमी, 1996), 3: 58.

16. अरविंद शर्मा, ''*दि कांसेप्ट ऑफ़ साइक्लिकल टाइम इन हिंदुस्तान,*'' *टाइम इन इंडियन फिलोसोफ़ी- ए कलेक्शन ऑफ़ एसेज,* संपा. हरिशंकर प्रसाद (दिल्ली: श्रीसद्गुरु पब्लिकेशन्स 1992), 210.

17. अरविंद शर्मा, ''दि कांसेप्ट ऑफ़ साइक्लिकल टाइम इन हिंदुस्तान,'' 210.

18. अनंदिता एन. बाल्सलेव, ''टाइम एंड दि हिन्दू एक्सपीरियन्स,'' *रीलिजन एंड टाइम,* संपा. अनंदिता एन. बाल्सलेव एवं आर.एन. मोहंती (दिल्ली: लेडन, 1992), 177.

19. रवींद्रनाथ ठाकुर, *रवींद्रनाथ के निबंध,* 3: 62.

20. भगवद्दत्त, *भारतवर्ष का बृहत् इतिहास* (अजमेर: वैदिक यंत्रालय,1951), 3–17.

21. कृष्ण मोहन श्रीमाली, *धर्म, समाज और संस्कृति* (दिल्ली: ग्रंथ शिल्पी, 2005), 179.

22. शेल्डन पोलक की इस धारणा पर भारत में व्यापक और तीखी प्रतिक्रिया हुई। संस्कृत समर्थक विद्वानों ने संस्कृत के विस्थापन या रीप्लेसमेंट को ग़लत बताया है। पोलक ने किताब के परिचय में लिखा कि ''यह पुस्तक पूर्व-आधुनिक भारत में संस्कृति और शक्ति में परिवर्तन के दो महान क्षणों को समझने का एक प्रयास है। पहला क्षण ईस्वी की शुरुआत के आसपास आया, जब लंबे समय से धार्मिक व्यवहार तक सीमित एक पवित्र भाषा संस्कृत को साहित्यिक और राजनीतिक अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में पुनर्निर्मित किया गया था। इस विकास से एक अद्भुत यात्रा की शुरुआत हुई, जिसने अफ़गानिस्तान से जावा तक अधिकांश दक्षिणी एशिया में संस्कृत साहित्यिक संस्कृति को फैलाया। सत्ता का वह रूप जिसके लिए यह अर्ध-सार्वभौमिक, क्षितिज के छोर तक, ''हालाँकि ऐसी साम्राज्यवादी राजनीति वास्तविकता की तुलना में आदर्श के रूप में अधिक बार मौजूद थी। दूसरा क्षण दूसरी सहस्राब्दी की शुरुआत के आसपास तब आया, जब स्थानीय (vernacular) भाषा रूपों को साहित्यिक भाषाओं के रूप में नयी प्रतिष्ठा मिली, जिन्होंने संस्कृत को कविता और राजनीति, दोनों क्षेत्रों में चुनौती देना शुरू कर दिया और अंततः इसकी जगह ले ली।'' – शेल्डन पोलक, *दि लेंग्वेज ऑफ़ दि गोड्स इन वर्ल्ड ऑफ़ मेन* (दिल्ली: परमानेंट ब्लेक, 2006), 1.

23. शेल्डन पोलक, *दि लेंगवेज ऑफ़ गोड्स इन दि वर्ल्ड ऑफ़ मेन,* 393.

24. आदित्य बहल, ''मायावी मृगी: एक हिंदवी सूफ़ी प्रेमाख्यान में कामना और आख्यान (1503 ई.),'' *मध्यकालीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास,* संपा. मीनाक्षी खन्ना (हैदराबाद: ओरियंट ब्लेकस्वान, 2012), 186.

25. ''सोलहवीं शताब्दी के सूफ़ी आख्यान में जन्मी पद्मावती की कहानी का भारत के दूर-दूर के

खंड-2 | देशज ऐतिहासिक कथा-काव्य

विवेच्य रचनाओं का मूल और हिंदी कथा रूपांतर

अध्याय -1

अज्ञात कवि कृत 'गोरा-बादल कवित्त'

रचना समयः 1588 ई. पूर्व

गोरा-बादल कवित्त 82 छंदों की लघुकाय 'अज्ञात कर्तृक' रचना है, जो प्राचीन साहित्य के विद्वान् स्वर्गीय अगरचंद नाहटा के व्यक्तिगत संग्रह (*गोरा बादलरा कवित्त,* ग्रंथांक-7499, बीकानेरः अभय जैन ग्रंथ भंडार) में उपलब्ध है। *कवित्त* के कुछ छंदों को पद्मिनी-गोरा-बादल प्रकरण पर काव्य रचना करने वाले परवर्ती कवियों- हेमरतन (1588 ई.), लब्धोदय (1649 ई.) और दलपति विजय (1673-1712 ई.) ने अपनी रचनाओं में उद्धृत किया है। इस आधार पर कुछ विद्वानों ने इस रचना को जायसी की *पद्मावत* (1540 ई.) से पुरानी रचना माना है। इतिहासकार डॉ. दशरथ शर्मा के अनुसार ''भाषा और शैली की दृष्टि से यह रचना *पदमावत* से कुछ अर्वाचीन प्रतीत नहीं होती। गोरा-बादल विषयक अन्य रचनाओं में इसके अवतरण इसकी प्राचीनता के द्योतक हैं।'' कमोबेश यही बात विख्यात पुरातत्त्वविद मुनि जिनविजय ने भी कही है। उन्होंने हेमरतन के *गोरा-बादल पदमिणी चउपई* में उद्धृत प्राचीन कवित्तों के संबंध में लिखा है कि ''इस कथा के अनुसंधान में कुछ प्राचीन कवित्त उद्धृत किए हैं। वे इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं कि पद्मिनी विषयक कथा ज्ञापक, कवित्त आदि राजस्थान में प्राचीनकाल से प्रचलित थे।'' विद्वानों की यह धारण सही और युक्तिसंगत इस अर्थ में है कि यदि परवर्ती रचनाकारों ने इसे उद्धृत किया है, तो स्पष्ट है कि यह रचना अपने समय में लोकप्रिय रही होगी और इसकी रचना भी बहुत पहले, कम-से-कम जायसी की *पद्मावत* (1540 ई) से तो पहले ही हुई होगी। इस रचना में कोई पुष्पिका लेख नहीं है और रचनाकार ने बीच में कहीं अपना नामोल्लेख भी नहीं किया है। इस रचना में बीच में एक स्थान पर उल्लेख है कि *हेतमदान कवि मल्ल भंणि, उदधि कर माल पखालिय।* इस पंक्ति के आधार को बना कर कुछ विद्वान् 'कवि मल्ल' को इसका रचनाकार मानते हैं, जो ग़लत है, क्योंकि इस तरह का उल्लेख

हेमरतन कृत *गोरा-बादल पदमिणी चउपई* में भी मिलता है।

कवित्त की कथा योजना, भाषा और शैली से साफ़ लगता है कि यह चारण रचना है। इसमें कवित्त, दूहा, कुंडलियाँ आदि छंदों का प्रयोग हुआ है और इसकी भाषा पंद्रहवीं-सोलहवीं सदी में चारणों द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली भाषा है। *कवित्त* की कथा बहुत सीधी और सरल है- इसकी कथा योजना के मोड़-पड़ाव बहुत विस्तृत और जटिल नहीं हैं। परवर्ती रचनाओं में इनका विस्तार और पल्लवन हुआ है- इसकी कथा के मोड़-पड़ाव कमोबेश परवर्ती सभी रचनाओं में मिलते हैं।

'गोरा-बादल कवित्त' मूल

गज बदन गणपति नमूं, माहा माय बुधि देय।
गुण गूंथूं गोरल का, जस बादल जंपेय॥1॥
चहुआंणां कुलि ऊपना, गोरउ अरु गाजन्न।
चित्रकोटि गढ उदया, राउ रत्नसेन मनि रंग॥2॥
सउहड सिरोमणि निर्म्मयउ, गाजन सूअ बादल्ल।
वरस वीस त्रणि अग्गलउ, भड सूरतांणा सल्ल॥3॥
दल असंख जिणी गंजीया, असपति मोड्या मांण।
राखी सरण पद्मावती, बंध छोडायउ रांण॥4॥
काका भत्रीजा बिहुँ, गोरउ अरू बादल्ल।
पद्मनी काजि भारथ कीउ, हडमत जिम सर मल्ल॥5॥
सोहड सुभट बादल करी, असी न करसीं कोय।
सोहड़ा सोह चढावीय, गोरा बादल दोय॥6॥
गढ डीली अलावदीय; चित्रकोट गहलउत।
पद्मणि कारिज साधीयउ, कहसू तेह चरित्र॥ 7॥

कवित्त

चित्रकोट कैलास, दास वसुधा विख्यातह,
रत्नसेन गहलोत, राय तिहा राज करंतह।
तुरीय सहइस पंचास, दोय सइं महगल मंता,
राजकुली छत्तीस, सोहड भड सेव करंता।
प्रधान लोक विवहारीया, राजलोक सहुअै सुखी,
च्यार वरण गढ महि वसइ, जती मुनी नहीं कोय दुखी॥8॥
एक दिवस गहलउत, राय बइठउ भूंजाई,
सतर भख्य भोजन्न, मूंधि हस कर लेइ आइ।

के खारा के मीठ, केइ कछु स्वाद न आवइ,
तब पटरानी कह्यउ, बेग पद्मनी क्यों न लावइ।
धरि मछर संघलि सांचर्‌यउ, नेव जीत कन्या वरी,
पद्मनी ज आंणि पयज करि, राय रत्नसेन अइसी करी॥9॥
विप्र एक परदेस थी, फिरत आयउ तिण ठायह,
सभा मंझि जब गयउ, नयण पेख्यउ तव रायह।
फल कीधो तिण भेटि, वयण आसीस पयासइ,
विद्यावाद विनोद, वांणि अमृत गुण भासइ।
राघव सभा जब रिंजवी, तब राजिन मन भाइयो,
हुउ पसाव कीन्ही मया, आपस पास रहावीउ॥10॥
रत्नसेन राघव, रमति कारणि एक ठायह,
जीतो दांण तिहा राव, दांण मंगीउ सूभायह।
चढ्‌यो विप्र तव कोप, राय मनि मछर कीउ,
छंड्‌यो ए अस्थान, देव देसउटउ दीउ।
उचरइ विप्र ऐरिसह वयण, राउ एक प्रतिज्ञा हूँ करू,
पइहराउं लोह तुझ पय कमल, तब चित्रकोट बोहड फिरूं॥11॥
चित्रकोट तब छंडि चित्त एह वयण विचार्‌यउ,
करवि होम आउध, सबद अइसउ संभार्‌यउ।
वीस भवन महसांण, मंत्र योगिनी आराधी,
कहो नइ देव कुण काज, आज ए विद्या साधी।
उचरइ विप्र स्वामिनसूणि, एह भेद मुझ अपीइ,
आगम निगम सहुइ लहूँ, तउ वाचा दे थर थपीइ॥12॥
तव तूठी योगिनी, हुई प्रसिद्धि प्रसनी,
ब्रह्म रुद्र करि वाच, वाच निश्चल करि दीन्ही।
जिहां हकारइ मोहि, तोहि साचउ करि जांणइ,
आदि अन्त उतपत्ति, विपति तौ सहु पीछानइ।
आस्थान आप जोगिन हुइ, विप्र पंथ आश्रम कर्‌यउ,
आणंद अंग ऊलट घणइ, तव डीली गढ संचर्‌यउ॥13॥
वचन कला उतपन, पवन छतीस मिल्या तिहां,
राय रांणा मंडलीक, खांन ऊंबरे खडे तिहाँ।
मन संकेत पूरवइ, जेह कछु मन माहि इछइ,
जे धन कारन धाय, आय विप्रन कूं पूछइ।

बात सुनी सुलतान एह, बे बजीर सचा कहउ,
दरवेश बेस अलावदी आय पउहंतउ विप्र पोह॥14॥
कहइ न बात कछु अबही, कबही कर द्रव्य मिलिही मुझ,
कहइ न बात जनारदार, मइ सबद सुनीय तुझ।
काल कोस फकीर, तीर सायर फिरि आवहि,
निखुता नाहि निलाट, लख्या नहीं कोरी पावहि।
तब कोप कलंदर कहइ, क्या किताब दुनिया दीया,
संक्यउ स विप्र संसहि पड्यउ, एह योगनि तइं क्या कीया॥15॥
तब योगिन मन धरीय, करीय सेवा मइ कच्चीय,
वचन सौध नवि लहूं, वाच नह पालइ सच्चीय।
वचन शुद्धि तउ लहइ, भक्ष जउ मोरउ जांणइ,
वेगि जाउ दरवेस कहुं जउ मंखण आंणइ
इहां राति किहां मंखण लहुं, तब घीउ लेउ करि संचर्यउ
अल्लावदीन सुरतांण को, सीस छत्र तुझ सिरि धर्यउ॥16॥
तब कोप किलंदर कहइ, क्या तुफाना उठायउ
तू बोलइ सब झूठ, राज मुझ पईं किहां आयउं
एह बात सुणइं सुरताण, करइ टुकटुक तन मेरा
करइ नहिं कछु विलंब, अउर सिरि कट्टइ तेरा।
उच्चरइ विप्र दरवेस सुं, अलख लिख्या सो पइं कहुं,
जउ सीस छत्र तुझ कउं मिलइ, क्या इंनाम हुं भालहूं॥17॥
तब खुसी भयउ दरबेस, कर्म करतार करहि जब
तोहि हइ गइ पाइक, करइ तसलीम तोहि सब
तखत तलइ मेरइ तुं ही, तुं हि दिल्लीवइ जांणू
कहे तुहि सब साच अउरका कह्या न मांनु
अल्लावदीन सुरताण की, सीस छत्र काइम रहइ,
दरवेस वेस कहि विप्र सुणि, तुहि मुं हि मागइ सोभी लहइ॥18॥
फेरि वेस सुरताण, तांम निज मंदिर आयउ,।
ऊग्यउ सूर परभात, तबही बंभण बुलायउ॥
सभा मध्य जब गयो, चित योगिणि समरंतउ,
छत्र सिंघासण सहित, साह नयणे निरखंतउ।
संक्यउ सु विप्र असपति सहित, निसचरिज रयणी फिर्यउ।
मंगइ सु मंगि असपति कहइ, वाचा मोहि ऊरण करउ॥19॥

दूहा

तब सुरतांण निवाजीयु, राघव बहुत उछाह,
जे मनि चीतइ सोइ करइ, वसि कीधउ पतिसाह॥20॥
मल्ल भाट सुरतांण पय, आयउ मंगण कज्जि।
मुहुल तलइ जइ द्वा करइ जिहां खडे असपति सज्जि॥21॥

कवित्त

एक छत्र जिण प्रथीय, धरीय निश्चल धरणि परि,
आण किद्ध नव खंड, अदल किद्धउ दुनि भिंतरि।
अनिल नलणि विभाड, उद्धि कर माल पखालिय,
अंतेवर रही रंभ, रूप रंभा सुर टालीय।
हेतम दांन कवि मल्ल भंणि उदधि खंध वे बखत गुनि,
दीठउ न कोई रवि चक्र तलि, अल्लावदीन सुरतांन धनि॥22॥
मम पढि भट्ट कवित, बुद्धि खोजुं देइ पूरउ,
सुख सवाद करि रोस, सिद्धहर मजलगि सूरउ।
किहां सुणी पदमिनी सेसधर अंती सोहइ,
सुरनर गुण गंध्रव, देखि मुनिवर मन मोहइ।
सुंखिनी सबे सुरतांण घरि, कोप हूउ बेजन कसइ,
लावत मारि खोजा निसुणि, पतिसाह मुरके हसइ॥23॥

दूहा

बंदण प्रतइ अलावदी, कहि सु वयण विचार।
कटारी सहिनांण लइ, राघव वेग हकारि॥24॥

कुण्डलीयउ

आलिमसाह अलावदी, पूछइ व्यास प्रभात।
सयल परीक्षा तुं करइ, स्त्री की केती जाति॥25॥
स्त्री की केती जाति, कहि न राघव सुविचारी,
रूपवंत पतिव्रता, मूंध सोहइ सुपियारी।
हस्तनी चित्रणी कर संखिनी, पुहवी बड़ी पदमावती,
इम भणइ विप्र साचउ वयण, आलमसाह अलावदी॥26॥

कवित्त

इम जंपइ सुरतांण, सुनि बे राघव इक बातह,
जाति च्यार की नारि, केम जांणीइ सुचित्तह।
गंध रूप सदभाव, केस गति नयण निरत्ती,

वयण घांणि दसु अंग, कहु किशि तखत किसि भंती।
हस्तिनी चित्रणी कइ संखिनी जाति तीन दीसइ घणी,
पातसाह अरदास सुणि, दुनी पियारी पदमिनी ॥27॥

दूहा

राघव वयण इम ऊच्चरइ, सांभल साह नरेस।
त्रीया लखणे वूझीयइ, कोक तंणइ उपदेस॥ ॥28॥

सलोक

पद्मिनो पद्म गंधाच, अगर गंधाच चित्रणी।
हस्तिनी मद्य गंधाच, खार गंधाच संखिनी ॥29॥
पद्मिनी पुष्फ राचंति, वस्त्र राचंति चित्रणी।
हस्तिनी प्रेम राचंति, कलह राचंति संखिनी ॥30॥

कवित्त

गहिर महिर अलावदीन, राघव हकारीय,
नयण नारि निरखेवि, देखीइ हरम हमारीय।
हंसगमण गजचलणि, साहिजादी अनुरत्ती,
सुरत्ति सुर नर, स्त्रीया पेखि हस्तीनी,
चित्रणी क संखिनी क, किती साह घरि पदमिनी ॥31॥
साह आलिम एक वयण, विप्र उच्चरइ सुमिट्ठउ,
लोयण ते हेतम कीय, जेणि परि रमणि मुह दिठ्ठउ।
कहइ एम सुरतांण, कहु कइसी परि किज्जइ,
काच कुंभ भरि तेल, मुहुल मांही रास रचिज्जइ।
इक संग रंग ठाढी रहइ, सजे सिणगार सवि कामिनी,
प्रतिबिंब निरखि राघव कहइ, सो कहुं साह घरि पदमिनी ॥32॥
पातिसाह राघव, आय तिण ठामि बइटा,
काच कुंभ ढालेइ, भरीय जस तेल गरिठा
सजे सिंणगार सवि कामिनी, भूयण सिरि छज्जइ ठढी,
के स्यांमा के गोर, केह गुण गाहा पढी।
निरखंति वयण भुय मज्झि नव, एह वात चित्तह गुणी,
दोइ जाति नारि दीसइ घणी, सु नही साह घरि पदमिनी ॥33॥
रोस भयु सुरतांण, खांन अर पान न भावइ,
बेला इत मारि लबार, वेग पदमिणी दिखलावहि।
ले किताब कर धारि, करइ बंदिन वीनत्तीय,

संघलदीप समुद्र, अछइ पदमिण बहु भत्तीय।
हुसीयार होइ अरदास करि, एक अधू पेखइ जिहां,
संभली समुद्र संराइ पड्यउ, कोइ खुदीय खुते तिहां॥34॥
असपति कीयउ आरम्भ सु दिन साधीयउ दखिण धर,
पातिसाह कोपीयउ, कुंण छुट्टइ संघल नर।
दल गोरी पतिसाह, जुडइ संग्राम सुहुड भड़,
नव लख त्रिगुण तुरंग, चउद सहस मइंगल घड।
सूर्ज खेह लोपवि गयउ, पातालइं दासग दुड्यउ,
चिहु चक्करायसांसइ पड्या, पातिसाह किसपरि चड्यउ॥35॥
चड्यउ चंचल सुरताण, खेडि दख्यण तटि आयउ,
सेन सहू उत्तरी, तिबही बंभण बोलायउ।
चेतकरी चेतन्द, एम जंपइ खूंदालम,
मइं कताब तोही दीयउ, भयु सु दुनीयां मालग।
असपति कहइ चेतन सुनि, अब वेगई संघल संचरउ,
जिसी भांति पदमिनी पर चढइ, सोइज मित्र चित्तह धरउ॥36॥
पातिसाह राघव, आय ऊभा तटि साइर,
करउ मंत्र चेतन्न, कटक लंघीइ रिणायर।
सुणि आलम वीनती, नीर कउ अंत न जाणउ,
संघलदीप पदमिनी, घरहि घर अधिक वखाणउं।
भंजउ सु कोट असपति कहइ, देखि दाउ तिसकुँ दिउ,
ग्रहे खग्ग सीस राजा हणउ, पकडि प्राह पदमिणि लिउ॥37॥
हठि चड्यउ सुरताण, खंणवि धरणि तलि पिल्लउं,
वेगि ल्यावि पदमिणी, सेन सवि साइर घल्लउ।
मिलि बइठा मंत्री, कहां हम पदमिणी पावइ,
बे बंभण तू कूड, झूठ वातइं इहां ल्यावइ।
राघव कहइ तुम्ह मति डरउ, हुं करउं मंत्र मनि भाईयउ,
सुलताण ताम समझाइ करि, बाहुडि डिल्ली लाईयउ॥38॥
सलहिदार हथियार, लेइ आगइ अवधारीय,
संभाले सवि सेल, मांहि भेजे चिति धारीय।
बीबी तब पूछीयउ, साह पदमिणि किहीं आंणी,
च्यारि त्रीया घरि नहीं, किसी तिस की सुरतांणी।
खुणसि भई सुरताण मनि, तब अंदेसा किधा बहु,

संघल दल जे पठया हई, बे राघव पद्मिणि कहु॥39॥
तब राघव चिंतवइ, वयर पाछिलउ संभार्यउ,
कहुँ जिहां पदमिनी, साह जु चिंतइ धारउ।
गढ चितोड हिंदुआंण, रांण गहिलोत भणिज्जइ,
रत्नसेन घरि नारि, नारि सिंघली सुणिजइ।
उचरइ विप्र एरिस वयण, लोग त्रिण्हि जीता तिरी,
इसी नहीं रविचक्र तलि, मई नव खंड देख्या फिरी॥40॥
लाख तूल पल्लिंग, सउडि पिणि लख मिलइ तस,
अंतह पुड सइ पंच, अवर गिंदूया सहस जस।
तसु ऊपरि ओछाड, रंग बहु मूलइं लीधा,
अगर कपूर कुमकुमा, कुसम चंदन पुट दीधा।
अलावदीन सुरतांण सुणि, चेतन मुख सचउ चवइ,
पदमिणी नारि सिंणगार करि, राय रत्नसेन सेजइ रमइ॥41॥
पलांण्यउ अलावदीन, जल थल अकुलांणा,
राय रांणा खलभल्या, पड्या दह दिसि भंगाणा।
हय गय रथ पायक, सेन काई अंत न पावइ,
जे मोटा गढपती, तेह पणि सेवा आवइ।
तव कोप करवि वल मुंछ धरि, कहइ साह विग्रह कर,
मारउ देस हीदुआंण कुं, त्रीया एक जीवत धरउ॥42॥
बंकउ गढ चित्रकोट, सकति सुरताण न लिज्जइ,
ऊठि आई मुसाफ, बोल जस राय पतिज्जइ।
डंड डोर नवि दिउं, देस पुर गांम न गाहूँ,
नांही गढ सु काज, राजकुंअरी न व्याहुं।
राघव कहइ असपति सुणि, कहि राजा मारिन आहुडउ,
रत्नसेन मुझकु मिलइ, तउ नाक नमिणि करि बाहुडउं॥43॥

कुंडलीउ

दल सझवे, सुरतांण, आय चित्रकोट विलिज्जइ,
भेजउ देगि विसेट, बात मिलणे की कीजइ।
दीजइ कर की वाच, जेम गहिलोत पतीजइ,
हम तम विचइं खुदाइ हइ, लेइ मुसाफ आदइ धरउ,
चितोड देखि वेगई फिरउं, वाचा देइ थप्यउं खरउ॥44॥

दूहा

वेग विसेट चलाइयउ, पुहतउ गढह मझार।

सभा सहित राय भेटीयउ, बोलइ वयण-विचार ॥45 ॥

कवित्त

वात करी तब मिठ, राय तस वयण वेगई,
जिण परि कही विसेट, सोइ परि राजा किन्हउ।
राजकुली छत्रीस, सहूति सभा भणिजइ,
असपति आवणु काउ, कहु किणपरि बुधि कीजइ।
मिली प्रधान इंम चीतवइ, सेन सहु दुरिहिं पुलइ,
जण वीस सहित आवइ ईहां, तु पतिसाह रांणा मिलइ ॥46 ॥
दिधी पोलि चिटकाइ, डर्‌या गढ तुरक नभाया,
गोरी गोधउ मंड, साथि लसकरह सवाया।
अब तु मेलु भयो, राय जिमणार कराया,
त्रीस सहस मेली गया, साथ लसकरह सवाया।
खांणाज खाइ जव उठीया, पकड़ि बांह राजा लीया,
वात ज करत लंघीय पोली, तब रतनसेन काठा कीया ॥47 ॥
कीयो कूड सुरताण, सांमि मोरउ ग्रहि बंध्यउ,
पदमणि द्यु तु जाउ, काजि कारणह समंधउ।
भलो न कीयो किरतार, केम गहिलोत बंधीजइ,
कीयो मंत्र मंत्रीयां, राय राखवि त्रिय दीजइ।
तदिन जीभ खंडवि मरउं, योगिणीपुर नवि दिखसउं,
पदमिणी नारि इंम उचरइ, अब कह सरणागति पइठिसिउ ॥48 ॥
दुख भरी पदमिणी एम परिपंच विचारइ,
कोई संसारि समरथ, सूर मोहि सरणि उवारइ।
जे गढ मांही रावत, तेह सवि हीणुं भाखइ,
इसउ न देखुं कोइ, मोहि सरणागति राखइ।
उचरइ नारि विलखी हूई, सरण एक हरि संभरउं,
पणि राजलोक मांहि चंदन रचे, सखी वेगि जमहर करउं ॥49 ॥
सखी एक कहुं तोहि, मोहि जउ वयण पतिज्जइ,
मनावउ गोरल्ल, दुख सहु तास कहीजइ।
वरस पंच तस विखउ, राउ सु कुरखे चलइ,
ग्रांम ग्रास नवि लीइ, कुंण गुण मोहि उथलइ।
सुणि राउत्त कुलवट्ट तस, जिण सिर सूंप्यउ परकज सउं।
पदमिणी नारि इंम उचरइ, तु बादल सरणि पइठसिउं ॥50 ॥

चडे संघासण तांम, करह करि कमल उघार्यउ,
जीहां गोरउ वादल, पाउ पदमिणी तांहां धार्यउ।
गंग उलटी पचिम प्रवाह, भणइ इंम गोरउ रावत्तह,
ए तुम्ह कु बूझीइ, देत आइस हम आवत्तह।
पदमिणी नारि इंम उचरइ, तुम्ह लगइ कीजंति बल,
कर ऊभु करइ ज सांमि कज, करउ कित्त जिम हुइ कलि॥51॥
तुं ही रावत्त गोरल्ल, तुहीज दल मांही वडउ,
तुं ही रावत्त गोरल्ल, तुहीज मोरउ भाईडउ।
तुं ही रावत्त गोरल्ल, तुहीज दल वडउ छजइ,
तुं ही रावत्त गोरल्ल, तु ही देखवि राय गज्जइ।
सुणि गोरल्ल पदमिणि कह्इ, मोहि दासी करि सुरतांण दइ,
कइ अल्लावदीन सुखग धरि, कैराउ रत्नसेन छोडावि लइ॥॥52॥
सुहुड सुभट गोरल्ल, तांम गहगह्यउ सुचित्तह,
दल भंजउ सुरताण, नाम तु थु रावत्तह।
सांमि कजि अणसरउं, नारि पदमिणी उवेलउं,
गढ राखउं भुज प्रांणि, मारि असुरां दल पिल्हउ।
कहइ गोरल्ल सुणि सांमिनी, जाउ तुम्हे गाजन्न घरि,
अवतार पुरूष विधना रच्यो, सु बीड़उ द्यु वादल करि॥53॥
लीन्ह पांन बादल्ल, रयण हूँ ते गढ भींतरि।
सत्ति तुम्हारइ साहस्स, साह भंजउ खिंण अंतरि।
दोइ कुल भेटउं लाज, तु नाम बादल्ल कहा।
गोरी दल विन्नउं कूटि करि बांधव ल्याउं।
जिम राम कज्ज हनुमंत करि, महिरावण बंध्यउ तिखिणि।
काटउ ज बंध राउ रत्न के, तु साहस भंजउ साह हणि॥54॥
चाड कूड विन्नयउ, मंत्री कउ मंत्र भुलांणउ,
रतनसेन बंधेवि लीय, गढह चिहुं दिसि अहिरांणउ।
कायर झंखइ आल, रांणी दे राजा लिज्जइ,
अल्लावदीन सुरताण संउ, केम करि खग्ग धरिज्जइ।
इम कहइ चाड रावत सुणि, हीइ मंत्रि निचल धरउ।
गढ रहइ राउ छट्टइ सही, त्रीया देई इतउ करउ॥55॥
वयण सुणी रावत्त, रोस करि खरा रीसाणा।
दोय चडीया अति कोप, दोय अति चतुर सयांणा।

रिण मांही अणुसरया, सीस बड समुहा वंछी।
मोल मुंहुंगा लहइ, चडइ कुंजर सिर तछी।
गोरउ गरिष्ट बादल विषम, दोय साहस समुहा सर्या।
फुट्टउ सु हीयो जिह्वा गलउ, जिणि पदमिणि देणा कर्‌या॥56॥
आवि माइ तिणि ठाय, पासि वादल इंम ठढीय,
तोहि विण पुत्र निरास, तुह चल्यु झुझण कसीय।
नयण मोरउ बादल्ल, वयण बादल्ल भणावीय,
प्रांण मोरउ बादल्ल, वार वारई समझावीय।
आवती माय अब पेखि करि, उठि बादल्ल प्रणाम कीय,
बालक पुत्र जगि जगि जयो, किणई कुमित्र कुमत दीय॥57॥
हुँ कित बालउ माय, धाइ अंचल नहि लगउं,
हुँ कित बालउ माय, रोय भोजन नहीं मग्गउं।
हुँ कित बालउ माय, धूरि धूसर नहीं लिट्टउं,
हुं कित बालउ माय, जाइ पालणइ न घुटउं।
बालउ ज माय मुझ क्युं कह्यउ, अवर राय रखउं जीउ,
सुलतांण सेन विनहउं नही, तब रे माय फुट्टइ हीउ॥58॥
रे बाले वादल्ल, मनह अपणइ न बुझिसि,
रे बाले बादल्ल, केम करि सांम्हु झुझिसि।
गढ वीट्यउ सब ठाय, असुर दल देखउं भारी,
तु नांन्हु बादल्ल, केम करि खग्ग संभारी।
इंम कहइ माय बादल्ल सुणि, वयण एक मोहि चिंत धरि,
सांहण समुद्र सुलतांण का, कुण सुवछ अंगभिसि भर॥59॥
हुँ कित बालउ माय, गहि वि गयन्दतउ खेलउँ,
हुँ कित बालउ माय, सेसफण विमुहा पिल्हउं।
बालउ वासिग कान्ह, नाथि आणीयु भुजा बलि,
बलि चाप्यु धर पीठ, वेणि दिधउ स्वामी छल।
बाली बाला पउरस घण, दुरजोधन बंधवि लीयु,
बादल्ल गयंद इंम उचरइ, तव सुणवि माय पिछित कीउ॥60॥
माय जाय पठवी, वेग तिही नारिज आई,
कुच कठोर कटि झीण, रूप जण रंभ सवाई।
कोककला कामिनी, पेखि त्रिभुवन मन मोहइ,
प्रेम प्रीति अग्गली, अंगि लक्षण जस सोहइ।

बादल देखी जब आवती, तब सुचित विसमु भयु,
लालच्च नारि निरखं हवइ, तु मोहि सूर साहस गयो ॥61 ॥
तव कमलिणि विस तरंग, नयण सू नयण न मेलिग,
वयण वयण न हु मिली, अहर सुअहर न पिल्हिग।
अति भुज पवन प्रचंड, कठिण कुच कमल न भिडिग,
रहिसेन फरसेग अंग, त्रीय घाए नह पिठिग।
सुख सेजन मांणी तनउं, कंता बाले फल कीय हुय,
संग्रांम सांमि किम झुझस्यउ, कहुन कुमर गाजन सुय ॥62 ॥
लोअण तेह खिसि पडउ, केय पर त्रीय उल्हासी,
चरण तेह गलि जाउ, जेण रिण पाछा नासी।
हीयो तेह फुटीयो, जेण मन कीयो दुमंन्नउ,
श्रवण तेह सधीइ, जेण हरि सुण्यउ विमंन्नउ।
बादल्ल कहइ रे नारि सुणि, असुर सेन त्रिणवडि गिणउ,
नीपजे न सरवर सेन, जु न साह सनमुखि हणउं ॥63 ॥

कुंडलीया

कंता झुझिसि कवण परि, किम करवाल ग्रहंति,
पेखि सांगि अणी अग्गला, किम करवर झालंति ॥64 ॥
किम करवर झांलति, कुंत अणी अग्गल फुटइ,
खग्ग ताड वाजंति, सुहुड़ अधो धड़ तुट्टइ।
जु प्रीय कायर होय, पेखि गय जूह गजंता,
तु मोहि आवइ लज्ज, जु तु रिणि भजिसि कंता ॥65 ॥
हय सू हय नरदलउं, हस्ती सू हस्ति पछाड़उं,
कुंतकार सुं कुंत, खग्ग ससुं खग्ग विभाडउं।
छत्र छत्र छिनि छिनि, चमर आडंबर तोडउं,
तु जायु गाजन्न, साह समहरि चडि मोडउं।
वादल्ल कहइ रे नारि सुणि, तव ही तुझ सेजई सरउं,
चीतोडि रांण पदमावती, हूं बादल एकत करउं ॥66 ॥
सुणि स्वामी वीनती, कयण एक कहुँ सु मिठउ,
मो सिरि चडइ कलंक, बांह कंकण नहि छुट्टउ।
पूरि आस पदमिणी, मोहि निरासी किज्जइ,
आप हांणि घरि होइ, अवर कारणि जीउ दिजइ।
इंम कहइ नारि कंता निसुणि, सेन सहुय एकंत हुअ,

गोरल्ल पुठि समहर चडइ, रहु न कुंअर गाजन्न सुय॥67॥
अथग पवन जु रहइ, वहइ गंगा पच्छिम मुह,
मेर टलइ मरजाद, जाइ नवखण्ड रसातल हुअ।
सेस भारजु तजइ, चलइ रवि चन्द दखिण धर,
सुर असुर सहू टलइ, संक नह धरइ अप्पसर।
एतला बोल जउ सहू हुइ, हूँ वयण सच्चउ कर,
बादल्ल गयंद इंमं उचरइ, तुहि न नारि पाछउ सरऊं॥68॥
गोरउ अर बादल्ल, आय दोय सभा बयठा,
जे गढ मांही रावत, तेहउ सहू मिल्या एकठा।
करउ मंत्र विचार, बुधि छल भेद करीजइ,
देणी कहु पदमिनी, जेम सुरताण पतीजइ।
डोली कीजइ पंचसई, सुहड सवे सन्नाहीइ,
एकेक डोली आठ आठ जण, इंम परिपंच रचाईइ॥69॥
रची एम परिपंच, वेगि तब दूत चलायो,
खबरि करउ सुरताण, हुँ तु पदमिणी पठायो।
जे दासी अंगरक्ख, हरम सवि डोलइ घल्लउं,
हीर चीर सोवन्न, लेई तुम्ह साथे चल्लउं।
इम कहइ नारि पदमावती, पातिसाह अरदास सुणि,
जिस घड़ीय राय छुट्टइ सही, हुँ न रहुँ ईहां एक खिणि॥70॥
तब खुशी भयउ सुरतांण, वेगि फुरमांण चलायउ,
सुणि गोरे वादल्ल, साथि करि पदमणि ल्याउ।
जे तुम्ह कहउ सोई करउ, राउ की बेरी कट्टउं,
बाद गस्त हूं करउ, ईहां रहि नीर न घुट्टउं।
पहिराइ राइ तेजी दिउ, बोल बंध दे पठवउ,
इंम कहइ साह बादल सुणि, तोहि निवाजि दुनिया दिउं॥71॥
कीयउ कूड बादल्ल, आय डोले संपत्तउ,
तस माहिं रख्यउ बालः, नाम पदमिणी कहतउ।
हूउ हरख सुरतांण, जब ही आवत सुणी नारी,
गोरी तब पूछीउ, बोल बोलीयउ विचारी।
अल्लावदीन सुरतांण सुणि, एक वात मेरी सांभलउ,
पदमिणी नारि इंम ऊचर्‌यउ, एक वार राजा मिलउं॥72॥
वादल्ल तिहां पठ्यु, राय जिहां बंधन बंधीय,

नाहीय राय पय कमल, काज अप्पणउ इंम किधीय।
हउ कोप राजांन, वइर तई साध्यउ वयरीय,
रे रे कुबुद्धीय कुड, नारि किम आंणी मोरीय।
बादल्ल ताम इम उच्चरइ, खिमा करउ स्वामी सही,
मई बालक रूप पदमिणि करी, राउ नारि निश्चइ नही॥73॥
बादल्ल तब लेइ चल्यउ, राउ चकडोल सरसीय,
खगधारी सनमुख, भड्यउ सुरतांण सरसीय।
करी पारसी मुगल्ल, हींदूसब कूड कमाया,
लंकामणि उद्धर्यउ, अतुल बल सेन सवाया।
मारि मारि करि ऊठीया, बादल तिहां संमुह सस्यउ,
जब लगइ झूझि दल पति हूउ, तब लग हइंवर पखर्यउ॥74॥
हुई हाक दल माहि, भई कलकली बूंबारव,
गय गुडिय हय पखरिय, सुहड सन्नाह करइ तब।
एको सिर त्रूटंति, एक धड़ धरिणी लुट्टइ,
खग्ग ताल वाजंति, वांण सींगणि गुण छुट्टइ।
इम भग्यउ सेन असपति सरस, पातिसाह विलखउ भयउ,
गोरइ गयंद दल कुट्टायो, बादल्ल राउ तब लेई गयउ॥75॥
करी पइज बादल्ल, नारि ऊगारी बलहि छल,
मंनि संक्यउ सुरताण कज्ज करि आयउ भुजा बलि।
असपति मोडउ माण, सांमि आपणउ उवेल्यउ,
भंजे गय घण घट्ट, मीर मुगलां सत मेल्ह्यउ।
इंम सुणवि माइ आणंद कीय, पुत्त परदल भंजीयउ,
उवरी वात बादल्ल की, सो पदमणी कंत उवेलीउ ॥76॥

कुंडलीया

गोरल्ल त्रीया इंम कहइ, सुणि बादल तोहि सत्ति,
मो प्रीउ रिण माहि झूझीयउ, कहि किम वाह्या हत्थ॥77॥
कहि किम वाह्या हाथ, वत्थ वइ सुहड़ पाछाडीय,
भंजी गय घण थट्ट, पाव देसीस विभाडीय।
हय गय रथ पायक, मारि घल्लीयउ घोरिल्लं,
वेग माइ सत्ति चड़उ, एम रिण पड्यउ गोरिल्लं॥78॥
कहिं धड़ कहिं सिरि कहीं कमंध, कहिक पंजरही पडीउ,
कहीं कर कहीं करमाल कहिं कहि मरवि छुडीयउ।

कहीं एकावली हार, कहिक धरणी धंधोलिय,
कहीं जम्बुक किहीं अंत मंस गिरधण विछोडीय।
गढ छल त्रीय छल सांमि छल, निहुँ छल भिड्यउ सुकवि कहइ,
गोरल्ल सूर भेटण चली, सु खिण एक रवि रथ खंचे रहइ ॥79॥
जे सिर पड्यउ धर पिट्ठ, धरा देई इंद्र पठायउ,
इंद्र हथ थल स्यु, सोइ सिरि ग्रिधिण उठायउ।
गिरिधण कर छुटेवि, पड्यउ गंगाजल मज्जं,
गंगाजल उत्तंग, हुओ अमृत सिरि छज्ज।
इंम अंमीय गाह नयण चंदण चूउ, तब कंदल मंड्यउ घणउ,
गलि रुंडमाल गुथेवि लीय, तो सर सिद्धि गोरल तणउ ॥80॥
जे बादल्ल जंपंति, विरद बादल अरि गंजण,
संकडि स्वामि सन्नाह, असुर भारथ अरि गंजण।
कीयउ जुद्ध सुरतांण हण्या हसती मय मत्तह,
आयउ मोरउ कंत, तहिज दिद्धउ अहि वातह।
पदमिणी नारि इंम उचरइ, तोहि धन्य धन्य अवतार हूअ,
आरती उतारउ हो वर तुरिणि, जे वादल्ल जपंति तूअ ॥81॥
अचल कीति श्री राम, अचल हनुमन्त पवन सुअ,
अचल कीर्ति हरिचंद, अचल वेली पुहवी हुअ।
अचल कीर्ति पांडवां, जेण कइरव दल खंडीय,
अचल कीर्ति अहिवन्न, जेणि चकावहु मंडीय।
विक्रम कीर्ति जिम अचल हूअ, भोज अचल जुग जांणीइ,
तिम अचल कीर्ति गोरल तूय, वादल कीर्ति वखांणीयइ ॥82॥
॥इति श्री गोरा बादल कवित्त सम्पूर्ण॥

'गोरा-बादल कवित्त' हिंदी कथा रूपांतर

बुद्धि प्रदान करने वाले गणेश को नमन कर मैं गोरा के गुण और बादल के यश का वर्णन करता हूँ। राजा रत्नसेन के मन को प्रसन्न करने वाले चौहान कुल में उत्पन्न गोरा और बादल का उदय चित्तौड़गढ़ में हुआ। योद्धाओं में शिरोमणि गाज्जन के पुत्र तेईस वर्ष की उम्र के बादल ने आगे रहकर वीर सुल्तान पर प्रहार किया। उसने असंख्य दल नष्ट किए, बादशाह को मान विहीन किया, पद्मावती की रक्षा की और राजा को बंधन से छुड़ाया। हनुमान की तरह दायित्व अपने सिर पर लेकर काका और भतीजे, गोरा और बादल ने पद्मिनी के लिए युद्ध किया। बादल ने जैसा किया

वैसा और कोई नहीं करेगा। गोरा और बादल, दोनों ने वीरों का उत्साह बढ़ा दिया। दिल्ली में अलाउद्दीन और चित्तौड़गढ़ में गहलोत रत्नसेन हैं। मैं पद्मिनी का कार्य सफल करने के कारण उनका (गोरा-बादल) चरित्र कहता हूँ। (1-7)

चित्रकूट पर्वत पृथ्वी पर विख्यात है, जहाँ गहलोत राजा रत्नसेन राज्य करता था। उसके पास पचास हज़ार घोड़े और दो हज़ार मदमत्त हाथी थे। छत्तीस राजकुलों के योद्धा उसकी सेवा करते थे। उसके राज्य में सभी सुखी थे- चारों वर्ण दुर्ग में रहते थे और वहाँ यति-मुनियों सहित कोई दु:खी नहीं था। एक दिन रत्नसेन भोजन करने बैठा। उसकी रानी हँसकर सत्तर व्यंजन लेकर आई। कोई व्यंजन खारा, तो कोई मीठा था- उसको कोई स्वाद नहीं आया। तब पटरानी ने कहा कि- ''आप इसके लिए जल्दी कोई पद्मिनी क्यों नहीं ले आते!'' रत्नसेन इससे नाराज़ हो गया और पद्मिनी लाने के लिए सिंघल की ओर निकल पड़ा। उसने सिंघल जीतकर वहाँ की कन्या पद्मिनी से विवाह किया और इस तरह अपना प्रण पूरा किया। वहाँ परदेश से घूमते हुए एक ब्राह्मण आया। वह राजदरबार में गया और उसने भेंट देकर राजा को आशीर्वाद दिया। उसके विद्या विनोद और अमृतवाणी से राजसभा प्रसन्न हो गई और वह राजा का चहेता हो गया। राजा ने उस पर कृपा की और दान दिया। दोनों साथ रहने लगे। ब्राह्मण राघव और रत्नसेन एक ही स्थान पर खेलते। खेल में एक दिन रत्नसेन जीत गया, तो उसने दाँव माँगा, जिससे ब्राह्मण को क्रोध आ गया। राजा ने इससे नाराज़ होकर ब्राह्मण को देश निकाला दे दिया। ब्राह्मण ने कहा कि- ''हे राजा! जब तक मैं तेरे पाँवों में लोहा नहीं पहना देता, तब तक चित्तौड़ में पाँव नहीं रखूँगा।'' चित्तौड़ छोड़कर राघव ने यज्ञ करके योगिनी को आहूत करने का निश्चय किया। उसने योगिनी की श्मशान साधना की। योगिनी ने उससे पूछा कि किस प्रयोजन के लिए उसने यह आराधना की है, तो ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि उसे आगम-निगम सब का ज्ञान हो, ऐसा वचन चाहिए। योगिनी उससे संतुष्ट और प्रसन्न हो गई। राघव आदि, अंत, उत्पत्ति- सब पहचानने लग गया। प्रसन्न होकर वह दिल्ली गया। वहाँ उसकी प्रसिद्धि फैल गई। उसके संकेत पर राजा, मंडलीक, ख़ान और उमरा की मन में विचारी बातें पूरी होने लगीं। वे लोग, जिनको धन चाहिए, ब्राह्मण के पास आने लगे। सुल्तान ने यह बात सुनी और वज़ीरों से भी इसकी तसदीक़ की, तो वह दरवेश के वेश में ब्राह्मण के पास पहुँचा। दरवेश ने राघव से पूछा कि- ''यदि तुम सब जानते हो, तो बताओ मुझे धन कब मिलेगा? राघव ने उत्तर में कहा कि- ''तुम समुद्र के तट तक घूम आओ, तो भी तुम्हारे भाग्य में धन लिखा हुआ नहीं है।'' दरवेश ने कोप कर कहा कि- ''तुम झूठ बोलते हो, तुम दुनिया के साथ छल करते हो।'' राघव संकोच और संशय में पड़ गया। उसने विचार किया

कि– ''योगिनी ने मेरे साथ यह क्या किया? क्या मेरी साधना और सेवा में कमी रही?'' उसने योगिनी से सत्य वचन कहने के विनय की। उसने दरवेश से कहीं से मक्खन लाने के लिए कहा, तो दरवेश ने कहा कि वह इस रात में मक्खन कहाँ से लाएगा? वह कहीं से घी लेकर आया। ब्राह्मण राघव ने दरवेश से कहा कि– ''सुल्तान अलाउद्दीन ख़लजी का ताज तेरे सिर पर होगा।'' दरवेश क्रोधित हो गया। उसने कहा कि– ''तुम व्यर्थ तूफ़ान कर रहे हो। तुम झूठ बोल रहो हो। मुझे राज कहाँ से मिलेगा? सुल्तान यह बात सुनेगा, तो मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर देगा और तुम्हारा सिर काटने में भी देर नहीं करेगा।'' राघव ने उत्तर दिया कि– ''जो है, वह निश्चित है। यदि तुम्हें ताज मिल जाए, मुझे क्या इनाम मिलेगा?'' (8-17)

दरवेश ख़ुश हुआ उसने राघव से कहा कि विधाता जब ऐसा करेगा, तो तुझे घोड़े, हाथी और पैदल उपहार में दूँगा। तुम सत्य कहते हो, तो, तुम्हारा ही मानूँगा। अलाउद्दीन के सिर पर छत्र क़ायम रहे। तुम जो भी मुँह से माँगोगे मिलेगा।'' सुल्तान दरवेश का वेश उतारकर अपने महल में आ गया। सुबह सूरज निकला, तो उसने ब्राह्मण को बुलाया। ब्राह्मण योगिनी का स्मरण करते हुए दरबार में पहुँचा, तो वहाँ उसने दरवेश को सुल्तान को छत्र धारण कर सिंहासन पर बैठा पाया। उसे आश्चर्य हुआ कि सुल्तान ख़ुद कल रात्रि में दरवेश के वेश में उसके पास आया था। बादशाह ने राघव से कहा कि– ''जो माँगना चाहो, माँगो और मैंने जो वचन तुम्हें दिया था उससे मुझे मुक्त करो।'' सुल्तान ने राघव को उत्साहपूर्वक बहुत दान दिया। अब राघव जो चाहता था, करता था– उसने बादशाह को अपने वश में कर लिया। एक भाट मल्ल कवि सुल्तान के पास माँगने के लिए आया। उसने महल में आकर दुहाई दी और सुल्तान की ख़ूब सराहना की। उसने सुल्तान के समक्ष पद्मिनी स्त्री की सराहना करते हुए कहा कि सुल्तान के घर सभी स्त्रियाँ शंखिनी हैं। सुल्तान इससे क्रोधित हुआ और उसने अपने अंत:पुर के खोजा (अंत:पुर का रक्षक) को बुलाकर पूछताछ की। उसने कटारी की पहचान भेजकर तत्काल राघव को बुलवाया। बादशाह अलाउद्दीन ने राघव से पूछा कि– ''तुम परीक्षा करो और बताओ कि स्त्रियों की कितनी कोटियाँ होती हैं?'' राघव ने उत्तर दिया कि– ''हे बादशाह! रूपवती, मुग्धा और प्रिया स्त्रियाँ के हस्तिनी, शंखिनी और चित्रिणी भी प्रकार हैं, लेकिन पृथ्वी पर सबसे अच्छी पद्मिनी कोटि की स्त्री होती है।'' बादशाह ने राघव से पूछा कि स्त्री की इन चार कोटियों की पहचान कैसे की जाए, तो राघव ने उत्तर दिया कि गंध, रूप, भाव, केश, गति, प्रेम, वाणी और अंगों से पता किया जा सकता है कि कौन-सी स्त्री किस कोटि की है। राघव ने यह भी कहा कि स्त्री के लक्षणों को कोक के उपदेशों से समझा जा सकता है। उसने बताया कि पद्मिनी से कमल, चित्रिणी से चंदन, हस्तिनी से मद

और शंखिनी से खार की गंध आती है। इसी तरह पद्मिनी को पुष्प, चित्रिणी को वस्त्र, हस्तिनी को प्रेम और शंखिनी को कलह अच्छा लगता है। (18–30)

अलाउद्दीन ने राघव को आदेश दिया कि वह उसके हरम में जो स्त्रियाँ हैं, उनको निगाह में निकाल कर बताए कि उसकी हंसगामिनी और गजगामिनी शहज़ादी स्त्रियों में कितनी शंखिनी, हस्तिनी, चित्रणी और पद्मिनी स्त्रियाँ हैं? राघव ने बादशाह से कहा कि उसने अपनी आँखों से परस्त्री को नहीं देखने का प्रण किया है। बादशाह ने कहा कि– ''काँच के घड़े में तेल भर देते हैं और सभी स्त्रियों को शृंगार करवाकर वहाँ खड़ा कर देते हैं। तुम तेल में उनका प्रतिबिंब देखकर बताओ कि बादशाह के घर में कितनी पद्मिनियाँ हैं?'' बादशाह और राघव, दोनों उस स्थान पर आकर बैठ गए। काँच के घड़े में तेल भरा गया। सभी कामिनी स्त्रियाँ शृंगार करके छज्जे पर चढ़ीं। दोनों ने गौर और श्यामवर्णी स्त्रियों को नीचे भूमि पर तेल में देखा। राघव ने सभी तरह से विचार कर निश्चित किया कि दो जाति की स्त्रियाँ तो दिखाई पड़ती हैं, लेकिन बादशाह के घर में पद्मिनी कोई नहीं है। बादशाह इससे क्रुद्ध हो गया– उसने राघव से कहा कि– ''तुम झूठ बोलते हो, मुझे शीघ्र पद्मिनी दिखाओ।'' उसे खाने–पीने से अरुचि हो गई। राघव ने विनयपूर्वक कहा कि सिंघलद्वीप में बहुत पद्मिनियाँ हैं– एक–आध तो दिख ही जाएगी। बादशाह ने दिन देखकर दक्षिण की ओर प्रस्थान का निश्चय किया। बादशाह क्रोधित हुआ। नौ लाख घोड़े और चौदह हज़ार हाथी और वीर प्रस्थान के लिए एकत्र हुए। सेना के प्रयाण से उड़ी धूल में सूरज छिप गया, वासुकी पाताल में चला गया और चारों दिशाओं के चक्रवर्ती राजा चिंतित हुए कि बादशाह ने यह किस पर चढ़ाई की है। बादशाह सेना सहित दक्षिणी तट पर आ गया, तो उसने ब्राह्मण राघव को बुलवाया। उसने राघव को सचेत करते हुए कहा कि– ''तुमने मुझे पद्मिनी होने का विश्वास दिलाया, यह दुनिया को पता है। अब सिंघल द्वीप चलो और मुझे जिस तरह भी हो, पद्मिनी दिलाओ।'' बादशाह और राघव, दोनों समुद्र तट पर खड़े होकर इसे लाँघने की मंत्रणा करने लगे। राघव ने बादशाह से कहा कि–''समुद्र के पानी का अंत कहाँ है, यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन सिंघल द्वीप के घर–घर में पद्मिनी स्त्रियाँ हैं।'' बादशाह ने कहा कि– ''मैं सिंघल का दुर्ग ध्वस्त कर दूँगा। राजा के सिर पर तलवार का प्रहार कर उसे ख़त्म करूँगा और पद्मिनी ले लूँगा।'' बादशाह पद्मिनी पाने के हठ पर चढ़ गया। सभी मंत्रियों ने बैठकर मंत्रणा की कि वे पद्मिनी कहाँ से लाएँगे। उन्होंने राघव से कहा कि– ''हे ब्राह्मण! तुम झूठे हो, जो हमें यहाँ लेकर आ गए हो।'' राघव ने उनको समझाया कि वे भयभीत नहीं हों, वह बादशाह को समझाकर उनका मनचाहा कर देगा।'' राघव बादशाह को समझाकर वापस दिल्ली ले आया। बादशाह सेवक के

साथ हथियार आदि रखने जब भीतर गया, तो बीबी ने उससे पूछा कि पद्मिनी कहाँ है और चार कोटि की स्त्रियाँ जिसके घर पर नहीं है, उसके सुल्तान होने का क्या मतलब है? बादशाह के मन में फिर पद्मिनी का विचार आया। उसने राघव से पद्मिनी के संबंध में पूछा, तो उसको चिंता हुई और अपना अतीत याद आ गया। उसने कहा कि– ''चित्तौड़ दुर्ग के हिंदू गहलोत राजा रत्नसेन के घर सिंघल की पद्मिनी स्त्री है। मैंने नौ खंडों में घूमकर देखा है, लेकिन ऐसी स्त्री और कहीं नहीं है। चंदन, कपूर और पुष्पों से सुवासित पलंग पर तकियों के साथ पद्मिनी राजा रत्नसेन के साथ रमण करती है।'' (19–41)

अलाउद्दीन ने प्रयाण किया, जिससे जल–थल व्याकुल हो गए, राजाओं में खलबली मच गई और दसों दिशाओं में मारकाट शुरू हो गई। हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना का अंत ही नहीं था। बड़े–बड़े दुर्गपति सुल्तान की सेवा में आए थे। सुल्तान ने निश्चय किया कि वह युद्ध में हिंदू राजा को मारकर उसकी स्त्री को जीवित पकड़ लेगा। राघव ने राय दी कि चित्तौड़ का दुर्ग बहुत विषम है, उसको ऐसे जीतना मुश्किल है, इसलिए कुरान की शपथ लेकर इस तरह राजा से कहो कि उसको विश्वास हो जाए। उससे जाकर यह कहो कि सुल्तान उसको कोई दंड नहीं देगा, उसकी भूमि नहीं लेगा, उसकी किसी राजकुमारी से विवाह नहीं करेगा और केवल उससे मिलकर उसकी नाक नीची कर लौट जाएगा। सेना सजाकर सुल्तान चित्तौड़गढ़ पहुँच गया। उसने कहा कि शीघ्र दूत भेजो और यह वचन दो कि– ''तुम्हारे–हमारे बीच ख़ुदा और कुरान हैं, मैं चित्तौड़ का दुर्ग देखकर लौट जाऊँगा।'' दूत चलकर दुर्ग में पहुँचा और उसने सभा में राजा से भेंट की। राजा उसकी मीठी बातों में आ गया और उसने वही किया, जो उसने कहा। दुर्ग के द्वार खोल दिए गए। बादशाह लशकर सहित दुर्ग में प्रवेश कर गया। राजा ने बादशाह को भोजन करवाया। जब वे खाना खाकर उठे, तो बादशाह ने राजा की बाँह पकड़कर उसको अपने साथ ले लिया। बातें करते हुए वे दुर्ग के बाहर आ गए, जहाँ बादशाह ने राजा को पकड़ लिया। सुल्तान ने छद्म किया– उसने राजा को बंदी बनाकर कहा कि–''पद्मिनी दो और तुम चले जाओ।'' मंत्रियों ने मंत्रणा कर यह निश्चय किया कि पद्मिनी देकर राजा को लेते हैं। पद्मिनी ने यह सुना, तो उसने कहा कि जिस दिन ऐसा होगा, वह जीभ काटकर मर जाएगी। उसने सोचा कि अब वह किसकी शरण में जाए? (42–48)

पद्मिनी विचार करने लगी कि संसार में ऐसा कोई योद्धा नहीं है, जो उसका उद्धार करे। दुर्ग के सभी योद्धा तो छोटी बातें करते हैं। उसने ईश्वर को स्मरण किया और सखियों से कहा कि चंदन की चिता सजाओ, वह मृत्युलोक जाएगी। तब एक सखी ने कहा कि– ''मेरी बात मानकर गोरा को मनाओ और अपना दुःख उसको

कहो। पाँच वर्ष से राजा से उसकी अनबन है और वह उसका दिया ग्राम ग्रास (जागीर) भी नहीं ले रहा है। गोरा और बादल, दोनों कुलीन और योद्धा हैं और दूसरों के लिए अपना सिर सौंपने वाले हैं।'' पद्मिनी वहाँ गई, जहाँ गोरा-बादल थे। दोनों ने कहा कि- ''यह तो गंगा उलट कर पश्चिम में आ गई है। आप आज्ञा देती, तो हम आपके पास आ जाते।'' पद्मिनी ने दोनों योद्धाओं की सराहना की और कहा कि- ''मुझे दासी करके सुल्तान को देने से अच्छा तो यह है कि अलाउद्दीन पर तलवार से प्रहार कर राजा को छुड़ा लो।'' योद्धा गोरा चिंतित हुआ। उसने विचार कर कहा कि ''मैं सुल्तान की सेना को समाप्त करूँगा, स्वामिधर्म का निर्वाह करके पद्मिनी को बचाऊँगा, दुर्ग की रक्षा करूँगा और शत्रु राक्षसों का नाश करूँगा।'' उसने पद्मिनी से कहा कि- ''गाजण के घर जाओ और उसके बेटे योद्धा बादल को बीड़ा (पान) दो।'' बादल ने बीड़ा ले लिया। उसने कहा कि- ''आप दुर्ग के भीतर ही रहें। आपका साहस धन्य है। मैं एक क्षण में बादशाह को नष्ट कर दूँगा। दोनों कुलों की लज्जा रखूँगा, तो ही मेरा नाम बादल है। बादशाह के सैन्य दल नष्ट करूँगा और जैसे हनुमान ने राम का कार्य किया, वैसे ही मैं रावण को तत्क्षण बाँध लूँगा। बादशाह को समाप्त करके राजा के बंधन काट दूँगा।'' दोनों मंत्रियों के पास गए। मंत्रियों ने निश्चय किया कि स्त्री देंगे, तो गढ़ भी रह जाएगा और राजा भी छूट जाएगा। कायर मंत्रियों ने कहा कि- ''हम रानी देकर राजा को ले लेते हैं। अलाउद्दीन बादशाह है, उसके सामने हम तलवार कैसे उठायेंगे?'' यह सुनकर गोरा और बादल, दोनों योद्धा क्रोधित हो गए। गोरा भीषण और बादल विषम योद्धा था और जिन्होंने पद्मिनी को देना तय किया, उनका भाग्य फूटा हुआ और जिह्वा गली हुई है। (49-56)

बादल की माँ वहाँ आकर खड़ी हुई और कहने लगी कि- ''बादल मेरी आँखें और मेरा प्राण है। वह कैसे जूझने जा रहा है और किसने उसको यह कुबुद्धि दी है?'' आती हुई माँ को देखकर बादल ने प्रणाम किया, तो माँ ने कहा कि- ''हे बालक पुत्र! तुम जुग-जुग जियो।'' बादल ने माँ से कहा कि-''मैं दौड़कर माँ का आँचल नहीं पकड़ता, रोकर भोजन नहीं माँगता, धूल में नहीं लौटता और पालने में नहीं सोता, फिर हे माँ! तुम मुझे बालक क्यों कहती हो?'' माँ ने उत्तर दिया कि- ''हे बालक बादल! तू अपने मन में विचार कर। तू सामने जाकर कैसे जूझेगा। दुर्ग चारों तरफ़ से घिर गया है और शत्रु राक्षस दल बहुत भारी है। तुम छोटे हो, कैसे तलवार सँभालोगे?'' बादल ने उत्तर दिया कि- ''हे माँ! मैं बालक कैसे हूँ? मैं हाथी के दाँत पकड़कर उससे खेल सकता हूँ। मैं शेषनाग के फन को मोड़कर छू सकता हूँ। बालक कृष्ण ने तो नाग को अपने भुज बल से नाथ लिया था। इसलिए हे माँ! दुःखी क्यों होती हो?'' माँ ने जाकर बादल की पत्नी को भेजा। उसकी कमर पतली

और कुच कठोर थे और वह रंभा से भी रूप में ज़्यादा थी। कामकला और प्रेम के सभी लक्षणों से उसके अंग सुशोभित थे। उसे आता हुआ देखकर बादल का चित्त विचलित हुआ। उसने सोचा कि यदि वह स्त्री के लालच में पड़ा, तो उसका साहस और पराक्रम चला जाएगा। स्त्री ने बादल से कहा कि – ''तुम तो मुझसे आँखें भी नहीं मिलाते हो, तुमने मेरे साथ शय्या पर रमण भी नहीं किया, तो तुम युद्ध में कैसे जूझोगे?'' बादल ने उत्तर दिया कि ''मेरे आँखें झुका लेने से प्रसन्न मत होओ। मैं दो मन करने वाला नहीं हूँ। अपने निश्चय पर क़ायम हूँ और शत्रु सेना को तिनके की तरह गिनता हूँ।'' बादल की स्त्री ने उससे कहा कि– ''तुम कैसे जूझोगे, कैसे तलवार पकड़ोगे और तुम जो तुम कायर निकले, तो मुझे लज्जा आएगी।'' बादल ने उत्तर दिया कि वह घोड़ों से घोड़ों, हाथियों से हाथियों को पछाड़ेगा। भाले से भाला और तलवार से तलवार भिड़ायेगा और इस युद्ध में बादशाह को मुड़ने पर विवश करेगा।'' उसने प्रण किया कि वह सेज पर तभी आएगा, जब रानी पद्मिनी को रत्नसेन से मिलाकर, दोनों को एक साथ कर देगा। बादल की स्त्री ने कहा कि– ''मेरे सिर पर कलंक लगेगा। मेरा परिणय का धागा भी अभी नहीं खुला है। पद्मिनी की आशा पूरी करने के लिए तुम मुझे निराश कर रहे हो। घर की हानि करके दूसरों के लिए प्राण दे रहे हो। तुम अभी युद्ध में मत जाओ, गोरा को जाने दो, तुम बाद में जाना।'' बादल ने कहा कि ''पवन स्थिर हो जाए, गंगा पश्चिम में बहने लगे, पर्वत मर्यादा छोड़कर रसातल में चला जाए, शेष नाग पृथ्वी का भार छोड़ दे और सूर्य-चंद्र दक्षिण में हो जाएँ, लेकिन मैं अपने वचन सच्चे करूँगा। हे स्त्री! तुम्हारा काम पीछे करूँगा।'' (56-68)

गोरा और बादल, दोनों सभा में आकर बैठे। दुर्ग में जितने सामंत थे वे सभी एकत्र हुए। मंत्रणा हुई और तय किया गया कि छल करेंगे। पचास डोलियाँ बनाएँगे और उनमें एक-एक में आठ लोग रखकर प्रपंच करेंगे। प्रपंच रचकर सुल्तान को उसके पास पद्मिनी को भेजने की ख़बर देने के लिए दूत भेजा गया और उससे कहलवाया गया कि पद्मिनी की जितनी अंगरक्षक स्त्रियाँ हैं, वे सभी सुंदर वस्त्रों में सजकर उसके साथ आएँगी। पद्मिनी की ओर से यह भी कहलवाया गया कि राजा के छूटने के बाद वह एक क्षण भी वहाँ नहीं रहेगी। सुल्तान बहुत प्रसन्न हुआ और उसने गोरा-बादल से कहा कि– ''पद्मिनी ले आओ, जो तुम कहोगे, मैं वही करूँगा। राजा की बेड़ी काट दूँगा। गश्त बाद में करूँगा और तब तक पानी नहीं पीऊँगा। राजा को सम्मान सहित भेज दूँगा और तुमको उपहार दूँगा।'' बादल ने छल किया– वह पद्मिनी बनकर डोले में पहुँच गया। सुल्तान पद्मिनी को आते सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। एक स्त्री ने सुल्तान से निवेदन किया कि पद्मिनी कहती है कि वह एक बार

राजा से मिल ले। सुल्तान ने बादल को वहाँ भेजा, जहाँ राजा बंदी था। बादल राजा के चरण कमलों में पड़ा। राजा क्रोधित हो गया और उसने उससे कहा कि– ''तुमने कैसा वैर (शत्रुता) लिया है! तुम छल से मेरी स्त्री को देने ले आए।'' बादल ने कहा कि– ''स्वामी! क्षमा करें, यह आपकी स्त्री नहीं है। मैंने पद्मिनी का रूप किया है।'' बादल राजा को पालकी में लेकर चला। वह सुल्तान के सामने आए खड्गधारी योद्धाओं से भिड़ गया। जो–जो भी उसके सामने आए, उसने उन सब को मार दिया। सुल्तान की सेना में ललकार हुई। सब तरफ़ खलबली मच गई। सिर टूटने लगे और धड़ गिरने लगे। बादशाह भयभीत हो गया। गोरा ने संग्राम किया, तब तक बादल राजा को ले गया। बादल ने अपना प्रण पूरा किया– उसने छल–बल से पद्मिनी का उद्धार किया। बादशाह उसके कार्य और भुज बल से मन में शंकित हो गया। बादल ने बादशाह का अभियान भंग कर अपने स्वामी की रक्षा की और मीर और मुग़ल योद्धाओं को नष्ट किया। बेटे ने शत्रु दल का विनाश किया है, यह सुनकर बादल की माता को आनंद हुआ। बादल धन्य है, जिसने पद्मिनी के पति की रक्षा की।

गोरा की स्त्री ने बादल से पूछा कि– ''मेरा पति युद्ध में किस तरह जूझा, उसने किस तरह हाथ चलाए और किस तरह से योद्धाओं को पछाड़ा?'' बादल ने कहा कि– ''हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना को मारकर गोरा युद्ध में काम आया।'' कहीं धड़, कहीं सिर, कहीं हाथ और हाथों की मालाएँ पड़ी हुई थीं, कहीं सियार और कहीं गिद्ध मांस नोच रहे थे। गोरा की स्त्री जब अपने पति से भेंट करने के लिए चली, तो उस क्षण सूर्य का रथ ठहर गया। गोरा का सिर धरती पर पड़ा, धरती ने उसे इंद्र को भेजा। इंद्र के हाथ से इसको गिद्ध ने उठाया और उसके हाथ से छूटकर यह गंगाजल में गिरा और वहाँ अमृत और चंदनमय हुआ। वहाँ से शंकर ने उसको अपनी रुंडमाल में गूँथ लिया। पद्मिनी ने कहा कि– ''योद्धा बादल ने असुर शत्रुओं का नाश किया, संकट में स्वामी की सहायता की, सुल्तान से युद्ध करके मदमत्त हाथियों का विनाश किया और मेरे पति को वापस लाकर अपनी बात रखी। तुम्हारा अवतार धन्य है। मैं तुम्हारी आरती उतारती हूँ।'' (69–81)

राम और पवनसुत हनुमान की कीर्ति जैसे अचल है, जैसे हरिश्चंद्र की कीर्ति की बेल पृथ्वी पर हुई है, जैसे कौरवों का नाश करने वाले पांडवों की कीर्ति स्थायी है, जैसे चक्र चलाने वाले विष्णु का यश अमर है और जैसे राजा भोज के यश को दुनिया जानती है, वैसे ही, हे गोरा और बादल! तुम्हारी कीर्ति बखानी जाएगी। (82)

अध्याय - 2

हेमरतन कृत 'गोरा-बादल पदमिणी चउपई'

रचना समयः 1588 ई.

हेमरतन की *गोरा-बादल पदमिणी चउपई* अज्ञात कवि कृत *गोरा-बादल कवित्त* के बाद राजस्थान में लिखी गई पद्मिनी विषयक रचनाओं में सबसे प्राचीन है। *चउपई* की रचना जैन यति हेमरतन ने 1588 ई. (वि.सं.1645) राजस्थान के सादड़ी (जिला-पाली) में की। प्रशस्ति में उल्लेख है कि *संवत सोलइ सइं पणयाल, श्रावण सुदि पंचमी सुविसाल। पुहवी पीठि घणुं परगडी, सबल पुरी सोहइ सादडी।* इसकी रचना जायसी की *पद्मावत* की (1540 ई.) के 48 वर्ष बाद में हुई, लेकिन यह *पद्मावत* से संबंधित या उससे प्रभावित बिल्कुल नहीं है। *चउपई* में हेमरतन अपने संबंध में मौन है- अलबत्ता उसने अपने गुरु पद्‌मराज वाचक और आश्रयदाता ताराचंद का उल्लेख किया है। वह प्रशस्ति में गुरु का उल्लेख इस तरह करता है- *पदमराज वाचक परधान, पुहवी परगट बुद्धिनिधांन। तास सीस सेवक इम भणई, हेमरतन मन हरषइ घणइ॥* हेमरतन ने *चउपई* की रचना राजस्थान के गोड़वाड़ क्षेत्र के सादड़ी क़स्बे के तत्कालीन अधिकारी ताराचंद के आग्रह पर की। ताराचंद मेवाड़ के तत्कालीन शासक महाराणा प्रताप के विश्वस्त सहयोगी भामाशाह का भाई था। *चउपई* की रचना महाराणा प्रताप के समय हुई, यह उल्लेख कवि ने प्रशस्ति में किया है। वह लिखता है- *पृथ्वी परगट राणा प्रताप। प्रतपई दिन-दिन अधिक।* अर्थात् धरती पर राणा प्रताप प्रकट हुए हैं और उनका यश दिनों-दिन अधिक फैलता जाता है। *चउपई* का उद्देश्य इतिहास लेखन नहीं है। कवि ने स्पष्ट कहा है कि उसका उद्देश्य साहित्य रचना है, रस उत्पन्न करना है। हेमरतन स्पष्ट उल्लेख करता है कि- *वीरा रस सिणगार रस, हासा रस हित हेज। सामिधरम रस सॉंभलउ, जिम तन हुइ अति तेज,* लेकिन इसकी विषय वस्तु ऐतिहासिक है और यह पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत करती है। हेमरतन अपने समय का प्रसिद्ध यति और कवि था। उसकी *चउपई* से पहले और उसके बाद की और रचनाएँ भी

मिलती हैं। उसकी अभी तक उपलब्ध रचनाओं की संख्या नौ हैं, जिनमें से पाँच का ही रचनाकाल ज्ञात है। *चउपई* से पहले उसने *अभयकुमार चउपई* (1579 ई.) और *महिपाल चउपई* (1579 ई.) लिखीं। इसके बाद उसने *शीलवती कथा* (1616 ई.), *रामरासो* (1616 ई.), *सीता चरित, जदंबा बावनी, शनिचर छंद* आदि की रचना कीं। हेमरतन की यह *चउपई* बहुत लोकप्रिय हुई– राजस्थान, गुजरात, मालवा, पंजाब सहित पश्चिमी भारत में इसकी कई प्रतियाँ हुईं। इसको आधार बनाकर इसके कई परिवर्तित और परिवर्धित संस्करणों की रचना हुईं। *चउपई* की राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर में सबसे प्राचीन प्रति है, जिसमें रचनाकाल 1588 ई. (वि.सं.1645) और लिपिकाल 1589 ई. (वि.सं.1646) दिया गया है। कीर्तिशेष मुनि जिनविजय के संकलन में इसकी 1604 ई. और 1672 ई. की दो प्रतियाँ हैं। 1728 ई. में ढाका में लिपिबद्ध इसकी एक प्रति वर्धमान ज्ञान मंदिर, उदयपुर में है। इसी तरह गुजरात विद्या सभा, अहमदाबाद, भंडारकर इंस्टीट्यूट पूना, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी और माणिक्य ग्रंथ भंडार, भींडर (उदयपुर) में भी इसकी प्रतियाँ हैं। सभी प्रतियों को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इसके मूल छंदों की संख्या 616 होनी चाहिए, लेकिन उपलब्ध सभी प्रतियों में छंद संख्या अलग है। सभी प्रतियों में क्षेपकों के अलावा सुभाषित, उक्तियाँ और अन्य कवियों की रचनाएँ भी शामिल हैं, लेकिन प्रतिष्ठान की प्रति में ये सबसे कम हैं। इसी तरह अन्य प्रतियों की तुलना में पाठांतर भी इसी प्रति में सबसे कम है। हेमरतन की *चउपई* की भाषा पंद्रहवीं-सोलहवीं सदी की मध्यकालीन राजस्थानी है, जिस पर राजस्थान के गोड़वाड़ क्षेत्र की स्थानीय बोली की कुछ प्रवृत्तियों का प्रभाव है। यह रचना दस खंडों में विभक्त है। उदयसिंह भटनागर ने प्रतिष्ठान की प्रति को आधार बनाकर उपलब्ध अन्य आठ प्रतियों के सहयोग से इसका संपादन किया है। इसका प्रकाशन राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से पहली बार 1966 ई. में हुआ।

'गोरा-बादल पदमिणी चउपई' मूल
।।पहलो खंड।।

।।दूहा।।

सुख संपति दायक सकल, सिधि बुधि सहित गणेस।
विघन विडारण विनयसुं, पहिली तुझ प्रणमेस।।1।।
ब्रह्म विष्णु शिव सइँ मुखइँ, नितु समरइँ जसु नाँम।
ते देवी सरसति तणइ, पद युगि करुं प्रणाँम।।2।।

पदमराज वाचक प्रभृति, प्रणमी निज गुरु पाइ।
केळवस्यूं साची कथा, काँणि न आवइ काई॥3॥
नवरस दाखइँ नव-नवा, सयण सभा सिणगार।
कवियण मुझ करियो कृपा, वदताँ वचन विचार॥4॥
वीरा रस सिणगार रस, हासा रस हित हेज।
सामि धरम-रस साँभलउ, जिम हुइ तनि अति तेज॥5॥
सामि-धरम जिणि साचविउ, वीरा रस सविसेष।
सुभटाँ महि सीमा लही, राखी खित्रवट रेख॥6॥
गोरा रावत अति गुणी, वादल अति बलवंत।
बोलिसु वात बिहुँ तणी, सुणियों सगला संत॥7॥
रतनसेन राजा तणइ, छलि हुआ अति छेक।
गोरउ वादल बें गुणी, सत्तवंत सविवेक ॥8॥
युद्ध करी जिम जस लीउ, वसुहा हुआ विख्यात।
चित्रकोट चावउ कीउ, ते निसणउ सहु वात॥9॥

॥चोपई॥

चित्रकट पर्वत चउसाल, वसुधा-लोचन जेसु विसाल।
सुर-नर-किंनर तणउ निवास, राँम रह्या था जिहाँ वनवास॥10॥
गिरवर ऊपरि दूढ दुरंग, विषम ठाम गढ अति हि उतंग।
गयणह पडण विधाता डरी, जाणि कि थंभ दीउ थिर करी॥11॥
विषम घाट गढ विसमी पोंलि, अति उंची कोसीसाँ ओलि।
संचा माँहि घणा साँसता, अणभंग कोट घणी आसता॥12॥
वाँक दुवारा विसमी गली, विकट कोट अति विसमउ वली।
अणजाणिउ न सकइ नीकली, कद ही कोइ न सक्कइ कली॥13॥
माँहि मनोहर महल अनेक, सगला लोक वसई सविवेक।
त्याग भोग सहु लाभई तिहाँ, सुर इम जाँणइ इणि गढि रहाँ॥14॥
चउरासी चोहटा हटसाल, मणिमय तोरण झाक-झमाल।
गोख घणा उंचा आवास, राजभवणि संधिउ आकास॥15॥
घरि-घरि गोख घणा पाखती, रंगि रमइँ बेठी दंपती।
गोखइँ-गोखि घणी जालिका, तिहाँ बेठी दीसइँ बालिका॥16॥
कमल-वदन गज-गति-गामिणी, कोमल तन दीसहँ कामिनी।
सात भुँया उंचा आवास, लोक वसई सहु लील विलास॥17॥
तिणि गढि राज करइ गहिलोत्त; रतनसेंन राजा जस-जोंत्त।

प्रबल पराक्रम पूर प्रताप, पेसी न सकई जसु घटि पाप॥18॥
अवनि घणी लग अविचल आण, भालि तपइँ जसु बारह भाँण।
वेरी कंद तणउ कुद्दाल, रण-रसी नइ अति रंढाल॥19॥
पटराणी तसु परभावती, रूपइँ रंभा सीलइँ सती।
इंद्र तणइ इंद्राणी जिसी, तेहनइ ते पटराणी तिसी॥20॥
अवर अनेक अछइं तसु नारि, अपछर रंभ तणइ अणुहारि।
पिण मन-मानी परभावती, तिणि पिणि मोहि लीउ निज पती॥21॥
सतर भेद भोजन रसवती, केळवि जांणइ ते गुणवती।
राजा तिणि रीझवीउ घणु, किसुं घणुं हिव ते हुं भणुं॥22॥
भोजन भगति करइ ते नारि, तउ ते भूप करइ आहार।
अवर तणउ कीधउ अनपाक, रतनसेन नइँ लागइ खाक॥23॥
माहो-माहि घणु मनि-मोह, सहि न सकइ खिण एक विछोह।
वीरभाँण तसु सुत अति सूर, प्रतपइ तेज तणु घट पूर॥24॥
चतुरंग सेंन संपूरण साथ, नीतइँ राज करइ नरनाथ॥
अरि सगला नाँख्या ऊछेद, खिति धरताँ तसु ना वह खेद॥25॥
सबल सूर साचा ससनेह, छल न करइँ नवि दाखइँ छेह।
सुरपति दियइ जिणाँरी साखि, इसा सुभट तसु घरि एक लाख॥26॥
हय गय पायक रथ नीसंख, करे न सक्कइ को आकंख।
इण परि परिगह तणइ पडूरि, रतनसेन राजा भरपूरि॥27॥
एक दिवस भोजन नइ समइ, आवी दासी इम वीनमइ।
सांमि! पधारउ भोजन भणी, पाक हुआ हुई वेला घणी॥28॥
आवी बइठो नृप बइसणई, पटराणीसुं प्रेमइँ, घणई।
थाल कचोला कनकह तणा, सोवन पाटि पथराव्या घणा॥29॥
प्रीसइ भोजन भगति भँडार, नारी रंभ तणइँ अणुहारि।
राजा भोजन जीमइ रंगि, विचि-विचि वात करइ कणयंगि॥30॥
कदली दलसुं घालाइ वाउ, जिमतउ जंपइ ते नर-राउ।
आज न भोजन भावइ कोइ, नितु निसवादा जीमण होइ॥31॥
शाक-पाक सगला पकवांन, धुरि निसवादा लागा धांन।
रूडी जुगति करउ रसवती, तव ते पभणइ परभावती॥32॥
आसंगइ आणी अभिमाँन, राँणी बोलइ-सुणि राजाँन!
भगति न भावइ मुझ केळवी, तउ काइ नारी आणउ नवी॥33॥
परणउ काइ जई पदमिणी, ते जिम भगति करइ तुम्ह तणी।

अम्हें जिमाडी जांणां नहीं, कोप कीउ कामणि इम कही ॥34 ॥
माणवती हुइ महिला मूल, माण गमाडइ विनय समूल।
विनय गया न रहई सोहाग, विण सोहाग न लाभइ भाग ॥35 ॥
रतनसेंन राजा रंढाल, तिजि भोजन ऊठिउ ततकाल।
तउ हुं जउ आणु पदमिणी, भगति जुगति जीमुं ते तणी ॥36 ॥
ए इम गरवी नारी किसुं, नारी आगलि हुं किम खिसुं।
असक्य नही हुं आणण नारि, क्युं ए अबला कहइ अविचारि ॥37 ॥
मुंछ मरोडी ऊभउ थयउ, गरव ग्रही घर बाहर गयउ।
रतनसेन राजा एकलउ, साथि खवास करी इक भलउ ॥38 ॥
सबल खजीनउ साथइ लेह, असि चढि चाल्या छाना बेइ।
कोह न जाणइ ए विरतंत, खिति-पति मनि अति लागी खंति ॥39 ॥
पदमिणि परणी आवुँ घरे, नहि तरि रहिस्युं गिरि-कंदरे।
विण पदमिणि नवि पोढुं सेज, विण पदमिणि न हसुं हित हेज ॥40 ॥
एम प्रतिज्ञा कीधी पूर, राजा चालिउ साहस सूर।
बीस त्रीस जोअण बउलिया, तव ते बेही इम बोलिया ॥41 ॥
ऊषर खेत्र न लागइ बीज, विण झगडा नवि थापइ धीज।
विण वादल नवि वरसइ मेह, एक पखउ नवि हुई सनेह ॥42 ॥
गाम नही तउ केही सीम, अगनि माहि नवि जाँमई हीम।
सेवक जंपइ साँमी, सुणउ, प्रगट प्रकासउ मुझ मंत्रणउ ॥43 ॥
मरम पखे किम लहीइ माग, ताण्या विण किम लाभइ ताग।
राजा जंपइ पदमिणि भणी, मइँ ए अवनि उलंघी घणी ॥44 ॥
पदमिणि तणा पठंगा जिहाँ, ठावी ठोड वतावउ तिहाँ।
सेवक जंपइ सामी, सुणउ, खरच-वरच साथइ छइ घणउ ॥45 ॥
पिणि नवि जाणी जाँ लगि पंथ, ताँ लगि सगल गोरख-कंथ।
बइठउ भूप जई तरू तलइ, पंथी आविउ इक तेतलइ ॥46 ॥
भूख त्रिसइ भेदाणुं घणुं, पोतुं बीतुं अमलह तणुं।
पंथ तणुं वलि पूरउ खेद, घटि सगलइ हूउ परसेद ॥47 ॥
अटवी माहि घणु आफलइ, पिणि नदि कोई माँणस मिलइ।
तिणि ते दीठउ भूपति जिसइ, पगतलि आंवी पडीउ तिसइ ॥48 ॥
राइ कीआ सीतल उपचार, वाली चेतन पायुं वारि।
अमल अमोलिक देई करी, भाँजी भूख गई नीसरी ॥49 ॥
सावधांन हूउ पंथी तेह, कर जोडी जंपइ ससनेह।

तइँ मुझ कीधउ अति उपगार, जनम दीउँ मुझ बीजी वार॥50॥
मुझ सरिखउ को कहियो काम, हुं सेवक नइ तुं मुझ साँमि।
वलतुं राइ भणइ सविसेस, तइं दीठा बहु देस विदेस॥51॥
पुहवि फिरंतइ तइं पदमिणी, काई नारि कठे ई सुणी।
तव ते जंपइ सुणि मुझ धणी! सिंघल दीपि घणी पदमिणी॥52॥
दक्षिण दिसि छह सिंघल दीप, सगलाँ दीपाँ माहि प्रदीप।
आडउ आवइ उदधि अथाह, तिणि तसु कोइ न लाभइ माह॥53॥
इम निसुणी राजा रंजीउ, सिंघल दीप दिसी चालीउ।
पवन-वेग चंचल चतुरंग, अंबरि ऊडया बेउ तुरंग॥54॥
गाम नगर पुर पाटण तणा, मारग माहि उलंघ्या घणा।
अखलित गति ऊलंघी मही, समुद्र समीपइँ आव्या वही॥55॥
आगलि उदधि करई कल्लोल, छिटकि रही चिहुँ दिसि जलछोलि।
पवहण तिकोई पइसइ नही, तर कुण माणस जाई वहीं॥56॥
पाँणीसुं नवि चालइ प्राण, उदधि तणा आवइ ऊधाँण।
रतनसेन चिति चितई इसुं, हिव जगदीस करीजइ किसुं॥57॥
भूपति चिति चमकई पदमणी, जलधि वेल पिण बीहामणी।
नई पिण उंडी गुल पिण मीठ, ए ऊखाणु अंख्या दीठ॥58॥
वाघ अनइ दोतडिनउ न्याइ, ए मुझ आज पहूतउ आइ।
केम करुं हिव चिंतु काइ, मंडुं कोई अधिक उपाइ॥59॥
फिरतइ एम पयोनिधि पास, दीठउ जोगी एक उदास।
साधइ पवन सदाई तेह, जंगम जोग तणउ गुण-गेह॥60॥
सिध साधक जोगेसर जती, पणमी पासि गयउ भूपति।
विनय करी राजा वीनवइ, वलि-वलि सिर तसु चरणे उवइ॥61॥
साँमी सिंघल दीपह तणु, मुझ मनि हरष अछइ अति घणुं।
तुम्ह भेट्याँ हिव भावटि टलइ, पदमिणि नारि किसी परि मिलह॥62॥
मुझसुं साँमि करउ हिव मया, दुख देखताँ बहु दिन थया।
विनय-वचन वीनवीया जिसइ, सुप्रसंन हूउ जोगी तिसइ॥63॥
नेत्र उघाडी निरखइ नूर, आयस मनि हूउ आणँद पूर।
आवउ रतनसेन राजाँन! नाम कही तसु दीधुं मान॥64॥
विसमय हूअउ राजा भणी, आँ किम वात लही मुझ तणी।
जोगी जंपइ, सुणि राजाँन! जउ तु आयउ इणि मुझ थाँनि॥65॥
तउ हिव सगलउ होसी भलउ, मत मनि जाणइ छु एकलउ।

वीद्या अंबरि ऊडण तणी, समरी साही करि समरणी ॥66 ॥
बे असवार धरी निज बाथ, सिंघल दीप गयउ गुरुनाथ।
नगर समीपइ आया जिसइ, आयस हूउ अलोपी तिसइ ॥67 ॥
राजा रंजिउ देखी दीप, जो जोवह ते अतिहि उदीप।
कोलाहल अति कसबउ घणउ, वणज अनई व्यापाराँ तणउ ॥68 ॥
हीयइ-हीयउ दलाइ सही, विरल कोइक जायइ वहीं।
आगलि पडहउ फिरत दीठ, तास लगइ ते आव्या नीठ ॥69 ॥
पूछण लागा पडह विचार, तव ते जंपइ सुणि असवार।
सिंघल दीप तणउँ राजीउ, गुणे करी महिमा गाजीउ ॥70 ॥
तास बहिनि परतिख पदमिणी, त्रिभुवन ओपम नही तसु तणी।
अह निसि पदमिणि ते इम बकइ, मुझ भाई जे जीपी सकइ ॥71 ॥
तेह नह कठि ठवुं वरमाल, इम जंपइ ते अबला बाल।
हिव ते पडह वजावह इसउ, मुझनइ जीपइ नही को तिसउ ॥72 ॥
जीपण तणाँ घणा परकार, रिण-रामति किनाँ मल्लाकार।
किण ते वात करइ खँति घणी? वलतउ बोल पडसद-धणी ॥73 ॥
रिणवट तणी रहउ हिव वात, सतरंज रामति खेलु घात।
जउ कोई मुझ जीपइ सही, तउ मई वात इसी छह कही ॥74 ॥
अरध देस अरधउ भंडार, विहची आपुं अधिक उदार।
भगिनी वली परतिख पदमिणी, परणावी दयुं पहिरामणी ॥75 ॥
ए मुझ वाचा अविचल अछइ, इम म कहेज्यों न कहिउ पछाइ!
एम सुणी रंजिउ नर-राइ, सतरंज रामति आवइ दाइ ॥76 ॥
भूप भणइ-संभलि मुझ वात, सतरंज रामति केही मात।
जे जाणउ ते लेज्यो दाण, पिण तुम्ह वात अछइ परमाँण ॥77 ॥
एम कही ते मेल्हिउ माहि, रामति ऊपरि अधिकी चाहि।
तिणि जाई सिंघलपति पासि, वीनवी सह वचन विलास ॥78 ॥
सिंघलपति मनि हरखिउ घणुं, तेडावी दीधुं बेसणुं।
मागति सागति करि अति घणी, वात बिहुँ रमवानी वणी ॥79 ॥
बेठा बेही रमवा भणी, जाणि कि सिसहर नइ दिनमणी।
पासइँ बैठी ते पदमिणी, कोमल कमल वदन कामिणी ॥80 ॥
रतनसेन सतरंजई रमह, तिम-तिम नारि तणइ मनि गमइ।
जुउ किमई ए जीप दाण, तउ मुझ वखत सही सुप्रमाँण ॥81 ॥
सिंघल-पति मनि शंका करह, रतनसेन थी मन महि डरइ।

मनमथ रूप मनोहर वेस, ए कोइक छइ सबल नरेस॥82॥
कैलि करताँ रामति रंग, सिंघल भूपति पाँमिउ भंग।
जैत्र अनइ जस हूउ घणउ, परतउ पुहतउ पदमिणी तणउ॥83॥
कंठ ठवी कोमल वरमाल, जय-जय शबद जगावइ बाल।
सिंघल दीप तणउ हिव धणी, भगति करइ ते भूपति तणी॥84॥
सामहणी अति मेली घणी, परणावी बहिनर पदमिणी।
अरध देस अरधा भंडार, विहची दीधा अधिक उदार॥85॥
परिघल दीधी पहिरामणी, हरषित नारि हुई पदमिणी।
बि सहस बाँदी रूप-निधाँन, पदमिणि पासि रहइ सुविधाँन॥86॥
भमर घणा गुंजारव करइँ, पदमिणि-परिमल मोह्या फिरइँ।
पदमिणि तणउ पटंतर एह, भूला भमर न छंडई देह॥87॥
पदमिणि रूप कही कुण सकइ, इंद्राणीथी अधिकी जकइ।
रतनसेन परणी पदमिणि, आस सँपूरण हुई मन तणी॥88॥
दिन दस पंच तिहाँ सुखि रही, रतनसेन नृप अवसर लही।
सिंघलपतिसुं शिष्या करइ, विनय-वचन मुख अति उच्चरइ॥89॥
सिंघलपति साच भूपाल, आदर अधिक करी सुविशाल॥
रंगरली बहिनडनी बहू, सिंघलन पति पूरइ सहू॥90॥
सेंन घणी ले सिंघलनाथ, रतनसेन नइ हूओ साथि।
सेंना सगली समुद्र मझारि, प्रवहण पूरि करायउ पारि॥91॥
समुद्र परइँ पुहचावी करी, सिंघलनाथइँ शिष्या करी।
प्रीति रीति पालिउ पडिवनउ, ब्युं ही अधिक वधारिउ विनउ॥92॥
सिंघलपति पाछा संचर्‍या, रतनसेन डेरइ ऊतर्‍या।
भाट कला भुंजाई तणा, डेरइ डेरइ दीसइँ घणा॥93॥

॥दूजो खण्ड॥

वात सुणउ हिव ते पाछिली, रतनसेन राजानी भली।
छानउ छिटकिउ भूपति जेह, मरम न जाणइ कोई तेह॥94॥
साँझ हुई नवि दीसइ राइ, साँमी विण किम सभा भराइ।
बाहरि भीतरि कीधउ सोझ, नृपनुं कोइ न लाभइ खोज॥95॥
माहि जई राँणी वीनवी, तव तिणि वात हती ते चवी।
सांमि सकइ तउ रीसइ घणी, परणेवा चालिउ पदमिणी॥96॥
वीरभाँण सुत सकज सनूर, सुभट सभा महि बेठउ सूर।

कपट बात कूडी केलवी, वीरभाण भाषइ नव नवी ॥97॥
राजा माहि जपइ छइ जाप, जिणथी प्रबल वधइ परताप।
एम कही आघुं जोगवइ, भूप तणी परि भुंइ भोगवइ ॥98॥
इम करताँ दिन हूआ घणा, संकाँणा मन सुभटाँ तणा।
नितु-नितु बाहरि करतउ केलि, नृप हिव महल न द्यइ किण मेलि ॥99॥
कुसल अछइ कई काई वात, मत सुति मारिउ होई तात।
एँहवी वात करइँ ते जिसइ, रतनसेन नृप आविउ तिसइ ॥100॥
च्यारि सहस हयवर हीसता, बी सहस गयवर अति गाजता।
वी सहस बिहुँ दिसे पालखी, त्याँ माहे बेठी तसु सखी ॥101॥
विचि पालंखी पदमिणि तणी, चिहुं दिसि भमर रह्या रुणझणी॥
ऊपरि कंचण कलस अनेक, एक थकी वलि अधिकउ एक ॥102॥
सुभट तणा नवि लाभइ पार, गज-गरजारव हय-हीसार॥
पंच शबद वाजइ वाजित्र, जे सुणताँ सवि नासइ शत्र ॥103॥
इम तसु साथइं सबली सेण, गयणंगणि बहु ऊडइ रेण॥
आज्या चित्रकोट तलहटी, हुवउ कोलाहल अति कलहटी ॥104॥
वीरभाँण संकाणउ माहि, सुभट सहू धाया असि-साहि॥
परदल आविउं जांणी करी, हाटे हलफल हुई खरी ॥105॥
तितरइ आविउं नृपनउ दूत, कागल लेई माहि पहूत॥
वीरभाँण वाची सहु वात, धन्य दिवस मुझ आविउ तात ॥106॥
विनयवंत साँम्हि दोडीउ, कपट तण पडद छोडीउ॥
सुभट सहू धाया ससनेह, जोअण आया लोक अछेह ॥107॥
सकल लोक जई लागा पाइ, कुसल खेम पूछइ नरराइ॥
रतनसेन चडीउ गजगाहि, महा महोछवि आविउ माहि ॥108॥
हूउ पइसारउ पूगी रली, ठोडि-ठोडि गूडी ऊछली॥
पदमिणि नारी परणी तणउ, जय जयकार हूउ अति घणउ ॥109॥
महल मनोहर दीधी माहि, तिणि ते पदमिणि करइ उछाह।
बि सहस पासि रहइँ छोकरी, चंचल चपल रूप सुंदरी ॥110॥
रतनसेन गयो राणी पासि, पदमिणि आँणी द्यउ साबासि।
भोजन हिवे जीमेस्याँ स्वादि, तइँ मुझ बोल वद्यो बडवादि ॥111॥
संभलि राणी विलखी थई, माहरी जिह्वा वैरिणि हुई।
निज करिस्युं मइँ भाग्यो रतन्न, पश्चाताप करइ क्या मन्न ॥112॥

।दूहा॥

हिव पदमिणी सुं प्रेम-रस, सुखि झीलइँ ससनेह।

पंच विषय सुख भोगवइ, गय-गमणी गुणगेह ॥113॥
वादल महि जिम वीजली, चंचल अति चमकंति।
महल माहि तिम ते तणउ, झलहल तनु झलकंति ॥114॥
पान प्रहीस्यइँ पदमिणी, गलि तंबोल गिलंति।
निरमल तनि तंबोल ते, देह महिय दीसंति ॥115॥
हंस-गमणि हेजइँ हसइँ, वदन-कमल विहसति।
दंतकुली दीसइ जिसी, जाणि कि हीरा हुंति ॥116॥
प्रेम संपूरण पदमिणी, सामि घणउ ससनेह।
विलसइँ जे सुख विषयना, कहि कुण जाणइ तेह ॥117॥
राति-दिवस रूँधो रहइ, नरपति पदमिणि पासि।
भमर तणी परि भूपति, अलुझि रहिउ आवासि ॥118॥
चंदन तरवरि जिम चडी, वीटइ नागर वेलि।
तिम ते कामिणि कंतसुं, विलगि रहइ गुण-गेलि ॥119॥
कवित कथा-रस काम-रस गाह गृढ गण गोठि॥
पदमिणि प्रीतम रीझिवा, जाणि कि वास्या होठि ॥120॥
नारी निरमल नेहरस, सुधा-सरोवर-सार।
तास माहि नृप झीलतउ, पाँमि न सक्कइ पार ॥121॥

॥चोपई॥

राजा रमलि करत रहइ, इम केताइक दिन निरवहइ॥
सगला लोक वसई सुखवास, आवासे लागा आवास ॥122॥
तिणि पुरि राघवचेतन व्यास, विद्यासु अधिकउ अभ्यास॥
राजा तिणि रीझवीउ घणुं, मुहत घणुं द्यइ व्यासाँ तणुं ॥123॥
राय भवणि नितु प्रति संचरइ, भारत-वात विचख्यण करइ॥
अमहलि महलि सदा संचरइ, राजलोक महि हीडइ फिरइ ॥124॥
एक दिवसि पदमिणि नइ पासि, राजा बेठउ करइ विलास।
नेह नितंबनि चुंबनि करइ, राजा आलिंगन आचरइ ॥125॥
तिणि प्रस्तावइ राघव व्यास, पुहतउ पदमिणि तणइ आवास।
ते देखी राजा खुणसीउ, राघव ऊपरि कोप ज कीउ ॥126॥
भमह चडावी कीउ त्रिसूल, कोप तणउ जे कहीइ मूल॥
राघव पिण मन माहे डरिउ, विण प्रस्तावइ हुं संचरिउ ॥127॥
चतुर तणी ए नही चातुरी, अण तेडिउ आवइ फिरि-फिरी।
वात गोठि अण रुचती करइ, काढंताँई नवि नीसरइ ॥128॥

बिहुं जणाँ विचि त्रीजउ थाइ, अमहल माहे आघउ जाइ।
अण बोलायउ बोलइ घणुं, अण दीधुं वलि ल्यइ बेसणुं॥129॥
डीलइँ-डील लिगाडी धसइ, वात करंतउ आपे हसइ॥
मनि जाँणइ हुं खरउ सुजाण, मूरिख जनरा ए अहिनाँण॥130॥
एकंतइ अस्त्री-भरतार, रामति रमताँ हुई अपार।
कन्हइँ जई ऊपावइ काणि, मूरिख जन रा ए अहिनाँण॥131॥
इम मनि खुणसिउ राजा घणुं, माँन मरोड्युं व्यासाँ तणुं।
कीधी रीस घणी ते राइ, जिणथी तन-धन जीवित जाइ॥132॥
विलखउ हुइ ऊतरीउ व्यास, नीठ पहूतउ निज आवास।
सामी तणी जव थाइरीस, तव जाँणे रूठउ जगदीस॥133॥
वलता व्यास न तेड्या माहि, माँन मुहतथी मुंक्या ठाहि।
इणि मुझ दीठी ए पदमिणी, आँखि हरावुं हुं ए तणी॥134॥
व्यास सुणी इम मनि बीहनउ, कुण वेसास करइ सीहनउ।
राजा मित्र कदी नवि होइ, नवि दीठ्ठउ नवि सुणीउ कोई॥135॥

।तीजो खण्ड॥

इम चिंति राघव मनि डरइ, नृप-खुणसाँणइ खिण न विसरइ।
नृपनी खुणस न होइ भली, नितु नितु हाणि हुई एकली॥136॥
इम आलोची राघव-व्यास, चित्रकोट नउ छाँडिउ वास।
माणस मुहरइ लेई करी, गढथी छानउ गउ नीसरी॥137॥
जातउ जातउ डिल्ली गयउ तिहाँ जाईनइ परगट थयउ।
गामि माहि हूउ परसिद्ध, ज्योतिष निमित घणउ जस लीध॥138॥
भणइ भणावइ शास्त्र अनेक, वात वखाण करइ सविवेक।
नवरस सयण-सभा रीझवइ, सित-सित अरथ करी सीझवइ॥139॥
पूरउ घट विद्या परवेस, तेहनइ केहा देस-विदेस।
विद्या माता विद्या पिता, विद्या सयण सगा सासता॥140॥
विद्या वित्त तणउ भंडार, विद्या घटि सोलइ सिणगार।
माँन मुहत जस विद्या थकी, वित्तथी विद्या अधिकी जकी॥141॥
डिल्लीपति पतिसाह प्रचंड, अवनि एक तसु आण अखंड।
अलावदीन नव खंडे नाम, नृप सहु तेहनइँ करइ सिलाँम॥142॥
एक छत्र धर सगली धरइ, सुर नर सहु को तिणथी डरइ।
अवनि तणउ अधिकउ अभिलाष, लसकर तसु नव त्रिगुणा लाख॥143॥

तिणि ते सुणीउ बंभण गुणी, तेडाविउ डिल्लीनइ धणी।
व्यासि जई दीधी आसीस, जाँणि की बेठो छइ जगदीस॥144॥
व्यासि कह्या तसु कवित अनेक, सभा सहित रीझि सविवेक॥
आग ई थो बंभण गुणी, पातिसाहि दी पहिरामणी॥145॥
माँन मुहत वधीउ पुर माँहि, पूछइ तेड़ी नित पतिसाहि।
उलगताँ तूठउ अवनीस, पूगी राघव तणी जगीस॥146॥
वास्या गाम प्रास दइ घणा, राघव चेतन बेही (?) जणा।
पातिसाह पासइ नितु रहइ, राघव कवित कथा नितु कहइ॥147॥
इक दिन आविउ ए अभिमाँन, रतनसेन मुझ मलीउ माँन
वालुं वयर किसी परि एह, साँमि धरम नइ दीधउ छेह॥148॥
तउ हुं जउ पदमिणि अपहरुं, चित्रकोटथी अलगउ करुं।
पदमिणि नारि खरी पड़वड़ी, लगि पातिसाह करुं परगडी॥149॥
राघव चिंतइ अधिक उपाइ, प्रगट वात मुखि न कहइ काइ।
भाट एकसुं भाईपणुं, कीधुं मान-मुहत दे घणुं॥150॥
हीआ माहि आलोची हेत, खोजासु कीधउ संकेत।
वित्त बिहुनइ दीधुं घणुं, मित्र करी कीधुं मंत्रणुं॥151॥
सभा माहि काढेयो घणी, वात किसी परि पदमिणी तणी।
अन्न दिवसि बेठउ सुलितांण, मिली सभा सहु राँणोराँण॥152॥
अति सुकमाल पसम पड़वड़ी, कलहंस पंखि तणी पंखड़ी।
अतिसुंदर करि धरी सभाउ, तव तिणि भाटि दियउ ब्रह्माउ॥153॥
भाटवाक्यं-
एक छत्र जिणि पृथी, धरी निश्चल धर ऊपरि।
आणि कित्ति नवखंडी, अदल कीधी दुनि भीतरि।
नल विन्नल विध्याड़ि, उदधि कर पाउ पखालिय।
अंतेउर रति रंभ, रूप रंभा सुर टालिय।
हेतंमदान कवि मल्ल भणि, अमर किति ते वखत गिणि।
दीठउ न को रवि-चक्र तलि, अलावदीन सुलिताण विण॥154॥
॥चोपई॥
कवित सुणी रीझउ सुलिताँन, भाट प्रतइँ दीधउ बहु मान।
हाथि किसुं? पूछइ पतिसाह, तव ते भाट भणइ गुण गाह॥155॥
॥गाथा॥
भाटवाक्यं-

माणसरोवर मध्ये निवसइँ कल हंस पंखीया बहवे
ताणं चिय सुकमाला एसा पंखी करे मज्झ ॥156॥
।**।चोपई।**।
इम निसुणी लेई सुलिताँण, नव-नव मउज महा असमाँन।
सोहइ पसम महा सुकमाल, ते देखी-जंपइ भूपाल॥157॥
इसी सकोमल काई वली, किण ही वस्त कठे संभली?
तव ते भाट भणइ सुविचार, हाँ, सुलिताँण! कहुं अवधारि॥158॥
पदमिणि नारि इसी पातली, अति सुकुमाल सकोमल वली।
एह थकी वलि अधिकी तेह, सगुण सकोमल नइ ससनेह ॥159॥
तव ते भूप भणइ-पदमिणी, काई नारि कठेई सुणी।
भाट भणई ए अवसर लही, गोरीपति निसुणइ गही गही॥160॥
भाटवाक्यं -
।।कवित्त।।
भाट भणइ-सुणि भूप, रूप अति रंभ समाणि।
हाँ तुझ हरम हज़ार, संख कुण लहइ समांणी।
ता महि पदमिणि काइ, हउसि तुरकिणी हिंदुआणी।
अदल आज तू राज, अवर कोइ राउन राँणी॥
तुझ महल माहि पदमावती, गिणत नारि होसी घणी।
सुणि मीनती सुलितांण विण, मइँ न काइ बीजी सुणी॥161॥
।।चोपई।।
इम निसुणी खोजउ खलभलइ, पातिसाह बढउँ संभलइ।
आसंगाइत बोलइ इसुं तई रे भाट! कहिउं किसुं?॥162॥
खोजा वाक्य -
।।कवित्त।।
मम भणि भट्ट सुकवित्त, खुंद खोजउ द्यइ पूरउ।
रे! रे! सबद फरोस! सिबद हरमां लगि सुरउ।
कहां सु नारि पदमिणी, सेज रायनकी सोहइ।
सुर-नर-गण-गध्रव्व, पेखि त्रिभुवन मन मोहइ।
सुंग्विणि सवइं सुलितांण घरि, कोपि हुउ वांदे इसइ।
रे खोजा ला इतवार तूं, सुणि पातसाह मुलकइ हसइ॥163॥
।।चोपई।।
आगलि बेठउ राघव व्यास, पुस्तक ऊपरि अधिक प्रयास।

सइं मुखि पूछइ इम सुलितांण, पदमिणि नारि तणा अहिनाँण॥164॥

॥कुंडलीउ॥

आलिमसाह अलावदी, पूछइ व्यास प्रभाति।
रतन परीक्षा तुम्हि करो, त्रीकी केती जाति?।
त्रीकी केती जाति! कहइ राघव सुविचारी।
रूपवंत पतिव्रता, प्रिय सो होई पियारी।
हस्तिणि कि चित्रिणि सुंखिणी, पुहवि वडी पदमावती।
इम भणइ विप्र साचउ वचन, आलिमसाहि अलावदी॥165॥
रूपवंत रतिरंभ कमल, जिम कायं सुकोमल।
परिमल पुहप सुगंध, भमर बहु भमइ बलावल।
चंपकली जिम चंग रंग, गति गयंद समांणी।
सिसि-वयणी सुकमाल, मधुर मुखि जंपइ वाणी।
चंचल चपल चकोर जिम, नयण कति सोहइ घणी।
कहि राघव सुलिताण सुणि! पुहवि इसी हुइ पदमिणी॥166॥
कुच जुग कठिन कठोर, रूप अति रूड़ी राँमा।
हसित वदन हित हेज, सेज नितु रहइ सकांमा।
रूसइ तूसइ रंगि, संगि सुख अधिक उपावइ।
राग रंग छत्रीस गीत, गुण गांन सुणावइ।
स्नान माँन तंबोल रस, रहइ अहोनिसि रागिणी।
कहि राघव सुलिताँण सुणि! पुहवि इसी हुइ पदमिणी॥167॥
वीज जेम झबकंति, कंति कुंदण ज्यु सोहइ।
सुर नर गण गंध्रव्व, पेखि त्रिभवन मन मोहइ।
त्रिवली तलि तनुलंक, वंक बहु वयण पयंपइ।
पतिसुं प्रेम सनेह, अवरसुं जीह न जंपइ।
साँमि भगत ससनेहली, अति सुकमाल सुहामणी।
कहि राघव सुलिताँण सुणि पुहवि इसी हुइ पदमिणी॥168॥
धवल-कुसुम-सिणगार, धवल बहु वस्त्र सुहावई।
मोताहल मणि रयण, हार ह्रदय स्थलि भावइँ।
अलप भूख त्रिस अलप, नयणि बहु नीद्र न आवइ।
आसणि अंग सुरंग, जुगतिसुं काम जगावइ।
भगति जुगति भरतारसुं, करइ अहोनिसि कांमिणी।
कहि राघव सुलितांण सुणि! पुहवि इसी हुइ पदमिणी॥169॥

।।चोपई।।

इणि परि पदमिणिना अहिनाँण, निसुणी हरष धरइ सुलिताँण।
अम्ह घरि हरम परीक्षा करउ, पदमिणि हुइ ते जूदी धरउ॥170॥
व्यास भणइ-संभलि सुलिताँण, तू मुझ साहिब सुगुण सुजाँण।
हुं तुझ हरम निरखुँ नहीं, विण निरख्या क्युं परखुं सही?॥171॥
म कहसि वात निहालण तणी, तव ते जंपइ डिल्ली धणी।
साहि कहई-संभलि हो व्यास, मणिमय एक करउ आवास॥172॥
तिण माहे तेहना प्रतिबिंब, निरखी परख करउ अविलंब।
सामगरी सहु भेली करी, राघव माहे आणिउ धरी॥173॥
मणिमय मंडप माहे व्यास, परखइ हरम तणउ परगास।
हस्तिणि चित्रिणि नइँ सुंखिणी, निरखी नारी न का पदमिणी॥174॥

।।कवित्त।।

रयण महलि अलावदी, साहि राघव हक्कारी।
नयणि नारि निरखेवि, परखि अब हरम हमारी।
हंस-गमणि हँसि चली, नारि निरमल मयमत्ती।
सुर-नर-गण-गंध्रव्व, पेखि भूले अनिरुत्ती।
अइसी सवे अंतेउरी, पभणि व्यास पेखी घणी।
हस्तिणि कि चित्रिणि सुंखिणी, नही साहि घरि पदमिणी॥175॥

।।चोपई।।

इम निसुणी पभणइ पतिसाह, विण पदमिणि केहउ उच्छाह।
पातसाही पद्मिणि विण किसी, पदमिणि नारि हीया महि वसी॥176॥
तउ हुँ जउ परणुं पदमिणी, केथी कीजइ ए पदमिणी।
हस्तिणि चित्रिणि नइ सुंखिणी, घरि घरि नारि लहीजइ घणी॥177॥
विण पदमिणि नवि पोढुं सेज, विण पदमिणि न हसुं हित हेज।
विण पदमिणि न करूं सुख-संग, विण पदमिणि न रमुं रति-रंग॥178॥
चमकइ चित महि नितु पदमिणी, वलतउ जंपइ डिल्ली-धणी।
कहि राघव! किहां छइ पदमिणी? जेहनइ हुइ ते आणुं हणी॥179॥
ठावी ठोड वतावउ तेह, जिम जई ल्यावुं पदमिणि गेह।
वलतउ व्यास पयंपइ एम-पदमिणी नारि लहीजइ केम?॥180॥
सिंघलदीप अछइ पदमिणी, दक्षिण दिसि विचि धरती घणी।
आडउ मावइ उदधि अथाग, तिणि तेहनउ कोइ न लहइ माग॥181॥
साहि भणइ-संभलि मुझ वात, मो आगलि सिंघल कुण मात।

सरग पताल समेतउ खणी! काढु नारि जई पदमिणी॥182॥
हय-गय-पाखरि सहु सज किया, घोर दमामा नोबत दिया।
बाहरि डेरा दीया सही, लसकर सहूवइ आया वही॥183॥
सिंघल ऊपरि चडीउ साहि, कोपाटोप की पतिसाहि।
पदमिणिसुं मनि अति अभिलाष, लसकर लारि सतावीस लाख॥184॥
असि चडि चालिउ आलिम जिसइ, दह दिसि देस संकाणा तिसइ।
गयणंगणि बहु ऊडइ रेण, सूर न सिसिहर सूझइ तेण॥185॥
सेषनाग सहि सकइ न भार, आलिम चालिउ हुइ असवार।
घण जिम गाजइ गयवर घणा, पार न लाभइ सुभटां तणा॥186॥

॥चोथो खण्ड॥

॥कवित्त॥

असपति कीउ आरंभ, चडवि चंचल दक्षण धर।
पतिसाहि कोपीउ, कवण छूटइ सिंघल नर।
दल-वादल पतिसाह, जुडीउ संग्राम सुहड भड।
नव लख त्रिगुण तुरंग, सहस सोलह मयगल घड।
सुरिज खेह लोपी गयउ, पायालई वासुगि डुल्यिउ।
चिहुँ चक्कराइ संसय पड्यउ, पातिसाहि किसु परि चड्यउ॥187॥

॥चोपई॥

आलिमसाहि की इलगार, साथ सबला जोध जुझार।
अखलित गति उलंघी मही, समुद्र समीपइँ आव्या वही॥188॥
रण-रसीउ नइ अति रंढाल, आलिमसाह करइ धख चाल।
बूरी समुद्र करुं थल-खंड, सिंघलदीप करूं सित खंड॥189॥
पकडुं सिंघलपति जीवतउ, पदमिणि आणुँ तउ हुं हतउ।
एम कही ऊतरीउ साहि, लसकर दीधउ ले जल माहि॥190॥
छडे पयाणे जाउ छंडि, सिंघलदीप करउ सित खंडि।
एम हुकम आलिम नउ हूउ, लसकर बूडी माहे मूउ॥191॥
आलिम नइ अति चडीउ कोप, कोप तणउ कीधउ आटोप॥
प्रवहण नाव घडाव्या नवा, चडीया जोध वली जूझिवा॥192॥
लाख-लाख एकीकउ लहइ, रण-रसीउ कुणश् वाँसइँ रहइ।
आगलि एम कहइ वलि धणी, ए वेलाँ छइँ सुभटाँ तणी॥193॥
लडी-भिडी सिंघल मेलयो, माहि जई माझी झेलयो।

चाल्या जोध घणा जूझार, पांणी माहि कीउ पइसार ॥194॥
आगलि कहर भमइ भमरीउ, जाणि कि सिंघलि-सुर समरीउ।
ते माहे प्रवहण गिया जिसइ, खंडो-खंड हूआ सहु तिसइ ॥195॥
फरीआदे लागी फरीआदि, ऊगारउ आलिम अवलादि।
दरीउ दूठ महा दुरदंत, उदधि तणउ नवि लाभइ अंत ॥196॥
वड-वड सुभट रह्या जल माहि, अंबुधि न सकइ को अवगाहि।
पदमिणि नारि पडउ पातालि, आलिम ए तुम्ह छंडउ आलि ॥197॥
वलतउ आलिम इणि परि कहइ, मो आगलि क्युं दरीउ रहिइ?।
सुभट मूआ ते गई बलाइ, अवर घणेरा आणुं जाइ ॥198॥
वरस सहस-इक रहिस्युं इहाँ, विण पदमिणि किम जाउं तिहाँ।
असपति कीधउ वलि आरंभ, तेड्या सुभट घणा सारंभ ॥199॥
सुभट सहू संकाणा हीइ, फोकट दरीआ माहे दीइ।
काम-काज नवि सीझइ कोइ, हठीउ आलिम न रहइ तोइ ॥200॥
आलिम मनि अति अमरस घणउ, पार न पांमइ दरीआ तणउ।
खाण पीण निद्रा परिहरी, असपति मनि हुई चिंता खरी ॥201॥
॥कवित्त॥
कोपि चडिउ सुलिताँण, खांण अर पांन न भावइ।
हिकमति हेक हलावाँ नवी, व्यासइँ साची मती सीखवी।
सहस एक साकतिसुं तुरी, आधा आणउँ गज-पाखरी ॥210॥
पहिरावउ सोवन सिणगार, कोडि एक आणउ दीनार।
नाव भरावउ बहु नव नवी, पट्टकूल बहु ऊपरि ठवी ॥211॥
कंचण-कलस घणा सिरि ठवउ, अण दीठा नर इम सीखवउ।
सिंघल पति मेल्हउ छई डंड, आलिम! अवकइ मुझ नइ छंडि ॥212॥
नाक नमणि मइँ कीधी एह, हुं छुं तुम्हनी पगनी खेह।
एम कही राखउ अभिमाँन, जिम बाहुडि जायइ सुलितान ॥213॥
अवर उपाइ न दीसइ कोइ, हरषित सुभट हुआ सहु कोइ।
रातो-राति कीया परपंच, छांना मेल्या सगला संच ॥214॥
आलिम साहि न जाणइ वाति, आविउ डंड हूउ परभात।
जागिउ आलिम जगती-धणी, मन माहे थी चिंता घणी ॥215॥
आगलि वाविउ वाहणि जिसइ, जलधि माहि ते दीठा तिसइ।
साहिब कहइ किसुं छइ एह? तव ते व्यास कहइ ससनेह ॥216॥
साँमि सकइ तउ सिंघल तणी, परिघल आवी पहिरामणी।

झलकइँ तोरण चूनी चंग, ऊपरि कंचण-कलस उतंग।।217।।
फरहर नेजा धज फरहरई, उदधि माहि आवई इणि परइँ।
आलिम मनि हूउ आणंद, देखी प्रवहण-वाहण-वृंद।।218।।
ते पिण आव्या बाहरि तरी, साकति सगली आगलि करी।
असि नाँखी नइ आव्या धाइ, पातिसाहि नइ लागा पाइ।।219।।
डंड-डोर हय-हाथी घणा, सेवक आव्या सिंघल तणा।
विनय करी भाषइ वीनती, तु मोटउ छइ डिल्लीपती।।220।।
सिंघलंपति तुम्ह पगनी खेह, तिणि महिमाँनी मेल्ही एह।
ए चूनउ होसी तुम्ह पाँनि, मया करी हिवकइ दिउ माँन।।221।।
तुं मोटउ जाणे जगदीस, नमताँसु न करउ हिव रीस।
विनय-वचन राजा रीझीउ, सिंघलपति नई सिरिपाउ दीउ।।222।।
पहिराव्या सगला परधाँन, मोटाँ नइ परि दीधु माँन।
सिंघलपति यु जे मेल्हउ, ते सुभटाँ नई विहची दीउ।।223।।
मान मुहतसुं मेल्ह्या तेह, सिंघलपतिसुं कीउ सनेह।
व्यास तणी सहु समरी वात, मेली धीगडि धातइँ-धात।।224।।

।।दूहा।।

जेह नइ घटि बहु बुद्धि वसई, ते सारइ सहु काम।
भंजई गंजइ वलि घडइ, वलि आणइ निज ठाम।।225।।8
कूच कीउ असपति पतिसाहि, आविउ डिल्लीपुरि निज माहि।
ठोडि-ठोडि गूडी ऊछली, गोखि-गोखि बहु नारी मिली।।226।।

।।कवित्त।।

मिलीया मीर मलिक, साहिजादा हिंदू सहि।
कहाँ सुरे पदमिणी, खारि खाधउ लसकर सहि।
राघव जंपइ इसउ, कहिउ इमाँरउ कीजइ!
आणउ माल बहुत्त, सुणि पाछउ वालीजइ।
अछइ लाछि अरदास सुणि, असिपति डंड भराईउ।
सुलिताँण ताँम सब झाइ करि, बाहुडि डिल्ली आईउ।।227।।

।।पाँचमो खण्ड।।

।।चोपई।।

अलिपति आविउ निज पुरि जिसइ, ठोडि-ठोडि नर भाषई तिसह।
पदमिणि नारि पखई पतिसाह, किम आविउ विण कीइ विवाह।।228।।

आलिमसाहि हतड़ आकरउ, पिण हिव सरल हूड पाधरउ।
विण परणी आविउ पद्मिनी, ठोडि-ठोडि भाषई कॉँमिणी॥229॥
आलिम आविउ निज आवासि, लेइ शस्त्र महि गयउ खवास।
माहि मेल्हि ते वलीउ जिसह, बडकणि बीबी बोलह तिसइ॥230॥
पातिसाहि परणी पद्मिणी, ते दिखलावउ अब हम भणी।
जात्तकराँ जोवाँ दीदार, निजरि निहाला हम इक वार॥231॥
जसु घरि पदमिणि नहीं दोइ च्यार, सगलउ सूनउ तसु संसार।
तेह तणी सुलिताँणी किसी? जेहसुं पदमिणि न रमइ हसी॥232॥
पातिसाहि हिव पद्मिणि पखे, ठाल ठालउ आयउ हुइ घरि रखे।
बीबी विलखउ कीउ खवास, आवी पुहतउ आलिम पासि॥233॥
बात सहू सविवेकी कहीं, असपति रीस हीया महि ग्रहीं।
मालिम मंडिउ अधिक अभ्यास, ततखिणि तेडिउ वलि ते व्यास॥234॥
सिंघलदीप पखे पदमिणी, वले किहाँ छइ कहि मुझ भणी।
व्यास कहइ- संभलि सुलिताँण, इक वलि पदमिणिनुं अहिठाँण॥235॥
चिंहु दिसि चविउ गढ चीतोड, वींझाचल महि विसमइ ठोडि।
रतनसेन राजा रंढाल, कलह करूर महा कंधाल॥236॥
तसु घरि नारि अछइ पदमिणी, सेषनाग सिरि जिम हुइ मणी।
लेई न सकइ कोई तेह, तिणि कारणि सुं भाखुं एह॥237॥
साह कहइ-संभलि हो बंभ, एवडुउ फोकट कीउ आरंभ।
बीजी वात सहू हिव तिजउ, गढ चीतोड तणउ सुं गजउ॥238॥
ऊभा-ऊभि लीउं पदमिणी, जीवतउ पकडं गढनउ धणी।
सबल सेन ले आलिम चडिउ, धर धूजी वासिग धडहडिउ॥239॥

॥कवित्त॥

सलहदार हथीयार, लेइ आगलि अवधारी।
सभाली सर-सेलि, माहि भेजी भंडारी।
बीबी तब पूछीउ, कहाँ पदमिणि तुम्हि आँणी।
च्यारि-पंच नही पदमिणि, किसी तिसकी सुलिताँणी।
तेडावि व्यास तत्तखिणिहि, पूछइ बात विगति वह।
सिंघलाँ टालि जिणि ठाणि हइ, कहाँ राघव पदमिणि कहू॥240॥
हसि बोलइ सुलताँण, माण धरि मूछ मरोडी।
रतनसेन करुं बंदि, चित्रगढ भाजुं त्रोडी।
पलाण्याँ पतिसाह, जलय-थल बहु अकुलाँणइ।

स्रग्गि इंद्र खलभलिउ, पड्या दह-देस भगाँणइ।
फणिवइ पयालि वासुगि दुड्यउ, कहइ साहि विग्रह करुं।
मारुं सदेस हिंदूआण कउ, एक-एक जीवित धरुं॥241॥

।छठो खण्ड॥

गढ चीतोड तणी तलहटी, आविउ असिपति इणि परि हठी।
लाख सतावीस लसकर लार, हथीयारे लागा हथियार॥242॥
मइगल सबल करइँ सारसी, हय हीसारव भट पारसी।
आतसबाजी अधिक अगाज, गोला-नालि रह्या बहु गाजि॥243॥
दह दिसि मंड्या बहु दुमदमा, सुभट सहू दीसइँ ऊजमा।
दलकई चिहुँ दिसि बहु ढीकुली, न सकइ कोइ पइसी नीकली॥244॥
दुमकि दुमामा घूमइँ घणा, वाजइ ढोल घण-साँघिणा।
भभकइ भुंगल भेरी भूर, रणकइ रोस भरया रण-तूर॥245॥
हुइ सरणाई सिंधू साद, परबत माहि पडई पडसाद।
हठी आलिम साहि अभंग, जुद्ध तणा करि जाँणइ जंग॥246॥
रतनसेंन पिण रोसइँ चडिउ, दीठउ आलिम आवी पडिउ।
सुभट सेंन सज कीधी सहू, बलवंत बोलइ बहसे बहू॥247॥
साहि भलइँ तुं आविउ सही, पिणि हिव नासि म जाए वहीं।
नासंतों छइ नर नई खोडि, हुँ ठावउ छुं इण हिजि ठोडि॥248॥
हिवइँ दिखाडिसु माहरा हाथ, तुं पिणि सज करें निज साथ।
ढीलीपति मत ढील रहइ, सुभट तिको जे पहिली कहइ॥249॥
तुं सिंघलथी आविउ नासि, तिणि कारणि तोनइ शाबासि।
तोनइ छइ नासणनी टेव, दीठइ मुंहि मत नासह हेव॥250॥
कीध कोट सजे साबतउ, फिरतां दीसइ अति फाबतउ।
पोलि जडावी पेठा माहि, सुभट घणा साह्या गज-गाहि॥251॥
आगलि पतिसाह अराति कराल, तेल पड्य बलि ऊठी झाल।
हिंदू बोल बघा बे बडा, अब क्या सुभटो देखो खडा॥252॥
गढ रोह मंडाण घणउ, तिम-तिम कोप वधइ बिहुं तणउ।
बेही बलवँत बेही दूठ, पूरउ परिगह बिहुंनी पूठि॥253॥
जे भाजइ ते लाजइँ घणुं, कुल अजूआलइँ बे आपणुं।
गोला-नालि वहइ डीकली, बाहरि को न सकइ नीकली॥254॥
गोफणि गयणि वहई अति घणी, रीठ पडइँ अति रोढाँ तणी।

कुहक बाण करडाटा करइँ, लसकर लंघी जाई परइँ ॥255॥
वाण बिछूटइँ बूटइँ तणी, फूटइँ फोज चिहुं दिसि घणी।
झूझइँ-बूझइँ सघली कला, भुरजि-भुरजि भड ऊछौंछला॥256॥
झाडइ झंडा पाडइँ पाघ, ऊडाडइँ धज गयणि अथाग।
ताकइ हाकइ वाहइ तीर, मारइ मयगल मुंगल मीर॥257॥
फाडइ डेरा हेरा करी, न सकइ को पेसी नीसरी।
कलली कोप करई कंधाल, फारक मारि करई द्यई फाल॥258॥
कोट तणा सगला काँगुरा, बीटी वइसई जिम वानरा।
वालई वाधी कवडी हणई, मरण तणड भय मनि नवि गिणई॥259॥
रतनसेंन वाँसइ राजाँन, पूरइ पाणी नइ पकवाँन।
जूझइँ सुभट सनेहाँ सहू, आलिम मनि हुई चिंता वहू॥260॥
आलिमसाहि कहइ -सांभलउ, सुभट सहू को भेला मिलउ।
गढ ऊपाडउ द्यउ सीघडा, पाड भुरज विहंडउ घडा॥261॥
सवल सुरंग दीउ गढ हेठि, देखी न सकइ जिम को द्रेठि।
कोट तणा ढाहउ काँगुरा, पाडउ खाँणि धकावउ धरा॥262॥
आसि-पासि पइसारउ करउ, कासुं मरण थकी मनि डरउ
लाँबी ले नीसरणी ठवउ, एकी कउ रोढउ खेसवउ॥263॥
लाख लाख ल्यउ रोढा तणउ, गढ ऊपाडि करउ आँगणउ।
सुभट सहू को धाया धसी, आलिमसाहि हूउ मनि खुसी॥264॥
रण-रसीउ जोवइ रमि राह, हलकारइ पूठईं पतिसाह।
ढीलीपति ढोवउ माँडीउ, पिण नवि कोट चिनी खाँडीउ॥265॥
साँझ लगइ हूउ संग्राम, पिण नवि सीधउ कोइ काँम।
घणा मराव्या मुंगल मीर, असिपति माँनी हीयइ हीर॥266॥
आलिमसाहि करइ आलोच, लसकर माहिं हूउ संकोच।
व्यास कहइ-संभलि सुलिताँण, कोट न लीजइ किम ही प्राण॥267॥
छान कोइ करउ छल-भेद, मत परगास मरम मजेद।
वात करावउ कपटइँ इसी, साहि हूउ हिव तुमसुं खुसी॥268॥
बोल-बंध दियउ माँगइ तिके, करउ सुगंद करावइ जिके।
विचलइ नहीं हमाँरी वाच, एम कही ऊपावउ साच॥269॥
मुंकउ महिं पाका परधान, इम कहवाउ दिउ हम माँन।
तेडी माहि खवाउ खाँण, द्रेठि दिखाडउ तुम्ह अहिठाँण॥270॥
पदमिणि हाथइँ जीमण तणी, मुझ मनि खंति अछइ अति घणी।

अवर न काई मागइ साहि, अलप सेनसुं आवइ माहि ॥271॥
एक वार देखी पदमिणी, साहि सिधावई ढीली भणी।
एम कही मुंक्या परधाँन, रतनसेंन पूछ्या दे माँन ॥272॥
कहउ किम आव्यउ तुम्हि परधाँन? तव ते बोलइँ सुणि राजाँन।
आलिमसाहि कहइ छई एम,- माहो-माहि करउ हिव प्रेम ॥273॥

॥कवित्त॥

हमसुं साहि परठव्या, करणकुं वाताँ भल्ली।
जइ तुम्हि मानउ वात, साहि वहि जावइ डिल्ली।
करि पदमावति दृष्टि, फेरि चीतोड जि देखुं।
विग्रह कोई नवि करूं, बाँह देह सब ही रखूं।
गलि-लाइ कंठि पहिराइ करि, बहुत मया आलिम करइ।
राउ रतनसेंन! सुणि बीनती, पुहर माहि दुत्तर तरह ॥274॥
वाँकउ गढ चीतोड सकति सुरताँण न लीजइ।
उठाईइ मुसाफ बोलि ज्यु राउ पतीजइ।
दंड द्रव्य न लीउं देस पर दल नवि गाहुं।
नही हम गढकी चाउ राउकुमरी नवि व्याहुं॥
अलावदीन सुरताण कहि-राज माहि नवि आहुडुं ।
राउ रतनसेंन मुझकुं मिलइ, नाक-नमणि करि बाहुडुं ॥275॥
कीउ उपंग सुलिताँण, मंत्र एइ सु उपाई।
मुझकुं गढ दिखलाउ, आप जनमंतर भाई।
हुं कृत क्रम्मज जम्म, सत्रु असुराँ घर पाँमी।
तु पूरव पुन्य प्रमाण, हुड चित्रकोटह स्वामी।
दोर काइ मछइ इक आतमा, आवि जंम मेलउ थयउ।
खीमकरण-भुज-मंत्रसुं राजा-वयण तिम भयउ ॥276॥

॥चोपई॥

बोल बंध द्युं साचा सही, विलछइ बात हमाँरी नही।
नाक नमणि करि कोट दिखाडि, पदमिणि-हाथइँ मुझ जीमाडि ॥277॥
पदमिणि नारि निहालण तणउ, मुझ मनि हरष अछाइ अति घणउ।
अवर न काँई मागइ माथि, जीमे जाऊँ पदमिणि हाथि ॥278॥
माहो-माहि करउ संतोष, राखउ हिव ए वधतउ रोष।
वलतउ भूपति बोलइ राण, माहरा कथन कहउँ सुलताण ॥279॥
रतनसेन कहि-सुणि परधाँन, वाताँ करताँ वाधइ वाँन।

पिणि जउ प्राँण दिखाडइ भूप, तउ नवि कोई रहइ रस-रूप ॥280 ॥
वात करइ जउ आलिमसाह, तउ हम मिलवा घणउ उछाह।
असपति आवइ अंगणि वही, प्रापति विण क्युं पामाँ सही ॥281 ॥
बोल बंध द्यइ साचा साहि, अलप सेनसुं आवहि माहि।
अम्ह घरि आइ अरोगउ धाँन, माहो-माहि वधइ ज्युं माँन ॥282 ॥

॥ सातमो खण्ड॥

परधाँने पूछिउ पतिसाह, वात वणे दीधी निज बाह?
आलिम सुंस करइ सहि झूठ, मुँहि मीठउ मन माहे दूठ ॥283 ॥
राघव व्यास कीउ मंत्रणउ, रतनसेन नृप झालण तणउ।
नृप-मनि कोइ नही छल-भेद, खुरसानी मनि अधिकउ खेद ॥284 ॥
ऊघाडी मेल्ही गढ-पोलि, मिलीया माँणस टोला-टोलि।
आलिम साथि लीया असवार, लोहइ लुंब्या त्रीस हज़ार ॥285 ॥

॥कवित्त॥

गढइँ चड्यउ सुलिताण, नालि उंबरां खवासाँ।
भमर एक भुल्लि गउ, चंद ज्युं भयउ उजासाँ।
ए चंदा खाइक्क, दान उर मानस मंगल।
एक चंद चंदणउ, सेज सोहइ रायाँ घर॥
फुजदार सबे हाजरि खडे, गिरि पदमिणि पाउद्धरइ।
अलावदीन सुलिताण सुणि, आलिम सिरि छत्राँ धरइ ॥286 ॥

॥चोपई॥

रतनसेंन सरलउ मन माहि, मंत्री तेडण मेल्यउ साहि।
साहिब! आज पधारउ सहि, रतनसेन तेडइ गहगही ॥287 ॥
व्यास सहित साथइं ततकाल, माहे पेठा सहु समकाल।
कला इसी का कीधी सोह, पइसंतउ नवि दीठउ कोइ ॥288 ॥
आवी माहि हुआ एकठा, तव सगला दीठा सामठा।
रतनसेंन मनि खुणसिउ सही, आलिम आविउ अंगणि वही ॥289 ॥
नृप पिण सेना सगली सार, असवारे मेल्ह्या असवार।
तुंगे-तुंग मिल्या एकटा, जाणि कि दीसइ बादल घटा ॥290 ॥
आलिम पिण न सकइ आगमी, न सकइ नृप पिण आलिम गमी।
आलिमसाहि कहइ सुणि भूप, काँइ तुम्ह मेलउ कटक सरूप ॥291 ॥
हुँ इहाँ विढवा आविउ नहीं, गढ जोएवइ जाइसु सही।

म धरउ मन महि खोटउ खेद, मुझ मनि कोइ नही छल-छेद ॥292॥
नृप जंपइ-आलिम! अवधारि, कटक कोइ मेलुं न लिगार।
जइ तुम्ह वचन हूउं हिव इसुं, कटक करी नइ करिवुं किसुं? ॥293॥
पिण तइँ आण्या त्रीस हज़ार, किणि कारणि एँवडा असवार?
तुझ मनि काँइ सही छइ वात, धूत पणारी दीसइ घात ॥294॥
आलिम जंपइ नृप! अवधारि, प्राँहुणडाँ नइ इम न पचारि।
थोडा हो अथवा हो घणा, झेली लीज निज प्राँहुणा ॥295॥
धाँन तणउ छइ आज सुगाल, घणा-घणा काँइ कहउ भूआल।
अम्हि आव्या था जिमवा सही, विढवा कारणि आव्या नही ॥296॥
जीमण रउ जाणउ संकोच, खरच करताँ आवइ खोच।
तउ वलि पाछा मेल्हाँ एह, जिम भाखउ तिम राखाँ तेह ॥297॥
भूप भणइ- संभलि पतिसाह, भलाइ पधार्या आलिमसाह।
बलि तेडावुं जाँणउ जिके, पिण लघु बोलउ म बोलउ तिके ॥298॥
परिघल पाणी परिघल धाँन, परिघल घोल घणा पकवाँन।
जीमउ भोजन भावइ जिके, पिण लघु बोल न बोलउ बके ॥299॥
बोलि-बोलि बे हुआ खुसी, हाथे ताली दीधी हसी।
माहो-माहि हूउ संतोष, टलीया सगला मनना दोष ॥300॥
रतनसेंन हिव निज घरि घणी, भगति करावइ भोजन तणी।
पदमिणि नारि प्रतइँ जई कहइ,- आलिमसु हिब जिम रस रहइ ॥301॥
तिण परि भोजन भगतई करउ, जिम आलिम मनि हरषइ बरउ।
पदमिणि नारि कहई- प्री! सुणउ, निज करि न करिसु हुं प्रीसणउ ॥302॥
षट रस सरस करुं रसवती, प्रीसेसी दासी गुणवती।
सिणगारउ सगली छोकरी, षाँति अछइ जउ तुम्ह मनि खरी ॥303॥
विसहस दासी रूप निधाँन, पदमिणि पासि रहइँ सुविधाँन।
रुप मनोपम रंभा जिसी, काम तणी सेना हुइ तिती ॥304॥
आसण बेसण सगला तेह, करसी काँम सहू ससनेह।
सगली साकति करि साबती, माँहि तेंडाविउ डिल्लीपती ॥305॥
परिघल परठा दीसाइ घणा, जाणि विमान अछइँ सुर तणा।
ठउडि ठउडि दीसइँ पूतली, घालइँ बाउ चिहुं दिसि वली ॥306॥
अनुपम रतन-जडित आवास, अगर कपूर अनोपम वास।
चिहुं दिसि दीसइँ चित्र अनेक, मंडप महल महा सुविवेक ॥307॥
तिहाँ आवी बेठो पतिसाह, मन महि आवइ अधिक उछाह।

पदमिणि पाँहइँ अधिक पडूर, दासी आवि दिखाडइ नूर ॥308॥
इक आवी बइसण दे जाइ, वीजी थाल मँडावइ ठाइ।
त्रीजी आवि धोवाडइ हाथ, चोथीं ढालइ चमर सनाथ ॥309॥
दासी आवइँ इम जू जूई, आलिम मति अति विह्वल हुई।
पदमिणि आ कइ, आ पदमिणि, सरिखी दीसइ सहु कामिणी ॥310॥
व्यास कहइ-संभलि मुझ धणी! ए सहु दासी पदमिणि तणी।
वार-वार स्युं झबकउ एँम? पदमिणि इहाँ पधारइ केंम? ॥311॥
मुष्टि करी रहउ साहि सुजाण, म हवउ वलि-वलि विकल अयाँण।
ए आवइँ ते सगली दासि, प्रमदा पदमिणि तणी खवासि ॥312॥
देखी दासी रंभ समाँन, आलिम-मनि अति हू गुमाँन।
जेहनइ दासि अछइँ एहवी, ते कहउ आप हुसी केहवी? ॥313॥
व्यास कहइ -सांभलि सुलिताँण! पदमिणि नारि तणा अहिनाँण।
झलकंती जाणे वीजली, कुंदण-कंति जिसी ऊजली ॥314॥
अंधारइ अजूआलउ करइ, देखंता त्रिभुवन मन हरइ।
परिमल कमल सरीख तास, भूला भमर न छंडइ पास ॥315॥
ते आवी छानी किम रहइ, सुणि आलिम! इम राघव कहइ।
आलिम एम कहइ-सुणि व्यास! धन्य! धन्य! ए सगली दासि ॥316॥
पदमिणि पासि रहइ नितु जेह, निजरि निहालइँ पदमिणि देह।
किण परि निजरि हुइसी पदमिणी? व्यास कहइ-सांभलि मुझ धणी ॥317॥
उंचउ दीसइ ए आवास, इहाँ छइ पदमिणि तणउ निवास।
रतनसेन राजा इहाँ रहइ, पदमिणि विरह खिण इक नवि सहइ ॥318॥

॥कवित्त॥

लखदह लहइ पल्यंग, सउडि सतलाख सुणिज्जइ।
गाल-मसूरी सहस, सहस गंदूआ भणिज्जइ।
तस ऊपरि दोवटी, मोलि दस लाखे लीधी।
अगर कुसुम पटकूल, सेजि कुंकुम पुट दीधी।
अलावदीन सुरिताण सुणि, विरह विथा खिण नवि खमइ।
पदमिणि नारि सिणगार करि, रतनसेन सेजइँ रमइ ॥319॥

॥चोपई॥

अउर न देखइ पदमिणि कोइ, जो देखइ सो गहिलउ होइ।
पदमिणि पुण्य पखे क्युं मिलइ, जिणि दीठी नारी ग्रव गलइ ॥320॥
इम ते व्यास अनइ सुलिताँण, वात करइँ बे चतुर सुजाँण।

तिणि अवसरि पदमिणि चीतवइ, देखुं असुर किसउ?– इम चवइ ॥321॥
तितरइ जंपइ दासी एक, गउख हेठि वइठउ सुविवेक।
ते देखण गउखइ गज–गती, आवी बेठी पदमावती ॥322॥
जाली माहे जोवह जिसइ, ब्यासइँ दीठी पदमिणि तिसह।
ततखिण व्यास वली पीनवइ, साँमी! पदमिणि देखउ हयइ ॥323॥
रतन–जडी देखउ जालिका, ते माहे दीसइ वालिका।
आलिम उंचुं जोवइ जिसइ, परतिख दीठी पदमिणि तिलइ ॥324॥
अहो! अहो! ए कहुं पदमिणि? रंभ कहुं, कइ कहुं रुखमिणी?
नागकुमरि कइ का किंनरी? इंद्राणी आँणी अपहरी?॥325॥
एहनउ रूप अनोपम एह, रूप तणी इणि लाधी रेह।
एहना एक अँगूटा जिसी, अवर नारि नहु दीसइ इसी ॥326॥
एहनी वात कहीजइ किसी, पदमिणि नारि हीया महि वसी।
मूर्छित चित्त हूउ पतिसाह, धरणि ढलइ वलि मेल्हइ धाह ॥327॥
व्यास कहइ - सांभलि नर–राज, फोकट काँइ गमाडउ लाज।
धीर धरउ साहस आदरउ, अवर उपाय वली के करउ ॥328॥
रतनसेन जउ पाँनइ पडइ, तउ ए पदमिणि हाथइ चढइ।
इम आलोची मेल्ही वात, धीरपणा विण मिलइ न धात ॥329॥
मौन करी सहू जीमिउ साथ, भगति घणी कीधी नर–नाथ।
फल फोफल देई तंबोल, माहों–माहि की रंग–रोल ॥330॥
चोआ चंदण अगर कपूर, करि कसतूरी केसर पूर।
माहो–माहि कीया छाँटणा, ऊपरि दीधा वागा घणा ॥331॥
परिघल दीधी पहिरामणी, भगति–जुगति अति कीधी घणी।
हाथी–घोडा देई घणा, संतोष्या सगला प्राँहुणा ॥332॥
हिव इम जंपइ आलिमसाह, माहो–माही साही बाह।
कोट दिखाडउ अब हम भणी, हम आयौं हूई वेला घणी ॥333॥
रतनसेन नुप साथइ थयउ, कोट दिखाडण लेई गयउ।
बिसमी जे–जे हुंती ठोड, फेरि दिखायउ गढ चीतोड ॥334॥
विसम घाट अति वाँकउ कोट, माहि न देखइ काई खोट।
गोला–नालि घणी ढीकली, कदही कोई न सकइ कली ॥335॥
गढ़ देखंता ग्रव सब गलइ, इसडउ कोट कदे नवि मिलइ।
हिव इम जंपइ आलिमसाह, माहों–माहे अधिक उछाह ॥336॥
काम काज कह्यो हम भणी, तुम महिमाँनी कीधी घणी।

सीख दिउ हिव ऊभा रही, आलिमसाह कहइ गहगही ॥337॥
भूप भणइ आघेरा चलउ! जिम अम्ह जीव हुइ अति भलउ।
एम कही आघ संचरिउ, गढथी वाहरि नृप नीसरिउ ॥338॥
नृप मनि कोइ नही वलवेध, खुरसाणी मनि अधिक खेध।
व्यास कहइ ए अवसर अछइ, इम म कहेज्यों न कहिउ पछइ ॥339॥

॥दूहा॥

अवसर चुक्का मेहला, वरसी काह करेस।
खड सुक्का गोरू मुआ, वाल्हा गया विदेस ॥340॥

॥चोपई॥

हलकारया आलिम असवार, माहों-माहि मिल्या जूझार।
रतनसेन झाल्यउ ततकाल, विलली वात हुई विसराल ॥341॥

॥सोरठा॥

रूखाँ माहे राउ, आँबा भणी परसंसियइ।
मुहि रस हीयइ कसाउ, कहु किम हीयइ पतीजियइ ॥342॥

॥दूहा॥

नृप, वयरी, वाघा तणउ, जे विश्वास करंत।
ते नर कच्चा जाणिए-आलिम एम कहंत ॥343॥
वयरी विसहर ब्याध बघ, ग्रासी गढपति राउ।
छल-बलि गृहिए दाउ धरि, लग्गइ कोइ न पाउ ॥344॥
तइं महिमांनी हम करी, अब तूं हम महिमान।
पदमिणि देइ करि छूटस्यउ, रतनसेन राजान ॥345॥

॥चोपई॥

साथि हुता जे सुभट सनेह, तियाँ तणउ तिणि कीधउ छेह।
नरपति आणिउ लसकर माहि, जाणि कि सूरिज गिलीउ राहि ॥346॥
बेडी घालि बेसारिउ राउ, आलिम जुलम कीउ अन्याउ।
भूप हतउ अति सबलउ सही, अबल हूअ जव लीधउ ग्रही ॥347॥

॥आठमो खण्ड॥

सुणी सहू गढ माहे वकी, वात तणी विणठी वाँनकी।
गढ माहे हुइ हलफल घणी, साही लीधउ जव गढ-धणी ॥348॥
मिलिया सुभट दहों दिसि वली, सेना सगली गढ महि मिली।
मिलिया माणस टोला टोलि, सबल जडावी गढनी पोलि ॥349॥

वीरभाँण सुत सुभटाँ माहि, बइठउ आवी ग्रही गजगाहि।
माहो-माहि करइ आलोच, सबल हूउ गढ माहि सँकोच॥350॥
एक कहइ-द्याँ राती वाह, एक कहइ जूझाँ गढ माहि।
एक कहइ-सँमी साँकडइ, जूझंताँ किम टाणु जुडइ॥351॥
एक कहइ-नहि नायक माहि, विण नायक हत सेन कहाइ।
नायक विण सहुँ आल पंपाल, पूलइ वाँध्यउ जिउँ सुसपाल॥352॥
एक कहइ मरवुं छइ सही, मूआँ गरज सरइ का नही।
सबलाँसुं नवि थाइ संग्राम, जिण परि तिण परि न रहइ माँम॥353॥
इम आलोच करइँ भट सहू, मन माहे भय हुउ बहू।
तितरइ आविउ इक परधाँन आलिमसाहि तणउ असमाँन॥354॥
खबर करावी आविउ माहि, एम कहइ छइ आलिमसाहि।
हमकुं नारि दियउ पदमिणी, जिम हम छोडाँ गढनउ धणी॥355॥
नही तरि प्राणइं लेशाँ सही, जउ तुम्ह इण परि देशउ नहीं।
जउ तुम्ह देशउ हम पदमिणी, तउ छूटेसी गढनउ धणी ॥356॥
नहीं तरि गढपति लीधउ, ग्रही गढ पिण हेवइ लेशाँ सही।
गढ लीधइ लीधी पदमिणी, हठीउ असपति करसी घणी॥357॥
मरशउ सुभट सहू ससनेह, कइ हम सीख करउ तुम्हि एह।
एम कही ऊठिउ परधाँन, तितरइ बोल्या ते ससमाँन॥358॥
वात विचारी कहशाँ अम्हे, ताँ लगि पडखउ इक दिन तुम्हें।
एम कही राखिउ परधाँन, सुभट करइँ आलोच समाँन॥359॥
कहउ हिवइ परि कीजइ किसी, विसमी वात हुई ए इसी।
जउ ए देशाँ इम पदमिणी, तउ पिण माँम रहइ नही चिणी॥360॥
विण दीधइ सहुविणसइ वात, पदमिणि विण का न मिलइ घात।
प्राणइ ए तउ लेशइ सही, जे इम आविउ छइ इहाँ वहीं॥361॥
प्राँणइ लेताँ विणसइ घणुं, न रहइ वाँसइ एको त्रिणुं।
नही तरि जाशइ इक पदमिणि, अवर विणास हुइ नहु चिणी॥362॥
वीरभाँण पिण पदमिणि दिसी, देताँ होवइ मन महि खुशी।
इणि मुझ मात तणउ सोहाग, लेई दीधउ दुख दउहाग॥363॥
तिणि कारणि देताँ पदमिनी, वलि मुझ मात हुइ सामिनी।
वीरभाण समझावी कहइ - पदमिणि दीवइ सगलुं रहई॥364॥
नाथ पखइ सहु काचउ हाथ, छल-बले भेद न जाँणइ धान।
एक समी कहि इक विपरीत, कोई भार न झालइ चीत॥365॥

सगले सुभटे थापी वात- पदमिणि देशाँ हिव परभाति।
इम आलोची ऊठ्या जिसइ, पदमिणि सहु सांभलीउ तिसइ॥366॥
पदमिणि हेव हीइ खलभली, वात बुरी मई ए साँभली।
खंडुं जीभ! दहुं निज देह! पिण नवि जाउं असुराँ गेह॥367॥
राजा इणि परि बंधे दी, वाँसइ ए आलोचह कीउ।
सगला सुभट हूआ सतहीण! हिव किण आगलि भाषु दीण॥368॥
वखत इसउ मुझ आविउ वहीं, सरणाई को देखुं नही।
हिव जगदीस करीजइ किसुं? देखउ संकट आविउं इसुं॥369॥
रे जीव! तुं नवि भाषें दीण, जीव! म होयो रे सतहीण।
मरताँ सहुवइ समरइ सही, दुख-सुख कर्म लिख्या होइ मही॥370॥
कर्म हर्त्ता कर्म कर्ता, कर्म लील विलास।
कर्म्मि आगलि को न छूटइ, राउ रंक नइ दास॥371॥
सीता वाहर रामचँद कीइ, द्रुपदी हरि लेइ पाँडुवा दीइ।
पदमिणि असुराँ छुटइ नही, रे! रे! जीव! मरण तुझ सही॥372॥
॥कवित्त॥
दइ पोलि छिटकाइ, भर्या गढ तुरकन भाया।
अउर गई घढ मंडि, साथि लसकरी सवाया।
आवत मिलीउ राउ, तब हि कीधी भुंजाई।
त्रीस सहस जुडि गया, साथि लसकरी सवाई।
खाण खाइ ऊठिउ जबहि, पकडि बाँह राजा ली।
वात करत लंघाइ पोलि, रतनसेन काठउ कोउ॥373॥
करे कटक अलावदी, आइ चीतोडि विलग्गउँ।
वाच बंध दे छलिड, राउ भूलउ मति भग्गउ।
कन्यउ मंत्र मंत्रियाँ, राउ छोडावे लिज्जई।
झूझण भलउ न होइ, पलटि पदमावति दिज्जई।
तनु दहुं जीभ खंडवि मरूं, जोगिणिपुरि पति पेखसुं।
पदमिणी नारि इम उच्चरइ- अब किस सरण उवेखस्युं॥374॥
बाइ! सुणी इक वात? हुई बाजार सवारी।
पदमिणि द्यउ पतिसाह, दुरंगू गढ राउ उवारी।
खीमकर्ण भुज मंत्र, देल्ह पदमसी बयट्ठा।
मिल्या पंच पंचार, सुभट सइँबल्य न दिट्ठा
चीतोड चारास्या सवि जुड्या, ताँ नवि सरणइ ऊवरूँ !
नवि रहुँ सेज सुलिताणकी, अबहुँ जीह खंडवि मरूं॥375॥

।।चोपई।।

इण अवसरि हिव हूउ जेह, थिर मनि करि नइ निसणउ तेह।
तिणि पुरि गोरउ रावत रहइ, खित्रवट रीति खरी निरवहइ।।376।।
तसु भत्रीजउ बादिल बाल, वेरी कंद तणउ कुदाल।
ते बेही बहु बलना धणी, बेही राउत बेही गुणी।।377।।
राउ थकी रीसाणा रहइ, ग्रास न काई नृप नऊ ग्रहइँ।
घरे रहई न करइँ चाकरी, रतनसेनि मुंक्या परिहरी।।378।।
ते बेही जाता था जिसइ, गढरोहउं मंडाण तिसइ।
रुधइ गढि नवि जाई तेह, जाताँ लागइ खित्रवटि खेह।।379।।
तिणि कारणि ते नवि नीसरइँ, खरच-वरच पोता नउँ करइँ।
अंग तणउ न तिजइ अभिमाँन, माँन विना नवि लाभइ माँन।।380।।
खित्री ते, जे खित्रवट धरइ, अपजसथी मन माहे डरइ।
रूधे जाताँ न रहइ माम, करई अहो निसि नृपनउ काम।।381।।
ब्युंही तीरइ अधिकउ त्रेष, साँमि-धरम पालइँ सविशेष।
गढनी लाज घगी निरवहइँ, इणि परि ते बे राउत रहइँ।।382।।
हिव चिति चिंतई इम पदमिणी- गोरा-बादिल बेही गुणी।
त्याँहुँ जाइ करुं वीनती, वीजाँ माहि न दीसई रती।।383।।
इम आलोची पदमिणी नारि, चडि चकडोलि पहुंती वारि।
साथइ लेइ सखी परिवार, आवी गोरिलरइ दरबारि।।384।।
आगलि गोरउ बेठउ दिट्ठ, तव तसु नयणे अमीय पइट्ठ।
गोरई दीठी जव पदमिणी, तव ते हरषित हूवो गुणी।।385।।
गोरउ साँम्हों धायो धसी, विनय करी इम वोलइ हसी।
मात! मया बहु कीधी आज, कहउँ पधार्या केहइ काज।।386।।
आलसूआँ माहि आवी गंग, पवित्र हुआ मुझ अंगण-अंग।
बलती बोलई इम पदमिणी, हुँ आवी तुम्ह मिलवा भणी।।387।।
सुभटे सगले दीधी सीख, दया धरम नी लीधी दीख।
सीख दिउ हिव तुम्ह पिण सही, जिम असुराँ घरि जाउं वही।।388।।
सुभट सहू हूआ सत्त हीण, खिति-पुडि खित्रवटि हूई खीण।
सुभटे सगले दाखिउ दाउ, पदमिणि दे नइ लेखा राउ।।389।।
हिव तुम्ह सीख दिउँ छउ किसी? सुभटे सगले कीधी इसी।
गोरउ जंपइ- सुणि मुझ मात! गढ माहे हुँ केही मात्र!।।390।।
खरच न खाओं राजा तण, पूछइ कोइ नही मंत्रणउ।

पिण मनि आरति म करउ मात! भली हुसी हिव सगली वात॥391॥
जइ तुम्हि आव्या मुझ घरि वही, तर असूराँ घरि जाशउ नही।
सुभट तणउ ए नही संकेत, अस्त्री देइ नइ लीजइ जेत्र॥392॥
वरि मरियउ सुभटाँ नइ भलउ, जिणि परि तिणि परि करिवउ किलउ।
अस्त्री देइ नई लीजइ राऊ! सुभट न थापइँ एहवउ दाउ॥393॥
जाण्या सुभट वडा जूझार, अस्त्री देइ नइ ल्यइँ भरतार।
ते जीवी नइ करिशइँ किसुं, जिणे काम आलोच्युं इसुं॥394॥
पदमिणि जंपइ- गोरा सुणउ, इणि घरि छाजइ ए मत्रंण:।
सिरिखइ सिरिखउ सगले थाइ, भीत पखे नवि चित्र लिखाइ॥395॥
भीति सदाइ झालइ भार, त्राटी घलिनइ थावइ छार।
वीजा ऊभा मुंक्या सही, तउ हुं तुझ घरि आवी वही॥396॥
॥कवित्त॥
तुं हिज गउ गोरिल्ल! तुं हिज दल माहे वड्डउ।
तुं हिज गउ गोरिल्ल! तुं हिज मोरा प्रिय अड्उ।
तुं हिज गउ गोरिल्ल! तुं हिज दल बीडउ झल्लइ।
सुणि राउत गोरिल! नारि पदमावती वुल्लइ।
अवर सुहड सत्त हीण हुअ, जस लीजइ तइँ एकलह।
अल्लावदीन सुं खग्ग बलि, रतनसेन छोडावि लइ॥397॥
॥चोपई॥
गोरउ जंपइ सुणि मुझ माइ! गाजण हुंतउ मुझ वड भाइ।
तसु-सुत वादिल अति बलवंत, तेह नइँ पिण जाइ पूछाँ मंत॥398॥
बेही आया वादिल दिसी, बादिल साँम्हो धायउं धसी।
विनयवंत पग करीय प्रणाम, पूछह् बादिल केहउ काम॥399॥
गोरउ जंपइ वादिल सुणउ, सुभटे कीदउ ए मंत्रणउ।
पदमिणि देइ नई लेशाँ राय! अवर न मंडइ कोइ उपाय॥400॥
पदमिणि आवी आपाँ पासि, हिव तव कासुं कहइ विमासि।
तोनइ पूछण आव्या सही, करशाँ वात तुहारी कही॥401॥
सुभट सकोई बेठा फिरी, जूअण बात न ल्यई आदरी।
आपेई पिण अछाँ उदास, राउ तणड नही ग्रास न वास॥402॥
हिव तुं जेम कहइ तिम कराँ, नीचउ देताँ लाजे मराँ।
आँपे डीले छाँ दुइ जणा, आलिम आगलि लसकर घणा॥403॥
किम जीपेशाँ कहउँ एकला, एकला कदेई न हुवइँ भला।

तिणि कारणि तो पूछण भणी, आविउ लेई हुँ पदमिणी ॥404॥
पदमिणि वादिलसुं बलि भणइ- सरणइ आबी हुँ तुम्ह तणइ।
राखि सकउँ तउ राखउ सही, नहीं तरि पाछी जाउं वही ॥405॥
खडु जीभ दहुं निज देह, पिण नवि जाउं असुराँ गेह ।
लाखा जमहर करि नइ बलुं, पिणि नवि कोट थकी नीकलुं॥406॥

॥दूहा॥

इम सुणि बादिल बोलीउ, दूठ महा दुरदंत ।
जाणि कि गयवर गाजीउ, अतुल बली एकंत॥407॥
सुणि बाबा! बादिल कहइ, सुभटाँसु कुण काँम?
सुभट सहू सूए रहउँ, ए करिस्युं हुं काँम॥408॥
काका! थे काँइ खलभलउ, अंगि म धरउ उताप।
तउ हुँ बादिल ताहरउ, सयल हरूं संताप॥409॥
पदमिणि अंगणि पग दीउ, पवित्र हूउँ मुझ गेह ।
महलि पधारउ माउली, दुख म धरउ निज देहि॥410॥
आलिम भांजुं एकलउ, जउँ वाँसइ जगदीस।
तउ हुं बादिल बहसीउ, जउ आणुं अवनीस॥411॥
बीडउ झालि बादिलइ, बोलइ इम बलवंत।
आलिम गंजी आप बलि, आणुं नृप एकंत॥412॥
सुभट सहू सूए रहउ, सुभटाँसु कुण काँम?
ए सगला, हुँ एकलउ, निपट करूं निज नाँम॥413॥
बादिल बोलइ- पदमिणी, मनि म करे ऊचाट।
तउ हुँ गाजण जनमीउ, जडउ भंजुं गज-थाट॥414॥
अरि-दल गंजुं एकलउ, भंजुं नृपनी भीड।
राम काजि हणमति कीउ, तिम टांलु तुझ पीड॥415॥
सत्ति! तुहारइ साँमिणी, मली महादल मांन।
गढ माहे आणुं घरे, रतनसेन राजाँन॥416॥
जीह सडउ ते जण तणी, दाखिउ जिणि ए दाउ।
पदमिणि साटइ पालटे, आणेशाँ घरि राउ॥417॥
लूण उतारइ पदमिणी, वाला वादिल अंगि।
बिरद बुलावे बादिला, इम जंपइ कणयंगि॥418॥
गोरउ हिव अति गहगहिउ, सूरिम चडी सरीर।
कायर पूछ्या कंपवई, धीर वधारइ धीर॥419॥

घरे पधारउ पदमिणी, आरति म करउ काँइ।
वादिल बोल्या बोलडा, ते झूठा नवि थाइ ॥420॥
सूर न पश्चिम ऊगमइ, मेरु न कंपइ वाइ।
सापुरस बोल्या नवि टलइ, मूवाँ अवर विहाइ ॥421॥

।नोमो खण्ड॥

पदमिणि घरे पधारी जिसइ, वादिल माता आवी तिसइ।
सुणीउ सगलउ तिणि संकेत, हीया माहिन मावइ हेत ॥422॥
नयण झरइँ मुंकह नींसास, अबला दीसइ अधिक उदास।
इणि परि आवी दीठी मात, विनय करी सुत पूछइ वात ॥423॥
किणि कारणि तुं माता इसी? कहउ वात मन माहे किसी?
आरति चीत किसी तुझ भणी? काँह दीसइ आमण-दूमणी ॥424॥
मात कहइ सुणि बादिल बाल! माडा काँइ पडइ जंजालि?
दूध-दही तुं मुझ नइ एक, तो विण काइ न बीजी टेक ॥425॥
तुं मुझ जीवन प्राणाधार, तो विण सूनउ सहि संसार।
तइँ ए काँइ कीउ मंत्रणउ, वाँसइ कासुं देखइ घणउ ॥426॥
सुभट घणा गढ माहि समाज, त्याँ बेठाँ तो केही लाज?
ग्रास बास को नही नृप तणउ, आपे खरच कराँ आपणउ ॥427॥
घणा जिके खाइं छइँ ग्रास, सुभट रह्या छइ तेइ उदास।
तुं किणि करणि हुइ अझलखउ, विणठी वेला का नवि लखउ ॥428॥
रिणचट रीति न जाँणउ अजे, वात करी जावउ वजवजे।
कर कीया छइँ तइँ संग्राँम? अण जाण्या किम कीजइँ काँम? ॥429॥
आलिम किणि परि गंज्यउ जाइ? आटइ लूण किसानइ थाइ।
बादिल! पुत्र अछइ तुं बाल! मत मुझ दुःख दीइ अणगाल ॥430॥
परणिउ अछइ अजे तुं आज, कहताँ आवइ मन महि लाज।
पहिली साझउ घरनी बहु, किला करेयो पाछइ सहू ॥431॥
अजे अछइ तुं वादिल बाल, कुसुम कली जिम अति सुकुमाल।
म करसि वात विमास्या पखे, अति ऊछंछल थाऊ रखे ॥432॥
बादिल जंपइ वलतउ हसी- माता! वात कही तई किसी?
किणि परि बाल कहिउ मुझ माइ! पहिली मुझ नइ ते समझाइ ॥433॥
धूलि न चुंथु रोउं नही, आडी न करूं साडी ग्रही।
थाँन न चुंखुं मुखि आपणइ, पोढुं नही कदे पालणइ ॥434॥

काँइ कहइ तुं मुझ नइ बाल, देखि जेम करूं धकचाल।
राउ घणा ऊथापे थपुं, इसडइ काँमि किसुं ऊतपुं?॥435॥
सीसि उडाडुं सगला सित्र, तउ हुँ जाणे ताहरउ पुत्र।
गाजन बाप सही गाजवूं, मत मनि जाँणइ कुल लाजवुं॥436॥
खित्रवटि रिणवटि पाछउ खिसुं, तउ तुं मात कहे मुझ इसुं।
भिडताँ पाछउ पग जउ दीउ, तउ-तउ माता फाटउ हीउ॥437॥
खल-दल खंडि करूं विध्वंस? तउ तुं काँइ करइ ऊचाट।
म करसि माता मनि अणदोह! सगले आज वधारूं सोह॥438॥
गाजन आज करूं गाजतउ, रण-रस रंगि रमुं राजतउ।
सीह सिबद सुणि गय घड जाँइ कायर वचन कहइ मुखि काँइ॥439॥
॥कवित्त॥
आइ माइ तिणि ठाइ, बइठि बादिल्ल पासि तस।
तूय विण पुत्र निरास, तुं हिज चालिउ जूझण कसि?
नयण मोरू बादिल्ल! प्राण बादिल्ल भणावइ।
वयण मोरू बादिल्ल! वारवराँ समझावइ।
आवती माइ तव पेखि करि, ऊठि बादिल प्रणाम कीय ।
बालक पुत्र! जुगि-जुगि जियो, कवण कुमंत्री मंत्र दीय॥440॥
रे बादल मुझ बाल! वात तू वदइ करारी।
मनि परिहरि अभिमाँन, बोल बोलउ सुविचारी।
सुभट होवई दस वीस, तास वलि रामति कीजइ।
आलिमसाह अथाह, तास विढि नवि जीपीजइ।
बालक मति ऊछाँछली, जूझि-बूझि जाणउ नही।
मुझ मानि वचन सुपसाउ करि, जउ मुझ सुत बादल सही॥441॥
हुं कित बालउ माइ! धाइ अंचलि नवि लग्गुं।
हुं कित बालउ माइ! रोइ भोजन नवि मग्गुं।
हुं कित बालउ माइ! धूलि लिट्टुं नवि फिट्टुं।
हुं कित बालउ माह! पाह पालणइं न लुट्टुं।
बालउ रि माइ तइँ क्युं कहिउ, अवर राइ रक्खाविउ।
सुलितांण-सेन-विनडुं नही, तउ तबहि माइ फुट्टउ हीउ॥442॥
रे वाला वादिल्ल! मनह आपणउ न बूझसि।
रे वाला बादिल्ल! कुमर, कहि किसि मुहि झूझसि।
गढ वीटिउ चिहुं ठाइ, सूर निवसंति खित्री वसि।

तूअ विण पुत्र निरास, तुं हिज चलिउ झूझण कसि।
इम कहई माइ-बादिल सुणवि, वयणि मोरउ चित्त धरी।
साहण समुंद सुलितांण दल, केम वच्छ अंगमि सुधरी।।443।।
हुं कित वालउ माइ रू मेछ पाँखाँ भरि पिल्लुं।
हुं कित बालउ माइ! सपत पातालहि पिल्लुं।
बालइ वासिग नाग, कान्हि आणीउ भुजाँ वलि।
बालइ जाजइ सूर, सीस जस दीध साँमि छलि।
बालइ बलालि एतउ कीउ, दुरयोधन बंधवि लीउ।
मलितांण सेन विनडुं नही, तवहि माइ फुट्टउ हीउ।।444।।

।।चोपई।।

सुत नउ सूर पणउ संभली, माता मन महि अति खलभली।
माता वचन न मानह रती, माता माहि गई विलवती।।445।।
वात सहू वहुअर नई कही-जाई राखउ निज पति ग्रही।
मुझनी सीख न माँनइ तेह, रहसी नेट तुहारह नेहि।।545।।
सहु सिणगार सजे साबता, पहिरी वस्त्र नवा फाबता।
हाव भाव करि वचन विलास, जिण परि तिण परि घाले पास।।447।।
एँम सुणी बहूअर नीकली, झलकइ कंति जिसी बीजली।
सुकलीणी सजि सोल सिंगार, आवी जिहाँ छइ निज भरतार।।448।।
रूपइं रंभ जिसी राजती, ललित वचन बोलइ लाजती ।
नयणे निरमल दाखइ नेह, साँमि धरमि साची ससनेह।।449।।
कोमल कमल-बदन कामिनी, दीपइँ दंत जिसी दामिनी।
हसित वदन बोलइ हितकरी, साँमी! वात सुणउ माहरी।।450।।
आलिम दूठ महा दुरदंत, कहि नइ किसी परि झूझसि कंत ।
अरि बहुला नइ तुं एकलउ, कहउ किसी परि करिसउ किलउ।।451।।
बादिल बोलइ-सुणि कामिणी! जो ए जंग करूं जामिणी।
गज बहुला नई एक ज सीह, तउ पिण नावइ तसु मनि बीह।।452।।
मयगल माता मद बहु झरइँ, सीह थकी किम नाठा फिरइँ।
सीह सदाई साँम्हों धसइ, वाढ्यउ ई नवि पाछउ खिसह।।453।।
सुंदरि बोलइ- साँमी! सुणउ, खोटउ म करउ ए मंत्रणउ।
करताँ वात अछइ सोहिली, पिण ते वेला अति दोहिली।।454।।
बादिल बोलइ- सुंदरि सुणउ, भय म दिखाडउ मुझनइ घणउ।
कायर वात कराइ हसि-हसी, वेला पडीयाँ जाइँ खिसी।।455।।

ते हुं पुरुष नही वादिलउ, जो ए जिणपरि झालुं किलउ।
वलती बनिता बोलइ वली, कंता! बात न जायइ कली।।456।।
हय हीसारव गज सारसी, प्रबल करइँ मुंगल-पारसी।
गोला-नालि वहइँ ढीकली, न सकइ को पेसी नीकली।।457।।
चउगढ-दा नितु चोकी फिरइ, शस्त्र घणा अरि अंगइ धरइ।
तिहाँ तुं पइसिसि किम एकल, ए आलोच नही छइ भलउ।।458।।
वादिल वोलइ वलतउ हसी, तइं ए वात कही मुझ किसी!।
हयवर गयवर पायक पूर, हेकणि हाकि करूं चकचूर!।।459।।
लाख सतावीस लसकर लूटि, केवी सगला नाँखुं कूटि!।
माल घणउ आंणु अरि मारि, तउ मुझ माता झेलिड भार!।।460।।
कांता जंपई रहि हो कंत! मुझ मति माहि न भाजइ भ्रंत।
अजे न साजी छइ तइं सेज, निज नारी सुं न रमिउ हेजि।।461।।
काम-युद्ध नवि जाणउ करे, निज नारी थी नासउ डरे।
बालक जेम अजे निकलंक, दे नवि जाणइ अधरे डंक।।462।।
ते तुं किणी परि झूझसि सहि? वलतउ बादिल बोलइ नही।
नारी जंपइ- सुणि मुझ नाथ, मुझ तनि अजे न लायउ हाथ ।।463।।
ते तुं अरि-दल भंजसि कँम? वलतउ बादिल जंपइ एम।
सुणि सुंदरि! तुं म करे हेज, तिणि दिनि आविसु तुझनी सेज।।464।।
जिणि दिनि जीपिसुं वयरी एह, तउ हुं रमस्युं रंग सनेह।
ताहरी वात कही तइँ सही, पिण हिव रमल करुं ए वही।।465।।
ताँ लगि सेज न हेज न नेह, आलिम भाँजि करुं नहि खेह।
ताहरइ वचनें भाजउ आज, गाजननंदन आवइ लाज।।466।।
वलती नारि पयंपइ वली, सूरिम सगलइ तनि ऊछली।
भलई! भलई! साँमी स्याबासि, भवि-भवि हुँ छुँ थारी दासि।।467।।
जिम बोलइ छइ तिम निरवहे, मत किणि वातइ जायइ ढहे।
लाज म आणइ कुलि आपणइ, साँमी झुंबे साहसि घणई।।468।।
नेजाइ घाउ करे नरनाथ, देखिसु हिवइ तुहारा हाथ।
खडग प्रहार खरा चालवे, आयुध अंगि घणा झालवे।।469।।
पाछा पाउ रखे रणि दीइ, मरण तणउ भय माऽऽणे हीइ ।
भलउ भवाडे खित्री-वंस, पुहवि करावे सबल प्रसंस।।470।।
खलदल खेत्र थकी खेसवे, आयुध अंगइ राखे सवे।
सुभटौ माहि वधारे सोह, वाहे विकट छछोहा लोह।।471।।

नाम करे नव खंडे नाथ, वाहि सकइ तिम वाहे हाथ।
सुभट सहू कहीइँ सारिखा, परगट लाभइ इम पारिखा॥472॥
जीवण मरणि तुहारउ साथ, हुं नवि मुंकुं जीवन-नाथ!।
घर घणुं हिव कासुँ कहुं! तेम करे जिम हुं गहगहुं॥473॥
भिडताँ भाजइ नासे मूढ, कायर कंपि हूउ जूजूउ।
एहवा वचन सुण्या मइ काँनि, तउ मुझ लाज हुसी असमाँनि॥474॥
कंत कहइ संभलि, कामिनी! हिवइ सही तुं मुझ सामिनी।
बोल्या बोल भला तइँ एह, निज कुलवट नी राखी रेह॥475॥
अस्त्री आणि दिया हथियार, साझि सुभट तणउ सिणगार।
मिली गली माता-पग वंदि, असि चढि चालिउ बादिल भंदि॥476॥
गोरउ रावत आव्यउ वही, काका! हिव तुम्ह रहयो सही।
एक वार जोवुं पतिसाह, जोवुं आलिम कुं मनमाह॥477॥
गोरउ कहइ- बादल सुणि वात, मुझ तुझ एक अछइ संघात ।
तु जावइ हुं पाछउ रहुं, तउ हुं रावत पणउ निज दहुं॥478॥
काका! कीजइँ काची वात, हुं जाऊं छुं मेलण घात।
रिणवटि अम्ह-तुम्ह एको साथ, जे विहडइँ तसु दक्षण हाथ॥479॥
गोरइ रावत पूछी करी, चालिउ बादिल साहस धरी।
सुभट सहू मिलिया छइँ जिहाँ, बादिल चाली आविउ तिहाँ॥480॥
बादिल बोलाइ बहसे इसुं- कहउ तुम्हें आलोचिउँ किसुं।
सुभट कहइ- बादिल! सांभलउ, सबल मँडाणउ एकल किलउ॥481॥
हठीउ आलिम अमली माँण, राजा साही लीधउ प्राँणि।
गढ पिण हेवइँ लेसी सही, जे इहाँ आविउ छइ इम वहीं॥482॥
पदमिणि द्याँ तउ छूटइ पास, नही तरि गढ नी केही आस।
गढि जात इँ काँई नवि रहइ, बली कराँ हिव ज्युं तुं कहइ॥483॥
बादिल बोलइ- भलउ मंत्रणउ, कीउ तुम्हें आलोचिउ घणउ।
पदमिणि देशाँ आपे सही, पिण इक वात सुणउ मुझ कही॥484॥
छाटुं पडसी सगलइ देसि, मस्तकि कोई न रहसी केस।
चित्रवट सहू लोपासी खरी, आ थे वात भली नादरी॥485॥
मांडा सुभट भरइँ गहगहीं, पिण निज माँण न मेल्हहँ सही।
माँण पखई नर कहीइ किसउ, कण विण डाला कूकस जिसः॥486॥
काया-माया बे कारिमी, घडी एक बाँकी घडी एक समी।
कायर हुउ अथवा हुई सूर, मरण किणइ थी न टलइ दूर॥487॥

तउ ते मरण समारी मरउ, ढाँढ़ा होई किसुं ऊगरउ।
पदमिणि दीघी कहीइ केम, पति राखणसुं जउ छह प्रेम ॥488 ॥
वीरभाण इम निमुणी भणइ- बादिल! बोलिउ तुं बलि घणह।
भाषी सहू भली तइँ, वात पिण नवि प्रीछइ तुं तिल मात्र ॥489 ॥
आलिम ईस तणउ अवतार, लसकर लाख सतावीस लार।
यवनी सुभट बडा झूझार, हणइ हेकीकउ हेलि हज़ार ॥490 ॥
साही लीधउ वलि सिरदार, झूझंता आवइ तसु भार।
काई परि हिव पुहचइ नही, नही तरि म्हे वलि झूझत सही ॥491 ॥
बादिल बोलइ- कुंअर! सुणउ, ए आलोच नही आपणउ।
किसा आलोच करइ केसरी? मारइँ मयगल माथइ धरी ॥492 ॥
इम करतां जे मूआ वली, तउ पिण कीरति हुइ निरमली।
काया साठइ कीरति जुडइ, तउ नवि मोलइँ मुंहगी पडइ ॥493 ॥
काया चांबतणी कोथली, खिण इक मेली खिण ऊजली।
तिण साठइ जउ कीरति मिलइ, तउ लेतां कुण पाछउ टलइ ॥494 ॥
वीरभांण हिव बोलइ वली बादिल! तुझ मति अतिनिरमली।
अरजुण ते जे वालइ गाइ, करि जिम हिव तुझ आवइ दाइ ॥495 ॥
राजा छूटइ पदमिणि रहइ, इणि वातइँ कुण नवि गहगहइ।
बादिल बोलह- कुंअर! सुणउ! करयो ऊपर वांसइँ घणउ ॥496 ॥
हुं जाउं छुं लसकर माहि, आवुं वात सहू अवगाहि।
करि जहार बादिल असि चडिउ, साहसि सुरपति सांसइँ पडिउ ॥497 ॥

॥दसमो खण्ड॥

गढनी पोलि हुंति ऊतरिउ, बुद्धिवंत बहु साहसि भरिउ ।
निलवटि दीपइ अधिकउ नूर, प्रतपइ तेज तणउ घटि पूर ॥498 ॥
आयुध अंगि सहू साबता, पहिरणि वस्त्र नवा फाबता।
आवई एकलमल असवार, जाणे अभिनव अगनि-कुमार ॥499 ॥
आलिम दीठउ ते आवतउ, सुभट घण दीसइ साबतउ।
आलिम मेल्ह्या साम्हा दूत, पूछउ, आवइ किम रजपूत ॥500 ॥
दूते जाई पूछिउ तेह, बोलइ बादिल अति ससनेह।
हुँ अविउ छुं करवा वात, पदमिणि आणि दीउं परभाति ॥501 ॥
आलिम मांनइ मुझ मंत्रणउ, तउ उपगार करूं हुं घणउ।
दूते जाइ धणी नई कहिउ, इम सुणि आलिम अति गहगहिउ ॥502 ॥

माहि तडाविउ दे बहु मांन, दीठउ असपति अति असमांन।
तेज तपइ ब्यूऊ ही तनि घणउ, आलिमसाहि दीउ बेसणउ॥503॥
बइठउ बादिल बुद्धि-निधांन, असपति पूछइ दे बहु मांन।
क्या तुझ नाम किणइका पूत, अब किसका हइ तूं रजपूत॥504॥
क्युं अब आया हइ हम पासि क्या हइ तुझ कुं गढ महि ग्रास।
बोला वादिल बलतउ हसी, रोमराइ सहु घटि ऊससी॥505॥
अवसरि बोली जाणइ जेह, माणस माहि गुंथाइ तेह।
तिणपरि वादिल तब बोलीउ, हरखिउ जिम आलिमनउ हीउ॥506॥
नाम ठांम सहु निरतां कह्या, माहोमाहि बिहो गहगह्या।
वादिल बोलह आदर करी, सांमी! बात सुणउ माहरी॥507॥
पदमिणि मेल्हिउ हुं परधान, सुभट न मेल्हइं निज अभिमान।
पदमिणि दीठो जब तुम्ह द्रेठि, जीमंतउ निज जाली हेठि॥508॥
तिणि दिन थी ते चिंतइ इसुं कामदेव ए कहीद किसुं।
धनि ते नारि तणउ अवतार, जेहनइ आलिम छह भरतार॥509॥
विरह वियाकुल बेठी रहइ, निसि दिन सुहिणे तुझनइँ लहइ ।
कर ऊपरि मुख मेल्ही रहइ, नयणे नीर घणुं तसु बहइ॥510॥
निपट घणा मेल्हइ नीसास, अबला दीसइ अधिक उदास।
तुझ सुं कोइ हूउ अनुराग, रातउ जाणी प्रवाली राग॥511॥
पदमिणि नइ मनि अधिकउ प्रेम, ते कहवाइ मई मुखि केम।
आलिम! आलिम! करती रहइ, मुझ सुं वात सहू ते कहइ॥512॥
तुझ नउ आविउ सुणि परधांन, तेह प्रतइं दीधउ बहु मांन।
सुभट कहइ म्हे मरस्यां सही, पिण म्हे पदमिणि देस्यां नहीं॥513॥
समझाया मइं सुभट समेत, वीरभांण राजा जग-जेत।
क्यु-क्युं आज ढवइ छइ वात, तिणि जाणां छां मिलसी धात॥514॥
पदमिणि मेल्हिउ हुँ तुम भणी, विनय भगति वीनववा घणी।
बली जिका होइ छइ वात, कहिस्यु आवी ते परभाति॥515॥
सीख दीउ हिव मुझनई सही, पदमिणि पासइ जाउं वही।
जोती होसी मुझनी वाट, करती होसी अति ऊचाट॥516॥
विरह-विथा न सहइ विरहणी, काम पीड घटि चालइ घणी।
तुझ संदेस सुधा-रस जिसा, पाउं तु जाइ सुणाउँ जिसा॥517॥
॥दूहा॥
असपति इणिपरि संभली, पदमिणि प्रेम-प्रकास।

वयण बाणि वीध्यउ घणउ, मनि मेल्हइ नीसास ॥518॥
अलजउ तनि अति ऊपनउ, विलली विरह बिराल।
अवसर देखी आपणउ, जागिउ काम जटाल ॥519॥
काम-बाण कुण सहि सकाइ, दाझइ सगली देह।
सुंदरि तणा सँदेसडा, निपट वधारयउ नेह ॥520॥
विरह-विथा सहि नवि सकइ, अलजउ अंगि न माइ।
प्रेम सुणी पदमिणि तणउ, घट गलहल ज्यूं जाइ ॥521॥
असपति थउ अहि सारिखउ, साहि न सकतउ कोइ।
खीलिउ बादिल गारुडी, पदमिणि मंत्र परोइ ॥522॥

॥चोपई॥

असपति बोलइ बदिल सुणउ, तुं अम्ह आज घरे प्राहुणउ।
भगति जुगति तुझ केही करां, तइं दीठइ मनमाहे ठरां ॥523॥
पदमिणि सुं हम करयो प्रीति, रूडी परि सहु भाषे रीति।
जइ हम हाथि चडी पदमिणि तउ मुझ घरि तुं होइसि घणी ॥524॥
सुभट सहू समझावे घणउ, थिर करि थापे ए मंत्रणउ।
दूध डांग दिखलावे घणी, वात विहांणी आवे वणी ॥524॥
एम कही निज करसुं साहि, पहिराविउ बादिल पतिसाहि।
लाख सुनइया दीधा सार, हयवर गयवर वस्त्र अपार ॥526॥
ते लेई बादिल आवीउ, हरखिउ माइ तणउ तव हीउ।
निज नारी रूलियाइत थई, दिन आजूणउ दीधउ दई ॥527॥
गोरउ रावत मनि गहगहिउ, करसी बादिल सगलउ कहिउ।
हरषित नारि हुई पदमिणि, ओं मेल्हेसी सही मुझ धणी ॥528॥
सुभट सहू संक्या मन माहि, बादिल आगई अधिकी आहि।
सिगति न छांनी राखी रहइ, बाँधी अगनि हुई तउ दहइ ॥529॥
बादिल बइसी किउ मंत्रणउ, कहुं वात ते सगला सुणउ।
वि सहस सज्ज करउ पालखी, वात न जाणइ जिम को लखी ॥530॥
ऊपरि अधिक धरउ आँछाड, पागथियां बांधउ पटवाडि।
दुइ-दुइ सुभट रहउ त्यां माहि, सहि संजूह घटे संबाहि ॥531॥
साचा शस्त्र घणा आदरी, बइसउ मन महि साहस धरी।
लारोलारि करउ पालखी, कहिस्यां माहे छइं तसु सखी ॥532॥
विचि पालंखी पदमिणि तणी, परठी सोभ करउ तिणि घणी।
साचउ पदमिणि तणउ सिंगार, ऊपरि थापउ भमर गुंजार ॥533॥

तिणि महि गोरउ रावत रहइ, वात रखे को बाहर कहइ।
इक प्रतिबिंबउ पदमिणि माहि, आलिम सकइ न जिम अवगाहि॥534॥
छेती विचि न राख छती, लारोलारि करउ लागती।
गढनी पउलि लिगावउ लार, सेन समीपइ आणउ पार॥535॥
एम करी हिव तुम्हि आवयो, वेला बहुली पडखावयो।
हुँ विचि जाइ करेसुं वात, मेल्हिसु सगली घातइँ-घात॥536॥
हुं जाई आणिसुँ राजान, पुहचाडेस्यां नृप निज थांन।
पछइ करेस्यां सबलउ किलउ, ए आलोच अछइ अति भलउ॥537॥
सगले सुभटे थापी बात, परठउ करतां हूउ प्रभात!
सीख सहू समझावी करी, चालिउ बादिल चंचल चडी॥538॥
पहुतउ तिमइ ज लसकर माहि, जिहां बइठउ छइ आलिमसाहि।
जाई बादिल कीउ सिलांम, हरषित हूउ असपति तांम॥539॥
बादिल, साचा कहि संदेस, दिउं घणा जिम तुझनइ देस।
बादिल वात कहइ परगडी, साँमी! वात सिराडइ चडी॥540॥
सुभट सहू समझाव्या नीठ, पदमिणि आणी गढनी पीठि।
सुभट सहू भाषइ छइ एम, निसुणउ साँमी विनती तेम॥541॥
पदमिणि सुं जउ छह तुम्ह कांम, तउ हिव राखउ मामउ माम।
ऊपावउ अम्हनि वेसास, पदमिणि आणाँ जिम तुम्ह पासि॥542॥
असपति बोलइ वलतउ एम, कहु वेसास हूइ तुम्ह केम।
बादिल बोलइ- साहिब सुणउ, चलवउ लसकर सहु तुम्हतणउ॥543॥
जउ वलि बीहउ तउ असवार, तीरइ राखउ सहस बि-च्यार।
अवर सहू आघा चालवउ, जिम वेसास हूइ अभिनवउ॥544॥
एम सुणीनई ऊतावल, बोलइ आलिम अति वावलउ।
हमे हिवइँ बीहाँ किण थकी, बादिल बात भली तइँ वकी॥545॥
हुकम कीउ असपति हुसियार, कूच करायउ लसकर सार।
सहस बि-च्यारि रहुउ हम पास, हिंदुआनई जिम हुइ वेसास॥546॥
लसकरिए जब लाध दूअउ, हरष घणउ मन माहे हूउ।
लसकर कूच कीउ ततकाल, चाल्या सुभट सहू समकाल॥547॥
साऊ-साऊ सहस बि-च्यार, असपति पासि रह्या असवार।
बोलइ आलिम-बादिल, सुणउ, कहिउ कीऊ हइ हमि तुम्ह तणउ॥548॥
वेगि अणावउ हिव पदमिणि, पालउ वाचा आपापणी।
लाख सुनइया वलि तसु दिया, पहिराव्या वलि वागा विया॥549॥

ते लेई बादिल आवीउ, हरषिउ माइ तणउ वलि ही।
निज सुभटांसुं कीउ सँकेत, हिव जगदीसइँ दीध जेत्र॥550॥
ले पालंखी तुम्हें आवयो, लारोलारि खरी राखयो।
मत किणि वातइँ हूउ आखता, खित्रवटि काँइ न आँणिसु खता॥551॥
एम कही आघउ संचरिउ, पालंखिए पूठि परिवरिउ।
दीठउ असपति आविउ वली, बादिल वात कहइ निरमली॥552॥
साहिब! संभलि मुझ वीनती, पदमिणि एम कहइ हितवती।
हुँ आवी हिव सही तुम्ह गेह, साहिब हिव तुं हुए ससनेह॥553॥
साचउ राखे मुझ सोहाग, मागुं मान मुहतसुं राग।
तुझ घरि हरम हजाराँ गमे, त्याँसु पिण तु रंगइ रमे॥554॥
पिण सोहागिणि मुझनइ करे, जऊ आणइ छइ पदमिणि घरे।
एम सुणी वलि आलिम कहई, पदमिणि आपे आदर लहइ॥555॥
पदमिणि नारि तणउ नख एक, ते सम नावइ नारि अनेक।
पदमिणि कारणि मइँ हठ कीउ, वाच लोपि राजा ग्रहि लीउ॥556॥
मुझ मनि षांति अछइ अति घणी, साँमिणि होसी मुझ पदमिणी।
अवर हरम सहु करसी सेव, पदमिणि जइ पधरावउ हेव॥557॥
एम कही वलि वादिल भणी, परिघल दीधी पहिरावणी।
ते लेवी बादिल आवीउ, हरषिउ माइउ तण वलि हिउ॥558॥
सुभटाँसुं वलि भाषी वात, जइ मेल्हुँ छुं घातइँ घात।
तुम्ह सहु थाहरि रहयों इहाँ, वात रखे को काढउ किहाँ॥559॥
आविउ बादिल वलि असि चडी, नव-नव वात कहइ मनि घडी।
होठें बुद्धि वसई जेहनइ, किसुं दुहेलुं छइ तेहनइ॥560॥
वाता करतां लावई वार, फिरीउ बादिल वार वि-च्यार।
बोल बंध सहि साचा किया, लाख बि-च्यार सुनइया लिया॥561॥
असपति अति ऊतावलि करइ, बादिल तिम-तिम मन महि ठरइ।
परगट आणि धरी पालखी, आलिम देखइ सहु सारिखी॥562॥
बादिल वलि-वलि विच महि फिरइ, पदमिणि नइ मिस वातां करइ।
रहिउ पुहर दिन इक पाछिल, लसकर आघउ गउँ आगिलउ॥563॥
किला तणी हिव वेला थई, तव वलि बादिल बोलइ जई।
साँमी एम कहइ पदमिणी, मुझ ऊभां हुइ वेला घणी॥564॥
मुझनी एक सुणउ अरदास, ज्युं हुं आवुं तुझ आवास।
रतनसेन मेलउ इकवार, तिससुं वात करां दो-च्यार॥565॥

लेइ राजा आवुं दरबारि, ज्युं मुझ अधिक रहइ आचार।
आलिम बोलइ- सुणि बादिला!, पदमिणि बोल कहावइ भला ॥566॥
इणि बोलइँ हम हूआ खुसी, पदमिणि न्याइ कहीजइ इसी।
हुकम कीउ आलिम ततकाल, छोडउ रतनसेन भूपाल ॥567॥
बादिल माहि छोडावण गयउ, राजा रूसि अपूठठ थयउ।
फिट रे बादिल मुह म दिखालि, सबल लिगाडी तइँ मुझ गालि ॥568॥
वयरी वयर घण तइँ कीउ, पदमिणि साटइ मुझ नई लीउ।
खित्रवट माथइ घाली खेह, निसत सुभट हुआ निसनेह ॥569॥
बादिल बोलह- सांमी सुण, अवर की छह ए मंत्रणउ।
मुष्ठि करीनह आघा चलउ, भागि तुहारइ होसी भलउ ॥570॥
प्रीछिउ भूप चलि ततकाल, आलिम बोलाइ इम असराल।
पदमिणि नइं मिलि आवउ जाइ, जिम तुझ सीख दिउं सदभाइ ॥571॥
राजा चालिउ पदमिणि भणी, सिबका श्रेणि घणी साँघणी।
राजा पेठंउ महि पालिखी, वात सहू तव साची लखी ॥572॥
बादिल बोलइ साँमी सुणउ, अवसर नहि ए वातां तणउ।
एक थकी बीजी अवगाहि, गढि लगि जावउ सिबका माहि ॥573॥
साँमी थावउ हीइ सचेत, माहि जई करयो संकेत।
साचउ करयो ए सहिनाण, वाजावेयो ढोल-निसाण ॥574॥
एम सुणी राजा रंजीउ, हरष संपूरित हूउ हीउ।
कुसल-खेमे पुहतउ माहि, जाणि क सूरिज मुंकीउ राहि ॥575॥
कुसल तणा वाजा वाजिया, तव ते सुभट सहू गाजिया।
नीकलिया नव हत्था जोध, वड दूसासण वह विरोध ॥576॥
साँमि-काँमि समरथ अति सूर, गोरउ रावत अतिहि करूर।
अरि-दल देखी अति ऊससइँ, सुभट सहू मन माहे हँसइँ ॥577॥
सूरिम सगलइ तनि ऊछली, सोहइ सुभट तणी मंडली।
साचा पहिरया सुघट सनाह, रुक-हत्था दीसइँ रिम राह ॥578॥
च्यारि सहस नीसरिया सूर, एक एक थीं अधिक करूर।
आगलि गोरउ बादिल बेउ, पूठई चाल्या सुभट सवेउ ॥579॥
घाघरटइ दीसइँ भट घणा, पार न लाभइँ पुरुषां तणा।
त्रूट्या धाया ले तरवारि, हलकारे लागा हलकार ॥580॥
रे! रे! आलिम ऊभउ रहे, हिव नासी मत जाइ वहे।
पदमिणि आणी छइँ अम्हि जिका, तोनइ हिवइ दिखाडाँ तिका ॥581॥

तोनइ खांति अछह अति घणी, अम्ह ऊमाँ ते देवा तणी।
हठीउ छइ तउ करि हथियार, हिव आलिम मनि हुइ हुसियार॥582॥
एम कहीनई आव्या जिसइँ, दीठा आलिम अरीयण तिसइँ।
रण-रसीउ ऊठिउ रिम राह, विणठी वात करइ पतिसाह॥583॥
रे! रे! कूड कीड कीउ बादिलइँ, आवउ सुभट सहू हिव किलइँ।
हलकारया असपति निज जोध, धाया किलली करताँ क्रोध॥584॥
माहोमाहि मँडाणउ किलउ, बडवी बोलइ इम बादिलउ।
पातिसाही मति छंडइ पाउ, जउ तुं अधिक अछइ रणराउ॥585॥
तुं आयउ ढीली थी घसी, हिव मत जाई पाछउ खिसी।
सूर अछइ तउ करि संग्राम, नहि तरि रहसी नहि तुझ इज्जत॥586॥
आलिमना चडिया असवार, जिम-दल सरिखा जोध झुझार।
भिडइँ मली परि भारथ भीम, सुभट न चापइँ पाछी सीम॥587॥
धसबस धूलि विधूसइँ धरा, माहोमाहि भिडइँ आकरा।
खेहा डंबर ऊडिउ खरउ, सूझइ सूर नहीं पाधरउ॥588॥
बाण बिछूटई बिहुँ दिसि घणा, वाजइं लोह घणा साँधिणा।
खडग विछूटइ करता खीज, जाणि कि बादलि झबकइ बीज॥589॥
सन्नाहे तूटइँ तरवारि, तिणगा ऊडइ अधिक अपार।
अगनि-झाल झलकई असिधार, घण जिमि हूउ घोर अंधार॥590॥
खलक्या खलहल लोही-खाल, पावस जेम वहइ परनाल।
रज रुंधाणी थयउ प्रगास, गिरझणि मंस तणाँ ले ग्रास॥591॥
पूरइ पत्र रुहिर जोगिणी, मुण्ड माल ले ईसर घणी।
झडवड झडप भरइ सींचाण, अंबर जोवई अमर विमाण॥592॥
सूरिज निज रथ खंची रहइ, रगति-विप्रभ नवि कांई लहइ।
इणि अवसरि गोरउ गजगाहिं, धाई आविउ जिहाँ पतिसाह॥593॥
मेल्ह्यउ खडग महाबलि जिसइँ, असपति अलग नाठउ तिसइँ।
बोलह बादिल-बे कर जोडि, नासंताँ मारयाँ छइँ खोडि॥594॥
रतनसेन राजा अति भलउ, गढ ऊपरथी देखइ किलउ।
जोवई बादिल गोरा तणाँ, हाथ महाबल अरिगंजणाँ॥595॥
पदमिणि ऊभी द्यह आसीस, जीवे बादिल कोडि वरीस।
धन्य धन्य बलिहारी तूझ, तइँ मुझ राखिउं सगलुं गूझ॥596॥
सुभट घणा छइं ऊभा एह, ते सगला नीसत निसनेह।
बादिल एक महाबल सही, सत्य थकी जो चूकइ नहीं॥597॥

साँमि-धरम साचउ ससनेह, राखी बादिल रणवट रेह।
गोरउ रावत रणमहि रहिउ, आलम सँन सहू लहु बहि॥598॥
लूटी लीधुं, लसकर सहू, के नाठ्या के मारया बहू।
इणपरि अरियण सहु एकलइ, बहसि करे जीता बादिलइ॥599॥
पातिसाह साही मुंकीउ, इक वलि मोटउ ए जस लीउ।
साहि कहइ-संभलि बादिला, किया पवाडा तइँ अति भला॥600॥
जीवि दान दीयउ मुझ भणी, किसी कराँ हिव कीरति घणी।
आलिम साहि गयउ एकलउ, गोरइ बादिल जीत्य किलउ॥601॥
जयजयकार दुउ जस लीध, करणी बादिल अधिकी कीध।
ऊघडीया गढना बारणा, बिरद हुआ बादिलनइ घणा॥602॥
राजा साँम्हउ आविउ रंगि, मिलिया बेही अंगोअंगि।
महामहोछवि माहे लीउ, अरध देस बादिल नइ दीउ॥603॥
पदमिणि वली पयंपइ एम, न करइ बादिल को तो जेम।
तइँ दीधउ मुझनइ अहिवात सीतल कीधा तइँ मुझ गात॥604॥
धन्य! धन्य! तो माता सार, तुज्झ तणउ जिणि झेलिउ भार।
धन्य! धन्य! ते नारी सार, जेहनइ बादिल छइ भरतार॥605॥
मस्तकि तिलक करी सुविसाल, वद्धावइ मोती भरि थाल।
निज भाई करि थाप्यउ तेह, पुहचाडि बादिल निज गेह॥606॥
सुभटाँ माहि चिहुँ पाखती, देखण नारि मिली आखती।
ठउडि-ठउडि मोती ऊछलइँ, सगा सणीजा आवी मिलइँ॥607॥
इणिपरि आविउ महल मझारि, वहरी-वरग घणा संघारि।
जइ लागउ मातानइ पाइ, माता द्यइ आसीस सुभाइ॥608॥
निज नारी ओढी नव घाट, लांबु ताणी तिलक ललाटि।
अरघ अभोख लेई करी, थाल भरी साँम्ही संचरी॥609॥
कीया विविध वधावा घणा, कुसले खेमे आव्या तणा।
हिव गोरानी अस्त्री कहइ, काकउँ कॅम रणंगणिं रहइ॥610॥
कहउ, किसीपरि वाह्या हाथ, किम संघारिउ सत्रु सँघात।
बादिल बोलइ माता सुणउ किसउ वखाण करुं ते तणउ॥611॥
गोरह ढाया गयवर घणा, पार न पासुं सुभटाँ तणा।
भालिम साहि की एकल, इणिपरि गोइइ कीउ किलउ॥612॥
तिल-तिल छेदी तनु आपणउ, अमरपुरी पुहत प्राँहुणउ।
कुल अजुआलिउ गोरइ आज, सुभटाँ तणी उतारी लाज॥613॥

एम सुणीनई अस्त्री तेह, विकसित वदन हुई ससनेह।
रोमि-रोमि सूरिम ऊछली, मुलकी महिला बोलह वली॥614॥
संभलि बेटा हिव बादिला! ठाकुर दोहा हुई एकला।
पथइँ विचइँ छेटी हुइ घणी, रीस करेसी मुझनइँ धणी॥615॥
वहिलउ हो हिव वार म लाइँ, काकीनइ पुहचाडउ ठाइँ।
एम सुणी बादिल हरखिउ, धन्य! धन्य! माता तुझ हीउ॥616॥
घणउ वित्त ते विहची करी, करि श्रृंगार चढि तीखइँ तुरी।
जय-जय राम करी नीसरी, अगनिसनान कीउ सुंदरी॥617॥
पति पासइ जइ पुहती जिसइ, अरघासण दीउ इंद्रइँ तिसइ।
अमरपुरी पुहुता अवगाहि, जयजयकार हुउ जगमाहि॥618॥
बिरद बुलावई बादिल घणा, साँमि-धरम सतवंताँ तणा।
इसउ न कोइ हूउ सूर, त्रिहुं भवणे कीधउ जसपूर॥619॥
पदमिणि राखी राजा लीउ, गढनउ भार घणउ झीलीउ।
रिणवट करीनइ राखी रेह, नमो नमो बादिल गुण-गेह॥620॥

ग्रन्थान्त (प्रति की प्रशस्ति)

बादल राउतनी ए कथा, सुणतां नावइ निज घटि व्यथा।
रोग सोग दुख दोहग टलइ, मनना सयल मनोरथ फलइ॥1॥
पूनिम गछि गिरूआ गणधार, देवतिलक सूरीसर सार।
न्यानतिलक सूरीसर तास, प्रतपइ पाटइं बुद्धिनिवास॥2॥
पदमराज वाचक परधांन, पुहवी परगट बुद्धिनिधांन।
तास सीस सेवक इम भणइ, हेमरतन मनि हरषइ घणइ॥3॥
संवत सोलह सइं पणयाल, श्रावण सुदि पंचमि सुविसाल।
पुहवी पीठि घणुं परगडी, सबल पुरी सोहइ सादडी॥4॥
पृथवी परगट राण प्रताप, प्रतपइ दिन दिन अधिक प्रताप।
तस मंत्रीसर बुद्धिनिधांन, कावेड्या कुलतिलक निधांन॥5॥
सांमि धरमि धुरि भामुं साह, वयरी वंस विधुंसण राह।
तसु लघु भाई ताराचंद, अवनि जाणि अवतरिउ इंद्र॥6॥
ध्रूय जिम अविचल पालइ धरा, शत्रु सहू कीधा पाधरा।
तसु आदेश लही सुभ भाई, सभा सहित पांमी सुपसाइ॥7॥
वात रची ए बादिल तणी, सांमि धरमि ए सोहामणी।
वीरारस सिणगार विशेष, रस बेरस अछइ सविसेष॥8॥
सुणता सवि सुख संपद मिलइ, भणता भावटि दूरइं टलइ।

ऊजम अंगि हुई अति घणउ, मुहकम जाणइ करि मंत्रणउ॥9॥
षटसित षोडस गाथा बंधि, सुणिउ तिसु भाष्यउ संबंधि।
अधिक ऊन जे हुइ उच्यरिउं, सयण सुणी ते करयो खरुं॥10॥
सांमि रम पालंतां सदा, सगली आवद घरि संपदा।
सुर नर सहू प्रसंसा करइ, वरमाला ले लखमी वरइ॥11॥

॥इति श्री गोराबादिलचरित्रे, बादिलजयलक्ष्मीवर्णनो नाम प्रथम खंडः। संवत 1646 वर्षे मगशिर सुदि 15॥

'गोरा-बादल पदमिणी चउपई' हिंदी कथा रूपांतर

चारों ओर फैला हुआ चित्रकूट पर्वत पृथ्वी के नेत्र की तरह विशालकाय है। उस पर देवता, मनुष्य और किन्नर निवास करते थे। राम ने वहाँ अपना वनवास किया था। पर्वत के ऊपर ऊँचा और अत्यंत कठिन दुर्ग है। दुर्ग में अत्यंत सुंदर अनेक महल हैं, जिनमें लोग विवेक पूर्वक निवास करते थे। त्याग और भोग सहित सभी लाभ उनको सुलभ थे। देवता भी चाहते थे कि वे इस दुर्ग में रहें। ऐसे दुर्ग में गहलोत राजा रत्नसेन शासन करता था। वह पराक्रमी और प्रतापी था। उसकी पटरानी प्रभावती रूप में रंभा और शील में सती थी। इंद्र की इंद्राणी भी रत्नसेन की पटरानी के समान नहीं थी। अप्सरा रंभा की तरह उसकी अन्य कई स्त्रियाँ भी थीं। पटरानी ने अपने पति को अपने गुणों पर मोहित कर लिया था। वह पाक कला में निपुण थी और राजा उस पर मुग्ध था। दोनों का एक-दूसरे से पर बहुत प्रेम था। दोनों एक-दूसरे से एक क्षण के लिए भी अलग नहीं होते थे। प्रभावती के वीरभाण नाम का प्रतापी और वीर पुत्र था। राजा रत्नसेन अपनी संपूर्ण सेना के साथ राज्य करता था और उसने अपने शत्रुओं का नाश कर दिया था। योद्धा उससे स्नेह करते थे और कोई उसके साथ छल नहीं करता था। देवराज इंद्र जिनकी साख भरे, उसके यहाँ ऐसे एक लाख योद्धा थे।

एक दिन भोजन के समय दासी ने आकर राजा से प्रार्थना की कि- "स्वामी! भोजन करें। बहुत विलंब हो गया और भोजन तैयार है।" राजा आकर आसन पर बैठा। सोने के थाल और कटोरों में, सोने के पाट पर पटरानी ने राजा को भोजन परोसा। राजा भोजन करता जाता और बीच-बीच में बातें भी करता जाता था। रानी केले के पत्ते से उसको हवा कर रही थी। भोजन करते हुए राजा ने प्रभावती से कहा कि- "आज भोजन अच्छा नहीं लग रहा है। यह हमेशा की तरह स्वादिष्ट नहीं है।

सभी पकवान हैं, लेकिन स्वादहीन हैं। भोजन स्वादिष्ट हो, इसके लिए कोई युक्ति करो।'' रानी को बुरा लगा। उसने अभिमान पूर्वक कहा कि ''मेरा भोजन अच्छा नहीं लगता है, तो आप कोई नयी स्त्री ले आइए। किसी पद्मिनी से विवाह करिए, जो आपको अच्छा भोजन कराएगी। मुझे तो भोजन कराना आता नहीं है।'' मान में रानी विनय भूल गई। राजा भोजन छोड़कर तत्काल उठ खड़ा हुआ। उसने कहा कि- ''अब मैं पद्मिनी स्त्री लाकर उसके हाथ से ही भोजन करूँगा।'' उसने खड़े होकर मूँछ मरोड़ी और घर से बाहर निकल गया। उसने खवास (निजी सेवक) को साथ लिया और ख़जाना साथ लेकर दोनों चुपचाप चल पड़े। किसी को इसका पता नहीं लगा। राजा ने प्रण किया कि- ''पद्मिनी के बिना घर नहीं आऊँगा, भले ही पहाड़ और गुफाओं में रहना पड़े। पद्मिनी के बिना शय्या पर नहीं सोऊँगा और न ही प्रेम करूँगा।'' यह प्रण करके दोनों बीस-तीस योजन चले और फिर विचार किया कि जैसे ऊसर खेत में बीज नहीं लगता, बिना झगड़े के शांति नहीं होती और बिना बादल के बरसात नहीं होती वैसे ही सिंघल जाने के लिए वहाँ का मार्ग तो पता होना चाहिए। राजा ने सेवक से कहा कि- ''पद्मिनी के लिए मैं पृथ्वी भी लाँघूँगा। पद्मिनी जहाँ होगी, मैं वहाँ जाऊँगा। वह प्रसिद्ध जगह मुझे बताओ।'' सेवक ने कहा कि- ''हमारे पास ख़र्चा वग़ैरह सब है, लेकिन जब तक मार्ग का पता नहीं लगे, तब तक उलझन है।'' राजा एक वृक्ष के नीचे बैठ गया, तभी वहाँ एक पथिक आया। वह भूखा, प्यासा और बहुत थका हुआ था। राजा ने उसका उपचार किया। उसे पानी पिलाया और खाना खिलाया। उसने सचेत होकर राजा से कहा कि- ''आपने मुझ पर उपकार कर मुझे दूसरा जन्म दिया है। मेरे योग्य कोई काम हो, तो बताना। मैं सेवक और आप स्वामी हैं।'' राजा ने उससे पूछा कि- ''तुमने बहुत देश-विदेश देखे हैं। पृथ्वी भ्रमण करते हुए क्या तुमने किसी पद्मिनी के संबंध में सुना है?'' तब उसने उत्तर दिया कि- ''मेरे स्वामी! सिंघल द्वीप में बहुत पद्मिनी स्त्रियाँ हैं। सिंघल द्वीप दक्षिण में है और बीच में समुद्र की बाधा के कारण कोई वहाँ जा नहीं पाता है।'' यह सुनकर राजा प्रसन्न हुआ और सिंघल द्वीप की दिशा में चल पड़ा। कई नगरों और गाँवों को लाँघता हुआ वह समुद्र के समीप आ गया। सामने समुद्र लहरा रहा था। मनुष्य तो क्या, हवा भी उसमें प्रवेश नहीं कर सकती थी। रत्नसेन ने सोचा कि- ''भगवान जगदीश ने मेरे साथ कैसा किया?'' राजा के चित्त में पद्मिनी थी, लेकिन समुद्र की लहरें बहुत भयावह थीं। समुद्र के पास घूमते हुए राजा की भेंट एक उदास योगी से हुई। राजा ने उस सिद्ध योगी का प्रणाम किया और कहा कि- ''मुझे पद्मिनी किस तरह मिलेगी। मुझे दुःख देखते हुए बहुत दिन हो गए हैं। आप मुझ पर दया कीजिए।'' योगी ने राजा रत्नसेन को पहचान लिया। उसने कहा कि- ''तुम मेरे पास आ गए

हो, तुम्हारा भला होगा।'' योगी ने आकाश में उड़ने की अपनी विद्या का स्मरण किया और दोनों को अपनी बाँहों में भरकर सिंघल द्वीप पहुँचा दिया। नगर के समीप पहुँचकर योगी अदृश्य हो गया। राजा प्रसन्न होकर द्वीप देखने लगा। नगर में बहुत कोलाहल था। राजा को यहीं एक व्यापारी से ज्ञात हुआ कि सिंघल द्वीप के राजा की महिमा और गुण बहुत है। उसकी बहिन प्रत्यक्ष पद्मिनी है और उसकी तीनों लोक में कोई उपमा नहीं है। वह कहती है कि- ''जो कोई मेरे भाई पर जीत हासिल करेगा, मैं उसी के कंठ में वरमाला डालूँगी।'' सिंघल द्वीप के राजा का प्रण है कि जो कोई उसे युद्ध या बात या शतरंज में पराजित करेगा उसे वह आधा राज्य और ख़जाना देगा और उसका परिणय अपनी पद्मिनी बहिन से करवाएगा। राजा रत्नसेन को शतरंज का खेल जँचा। यह बात सिंघल द्वीप के राजा के पास पहुँची, तो वह मन में प्रसन्न हुआ और रत्नसेन को बुलाकर आसन दिया। उसने रत्नसेन का बहुत स्वागत-सत्कार किया। दोनों खेलने के लिए बैठे हुए ऐसे लगते थे, जैसे सूर्य और चंद्रमा हों। उनके पास में कोमल और कमलमुखी कामिनी पद्मिनी बैठी। रत्नसेन के शतरंज खेलने के दौरान ही पद्मिनी का मन उस पर आने लगा। वह कामना करने लगी कि रत्नसेन जीत जाए। सिंघलपति को आशंका हुई कि कामदेव के रूप-सौंदर्य और सुंदर वेषवाला यह व्यक्ति ज़रूर कोई शक्तिशाली राजा है। खेलते हुए सिंघलपति हार गया। पद्मिनी ने वरमाला रत्नसेन के कंठ में डाल दी। सिंघलपति ने रत्नसेन को अपना आधा राज्य और भंडार दे दिया। पद्मिनी के पास रूप की भंडार एक हज़ार दासियों के रहने का विधान था। पद्मिनी पर भ्रमर गुंजार करते थे। वे पद्मिनी की सुगंध पर मुग्ध थे। पद्मिनी रूप-सौंदर्य में इंद्राणी से भी अधिक थी। रत्नसेन ने पद्मिनी से विवाह किया, उसकी इच्छा पूरी हुई। दस-पाँच दिन वहाँ रहने के बाद रत्नसेन ने विदा की आज्ञा माँगी। सिंघलपति सेना सहित रत्नसेन के साथ हुआ और उसने उसको समुद्र पार करवाया। समुद्र के पार पहुँचाने के बाद सिंघलनाथ ने लौटने की आज्ञा माँगी। प्रीति-रीति का पालन करते हुए दोनों एक-दूसरे से विदा हुए। (1)

राजा रत्नसेन चुपके चला गया था- इसका रहस्य किसी को ज्ञात नहीं था। संध्या हुई और जब राजा का पता नहीं चला, तो बाहर-भीतर सब चिंतित हुए। रानी प्रभावती ने बताया तो पता चला कि राजा क्रोधित होकर पद्मिनी से विवाह करने के लिए निकला है। रत्नसेन के योद्धा पुत्र वीरभाण ने राजसभा में कपट पूर्वक यह प्रचारित किया कि राजा अंदर जाप में है और इससे उसके प्रताप में वृद्धि होगी। ऐसा करते हुए बहुत दिन व्यतीत हो गए। योद्धाओं के मन में आशंकाएँ जन्म लेने लगीं। कुछ लोग सोचते थे कि राजा कुशल है, जबकि कुछ लोगों के मन में था कि बेटे ने राजा को मार दिया। ऐसी बातें हो रही थीं कि रत्नसेन आ गया। उसके

साथ चार हज़ार घोड़े, दो हज़ार हाथी और दो हज़ार ऐसी पालकियाँ थीं, जिनमें पद्मिनी की सखियाँ बैठी हुई थीं। बीच की पालकी में पद्मिनी थी, जिस पर भ्रमर गुंजार कर रहे थे। योद्धा इतने थे कि उनकी गिनती ही नहीं थी। इस तरह सेना और हाथी-घोड़ों के साथ राजा दुर्ग की तलहटी में पहुँचा। इससे धूल उड़ी और कोलाहल हुआ। वीरभाण के मन में आशंका हुई कि शत्रुदल आ गया है। चारों तरफ़ अफरातफरी मच गई। तभी राजा का दूत पत्र लेकर वहाँ आ गया। वीरभाण कपट छोड़कर योद्धाओं के साथ उसके स्वागत के लिए गया। रत्नसेन हाथी पर चढ़कर दुर्ग में आया। महोत्सव हुआ। पद्मिनी को दुर्ग में महल दिया गया- उसके पास चंचल, चपल और सुंदरी एक हज़ार दासियाँ रहती थीं। रत्नसेन रानी प्रभावती के पास गया और कहा कि- ''पद्मिनी ले आया हूँ। मुझे शाबासी दो। तुमने बड़ा बोल बोला था। अब मैं स्वादिष्ट भोजन करूँगा।'' सुनकर रानी व्यथित हुई। उसने कहा कि ''मेरी जिह्वा मेरी दुश्मन हो गई। मेरे कृत्य से मेरा रत्नसेन गया। अब पश्चाताप करने से क्या लाभ?'' राजा रत्नसेन पद्मिनी के साथ विलासमग्न रहने लगा। चंदन के वृक्ष पर चढ़कर नागर बैल जैसे उससे लिपट जाती है, वैसे ही सुंदरी पद्मिनी अपने पति से संयुक्त थी। राजा को रमण करते हुए कितने ही दिन बीत गए। उस नगर में राघवचेतन व्यास रहता था, जो विद्वान् था और राजा उससे प्रभावित था। वह राजमहल में निर्विघ्न विचरण करता था और राजलोक में उसका उठना-बैठना था। एक दिन राजा पद्मिनी के साथ विलासमग्न था। वह उसको आलिंगन में लेकर चुंबन कर रहा था। उसी समय राघव व्यास पद्मिनी के महल में पहुँचा- उसने राजा और पद्मिनी को विलासमग्न देख लिया। राजा नाराज़ हुआ। उसने राघव पर कोप किया और कहा कि- ''राघव ने मुझे और पद्मिनी को देखा है- मैं इसकी आँखें निकलवा लेता हूँ।'' राघव भयभीत हो गया- वह वहाँ से निकलकर बहुत मुश्किल से अपने घर पहुँचा। कवि कहता है कि राजा कभी किसी का मित्र नहीं होता। चतुर व्यक्ति की यह चतुराई नहीं है कि वह बिना बुलाए बार-बार आए, गोष्ठी में अरुचिकर बात कहे और निकालने पर भी नहीं निकले। (2)

राजा की नाराज़गी अच्छी नहीं होती, यह सोचकर राघव व्यास ने अपना घर और चित्तौड़ छोड़ दिया और वह दिल्ली पहुँच गया। वह दिल्ली में ज्योतिष से प्रसिद्ध हो गया। वह वहाँ शास्त्र पठन-पाठन और विवेकपूर्ण वार्ताएँ करता। दिल्ली का बादशाह अलाउद्दीन ख़लजी था, जिसका संपूर्ण पृथ्वी पर शासन था और जिसे सभी राजा सलाम करते थे। उसने ब्राह्मण राघव व्यास की ख्याति सुनी। बादशाह ने उसको बुलवाया। व्यास ने बादशाह को कई कवित्त सुनाए, जिन पर सभी मुग्ध हो गए। बादशाह ने कहा कि ब्राह्मण गुणी है। उसने उसको उपहार, वस्त्र और गाँव दिए।

इस तरह राघव व्यास बादशाह के पास रहने लगा। एक दिन राघव व्यास के मन में आया कि रत्नसेन ने मुझे अपमानित किया है। मैं उससे किसी तरह बदला लूँगा। मैं उससे पद्मिनी छीनकर बादशाह को प्रस्तुत कर दूँगा। उसने इस निमित्त एक भाट और खोजा से मित्रता कर ली। उसने दोनों को मान, महत्व और धन दिया। उसने बादशाह के सामने पद्मिनी की बात चलाने के लिए दोनों से आग्रह किया। एक दिन बादशाह दरबार में बैठा था, तो भाट हंस का कोमल और रोएँदार पंख लेकर दरबार में आया। बादशाह ने उससे पूछा कि– ''इससे कोमल वस्तु के संबंध में क्या तुमने सुना है?'', तो भाट ने कहा कि ''इससे कोमल और पतली पद्मिनी स्त्री है।'' बादशाह ने कहा कि ''पद्मिनी कहाँ है?'', तो भाट ने कहा कि ''आपके हरम में हज़ारो स्त्रियाँ हैं, तो उनमें कुछ पद्मिनियाँ भी होंगी।'' खोजे ने बात काटकर कहा कि ''आपके यहाँ तो सब शंखिनी स्त्रियाँ हैं।'' बादशाह ने कहा कि ''तुम विश्वास दिलाओ'', तो खोजा ने कहा कि ''राघव व्यास को शास्त्र का ज्ञान है। पद्मिनी स्त्री की पहचान आप उससे पूछिए।'' बादशाह के पूछने पर राघव व्यास ने चारों प्रकार की स्त्रियों के भेद और पद्मिनी स्त्री के लक्षण विस्तार से बताए। पद्मिनी स्त्री की पहचान सुनकर बादशाह ने राघव व्यास से कहा कि– ''मेरे हरम की परीक्षा करो और उसमें से पद्मिनी बताओ।'' राघव व्यास ने उत्तर दिया कि– ''मैं आपके हरम की परीक्षा नहीं कर सकता'', तो बादशाह ने कहा कि– ''मैं मणिमय आवास बनवाता हूँ। तुम उसमें प्रतिबिंब देखकर परीक्षा करना।'' राघव व्यास ने परीक्षण किया और बताया कि हरम में हस्तिनी, चित्रिणी और शंखिनी तो हैं, लेकिन पद्मिनी कोई नहीं दिखती। बादशाह ने जब यह सुना तो कहा कि– ''पद्मिनी के बिना मेरे जीवन में उत्साह नहीं है। उसके बिना रति, रंग, सुख आदि व्यर्थ हैं।'' उसने राघव व्यास पूछा कि– ''पद्मिनी कहाँ मिलेगी?'', तो उसने बताया कि– ''पद्मिनी दक्षिण दिशा में सिंघल द्वीप में है और बीच में अथाह समुद्र है।'' बादशाह ने कहा कि– ''मेरे आगे सिंघल द्वीप क्या है? मैं स्वर्ग–पाताल खोदकर पद्मिनी स्त्री खोज निकालूँगा।'' हाथी–घोड़ों पर सत्ताईस लाख लशकर के साथ बादशाह ने सिंघलद्वीप पर चढ़ाई की। हाथी–घोड़ों के चलने से उड़ी धूल में सूर्य और चंद्रमा छिप गए। शेषनाग के लिए पृथ्वी का भार असहनीय हो गया। (3)

अलाउद्दीन ने अपने सभी योद्धाओं को साथ लेकर यलगार किया। तीव्र गति से पृथ्वी लाँघकर वह समुद्र के समीप पहुँचा। वह युद्ध वीर और पराक्रमी था। उसने कहा कि– ''मैं समुद्र को भरकर जमीन कर दूँगा और सिंघल द्वीप के सात टुकड़े कर सिंघलपति को जीवित पकड़कर पद्मिनी लाऊँगा।'' यह कहकर उसने लशकर पानी में उतार दिया, लेकिन यह पानी में डूब गया। बादशाह को क्रोध आया। उसने

नयी नावें बनवाकर फिर योद्धाओं को उन पर आरूढ़ किया, लेकिन ये सभी भँवर में फँसकर खंड-खंड हो गईं। इस तरह बड़े-बड़े योद्धा पानी में ही रह गए। बादशाह हठी था- उसने कहा कि- ''योद्धा मर गए, तो बला टली। दूसरे बहुत नए ले आऊँगा। एक हज़ार वर्ष तक यहाँ रहूँगा, लेकिन बिना पद्मिनी के बिना वापस नहीं जाऊँगा।'' योद्धाओं ने राघव व्यास से कहा कि ''हे पापी! तूने बादशाह को क्या कुमति दी है कि कई योद्धाओं का नाश हो गया है। अब कोई उपाय बताओ, जिससे बादशाह अपने घर लौट जाए।'' राघव व्यास ने कहा कि ''एक नई युक्ति करते हैं। एक हज़ार घोड़े और 500 हाथी, एक करोड़ दीनार और कई उपहार नावों में भरकर बादशाह से कहते हैं कि ये सिंघलपति ने दंड स्वरूप भेजे हैं।'' और कोई उपाय नहीं देखकर सभी योद्धाओं ने यही किया। रातों-रात प्रपंच किया गया। बादशाह को इसका पता नहीं था। सुबह जब उसने समुद्र में वाहन देखें, तो पूछा कि ''ये किसके हैं?'' तब व्यास ने प्रेम पूर्वक बताया कि ये सिंघलपति की तरफ़ से हैं। नावों से उतरकर लोग बादशाह के पाँवों में पड़े और कहा कि- ''आप दिल्ली के बड़े बादशाह हैं। सिंघलपति तो आपके पाँवों की धूल है। उसने यह सब आपके आतिथ्य के लिए भेजा है। यह आपके लिए पान पर चूने की तरह है। आप दया कीजिए।'' बादशाह इन विनयपूर्ण वचनों से प्रसन्न हुआ। उसने सिंघलपति के लिए सिरोपाव दिया। सिंघलपति के भेजे उपहार उसने अपने योद्धाओं में बाँट दिए और सेना सहित वहाँ से कूच कर दिल्ली आ गया। (4)

बादशाह अपने नगर आ गया, लेकिन जगह-जगह लोग बात करते थे कि बादशाह पद्मिनी के लिए गया था, लेकिन बिना विवाह किए क्यों आया? जगह-जगह स्त्रियाँ बात करती थीं कि बादशाह यों तो तेज़ है, लेकिन पद्मिनी के मामले में इतना सीधा क्यों हुआ? बादशाह अपने घर आया। सेवक जब उसके शस्त्र लेकर भीतर गया, तो बड़ी बीबी ने कहा कि- ''बादशाह ने जिस पद्मिनी से विवाह किया है, उसको मुझे दिखाओ। मैं उसको एक बार अपनी नज़र में निकालना चाहती हूँ। जिसके घर में चार पद्मिनियाँ नहीं है, उसके लिए तो सारा संसार सूना है। सुल्तान की सुल्तानी व्यर्थ है, जो यदि उसने पद्मिनी से रमण नहीं किया।'' बीबी जब सेवक से बात कर रही थी, तभी बादशाह आ गया। उसने बीबी से कहा कि- ''तुमने सही कहा है।'' उसने तत्क्षण राघव व्यास को बुलवाया और कहा कि ''सिंघल द्वीप के अलावा पद्मिनी कहाँ है?, मुझे बताओ।'' राघव व्यास ने कहा कि- ''एक पद्मिनी चारों दिशाओं में विख्यात चित्तौड़ में है। युद्धवीर और पराक्रमी राजा रत्नसेन के घर में पद्मिनी उसी तरह है, जैसे शेषनाग के पास मणि है। उसको कोई ले नहीं सकता।'' बादशाह ने कहा कि- ''हे ब्राह्मण! मैं दुर्गपति को जीवित पकड़कर खड़े-खड़े पद्मिनी

ले लूँगा।'' बादशाह ने शक्तिशाली सेना के साथ चित्तौड़ पर चढ़ाई की, जिससे धरती काँपने लगी और शेष नाग विचलित हो गया। (5)

हठी बादशाह सत्ताईस लाख लशकर और हथियारों के साथ दुर्ग की तलहटी में आ गया। योद्धा हाथियों की तरह उन्मत्त होकर युद्ध करने लगे। आतिशबाज़ी होने लगी। चारों दिशाओं में नगाड़े और ढोल बजने लगे। बादशाह को ससैन्य आया हुआ देखकर रत्नसेन भी क्रोधित हुआ। उसने अपने योद्धाओं को बुलाकर सेना तैयार की। उसने कहा कि– ''बादशाह! तू आ भले ही गया हो, लेकिन अब यहाँ ख़त्म होकर ही रहेगा। अब मैं तुझे अपने हाथ दिखाऊँगा। दिल्लीपति अब ढीले मत रहना, तुम कितने योद्धा हो पहले बता देना।'' रत्नसेन ने दुर्ग के कोट को दुरुस्त करवाया और दुर्ग के द्वार बंद करवाकर सब अंदर प्रविष्ट हो गए। भीषण युद्ध हुआ। बादशाह ने अपने योद्धाओं से एकत्र होकर गढ़ को ध्वस्त करने के लिए कहा। संध्या तक संग्राम हुआ, लेकिन सफलता नहीं मिली। कई मुसलमान योद्धा मारे गए। बादशाह मन में चिंतित हुआ। राघव व्यास ने कहा कि– ''दुर्ग इस तरह से जीतना बहुत मुश्किल काम है। कपट करके ही काम हो सकता है। रत्नसेन को वचन दो और कहो कि हम उससे विचलित नहीं होंगे। किसी प्रधान (प्रतिनिधि) को भेजो और उससे कहलवाओ कि बादशाह पद्मिनी के हाथ से भोजन करके क़िले के मुख्य स्थान देखना चाहता है। उसकी और कोई माँग नहीं है। थोड़ी-सी सेना के साथ वह दुर्ग में आएगा और भोजन करके वह दिल्ली लौट जाएगा।'' प्रतिनिधि ने यह प्रस्ताव रत्नसेन के सामने रखा और कहा कि यदि आप बात मान लेते हैं, तो बादशाह इसके बाद दिल्ली लौट जाएगा। उसने कहा कि– ''बादशाह को पद्मिनी स्त्री देखने की बड़ी इच्छा है। उसका वचन सत्य है। वह आपका जन्मांतर का भाई है। उसने कुकृत्य के कारण असुर शत्रु के यहाँ जन्म लिया है, जब कि सद्कर्मों के कारण आप चित्तौड़गढ़ के स्वामी हैं।'' रत्नसेन ने कहा कि– ''यदि बादशाह यह बात करता है, तो मुझे भी उससे मिलने का उत्साह है।'' रत्नसेन ने सोचा कि बादशाह अपने वचनों का पक्का है। वह थोड़ी-सी सेना के साथ भीतर आएगा। मेरे घर का अन्न ग्रहण करेगा और इससे हमारे बीच परस्पर सम्मान बढ़ेगा। (6)

प्रतिनिधि जब लौटकर आया, तो बादशाह ने उससे पूछा कि– ''क्या बात बन गई?'' बादशाह के लिए शपथ झूठी थी। वह मुँह से मीठा और मन में दुष्ट था। राघव व्यास ने रत्नसेन को पकड़ने के लिए बादशाह से मंत्रणा की। राजा के मन में कोई छल-भेद नहीं था, लेकिन बादशाह के मन में द्वेष था। रत्नसेन ने दुर्ग का द्वार खोल दिया। बादशाह तीस हज़ार सवारों के साथ दुर्ग में प्रवेश कर गया। रत्नसेन ने सरल मन से मंत्री को उसका स्वागत करने भेजा। राघव व्यास सहित

बादशाह तत्काल आ गया। क़िले में सब ने इस कला से प्रवेश किया कि कोई दिखाई नहीं पड़ा, लेकिन वे सब एकत्र हुए, तो बहुत अधिक थे। रत्नसेन मन में नाराज़ हुआ। उसने भी अपनी सेना लगा दी। बादशाह ने कहा कि- ''सेना क्यों लगा रहे हैं, हम युद्ध करने नहीं आए हैं, दुर्ग देखकर चले जाएँगे। हमारे मन में कोई खोट, छल-भेद नहीं है।'' राजा ने कहा कि आपने थोड़ी-सी सेना लाने का निश्चय किया था, लेकिन आप तीस हज़ार सैनिक लाए हैं। फिर मैं क्या करता। आपके मन में क्या है, लेकिन यह धूर्तता है।'' बादशाह ने कहा कि- ''अतिथियों का सम्मान करना चाहिए। अभी सुकाल है और अन्न बहुत है। हे राजा! बहुत-बहुत क्या करते हो। भोजन कराने में संकोच है और ख़र्च करते हुए ज़ोर आता है, तो इनको वापस भेज देते हैं।'' राजा ने कहा कि- ''हे बादशाह! सुनो, तुम और सैनिक बुला लो, लेकिन छोटी बात मत करो। पानी और अन्न बहुत हैं, पकवान भी बहुत हैं। जो अच्छा लगे, वह भोजन करो, लेकिन छोटी बात मत करो।'' बातचीत करके दोनों प्रसन्न हुए। दोनों एक-दूसरे के हाथ पर ताली दी। दोनों में परस्पर विश्वास क़ायम हुआ और उनके मन की आशंकाएँ ख़त्म हुईं।

रत्नसेन भोजन का प्रबंध करने लगा। वह भीतर गया और पद्मिनी से कहा कि- ''अब तुम बादशाह को भोजन करा दो, जिससे वह प्रसन्न हो जाए।'' पद्मिनी ने उत्तर दिया कि- ''बादशाह को षड्‌रस भोजन दासी परोसेगी।'' दो हज़ार सुंदर दासियों के पद्मिनी के पास रहने का विधान था। सभी प्रबंध करके दिल्लीपति को भोजन के लिए भीतर बुलाया गया। महल की साज-सज्जा ऐसी थी, जैसे देवताओं का विमान हो। रत्नजड़ित आवास थे और उनमें चित्र बने हुए थे। बादशाह वहाँ आकर बैठ गया। उसके मन में पद्मिनी को लेकर उत्साह था। दासियाँ आती थीं और अपना रूप दिखाती थीं- एक आकर बैठने के लिए आसन देती, दूसरी आती और थाल सजाती, तीसरी आकर हाथ धुलवाती और चौथी आती और चँवर ढुलाती थी। दासियाँ बार-बार आती-जाती थीं और इस तरह बादशाह की बुद्धि विचलित होती जाती थी। वह कहता, यही पद्मिनी है- यह उसके जैसी सुंदर दिखाई पड़ती है। राघव व्यास ने बादशाह को समझाया कि- ''आप सँभलिए, ये सभी पद्मिनी की दासियाँ हैं। आप बार-बार मत चौंकिए। पद्मिनी यहाँ क्यों आएगी।'' रंभा के समान दासियों को देखकर बादशाह ने विचार किया कि जब दासियाँ इतनी सुंदर हैं, तो पद्मिनी कितनी सुंदर होगी। राघव व्यास ने कहा कि- ''हे बादशाह! सँभलिए। पद्मिनी स्त्री की यह पहचान है कि वह बिजली के समान झलकती है, कुंदन की कांति की तरह उजली है, अंधेरे में उजाला कर देती है, देखते ही मन को हरती है और वह कमल के समान है, जिसका भूलकर भी भ्रमर साथ नहीं छोड़ते। इसलिए जब वह आएगी, तो कैसे छिपेगी।''

बादशाह ने कहा कि- ''ये दासियाँ धन्य हैं, जो अपनी नज़रों से पद्मिनी की देह निहारती हैं।'' राघव व्यास ने कहा कि- ''ये ऊँचा दिखाई देने वाला आवास है, वहाँ पद्मिनी का निवास हैं, राजा रत्नसेन यहीं रहता है और पद्मिनी से एक क्षण का विरह भी उसको सहन नहीं होता। पद्मिनी को और कोई नहीं देखता, जो देखता है, वह पागल हो जाता है।'' सुल्तान और राघव व्यास बात कर रहे थे कि उसी समय पद्मिनी ने उधर देखा और कहा कि- ''देखूँ, असुर अलाउद्दीन कैसा है।'' दासी ने बताया कि वह झरोखे के नीचे बैठा है। पद्मिनी गज गति से चलती हुई झरोखे में आकर बैठ गई। व्यास ने उधर देखा, तो उसे पद्मिनी बैठी दिखाई दी। उसने तत्क्षण बादशाह से कहा कि- ''स्वामी! पद्मिनी देखो। बादशाह ने ऊँचे देखा, तो उसे प्रत्यक्ष पद्मिनी दिखाई पड़ी। उसने कहा कि- ''अहो! पद्मिनी के सामने रंभा, रुक्मिणी, नागकुमारी, किन्नरी और इंद्राणी क्या हैं? ऐसा अनुपम रूप-सौंदर्य इसका है कि दूसरी कोई स्त्री इसके अँगूठे के बराबर भी नहीं है।'' पद्मिनी उसके हृदय में बस गई। बादशाह मूर्च्छित होकर धरती पर गिरने लगा। व्यास ने कहा कि- ''हे नरराज! सँभलिए। व्यर्थ में अपनी लज्जा क्यों खो रहे हैं। धैर्य धारण कीजिए, साहस रखिए, कोई दूसरा उपाय करना पड़ेगा। जब तक रत्नसेन हाथ में नहीं आता, तब तक पद्मिनी हाथ नहीं आएगी।'' चुप रहकर सब ने भोजन किया। राजा ने बादशाह को ख़ूब अच्छी तरह से भोजन करवाया। दोनों ने एक-दूसरे को उपहार- हाथी, घोड़े, वस्त्र आदि दिए। सभी अतिथि संतुष्ट हुए। बादशाह ने कहा कि- ''अब क़िला दिखाओ। हमें यहाँ आए हुए बहुत समय हो गया है।'' रत्नसेन बादशाह को क़िला दिखाने ले गया। जो-जो प्रसिद्ध स्थान थे, सब उसको दिखाए। बादशाह ने कहा कि- ''ऐसा क़िला मैंने नहीं देखा।'' दोनों एक-दूसरे के प्रति उत्साहित थे। बादशाह ने कहा कि- ''आपने हमारा बहुत आतिथ्य किया। कोई काम-काज हो, तो बताना। अब हमें विदा दो।'' राजा ने कहा कि- ''आगे चलिए मुझे अच्छा लग रहा है।'' यह कहकर वह क़िले से बाहर निकल गया। राजा के मन में कोई जटिलता नहीं थी, लेकिन बादशाह के मन में द्वेष था। व्यास ने बादशाह से कहा कि- ''यह अवसर अच्छा है। बाद में मत कहना कि मैंने नहीं कहा था।'' बादशाह ने अपने सैनिकों को बुलाया। उन्होंने तत्काल रत्नसेन की पकड़ लिया। बात बिगड़ गई। साथ में जो योद्धा थे वे हतप्रभ रह गए। बेड़ी डालकर राजा को बिठा दिया गया। बादशाह ने उस पर जुल्म और अन्याय किए। राजा शक्तिशाली था, लेकिन पकड़े जाने से बलहीन हो गया। (7)

बादशाह ने राजा का पकड़ लिया है और बात बिगड़ गई है, दुर्ग में जब सभी ने यह सुना, तो हलचल मच गई। योद्धा एकत्र हुए और दुर्ग के द्वार बंद कर दिए गए। वीरभाण योद्धाओं के बीच आकर बैठा। सभी एक-दूसरे की आलोचना करने

लगे और दुर्ग में चिंता हो गई। एक ने कहा कि हमें रात में धावा करना चाहिए, तो एक ने कहा कि हम गढ़ में जूझेंगे, तो एक ने कहा कि हम मौका देखकर संघर्ष करेंगे, तो एक ने कहा कि हमारा कोई नायक नहीं है और उसके बिना युद्ध व्यर्थ है। इस तरह सभी विचार कर रहे थे और सभी के मन में भय था। इसी समय बादशाह एक प्रतिनिधि आया और उसने कहा कि– ''बादशाह कहता है कि हमको पद्मिनी स्त्री दे दो, तो दुर्गपति को छोड़ देंगे। यदि तुम पद्मिनी नहीं दोगे, तो हम उसके प्राण ले लेंगे। पद्मिनी नहीं दोगे, तो कई योद्धा मरेंगे।'' सब ने सम्मानपूर्वक प्रधान से कहा हम विचार करेंगे और फिर बतायेंगे। योद्धा विचार करने लगे कि यदि हम पद्मिनी देंगे, तो हमारा थोड़ा भी मान नहीं रहेगा और यदि नहीं देंगे, तो सारी बात बिगड़ जाएगी। वीरभाण पद्मिनी देने में प्रसन्न था, क्योंकि उसकी माता का सुहाग पद्मिनी ने लेकर उसको दु:ख दिया था। वीरभाण ने सभी को समझाया कि पद्मिनी देने से सब बच जाएगा। सभी योद्धाओं ने तय किया कि सुबह हम पद्मिनी दे देंगे। यह विचार कर वे उठे थे कि पद्मिनी को सब पता लग गया। पद्मिनी के हृदय में खलबली मच गई। उसने कहा कि– ''मैं अपने को चिता में जला दूँगी, लेकिन राक्षस के घर नहीं जाऊँगी। मेरे पर यह कैसा समय आया है। मुझे शरण देने वाला कोई नहीं है। हे भगवान जगदीश! अब मैं क्या करूँ। रामचंद्र ने सीता को बाहर निकला, पांडवों ने द्रोपदी को दे दिया, मैं भी क्या राक्षसों से छूट पाऊँगी? हे जीव! मृत्यु ही सही है।''

उस नगर में क्षत्रियत्व का निर्वाह करने वाला गोरा रावत रहता था। उसका भतीजा बादल भी योद्धा था। ये दोनों शक्ति के स्वामी और गुणी थे। दोनों राजा से नाराज़ थे और उसकी कृपा नहीं लेते थे। दोनों चाकरी नहीं करते थे और घर पर ही रहते थे। रत्नसेन ने उनको छोड़ रखा था। वे दोनों जा रहे थे, लेकिन दुर्ग पर घेरे के कारण नहीं जा पाए। दोनों क्षत्रिय थे– क्षत्रियत्व धारण करते थे, अपयश से डरते और स्वामिधर्म का निर्वाह करते थे। पद्मिनी ने मन में विचार किया कि– ''गोरा और बादल, दोनों गुणी हैं, मैं उनसे जाकर प्रार्थना करूँ, दूसरों में तो रत्ती भर भी गुण नहीं हैं।'' यह विचार कर पद्मिनी पालकी में बैठकर सखियों सहित गोरा के दरबार में आई। गोरा ने पद्मिनी को देखा, तो सामने दौड़कर आया और कहा कि– ''माता! आपने बहुत दया की। आप किस काम के लिए आई हैं। यह ऐसे हुआ जैसे आलसी के घर पर चलकर गंगा आई हो।'' पद्मिनी ने कहा कि– ''मैं तुमसे मिलने आई हूँ। दया-धर्म की दीक्षा लेनेवाले योद्धाओं ने मुझे विदा दे दी है। अब तुम भी मुझे विदा दे दो, तो मैं राक्षसों के घर चली जाऊँ। योद्धा शक्तिहीन हैं, पृथ्वी से क्षत्रियत्व उठ गया है। योद्धाओं ने तय किया है कि पद्मिनी देकर राजा को लेंगे।'' गोरा ने

कहा कि– ''मैं तो दुर्ग में कहने मात्र के लिए हूँ। राजा का ख़र्च नहीं खाता, न मुझ से कोई परामर्श करता है। पर आप दु:खी मत होइए। सब अच्छा होगा। आप मेरे घर आ गई हैं, तो राक्षसों के घर नहीं जाएँगी। योद्धा मर जाएँ, पर स्त्री देकर राजा को लेना ठीक नहीं है।'' गोरा ने आगे कहा कि ''मेरे बड़े भाई गाजण का पुत्र बादल बड़ा शक्तिशाली है। हमें उससे भी परामर्श करना चाहिए।'' दोनों बादल के यहाँ आए। बादल सामने दौड़कर आया। उसने प्रणाम किया और काम पूछा। गोरा ने उससे कहा कि– ''सभी योद्धाओं ने यह मंत्रणा की है कि पद्मिनी देकर राजा लेंगे। इसके अलावा और कोई उपाय नहीं है। पद्मिनी अपने पास आई है। जैसा तुम कहोगे, वैसा करेंगे। योद्धा बहुत बैठे हैं, लेकिन जूझने के लिए कोई तैयार नहीं है। हमारे पास कोई गाँव-ग्रास भी नहीं है। हम दो ही शरीर हैं और बादशाह के पास लशकर बहुत हैं। हम उससे कैसे जीतेंगे?'' पद्मिनी ने कहा कि– ''तुम्हारी शरण में आई हूँ। तुम रखो तो ठीक है, नहीं तो वापस जाती हूँ। मैं चिता में जल जाऊँगी।'' यह सुनकर बादल ने कहा कि– ''हे बाबा! योद्धा हैं तो उनको रहने दो। उनसे क्या काम है। मैं अकेला ही सब करूँगा। पद्मिनी ने आँगन में पाँव रखकर मेरा घर पवित्र किया है। उसने पद्मिनी से कहा कि– ''आप महल पधारें और मन में दु:ख मत करें। मैं बादशाह को अकेला ख़त्म करूँगा। शत्रु को ख़त्म करके राजा की विपत्ति दूर करूँगा और उसको घर लाऊँगा। बादल के बोल झूठे नहीं होंगे।'' (४)

पद्मिनी जैसे ही घर गई, बादल की माता आ गई। उसने सब सुन लिया था। वह उदास थी– उसकी आँखों से आँसू बहते थे और वह निश्वास छोड़ रही थी। माँ की यह दशा देखकर बादल ने पूछा कि– ''किस कारण से तुम इस तरह हो। तुम्हारे चित्त में क्या कष्ट है और तुम क्यों विचलित हो?'' माता ने कहा कि– ''मेरे तुम्हारे बिना कोई नहीं है। तुम जबरदस्ती इस जंजाल में क्यों पड़ रहे हो। बहुत योद्धा हैं, जिनको जागीरें मिली हुई हैं, हम तो अपना ख़र्च करते हैं। तुमने कभी कोई संग्राम नहीं किया, इसलिए तुम्हें युद्ध नहीं आता। अभी तुम बालक हो। अभी तो तुम्हारा विवाह हुआ है। पहले अपनी पत्नी को तो साध लो, उसके बाद ऐसा कोई निश्चय करना।'' बादल ने जवाब दिया कि– ''हे माता! तुमने ऐसा क्यों कहा? पहले तुम मुझे समझाओ कि मैं बालक किस तरह से हूँ। मैं पालने में नहीं सोता। तुम मुझे बालक कहती हो, लेकिन देखो, में किस तरह उत्पात करता हूँ और राजाओं को उखाड़कर स्थापित करता हूँ। शत्रुओं के सिर उड़ा दूँ, तो ही मैं तुम्हारा पुत्र हूँ। क्षत्रियत्व और संग्राम में मैं पीछे हटता हूँ, तो ही तुम्हें ऐसा कहना चाहिए।'' अपने योद्धा पुत्र की बातें सुनकर माता के मन में खलबली मच गई। यह सोचकर कि बादल माता की बात नहीं मानेगा, वह बिलखती हुई चली गई। उसने सारी बात बताकर अपनी बहू

से कहा कि– ''वह मेरी सीख नहीं मानता। तुम्हारे प्रेम से रह जाएगा।'' सभी शृंगार करके और शोभाकारी वस्त्र पहनकर बादल की पत्नी आई। वह रूप में रंभा के समान थी और लज्जा सहित ललित वचन बोलती थी। उसने कहा कि– ''स्वामी! मेरी बात सुनो। बादशाह बहुत दुष्ट और प्रबल है। तुम उससे कैसे जूझोगे? वे बहुत हैं और तुम अकेले हो, फिर तुमने यह निश्चय क्यों किया? बादल ने कहा कि– ''हे सुंदरी! हाथी बहुत और सिंह एक होता है, तो भी उसके मन में कोई भय नहीं होता। हाथी के मद बहुत झरता है, लेकिन फिर भी वह सिंह के सामने भागता फिरता है। सिंह हमेशा सामने धँसता है वह रोकने से पीछे नहीं हटता।'' बादल की पत्नी ने कहा कि ''स्वामी! मेरी बात का बुरा मत मानो। मैं अच्छी बात करती, लेकिन समय बहुत विकट है।'' बादल ने कहा कि– ''मुझे युद्ध का बहुत भय मत दिखाओ। कायर हँस–हँसकर बातें करता है, लेकिन मौका आने पर खिसक जाता है।'' बादल की पत्नी ने कहा कि– ''भीषण युद्ध होगा और गोले चलेंगे। उस सब में तुम अकेले कैसे प्रवेश करोगे।'' बादल ने उत्तर दिया कि– ''तुमने यह कैसी बात कही, मैं घोड़े और हाथियों पर आरूढ़ और पैदल सैनिकों को एक बार में ही चकनाचूर कर दूँगा। सत्ताईस लाख लशकर लूटकर बहुत माल घर लाऊँगा।'' बादल को स्त्री ने कहा कि– ''हे स्वामी! रहने दो। अभी तो तुमने सेज भी नहीं सजाई। अपनी स्त्री के साथ प्रेम भी नहीं किया। अभी तुम बालक की तरह निष्कलंक हो। तुमको तो होंठों पर चुंबन देना भी नहीं आता। तुम क्या जूझोगे?'' बादल ने कुछ नहीं कहा। स्त्री ने फिर कहा कि– ''अभी तो तुमने मुझे भी हाथ नहीं लगाया, तो तुम शत्रुदल का नाश किस तरह करोगे?'' बादल ने उलटकर जवाब दिया कि– ''हे सुंदरी! अब मैं तुम्हारी सेज पर उस दिन आऊँगा, जिस दिन शत्रु को जीत लूँगा। जब तक बादशाह को नष्ट कर धूल नहीं कर देता, तब तक कोई सेज, प्रेम और स्नेह नहीं हैं।'' यह सुनकर स्त्री को गर्व हुआ। उसने कहा कि– ''शाबाश! यह बहुत अच्छा है। मैं जन्म–जन्म से तुम्हारी दासी हूँ। जो तुमने बोला है, उसका निर्वाह करना। किसी बात से विचलित मत होना। अब मैं युद्ध में तुम्हारे हाथ देखूँगी– योद्धा तलवार और भाले चलाते हैं और उनके प्रहार अपने शरीर पर ख़ूब झेलते हैं। वे युद्ध में पाँव पीछे नहीं रखते और मरने का भय नहीं मानते। मेरा जीना–मरना आपके साथ है। मैं आपको नहीं छोड़ूँगी।'' बादल ने कहा कि– ''तुम मेरे ह्रदय में समा गई हो। तुमने बहुत अच्छी बातें कहीं। तुमने कुल की मर्यादा रखी।'' पत्नी ने हथियार लाकर दिए, जिनसे योद्धा बादल ने शृंगार किया। फिर वह घोड़े पर चढ़ा और गोरा के यहाँ आया। उसने गोरा से कहा कि– ''तुम यहीं रहना। मैं एक बार बादशाह को देखकर आता हूँ।'' गोरा ने कहा कि तुम और मैं एक हैं। तुम जाते हो, तो मुझे कष्ट होता है।'' बादल ने

कहा कि– ''काका तुमने कच्ची बात की है। अभी मैं केवल भेद लेने जा रहा हूँ। युद्ध में मैं और तुम साथ होंगे। मैं तुम्हारा दायाँ हाथ रहूँगा।'' गोरा रावत से पूछकर वह चला। आगे उसकी भेंट सभी योद्धाओं से हुई। उसने योद्धाओं की पूछा कि– ''आपने क्या विचार किया?'' योद्धाओं ने उत्तर दिया कि– ''हम सभी ने एक मत से निश्चय किया है कि हठी बादशाह ने राजा को ले लिया है और वह यहाँ आएगा, तो क़िला भी ले लेगा। पद्मिनी देकर छूट सकते हैं। नहीं तो दुर्ग की भी कोई आस नहीं है। दुर्ग जाने पर कुछ नहीं रहेगा। फिर तुम जैसा कहो, करें।''

बादल ने कहा कि– ''आपने अच्छा विचार किया कि आप पद्मिनी देंगे। सही है, लेकिन एक बात मेरी भी सुनो। आप यह तय कर लें कि इसका समस्त देश में प्रचार होगा, किसी के भी सिर पर सम्मान नहीं रहेगा और इससे क्षत्रियत्व का लोप होगा। मान के बिना मनुष्य वैसा ही है जैसे कण के बिना व्यर्थ भूसा है। काया–माया, दोनों व्यर्थ हैं– यह एक घड़ी टेढ़ी और दूसरी घड़ी समान हो जाती है। कायर हो या योद्धा, मृत्यु किसी की नहीं टलती, इसलिए पशु होकर जुगाली करने से अच्छा तो युद्ध में घायल होकर मरना है।'' यह सुनकर वीरभाण बोला कि– ''तुमने अच्छी बात कही, लेकिन तुम तिल मात्र भी नहीं समझते। बादशाह ईश्वर का अवतार है। उसके साथ सत्ताईस लाख लशकर है। उसमें यवन योद्धा बड़े जुझारू हैं। बादल ने कहा कि– ''कुँवर, यह सोच अपनी नहीं है। सिंह विचार नहीं करता, वह हाथी को मार देता है। ऐसा करते हुए जो मरता है, उसकी कीर्ति निर्मल होती है। काया के बदले यदि कीर्ति मिले, तो यह खरीदने में महँगी नहीं है। काया तो चमड़े की थैली है– यह एक क्षण उजली और अगले क्षण मैली हो जाती है। यदि इसके बदले कीर्ति मिलती है, तो इसे लेते हुए पीछे कौन हटेगा? वीरभाण ने अब कहा कि– ''बादल, तुम्हारी बुद्धि बहुत निर्मल है। अर्जुन की तरह तुम श्रेष्ठ हो। जो तुम्हें अच्छा लगे, करो। राजा छूट जाए, पद्मिनी भी रह जाए, इस बात से कौन प्रसन्न नहीं होगा।'' बादल ने कहा कि– ''अभी बहुत काम शेष हैं, मैं लशकर में जाता हूँ और सारी बात की थाह लेकर आता हूँ।'' सब को अभिवादन कर वह घोड़े कर चढ़ा, तो जैसे देवराज इंद्र का साहस संकट में पड़ गया। (9)

बादल दुर्ग के द्वार से नीचे उतरा। वह बुद्धिमान और साहस से परिपूर्ण था। उसका भाल चमक रहा था और उसका हृदय प्रताप और तेज़ से युक्त था। उसने नए शोभायमान वस्त्र पहन रखे थे और वह सभी शस्त्रों से सुसज्जित था। बादशाह ने उसे आते हुए देखा, तो यह पता करने के लिए दूत भेजा कि वह कौन है और उसके आने का प्रयोजन क्या है। दूत ने जब उससे पूछा तो उसने जवाब दिया कि– ''मैं बात करने आया हूँ और सुबह पद्मिनी ले आऊँगा। बादशाह मेरी राय मानेगा,

तो मैं उसका बहुत काम करूँगा।'' दूत ने जब अपने स्वामी को जाकर यह बताया तो वह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने बादल को अंदर बुलवाया और बहुत सम्मान दिया। बादशाह ने उससे उसका परिचय पूछा और कहा कि- ''तुम यहाँ क्यों आए हो?'' बादल अवसरानुकूल बात करने में निपुण था। उसने सम्मानपूर्वक कहा कि- ''पद्मिनी ने मुझे अपना प्रधान बनाकर भेजा है। उसने जब से आपको झरोखे के नीचे भोजन करते हुए देखा है, तब से वह काम दग्ध है। वह सोचती है कि वह स्त्री धन्य हैं, जिसको आप जैसा पति मिला। वह विरह में व्याकुल बैठी रहती है और रात-दिन आपका सपना देखती है। वह उदास रहती है- उसकी आँखों में आँसू हैं और बड़ी-बड़ी साँसें लेती है। पद्मिनी को आपसे बहुत प्रेम है, लेकिन मेरे मुँह से यह कहा नहीं जाता। वह आलिम, आलिम करती रहती है। उसने मुझे यह सब कहा है। आपका प्रधान आया था, उसको सम्मान भी दिया, लेकिन योद्धा कहते हैं कि मर जाएँगे, पर पद्मिनी नहीं देंगे। मैंने सभी योद्धाओं को समझाया, तब जाकर आज बात बनी है। आप मुझे विदा कीजिए। मैं पद्मिनी के पास जाता हूँ। वह बेचैन होकर आपके संदेश की प्रतीक्षा करती होगी। विरहिणी से विरह की व्यथा नहीं सही जाती। काम की पीड़ा उसके हृदय में चलती है। आपका संदेश अमृत रस जैसा है, आप से संदेश लेकर मैं पद्मिनी को दूँगा।'' पद्मिनी के अपने प्रति प्रेम की बात सुनकर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ। इस तरह बादल ने पद्मिनी रूपी गारुड़ी मंत्र से बादशाह रूपी सर्प को कीलित कर दिया।

बादशाह ने बादल से कहा कि- ''तुम मेरे घर आज अतिथि हो। मैं तुम्हारी क्या सेवा और सत्कार करूँ। तुम्हें देखकर मेरे मन को शांति मिली है। मैं पद्मिनी से प्रेम करता हूँ। तुम अपने योद्धाओं का समझाकर मुझे पद्मिनी दिलवा दो।'' यह कहकर बादशाह ने बादल को एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ और हाथी-घोड़े दिए। उनको लेकर बादल आया, तो उसकी माता और पत्नी बहुत प्रसन्न हुई। गोरा भी मन में प्रसन्न हुआ कि अब बादल अपने काम में सफल होगा। पद्मिनी भी हर्षित हुई कि बादल मेरे स्वामी को मुझ तक पहुँचा देगा। सभी योद्धाओं को बादल की शक्ति पर भरोसा हुआ। आग दबी हुई हो, तो भी जला देती है। बादल ने योद्धाओं के साथ बैठकर मंत्रणा की और कहा कि- ''दो हज़ार पालकियाँ सजाओ और यह बात किसी को भी पता नहीं लगना चाहिए। पालकियों में दो-दो योद्धा रखना, जिनके पास शस्त्र हों और जो साहसी हों। पालकियों को एक-दूसरे के पीछे रखना और कहना कि इनमें पद्मिनी की सखियाँ हैं। बीच की पद्मिनी की पालकी का शोभा-शृंगार ख़ास हो। उसके ऊपर गुंजार करते हुए भ्रमर रखना। इस पालकी में गोरा रावत रहेगा। पालकियों के बीच दूरी नहीं हो और ये इस तरह रहे कि दुर्ग के द्वार से शुरू होकर

सेना तक फैल जाएँ। ऐसा करके तुम आना और उचित समय की प्रतीक्षा करना। मैं बीच-बीच में जाकर बात करूँगा और सारी बात बताता रहूँगा। मैं जाकर राजा को लाऊँगा। उसको क़िले में पहुँचाकर हम सब आक्रमण करेंगे।'' यह विचार अच्छा है, सब योद्धाओं ने निश्चय किया तब तक सुबह हो गई। सबको अच्छी तरह समझाकर बादल ने वहाँ से प्रस्थान किया और वहाँ पहुँचा जहाँ लशकर में बादशाह बैठा हुआ था। बादल ने जाकर सलाम किया, तो बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ। बादशाह ने कहा कि- ''बादल, समाचार दो, मैं तुम्हें बहुत देश दूँगा।'' बादल ने कहा कि- ''स्वामी! बात सिरे तक पहुँच गई है। मैंने सभी योद्धाओं को बहुत मुश्किल से समझाया है और पद्मिनी को क़िले के पीछे ले आया हूँ। सभी योद्धाओं का आग्रह है कि आप पहले विश्वास दिलाएँ, तो मैं पद्मिनी ले आऊँ।'' बादशाह ने कहा कि- ''तुम्हें विश्वास कैसे होगा'', तो बादल ने कहा कि- ''आप अपने लशकर को भेज दीजिए और यदि भय हो, तो उसमें से दो-चार हज़ार रख लीजिए।'' दूसरा सभी लशकर प्रस्थान कर देगा, तो विश्वास हो जाएगा।'' यह सुनकर उतावले और पगलाए बादशाह ने कहा कि- ''मुझे किसका भय है। तुमने भी बादल क्या बात की!'' बादशाह ने लशकर को कूच करने की आज्ञा दे दी। अच्छे दो-चार हज़ार योद्धा उसने पास रख लिए। बादशाह ने बादल से कहा कि- ''मैंने जैसा तुमसे कहा था कर दिया, अब तुम जल्दी पद्मिनी लाओ और अपने वचन का पालन करो।'' बादशाह ने फिर बादल को सिरोपाव और लाख स्वर्ण मुद्राएँ दीं। बादल उनको लेकर घर आया, जिससे उसकी माता प्रसन्न हुई। उसने योद्धाओं का संकेत किया और कहा कि- ''पालकियों लेकर आना और उनको एक-दूसरे के पीछे रखना। किसी बात में शीघ्रता मत करना और क्षत्रियत्व का कोई नुकसान मत करना।'' यह कहकर वह पालकियों के आगे चलने लगा। उसने बादशाह को आते हुए देखा, तो कहा कि ''आपके हरम में कई स्त्रियाँ हैं, लेकिन सौभाग्यवती आप पद्मिनी को करना।'' बादशाह ने कहा कि- ''हरम की दूसरी स्त्रियाँ पद्मिनी के नख के बराबर भी नहीं हैं। वे सब पद्मिनी को सेवा करेंगी।''

बादशाह ने बादल को फिर सिरोपाव दिया। उसने आकर योद्धाओं से कहा कि- ''तुम यहीं ठहरना। मैं घात करूँगा। बात बाहर नहीं जानी चाहिए।'' बादल गढ़कर बातें करने लगा और इसमें समय ज़ाया करने लगा। बादशाह जैसे-जैसे जल्दी करता, बादल उतना ही ठहरकर आगे बढ़ रहा था। उसने पालकी लाकर बादशाह के सामने प्रत्यक्ष रख दी। बादल पालकी और बादशाह के बीच में बातचीत के बहाने से चक्कर लगाने लगा। जब दिन एक प्रहर शेष रह गया, लशकर बहुत दूर निकल गया और आक्रमण का समय हो गया, तब बादल ने बादशाह ने जाकर कहा कि- ''स्वामी! पद्मिनी इस प्रकार कहती है कि उसे खड़े हुए बहुत समय हो गया है। उसकी

एक प्रार्थना आप सुनें। उसकी इच्छा है कि आपके घर आने से पहले वह एक बार रत्नसेन से मिल ले और उससे दो-चार बातें कर लें। आप रत्नसेन को दरबार में ले आएँ, तो इससे मुझे सुविधा होगी।'' बादशाह ने कहा कि- ''हे बादल! पद्मिनी ठीक कहती है। उसकी इस बात से मैं ख़ुश हूँ।'' उसने तत्काल आदेश दिया कि राजा रत्नसेन को छोड़ दो।'' बादल भीतर रत्नसेन को छुड़वाने गया, तो उसने पीठ फेर ली उसने कहा कि- ''बादल! तुम्हें धिक्कार है। मुझे मुँह मत दिखाओ। तुमने मुझे गाली लगाई है। पद्मिनी के बदले मुझे लेकर तुमने मुझसे वैर लिया है। क्षत्रियत्व के माथे पर तुमने धूल डाल दी। वीरता ख़त्म हो गई।'' बादल ने उत्तर दिया कि- ''यह कुछ और बात है। आप मौन रहकर आगे चलिए। सब अच्छा होगा।'' बादशाह ने रत्नसेन से कहा कि- ''पद्मिनी से मिल आओ, जिससे मैं सद्भावनापूर्वक तुमको विदा दे दूँ।''

राजा पास-पास रखी हुई पालकियों की तरफ़ पद्मिनी से मिलने चला। वह जब पालकी के भीतर प्रविष्ट हुआ, तो उसे सच्ची बात पता लगी। बादल ने कहा कि- ''एक से दूसरी पालकी में होते हुए आप गढ़ तक पहुँच जाओ और जब वहाँ जाकर सचेत हो जाओ, तो ढोल बजाकर संकेत करना।'' यह सुनकर राजा प्रसन्न हुआ। वह सकुशल दुर्ग में पहुँच गया, जैसे सूर्य को राहु ने मुक्त कर दिया हो। जैसे ही कुशल-क्षेम के बाजे बजे, वैसे ही योद्धाओं ने गर्जना की और वे निकल पड़े। एक से एक पराक्रमी चार हज़ार योद्धा बाहर निकले। आगे गोरा-बादल थे। योद्धा युद्ध करने लगे- वे तलवारें लेकर शत्रु पर टूटे पड़े। उन्होंने बादशाह को ललकारते हुए कहा कि- ''हे बादशाह! खड़ा रह। भाग मत जाना। हम तुझे पद्मिनी दिखाने के लिए लाए हैं। तुझे उसका बड़ा चाव है। तू खड़ा रह, हम तुझे पद्मिनी देते हैं।'' यह कहकर वे जैसे ही आगे बढ़े, तो उनको बादशाह दिखाई पड़ा। युद्धवीर बादशाह ने बात बिगड़ जाने पर कहा कि- ''बादल ने धोखा किया है। सभी योद्धा एकत्र होकर आक्रमण करो।'' योद्धाओं में परस्पर युद्ध शुरू हो गया। बादल ने कहा कि- ''हे बादशाह, यदि तू युद्धवीर है, तो पाँव पीछे मत रखना। तू योद्धा है, तो संग्राम करना, नहीं तो तेरी इज़्ज़त नहीं रहेगी।'' बादशाह के जुझारू योद्धा यम दल की तरह भिड़ गए। धूल उड़कर आकाश में छा गई, जिसमें सूर्य छिप गया। दोनों दिशाओं से बाण छूटने लगे। तलवारें चलने लगीं और उनके टकराने से चिनगारियाँ उड़ने लगीं। ऐसा लगता था जैसे अंधकार में अग्नि की ज्वालाएँ हों। रुधिर प्रवाह चलने लगे, जैसे वर्षा ऋतु में नाले बहते हैं। योगिनियाँ खून से अपने खप्पर भर रही थी और शिव मुंड माल लेकर घूम रहे थे। धूल से प्रकाश अवरुद्ध था और गिद्ध मांस नोचकर टुकड़े ले जा रहे थे। सूर्य का रथ ठहर गया था और इसकी रक्ताभा निष्प्रभ हो गई

थी। इसी समय गोरा दौड़कर वहाँ गया, जहाँ बादशाह था। उसने बादशाह पर तलवार से प्रहार किया, जिससे वह वहाँ से भाग छूटा। बादल ने कहा कि– ''भागते हुए को मारना दोष है।'' राजा रत्नसेन दुर्ग के ऊपर से संग्राम देख रहा था। पद्मिनी भी गोरा-बादल को शत्रुओं का संहार करते हुए देख रही थी। पद्मिनी खड़ी हुई बादल को आशीर्वाद दे रही थी कि– ''बादल, तुम्हारी बलिहारी है। तुमने मेरा सौभाग्य रख लिया। योद्धा तो बहुत हैं, लेकिन वे सभी व्यर्थ निकले। शक्तिशाली बादल एक ही योद्धा था, जो सत्य से नहीं चूका।'' बादल ने स्वामी धर्म और युद्ध की मर्यादा रखी। गोरा युद्ध में बादशाह की सेना को नष्ट करके खेत रहा। बादशाह का लशकर को लूट लिया गया। बहुत से मर गए या भाग गए। बादल अकेला था, लेकिन वह जीत गया। उसने बादशाह को छोड़कर यश लिया। बादशाह ने बादल से कहा कि– ''तुमने अच्छा युद्ध किया। तुमने मुझे जीवनदान दिया। मैं तुम्हारी कीर्ति का वर्णन कैसे करूँ।'' बादशाह अकेला चला गया। गोरा-बादल ने युद्ध जीत लिया। गढ़ के दरवाज़े खोल दिए। राजा रत्नसेन बादल को लेने सामने आया और दोनों एक-दूसरे के गले लगे। उत्सव के साथ बादल को अंदर लिया गया और राजा ने आधा देश बादल को दे दिया। पद्मिनी गर्व पूर्वक बोली कि– ''बादल के समान दूसरा कोई नहीं है। उसने मुझे सौभाग्य देकर प्रसन्न किया।'' उसने कहा कि ''बादल! तुम्हारी माँ धन्य है, जिसने तुम्हें जन्म दिया। तुम्हारी पत्नी भी धन्य है, जिसके बादल जैसा पति है।'' पद्मिनी ने मोतियों का थाल भरकर बादल के माथे पर तिलक दिया और उसको बधाई दी। उसने उसको अपना भाई बनाकर उसके घर पहुँचाया। वहाँ बादल का स्वागत हुआ। मोती उछाले गए। सभी सगे-संबंधी उससे आकर मिले। शत्रुओं का संहार करके वह महल के बीच में आया। उसकी स्त्री ने नए परिधान धारण करके उसको लंबा तिलक निकाला। तलवार का आभूषण लेकर वह सामने आई। कुशलक्षेम के साथ घर आ जाने पर उसको बधाइयाँ दी गईं। अब गोरा की स्त्री ने बादल से कहा कि ''तुम्हारे काका युद्ध में कैसे काम आए। उन्होंने कैसे प्रहार किए और शत्रुओं को कैसे नष्ट किया?'' गोरा ने कहा कि– ''हे माता सुनो! मैं कैसे वर्णन करूँ! उन्होंने बहुत से हाथियों को मार दिया। योद्धाओं का तो पार ही नहीं है। उन्होंने बादशाह को अकेला करके उस पर आक्रमण किया। उन्होंने अपने शरीर को तिल-तिल छिदवा दिया और फिर स्वर्ग में पहुँच गए। उन्होंने योद्धाओं को लाज रखकर कुल को उज्ज्वल कर दिया।'' यह सुनकर गोरा की स्त्री के मुख पर प्रसन्नता छा गई। उसे रोमांच हो आया। वह प्रसन्न होकर बोली कि– ''हे बादल! सुन, ठाकुर स्वर्ग में अकेले हैं। मेरे और उनके बीच में दूरी बहुत हो गई। वे मुझ पर गुस्सा करेंगे। अब देर मत करो। काकी को भी उनके स्थान पर पहुँचा दो।'' बादल यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने

कहा कि– ''माता, तुम धन्य हो।'' गोरा की स्त्री शृंगार करके घोड़े पर चढ़ी। राम-राम करती हुई उसने प्रस्थान किया और अग्नि स्नान कर लिया। वह स्वर्ग में अपने पति के पास पहुँच गई। इंद्र ने उसे आसन दिया। स्वर्ग में पहुँचने पर उसकी जय-जयकार हुई। बादल के स्वामी धर्म का यश बखाना जाने लगा। उसके जैसा कोई योद्धा नहीं हुआ, जिसका तीनों लोकों में यश हो। उसने पद्मिनी की रक्षा की, राजा को वापस लाया, दुर्ग का दायित्व निभाया और युद्ध में मर्यादा रखी। ऐसा बादल धन्य है। (10)

अध्याय – 3

अज्ञात कवि कृत 'पद्मिनीसमिओ'

रचना समयः 1616 ई.

पद्मिनीसमिओ पद्मिनी–रत्नसेन और गोरा–बादल प्रकरण पर आधारित एक लघुकाय रचना है। यह रचना ऐसी हस्तलिखित 540 पृष्ठों की पांडुलिपि में प्राप्त हुई है, जिसमें दूसरे ऐतिहासिक छंद और गीत सहित कुछ अन्य रचनाएँ भी सम्मिलित हैं। इसमें *चित्तौड़रासो* नाम की एक रचना भी सम्मिलित है, जो काफ़ी कट–फट गई है। अलबत्ता *पद्मिनीसमिओ* कमोबेश संपूर्ण है और यह इस पांडुलिपि में पृष्ठ 41 से शुरू होकर 78 पर समाप्त होती है। *पद्मिनीसमिओ* में कहीं भी इसके रचनाकार का नामोल्लेख नहीं है। अंत में रचनाकार ने रचना समय संवत 1673 दिया है। यह उल्लेख इस तरह से है– *संमत सोल तीहोत्तरै अच्चड़ करन अरप्पिया।* *चित्तौड़रासो* का प्रकाशन शिव मृदुल के संपादन में चंद बरदाई के वंशज किशनदास रैनावत (कोठारिया–भीलवाड़ा–राजस्थान) की रचना के रूप में प्रकाशित हुआ। *पद्मिनीसमिओ* में रचनाकार का नामोल्लेख तो नहीं है, लेकिन प्राप्त पांडुलिपि में अन्यत्र एक जगह महेशदास का नामोल्लेख है। लिखा गया है कि– *इतिश्री कवित्त आसीया महेसदास रा कह्या।* इस पांडुलिपि का प्रतिलिपिकार अमरविजय है और उसने वि.सं.1806–07 में इसकी उदयपुर में प्रतिलिपि की। उसने यह उल्लेख दो स्थानों पर किया है कि जगह वह लिखता है– *सम्वत् 1806 चैत्र वदि 5, शुके लिखतं अमरविजै श्रीउदयपुर नगरै।* इसी तरह दूसरी जगह वह लिखता है– लिखतं *अमरविजै श्रीउदैपुर नगरे सं.1806 मागशीर्ष वदि अमावस्या भोम वासरे।* प्रतिलिपिकार ने केवल प्रतिलिपि ही नहीं की, उसने यथावश्यकता इसका पाठ विस्तार भी किया। उसका पाठ विस्तार अतिरिक्त है और यह स्पष्ट तौर पर उसने अलग से हाशिए पर किया है। *पद्मिनीसमिओ* वंश–ख्यात चारण रचना है और इसका रचनाकार कवि कर्म और इतिहास का अच्छा जानकर है। *पद्मिनीसमिओ* की कथा के मोड़–पड़ाव और कुछ छंद जटमल नाहर की *गोरा–*

बादल कथा से मिलते-जुलते हैं। यद्यपि *पद्मिनीसमिओ* की रचना का समय 1616 ई. है, जो जटमल नाहर की रचना 1623 ई. से पहले का है, लेकिन कुछ विद्वानों की राय में यह जटमल नाहर के बाद की रचना है और उससे प्रभावित भी है। यह धारणा सही नहीं लगती है- इस रचना की विषय वस्तु, गठन और भाषा को देखकर लगता है कि यह जटमल नाहर की रचना से पहले की रचना है। इसके रचनाकार ने चित्तौड़ के दुर्ग का भूगोल, युद्ध और इसमें सम्मिलित योद्धाओं के नाम-वंश-गोत्र और घटनाओं का जो सिलेसिलेवार विस्तृत विवरण दिया है, उससे लगता है कि *पद्मिनीसमिओ* के रचनाकार को जटमल नाहर की तुलना में इस प्रकरण की अधिक जानकारी थी और उसने जटमल नाहर से पहले इसकी रचना की। *पद्मिनीसमिओ* का रचनाकार चारण था, यह उसके चारण छंद और कवि कथा-समयों के ज्ञान और अभ्यास से साफ़ लगता है। कवि चित्तौड़-उदयपुर के आस-पास का होने के साथ शायद राज्याश्रय में भी था, इसलिए इतिहास की तथ्यात्मक जानकारियाँ भी उसको अधिक थी, जबकि जटमल नाहर पंजाब से था, इसलिए उसने अपनी रचना में इतिहास संबंधी कई तथ्यात्मक त्रुटियाँ की हैं। समिओकार रत्नसिंह के लिए चित्तौड़ाधिपति 'खुम्माण रत्नसिंह देव' लिखता है, जबकि जटमल उसको चौहानवंशी मानता है, जो इतिहाससम्मत नहीं है। समिओकार के अनुसार गोरा और बादल 'संभरी' अर्थात् साँभर के चौहान हैं। समिओकार ने सिंघलद्वीप के राजा को चाइल कुल वंश का माना है, यह जानकारी भी *समिओ* के अतिरिक्त और कहीं नहीं मिलती। चाइल चौहानों राजपूतों की 24 शाखाओं में से एक है। अधिक संभावना यही है कि इस रचना की कथा किसी जैन यति-मुनि के माध्यम से जटमल नाहर के पास पंजाब पहुँची होगी और उसने अपनी सीमित जानकारी के आधार पर *गोरा-बादल* कथा की रचना की। जटमल नाहर का आग्रह कथा पर ज़्यादा है, जबकि समिओकार कथा के साथ इतिहास पर भी ध्यान देता है। अलबत्ता वह भी रचना का समापन अन्य चारण रचनाकारों की तरह रत्नसेन की विजय के रूप में करता है। अन्य चारण और जैन रचनाकारों से अलग समिओकार रत्नसेन को अल्लाउद्दीन की क़ैद से मुक्त करवाने और युद्ध जीतने में केवल बादल की भूमिका को निर्णायक मानता है, जबकि दूसरों के यहाँ यह भूमिका गोरा और बादल, दोनों की है। समिओकार अन्य चारण-जैन कवियों की तरह अल्लाउद्दीन ख़लजी के छलपूर्वक पद्मिनी देखने दुर्ग में जाने के प्रकरण के स्थान पर मौलिक कथा की उद्‌भावना करता है। वह उसको मणिकर्णिका के एक सिद्ध के छद्मवेश में दुर्ग के द्वार पर तीन महीने तक आसन लगाकर बिठाता है और इस तरह रत्नसेन सहित सभी का मन जीतने की अलग और नयी कल्पना करता है। समिओकार की कथा कसी और गठी हुई है। वह व्यर्थ के विवरणों में नहीं जाता-

सीधे-सीधे कथा कहता है। *समिओ* में रत्नसेन के पिता का नाम जैत्रसिंह और उसके बेटे का नाम कर्ण है।

पदमिनीसमिओ की पांडुलिपि राजस्थान के भीलवाड़ा निवासी इतिहासकार गौरीशंकर असावा के स्वामित्व में है। पहले यह रचना परिषद *पत्रिका,* वर्ष-14, अंक-3, अक्तूबर 1974 में प्रकाशित हुई थी और अब यह ब्रजेंद्रकुमार सिंहल के संपादन में पुस्तकाकार प्रकाशित हो गई है।

'पद्मिनीसमिओ' मूल

श्रीगणपति प्रसादातु

अथ पद्मिणीजी रौ समिऔ लिख्यते

दोहा

जंबूदीप मँझार, भरथखंड खंडन सिरै।
नगर भलौ तहाँ सार, गढ़ चित्रंग अनूप गढ़॥1॥

कवित्त

इक्क दिवस न्रिप पास आस करि मंगन आयौ।
च्यार चतुर बेताल दिस्स भूपति दरसायौ॥
नरपति पूछत भाट कवन देसन्तर आयौ।
हूँ आयौ सिंघलदीप तें कीरति सुनि तुम करत नी।
राना रतनसेन खुमान तव गढ चित्रकोट केरा धनी॥2॥
रान दयौ बहु मान पासि अपनैं बैठाए।
कहौ दीप की बात तहाँ तैं तुम चलि आए।
काहा उपजत एह दीप सिंघल है कैसा।
कहैं भट्ट सुनि रान कहौं देख्या होइ जैसा।
उदधि पार अदभुत नगर सोभा कहा बरणौं घनी।
एरापति उपजत इहाँ और नारि है पदमिनी॥3॥

दोहा

पदमावति नारी किसी, कहौ भट्ट गुझ बात।
भट्ट कहै राजिन्द्र सुनि, च्यार गुझ की जात॥4॥
पदमनि चित्रनि हस्तनी, और संखनी नारि।
उत्तम त्रिय पदमावती, तस गुन अपरम्पार॥5॥

कवित्त

पान हुँतैं पातरी प्रेम पून्यौ सो झल्लैं।

भुज म्रिनाल सुविसाल चालि हंस गति चल्लै॥
अंगुल कसठ अठुवास नारि।
पींजलि सत्ताबीस ईस चित लाय सवारी।
म्रिघ नैन बैन कोकिल सरस केहरिलंकी कामिनी।
अधर लाल हीरा रतन भौंह धनक गहि गामिनी॥6॥

दोहा

पदमावति के गुन सुने, चढ्यौ चैंप चित राय।
बिन देखै पदमावती, जनम अक्यारथ जाय॥7॥

चौपई

बसी चित्त अन्तर पदमावति। निसा नींद दिन अंन न भावति।
यौं करते इक जोगी आया। राजदुवार पै धूँहा पाया॥8॥

कवित्त

तब हि आय राजिंद जुगति करि जोगि सँतोषे।
भगति भाव बहु करिय अप्प पंचाम्रित पोखे।
वीर पत्र करि धरिव वीर उच्चार सबद्दं।
वीर वीर खुम्मान हद्द देख्यौ अनहद्दं।
तब तुष्ट होइ रावळ कहै मंगि त्रपत तुम चाहिऐ।
रावळ सुनौं खुमान कहै पदमावति मुहि ब्याहिऐ॥9॥
कहै राज जोगिन्द दीप सिंघल पदमावति।
राज पाट तजि चलौ भूप जो तो मन भावति।
कहै राइ करि क्रिपा बेगि इह कारिज कीजे।
जो कुछ कहै सु नाथ साथ सामगरी लीजे।
मीरघ तुचा विछाइ कै त्रिप मंत्र पढ्यौ तहाँ बैठि करि।
उठि गए सींघल दीप में रावळ रतन जोगिन्द वरि॥10॥

दोहा

सुनि जोगी जोगिँद कहै, करि रावळ को भेस।
एकत्र दिन भिख्या करौ, इह मेरा उपदेस॥11॥

कवित्त

मानि वचन राजिन्द्र अंग भभ्भूत चढ़ाई।
कपिल जटा करि मूंड कान मुदरा पहिराई॥
कंथा सींगी गरै मोरपंख बीजन खोलै।
बज्र कछोटा पहरि अलख गोरख मुख बोलै॥

करि पंकज पत्र अनूप लिअ राजदुवार तहाँ आइऔ।
राज सुता निरखि पदमावती तबहि राज मुरझाइओ॥12॥
छंटि उठायौ जोग आय तहाँ सखी बीच इन।
रावळ रूप सरूप अंग बत्तीसौं लख्यन॥
तब पदमावति हार तोरि नवसर दिय भिख्या।
मुकताफल भरि थाल नाथ पैं ल्याय सरिख्या॥
तब तुष्ट होइ रावळ निरखि प्रीत बचन जैसै कहैं।
ते तस माफक होइ सो ते तैसी भिख्या लहै॥13॥
तबहि आप जोगिंद्र राजद्वारह चलि आए।
सुनत राज आनन्द चरन द्रिग सीस लगाए॥
आय सबै रनिवास अंक भरि पाय परस्से।
पुत्र मित्र परिवार दास दासन्नि दरस्से॥
एम सुनवि आय पदमावती गुरू चरन ले सिर धरै।
रावळ निरखि तब ऊचरिव पुत्री तुम कारिज सरै॥14॥
राय कहै सुनि राज पदम पुत्री सुखदायक।
बरस दुवादस भई नहीं कोई बर लायक॥
हुँ ले आयौ वर राज तोहि पुत्री के कारन।
गढ़ चित्रंग नरेस दुष्ट दानव संहारन॥
रतनसेन खुम्मान है तास मान नहिं अवर वर।
परनाय देह पदमावती मान वचन अति प्रीत कर॥15॥
मानि वचन राजिंद्र सबै अप सीस चढ़ाऐ।
सुनि खुमान चित्रंग भए आनँद मन भाऐ॥
कहै राइ करि क्रिपा बेगि कारिज्ज सु करिऐ।
लगन महूरत पुच्छि सु-दिन साधन संभरिऐ॥
बाजंत्र बाजि हय गय सघन राग रंग त्रिय गान घन।
श्रीफल बदाय खुम्मान को निज अमास पधराइ तन॥16॥
देखि रूप राजिन्द्र चंद्र के इंद्र काम रवि।
भामिनि सबै ब्रिभल्ल नर हि नर सबै तेज दबि॥
अति उदार दातार सूर जूझार काम रत।
वेद चाल वचनंन विसाल अरि साल उंनमत॥
एकंग अंग लखि जंग लखि रिन निसंक मुँह वंक भुव।
सारा हि सबै सींघल पुरह निरखि रान जैसीह सुव॥17॥

चँवरी मंड सुचारि हरिव मंडप तोरन हद।
वेद कलस आरतिय गीत गानहि वेदहि वद॥
अगनि कर नव ग्रह पूजि साखि रवि वाय तेज दिय।
पानि ग्रहन किय ताम वेद विधि विवर सबहि किय॥
चाइल नरिंद पुत्रिय परनि सुत हमीर चित उल्लसिय।
जै जया सब्द बंदिन जपै एक लक्ख जदि विल्हसिय॥18॥
रंगमहिल राजिन्द्र करिव आनंद इन्द्र सम।
हास विलास हुलास प्रगास गोबे रह दबि तम॥
एक बरस खुम्मान मान सुख सींघल पूरं।
महिल महिल मिलि प्रेम जेम बादल मिल सरं॥।
जोगिन्द्र बत्त जंपे ज दिन चत्रकोट की काम वर।
मांगिय सीख सींघल नरिंद बेग बेग चाँपर सुकर॥19॥
जबहि राइ चाहील सीख पदमावति कीनी।
मनि मानिक मोती रतन लाल इक लाइक दीनी॥
करि मनुहारि विसेष रान सनमान विसेष किय।
सेवक सेव सुकज्ज साथ राघव-चेतन दिय॥
मीरग तुचा बिछाय सिध मंत्र उचरि आसंन द्रिढ।
सीध रतन दुज दोय पौहर पहौंचे स चित्रगढ़॥20॥
प्रथम पहर तजि दीप पहर चैथे गढ़ आए।
सुभट सबै हैं दुचित ताम रानह दरसाए॥
बजी निसान त्रिघोष किन्न निच्छावरि तब्बं।
कुलदेवी लगि पाय विगत कारज किय सब्बं॥
सब निरखि महिल चित चलन गति रूप तेज राका उदधि।
पदमगंध पध रचि प्रिथी रवनि रयनि उडगनि प्रिथी॥21॥
गहिर उदधि बिच महल फुली परवनि चिहुँ पासं।
चंदन चम्पै अंब दाख गूलाब प्रगासं॥
केल कदंब कनेर जाय मरुवौ नारंगी।
बेल अखय बीजोर सेव अंनार सुरंगी॥
सरिस कदंम सेवंतरी श्रीफल माधवी सरस।
पुंगी सहितूत जंबूरयनि बौंलसिरी बीदाम रस॥22॥
अति अनूप आवास दुतिय कयलास विलासं।
कंचन थम्भ जटित्त चित्र नौ खेचिहुँ पासं॥

लक्खि महिल्ल बिछात लक्ख दोइ पालिख लागे।
रतन जोति परगास जानि रवि कोटिक ऊगे॥
इस सहस दासि सुख रासि रस अलंकार इक लाख लख।
फुलेल तेल मन बीसही एक निसा सारीक रख॥23॥

दोहा

मृगमद तोल पचीस है, तोल घनसार पचीस।
नख केहरि बिचपंन अर, अगर अतर चकीस॥24॥
मंजन उजल गुलाब जल, धूप अगर बासंत।
निति मंजन पदमनि करै, पंच सहस लासंत॥25॥

कवित्त

वसन मोल दह सहस लक्ख दस जवहर अग्गह।
इक तोलौ अहि इक सहस तोले दस अतर सु लग्गह॥
मुकताहल लख हार लसहिं कंचुकि एक लक्खं।
लक्ख लक्ख त्राटंक सीस फुल्लहि बी लक्खं॥
मघवान पान कंचन तबक मौहर नित तंबोल ही।
राचंति धरनि पैं धरत रत हंस गती जुति सकति सही॥26॥
तजी रवनि सब और राज पदमावति रंतौ।
महा मोह बसि भयौ रहै निसदिन मैं मंतौ॥
जल पीवन को नैम बिना देखै पदमावति।
तेज इंद कुसमहि सुवास रहै जैसी विधि रावति॥
एक दिवस प्रातहि भए सिकार दमामा बग्गिऔ।

दोहा

बनसी तीरहि खेलतैं, त्रिखा बियापी तेम।
बिन देखैं पदमावती, जल पीवन को नेम॥28॥

कवित्त

तब राघव चित लाय चित्र पुतरी सँवारी।
त्रिपुरा की करि क्रिपा रूप पदमावति नारी॥
भेस भाव सब किया जंघ परि तिलवा भाया।
देख राय भयौ रोस देख मन मंझै आया॥
बिन रमैं समै पदमावती तिलवा क्यों करि जानिऐ।
मारूँ हिं विप्र काढ़ूँ नयर एह कुभाव चित आनिऐ॥29॥
राय पधारे दुरग विप्र कौं दिआ निकारा।

राघव तिसही समै बेस वैरागी धारा॥
भगवा वस्त्र सरीर नीर भरि लिआ कमंडल।
जंत्र बजावै जुगति जोग तत रहै अखंडल॥
दिलिहि आय प्रापति भयौ बसै उद्यान वनखंड सिर।
अलावदीन सुलतान तहाँ करहिं राज नरनाह नर॥30॥
साहि चढवि सीकार चढ़ी तोषार सगज्जं।
वागुरि खेद के दत्त स्वान चीते जुरवज्जं॥
सिकरा लगर सिंचान सीह गोसं फँद पावर।
मूल धराधर बंध मूल तरु मग्गह उप्पर॥
द्वै पुहर सात कहि अलावदी मृग नयनन न दिक्खए।
सुलतान रोस उमरान मझि खान सबै मुह बिलखए॥31॥
तक्कू तके हिरंन खबरि दिन्हीं तहाँ पावर।
सुनत सही हय हक्कि आइ तिहिं ठाम सितावर॥
सहस जीव इक जीव हलैं नहिं करहिं हलाए।
निकट आइ अधिरज्ज कज्ज इहि कौंन खुदाए॥
धरि जंत्र जिंद धारनि धरन सारंग रंग रत्तौ सरस।
सहसा बिहरत साहिब चित परम पुनि पूरन पुरस॥32॥

दोहा

निरिख साह चित चित्तयौ, यह कोउ रूप अलेख।
विरत दुनी वैराग रत, सुरति निरति ही एक॥33॥
पानी जोरि सुलतान तब, पाय थंभि द्रिढ प्रान।
भए निजरि परनाम किय, दीय असीस निधान॥34॥

गाहा

पुछै असुर नरेसो, इस तर कवन आएसं।
उचरि सिध आदेस, सिंघल दीप आमतं ममं॥35॥

दोहा

जंत्र मंत्र तंत्र राग जुत, चित्र विचत्र पुरान।
हिय रख कुरान रहसि, सुचित्त मित्र सुरतान॥36॥
कहै दिलीपति जोरि करि, पुर कीजि प्रवेस।
राज महल राजिन्द्र रहि, भगति जुगति सब भेस॥37॥

गाहा

इहि सुनि सिध उचरीयं, सम सींघ पंथ ए नाहीं।

वन वन मन विचरीयं, संचरीऐ भावीऐ तेहं ॥38 ॥
पाय लगि पतिसाह, करह वार विनवीयं।
करि जोगेन्द्र क्रिपाह, आसनं तथ आसनं रखि ॥39 ॥
एम जोगेन्द्र उचरीयं, सु संज केम सुरितान।
करकरं पवन सुसकरीयं, स्वयं भावयं जथं ॥40 ॥

दोहा

आजीजी अल्लावदी, किय सुलतान कवल्ल।
सोफी धर सुखपाल मझि, पधरायस्स महल्ल ॥41 ॥

गाहा

निज ग्रिह असुर नरिदं, अंतेवर अंतरं निधं।
जुगति भुगति जोगिन्दं, चितय चाहीऐ जथं ॥42 ॥

दोहा

दिन दिन प्रेम बढंत दिन, तिम तिम राग सुनंत।
सिध आसन सुलतान सम, रैयन दिन रहंत ॥43 ॥

कवित्त

इक्क दिवस न्रिप कोय सुसा जीवत ग्रिह लाया।
आप करह सरतान गोद उप्पर बैठाया॥
ता पर फेरै हत्थ अथं कोमल रोमावल।
अथ कोमल कछु कहौ राघव विध रावळ॥
हत्थ फेरि राघव कहै यातैं कोमल सहस गुण।
पदमिनी देह विप्र उचरैं पातिसाहि धरि कान सुण ॥44 ॥

दोहा

दोय सहस मुझ हरम है, महलौं देखौ जाय।
पदमावति के रूप रँग, राघव निरखि बताय ॥45 ॥

कवित्त

तब राघव उचरीय सही बैठे इक ठावहि।
तेल कुंड भरि धरहि आय दीदार दिखावहि॥
चलत निरख ही पाय धरनि रच्चैं गुन सच्चैं।
भमर भमत गुंजंत बास तन पदमहि अच्चैं॥
गति हंस चंद वदनी चतुर सुगंध आहार उदार मन।
आधीन राग सिंगार रस भोग अलप प्रीतम जतन ॥46 ॥
पातसाहि साहाबदीन सिर हौद तखत किअ।

गौख हरम झंखहि उझकि बैठि राघव ढिग देखिअ॥
प्रात हुतै तिय पहर चित्त धरि सब प्रतिबिम्बं।
सीस धुन्नि सुलतान फेर पुच्छैं दुज ही तब॥
कर जोरि ताम बिप्र ऊचरै हिक हिय बात भगीत मनी।
चित्रनी हस्तनि संखनि सब नहीं साह घर पदमिनी॥47॥

गाहा

सै पूछै सुलतानं, बे राघव पदमनि कथं।
दरिया पार दीपानं, चहुवान सींघलं रायं॥48॥
दीय तैवार दमामं, तमाम सज्जि गज तुरी सुभटं।
ऊठि चन्द्र अमामं, हल कुंच सींघल ऊपरं॥49॥
लिय चतुरंग सुलक्ख, दर दर कुंच कुंभय दख्यं।
पौहते सताब स सबं, उदधी तीर अलावदी॥50॥
अखौ उदधि अपारं, दखो मीर सुख अरु दुखं।
दुखं जनारदारं, पुकारं का जललं॥51॥
सहसर कोस समंदं, लग अग बीच जल मधं।
जल जेहाज सबंधं, पीरान दोजिग जितं॥52॥

दोहा

फिरि पूछय सुलतान दुज, बुधी करौ कछु और।
रतनसेन खुम्मान कै, पदमनि गढ़ चीतौर॥53॥

भुंजगी

सुनत विप्र के बैन उर सही रज्जे। सबै पीर मीरं करं मुच्छ सज्जे।
किते उज्जबक्कं करं हक्क गज्जं। भई पैर घोरं स नीसान बज्जं॥54॥
किऐ कुंच पीछौ तिही बेर साहं। भयौ हुक्म गोही सु चीतोर राहं॥
तबै ही बहीरं लगी पंथ तत्ती। मनौं सीह नद्दं चली ह्वैं उमत्ती॥55॥
गुराबं चले गुंजते गुग्घ घट्टं। उपाडंत भारं पहाडंत पीठं॥
चल्यौ अति हिं आराबा जूह चोजं। चले बान जंबूर हथनाल होजं॥56॥
करी च्यार हज्जार चले मेघ कंती। घटा कज्जलं उज्जलं बुग्ग दंती।
झरे डाण तल डाण मचे जोर कादौ। गजै घोर गहरी रजैं मास भादौं॥57॥
चमक्कै गजं बाग बीजू चरित्तं। सदं बीर घंटा सदा दुर्निसत्तं।
मुगल्लं ममोलं दिपै लाल मोहं। चले बंध गजगाह करै दीन सोहं॥58॥
पठानं पनीं गख्खरं रोह सेखं। रुमी रोहिलं खोखरं बिलोच रेखं॥
धोरी काकसी सिंध उजबक बिलोचं। सज्जे तुरान कुरान सच्चं॥59॥

हयं पक्खरं सुद्ध ऐराक जाती। प्रबं जेत रंग बरंनै प्रभाती।
करैं टोप संनाह जमराह कंधं। सँकै नाहिं जुद्धं रचे रार बंधं॥60॥
बनी पंच फोजं हयं गज्ज थट्टं। खरे कुंच दर कुंच सिरं मेदपट्टं॥
अनी बंध लक्खं बनी मीर बंकं। परं सीस बेधं तबल्लं निसंकं॥61॥
तबैहू सुनी बात चीतौर नाथं। जुधं काज सुल्तान सज्जाय साथं॥
तबै ऊचर्‌यौ बैन रत्नं खुमानं। सुनंतं हमीरं करं मुच्छ पानं॥62॥
करौ जुद्ध सुलतान सौ चाकबंधं। अवैधूत रायं विरद्दं सकंधं॥
हुकम्मं कियौ दूत बेगै पठावौ। हयं पखखरं सज्जि उम्मराव आवौ॥63॥
फटी ठाम ठामं चिढी देस देसं। सकोटा सोइ सोपरं चंद चंदरेसं॥
रिनंथंभ नरवर नागौर खोहं। नागरचाल अजमेर मुरधर मिलाहं॥64॥
दुरंगं स जालौर आबू दुरग्गं। लोहाना गढं सुध ईडर अभंगं॥
पुर वीर पावा चंपानेर पट्टी। धरा धार आवं प बावंन बिकटी॥65॥
मडि मांडिलं बधनोरं मदारं। बासौट गोढाण सेरौ नलारं॥
बागड्डु छप्पन मेवल्ल मुडं। मेवार पठ्ठार झुंझार थडं॥66॥
इते नरपती गजपती असी सहसं। मिले आनि चित्तौर रावळ परस्सं॥
लगे पाय खुमान के थंभ लाजं। जिन्के भुजा भारं हिंदवान साजं॥67॥
जबै ऊचर्‌यौ बंकटं बधनोरं। बँटौ कोट बुर्जं सजौ सब्ब ठौरं॥
रुप्यौ रामपौलं बद्धनोर रावं। वंकट्ट बीरम्म कनक्कं सजावं॥68॥
हयं द्वै सहस्सं पायकं दस्स एकं। रिनं भंजनं संकरं बद्दनेकं॥
बुर्ज बाहु मोरी समंडिल्ल रायं। हयं सहस्स मेकं सचो पण्णि छायं॥69॥
बुर्ज दहनी मानं आवध संध्या। भटं पंच सहसं गज गाह बंध्या॥
लखोटा थट्यौ हुड मउनाथ मोलं। भई बीस हज्जार भुजा भार झालं॥70॥
मंड्यौ आमलीचोर चंदेल माधू। बावन पतिसाह स बीस आधू॥
वरं बीर बारोरिया बक्र घट्टी। धनी बागरं द्वादसं सैस कट्टी॥71॥
चितौरी मंड्यौ चावरा राव चंदं। इकतीस हजारं सजे सुरिन्दं॥
बुरज्जं बुरज्जं सजे बीर सब्बं। इकं लक्ख धानंख गढं वीटिं तब्बं॥72॥
अनी बंध च्यारं रती दीय दिन्नं। उतरि गढ जुरि मीर करी छिन्न भिन्नं।
सहसं असी एक चित्तं सवाहं। भयं प्रात स्यामं अधं रैन माहं॥73॥
मंडे मंत ऐसौ करे गढ ढोआ। सुर्तान तरहटि मूकाम हूआ॥
संमतं बारसैं उग्नीसा बरस्सं।............................... ॥74॥
बिरद्दं धरै कंध हिंदवान बंकं। करं सूर संनाह नरं नाह हक्कं॥
रतै आनि सुल्तान हयं छडि ठड्ढौ। उतरि द्रुग्ग आभंग भयं जागि गड्ढौ॥75॥

भई मूंह मूहं मची मार मारं। हिचे मीर वीरं बजी खग्ग धारं॥
टुटै कंध संधं छुटै डाडरारं। कटै मुंड जुडं फुटै सेल पारं॥76॥
झड़ैं औझड़ैं त्रिझड़ै मारि झट्टं। खरंडं खंजरं पंजरं बूड कट्टं॥
कटारी निनारी दुसारी निकस्सै। तिवारी उटारी उजारी बकस्सै॥17॥
रतै रैण रच्चं पलं कीच मच्चं। नदी सोन पूरं चली कैं विरच्चं॥
भसुंडं तिरं बाज गजं मच्छ कच्छं। तिरै खोपरी केस सेवाल अच्छं॥78॥
घरी च्यार लौं धार झरी मीर सीसं। मुरं कोस लोथं परी सैस बीसं।
सुभट्टं छ सैसं कटै चीतौरनाथं। मुच्यौ सेन सुर्तान तूरान साथं॥79॥
असुरे चदर दीन अल्लावदीनं। सतं कोस गढ छंडि मूकाम कीनं॥
बजी द्रुंग में नौबती घोर नद्दं। गजी गैंन रैनं मनौ मेघ भद्दं॥80॥
इहिं भाँति दिन रात भए जुद्ध जाई। वर्ष द्वादसं साहि परिग्धै तुराई॥
लगै नाहिं जोरं कहूँ द्रुग ठौरं। तबै की मतं साहि कीन्हीं सु औरं॥81॥
चली सीध ह्वै गुप्त लै साथि चेला। थप्यौ मंत मीरं अहं दुग्ग भेला॥
जटा बंधि मुग्टं महा रिद्ध धारी। मिल्यौ नाइकं जाई पोठं मँझारी॥82॥
कियं आसनं बीच ठग बंध भेसं। लग्यौ पाइ नाइक दियं उप्पदेसं॥
कहै नाइकं आगता सीध कत्थं। आसन मनिक्रन्न कासीस तत्थं॥83॥
भयौ पूर मोहत्त नाइक्क नेहं। निसा अंध दुर्गं चढ़े निज्ज ग्रेहं॥
रह्यौ सीध आश्रम्म किए भीम लत्तं। कही नाइकं रावळं आग बत्तं॥84॥
सुनी बात खुम्मान तुर्तं स आए। भई दीप जोती लगी सींध पाए॥
निर्ख रूप गोरक्ख दत्तं भरत्थं। भयौ मोह खुम्मान सिद्धान कत्थं॥85॥
दई एक लालं अमोलं अवल्लं। सबै पासवानं चितं मंन चल्लं॥
रह्यौ मास तीनी भयौ हेत सब्बै। कह्यौ मद्धि दोपैर चले हम्म अब्बै॥86॥
सुनंतं पर्यो पाइ नरइंद्र पालं। मिल्यौ आइ सीताब चित्तं विचालं॥
दए पंच ल्हास नखित्री पंच उच्चं। दसं मानिकं नंग बीसं समच्चं॥87॥
करी बात ललचात लिए पौरि वारं। गही बाँह खैरात आए हजारं॥
भयौ सोर सारा ब कूहं पुकारं। कपट साहि कीन्हौं गयौ छत्रधारं॥88॥

सोरठा

गह्यौ पौरि जरि लोक, सोर सकल गढ में भयौ।
राजा ले गए रोक, कपट कियौ सुलतान नैं॥89॥

कवित्त

तबहि आप सुरतान गरबि असुरान गरज्जिअ।
दीन दीन उचरब्बि अफरि नीसान सु बज्जिअ॥

पय संकर गर तोष हत्थ करींय हत्थ जरि।
कलमा करै निवाज बंग धारीय पास धरि॥
सुरहीय पंच आगैं निजरि प्रात कसाई बद्ध करि।
हैमर गुराब कट्टैअगैं उजबक्क रषि हज्जार चर॥90॥

गाहा

इहिं बिधि रहैं खुमान, घेरानं आसुरं जुथं।
जल मीन अकुलानं, जका न वासरं निसा तथि॥91॥
रत्न कुमार करंन, मतानं मतानं मंडीयं सुभटं।
बंस छतीस पुछि षट ब्रनं, अंग बयन आप उचरीयं॥92॥
जंग कर चैगानं, खुम्मानं बंध सुरतानं।
छल बल मंत छिपानं, घन्त एकौं न हाथ पिल चंपं॥93॥

कवित्त

गोरवे गौर ऊचर्यो द्रुग्ग अजमेर नरिन्दं।
निसा जुद्ध कीजिऐ सघन अरि करै निकन्दं॥
रुंड मुंड तुठि तुंड विहंडि भसुंड भभक्कै।
छुटि डार ढढर विहार घट्ट घुम्मै धर धुक्कै॥
खुम्मान आनि सुलतान भंजि साम काम सिधह करै।
चित्रंगनाथ हत्थह अपँच चमर छत्र सिर ऊधरै॥94॥

दोहा

जम्पै धंधेर्या जिगन, बुधि इह जुद्ध विचार।
अपन जुटैं सुरतान दल, हतन करै सिरदार॥95॥
सोचि मंत थप्पौ सबै, जप्पै यौं जगनेस।
करौ उपाइ सिताब कोइ, लेइ छुड़ाइ नरेस॥96॥
पना अहाड़ा उचरि वयन, बँध वर वयन सु मान।
देह सींघल की कामिनी, लेह छुड़ाय खुमान॥97॥
दाइ आव सब मंत इहि, केही मान महीप।
कौंन जाति काकी कुँवरि, कितके सिंघल दीप॥98॥
थप्पि मंत रजपूत मिलि, पुच्छैं पाट कुआर।
लेह छुड़ाइ नरेस कौं, देह पदमिनी नार॥99॥
सुनत मत्त सब सत्थ कौ, आवै घात न एक।
कहै कुँवर ज्यौं त्यौं करौ, लेह देह तजि टेक॥100॥
फूटि मंत बत्तह फजर, सिंघल की सुनि कान।

लंघन लंघन किय पकरि, दैं पदमिनी सुलतान॥101॥

कवित्त

सुनि पदमावति तबै घात एकौं नहिं सुज्झै।
चढवि आइ चकडोल मग्ग बद्दल ग्रिह बुज्झै॥
चैगानह खलत हत्था कंकर चहुआनं।
वीर वीर उचरंति मिले बद्दल दिए पानं॥
गढ़ महिं मत थप्यौ भटनि साहि पदमनि दीजिऐं।
अवर मंत घत्तह नहीं यौं खुमान ग्रिह लीजिऐं॥102॥
तुम संभरिहै नरेस बिरद साधार सरंनं।
मैं जीहा कहि बंध बंध सींघल्ल धरंनं॥
तुमहि बिरद नर नाह कंठ गजगाह सदाई।
इहैं चित्त पदमिनी सरन बद्दल तो आई॥
कर मुछ घालि भोगल धनी इम बद्दल बलि उचरियं।
मम कपि जीय आनंद करि लेह खुमान रखें सुचियं॥103॥

दोहा

सुनत स्रवन बद्दल वयन, मन आनंदिय नारि।
दीय असीस पाछी फिरी, तुव जैत बंध तरवारि॥104॥
सुनिय बात बद्दल्ल की, भयौ मात अंदोह।
अबही थान बिछोह भो, छल जानत नह लोह॥105॥

कवित्त

कोप किऔ सुलतान खान नहिं पान न भावै।
ला इतबार जनोइदार पदमिनी दिखलावै॥
पढि कतेब करि दुवा खोदबंधं विनती कर।
सींघल दीप समन्द्र पार पदमिनी घर घर॥
होसी हुस्यार हुनर सबै एक आध पावै जहन।
देख समँद संके सबै अब खुदाय बुड्ढे कवन॥106॥
लख दस लहै पलिंग सौर पनि तीय लक्ख लहि।
गिलीसुरी लख पंच और गिंदवान मोल लहि॥
ता उप्पर दुप्पटी लक्ख पच्चासक लीन्ही।
मनि मानिक बहु रतनि फेरि पट उप्परि दीन्ही॥
विलसंत बसि हुव हमीर सुव दिल्ल बचन इहि रस रवनि।
पदमिनी नारि म्रिघलोयनी रतनसेन सेझहि रवनि॥107॥

बद्दल कहि इम मुच्छ गहि मो जीवत राय बंदी न रहै।
करी पैज बुल्लयौ काल्हि मेछाइन गंजौं।
सघन सहर पय पेलि सात सरपति ही रज्जौं॥
रतनसेन संकै हि आनि गड्ढवि देहू छत्र सिर।
जो तन खुरखुदीऐ बसै गिगन ज मुतन वर॥
लुरत प्रान पंजह गिरत तद्दिन साहि गढ सन्य है।
बद्दल कहि इम मुच्छ गहि मो जीवत राय बंदी न रहै॥108॥
भरि नीर नैन जम्पै हि जननि सुत बिन पुत नर अंध कुल॥
अरे बीर बादल्लि तुच्छव ज अहु सरीर है।
मोहि पिआरौ तोहि पुत्र सो परि न बीर है॥
तबहि बढत सब दिसा अंध जुग की मन सुझ है।
एक खंभ धौलहर धाइ काइ की मन सुझ है॥
गजदंत कठिन कोमल कुँअर किंम सहौ सुरतान दल।
भरि नीर नैन जम्पै हि जननि सुत बिन पुत्त नर अंध कुल॥109॥
कहै बीर बादल्ल माय जिन करौ मोह मन।
तोहि कलंक जो लगै रान छंडिव भंगुर तन॥
सिँघन सूर सामंत विषम वीर रते महा भर।
रतनसेन खयारनको को अंगवै साह दल॥
जुग मोटी रानी पदमावती बितीय मोह तीको सरन।
के जीव राव ऊवेल करि नतरि माय मठौ मरन॥110॥
सेझ सकोमल कन्त कुसम करि कुंत पयापहु।
दसन पहोवर अधर दसलं तंन कंपहु॥
नख सिख देत सरीर भंग भय भामिनी भीतहि।
रोमावलि तन खिसै अंग त दिन लागै तहि॥
अकुलंत कंत बपत करहि सुहरन सुर लागंत घर।
बदल नारि इमि उच्चरहि किंम सहै सुरतान दल॥111॥

कूँडल्या

खग्ग बिहंडी साह दल हय हसती मैंमंत।
भामनि भौंह न भंजिहौ भंजि उखारह गज दंत॥
लक्ख खग्गनि खेरि लक्ख बरगनी एकलौ।
जो पोहम न पाइहौ तौ नाम बदल बदलौ॥
सजि सनाह रंगन पकरि करिस सुराहा लक्खरि।

ससि बदनी संग्राम सुम्हरि खग्ग विहर्रि बिडारि ॥112 ॥

कवित्त

वर तरुनी कह बदल सुनि सो हम अहिबात न मिट्जै।
नव तरुणी नव नेह अंगाह नव रंगीय।
हसी लाज उच्चरै बदन जोवंत कुरंगीय॥
जो परनी लहै न सास मुकै त कमला तनि।
अगनित सेन सयंम साम संग्राम करहि जनि॥
मोह छंडि राव गँज न तन भव रंगन सुख बंछजै ॥113 ॥
को काइर कैं जियौ कौन काल पहीं छुट्टौ।
कौन भग्गि ऊबर्यौ आव दिन है दिन तुट्टै॥
बहु न जियौ रावन्न अमी जिहिं कंठ सुनिज्जै।
मो भागैं नर अरि हँसैं सुभटि सू लज्जै॥
अहिबात अचल जिन तिन घरनि साम काम झूझत अनी।
बादल बीर इम ऊचरै जीवत राउ भूगल धनी॥114 ॥
भगिहि न कंत जब रिन भिरत तबरि मुहि चढै र उपनौ।
सीलहि सेल पकरंत बसहि जिन खग्ग खनंकही।
अंग संगि फूटंत फिरि नेजा होम ग्रह बंकही।
सह थीभा भलि तरवारि गज बग्गही जह हटकहि।
पाय परह दल पेलि साम बंधन इम कट्टहि॥
बदल नारि इम ऊचरै बोल प्रमान मोह अप्पनौ॥115 ॥
चहुवान पक्ख सुरतान दल संकि काण पाछौ सरौं।
तेग करवत न काटिऐ जो महेस मत्थै धरौं॥
करवत कर कट्टिय खग्ग जो खेत समारै।
नयनंत अंध नरिधय चित्त पर तीय निहारै॥
सरवनित सनी सरीर जह जस कीत न सुनी।
जो हीयाइत किन जरौ अंमृत बचन न में भीजई॥116 ॥

दोहा

धंनि पराक्रम पुरख पति, पतनी हाम पुराम।
छैह गंठि छंडि नह बंधि, करौ सिद्ध जुध काम॥117 ॥

कवित्त

रहो निसंक बद्दल कहै पदमिनि कंत ज मिल्लयो।
गढ हा होतै बदिल उत्ततरि बोल छल।

भट न सहौ सुरतान जाइ हक्कौ भुवह बल॥
सजि गयंद मद गंध स्वामि नैं करौ उवेलौ।
धरि न लभजै सरल सत्थ तुरकान सलेलौ॥
इम कहै माइ आनन्द भय पुत परदल झल्लयौ।
रहो निसंक बद्दल कहै पदमिनी कंत ज मिल्लयो॥118॥
सुनी खबरि गोरिल्ल काक काँ काँ हक्कार्‌यो।
मुखहै दुध गंधात बात उचरत बक्कार्‌यो॥
काम काम सध्धान हाम दक्खै जग हासं।
बिकट सुभट रट पलट भ्रकुट अंचै साबासं।
नह धरै सेस धर भर फुनिन पिप्पली कंधह प्रबल।
पद निसा ऊचगा थंभ बेह गति मग जं मानिक्क कुल॥119॥
कक्क बचन सुनि कान धक्क लग्गी उर मज्झं।
तबहि मंगि हथ चढ्यौ अरुन प्राची दिस रज्जं॥
भरि दीवान खुमान प्रबल परमान समानं।
पाट कुँअर समलान आन कीन्ही चहुँवानं॥
उचर्यो बचन बैठंत ही सुनौ मतौ मो कीजिऐ।
पदमिनी रहै द्‌रुग दंड बिन साम छुडाय स लीजिऐ॥120॥
भलो भलौ बद्दल्ल थप्यौ कंधह सब अक्खै।
राय पिता धनि तुज्झ लज्ज अजहूँ तूँ रक्खै॥
तूँ बिन कुन अंगवै उदधि दल साह अपारं।
आभ गिरत तुव थम्भ खंभ खेसन खंधारं॥
हिंदवान सजस रख संभई हरी गज्ज जेही सपर।
जग रषि वत जम्पै ही जगत कटै तंत सोहि मंत कर॥121॥
बद्दल बोलै ताम पंच सैं डोला कीजै।
जिनमें बैठे दोइ च्यार के कंधै दीजै॥
जिनमें सब हथिआर अस्व कोतिल करि अग्गै।
कहै दैंह पदमिनी तुरक नेरे नहिं लग्गै॥
रचि कतार सुलतान ल्यौं जहाँ खुमान ल्यावै मिलन।
निज थान पहुँच नीसान बंबि तबहि बीर बिरचैं लरन॥122॥

दोहा

बद्दल मतौ उपाइयौ, सबकी आयौ दाय।
कहैं सबैं यह कीजिऔ, बोलैं सगरे राय॥123॥

कवित्त

तबहि समटि चकडोल तुरत चढि तुरी धसायौ।
नेजा ले करि हत्थ मेर दुरजन सिर बाह्यौ॥
जब नेजा टूटंत जबहि किरबान चलायौ।
जब टुट्टै किरबान तबहि तुम्ह गुरज अड़ाऔ॥
गुरज टुट्टि धरनी पड़ै कट्टारी सनमुख लड़ौ।
बादल कह रे राय हो साम काम एतौ करौ॥124॥
बादल तिसही बेर पाय लग्यौ सुलतानं।
देखि नयन कै खुसी खबरि पुच्छी खुम्मानं॥
क्या मत्ता मत्तान झुज्झ कंधै किन झल्या।
सुनी बयन संभरी बीर मीठा सा बोल्या॥
आलमपनाह किन समद थग कवन मेर हत्थौं धरै।
तप बखत बुधी अलावदी जुद्ध कवन करि ऊबरै॥125॥

दोहा

थप्पि मंत एकंत भट, हौं बसीठ खुंमान।
दए सीख दैं पदमिनी, सहत सलाबत आन॥126॥

कवित्त

खूब खूब बादल्ल पीठ जवनपति थप्पी।
करि जट्टित कट्टार माल मुकताहल अप्पी॥
मुनसब सपत हजार कोटि हिंसार उतन्नं।
करि सलाम सुत राय खुसी मुख कपट स मन्नं॥
सोंपत जुगति पदमावती अद्ध सहस डोला चलैं।
इकरँग सहचरि सँग रहैं रूप अंग पदमिनी मिलैं॥127॥
हुकम्म साह करि संच द्रुग्ग चढ्यौ चहुवानं।
रोम रोम उलसंत मंत अंतह जोधानं॥
तुरत बुलाय सुतार धार डोले समराए।
तिन प्रमल के गलेप ऊपरै पहराए॥
कंचन जरत कलस्स जानि रवि किरन प्रकासै।
समन मिरग घनसार गुंज भमर हि तह बासै॥
दासी स पास जझुहर अँबर इन्द्र परिचत्त पुत्तरी।
दस दिसह आनि भोमद्धि सुदि जुद्ध बुद्ध अंतर धरी॥128॥
मधि डोलय पदमिनी मान चंदेल बावन पति।
सत च्यार सुभट हथ हलठी............. ॥

चर्मखगत अंग डोल भोज मउनाथ हुड हजार सुभट्टं।
बंधि कोर दोइ बगल साहि लग बंधे थट्टं।
डोडिआ जैत तेजल सुतन पीठ गोरल बंधे अनी।
इक धार बंधि गढ ऊतरे दिखी मीर आए पदमिनी ॥129॥
चित्त धरै चकडोल करैं सब मीर गरज्जं।
चबुद बरस्सह चढे कीन साहिब सद कज्जं॥
करतार मिलि छाती धरे बार बार दढि पानं।
बादल एतैं सलाम जाइ किन्नी सुलतानं॥
खुम्मान सीख सुबिहान दैं खिनि पदमिनी मिलि बीछरैं।
द्रिग निरखि बात कहि सुनैं कछु पछै चैडोल ऊतरैं॥130॥
मानि बदल की अरज सीख दिन्हीं खुम्मानं।
चैडोलाना मद्धि तुरत कट्टे बंधानं॥
हत्थौं हत्थ समत्थ द्रुग्ग पहुँचै दिस्सानं।
करैं सलाम सुभट्ट सुद्ध बज्यौ नीसानं॥
सुनि घोष नद्द इकचक्क हुव उतरि डोल ऊठे बिरचि।
पदमिनी ठौर पति सूँ मिलीय मेछा हिन्दु बहु जुद्ध मचि॥131॥

सोरठा

रही पदमिनी ठौर, औरैं की औरैं भई।
साह कटक परि सोर, रतन आइ रजपूत रटि॥132॥

छन्द भुजंगी

भई कूह कूहं, मची मार मारं। मिले चक्र एकं बजी खग्ग धारं॥
बहैं किर्रमालं सुचालं सभेदं। मनौ सुभ्भ रारं करवत्त छेदं॥133॥
भए सेल भेलं उझेलं हडूडं। मनौं फागणं खेल मंड्यौ भडूडं॥
बहैं मुट्ठि गुल्लाल काजं कटारी। पड़ैं रत्त चालं मनौं पिच्चकारी॥134॥
कटै कंध संधं धडंगं निनारं। झड़ै डाल डडरं तुटै मुंड तारं॥
फटै चाचरं चोपरं रत्त चल्लै। रतं मास माघं पलासं सु फुल्लै॥135॥
बहै खंजरं पंजरं पार फुट्टै। मनौं जोति हल्लाल खरकी सु खुट्टै॥
गुपत्ति कती लट्ठ बाहंत गेड़ी। मनौं जट्टणी थट्टहो ल्यौ कबेड़ी॥136॥
भभक्कैं हबक्कैं घुटक्कै सघावं। झड़क्कै डलक्कै मधूके मिनावं॥
मरे मीर केते लुटैं खेत मज्झं। मनौं मीन तपंत रेतं स बज्जं॥137॥
परे रुंड मुंडं भसुंडं निनारं। मनो भील बलरं करै कंठ सारं॥
फिरै गज्ज है रज्ज खेतं बिचालं। दवं वंन लग्गै पसुं बन्न हालं॥138॥

परे अट्ठ हज्जार मीरे अमानं। तजी धौंम ममं भज्यौं सुल्लतानं॥
किते मीर बानैत बंधै तबल्लं। जिनैं पाव मंडे नहीं एक पल्लं॥139॥
किते उज्जबक्कं कलंके करारे। जिनैं हारि मानी तिनं मुक्ख धारे॥
पठानं जवानं महाजुद्ध पूरे। तजे आवधं मुक्ख दस थान मोरे॥140॥
भई जैत खुंमान सुलतान भज्यौ। घुमरि घोर आषाढ़ नीसान बज्यौ॥
परी पंच कोसं हिन्दु मेछ लोथं। किते दुंदभी आतसं चढ्ढि हत्थं॥ 141॥
किते नाग हय खाग नर रत्थ रत्थं। किते आवधं अराबं गिन्ती न तत्थं॥
लए छत्र नीसान सुल्तान बानैं। गजं तोल मुर्तब्ब माही जगाह थानैं॥142॥
फिर्‌यो बीर बादल्ल करी स्याम एते। नरं नाह सच्चै विरद्दं उपेते॥
धरे मुच्छ हत्थं लगे सीस अभ्भं। रनं भंजनं......भयौ जैत खंभं॥143॥
सदा भंजने राइ संकर पयारं। भंजनं सब्बलं निब्ल सर्नं सधारं॥
रह्यौ एक जामं दिनं पच्छ अद्धं। हयं छडि हिन्दू सबै खेत सुद्धं॥144॥
पर्‌यो मान चंदेल बावन्न नाथं। कटे चार बीसी हटे नाहि हाथं॥
परे हुड बित रुंडं सयं पंच साथं। पर्‌यो भोज लरि चोज पाथं समाथं॥145॥
गिरे गौर करि चैर मीरं समत्थं। चलैं चावरा वाँहि पम्मार पत्थं॥
परे सैंगरी देवरा मल्ह रासं। परे तौवरं बार रं मोरी रणासं॥146॥
परे बंकटं टाँक बोड़ा बिरूरं। परे जादवं कादवं रत्त पूरं॥
गिर्‌यो गोरलं कोरलं संभरेसं। भिर्‌यो भोगलं राइ असुरं असेसं॥147॥
गिर्‌यो डोडियौ होडिआ बंध हठ्ठं। गढं गिर्रनारं जिनं लाज कंठं॥
हिचे जुद्ध हाला दु झाला दुरत्तं। भिरे भट्टिया भुट्टनेरी अरत्तं॥148॥
छलं चित्रकोट खलं करि चूरं। परे सेन हिन्दू सैस पंच पूरं॥
अवल्लं कवल्लं तुटे सैंस तेरं। परी लुत्थ परि लुत्थ अठ कोस फेरं॥149॥
चरं स्रोन पल्लं चँडी चपरि तृप्तं। जपै जोगिणी जैत ऊंमत्त मत्तं॥
खिलै खेचरं भूचरं खेतपालं। नचैं नारदं सारदं बज्जि तालं॥150॥
बरैं अच्छरी सूर अर हूर रत्तै। हरं रुंडमालं खुरपाल उमत्तै॥
देख्यौ देव कौतूहलं एक ऐसो। सुन्यौ वीर बेताल निरख्यौ अनेसौ॥151॥
दए वीर आसीस पच्चास दोयं। जपे चैसठी जैत खंमान होयं॥
कै त्रिप्ति पसु पंखी दिल अक्खि अज्जै। सदा जैत नीसान चित्तौर बज्जै॥152॥
धरैं छत्र सीसं तपै रैन राजं। जिनं कंध हिंदवान की रज्ज लाजं॥
सिवं लक्खमी बरं जेम रज्जै। रत्नसेन पद्मावती संग छज्जै॥153॥

कवित्त

भई जैत खुम्मान भज्यौ सुलतान अलादी।

भुज बद्दल चहुँवान रहे हिंदवान सम्बंदी॥
एकादसि हरि मीर बीर गखड़ा उजबक्कं।
दोय पौहर दिन दोय बिरचि बग्गी खग झक्कं॥
छिनि भिन सरीर है राय सुत पर्‌यो खेत भोगल धनिय।
चित्रंग राव सिर छत्र चमर राण रतन अरु पदमनिय॥154॥
गोरौ रावत जुझ्यौ रनह हय हय आकासय।
भलै सु भिलयौ खग्ग मुरिखग झरप्यौ॥
खग घायन छुरांत जबै छुरी अंगर लरप्यौ।
छुरी अगर झरि परिग सु तौ करि अग्गै करयौ॥
कर तुटैं धर धर्‌यौऊ सु तौ धर धरती गिरयो।
धर खुंद खुंद खुरतार हुव सब अच्छरनि उछंगि लयौ॥155॥

दोहा

कर कंकन महिंदी पलव, सेन निसा चहुवान।
निरत चरित्र विचत्रती, बिना पुरस परवान॥156॥

कुंडल्या

सिंघ जोनि तैं नीकर्‌यो, गय घड़ देखी ताहँ।
तलपताहि अघतह छुट्टौ सिंघ बचाह॥
छुट्टौ सिंघ बचाह मनहुँ कुंभाथल चढ्यौ।
सिंघ सुंदर सुभाव कंत बालम अन पढ्यौ॥
सिंघ सुंद्र सित भाव अंग बालम अनपढ्यौ।
चन्द्रानंन दिल बदिल बदन गज देखते धप्यौ॥
सींघनी सींघन तैं .... ॥157॥

कवित्त

दे माही मुरतबो तोब नौबत हज्जारी।
करीमाल सिरपाव कुँदन में जड़ित कटारी॥
रीझे साहि जिहान लेस आलोट नादगिर।
सींध सूर सकस्य कीतउत अरस किरंमर॥
संमत सोल तीहोतरै अच्चड़ करन अड़प्पिआ॥
सरद निस चंद सकताह रै पमंग पचास समप्पिया॥158॥

'पद्मिनीसमिओ' हिंदी कथा रूपांतर

जंबूद्वीप के नौ खंडों में से एक भारतखंड में चित्तौड़गढ़ है। चार चतुर भाट कुछ पाने की कामना से वहाँ के राजा के पास आए। उन्होंने राजा को आशीर्वाद और विभूति देकर उसकी सराहना की। राजा रत्नसेन के पूछने पर उन्होंने बताया कि वे सिंघलद्वीप से आए हैं। राजा के पूछने पर भाट ने बताया कि सिंघलद्वीप समुद्र के उस पार एक नगर है। वहाँ ऐरावत हाथी और पद्मिनी जाति की स्त्रियाँ होती हैं। राजा के पद्मिनी जाति की स्त्री की लक्षण पूछने पर भाट ने बताया कि स्त्रियाँ– पद्मिनी, चित्रिनी, हस्तिनी और शंखिनी चार प्रकार की होती हैं और पद्मिनी इनमें से सर्वोत्तम है। उसने बताया कि पद्मिनी पत्ते से भी पतली, पूर्णमासी के चंद्रमा की तरह प्रभावान होती है। उसकी भुजाएँ कमल नाल और गति हंस के समान होती है। उसकी लंबाई 108 अंगुल और पिंडलियाँ 27 अंगुल की होती हैं। उसके नेत्र मृग के समान, वचन कोयल जैसे मीठे, कमर सिंह के तरह पतली, होठ लाल और भौहें धनुष जैसी होती हैं। यह सुनते ही राजा के चित्त में पद्मिनी चढ़ गई। उसे लगने लगा कि पद्मिनी को देखे बिना जीवन व्यर्थ है। ऐसी स्थिति में ही एक योगी राजा के दरवाज़े पर आया। उसके आने से दरवाज़े पर धुँआ हुआ। धुँआ देखकर राजा दरवाज़े पर आया। उसने योगी के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकटकर उसका आतिथ्य किया। राजा ने उसमें एक सिद्ध अनहद योगी के दर्शन किए। योगी ने संतुष्ट होकर राजा से कुछ माँगने के लिए कहा। राजा ने कहा कि उसको पद्मिनी स्त्री पत्नी के रूप में चाहिए। योगी ने कहा कि पद्मिनी स्त्री सिंघलद्वीप में है, इसलिए राजपाट छोड़कर उसे उसके लिए सिंघल द्वीप चलना चाहिए। राजा तैयार हो गया। योगी ने अपनी मृगछाला बिछाई और उस पर राजा को बिठाकर दोनों मंत्र बल से सिंघल द्वीप पहुँच गए। (01–10)

सिंघल द्वीप पहुँचकर योगी ने राजा को योगी का वेश धारण कर भिक्षा माँगने जाने के लिए कहा। राजा ने तद्नुसार शरीर पर विभूति लगाई, सिर पर जटा और गले में कंथा, सिंघी आदि धारणकर वह राजद्वार पर भिक्षा के लिए गया। वहाँ वह राजा की पुत्री को देखकर अचेत हो गया। पद्मिनी की सखी ने छींटे देकर राजा को जगाया। योगी के रूप में 32 लक्षणोंवाले आकर्षक पूर्ण पुरुष रत्नसेन को देखकर पद्मावती ने भिक्षा में अपना नवसर हार खोलकर दिया और मोतियों से भरा हुआ थाल उसके सम्मुख प्रस्तुत किया। योगी ने संतुष्ट होकर कहा कि– ''जो जिस योग्य होता है, उसको वैसी ही भिक्षा मिलती है।'' तभी योगी भी राजद्वार पर आ गया। उसको राजद्वार पर आया सुनकर सिंघल द्वीप का राजा अत्यंत प्रसन्न हुआ और उसने आकर योगी की चरण वंदना की। अंत:पुर की सभी रानियों, मित्रों, परिजनों और

दास-दासियों ने योगी के दर्शन कर उसके चरणों में अपना सिर नवाया। पद्मावती ने भी आकर योगी के चरणों में अपना सिर झुकाया। यह देखकर योगी ने उससे कहा कि उसकी मनोकामना पूर्ण होगी।

राजा ने योगी से कहा कि उसकी पुत्री अत्यंत सुखकारी है और वह 12 वर्ष की हो गई है, लेकिन अभी तक उसके योग्य कोई वर नहीं मिला है। योगी ने कहा वह उसकी पुत्री के लिए दुष्टों का संहार करने वाला चित्तौड़गढ़ नरेश खुम्माण रत्नसेन ले आया है, जिसके समान कोई दूसरा राजा नहीं है। योगी ने राजा से कहा कि वह पद्मावती का विवाह राजा से कर दे। सिंघल द्वीप के राजा ने योगी की आज्ञा को शिरोधार्य किया। उसने विवाह संपन्न करवाने के लिए लग्न-मुहूर्त निकलवाये गए, हाथी-घोड़ों का प्रबंध किया गया, बाजे बजने लगे और मंगलगीत गाए जाने लगे। रत्नसेन को नारियल भेंट किया गया। रत्नसेन को देखकर सभी कहने लगे कि यह चंद्र या कामदेव या सूर्य ही तो नहीं है। उसका अनुपम रूप देखकर स्त्रियाँ अभिभूत हो गईं। रत्नसेन योद्धा, दानवीर, विचारवान और काम कला में निपुण था। विवाह के लिए मंडप आदि सजाए गए। वर के मंडप में आने पर ब्राह्मणों ने वेद मंत्रोच्चारण किया, आरती उतारी गई और नवग्रह पूजन हुआ। वेद विधि के अनुसार पाणिग्रहण संस्कार पूरा हुआ। चाइल नरेश की पुत्री का पाणिग्रहण कर जैत्रसिंह का पुत्र रत्नसेन प्रसन्न हुआ। उसने चारण-भाटों को एक लाख पसाव की भेंट दी। राजा रत्नसेन रंगमहल में इंद्र के समान आनंद करने लगा। वह हास-विलास में व्यस्त हो गया। इस तरह आनंद करते हुए एक वर्ष व्यतीत हो गया, तो योगी ने उसे चित्तौड़ की स्मृति करवायी। राजा ने उसी दिन सिंघलपति से शीघ्र विदाई की अनुमति माँगी। सिघलनरेश ने पद्मावती-रत्नसेन को विदा लेने की अनुमति देकर अपार मणि-माणिक्य और मोती प्रदान किए और साथ में सेवक और राघवचेतन नामक एक ब्राह्मण दिया। योगी ने मृगछाला बिछाई और सभी उस पर बैठकर उड़ते हुए दो प्रहर में चित्तौड़ पहुँच गए। (11-20)

राजा की अनुपस्थिति से सभी योद्धा, जो संशय में थे, उसको देखकर प्रसन्न हुए। निशान बनने लगे। सभी ने राजा को न्योछावर भेंटकर और जुहार की। राजा ने कुलदेवी की पूजा की और अन्य सभी अपेक्षित कार्य किए। सभी ने पद्मगंधवाली पद्मिनी को अन्य जुगनू स्त्रियों के बीच चंद्रमा की तरह देखा। पद्मावती का महल गहरे समुद्र के बीच था, जो चंदन, आम, बिल्व, सेव आदि वृक्षों और लताओं से घिरा हुआ था। पद्मावती का महल अनुपम था- लगता था कि यह दूसरा कैलाश है। उसमें सोने के स्तम्भ थे और उन पर विविध प्रकार के चित्र बने हुए थे। इसमें लगा हुआ कालीन एक लाख और पलंग दो लाख का था। वहाँ के रत्नों का प्रकाश ऐसा

था, जैसे करोड़ों सूर्य निकल रहे हों। महल में कई दास-दासियाँ थीं। पद्मावती के आभूषण एक लाख के थे। रात्रि में महल में बीस मन सुगंधित तेल प्रयुक्त होता था। पच्चीस तोला कस्तूरी, बीस तोला केशर, चंदन, धूप, इत्र और गुलाब जल को पाँच हज़ार घड़ों के जल में मिलाकर तैयार किए गए जल में पद्मिनी स्नान करती थी। उसके वस्त्र दस हज़ार, जवाहारात दस लाख, दर्पण एक हज़ार, मोतियों का हार एक लाख, कंचुकी एक लाख, कान के आभूषण एक-एक लाख और शीशफूल दो लाख थे। उसके मगही पान पर लगने वाली सोने की तबक का मूल्य एक मोहर थी। हंस गति से चलने वाली पद्मावती धरती पर कामदेव की पत्नी रति की तरह थी। अपनी अन्य सभी पत्नियों को छोड़कर रत्नसेन पद्मावती के मोह में बंधकर रात-दिन उसके साथ विलासमग्न रहने लगा। उसने प्रण ले लिया कि वह पद्मावती का मुँह देखे बिना जल ग्रहण नहीं करेगा। भ्रमर जैसे गंध के अधीन होकर पुष्प में बंद हो जाता है, रत्नसेन की स्थिति भी ऐसी ही हो गई।

एक दिन सुबह शिकार पर जाने के लिए नगाड़ा बजा। रत्नसेन राघवचेतन को साथ लेकर घोड़े पर सवार हुआ और शिकार के लिए निकल पड़ा। बरछी और तीर से शिकार खेलते-खेलते उसे प्यास लगने लगी, पद्मिनी को देखे बिना पानी नहीं पीने के प्रण के कारण वह पानी नहीं पी सकता था। तब राघवचेतन ने मन को एकाग्र कर त्रिपुरासुंदरी ही कृपा से पद्मावती की उसके जैसे वेश, भाव आदि वाली मूर्ति बनाई। उसने मूर्ति की जंघा पर वैसा ही तिल भी बनाया, जैसा पद्मिनी की जंघा पर था। तिल देखकर रत्नसेन मन में क्रोधित हुआ। उसने विचार किया कि बिना पद्मावती के साथ रमण किए राघवचेतन को तिल की जानकारी कैसे हुई। उसने मन में तय किया कि इस ब्राह्मण को मार दूँ या यह अवध्य है, इसलिए देश निकाला दे दूँ। राजा ने दुर्ग में आकर राघवचेतन को देश निकाला दे दिया। राघवचेतन ने वैरागी वेश किया, भगवा धारण किया और कमंडल में जल भरकर तंत्री बजाने लगा। वह चित्तौड़ छोड़कर दिल्ली चला गया और वहाँ एक जंगल में रहने लगा, जहाँ उस समय अलाउद्दीन ख़लजी का शासन था। (21-30)

उलाउद्दीन एक दिन घोड़े पर चढ़कर गर्जना करता हुआ शिकार पर गया। उसने अपने साथ फंदे, तेज दौड़ने वाले कुत्ते, चीते, जर्राह, बाज आदि लिए। उसने तालाब के किनारे, जहाँ शिकार योग्य पशुओं का आवागमन था, पेड़ पर मचान बनाया। दो प्रहर प्रतीक्षा करने के बाद भी जब कोई मृग उधर नहीं आया, तो अलाउद्दीन नाराज़ हुआ, जिससे सभी ख़ानों के मुँह लटक गए। दूर देखने वाले ने ख़बर दी कि हिरण यहाँ नहीं, कहीं और हैं, तो सुल्तान तत्काल दौड़कर वहाँ पहुँचा। उसने देखा कि हज़ारों जीव बिना हिल-डुले एक व्यक्ति के संगीत में डूबे हुए हैं। सुल्तान ख़ुदा का यह

चमत्कार देखकर आश्चर्य में पड़ गया। वह शिकार छोड़कर उस पुण्य पुरुष के सम्मुख प्रस्तुत हुआ। उसने विचार किया कि वह ज़रूर कोई अनोखा वैरागी मनुष्य है। सुल्तान ने मजबूती से अपने दोनों पाँव रोपकर दोनों हाथों से राघवचेतन को प्रणाम किया। राघवचेतन ने उसे आशीर्वाद दिया। असुर नरेश के पूछने राघवचेतन ने बताया कि वह सिंघलद्वीप से आया है। राघवचेतन ने सुल्तान से कुरान को हृदय में धारण करने के लिए कहा। दिल्लीपति ने हाथ जोड़कर राघवचेतन से महल में चलकर भक्ति की युक्ति के साथ रहने का आग्रह किया। राघवचेतन ने कहा कि सिंह के समान सिद्ध भी वन में ही विहार करते हैं। सुल्तान आसन बिछाकर राघवचेतन के आसन के नीचे बैठ गया और उससे महल में चलने का आग्रह करने लगा। अंतत: राघवचेतन मान गया। सुल्तान ने उसके लिए सोने के कंबल को पालकी में बिछाया और वह उस पर बिठाकर उसको महलों में ले गया। (31-41)

राघव चेतन सुल्तान के महल और अंत:पुर में जहाँ चाहता, वहाँ आता-जाता था। दोनों में प्रेम बढ़ने लगा और दोनों का आसन भी रात-दिन एक ही जगह रहता। एक दिन कोई राजा के पास एक जीवित खरगोश लाया। सुल्तान ने उसको अपनी गोद में बिठाया और फिर उस पर हाथ फेरकर राघवचेतन से पूछा कि इसकी रोमावली से ज़्यादा और क्या कोमल है। राघवचेतन ने भी खरगोश पर हाथ फेरकर कहा कि इससे हज़ार गुणा कोमल पद्मिनी की देह है। उत्तर सुनकर सुल्तान ने राघवचेतन से कहा कि- ''मेरे हरम में दो हज़ार स्त्रियाँ हैं। उनका परीक्षण कर बताओ कि उनमें से किसमें पद्मिनी के लक्षण मौजूद हैं।'' राघवचेतन ने कहा कि- ''एक कुंड में तेल भरकर हम दोनों एक ही स्थान पर बैठेंगे। बारी-बारी से हरम की सभी स्त्रियाँ आएँगी और तेल के कुंड में अपना मुँह दिखाएँगी। मैं उनके पद्चिह्नों के गुणों से उनकी पहचान करूँगा। पद्मिनी स्त्री के पास भ्रमर गुंजार करते हैं, उसके शरीर से कमल गंध आती है, उसकी चाल हंस जैसी और मुख चंद्रमा के समान होता है, वह चतुर होती है और उसका आहार सुगंधित होता है। वह शृंगार का संगीत सुनती है और प्रियतम को सुखी करने के लिए यत्नशील रहती है।'' सुबह सुल्तान ने अपना आसन तेल के कुंड के पास लगाया। राघव वहाँ बैठकर गवाक्ष से हरम को देखता रहा। सुबह से तीसरे पहर तक उसने देखा और फिर अपना सिर धुनने लगा। बादशाह के पूछने पर उसने हाथ जोड़कर कहा कि- ''आपके घर में चित्रिणी, हंसिनी और शंखिनी स्त्रियाँ तो हैं, लेकिन पद्मिनी एक भी नहीं है।'' सुल्तान ने ब्राह्मण से पूछा कि फिर पद्मिनी कहाँ हैं, तो उसने उत्तर दिया कि पद्मिनी समुद्र पार सिंघल द्वीप में चौहान शासक के घर पर है। सुल्तान ने तत्काल नंगाड़े बजाए और हाथी, घोड़े और योद्धाओं को सजाकर सिंघल द्वीप की ओर प्रस्थान किया। एक लाख हाथी, घोड़े, रथ और

पैदल, चारों प्रकार की सेनाओं के साथ अलाउद्दीन समुद्र तट पर आ गया। अपार समुद्र को देखकर सुल्तान ने मीरों से उसके संबंध में पूछा। मीरों ने बताया कि समुद्र का पाट हज़ार कोस का है, उसमें ज्वार-भाटा आता रहता है, उसे जहाज़ से पार करना दोजख़ जीतने जितना मुश्किल है। मीरों की बात सुनकर सुल्तान ने राघवचेतन से कहा कि पद्मिनी पाने के लिए कोई और युक्ति बताओ, तो राघवचेतन ने बताया कि एक पद्मिनी चित्तौड़ के स्वामी खुम्माण रत्नसेन के यहाँ है। राघवचेतन की बात सुनकर सुल्तान ने निश्चय कर लिया। योद्धा- पीर, मीर और उजबेक मूँछों पर हाथ फेरकर गर्जना करने लगे। सुल्तान ने सेना को चित्तौड़ कूच करने का आदेश दे दिया। नगाड़े बजने लगे। ऊँटों का समूह पीठ पर तोपों को लादकर चला, युद्ध की आकांक्षा लिए सैनिकों की टुकड़ियाँ चलने लगीं और चार हज़ार हाथी मेघ घटाओं की तरह आगे बढ़े, जिनके अंकुश बिजली की तरह चमकते थे। कुरान में आस्था रखने वाले पठान, पंनीगर, गक्खर, रोह, शेख, रूमी, रोहिल, खोखर, बलोच, धोरी, काकसी, उजबेक, तुरानी आदि सजधज कर आगे बढ़ने लगे। इराकी घोड़ों पर झूलें डाली गईं। योद्धाओं ने सिर पर टोप और कवच धारण कर रखे थे। उनके कंधों पर तलवारें लटकी थीं और वे युद्ध के लिए उत्सुक थे। उनका लक्ष्य मेवाड़ था- वे पाँच भागों में विभक्त होकर चले। योद्धा मीरों के साथ एक लाख फ़ौज थी। (42-61)

चित्तौड़ के स्वामी रत्नसेन ने जब सुना कि सुल्तान ससैन्य युद्ध के लिए आ रहा है, तो उसने युद्ध के लिए तैयार रहने का संकेत दिया। हम्मीर योद्धाओं ने मूँछें मरोड़ीं। रत्नसेन ने कहा कि मेरे पर एकलिंगनाथ की कृपा है, इसलिए चाक-चौबंद होकर युद्ध करो। उसने सभी उमरावों का दूत भेजकर बुलवाया। सकोटा, शिवपुरी, चंदेरी, रणथंभोर, नरवर, नागौर, खोह, नागरचाल, अजमेर, मारवाड़, जालौर, आबू, लोहानगढ़, ईडर, पावा, चाँपानेर, धार, अवंतिका और विकटबावन को पत्र लिखे गए। इसी तरह मंडी, मांडल, बदनोर, मदारया, बासोट, गोढ़ाण, सेरानला, वागड़, छप्पन, मेवल, मुड़ और मेवाड़ी पठारी प्रदेश को योद्धाओं को सूचना दी गई। इन सभी देशों के राजाओं ने अस्सी हज़ार गजपतियों सहित चित्तौड़ के रावल को आकर जुहार की। जब सभी एकत्र हो गए, तो बदनोर के स्वामी ने कहा कि कोट व बुर्जों को बाँटकर मोर्चे संभाल लो। वह स्वयं रामपोल पर तैनात हो गया। उसने दो हज़ार घोड़ों और ग्यारह हज़ार पैदल सैनिकों को रामपोल पर तैनात किया। बायीं ओर की बुर्ज पर मांडल के मोरी राय ने मोर्चा सँभाला। दाहिनी ओर की बुर्ज पर मानसिंह हाथियों और योद्धाओं के साथ तैनात हुआ। लाखोटा बारी पर मऊ का राजा बीस हज़ार योद्धाओं के साथ जम गया। बावन क्षेत्र का चंदेल माधव आमलीचोर, वागड़ का स्वामी वारोटिया घाटी, चंद्र चावड़ा चित्तौड़ी पहाड़ी पर तैनात हो गए और एक लाख

धनुर्धारियों ने समस्त दुर्ग को घेर लिया। चार योद्धाओं ने दिन को टालकर रात्रि में गढ़ से नीचे उतरकर सुल्तान के मीरों पर धावा बोलकर उनको छिन्न-भिन्न कर दिया।

सुल्तान ने दुर्ग की तलहटी में आकर मुक़ाम किया और मंत्रणा करने लगा कि किसी तरह दुर्ग ध्वस्त हो जाए। यह संवत 1219 की बात है। यशस्वी क्षत्रीय वीरों ने कवचादि धारण कर सुल्तान को ललकारा, लेकिन वह अपने घोड़े से उतरकर खड़ा हो गया। योद्धा भयभीत हो गए और दुर्ग से नीचे आ गए। आमने-सामने युद्ध होने लगा। तलवारें बजने लगीं, कंधों के जोड़ टूट गए, वक्षस्थल फट गए, सिर टूटकर गिरने लगे और कइयों के शरीर में भाले आर-पार हो गए। तलवारों के प्रहार से आमाशय कट रहे थे। पैदल सैनिकों के छुरों के प्रभाव से शरीर कट कर गिरते थे और कटारियाँ आरपार निकल रही थीं। रक्त और मांस के मिट्टी में मिलने से कीचड़ हो गया है। खून की नदी बह निकली और उसमें हाथी-घोड़ों के शव मच्छ और कच्छ की तरह तैर रहे थे। मनुष्यों की खोपड़ियाँ शैवाल की तरह पानी की सतह पर तैर रही थीं। तलवारों की झड़ी लगने से मीरों की 30 हज़ार लाशें गिरीं और चित्तौड़नाथ के भी 6000 योद्धा काम आए। सुल्तान युद्ध छोड़कर घोड़े पर सवार हुआ। उसकी दशा राहु द्वारा ग्रस लिए गए चंद्रमा जैसी हो गई। उसने चित्तौड़ से 100 कोस दूर अपना डेरा डाला। दुर्ग में जीत की नौबत बजने लगी। इस प्रकार युद्ध होता रहा और उलाउद्दीन 12 वर्ष तक दुर्ग को घेरे रहा। जब उसका किसी भी तरह ज़ोर नहीं चला, तो उसने कुछ और उपाय स्थिर किया। उसने मीरों से मंत्रणा कर सिद्ध का रूप धारण किया और चेलों को साथ लेकर दुर्ग के द्वारपाल से मिला। इस तरह उसने ठग साधु वेशधारी के रूप में दुर्ग के पास अपना आसन जमा लिया। वह उपदेश देने लगा। द्वारपाल नायक के पूछने पर उसने बताया कि उसका आसन काशी के मणिकर्णिका घाट पर है। नायक उससे प्रभावित हुआ। उसने आधी रात को दुर्ग में जाकर रावल को इसकी सूचना दी। रत्नसेन यह सुनकर तत्काल वहाँ आया और दीपक के प्रकाश में सिद्ध के पाँवों में गिरा। रावल को उसमें गोरख, दत्तात्रेय और भर्तृहरि दिखने लगे। रावल उसके उपदेश सुनकर मोहित हो गया। रावल ने उसको मणि-माणिक्य और रत्न भेंट किए। सिद्ध तीन महीने तक वहीं रहा। सभी से उसका प्रेम हो गया। एक दिन दोपहर में सिद्ध ने कहा कि अब हम अपने आसन मणिकर्णिका जाएँगे। यह सुनकर रत्नसेन तत्काल आकर सिद्ध के पैरों में पड़ गया। उसने उसको मणि-माणिक्य और रत्न भेंट किए। बात करने के लालच में रत्नसेन सिद्ध के साथ दरवाज़े से बाहर तक आ गया। सुल्तान का संकेत पाकर हज़ारों सैनिक वहाँ आ गए और उन्होंने रत्नसेन को बंदी बना लिया। हल्ला मच गया और दुर्ग के द्वार बंद कर दिए गए। सुल्तान धोखे से बंदी बनाकर रत्नसेन को ले गया। सुल्तान ने गर्व

से अपने सैनिकों को नँगाड़े और शहनाई बजाने के लिए कहा। उसने कहा कि रावल के पैरों में साँकल, गले में फंदा और हाथों में हथकड़ी लगाओ, इसके सामने कलमा और नमाज़ पढ़ो और पाँच गायें काटो। साथ ही चार हज़ार उजबेक सैनिक इसके पास रखो। इस प्रकार खुम्माण रत्नसेन असुरों से घिरा हुआ रहने लगा, जैसे मछली बिना जल के रहती है। (61-91)

रत्नसेन के पुत्र कर्ण ने 36 वंशों के क्षत्रियों और छह वर्ण के लोगों की एक सभा आहूत की और उनसे आगे क्या करना है, इस संबंध में पूछा। उसने कहा कि ''छलबल से बंदी बनाकर सुल्तान ने साँप के बिल में हाथ डाला है और हमें खुले में युद्ध कर खुम्माण को छुड़ा लेना है।'' अजमेर के गौर नरेश ने कहा कि ''हमें रात्रि में युद्ध करना चाहिए, जिससे शक्तिशाली शत्रु को समाप्त किया जा सके। तलवार से उनके सिरों और धड़ों को काटकर सुल्तान को पराजित कर रत्नसेन को दुर्ग में ले आना चाहिए।'' धंधोरिया जगर ने कहा कि- ''यह विचार उचित है। उसने कहा कि सोच-विचार कर इसको कार्यान्वित करो।'' इतने में अहाड़ा पंना ने कहा कि- ''हमें सिंघल की पद्मिनी देकर खुम्माण नरेश को छुड़ा लेना चाहिए।'' उसका विचार सबको पसंद आया। मान राजा ने कहा कि- ''पद्मिनी की जाति क्या है, सिंघलद्वीप कहाँ है, कोई नहीं जानता, इसलिए उसको देने में कोई हर्ज नहीं है।'' सभी ने अपना मंतव्य राजकुमार को बताया, लेकिन उसको कोई प्रस्ताव अच्छा नहीं लगा। सुबह जब पद्मिनी ने यह सुना, तो उसे कोई उपाय नहीं सूझा। वह चकडोल में बैठकर महल से बाहर से आई और उसने बादल का घर पूछा। किसी ने उसको बताया कि हाथ में कंकर लेकर जो चौगान में खेल रहा है, वही बादल है। पद्मिनी ने बादल को कहा कि- ''तुम योद्धा हो, मैं पान का बीड़ा तुम्हें सौंपती हूँ। योद्धाओं ने मेरे बदले रत्नसेन को लेने का निर्णय किया है। तुम मेरे भाई हो। तुम योद्धा हो और मैं तुम्हारी शरण में आई हूँ।'' बादल ने मूँछों पर हाथ फेरकर पद्मिनी को आश्वस्त किया कि- ''आप निश्चिंत रहें। आप मन स्थिर कर लें कि आपको रत्नसेन मिल जाएँगे।'' पद्मिनी प्रसन्न हुई और बादल को जीत का आशीर्वाद देकर अपने महल में वापस आ गई।

बादल की बात सुनकर उसकी माँ के मन संदेह हो गया कि बादल को राजा के छलपूर्वक बंदी बनाने की जानकारी नहीं है। इधर अलाउद्दीन पद्मिनी नहीं मिलने के कारण क्रोधित था। उसे खाना-पीना अच्छा नहीं लग रहा था। उसे ब्राह्मण राघवचेतन पर विश्वास था कि वह पद्मिनी दिखा देगा। उसने कहा कि इसके लिए क़ुरान का पाठ करो और ख़ुदा से दुआ करो। राघवचेतन ने कहा कि- ''सिंघल द्वीप में घर-घर में पद्मिनी है, जो बुद्धिमान और हुनरमंद होता है, वही उसे प्राप्त करता। आपके

तमाम सैनिक समुद्र में डूब जाने के भय से शंकित हो गए। पद्मिनी का पलंग दस लाख, ओढ़ने की रजाई तीन लाख और तकिया पाँच लाख का है। उसके गद्दे के मूल्य का तो पता ही नहीं है। उसकी ओढ़ने की चादर (दोवटी) पचास लाख मूल्य की है, जो मणि-माणिक्य और नाना रत्नों से सुसज्जित है। रत्नसेन इसी शय्या पर उसके साथ विलास करता है।'' इधर मूँछों पर हाथ फेरकर बादल ने कहा कि उसके जीवित रहते रत्नसेन बंदी नहीं रहेगा। उसने प्रण करते हुए कहा कि- ''मैं म्लेच्छों का नष्ट करते हुए सुल्तान को रौंद डालूँगा। रत्नसेन दुर्ग में आने के लिए संकोच करेगा, तो मैं उसके सिर पर छत्र रखकर उसको दुर्ग सौंप दूँगा। यदि मैं मर गया, तो स्वर्ग में मेरा निवास होगा। सुल्तान दुर्ग को तब ही ध्वस्त कर पाएगा, जब मेरे प्राण निकल जाएँगे और शरीर धरती पर गिर जाएगा।''

आँखों में आँसू भरकर बादल की माँ ने कहा कि- ''बिना पुत्र के मनुष्य कुल अंधा होता है। पुत्र बादल! मनुष्य शरीर तुच्छ है फिर भी तुम मुझे प्रिय हो, क्योंकि पुत्र की तरह माँ का कोई सहायक नहीं होता। जब निराशा का अंधेरा होता है, तो पुत्र ही प्रकाश के रूप में सहायक होता है। मैं एक स्तंभ वाले भवन के समान हूँ और तू ही मेरा सहारा है, मुझे तेरे अतिरिक्त कुछ सूझता नहीं है। तुम कोमल हो और सुल्तान कठोर गजदंत की तरह है। उसके प्रहारों का तुम कैसे सहोगे?'' वीर बादल ने कहा कि-'' हे माँ! मन में मोह मत करो। यदि रावल को बंदी के रूप में छोड़ता हूँ, तो तुझे कलंक लगेगा। यह शरीर तो क्षणभंगुर है। रावल रत्नसेन के यहाँ सिंह जैसे योद्धा और तलवार मौजूद हैं, इसलिए भयभीत होने की ज़रूरत नहीं है। रत्नसेन के योद्धा ही सुल्तान का सामना कर सकते हैं। पद्मिनी महान् है, उसकी रक्षा का मुझे मोह है। हे माँ! या तो मैं रत्नसेन का उद्धार करूँगा या मरकर स्वर्ग में जाऊँगा।''

बादल की पत्नी ने कहा कि- ''आपको फूलों जैसी कोमल सेज सेल की तरह प्रतीत होती है। मेरे स्तनों और होठों पर दंत क्षत करने से आपका शरीर काँप जाता है। मेरे शरीर पर नख क्षत करने में आपको भय लगता है और अंग-संग से आपकी रोमावाली खड़ी हो जाती है। योद्धाओं से बातचीत में आप व्याकुल हो जाते हैं। आप ऐसी स्थिति में सुल्तान की सेना के प्रहार कैसे सहन करेंगे।'' बादल ने उत्तर दिया कि ''हे स्त्री! नाराज़ मत हो। मैं बादशाह की सेना के हाथियों और घोड़ों को तलवार से काट डालूँगा। हाथियों के दाँत उखाड़कर उन्हें मार डालूँगा। मैं अकेला ही एक लाख खड्गधारियों और घुड़सवारों के टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा। यदि मैं हार गया, तो अपना नाम बदल दूँगा। कवच धारण कर मैं दुश्मनों को अपने अधीन करूँगा। हे चंद्रमुखी! युद्ध का नाम सुनकर तुझे तलवार का भय बैठ गया है, उसको भूल जा।''

बादल की पत्नी ने कहा कि– ''मेरा सौभाग्य क़ायम रहे। हे स्वामी! मैं नवयोवना हूँ और यथावश्यकता हँसी और लज्जा करती हूँ। मेरा शरीर कुरंग के जैसा है। यदि कमल के जैसी कोमल पत्नी को पति छोड़ता है, तो उसका साँस लेना मुश्किल हो जाता है। हे स्वामी! अनगिनत सेना है– वह लड़ लेगी, आप युद्ध मत करिए। आप अपने को ख़त्म करने की योजना बनाने की जगह संसार के सुख का भोग कीजिए।''

बादल ने उत्तर दिया कि– ''कायर होकर जीने से काल का बंधन छूट नहीं जाता। भागकर कौन सुरक्षित रहा है, क्योंकि आयु दिन–दिन कम होती ही है। सुना है, रावण के कंठ में अमृत था, फिर भी वह बहुत नहीं जी पाया। मेरे भागने पर मनुष्य और दुश्मन हँसेंगे और योद्धा लज्जित होंगे। उनकी पत्नियों का सौभाग्य अचल रहता है, जिनके पति अपने स्वामी के लिए युद्ध करते हैं। योद्धा बादल कहता है कि– ''भूमि का स्वामी राजा ही जीवित रहता है।'' अंततः बादल की पत्नी ने कहा कि– ''युद्ध में भागे नहीं, तभी आपके वचन सत्य होंगे। खड्ग से खड्ग और सेल से सेल टकराकर ही शत्रु को जीता जा सकता है। आड़े–तिरछे भाले चलाते हुए अंग–प्रत्यंग तोड़ने पड़ते हैं। शूलों को तलवारों से काटना पड़ता है और बिगड़े हुए चिंघाड़ते हाथियों को वश में करना पड़ता है। पैदल सैनिकों के समूह को नष्ट करने पर ही स्वामी के बंधन कटते हैं।''

पत्नी की बात सुनकर बादल ने कहा कि– ''मैं चौहान हूँ और उनका हठ प्रसिद्ध है। सुल्तान के सैन्य दल का नष्ट करने के बाद ही दुर्ग में वापस आऊँगा। यदि मेरी तलवार दुश्मनों को नष्ट नहीं कर पाई, तो मैं अपना सिर काटकर भगवान शंकर को अर्पित कर दूँगा। यदि रणभूमि में तलवार से पराक्रम नहीं दिखा पाया, तो अपने हाथों को काट डालूँगा। यदि किसी पर स्त्री को देखूँ, तो मेरी आँखें अंधी हो जाए। यदि मैं अपना यश नहीं सुनूँ, तो शरीर नष्ट कर दूँगा। वह हृदय जला देने योग्य है, जो अमृत वचन सुनकर अभिभूत नहीं होता।'' बादल का दृढ़ निश्चय जानकर उसकी पत्नी ने कहा कि ''तुम्हारा पराक्रम धन्य है। अब तुम स्वामी धर्म का निर्वाह करते हुए छल के बंधन तोड़कर युद्ध जीतो।''

बादल की माता ने कहा कि– ''तुम्हारी सार्थकता सुल्तान को छल–बल से उत्तर देने में है। तुम सुल्तान योद्धाओं को हाँक दो। मत्त हाथियों को सजाकर युद्ध करो और स्वामी को बंधन मुक्त करो।'' बादल ने प्रसन्न माँ को कहा कि– ''आप निश्चिंत रहे और समझें कि पद्मिनी को उसका पति मिल गया।'' काका गोरा ने जब यह सुना, तो उसने नाराज़ होकर बादल से कहा कि– ''अभी तुम्हारे दाँतों से माँ के दूध की गंध आती है और तुम व्यर्थ बातें कर रहे हो। काम साधने की तुम्हारी क्षमता देखकर लोग हँसेंगे। यदि युद्ध में शत्रु योद्धाओं को मार दोगे, तो वे तुम्हें शाबासी

देंगे। पृथ्वी को शेष नाग ही धारण कर सकता है, चींटी में यह सामर्थ्य नहीं है। यह ध्वज बहुत ऊँचा है और तुम्हारी पहुँच से बाहर है। तुम अपने माणिक्य कुल का वरण करो।''

काका की बात सुनकर बादल आहत हुआ। उसने हाथी मँगवाया और सुबह के लाल सूरज की तरह चल पड़ा और दरबार में उपस्थित हुआ। उसने पाटवी कुँवर को अभिवादन करते हुए बैठकर कहा कि- ''मेरे परामर्श के अनुसार कार्य करना चाहिए। मेरी योजना इस तरह है कि हम बिना दंड भरे स्वामी को छुड़ा लें और पद्मिनी भी रह जाए।'' पाटवीं कुँवर सहित सभी ने बादल की सराहना की और कहा कि- ''तेरे अलावा और कौन है, जो बादशाह के सैन्य दल का सामना करे। तुम आकाश को रोकने के लिए स्तंभ और कंधारी घोड़ों पर सवार सैनिकों को रोकने के लिए दीवार की तरह हो। तेरे यश की जगत में सराहना होगी।''

बादल ने कहा कि- ''पाँच सौ पालकियों में दो-दो योद्धा हथियार लेकर बैठें, प्रत्येक पालकी को चार योद्धा अपने कंधे पर लेकर चलें और प्रत्येक पालकी के आगे बिना सवार वाले घोड़े रखे जाएँ। हम पद्मिनी सौंपने के लिए कहेंगे और राजपूत स्त्रियाँ पर पुरुष नहीं देखती, इसलिए तुर्कों को पास नहीं आने देंगे। पालकियों की कतार सुल्तान तक पहुँच जाए, ऐसा करेंगे। वहाँ रत्नसेन को पद्मिनी से मिलने लाएँगे। रत्नसेन जैसे ही अपनी जगह पहुँचेगा, नँगाड़े बजा देंगे और पालकियों से योद्धा निकलकर युद्ध शुरू कर देंगे।'' बादल की मंत्रणा सभी को पसंद आई और यही उपाय करने का निश्चय हुआ। बादल ने सभी सामंतों को युद्ध की रणनीति के सम्बन्ध में समझाया। उसने बताया कि पालकियों की छोड़कर घोड़ों पर सवार हो जाएँ, भालों से प्रहार करें और जब ये ख़त्म हो जाएँ, तो तलवारों से लड़ें, तलवारें खत्म हो जाएँ, तो गदाएँ और गदाएँ खत्म हो जाएँ, तो आमने-सामने कटारों से लड़ें और इस तरह स्वामी के लिए काम करें।

बादल दुर्ग छोड़कर सुल्तान के सम्मुख नतमस्तक हुआ। बादल को प्रसन्न देखकर सुल्तान ने उससे दुर्गवालों की युद्ध रणनीति के संबंध में पूछा। बादल ने सुल्तान से मधुर वाणी में कहा कि- ''आप समुद्र के समान असीम हैं, आप सुमेरू के समान हैं, आपको कौन जीत सकता है। सभी सामंतों की ओर से मैं प्रतिनिधि हूँ और हम सही-सलामत पद्मिनी आपको सौंप देंगे।'' सुल्तान ने बादल की सराहना करते हुए उसकी पीठ थपथपाई। उसने बादल को अपने हाथ की रत्नजड़ित कटार, मोतियों की माला, सात हज़ार मनसब और हिसार का क़िला उपहार में दिया। बादल ने सुल्तान से निवेदन किया कि दुर्ग से पद्मिनी के साथ उसकी सखियों के 500 डोले भी आएँगे और ये सभी सखियाँ रूप और रंग में पद्मिनी जैसी ही हैं।

सुल्तान के आदेश पर बादल वापस क़िले में आ गया। समस्त योद्धा बादल की योजना से प्रसन्न थे। सुथार बुलाकर डोले बनवाए गए और उनको सजाया गया। उनके ऊपर सुगंधित खोल चढ़ाया गया और रत्नजटित कलश रखे गए। उन पर चमेली, केशर और कपूर का लेप किया गया, जिससे उन पर भ्रमर गुंजार करने लगें। कीमती वस्त्र पहने हुए दासियाँ अप्सराएँ लग रही थीं। पद्मिनी के स्थान पर चंदेल राजपूत मान को बिठाया गया। डोलों की कतार सुल्तान तक पहुँचाई गई। पीछे हेजल डोडिया और गोरा चल रहे थे। मीरों ने यह समझा कि पद्मिनी आ रही है। डोलियों को देखकर मीर गर्जना करने लगे और कहने लगे चौदह वर्ष के बाद पद्मिनी मिली। बादल ने आकर सुल्तान को सलाम किया और कहा कि- ''कुछ समय के लिए रत्नसेन को मुक्त करें, जिससे वो पद्मिनी से मिल सकें, इसके बाद तो वे बिछड़ ही जाएँगे। रत्नसेन से मिलकर पद्मिनी आपके पास आ जाएगी।'' बादल की प्रार्थना मानकर सुल्तान ने रत्नसेन को पद्मिनी से मिलने की इजाज़त दे दी। रत्नसेन को चकडोल में लेकर उसके बंधन काट डाले। रत्नसेन डोलियों से होता हुआ दुर्ग में पहुँच गया। योद्धाओं ने रत्नसेन को अभिवादन कर नगाड़े बजा दिये। सभी राजपूत युद्ध के लिए सचेत हो गए। पद्मिनी अपने पति रत्नसेन से मिली और हिंदुओं और म्लेच्छों के बीच भीषण युद्ध हुआ। बादशाह की सेना में शोर मच गया। (92-132)

हल्ला हो गया और मार-काट मच गयी। योद्धा तलवारें चलाने लगे। तलवारें योद्धाओं को काटने लगीं। एक-दूसरे के प्रहारों से हड्डियाँ टूटकर उलझने लगीं। कटारें इस प्रकार चल रही थीं, जैसे खून की गुलाल उड़ रही हो। रक्त पिचकारियाँ चलने की तरह बह रहा था। कंधों के जोड़ कट रहे थे, धड़ अलग हो रहे थे, पसलियाँ बाहर आ रही थीं, माथे कटकर गिर रहे थे, सिर फट रहे थे और रक्त बह रहा था। युद्धभूमि में रक्त और मांस पलाश के फूलों की तरह लग रहे थे। खंजर शरीर के आर-पार जा रहे थे। योद्धा गुप्ती, कर्ता, तबु और गेडी चला रहे थे। योद्धाओं के शरीर से निकलकर उबलता हुआ रक्त नालियों में बह रहा था। कई मीर घायल हो कर बिना पानी की मछलियों की तरह तड़फ रहे थे। हाथियों के सिर और धड़ कटकर रास्तों में पड़े हुए थे। घोड़े इस प्रकार घूम रहे थे जैसे जंगल में आग लग गई हो। युद्ध में आठ हज़ार मीर-उमराव मारे गए। सुल्तान अपनी धौंस छोड़कर युद्ध से पीठ दिखाकर भाग गया। मीरों में कोई ऐसा नहीं था, जिसने युद्धभूमि में अपने पाँव रोपे हों। उजबेक मुसलमानों ने मुँह में तिनका लेकर अपनी हार मान ली और कुछ अपने हथियार छोड़कर डेरों में चले गए। रत्नसेन की जीत हुई और सुल्तान युद्ध छोड़कर चला गया। जीत का नगाड़ा आषाढ़ के बादलों की तरह गरजा। हिंदुओं और मुसलमानों की लाशें पाँच कोस के क्षेत्र में गिरीं। राजपूतों ने सुल्तान के हाथी,

घोड़े, रथ, छत्र आदि लूटे और उसके थानों पर क़ब्ज़ा कर लिया। स्वामी का कार्य कर बादल युद्धभूमि से लौट आया। वह सच्चे नरनाथ का विरुद धारण करने वाला है। बादल अपनी मूँछों पर हाथ रखकर मरोड़ता था। वह युद्ध जीतने वाला स्तंभ है। बादल कायरों को नष्ट और निर्बलों को शरण देने वाला है। जब दिन का एक प्रहर शेष रहा तब बादल ने घोड़े की सवारी छोड़कर हिंदुओं की लाशों को उठवाया। बावन क्षेत्र का अधिपति चंदेल मान और उत्साह का पुंज राजा भोज युद्ध में मारे गए। कई मीर-अमीरों का मारकर गौर और चावड़ा राजपूत भी युद्ध में खेत रहे। सेंगर, देवड़ा, तोमर, मोरी, टाँक और चावड़ा राजपूत भी युद्ध में मारे गए। सांभरिया चौहान गोरा असंख्य मुसलमानों से लड़कर मारा गया। गिरनार गढ़ का डोडिया राव भी दुश्मनों से आमने-सामने लड़ते हुए मारा गया। भाटी और झाला भी युद्धभूमि में खेत रहे। छल और बल से चित्तौड़ के योद्धाओं ने असुरों को समाप्त कर दिया। अल्लाह के नाम का प्रण करने वाले 13000 मुसलमान मारे गए। आठ कोस के क्षेत्र में लाशों पर लाशें पड़ी हुई थीं। खून पीकर और मांस का भक्षण कर रणचंडी और उसके सेवक प्रसन्न हुए। उन्मत्त योगिनियाँ जीत के गीत गाने लगीं। खेचर, भूचर और क्षेत्रपाल प्रसन्न हो रहे थे। ताली बजाकर नारद और शारदा नृत्य कर रहे थे। स्वर्ग में अप्सराएँ योद्धाओं का वरण करने लगीं। क्षेत्रपाल रूंड मालाएँ शंकर को भेंट कर रहे थे। देवताओं ने कौतूहल के साथ युद्ध देखा। वेताल ने भी युद्ध की गाथा सुनी। बावन वीरों ने आशीर्वाद दिया और चौसठ योगिनियों ने जाप किया कि रत्नसेन की जीत हुई। तृप्त पशु-पक्षी कहते थे कि चित्तौड़ की जीत के नगाड़े बजे और इसकी कभी पराजय नहीं हो।

रत्नसेन की जीत हुई और सुल्तान उलाउद्दीन भाग गया। हिन्दुओं का सूर्य रत्नसेन अपने संबंधी चौहान बादल की भुजाओं के बल पर बच गया। गक्खड़ और उजबेक ग्यारह मीरों को तलवारों से मौत के घाट उतारकर गोरा छिन-भिन्न होकर युद्धभूमि में गिर गया। चित्तौड़ के स्वामी रत्नसेन और पद्मिनी के सिर पर छत्र सुरक्षित रहा। रावत गोरा खूब लड़ा। उसका घोड़ा आकाश में छलाँगें लगाता था। शरीर क्षत-विक्षत होने के बाद भी वह तलवार चलाता रहा। तलवार टूट गयी, तो वह छुरी से लड़ा और छुरी के टूट जाने के बाद हाथों को आगे करके लड़ा। उसका शरीर धरती पर गिरकर टुकड़े-टुकड़े हो गया, जिसको अप्सराएँ उठाकर ले गयीं।

(रचनाकार कहता है कि) शक्तिसिंह का वंशज देश का शाह प्रसन्न हुआ। उसने शरद पूर्णिमा की रात्रि संवत 1673 को माही मुरतब, नौबत बजाने का सम्मान, एक हज़ारी सम्मान, हाथ में रखने को तलवार, शिरोपाव, रत्नजटित कटारी और पचास घोड़े दिए। (133-158)

अध्याय - 4

जटमल नाहर कृत 'गोरा-बादल कथा'

रचना समयः 1623 ई.

गोरा-बादल कथा की रचना जटमल नाहर ने 1623 ई. (वि.सं.1680) में पंजाब के सिंबला गाँव में की। जटमल नाहर गोत्र का जैन श्रावक था और उसके पिता नाम धर्मसिंह था। जटमल ने रचना का समय और अपनी जाति, गाँव और पिता का नामोल्लेख कथा के अंत में किया है। वह रचना के समय के संबंध में लिखता है- *सौलह सौ आसिसे समै, फागण पूनम मास*। अपने पिता, जाति और गाँव के संबंध में उसका उल्लेख है कि- *धर्मसी को नंद नाहर जात, जटमल नाऊँ। जिण कही कथा बनाय कै, बीच संबला के गाँव।* जटमल ने अपने समय के अपने क्षेत्र के शासक नासिर ख़ान के पुत्र अली ख़ान न्याजी का भी उल्लेख किया है। वह लिखता है- *राजा जहाँ अलिखाँन, न्याजी, खान नासिर नंद*।[16] आरंभ में जटमल नाहर और उसकी रचना के संबंध में हिंदी में कई भ्रांतियाँ प्रचलित थीं। रॉयल एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता की पत्रिका में प्रकाशित प्रति के आधार पर इस रचना को गद्य रचना मान लिया गया। बाद में पूर्णचंद्र नाहर और नरोतम स्वामी ने इस प्रति का निरीक्षण कर अन्य प्रतियों के आधार पर यह सिद्ध किया कि जटमल ने कविता में ही कथा की रचना की थी। आरंभ में विद्वानों को *गोरा-बादल कथा* की एक ही प्रति की जानकारी थी, लेकिन बाद में बीकानेर के ग्रंथागारों में इसकी एकाधिक प्रतियाँ और मिल गईं। इन प्रतियों में पर्याप्त पाठांतर भी हैं और इसके शीर्षक भी *गोरा बादल* की वार्ता और *गोरा बादल की बात* के रूप में अलग-अलग मिलते हैं। यहाँ कथा सार के लिए राजस्थानी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् नरोत्तम स्वामी और सूर्यकरण पारीक की संपादित प्रति के आधार बनाया गया है, जो भँवरलाल नाहटा के संपादन में प्रकाशित लब्धोदय की *पद्मिनी चरित्र चौपई* के साथ प्रकाशित हुई है।

जटमल की *गोरा-बादल कथा* हेमरतन की चउपई के बाद की रचना है। यह रचना राजस्थान के बाहर पंजाब में हुई, इसलिए इसकी भाषा का मुहावरा राजस्थानी से हटकर थोड़ा खड़ी बोली के निकट है। जटमल ने राजस्थान से बाहर कथा लिखी, इसलिए राजस्थान के पद्मिनी कवि-कथाकारों से उसकी कथा और उसके मोड़-पड़ाव अलग हैं। जटमल ने इस संबंध में कुछ मौलिक उद्‌भावनाएँ की हैं। राजस्थानी की अधिकांश पद्मिनी कथाओं में रत्नसेन की नाराज़गी का कारण स्वादहीन और अरुचिकर भोजन है, जबकि जटमल नाहर ने इसका उल्लेख नहीं किया है। इसी तरह राघवचेतन से रत्नसेन की नाराज़गी का प्रकरण भी जटमल का अपना है। जटमल के अनुसार पद्मिनी को देखे बिना अन्न-जल ग्रहण नहीं करने के प्रण से जब शिकार के समय राजा को मुश्किल होती है, तो राघवचेतन पद्मिनी की प्रतिमा बनाता है और उसकी जाँघ पर वैसा ही तिल बनाता है, जैसा पद्मिनी की जाँघ पर है। राजा को इससे राघव के चरित्र पर संदेह हो जाता है और वह उसको देश से निकाल देता है। जटमल के अनुसार रत्नसेन चौहानवंशी है, जबकि राघवचेतन को वह सिंघल द्वीप निवासी मानता है, जो पद्‌मिनी के साथ चित्तौड़ आया है।

'गोरा-बादल कथा' मूल

सोरठा

चरण कमल चितलाय, के समरूँ श्री शारदा;
मुझ अख्खर दे माय, कहिस कथा चित लायकै॥1॥
जंबूदीप-मझार, भरतखंड खंडा-सिरै;
नगर भलो इक सार, गढचितौड़ है विखम अत॥2॥
रतनसेन जिहां राय, पाय कमल सेवै सुभट;
सूरवीर सुखदाय, राजपूत रनको धणी॥3॥
चतुर पुरस चहुवाँन, दाँन माँन दूनूँ दियै;
मंगत जिन को माँन, आवै मंगत दूर तै॥4॥

कवित्त

एक दिवस नृप-पास आस करि मंगत आए,
च्यार चतुर वेताल, दृष्टि भूपति दिखलाए।
दे आसिका-असीस, वीस दस विरद सुनाए,
नरपति पूछत भट्ट, कौन देसा तै आए।
हम आए सिंघलदीप तै, कीरति सुनिकर तुम-तणी,

राजा रतनसेन चहुवाँण है, गढ चितोड़ केरो धणी॥5॥
राय देय सनमाँन, पास अपने बैठाये,
कहो दीप की बात, जहाँ तें तुम चल आये।
क्या-क्या उपजत उहां, दीप सिंघल है कैसा,
कहै भाट सुनो राय, कहूँ देख्या है जैसा।
उदध-पार अदभुत नगर, सोभा कहि न सकू घणी,
ऐरापति उपजत उहाँ, अवर नार है पदमणी॥6॥

दूहा

पदमावति नारी कसी, कहो! भाटजी, वात,
भाट कहै, नरपति सुणो, च्यार रमण की जात॥7॥
इक चित्रनि, इक हस्तनी, एक संखनी नार,
उत्तम त्रीया पदमनी, तस गुण अपरंपार॥8॥

चौपई

कहो भाट, पदमावति-लख्खन, गुणी सरस तुम बड़े विचख्खन,
रंग-रूप-गुण-गति-मति दाखो, भाखा सकल मधुर-सुर भाखो॥9॥

कवित्त

पदमावति मुखचंद, पदम-सुर वास ज आवै,
भमर भमत चिहुं फेर, देख सुर असुर लुभावै ।
अंगुल इकसत आठ, ऊँच सा सुन्दर नारी,
पहुली सत्तावीस, ईस चित लाय सँवारी।
म्रगनैण, वैण कोकिल सरस, केहरि-लंकी कामनी,
अधर लाल, हीरा दसन, भुँह धनुष, गय गामनी॥10॥

दूहा

पदमावति के गुण सुणे, चढी चूप चित राय,
विन देख्यां पदमावती, जनम अख्यारथ जाय॥11॥

चौपई

वसी चित्त-अंतर पदमावत, निसा नींद दिन अन्न न भावत,
इम रहता इक जोगी आयो, राजद्वार परि धूंही पायो॥12॥

कवित्त

सिद्ध बड़ो जोगेंद्र, देख राजा चित हरस्यौ,
ज्यूँ सरोज सर माँझि, सूर देखत ही विकस्यौ।
भगत-भाव बहु करी, जुगत कर जोग संतोख्यौ,

निसा बैठ नृप पासि, पत्र पंचामृत पोख्यौ।
संतुष्ट होइ रावल कहै, मांग जु तुझ, कछु चाहिये,
राजा रतनसेन चहुवाँण कह, इक पदमण मोहि व्याहिये ॥13॥
कदै ताम जोगेंद्र, दीप सिंघले पदमावत,
राज पाट तजि चली, भूप! जे तुझ मन भावत।
कहै राय, करि कृपा, वेग यहु कारज कीजै
जो कुछ कहो सो नाथ, साथ सामग्री लीजै।
मृग त्वचा बिछाई सिद्ध तव, पढ़ो मंत्र तब बैठ करि,
उड गये सिंघलद्वीपकों, (राजा) रतनसेन जोगेंद्र वरि ॥14॥

दूहा

सुण रावत, जोगी बंद, करि रावल को बेस,
इक-सबदी भिख्या करो, यह मेरा उपदेस ॥15॥

कवित्त

दियो भेख जोगेंद्र, कान मुद्रा पहिराई,
कंथा सिंगी गले, अंग बभूत चढ़ाई।
कपट जटा, करदंड, मोरपंख विझ्झण झोलै,
वज्र कछोटो पहिर, अलख अगचर मुख बोलै,
कर-पंकज पात्र अनूप ले, राज द्वार जब आवियो,
नृप सुता निरख पदमावती, तब सु राज मुरझाइयो ॥16॥

दूहा

मन मोह्यो पदमावती, देख रूप अति राइ,
कहै सखी सुं नीर लै, रावल छंट उठाइ ॥17॥

कवित्त

छंट उठायो जोग आय, तिहाँ सखी विचख्खण,
रावल-रूप अनूप, अंग बत्तीसे लख्खण।
तब पदमावति हार, तोड़ नवसर दी भिख्या,
मुकदाफल भरि थाल, नाथ पै लाई सिख्या।
कर जोड़ि गुरू आगे धरे, देख नाथ असे कहै,
जो जिस लायक होय सो, तैसी ही भिख्या लहै ॥18॥
चल्यौ आप जोगेंद्र, चलित राजा-गृह आयो,
देख राय हरखियौ, सीस ले चरण लगायो।
आज पवित्र भया गेह, नेह धरि गरू पधारे,

आज सफल मुझकाज, बड़े हैं भाग हमारे।
तब सुनि आई पदमावती, गुरू चरण ले सिर धरे,
आसीस देह रावल कहै, पुत्री तुम कारज सरै॥19॥
कहे ताँम राजान, पदम पुत्री सुखदायक,
वर प्रापत अद भई, नहीं कोई वर लायक।
हूँ ल्यायो वर, राय, तोहि पुत्री के कारण,
गढ़-चितोड़-राजान, दुष्ट-दुरजन-विडारण।
राजा रतनसेन चहुवाण है, तिस समवड़ नहि अवर नर,
परणाय देह पदमावती, मान वचन तू सत्तकर॥20॥
गुरु-वचन राजान, माँन पुत्री परणाई,
रतनसेन के साथ, भई है भली सगाई।
दीन्हो बहु दायजो, लाल मुकताफल, हीरे,
पाटंबर, पटकूल, थाल सर कंचन नीरे।
रावल कदै राजान को, पदमावति मुकलाइयै,
चीतोड़-लोक पिता कदै, राजा रतन चलाइयै॥21॥
राघव दीयो संग, वेग पदमनी चलाई,
रोवत माता भ्रात, कुंवरि को कंठ लगाई।
उडन-खटोला चढे राय, पदमावति, जोगी,
राघव चेतन संग, उडवि आये गढ भोगी।
नीसाण बजे पंच-सबद तहाँ, गोरी मंगल गाइयो,
राजा रतनसेन पदमावती, ले चितोड़गढ़ आवियो॥22॥
तजी राति सद और, राव पदमावति रातो,
रैन-दिवस रह पास, अंग आणंद मदमातो।
नेम नीर को लियो, वीन देख्याँ पदमावत,
महा-मोह-वस भयो, रहै जैसी विध रावत।
जब निसा रही इक-दोय घड़ी, तब सिकार-उद्दम कियो,
राजा रतनसेन असवार हुय, राघव चेतन सँग लियो॥23॥

दूहा

वन के भीतर खेलता, तृखा वियापी तेम,
विन देख्याँ पदमावती, जल पीवण को नेम॥24॥

कवित्त

तब राघव चित लाय, सरस पूतली सँवारी,

त्रिपुरा की कर कृपा, रूप पदमावति नारी।
भेख भाव बहु करी, जंघ पर तील बनाया,
देख राय भयो रोस, पाप मन भीतर लाया।
विना रम्याँ पदमावती, तील स क्यूंकर जाणियो,
मारूँन विप्र, काढू नगर, यह सुभाव मन आणियो॥25॥
घरि आयो राजान, विप्रकु दिया निकारा,
राघव तिसही समै, वेस वैरागी धारा।
भगवें बेस सरीर, नीर भर लिया कमंडल,
जंत्र बजावै जुगत, जोग-तत रहै अखंडल।
दिल्ली सु आय प्रापत भयो, रह उद्यान बन खंड सिर,
पातसाह तिहां अलावदी, करै राज सिर नर सुथिर॥26॥
एक दिवस सीकार साह खेलत तिहाँ आयो,
राघव तिसही समै जुगत कर जंत्र बजायो।
म्रग सव तज वनवास पास राघव के आए,
सुणे राग धर कान साह म्रग कहूँ न पाए।
आयो सु तहाँ अल्लावदी, देख चरित अचरज भयो,
उतर तुरंग से साह तब, राघव के आगे गयो॥27॥

दूहा

रीझ्यौ साह सुराग सुनि, राघव को कह ताँम,
दिलिपति हम तुम सों कहैं, चलो हमारे धाम॥28॥
हम वैरागी, तुम ग्रही, अर प्रथवी पतिसाह,
हम तुम ऐसा संग है, जैसा चंद कुराह॥29॥
हठ कीनो पतिसाह तब, राघव आन्यौ गेह,
राग रंग रीझ्यौ अधिक, दिन दिन अधिक सनेह॥30॥

कवित्त

एक दिवस नर काइ, ससा जीवत ग्रह ल्यायो,
पातिसाह ले तब्ब, गोद ऊपर बैठायो।
ता पर फेरे हाथ, अधिक कोमल रोमावल,
यातै कोमल कछु, कहो राघव गुण-रावल।
तब हाथ फेर राघव कहै, यात कोमल सहस गुण,
पदमावति-देह, विप्र उचरै, पातसाह धरि कान सुण॥31॥

दूहा

व्यास बुलाए अलावदी, पूछत वात प्रभात,
सास्त्र विधि जाणो सकल, त्रियकी कितनी जात॥32॥
राघव कहै नरिंद सुन, त्रीय जाति है च्यार,
चित्रन हस्तन संखनी, पदमनि रूप अपार॥33॥
(अथ पदमनी वर्णनम्)
पदमनि के परस्वेद सें, कसतूरी की वास,
कमलगंध मुख तें चले, भमर तजत नहिं पास॥34॥

कवित्त

पदमगंध पदमनी, भमर चहुंफेर भमत अत,
चंद वदन, चतुरंग, अंग चंदन सो वासत।
सेत, स्याम अरु अरन, नयन-राजीव विराजत,
कीर चुच नासिका, रूप रंभादिक लाजत।
गुणवंत दंत दाडिम कुली, अधर लाल, हीरा दसन,
आहार पान कोमल अधिक, रस सिंगार नव सत वसन॥35॥
पान हुते पातरी, पेम-पूरण सू लाजत,
भुज बृणाल सुविसाल, चाल हंसागति चालत।
चंपावरण सुचंग, सूर ऊजासी भाले,
पदम चरण तल रहै, निरख सुरनर मुनि भाले।
हर लंक, अंग चंदन-वरन, नार सकल-सिर मुगटमणि,
अल्लावदीन सुरताँन सुण, पदमन लच्छन एह भणि॥36॥
(अथ चित्रणी वर्णनम्)
चपल चित्त चित्रणी, चपल अति चंचल नारी,
कँवल-नैन कटि झीन, वेण जू नागन कारी।
पीन पयोहर कठिन, वचन अमृत मुख बोलै,
जंघा कदली-खंभ, गिडत गैवर गति डोले।
संभोग-रीत जाँनत सकल, नित सिंगार-भीनी रहै
अल्लावदीन सुलतान सुन, कवि चित्रन-लच्छन कहै॥37॥
(अथ हस्तनी वर्णनम्)
हेत बहुत हस्तनी, केस अति कुटिल विराजत,
द्रिग देखत मृग नैन, चपल अति खंजन लाजत।
कनकलता कामनी, बीज दाड़िन दसनावत,
पहुप पैस पहरंत, कंत अति हेत सुहावत।

अति चतुर, कुच्च कंचन कलस, काम केलि कामिन करै,
अल्लावदीन सुलतान सुण, ए लच्छन हस्तन धरै ॥38 ॥

(अथ संखनी वर्णनम्)

जटा जूट जोखता, वदन विकराल विकल अति,
सुक्कर देह, सरोस, स्वाँन जू सदा घुरकति।
गर्दभ-गति, गुनहीन, परै ढरि पीन पयोहर,
मंछ-गंध, तन मलन, चुल्ह समतूल भगंदर।
अति घोर निद्र, आलस अधिक, अति अहार, गज अंखनी,
अल्लावदीन सुलतान सुण, ए लच्छन त्रिय संखनी ॥39 ॥

श्लोक

पद्मिनी पक्ष मध्येषु, कोटि गयेषु चित्रणी,
हस्तनी सहस्त्र मध्येषु, वर्तमानेषु संसनी ॥40 ॥
पद्मिनी पान राचंति, मान राचंति चित्रणी,
हस्तनी हास राचंति, कलह राचंति संखनी ॥41 ॥
पद्मिनी पद्म गंधेन, मद गंधेन चित्रणी,
हस्तनी पुहप गंधेन, मच्छ गंधेन संखणी ॥42 ॥
पद्मिनी पोहर-निद्रा च, द्वै पोहर निद्रा च हस्तनी,
चित्रनी चमक निद्रा च, अघोर निद्रा च संखनी ॥43 ॥

(अथ पुरष जात च्यार वर्णनम्)

दूहा

अथ सिसा लखण

मूख सकोमल, तन, वचन, सीलवंत, सुर ग्याँन,
रति विनोद अति रुच नहीं, ससा करत बहु साँन ॥44 ॥

अथ मृग लछन

मधुर-वचन, मृग मध्य-तन, चपल बुद्धि अति भीर,
चतुर, साधु, अति हसत मुख, कामी, कनक-सरीर ॥45 ॥

अथ वृषभ

वृषभ जात भारी पुरुष, दाता, क्रूर-सुभाव,
कपटी कछ लंपट हठी, काम केल बहु चाव ॥46 ॥

अथ तुरंग

तन दीरघ दीरघ चरन, दीरघ नख सिख अंग,
सुभर-तरुनि-सँग रति-रवन, आलस अधिक तुरंग ॥47 ॥

कवित्त

ससिक पुरुष-संयोग, नारि पदमावति लोडै,
मृग नर सुं चित्रणी, प्रेम पूरण सूं जोडै।
वृषभ पुरुष हस्तनी, भोग अत ही सुख पावै,
अश्व पुरुष संयोग, नार संखनी सुहावै।
मृग ससिक वृषभ अरु अश्व पुनि, जाति च्यारि पुरुषां तणी,
अल्लावदीन सुरताण, सुणि, जात च्यार नारी तणी॥48॥

दूहा

नारि जाति सुण पातिसाह, राघव लियो बुलाय,
दोय सहस मुझ हुरम है, देखि महल में जाय॥49॥
राघव कहै नरिंद सुनि, गरमहल में न जाय,
छाया देखूं तेल में, नारी देऊँ बताय॥50॥

कवित्त

हुकम कियो पतिसाह, नारि सिंगार बनावहु,
तेल-कुंड भर घरो, आय दीदार दिखावहु।
हुरमा सकल निहार, तबै राघव यू भाखै,
हंस गमन, मृग नैन, रूप रंभा कौ राखै।
चित्रन, हस्तन, संखनी, पातसाहजादी घणी,
सरस निया में सुन्दरी, नहीं साह घर पदमणी॥51॥
कहै ताम सुलतान, वेग पदमनी बतावहु,
जहाँ होइ तहाँ कहो, जो कछु मांगो सो पावहु।
पदमन सिंघलदीप, उदध-पै-पार, पयंपै,
देख समुद्र, सुलतान, हिया कायर का कंपै।
यूं सुनवि चढ्यौ सुलतान, तब आय उद्‌ध ऊपर पड्यौ,
पदमनी कहाँ राघव कहो, पातसाह अत हठ चढ्यो॥52॥

सोरठा

राघव लह प्रस्ताव, पातसाहपै यू जपै।
पदमनि नैडी ठाँव, रतनसेन चहुवाण पै॥53॥

दूहा

सुणवि चढ्यौ सुलतान तब, चलियो गढ़ चीतोड़।
दिया दमामा दिल्लिपत, भई राय पर दोड़॥54॥
काँपे सगले राण, चिहूँ चक्क खलभल भई।

खुर-रज छायो भाण, चोट नगारै जब दई॥55॥

छंद जात रेसालू

चढे चिहूँ दिसि साह के दल, धरै धीरज कौन?।
अभिमान-आणंद अंग उपजौ, गिण लगन न सौंन॥56॥
असवार त्रय लख साथ अदभुत, पाखरे ज तुरंग।
ताजी स तुरकी औ अराकी, सबज नीले रंग॥57॥
कम्मेत, काले, हासिले, सामुद्र, अर तबरेस।
अबलक, सुजाँम, सुबाहिरे, सबज नीले नेस॥58॥
सारंग, केहर अरु सरौजी, भले पंच कल्याण।
नाचंत पातर ज्यूं तुरंगम, रतन-जड़ित पलाँण॥56॥
लग्गाम सोवन मुक्ख सोहै, जेर बंध सु पाट।
अब रेसमी कसि तंग ताणे, लटकणा के थाट॥60॥
गजगाह घूघरमाल घमकै, तबल बाज वणाव।
कलंगी भली जरकसी पाखर, भलौ परचै भाव॥61॥
हलकै पचावन साथ हाथी, ढलक नेजा ढाल।
अति घटा सावण मास जैसी, झरै मद परनाल॥62॥
बग-क्रांति कांति सपेद सुंदर, गाजते गजराज ।
पहिराय पाखर साह राखे, फोज आगे साज॥63॥
रथ अर पयादे अवर असवार, गनि सकै कह कोण।
उमड़ी चली आतस्सबाजी, खलभले त्रय भौण॥64॥
डेरा पढ़े दस कोस ताँई, करै नाहि मुकाम।
आइकै गढ़ चीतोड़ उतरे, दिया डेरा ताम॥65॥
ताणे तहाँ पंचरंग तंबू, फरहरे नीसाँण।
फूले पलास वसंत आगम, वदै कविजन वाँण॥66॥
गढ-रोहौ करकै रह्यो, अलावदीन सुलतान।
रतनसेन माँनै नहीं, चले गढ़नसूं प्राँन॥67॥
अंब लगाये ठौर तिह, फल पाके तब जान।
बारा वरस बेठो रहौ, अलावदीन सुलतांन॥68॥

कवित्त

कहै ताम सुलतान; कहौ राघव क्या कीजै?
गढ़ चितोड़ है विषम, जोर तें कबहु न लीजै।
राघव कहै, सुलतान, सुनो इक फंद करीजै,

उठाइये मूसाफ, जेण कर राय पतीजै।
भेज्यो खवास सुलताँन तब, रतनसेन-द्वार गयौ,
ले हुकम-राय दरवाँन तब, खोलि प्रोलि भीतर लियौ ॥69 ॥
कहै ताम सुलताँन, मान तूं वचन हमारा,
कहै फेर सुलतान, करूं तुझ सात हजारा।
बहिन करूं पदमनी, तुम भाई कर थप्पूँ,
देखू गढ चीतोड़, अवर बहु देस समप्पूँ।
गल कंठ लाय, ठहराय के, नाक नमण कर बाहुडौं,
राजा रतनसेन, सुलताँन कह, पहुर एक गढपरि चढौं ॥70 ॥
मान वचन सुलतान, आन मूसाफ उठायौ,
महमानी बहु करी, गड्ढ सुलताँन बुलायौ।
लिये साथ उमराव, बीस दस सूर महाबल,
बहुत कपट मन माँहि, गए सुलतान वहाँ चल।
बहु भगत-भाव राजी करी, साह कहै भाई भयौ,
पदमनि दिखाव ज्यूं जाँह घर, दुरजन दुख दूर गयौ ॥71 ॥

दूहा

रतनसेन चहुवान कहि, बहिन करी सुलताँन।
वदन दिखावो वीर कों, दिया साह बहु माँन ॥72 ॥
चेरी एक अति सुंदरी, दे अपनौ सिणगार।
बदन दिखायौ साह कू, गिर्‌यौ सीस के भार ॥73 ॥
राघव कहै, सुण पातसाह, यह पदमनी न होय।
कहा देख के तुम गिड़ें, अति सुंदर है सोय ॥74 ॥

कवित्त

लाख लहै ढोलियो, सवा लख लेह तुलाई,
अर्ध लाख गीदुदो, लाख त्रय अंग लगाई।
केसर अगर कपूर, सेझ परमल पर भीनी,
ता ऊपर पदमनी, रामरस-रूप-नवीनी।
अल्लावदीन सुलतान सुण, पदम गंध है पदमनी,
चन्द्रमा बदन, चमकंत मुख, रतनसेन-मनभावनी ॥75 ॥

दूहा

बोल्यो तब, अल्लावदी, पकड़ राय को हाथ।
दिखलावत हो और त्रिय, कपट कियो मुझ साथ ॥76 ॥

कवित्त

कहै ताम सुलतान, कहो पदमन-प्रति ऐसो,
मुख दीखावो बेग, कपट मांड्यो है कैसो।
मुख काढ्यौ पदमनी, ताम बारीकै बाहिर,
निरख गिर्‌यौ सुलताँन, थंभ लीयौ तसु थाहर।
खिन एक संभालै आपकूं, साह कहै, डेरै चलौ,
क्या सिफत करूं मैं राव की, रतनसेन भाई भलौ॥77॥
फिर्‌यौ ताम सुलताँन, प्रोल पहिली जब आयौ,
रतनसेन भयो साथ, लाख बकसीस दिवायौ।
चल्यो ताँम सुलतान, प्रोल दूजी जब आयौ,
और दिये दस गड्ढ, राय अति बहुत लोभायौ।
इम लेवै बगसीस, तबह कपट कर फंदियो,
राजा रतनसेन अति लोभकर, अहि सुलतान सुबंधीयो॥78॥

सोरठा

रहे प्रोल जड़ लोक, सोर सकल गढ में भयौ।
राजा ले गयो रोक, कपट कियो सुलतान तब॥79॥

कवित्त

सदा मरावै साह, राय कोरड़े लगावै,
कहै, देह पदमनी, जीव तब ही सुख पावै।
गढ के नीचे आँण, सहम भूपति दिखलावै,
लै राखै लटकाय, लोक सबही दुःख पावै।
मारतें राय कायर भयौ, पदमावत देऊँ सही,
भेजौ खवास मारौ न मुझ ले आवै जब लग ग्रही॥80॥

सोरठा

भेज्यो राय खवास, कहै, देय पदमावती।
मुझ जीवन की आस, विलम न कीजै एक खिन॥81॥

कुंडलियो

कह राँनी पदमावती, रतनसेन राजाँन,
नारि न दीजे आपणी, तजिय, पीव, पिराँन।
तजियै, पीव, पिराँन, और कूं नारि न दीजै,
काल न छूटै कोय, सीस दै जग जस लीजै।
कलंक लगावै आपकों, मो सत खोवै जाँन,

कह रानी पदमावती, रतनसेन राजाँन ॥82॥
पाँन लियो पदमावती, गई वादल के पास,
राखणहार न सूझही, इक बादल तोहि आस ॥83॥
बार वरस को बादलो, हाथ ग्रहे चैगान,
ले आई पदमावती, बादल खावौ पान ॥84॥
कह बादल सुन पदमनी, जा गोरा कै पास,
पान लियो मैं सीस धर, न करि चिंत, विसवास ॥85॥

कवित्त

भई आस, तब लियो सास, गोरा पै आई,
पड्यौ स्याँम संकडै, करो कछु अब्ब सहाई।
मंत्र कियौ मंत्रियां, नारि पदमावति दीजै,
छूटाइयै नरेस, विलम खिन एक न कीजै।
अवस तिहारे आप हूँ, ज्यू भाव त्यु राय करि,
वीडो उठाइ गोरो कहै, जाइ, बहन, अब बैठ घरि ॥86॥

दूहा

गोरा बादल बैठ के दिल में करै विवेक,
साह साथ कैसे लड़ाँ, लस्कर अमित अनेक ॥87॥

कवित्त

बादल बोल्यौ ताम पाँचसै डोला कीजै,
तिन में बैठे दोइ च्यार के काँधे दीजै।
तिन में सब हथियार अश्व कोतल करि आगे,
कहे, देह पदमनी, तुरक नेड़े नहिं लागै।
कटियै बन्धन राय के भुजबल परदल गाहिजे,
दीजिय न पूठ द्रढ़ मूठ करि खग्ग साह-सिर वाहिजै ॥88॥
दूहा बादल मंत्र उपाइयौ, सबके आयो दाय,
याहि बात अब कीजिये, बोले राणा राय ॥89॥

कवित्त

तुरत बुलाये सुत्रहार, डोले संवराए,
तिन ऊपर मुखमली, गुलफ आछे पहिराए।
बैठाये बिच सूर, सूर के काँधै दीजै,
तिन-मह सब हथियार, जरह अर जोर न ई जै।
अैराकी साज, सवार के, बादल मंत्र उपाइयो,

वक्कील एक रावल मिलन, पुह सुलतान पठाइयौ ॥90॥

दूहा

रावल देवत पदमनी, आज तुझे, सुलताँन,
भेट इसी बहु भाँति सोंय खुसी भयो सुलताँन ॥91॥
कहै ताम अल्लावदी, सुणि वकील, चित लाय,
देग ले आवो पदमनी, बादल सुंकहो जाय ॥92॥
आयो हुकम ज साह को, बादल भयो तयार,
सुनो, रावतो, कान धर, अेसी करियो मार ॥93॥

कवित्त

प्रथम निकस चकडोल, तुरत चढि तुरी धसावो,
नेजा लेकर हाथ जोर, दुसमन सिर लावो।
जब नेजा तुट्टवै, तबहि. तरवार उठावो,
जब तूटे तरवार, तबे तुम गुरज उड़ावो।
जब गुरज तूट धरणी पड़े, कट्टारी सनमुख लड़ो,
बादल कह हो रावताँ, स्याँम काम इतनो करो ॥94॥

दूहा

बादल जूझन जब चल्यो, माता आई ताँम,
रे बादल तें क्या किया, ए बालक. परवाँन ॥95॥

कवित्त

रे बादल बालक, तुं ही है जीवन मेरा,
रे बादल बालक, तुझ बिन जुग अंधेरा।
रे बादल बालक, तुज्झ बिन सब जग सूना,
रे बादल बालक, तुझ बिन सबहि अलूना।
तुझ बिन न सूझे कछू, तूटि बाँह छाती पड़े,
छुट्टंत तीर बंका तहाँ, केम साह-सनमुख लड़ै ॥96॥

दूहा

माता बालक क्यु कहो, रोइ न माँग्यौ ग्रास।
जो खग मारूं साह-सिर, तो कहियौ साबास ॥97॥
सीह, सिँचाणो, सापुरुष, ए लहुरे न कहाय।
बड़े जिनावर मारि कै छिन में लेय उठाय ॥98॥
सिंह जोन तें निकसते, गय-घड़ दीठी जाँम।
तुट्टवि गज मसतक लड्यौ, आइ रह्यौ महि ताँम ॥99॥

कवित्त

बादल कह, सुण माय, सत्त तुझ साहस मेरा,
लड़ूं साह के साथ, करूं संग्राम घणेरा।
मारुं सुभट अपार, स्याम के बंधन काहूँ,
जो सिर गयो त जाहु, सीस दे जग जस खाटूँ।
जिम राम-काज हनुमंत कियो, मार्‌यौ रावण एक खिण,
गैवर गुडाय तोडौं तबर, साह चलाऊँ खग्ग हण ॥100॥
बालक तो परवाँण, जाँम गवर-घड़ मोड़ूँ ,
बालक तो परवाँण, पकड़ पिलवाँन पछोड़ूं।
बालक तो परवाँण, स्याम के बंधन कट्टूँ,
बालक तो परवाँण, सांग असवार पलट्टूँ।
मारूं तो खग साह-सिर, गयवर दलू, सत्य चढूँ,
जननी लजाऊँ तुज्झ कूं, जे वाग मोड़ पाछो मुड़ूँ॥101॥
जैसा, बादल, तैं किया, तैसा करै न कोय ।
माता जाइ आसीस दै, अब तेरी जै होय॥102॥
माता जबही फिर चली, बहुवर दिवी पठाय ।
मेरो राख्यो ना रह्यौ, अब तुम राखो जाय॥103॥

कवित्त

नव सत सज्झे नवल, नारि बादलपै आई,
अज हुं न रम्यौ मुझ साथ, चल्यौ तूं करण लड़ाई।
अजहुँ न माँणी सेझ, घाव-नख नाहि चमंके,
कुचन चोट नहि सही, सहै क्युं सांग धमके।
छुट्टंत नाल गोला तहाँ, तुट्टवि धड़ सिर उप्परै,
नारि कहै हो राव, इम मतां देखि दलते मुडै॥104॥

दूहा

कंता रिण में पैसताँ, मत तूं कायर होइ।
तुम्है लज्ज, मुझ मेहणो, भलो न भाखै कोइ॥105॥
जो मूवा तो अति भला, जो उबर्या तो राज।
बेहुँ प्रकारा हे सखी, मादल घूमै आज॥106॥
कायर केरै माँस कों, गिरज न कबहुँ खाइ।
कहा डंख इन मुक्ख को, हम भी दुरगति जाइ॥107॥

कवित्त

मेर चलै, ध्रू चलै, भाण जो पच्छिम ऊगै,

साधु वचन जो चल, पंगु जो गिर लगि पूगै।
धरण गिड़े धवलहर, उदध मरजादा छोड़ै,
अरजन चूकै बाँण, लिखत वीधाता मोड़ै।
बादल कह, री नार, सुण, एहवो जो होतब टलै,
न्हासूँ न, पूठ देऊं नहीं, बादल दलसूँ ना चले॥108॥

दूहा

त्रीया, तुझकों क्या दिऊँ, सती हुवै मुझ साथ।
जूड़ो दीनो काटक, नारी-केरै हाथ॥109॥
....।
ताके ऊपर अरगजा, भमर भमै चिहुं फेर॥110॥
सुखपालां सझ पांचसै, सोभा घणी करेह।
गढ़ तैं डोले उतरे, साह न पायो भेद॥111॥
गोरा बादल दोइ जण, आप भए असवार।
आय मिले पतिसाह सैं, किए सिलाँम तिवार॥112॥
ले आए संग पदमनी, दोड़न लागे मीर।
लाज जु लागे हम तुमै, बहुत भया दिलगीर॥113॥
साह ढंढोरो फेरियो, मत कोई देखो ऊठ।
गरदन मारूं तास कौं, लूँ सब डेरा लूट॥114॥
भी भिर आये साह पै, एक करै अरदास।
रतनसेन कूँ हुकम हुइ, जाइ पदमन कै पास॥115॥
मिल विछुरे संग पदमनी, तुमकों दीजै आँन।
हुकम कियो पतसाह तब, यह विधि मन में जाँन॥116॥

कवित्त

बादल तिहां आवियो, राय तिहाँ बाँधण बाँध्यो,
लेइ मस्तक आपणौ, चरण ऊपर तस दीधो।
हुऔ कोप राजाँन, वैर कीधो लें, वैरी,
कीधो भूँडो काँम, नारि आणावी मेरी।
बादल ताँम हँसि बोलियो, कृपा करो साँमी, सही।
बालक रूप-पदमावती, राव नारि तेरी नहीं॥117॥

दूहा

ले आए संग राव को, मन बिच हरख अपार।
डोले भीतर पैसताँ, आगे बीच लोहार॥118॥

बेड़ी काटी तुरत तिन, राय कियौ असवार।
तबल बाज तिनही समै, निकढे सुभट अपार॥119॥

सोरठा

रण वाजै रणतूर गारू गावै मंगता।
उमग तिहाँ चित सूर, कायर के चित खलभले॥120॥
ढमकै जंगी टोल, सुरणाई बाजै सरस।
घुरै दमामां घोर, सिंधूड़ा ढाढी चवै ॥121॥
साह-कटक पड्यौ सोर, ओरूं की ओरूं भई।
रही पदमनी ठोर, रण आये रजपूत रट॥122॥
तीन सहस रजपूत खाय अमल, घूँमै खड़े।
पड़े क्रपन के पूत, राँम राँम मुख ते रटे॥123॥
जुड़ आये रजपूत, भूत भये कारण भिडण।
परिहरि जोरू-पूत, खत्री आये खेत पर॥124॥
हबक ग्रहे हथियार, हलके हाथी साज के।
अंबाड़ी-असवार, पातसाह आयो प्रगट॥125॥
गोरा-बादल वीर, सिर फलाँ को सेहरो।
केसर छिटके चीर, सूंध-भीना सापुरस॥126॥

छंद वीरारस

जुडारे जंग, उलसे अंग।
गोरा वादल, ताने तंग॥127॥

छंद जात रसावलू

कर खंग लिय करि करि, विहंड भुजदंड दिखावै,
पाडलियै पाखरी उलट, अपने दल आवै।
निज साँम-काज भूपत लड़े, काट-काट लावै कमल,
गोरा लगावत जिहाँ खड़गं, तिहाँ पाड़ करै दोइ धड़॥128॥

छंद पद्धरी (मोतियदाम)

लड़ै जब गोरल बाँवन वीर, कमाँणक चोट चलायत तीर।
न चूकत रावत एकण चोट, लड़े, गज लोट सपोष्टालोट॥129॥
ग्रहै बरछी जब गोरल राय, सु नागन ज्यूँ नर उडत खाय।
फोड़त पाखर साथ पलाँण, सुजातन का सिर सुंदर माँण॥130॥
तजै बरछी, पकड़ें तरवार, घणी खुरसाण सो बीजलसार।
चलावत मीर उतारत सीस, उडावत एक चलावत वीस॥131॥

तजे तरवार गुरज भिड़ाय, दुरज्जन चोट दडब्बड़ ल्याय।
करै चकचूर गयंद-कपाल, सकै उमराव न आप संभाल ॥132॥
कहै मुख मीर ज आयो काल, डरै नर, दे हथियार संभाल ।
प्रहे त्रिन्ह दंत बड़े-बड़े मीर, न मारहु गोरल राव सधीर॥133॥
चल्यो एक मीर ज चोट चलाय, पड्यो धर ऊपर गोरल राय।
पुकार पुकारत गोरल नाँम, करै जब बादल ऐसो काँम॥134॥

कवित्त

सुभट सुभट सुं लड़ग, पड़ग तिहाँ खड़ग भडाभड़,
जुड़ग-जुड़ग जहाँ जुड़ग, जुड़ग तहाँ खड़ग धड़ाधड़।
मुड़ग मुड़ग तहाँ मुड़ग, मुड़ग कोउ अंग न मोड़ग,
गहर गहर गज दंत, भुजे भूपति गह तोड़ग।
संग्राम राम-रावण-सुपरि, जुड़े ज्वान ऐसी जुगति,
सलसलै सेस, सायर सलल, धड़हड़ कंप्यौ धवलहरि॥135॥

कवित्त

चाबक चंचल लाइ, उलट अपने दल आवै,
नेजा लेकर हाथ, जोर दुसमन-सिर लावे।
नाठे तबहि गयंद, तोफ झीड़ा फड़ पड़ियो,
मारे मुगल अपार, बाल बादल इम लड़ियो।
खुर-खेह सूर झंपत लियो, रैन-दिवस समसिर भयो,
छुटकाय बंध, चाढिय तुरिय, राय भेज घर कों दियो॥136॥
भारथ अयो अपार, साट सूरों के तूटे,
मारे ते रिण मांझ, जिनों के कालज खूटे।
बहुत मुए रजपूत, तुरक को अंत न लहिये,
चले रुधिर के खाल, तीन लोकन में कहियै।
भागत मतंग-ज-थाट जब, अपछर मंगल गाइयो,
रणजीत, राय छुट काय के, तब बादल घर आइयो॥137॥
वादल की आरती आय, पदमनी उतारै,
मुकताफल भर थाल, भरी सिर ऊपर वारै।
बहुयड़ दे आसीस, जीव तूं कोड़ वरीसां,
सूरवीर बंकड़ा, तूझ गुण गावै ईसा।
बलिहारी तस नांव पर, जिण कंत हमारो मेलियो।
गोरा गयंद बादल विकट, धन धन जननी जनमियो॥138॥

दूहा

बादल सुँ नारी कहै, हूं बलिहारी, कंत।
ते खग मार्‍यौ साह-सिर, दे चरणाँ गजदंत॥139॥
पिय मुख पूँछत प्रेम सुँ, धन बादल भरतार।
बोल निवाह्यो आपणों, सूर जपै जयकार॥140॥
काकी बादल सों कहै, गोरल नायो काय।
भिड़ मूवौ कै भाजि कै, सो मुझ बात सुणाय॥141॥
गोरा गिर सूं धीर, भिड़ै न भाजै भूम तें।
मार चलावै मीर, मगर चलावै तीर तें॥142॥
जाके लाए अंग, रंग निकासे ते जड़ग।
मारे मनुख तुरंग, गोरा गरजै सिंघ ज्यं॥143॥
भला हुआ जे भिड़ मूवा, कलंक न आयो कोय।
जस जंपै श्री जगत में, हिव रिण ढूंढ़ो जोय॥144॥
रिण ढूंढै नारी तहाँ, साथे सगला लोइ।
सीस न पावै, सो कहां, अंबर वाणी होइ॥145॥

कवित्त

गोरे का सिर ताँभ, तुरत तिण गिरझ उठायो,
मुखतै छूटो गिरझ, ताँम देवगना पायो।
देवँगना तें छुटि, सोइ सिर गंगा पड़ियो,
गंगा ते लियो संभु, रुंडमाला में जड़ियो।
सो सोह गोरल भरतार इम, सापवित्र मस्तक भयो।
यों जूझै परकाज-पर, सो गोरो सिवपुर गयो॥146॥

दूहा

नारी इम वाणी सुणी, पिय की पघड़ी साथ।
सती भई आणंद तूं, सिवपुर दीनो हाथ॥147॥
गोरा बादल की कथा, पूरण भइ है जाँम।
गुरू-सरस्वती-प्रसाद करि, कविजन करि मन ठाँम॥148॥
सोलैस असियै समै, फागण पूनिम मास।
वीरा रस सिणगार रस, कहि जटमल सुप्रकास॥146॥

छंद रिसावला

वसै मोछ अडोल अविचल, सुखी रइयत लोक,
आणंद घरि-घरि होत ऊछब, देखियत नहिं सोक॥150॥

राजा जिहाँ अलिखाँन न्याजी, खान-नासिर-नंद,
सिरदार सकल पठान बिच है, ज्यों नखत्रे चंद॥151॥
धर्मसी को नंद, नाहर जात, जटमल नाँउ,
जिण कही कथा बनाय कै, विच संबला के गाँउ॥152॥
कहता तहाँ आनन्द उपजे, सुन्याँ सब सुख होय,
जटमल पयंपै, गुनि जनो, विघन न लागै कोय॥153॥

'गोरा-बादल कथा' हिंदी कथा रूपांतर

जंबू द्वीप के सभी खंडों में भारतखंड सर्वोपरि है। भारतखंड में गढ़ चितौड़ है, जिसके चौहान राजा रत्नसेन के चरण कमलों की सेवा योद्धा करते हैं। रत्नसेन योद्धा है और वह माँगने वालों को दान और मान देता है। बहुत दूर से उसके यहाँ माँगने वाले आते हैं। एक दिन चार चतुर भाट माँगने आए। उन्होंने राजा की सराहना की। राजा ने उनसे पूछा कि "वे कहाँ से आए हैं?" उन्होंने कहा कि "हम सिंघल द्वीप से आपकी कीर्ति सुनकर आए हैं।" रत्नसेन ने भाटों की आसन देकर अपने पास बैठाया और कहा कि द्वीप के संबंध में बताओ। भाटों ने कहा कि समुद्र के पार अपार शोभावाला नगर है, जहाँ ऐरावत हाथी और पद्मिनी स्त्रियाँ पैदा होती हैं। (1-6)

राजा ने पूछा कि पद्मिनी स्त्री कैसी होती है, तो भाट ने कहा कि स्त्रियों की चार जातियाँ- चित्रिनी, हस्तिनी, शंखिनी और पद्मिनी होती हैं और इनमें से पद्मिनी सर्वश्रेष्ठ और अपार गुणोंवाली है। राजा ने कहा कि पद्मिनी स्त्री के लक्षण, रंग, रूप और गुण बताओ। भाट ने कहा कि पद्मिनी का मुख चंद्रमा जैसा होता है और उसके शरीर से कमल की सुगंध आती है। उसके चारों और भ्रमर मँडराते हैं और उसको देखकर देवता और राक्षस मोहित होते हैं। वह 108 अंगुल लंबी होती है। उसकी पिंडलियाँ की लंबाई सत्ताईस अँगुल होती है। उसकी आँखें हिरण, वचन कोयल और कमर सिंह के समान होती है। उसके होठ लाल, दाँत हीरे, भौंह धनुष और चाल हाथी जैसी होती है। पद्मिनी के गुण सुनकर राजा की उसको पाने की इच्छा प्रबल हो गई। उसने मन में सोचा कि बिना पद्मिनी देखे मेरा जवीन व्यर्थ है। पद्मावती राजा के चित्त में बस गई। उसे रात में नींद नहीं आती थी और भोजन अच्छा नहीं लगता था। ऐसे में एक दिन एक योगी वहाँ आया। उसके आने से राजद्वार पर धुँआ दिखाई दिया। उस सिद्ध योगी को देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने योगी की ख़ूब आवभगत की। रात भर बैठकर राजा ने योगी का पात्र पंचामृत से भर दिया। योगी

ने संतुष्ट होकर राजा से, जो उसे चाहिए, वो माँगने के लिए कहा। राजा ने कहा कि ''मुझे पद्मिनी से विवाह करना है।'' योगी ने कहा कि ''पद्मिनी सिंघल द्वीप में है, जो तुम्हे वह पसंद हो, तो राजपाट छोड़कर मेरे साथ चलो।'' राजा ने कहा कि ''आप मेरा काम कर कर दीजिए और इसके लिए जो सामग्री अपेक्षित है, साथ ले लीजिए।'' योगी ने अपनी मृगछाला बिछाई और मंत्र पढ़ा। दोनों मृगछाला पर बैठकर सिंघल द्वीप के लिए उड़ गए। (7-14)

सिंघल द्वीप पहुँचकर योगी ने राजा से कहा कि ''तुम एकशब्दी भिक्षा के लिए जाओ।'' उसने राजा को योगी का वेश धारण करवाया। राजा योगी के वेश में भिक्षापात्र लेकर राजद्वार पर आया। वहाँ राजकुमारी पद्मावती को देखकर वह मूर्च्छित हो गया। राजा का रूप-सौंदर्य देखकर पद्मावती भी मोहित हो गई। उसने सखी से राजा पर पानी के छींटे डालने के लिए कहा। सखी ने पानी के छींटे डालकर राजा को जगाया। पद्मावती ने देखा कि रत्नसेन में आदर्श पुरुष के पूरे बत्तीस लक्षण मौजूद हैं। उसने अपना नौसर हार तोड़कर राजा को उसकी भिक्षा दी। उसकी सखी राजा के लिए मोतियों को थाल भरकर लाई। राजा ने भिक्षा लाकर योगी के आगे रख दी। योगी ने कहा कि जो जिस योग्य है, उसको वैसी ही भिक्षा मिलती है। योगी चलकर राजा के घर आया। राजा योगी को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अपना सिर योगी के चरणों में रखकर कहा कि ''आज मेरा घर पवित्र हो गया और हमारा सौभाग्य है कि गुरु प्रेमपूर्वक हमारे यहाँ आए।'' सुनकर पद्मावती भी वहाँ आई और उसने गुरु के चरणों की धूल अपने सिर पर लगाई। आशीष देकर योगी ने कहा कि ''बेटी! तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हुआ।'' राजा ने योगी से कहा कि- ''मेरी सुखदायक पुत्री विवाह योग्य हो गई है, लेकिन कोई वर उसके योग्य नहीं है।'' योगी ने कहा कि ''मैं दुष्टों का विनाश करनेवाले, चित्तौड़गढ़ का चौहान राजा, जिसके समान कोई दूसरा मनुष्य नहीं है, को वर के रूप में लाया हूँ। तुम अपनी पुत्री का विवाह उससे कर दो।'' गुरु के वचन मानकर राजा ने अपनी पुत्री का विवाह रत्नसेन के साथ कर दिया। उसने दहेज में कई लाल, मोती, हीरे, रेशमी वस्त्र और सोना दिया। रत्नसेन ने राजा से कहा कि ''अब हमें विदा दो, चित्तौड़गढ़ के लोग चिंता करते हैं।'' राजा ने पद्मावती को विदा किया। उसने राघव को उसके साथ भेजा। रोते हुए भाई और माता ने पद्मावती को कंठ से लगाया। रत्नसेन, पद्मावती, राघव और योगी उडनखटोला पर चढ़े और उड़कर चित्तौड़गढ़ पहुँच गए। (15-22)

रत्नसेन के चित्तौड़गढ़ पहुँचने पर नगाड़े बजे और स्त्रियों ने मंगलगीत गाए। राजा को पद्मावती के साथ दुर्ग में लिया गया। रत्नसेन और सभी रानियों को छोड़कर पद्मावती के प्रेम में डूबा रहने लगा। वह रात-दिन उसके साथ रहता। उसने प्रण लिया

कि वह पद्मावती को देखे बिना पानी नहीं पिएगा। रत्नसेन पद्मावती के मोह के अधीन हो गया। ऐसे में एक दिन जब रात एक-दो घड़ी रह गई, तो रत्नसेन राघव को साथ लेकर शिकार पर निकला। जंगल में शिकार खेलते हुए रत्नसेन प्यास लगी, लेकिन उसने पद्मावती का देखकर ही जल पीने का प्रण ले रखा था। तब राघव ने चित्त लगाकर देवी त्रिपुरा की कृपा से पद्मावती की मूर्ति बना दी। उसने उसमें पद्मावती जैसा वेश रखा और भाव डाले। उसने उसकी जंघा पर वैसा ही तिल भी बनाया, जैसा पद्मावती की जंघा पर था। मूर्ति की जंघा पर तिल देखकर राजा क्रोधित हुआ और उसके मन में राघव के चरित्र को लेकर संदेह हो गया। उसने सोचा कि पद्मावती से बिना रमण किए राघव को तिल की जानकारी कैसे हुई? राजा ने कहा कि राघव ब्राह्मण है, इसलिए मारूँगा नहीं, इसको नगर से निकला दूँगा। घर आकर राजा ने ब्राह्मण राघव को नगर से निकाल दिया। राघव ने उसी समय वैरागी का वेश धारण कर लिया। उसने भगवा पहनकर कमंडल में जल भरा और योग तत्त्व में डूबकर यंत्र बजाने लगा। वह दिल्ली जाकर वहाँ जगल के अंत में स्थित में उद्यान में रहने लगा। वहाँ बादशाह उल्लाउद्दीन जनता पर शासन करता था। एक दिन शिकार खेलते हुए बादशाह वहाँ आया। उसी समय राघव ने युक्तिपूर्वक अपना यंत्र बजाया। यंत्र का राग का सुनकर सभी हिरण राघव के पास आ गए। बादशाह को शिकार के लिए कोई हिरण नहीं मिला। बादशाह घोड़े से उतरकर राघव के पास आया। वह राघव का राग सुनकर मोहित हो गया। उसने राघव से कहा कि- ''तुम हमारे यहाँ चलो।'' राघव ने कहा कि- ''मैं वैरागी और तुम गृहस्थ हो। मेरा तुम्हारा साथ राहु और चंद्रमा की तरह है।'' बादशाह ने हठ किया और वह राघव को घर ले आया। बादशाह राघव के राग-रंग पर मुग्ध हो गया। दोनों में धीरे-धीरे प्रेम बढ़ने लगा। (23-30)

एक दिन कोई एक जीवित खरगोश बादशाह के पास लाया। बादशाह ने उसको गोद में लेकर उसकी कोमल रोमावली पर हाथ फेरा। बादशाह ने राघव से पूछा कि इससे कोमल कुछ है, तो उसके गुण बताओ। खरगोश पर हाथ फेरकर राघव ने कहा इससे हज़ार गुना कोमल पद्मावती की देह है। सुबह बादशाह ने राघव को बुलाकर पूछा कि ''तुम शास्त्र के ज्ञाता हो। बताओ कि स्त्री की कितनी जातियाँ होती हैं? राघव ने उत्तर दिया कि स्त्री की हस्तिनी, शंखिनी, चित्रिणी और पद्मिनी चार जातियाँ हाती हैं और इनमें से पद्मिनी अपार रूप-सौंदर्य से युक्त होती है। पद्मिनी के पसीने से कस्तूरी की सुगंध आती है। उसके मुँह से कमल की सुगंध आती है, इसलिए भ्रमर उसके पास से नहीं जाते। उसका मुँह और अंग चंदन से सुवासित हैं। उसके कमल नयन श्वेत, श्याम और लाल हैं। उसकी नासिका तोते की तरह और रूप ऐसा

है कि रंभा भी लज्जित हो। उसके दाँत अनार तरह और होठ लाल होते हैं। कोमल पान उसका भोजन है और वह हमेशा सौलह शृंगार से परिपूर्ण रहती है। वह पान से अधिक पतली होती है और उसकी सुंदरता नैसर्गिक है। उसकी चोटी कमर के नीचे तक लटकती है और वह बत्तीस लक्षणों से युक्त है। उसकी भुजाएँ मृणाल की तरह विशाल और चाल हंस के समान है। उसकी देह चंपकवर्णी है और उसके पदचिह्न देखकर देवता और मनुष्य प्रसन्न होते हैं। उसकी कमर सिंह के समान और अंग चंदनवर्णी हैं। वह स्त्रियों में सर्वेपरि मुकुट मणि है। चित्रिणी स्त्री अत्यंत चपल और चंचल होती है। उसकी कमर पतली, आँखें कमल के समान और चोटी काली नागिन जैसी होती है। उसके स्तन बड़े और कठोर होते हैं। वह अमृत वचन बोलती है और झूलते हुए हाथी तरह चलती है। वह संभोग की सभी रीतियाँ जानती है और हमेशा शृंगार युक्त रहती है। हस्तिनी स्त्री में प्रेम बहुत होता है। उसके केश उलझे रहते हैं। उसके नेत्र हिरण की तरह चपल होते हैं- खंजन भी इनसे लज्जित अनुभव करता है। वह कामिनी स्वर्णलता के समान होती है। उसके दाँत अनार के दानों की तरह होते हैं। वह पुष्पवेश पहनती है और अपने पति से प्रेम करती है। वह बहुत चतुर होती है और उसके स्तन कंचन कलश जैसे होते हैं। वह काम केलि जानती है। शंखिनी स्त्री का जटा-जूटयुक्त मुँह बहुत विकराल और व्यग्र होता है। उसकी देह सूकर जैसी क्रोध सहित होती है। वह कुत्ते की तरह हमेशा घुरघुराती रहती है। उसकी गति गधे के समान है और वह गुणहीन होती है। उसके मोटे स्तन ढले हुए और तन मलीन रहता है। उसकी भगेन्द्रीय हमेशा चूल्हे की तरह काम तृप्त रहती है। उसे ख़ूब नींद और आलस्य आता है। वह ख़ूब खाने वाली हथिनी जैसी होती है। पद्म (इकाई की ओर से गिनने पर सोलहवें स्थान की संख्या) स्त्रियों में से कोई एक पद्मिनी, करोड़ों में एक चित्रिणी और हज़ारों में से एक हस्तिनी और शेष सब शंखिनी स्त्रियाँ होती हैं। (31-43)

पुरुषों की चार जातियाँ- सिसा, मृग, वृषभ और अश्व होती हैं। सिसा पुरुष का मुख और शरीर कोमल होते हैं। वह शीलवान और देवताओं की तरह ज्ञानी होता है। रति विनोद में उसकी बहुत रुचि नहीं होती। मृग पुरुष मधुर वचन बोलता है। वह चपल बुद्धि और भीरू होता है। वह चतुर और साधु का स्वभाव का होता है। वह हँसमुख और कामी होता है। उसका शरीर स्वर्ण सदृश होता है। वृषभ जाति का पुरुष भारी और क्रूर स्वभाव का होता है। वह छली-कपटी, हठी और लंपट होता है। काम-केलि का उसको बहुत उत्साह रहता है। तुरंग पुरुष का शरीर भारी और उसके पाँव लंबे होते हैं। उसके नख-शिख और अंग भी बड़े होते हैं। वह सुंदर युवतियों के साथ रति-रमण करता है और आलसी होता है। पद्मिनी ससा, चित्रिणी मृग, हस्तिनी

वृषभ और शंखिनी अश्व पुरुष से संभोग करती है। (44-47)

स्त्रियों की जातियों के संबंध में सुनकर बादशाह ने राघव से कहा कि ''मेरे हरम में दो हज़ार बेगमें हैं। महल में जाकर उनको देखो।'' राघव ने कहा कि ''मैं महल में नहीं जाऊँगा। तेल में उनकी छाया देखकर ही जाति बता दूँगा।'' बादशाह ने हुक्म दिया, जिससे सभी बेगमों ने शृंगार करके भरे हुए तेलकुंड में अपने दर्शन दिए। सभी बेगमों को देखकर राघव ने कहा ने कहा कि ''हंस गामिनी, मृग नयनी और रंभा को रूप में पीछे रखनेवाली चित्रिणी, हस्तिनी और शंखिनी बादशाहज़ादी तो आपके यहाँ बहुत हैं, लेकिन इन सुंदर स्त्रियों में एक भी पद्मिनी नहीं है।'' बादशाह ने राघव से कहा कि ''पद्मिनी कहाँ हैं, शीघ्र बताओ, जो माँगोगे मिलेगा।'' राघव ने उतर दिया कि पद्मिनी समुद्र पार सिंघल द्वीप में है। समुद्र ऐसा है कि उसको देखकर शत्रु का हृदय भी काँप जाता है। यह सुनकर सुल्तान ने चढ़ाई की और समुद्र के किनारे आ गया। वह हठ पर अड़ गया कि बताओ पद्मिनी कहाँ है? राघव ने बादशाह से कहा कि ''पद्मिनी अपने निकट रत्नसेन चौहान के यहाँ है।'' यह सुनकर सुनकर बादशाह ने चित्तौड़गढ़ पर चढ़ाई कर दी। दिल्लीपति ने नगाड़े बजाकर रत्नसेन पर आक्रमण कर दिया। सभी राजा काँप गए और खलबली मच गई। नगाड़े पर चोट पड़ते ही घोड़ों के खुरों से उड़ी धूल से सूरज छिप गया। (48-55)

बादशाह की सेना के दलों ने चारों और से चढ़ाई की। सभी अधीर हो रहे थे और आनंद और अभिभान में डूबे हुए थे। किसी को भी मुहूर्त गणना का समय नहीं था। तीन लाख योद्धा जीन कसे हुए असाधारण घोड़ों पर सवार थे। घोड़े अरबी, तुर्की, ऐराकी और कई रंगों के थे। घोड़ों पर सोने की लगामें और सुपाटबंद शोभित हो रहे थे। रेशमी डोरियों के कसों और लटकनों के ठाट थे। हाथियों की झूलें ध्वनि कर रही थीं और वाद्य बज रहे थे। जीनों पर जरकशी और कलंगियाँ लगी हुई थीं। पचपन हाथियों का समूह नेजों और भालों के साथ चल रहा था। सावन माह में चलने वाले परनालों की तरह हाथियों का मद झर रहा था। हाथी ऐसे चलते थे जैसे सफ़ेद बगुलों की पंक्ति हो। बादशाह ने कवचयुक्त सेना को आगे रखा। रथ, पैदल और सवारों की गणना संभव नहीं थी। आतिशबाज़ी होने लगी, जिससे तीनों लोकों में खलबली मच गई। दस कोस में डेरे पड़े हुए थे। कोई विश्राम नहीं कर रहा था। सभी ने चित्तौड़ पहुँचकर डेरे दिए और पचरंग तंबू झंडों के साथ इस तरह तान दिए, जैसे बसंत ऋतु में फूल खिले हों। (55-66)

उलाउद्दीन ने दुर्ग पर घेरा डाल दिया। रत्नसेन दुर्ग में डटा रहा। उलाउद्दीन बारह वर्ष तक घेरा डालकर वहाँ बैठा रहा। जिन स्थानों पर आम लगाए गए, उनमें फल लगकर पक गए। बादशाह ने राघव से कहा कि ''दुर्ग चित्तौड़ बहुत विषम और

कठिन है। ताक़त से इसे लेना संभव नहीं है। क्या करना चाहिए?'' राघव ने कहा कि ''हमें षड्यंत्र करना चाहिए। हम घेरा उठा लेते हैं, जिससे राजा का विश्वास हो जाएगा।'' बादशाह ने अपना खवास (विश्वस्त सेवक) रत्नसेन के पास भेजा। राजा की अनुमति से उसे दुर्ग के अंदर लिया गया। खवास ने संदेश देते हुए कहा कि ''बादशाह कहता है कि तुम हमारा कहा मान लो, तो तुमको सात हज़ार मसनद का कर दूँगा। पद्मिनी को अपनी बहन और तुम्हे अपना भाई बनाऊँगा। चित्तौड़ का दुर्ग देखकर तुमको दूसरे कई देश सौंपूँगा। तुम्हारे गले लगूँगा और नाक नीची कर लौट जाऊँगा। केवल एक प्रहर दुर्ग में रहकर चला जाऊँगा।'' बादशाह की बात मानकर राजा ने घेरा उठा लिया। उसने बहुत अतिथ्यपूर्वक बादशाह को दुर्ग में बुलाया। बादशाह अपने उमरावों और दस-बीस योद्धाओं के साथ मन में कपट रखकर दुर्ग में आया। राजा ने उसकी बहुत आवभगत की। बादशाह ने कहा कि- ''अब तुम मेरे भाई हो, पद्मिनी दिखा दो, अब दुर्जनों को दुःख देने का समय निकल गया है।'' रत्नसेन ने पद्मिनी से कहा कि बादशाह ने तुमको बहन बनाया है, तुम अपने भाई को मुँह दिखा दो। पद्मिनी ने अपनी एक दासी को अपने जैसा श्रृंगार करवाकर बादशाह को उसका मुँह दिखा दिया। बादशाह उसे देखकर सिर के बल जमीन पर गिरा। राघव ने कहा कि- ''हे बादशाह! यह पद्मिनी नहीं है। तुम किसे देखकर गिर पड़े। पद्मिनी तो बहुत सुंदर है। लाख रुपए के पलंग पर आधे लाख की रजाई और आधे लाख के तकिये के साथ पद्मिनी शयन करती है। उसकी शय्या केशर, चंदन और कपूर से सुगंधित रहती है। रत्नसेन की चहेती चंद्रवदनी पद्मिनी से पद्म की गंध आती है।'' बादशाह ने राजा का हाथ पकड़कर कहा कि ''किसी और को दिखाकर तुम मेरे साथ कपट करते हो। मुझे पद्मिनी का मुँह दिखाओ।'' इसी समय पद्मिनी ने झरोखे की खिड़की से मुँह बाहर निकाला, जिसे देखकर वह नीचे गिरा। उसने खंभे का सहारा लेकर अपने को सँभाला। एक क्षण अपने को सँभालकर बादशाह ने कहा कि ''अब डेरे पर चलो। रत्नसेन भाई है, उसकी क्या सराहना करूँ।'' पहली पौली (दरवाज़ा) पर बादशाह रत्नसेन एक लाख और दूसरी पौली पर दस गाँव दिए। राजा को लोभ हो गया। वह बख्शीश लेते हुए बाहर आ गया और बादशाह के जाल में फँस गया। बादशाह ने दुर्ग से बाहर निकलते ही उसको बंदी बना लिया। दुर्ग का दरवाज़ा बंद कर लोग अंदर चले गए। दुर्ग में शोर मच गया कि कपट करके बादशाह राजा को ले गया है। (67-79)

बादशाह रोज़ राजा का मारता, उसको कोड़े लगाता और कहता कि पद्मिनी दो, तभी तुम्हे सुख मिलेगा। वह दुर्ग के नीचे लाकर राजा को डराता और लटकाकर रखता, जिससे लोग दुःखी होते। मार से राजा कायर हो गया। उसने कहा कि- ''मैं

पद्मावती दे देता हूँ। खवास भेजो, मुझे मत मारो।'' राजा ने दुर्ग में खवास भेजा और कहलवाया कि- ''यदि मेरे जीवन की आस है, तो पद्मिनी दे दो, एक क्षण का भी विलंब मत करो।'' रानी पद्मिनी ने राजा से कहलवाया कि ''प्रियतम अपने प्राण दे दो, लेकिन अपनी स्त्री मत दो। काल से कोई नहीं छूटता, इसलिए सिर देकर यश लेना चाहिए। अपने पर कलंक मत लगाओ और मेरा सतीत्व भी नष्ट मत करो।'' पद्मिनी पान लेकर बादल के पास गई और कहा कि ''मेरी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है। एक तुम्हारी ही आशा है।'' बारह वर्ष का बादल अभी चौगान खेल रहा था कि पद्मिनी पान ले आई। बादल ने पद्मिनी से कहा कि ''तुम गोरा के पास जाओ। मैं पान अपने सिर पर धारण करता हूँ। विश्वास रखो और कोई चिंता मत करो।'' जब पद्मिनी को आशा बँधी, तो वह निश्चिंत हुई और गोरा के पास आई। उसने गोरा से कहा कि ''स्वामी संकट में है, ऐसे में अब मित्रता निभाओ। मंत्रियों ने मंत्रणा की है कि बिना एक क्षण विलंब किए पद्मिनी देकर राजा को छुड़ाएँगे। अब मैं तुम्हारी शरण में आई हूँ, जो अच्छा लगे करो।'' गोरा ने बीड़ा उठाकर कहा कि बहिन, जाओ और घर पर निश्चिंत बैठो। (80-86)

बादल और गोरा ने बैठकर विचार किया कि बादशाह से कैसे लड़ें, उसके पास लशकर बहुत है। बादल ने कहा कि- ''पाँच सौ डोले बनाओ। एक-एक डोले में दो योद्धा बैठाकर उसको चार-चार योद्धाओं के कंधों पर रखेंगे। डोलों में हथियार रखकर उनके आगे घोड़े रखेंगे। तुर्कों को पास नहीं आने देना है। बादशाह को कहें कि हम पद्मिनी देने आ रहे हैं। रत्नसेन के बंधन काट देंगे। बादशाह की सेना को नष्ट करेंगे। पीठ नहीं दिखानी है और तलवार की मूठ को दृढ़ता से पकड़कर बादशाह के सिर पर प्रहार करना है।'' बादल की मंत्रणा सबको पसंद आई। सभी सामंतों ने भी कहा कि अब यही करना है। तत्काल सुथार बुलाकर डोले बनाए गए। उनको मखमली गिलाफ़ पहनाए गए। उनके अंदर योद्धाओं को बिठाकर उनको योद्धाओं के कंधों पर रखा गया। उनके भीतर हथियार, कवच आदि रखे गए। ऐराकी घोड़ों को सजाकर बादल ने मंत्रणा की और वकील और सामंत को बादशाह से मिलने भेजा। यह संदेश भेजा गया कि राजा आज आपको पद्मिनी देगा। यह जानकर सुल्तान बहुत प्रसन्न हुआ। उलाउद्दीन ने कहा कि वकील तुम शीघ्र पद्मिनी से लाओ और यह संदेश बादल को दे दो। बादशाह का संदेश मिलने पर बादल तैयार हुआ और सामंतों को समझाया कि किस तरह मार करनी है। उसने कहा कि डोलों से निकलते ही घोड़ों पर चढ़कर उनको आगे करो। नेजों से दुश्मन के सिर लाओ। जब नेजे समाप्त हो जाए, तो तलवार से शत्रु पर प्रहार करो और जब तलवारें टूट जाएँ, तो गदा उठाओ। जब गदाएँ टूटकर जमीन पर गिर जाए, तो कटार से आमने-सामने

लड़ो। हे सामतो! स्वामी के लिए इतना काम करो। (87-94)

जब बादल युद्ध के लिए चला, तो उसकी माता आई और कहने लगी कि- ''बाल्य वय में तुमने यह क्या किया? बादल तुम ही मेरा जीवन हो, मेरे जीवन में तेरे बिना अँधेरा है और मेरा जीवन तेरे बिना सूना और सुख विहीन है। तेरे बिना मुझे कुछ सूझता नहीं है और मेरी छाती फटी जा रही है।'' बादल ने यह सुनकर कहा कि- ''हे माता, तुम मुझे बालक क्यों कहती हो। मैं तुमसे रोकर रोटी नहीं माँगता। मैं बादशाह के सिर पर तलवार से प्रहार करूँ, तो मुझे शाबासी देना। सिंह और बाज कायर नहीं होते। ये बड़े जानवरों को मारकर एक क्षण में उठा लेते है। सिंह शावक को गर्भ से निकलते ही हाथियों का समूह दिखाई दिया, तो वह उनका सिर टूटने तक लड़ा। बादल ने आगे कहा कि माता, तुझे सौंगध है। मेरा साहस देखना। मैं बादशाह के साथ युद्ध करूँगा। योद्धाओं का मारकर स्वामी के बंधन काटूँगा। जो मेरा सिर जाए, तो कोई बात नहीं, उसे देकर मैं यश लूँगा। जैसे हनुमान ने राम का कार्य किया, एक क्षण में रावण को मार दिया, वैसे हाथियों को मारकर बादशाह को मारने के लिए तलवार चलाऊँगा। मैं बालक हूँ या नहीं, यह प्रमाण तो तब मिलेगा, जब मैं हथियों के समूह को मोड़ दूँगा, महावत को पछाड़ दूँगा, स्वामी के बंधन काट दूँगा, भाले के प्रहार पलट दूँगा, हाथी को मारकर बादशाह के सिर पर तलवार मारूँगा। हे माता! मैं तुझे लज्जित करने के लिए घोड़े की लगाम कभी पीछे नहीं मोड़ूँगा।'' माता ने कहा कि ''बादल, जैसा तुमने किया, वैसा कोई नहीं करता।'' माता ने आशीर्वाद दिया कि तेरी जय हो। (95-103)

माता ने वहाँ से जाकर बहू को भेजा और कहा कि मेरे रोकने से वह नहीं रुक रहा। अब तुम जाकर रोक लो। शृंगार करके नयी-नवेली स्त्री बादल के पास आई। उसने बादल से कहा कि- ''अभी तक तुमने मेरे साथ तो रमण नहीं किया, अभी तक तुमने सेज नहीं सजाई, मेरे नख क्षत नहीं किए और लड़ने चल हो। अभी तक तुमने मेरे स्तनों के प्रहार नहीं सहे, तो फिर तुम भालों के प्रहार कैसे सहोगे? युद्ध में तो नाल-गोले चलते हैं, सिर धड़ से अलग हो जाते हैं।'' बादल ने पत्नी से कहा कि- ''बादशाह की सेना को देखकर तुम यह राय मत बनाओ।'' बादल ने आगे कहा कि- ''ध्रुव चलने लग जाए, सूर्य पश्चिम में उगे, साधु अपने वचनों से मुकर जाए, पंगु पर्वत पर पहुँच जाए, बादल धरती पर आ जाएँ, समुद्र अपनी मर्यादा छोड़ दे, अर्जुन बाण चूक जाए और विधाता लिखना छोड़ दें, लेकिन बादल के वचन नहीं टलते। न मैं रण से भाग सकता हूँ, न ही पीठ दिखा सकता हूँ और न ही शत्रुदल से भयभीत हो सकता हूँ।'' बादल की पत्नी ने कहा कि- ''युद्ध में प्रवेश करते हुए समय तुम कायर मत होना। यदि ऐसा हुआ, तो लोग मुझे उलाहना

देंगे, कोई इसको अच्छा नहीं कहेगा। मर गए तो बहुत अच्छा और जीवित रहे तो राज्य मिलेगा। दोनों प्रकार से सर्वत्र यश ही फैलेगा। उसने बादल से कहा कि कायर के मांस को तो गिद्ध भी नहीं खाते। मुँह पर कलंक मत लगाना, इससे हमारी दुर्गति होगी।'' बादल ने पत्नी से कहा कि- ''मैं तुझे क्या दूँ। उसने अपने बाल काटकर कुछ पत्नी को दिए और कहा कि खेत रहूँ, तो इनके साथ सती हो जाना।'' (104-116)

डोले सजाए गए और उन पर सुगंधित छिड़काव किया गया, जिससे भ्रमर उन पर उड़ने लगे। शोभायुक्त पाँच सौ डोले गढ़ से नीचे उतरे। बादशाह को इनका रहस्य समझ में नहीं आया। गोरा और बादल, दोनों घोड़े पर सवार होकर आए और बादशाह से मिलकर उसको सलाम किया। यह जानकर कि गोरा-बादल पद्मिनी लेकर आए है, मीर इधर-उधर दोड़ने लगे। वे कहने लगे यह लज्जाकरक है और वे उदास हुए। बादशाह ने ढिंढोरा पिटवाया कि कोई उठकर डोला नहीं देखे। यदि किसी ने ऐसा किया, तो वह उसकी गर्दन काटकर उसका डेरा लूट लेगा। गोरा बादल फिर बादशाह के पास आए और उससे निवदेन किया कि आपका आदेश हो, तो रत्नसेन पद्मिनी से मिल ले। उन्होंने कहा कि हम वचन देते हैं कि रत्नसेन पद्मिनी से मिलकर आ जाएगा। बादशाह ने तदनुसार आदेश दे दिया। बादल वहाँ आया, जहाँ राजा बंदी था। उसने अपना सिर राजा के चरणों में रख दिया। राजा क्रोधित हुआ। उसने बादल से कहा कि- ''तुमने दुश्मनी निकाली। मेरी स्त्री को लाकर तुमने ख़राब काम किया।'' बादल हँसकर बोला कि- ''स्वामी! बालक पर कृपा कीजिए। यह पद्मिनी नहीं, केवल उसका रूप है। यह आपकी पत्नी नहीं है।'' बादल रत्नसेन को प्रसन्नतापूर्वक अपने साथ ले आया। वह उसे लेकर डोले में प्रविष्ट हुआ, जहाँ पहले से लुहार मौजूद था। तुरंत उसकी बेड़ियाँ काट दी गईं और उसको घोड़े पर सवार कर रवाना कर दिया गया। उसके क़िले में पहुँचते ही वाद्य बजे ओर डोलों से अपार योद्धा निकल पड़े। रणवाद्य बजने लगे, चारण-भाट विरुद गाने लगे। योद्धाओं के चित में उमंग और कायरों के चित खलबली मच गई। जंगी ढोल और शहनाई बजने लगी। नगाड़ों पर प्रहार होने लगा और ढाढ़ी सिंधु राग गाने लगे। बादशाह की सेना में शोर मच गया कि जो होना चाहिए था उससे अलग हुआ। पद्मिनी की जगह राजपूत योद्धा आ गए हैं। क्षत्रिय योद्धा अपने परिजनों- पुत्र पत्नी आदि को छोड़कर आए और भूतों की तरह भिड़ गए हैं। तीन हज़ार राजपूत योद्धा अफीम खाकर मरने-मारने पर उतारू हैं। कायर काँप रहे हैं और राम-राम कर रहे हैं। बादशाह हाथी सजाकर हथियारों सहित अंबाड़ी में बैठकर आया। गोरा-बादल के सिर पर फूलों का सेहरा था और वे केशर से सुगंधित केसरिया वस्त्र पहने हुए थे। (117-126)

युद्ध आरंभ हुआ। गोरा–बादल के अंग उल्लसित और सन्नद्ध थे। वे हाथ और कमर की तलवार से शत्रु को खंड–खंड कर अपनी भुजाओं की ताक़त दिखाते थे। शत्रुओं का कवच तोड़कर अपने दल में आ जाते थे। अपने स्वामी के लिए सामंत लड़ते थे और शत्रु का सिर काटकर लाते थे। गोरा जहाँ तलवार से प्रहार करता था, वहाँ वह दो धड़ कर डालता था। बावन योद्धाओं के बीच गोरा मारक चोट करने वाले तीर चलाता था। वह कोई प्रहार नहीं चूकता। उसके प्रहार से हाथी धराशायी हो जाते थे। गोरा जब बरछी चलाता था, तो यह नागिन की तरह उड़कर शत्रु को ख़त्म करती थी। यह पाखर और झूलों का फाड़ डालती थी। वह बरछी छोड़कर खुरासानी तलवार बिजली की तरह चलाता है और उससे मीरों के सिर क़लम कर देता है। तलवार छोड़कर जब वह गदा सँभालता था, तो उसके भारी प्रहार से शत्रु नष्ट होते थे। उससे वह हाथियों के कपाल चकनाचूर करता था। उसके प्रहार से शत्रु सामंतों को सँभलने का मौका नहीं मिलता। बड़े–बड़े मीर दाँतों में तिनका दबाकर उससे प्रार्थना करते थे कि हम मत मारो। एक मीर ने गोरा पर प्रहार किया, जिससे वह धराशायी हो गया। बादल गोरा को पुकारता हुआ इसी समय वहाँ पहुँचा। बादल तुरंत प्रहार करके अपने दल में लौट आता था। वह नेजा हाथ में लेकर शत्रुओं के सिर काटकर लाता था। उसके आतंक से हाथी भाग गए। बादल इस तरह से लड़ा कि असंख्य मुग़ल मारे गए। घोड़ों के खुरों से इतनी धूल उड़ी कि उसमें सूर्य छिप गए। भीषण युद्ध हुआ। योद्धाओं के सिरे टूटे। युद्ध में गिरकर मरनेवालों के कलेजे बाहर आ गए। बहुत राजपूत मरे। तुर्क इतने मरे कि उनका पार ही नहीं है। खून के नाले बहने लगे, जिनकी तीनों लोकों में चर्चा है। उलाउद्दीन वहाँ से भाग गया। अप्सराएँ मंगलगीत गा रही थीं। युद्ध जीतकर और रत्नसेन को छुड़ाकर बादल घर आया। पद्मिनी ने बादल की आरती उतारी। मोतियों का थाली भरकर उसने बादल पर वारा। पद्मिनी ने उसको बहुत आशीर्वाद दिया कि– ''तू करोड़ों वर्षों तक जिए। तू बाँका शूरवीर है। तेरे गुण ईश्वर गाता है। मैं तुझ पर बलिहारी जाती हूँ। तुमने मेरे पति को मुझसे मिलवाया। गोरा भीषण और बादल विकट है। वे माताएँ धन्य हैं, जिन्होंने इनको जन्म दिया।'' (127–138)

पत्नी ने बादल से कहा कि– ''मैं तुम पर बलिहारी जाती हूँ कि तुमने हाथी के दाँतों पर पाँव रखकर बादशाह पर तलवार चलाई।'' उसने कहा कि– ''तुम धन्य हो, तुमने अपने वचन का निर्वाह किया। देवता भी तुम्हारी जयकार करते हैं।'' काकी ने बादल से कहा कि– ''मुझे सुनाओ की गोरा भिड़कर मरा या जूझकर।'' बादल ने कहा कि गोरा पर्वत के समान धैर्यवान था। वह युद्धभूमि से भागा नहीं, लड़ते रहा। उसने तीरों के प्रहारों से मीरों का मारा। उन्होंने मनुष्यों और घोड़ों को मारा और

युद्धभूमि में सिंह की तरह गरजा। गोरा की पत्नी ने कहा कि अच्छा हुआ, जो वह लड़कर मरा। कोई कलंक नहीं लगा। संसार उसका यश गाएगा। अब युद्धभूमि में जाकर उसको ढूँढो। पत्नी ने सभी लोगों के साथ युद्धभूमि में उसका सिर ढूँढ़ा, लेकिन नहीं मिला। तभी आकाशवाणी हुई कि गिरते ही गोरा का सिर गिद्ध ने उठाया, गिद्ध के मुँह से छूटा, तो देवांगाना ने ले लिया, देवांगना से छूटा, तो गंगा में गिरा और गंगा में से उठाकर भगवान शंकर ने उसे अपनी माला में पिरो लिया। इस तरह अब यह पार्वती के पति शंकर के गले में शोभायमान है। परकाज के लिए जूझने वाला गोरा इस तरह शिवपुर में चला गया। गोरा की पत्नी यह सुनकर अपने प्रिय की पगड़ी के साथ आनंदपूर्वक सती हुई और दोनों शिवपुर में साथ हो गए।

गोरा बादल की यह कथा गुरु और सरस्वती की कृपा से कवि जन के मन में जगह बनाकर इस तरह संपूर्ण हुई। फाल्गुन मास की पूर्णिमा को सौलह सौ अस्सी के समय वीर और शृंगार रस की यह कथा कवि जटमल ने कही है। (139–149)

मोछ गाँव की प्रजा निश्चिंत और सुखी है। यहाँ घर–घर आनंद होता है और शोक कहीं नहीं है। यहाँ का राजा अलिख़ान न्याजी है, जो नासिर ख़ान का बेटा है। वह सभी पठान सरदारों के बीच इस तरह है जैसे नक्षत्रों की बीच चंद्रमा है। धर्मसिंह के (पुत्र) नाहर जाति के जटमल नाहर ने संबला गाँव में यह कथा बनाकर कही है। कथा के कहने से आनंद और सुनने से सभी सुख होते हैं। गुणी जनो! जटमल उत्साहित है और विघ्न नहीं होगा। (10–153)

अध्याय – 5

लब्धोदय कृत 'पद्मिनी चरित्र चौपई'

रचना समयः 1649 ई.

पद्मिनी चरित्र चौपई जैन यति लब्धोदय की 1649 ई. की रचना है। *पद्मिनी चरित्र चौपई* लब्धोदय की पहली रचना है, जिसमें उसने गोरा-बादल और पद्मिनी की पारंपरिक कथा को गेय काव्य में ढाला है। यह एक विशेष प्रकार की गेय रचना है- गायन के लिए इसमें देशी राग-रागिनियों का उपयोग हुआ है। इसमें 49 ढाल 816 गाथाएँ हैं। ढाल और गाथा जैन साहित्य में प्रयुक्त होने वाले गेय काव्यरूप हैं। लब्धोदय की *चौपई* की पांडुलिपियाँ उदयपुर और भींडर के संग्रहालयों में उपलब्ध हैं। इसकी सबसे प्राचीन 1696 ई. की एक पांडुलिपि राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर में संग्रहीत है। 1766 ई. की इसकी एक और पांडुलिपि भी यहीं है। इसकी 1704 और 1808 ई की दो पांडुलिपियाँ माणिक्य ग्रंथ भंडार, भींडर (उदयपुर के पास स्थित एक क़स्बा) में संग्रहीत हैं। इनके अतिरिक्त अभय जैन ग्रंथागार बीकानेर 1704 ई,. ओरियंटल इंस्टिट्यूट, बड़ौदा में 1701 ई. एवं जैन भवन, कोलकाता में 1766 ई. की प्रतियाँ उपलब्ध हैं। लब्धोदय ने हेमरतन की कथा के मोड-पडावों में कोई ख़ास रद्दोबदल नहीं किया। अलबत्ता लब्धोदय ने गेय रूप देने के साथ इसकी कथा को अपने समय के प्रसिद्ध नीति कथनों और सूक्तियों के समावेश से विस्तृत भी किया है। रत्नसेन की पहली पत्नी का नाम उसके अनुसार प्रभावती था। पद्मिनी उलाउद्दीन को सौंपने के लिए लब्धोदय ने प्रभावती के पुत्र को उत्तरदायी माना है। लब्धोदय की रत्नसेन की सिंघल प्रस्थान कथा में अतिरंजना ज़्यादा है।

चौपई का सर्वप्रथम प्रकाशन भँवरलाल नाहटा के संपादन में 1960 ई. में सादूल राजस्थानी इंस्टीट्यूट, बीकानेर से हुआ, जिसमें उन्होंने संपादन के लिए तीन प्रतियों- अभय जैन ग्रंथागार बीकानेर की 1704 ई., ओरियंटल इंस्टिट्यूट, बड़ौदा की 1701

ई. एवं जैन भवन, कोलकाता की 1766 ई. का प्रयोग किया है। अभय जैन ग्रंथागार की प्रति में 59-60 और कोलकाता की प्रति में 48 पृष्ठ हैं। प्रतियों के पाठ में बहुत वैविध्य नहीं है। लिपिकर्ताओं से शब्दों और वाक्यों में कुछ फेर-बदल हुआ है। यह रचना हेमरतन के *चउपई* से अलग तीन खंडों में विभक्त है और अंतिम खंड के साथ इसमें पहले और दूसरे खंड के बाद भी रचना प्रशस्ति दी गई है। नाहटा ने लब्धोदय की *चौपई* के साथ नरोत्तम स्वामी के संग्रह में उपलब्ध अज्ञात कवि की रचना *गोरा-बादल कवित्त* और जटमल नाहर की *गोरा-बादल कथा* का भी प्रकाशन कर दिया। यहाँ कथा सार के लिए भँवरलाल नाहटा की संपादित प्रति को आधार बनाया गया है।

'पद्मिनी चरित्र चौपई' मूल

प्रथम खण्डः मंगलाचरण

॥दोहा॥

श्री आदीसर प्रथम जिन, जगपति ज्योति सरूप।
निरभय पद वासी नमुं, अकल अनंत अनूप॥1॥
चरण कमल चितस्युं नमुं, चउवीसम जिणचंद।
सुखदायक सेवक भणी, साचो सुरतरु कंद॥2॥
सुप्रसन सामणि सारदा, होयो मात हजूर।
बुद्धि दियों मुझ नै बहुत, प्रगट वचन पंडूर॥3॥
ज्ञाता दाता दान धन, 'ज्ञानराज' गुरुराज।
तास प्रसाद थकी कहुं, सती चरित सिरताज॥4॥

कथा प्रसंग

गौरा बादल अति सगुण सूर वीर सिरदार।
चित्रकूट कीधो चरित, स्वामीधर्म साधार॥5॥
सरस कथा नवरस सहित, वीर श्रृंगार विशेष।
कहस्युं कवित कल्लोल स्युं, पूरव कथा संपेख॥6॥
पदमणी पाल्यो शीलव्रत, बादल गौरा वीर।
शील वीर गावत सदा, खांड मिली घृत खीर॥7॥
(ढाल (1) - चउपई नी, राग रामगिरी)

चित्तौड़ वर्णन

देश बड़ो 'मेवाड़' दयाल, प्रारथियां दुखियां प्रतिपाल।
'चित्रकूट' तिहां चावो अछै, पहोवी गढ़ बीजा तसु पछै॥1॥

गावै मीठे सुर गंधर्व, सुरनर किन्नर देखे सर्व।
तापस तीर्थ तिहां अति कह्या, राम जिहां वनवासै रह्या॥2॥
ऊंचो गढ लागो आकास, हर भूल्यो जाण्यो कविलास।
हर राणी तब कीधो हास, हिम गढ चढ़ीयो हेमाचल पास॥3॥
वले अति बांको छै गढ घणो, ऊंची पोलि अनैं सोहामणो।
कोसीसा जे ऊंचा कीया, गयण आलंबन थांभा दिया॥4॥
बहैं नदी सीप्रा विस्तार, कूप सरोवर वावि अपार।
गौमुखकुंड प्रमुख बहुकुंड, पाणी जास पीइं षट खंड॥5॥
संचा वस्त अनेको तणा, का न रहइ मननी कामिणा।
ऊंचा तोरण महल अनेक, एक-एक थी अघिका एक॥6॥
सोवन दण्ड धजा करि सोहता, मनड़उ भविक तणा मोहता।
दीपै तिहां जिन शिव देहरा, मोटा सिहर सरद मेहरा॥7॥
वारू चउरासी बाजार, हुँसी बैठा हारो हार।
राज महल अति रलीयामणा, पुण्य बिना ते नहिं पावणा॥8॥
च्यारे वर्ण वसइ अति चंग, पवन अढारें मन नें रंग।
माणिकचउक न लहैं माग, वन वाड़ी फल फूल्या बाग॥9॥
इन्द्रपुरी जाणे अवतरी, कोडीधज लोके करि भरी।
नगर वर्णनो नावे पार, देव रचई ए गढ सार॥10॥
चतुर सुणयो देइ नइ चित्त, गुर मुख ढाल अरथ सुपवित्त।
'लब्धोदय' कहै पहली ढाल, आयइ सुणता अछे रसाल॥11॥
(सर्व गाथा-18)

राजा वर्णन

॥दोहा॥
सूर वीर अति साहसी, सब राई मइ सिरमौर।
'रतनसेन' राणो तिहां, जा सम भूप न और॥1॥
जाकइ तेज प्रताप थई, दुरजन भागे सब दूर।
अंधकार कैसे रहइ, उदइ होइ जीहां सूर॥2॥
अविचल आज्ञा अवनि परि, न्याय निपुण निरभीक।
अरिगज भंजन केसरी, राखे खत्रीवट लीक॥3॥
मानी मरदाना वली, दरबारइं दोय लाख।
सुभट खड़ा सेवा करइं, सुरपति वदइ ज्युं साख॥4॥
हय गय रथ पायक हसम, करि न सकें कोउ मान।
रयण द्युस ठाढइ रहे, सनमुख सब राय राण॥5॥

पटरानी एवं राजकुमार वर्णन

पटराणी 'परभावती', रूपे रम्भ समान।
देखत सुरनर किन्नरी, अइसी नारि न आन॥6॥
चंदवदन गजराज गति, पनग वेणि मृग नयण।
कटि लचकनी कुच भार तइं, रति अपछर हइं अयन॥7॥
(ढाल (2) - योगिना रा गीतनी राग-मल्हार)
राणी अवर राजा तणें जी, रूप निधान अनेक।
पिण मनड़ो परभावती जी, रंज्यो करीय विवेक। राजेसर॥1॥
चतुराई चित दीध, राजेसर, मन मोती गुण वींध॥ रा. च.॥
सतर भक्ष भोजन समें जी, नित-नित नवली भांति। रा.
व्यंजन रूड़ी विध करइजी, खातां उपजै खांति। रा.॥2॥च.॥
रूपवंत नई रागणी जी, गुणवंती गज गेलि।रा.॥
मन राजा रो मोहीयो जी, सोक्यां सहुइ ठेलि। रा.॥3॥च.॥
भोजन तो परभावती जी, हाथ परुसइ हूँस। रा.।
बीजी राणी वारणै जी, सहजें जावा सुंस। रा.॥4॥ च.॥
मांहो मांही मोहस्युं जी, रति सुख माणइ राय। स.।
खिण एक विरह नवी खमइ जी, दीठां दोलति थाय। रा.॥5॥च.॥
पालइ राम तणी परइ जी, न्यायई राज नरेस। रा.
आप भुजा अरीअण हण्या जी, सरद कीया सहुदेस॥6॥च.॥
जनम्यो पुत्र सहाजसी जी, प्रतापी पुण्यवंत। रा.
'वीरभाण' वखते बड़ो जी, दिन दिन अधिक दीपंत॥7॥च.॥

भोजन प्रसंग

एकण दिन भोजन समइं जी, दासी बोलैं राज। रा.
पीउ पधारो भोजन समइं जी, ठाढो होवै नाज।रा.॥8॥च.॥
सिंहासन सोवन तणो जी, आवै बैठा राज।रा.।
रतन जड़ित थाली बड़ी जी, कनक कचोला बाज रा.॥9॥च.॥
रुड़ी परइं परुसई रसवती जी, राजा जीमइ राग।रा.।
खाटा मीठा चरपरा जी, सखर वणाया साग।रा.॥10॥च.॥
कदली दल हाथैं करी जी, ढोले सीतल वाय।रा.॥
विचि विचि मीठी वातड़ी जी, जीमतां घणो जीमाय॥11॥च.॥
मोसा दोसा मसकरी जी, हासै वीनती तेह।रा.।
कहिवो हुवे ते सहु कहई जी, भोजन अवसर जेह॥12॥च.॥

जीमतां रूड़ी जुगति स्युं जी, कहि राजा किण हेत।रा.।
स्वाद रहित सब रसवती जी, कां न करो चित चेत॥13॥च.॥
आजकालिए रसवती जी, निपट करो निसवाद।रा.।
कहि चतुराइ किहां गइ जी, के पकस्यो परमाद॥14॥च.॥
तब तटकी बोली तिसइं जी, राणी मन धरि रोस।रा.।
राणी आणो कां नवी जी, द्यो मति मुझनै दोस॥15॥च.॥
म्हे केलवि जाणां नहीं जी, किसो अ करीजैं वाद।रा.।
पदमणि का परणो नवी जी, जिम भोजन हुवै स्वाद॥16॥च.॥
राजा गुरु स्त्री आगि नो जी, नवि कीजैं आसंग।रा.
'लब्धोदय' इण परि कहें जी, बीजी ढाल सुरंग॥17॥च.॥ (सर्व गाथा-42)

पद्मिनी पाणिग्रहण संकल्प

॥दोहा॥
रीसाणो ऊठ्यो तुरत, तजि भोजन तिण वार।
राणो तो हुँ रतनसी, परणुं पदमणि नारि॥1॥
मोसा तो बोल्या मुनें, जई में राख्यो मान।
हिवें परणुं तरुणी पदमणी, गालुं तुज्झ गुमान॥2॥
मूरिख तें मुझ नें गण्यो, वचन कह्यो अविचार।
जो पदमणि हाथे जीमस्युं, तो आयुं तुझ बार॥3॥
मान गहेली माननी, विरुअउ बोल्यो वयण।
विण आदर न रहें कदे, सिंह सूर ने सयण॥4॥
॥गाहा॥
जणणी जण बंधू, भजा गेह धणं च धन्नं च।
अवि माणया पुरिसा देस दूरेण छंडंति॥5॥
॥दोहा॥
कीधी परतज्ञा इसी, सन सेती महाराय।
पदमणि परणुं तो घरि रहुं, नहिं तो गिरि वनराय॥ 6॥

सिंघल द्वीप प्रस्थान

(ढाल (3) - राग-मारू केदारी, चाल करतासुं तो प्रीति सहुँ हूँसी करै)
इम चित विमासी राय, अश्व दोय घन भर्‌या रे। अ.
साथें एक खवास, छाना नीसर्‌या रे। छा.॥2॥
छल करि दोन्युं असवार कि, चाकर ने धणी रे। चा.
जाता नवि जाणे कोइ कि, गया ते भूंय घणी रे॥ भू.॥2॥

स्वामी कहूँ कारिज साच कि, सेवक इम भणे रे। से.
अणजाण्यां आंधि न सेठ कि, दोड्यां किम वणे रे। दो. ॥3 ॥
विण गाम किंहा थी सीम कि, मेह विण वादलइ रे। मे.
ऊखर नवि ऊगै अन्न कि, न खेती विण हलइ रे। न. ॥4 ॥
तिण हेतइं भाखो मुझ कि, गुझ हिरदै तणो रे। गु.
कीजै तसु उपरि काज कि, विचारी आपणो रे। वि. ॥5 ॥
तब बोल्यो राजा एम कि, परणु पदमणी रे। प.
आदरि करि करिहु उपाय कि, बात कहुँ सी घणी रे। बा. ॥6 ॥
बोलें सेवक धन्न मो पास कि, असंख्य गाने घणो रे। अ.
पिण नवि जाणुगृह गाम कि, ठाम पदमणि तणो रे। ठा. ॥7 ॥
थानिक जाणे विण मारग कि, कह्यो बूझयां किण रे। क.।
तरु तलि लीधो विश्राम कि, ते बेहु जणे रे। ते॥8 ॥
तिण बेला पंथी एक कि, भूख त्रिस भेदीयउ रे। भू.
विण अमले गहिलें देह कि, पंथ अति देखियउ रे। पं. ॥9 ॥
अटवी मांहि माणस एक कि, जोतां नवि जुड़्यो रे। जो.
तदि देख्यो राजा तेण कि, पगि आवी पड़्यो रे। प. ॥1. ॥
कीधा सीतल उपचार कि, अमल पाणी दीयो रे। अ.
भोजन मेवा बहु भांति कि, राय संतोषीयो रे। रा. ॥11 ॥
पंथीक नै कोतिक बात कि, राय पूछें वली रे। रा.
देख्यो ते पदमणी देश कि, किंहा हि सांभली रे। कि. ॥12 ॥
सुणि राजन सिंघलद्वीप कि, दक्षिण दिशि अछै रे। द.
आडो बहैं जलधि अथाह कि, पार जेहनो न छ रे। पा. ॥13 ॥
तिहां पदमणि नारि अनेक कि, रूपें अपछरी रे। रू.
सुणि राजा देइ कान कि, सीख तिण सुं करी रे। सी. ॥14 ॥
मनिं आणिंद्यो महाराय कि, दीप सिंघल भणी रे। दी.
चालविया चपल तुरंग कि, पवन थी गति घणी रे। प. ॥15 ॥
लांघ्या गिर नगर निवाण कि, सूर अति साहसी रे। सू.
दोन्यु आया दरिया तीर कि, मन मांहि अति खुशी रे म. ॥16 ॥
जगि पुण्य सहाइ जास कि, तास पूजें मन रली रे। ता.
मुनि 'लब्धोदय' कहै एमकि, को न सके कली रे। को. ॥17 ॥

समुद्र वर्णन

॥दोहा॥

जल भरीयो दरीयो घणो, उछलता उद्धांन।

कल्लोले कल्लोले थी, उदक वध्यो असमान ॥1 ॥
मच्छ कच्छ मांहि घणा, न सकें जाय जीहाज।
न चले जोरो नीरस्युं, कीज्ये किसो इलाज ॥2 ॥
चिंता मन भूपति चतुर, स्युं कीजै जगदीस।
वेलि महा बीहामणी, पूजें केम जगीस ॥3 ॥
पदमणि स्युं पाणीग्रहण, विचि वारिधि अति क्रूर।
ऊखाणो साचो हुओ, बाघ नदी जल पूर ॥4 ॥
गुड़ मीठो ऊंडी नदी, आय मिल्यो ए न्याय।
हिकमति सी बीजी हिवें, कीजें कोउ उपाय ॥5 ॥

योगी मिलन

जावइं आघो जेहवें, सेवक लीधो साथ।
जोग पंथ साधइ जुगति, निरख्यो अउघड़नाथ ॥6 ॥
काने मुद्रा कनक की, आसण चीता चर्म।
लगाय विभूति तप जप करें, ते साधे शिव धर्म ॥7 ॥
(ढाल (4) - सिहरा सिहर मधुपुरी रे, कुमरां नंदकुमार रे एदेशी राग-कालहरो)
सिध साधक योगी भणी रे, जाच कीयो आदेश रे।
बार बार वीनति करी रे, लागो पाय नरेश रे॥1 ॥
वाल्हेसर सामी, मानि न तु अंतरयामी,
मानि नें शिवगति मामी, बीनतड़ी मुझ मानो वा॥ आंकणी॥
मुझ मनि सिंघलदीप नी रे, पदमणि देखण चाह।
तुझ परसादे सह हस्य रे, दिप मुझ सी परबाह रे वा॥ 2॥
विविध विनय बचने करी रे, सुप्रसन्न हुओ सांम॥
आँखि उघाड़ी देखीयो रे, बोलायो के नाम रे। वा. ॥3 ॥
भूपति मन अचारिज थयो रे, फिम जाण्यो मुझनाम।
ए ज्ञानी आयस आई रे, पूरवस्यै मुझ होम रे।बा. ॥4 ॥
जोगी जपे राणजी रे, तु आयो मुझः थांन।
कारिज थारो हुँ करुं रे, जो गुरु लागो कान रे।॥वा. ॥5 ॥
ईम कही सांही समरणी रे, हाथे बेऊ असबार रे।
आयस अंबर ऊडीयो रे, लागी बार न लिगार रे।वा. ॥6 ॥

सिंघल द्वीप प्रवेश

सिंघलद्वीपे मूकि नें रे, आयस हूअउ अलोप रे।
राजा रो मन रंजीयो रे, देख्यो नगर, अनोप रे ॥ बा. ॥7 ॥

पद्मिनी दर्शन

सोबन महल सोहामणा रे, इन्द्रपुरी अवतार।
रतनजड़ित गोखें भली रे, बैठी राजकुमार रे ।।वा. ।8 ।।
साथें सखी रे झूलरें रे, गज गति चालें गेल।
चतुरां मनड़ो मोहती रे, साची मोहन वेलि रे ।।वा. ।।9 ।।
थानिक थानिक नव नवा रे, नाटिक निरखें राय।।
हय गय हाट पटण घणा रे, जोतां आघा जायरे ।।वा ।।1. ।।

ढंढ़ेरा श्रवण

नगर मध्य आया तिसें रे, ढंढेरा नो ढोल।
राजा बाजा सांभली रे, बोलैं एह्वा बोल रे।वा. ।।11 ।।
पाह छवी नई पूछीयउ रे, ढोल बाजे किण काज।
तब बोल्या चाकर तिके रे, बात सुणो महाराज रे।वा. ।12 ।।
सिंघलद्वीप नो राजीयो रे, 'सिंघलसिंघ' समान।
तास बहिन पदमणी रे, रूपें रंभ समान रे।वा. ।।13 ।।
जोवन लहस्यां जाय छे रे, परणें नहिं ते बाल।
परतिज्ञा जे पूरवे रे. तासु ठवें वरमाल रे।।वा. ।।14 ।।
जीपें बांधव नई जिकोरे, ते परणै भरतार।
तिन कारण मुझ राजीयोरे, पडह दीयो तिण बार रे ।बा. ।।15 ।।
'रतनसेन' राजा कहै रे, हुं जीपूं निरधार।
मल्लाखाड़ें रण मुखें रे, रामति कउण प्रकार रे।।बा. ।।16 ।।
राजा मन आणंदीयो रे, रामति जीपें एह।
सुणि पंथी शेत्रुंजनी रे रामति जीपें जेह रे।बा. ।।17 ।।
वाचा साची आपस्युं रे, आपुँ अति सनेह।
अर्द्ध राज भंडार नो रे, भग्नीपति हुइ जेह रे।।बा. ।।18 ।।
राजा मन आणंदियो रे, रामति जीपें एह।
'लब्धोदय' कहैं सदा रे, पुण्य सहाय तेह रे।।बा. ।।19 ।।

क्रीड़ा विजय

।।दोहा ।।
रतनसेन राजा कहें, पूछो सिंघल भूप।
कओल थकी चूके नहिं, कीजें खेल अनूप।।1 ।।
सेवक जाइ विनम्यो, हरख्यो सिंघल राय।
बोलावी बहु मानसुं, बैइठण दीधौ ताय।।2 ।।

रामति रमवा रंग स्यूं, बैठा बेऊं आय।
जाणै सूर अनें ससी, मिलिया एकण ठाय॥3॥
पासे बैठी पदमणी, कोमल कंचन काय।
राणो रूड़ी विधि रमें, तिम तिम आवै दाय॥4॥
ए छै कोई राजवी, रूपवंत रति राज।
जो जीपें किम ही करी, तू तोठो महाराज॥5॥
(ढाल (5)- ढुंढणीया री मेवाड़ी देशी मेवाड़ि देशे प्रसिद्धास्ति)
रमतां दे सखि रमतां रूड़ी रीत,
रसीयो दे सखि रसियो पदमणि मन वस्यो जी।
जीतो हे सखि जीतो हे राणो जोध,
सिंघल हे सरली सिंघल हास्यो मन उलस्यो जी॥1॥
॥दोहा॥
पान पदारथ सुघड़ नर, अण तोल्या विकाय।
जिम-जिम पर भूयें संचरे, (तिम) तिम मोल मुहुंगा थाय॥1॥
हंसा ने सरवर, घणा, कुसुम घणा भमरांह।
सुगुणा नें सज्जन घणा, देश विदेश गयांह॥ 2॥

पद्मिनी विवाह

(ढाल तेहिज)
रंगे हे सखि यो घालै वरमाल,
घालै हे सखि घालै हे जयमुख उचरें जी।
सिंघल हे सखि सिंघल भूप सनेह,
रूड़ी हे सखि रुड़ी हे साहमणि करें जी।2।
बहिनी हे सखि बहिनी हे पद्मणि विवाह,
कीधो हे सखि कीधो लीधो जस घणो जी॥
आधो हे सखि आधो है देस भंडार,
दीधो हे सखि दीधे कओल सुहामणोजी॥3॥
दासी हे सखि दासी हे दोय हजार,
रूपे हे सखि रूपे हे रति रम्भा वणी जी।
हाथी हे सखि हाथी हे हेवर हेम,
परिघल हे सखि परिघल द्यैं पहिरावणी जी।4।,
राणी हे सखि राणी हे अति हे सरूप,
एहवी हे सखि एहवी नारि म को अछै जी॥

भमरा हे सखि भमरा भमइं अनन्त,
        नारी हे सखि नारि हे सहु तिण पछै जी ॥5 ॥
परिघल हे सखि परिघल महकै पूर,
        वासे हे सखि वासें हे भमरा चमकीया जी।
माणस हे सखि माणस केही मात,
        हींसे हे सखि हींसे हे देव तणा हिया जी ॥6 ॥
राणो हे सखि राणो हे अति रंढाल,
        घरणी हे सखि घरणी मनहरणी वरी जी ॥
मननी हे सखि मननी हे पूगी आस,
        सफली हे सखि सफली परतंग्या करीजी ॥7 ॥
दिन दिन हे सखि दिन दिन नव नव भोग,
        पूरें हे सखि पूरें हे सिंघल सुख सहु जी।
रलीया हे सखि रलिया दिन में रात,
        रहता हे सखि रहता हे दिवस बहू जी ॥8 ॥
अवसर हे सखि अवसर हे पामी राय
        मांगे हे सखि मांगे घर नी सीखड़ी जी।
वीनती हे सखि वीनती हे तुम्ह स्युं एह,
        मां सुं हे सखी मांसुं हे मति करयो अड़ी जी ॥9 ॥
राजा हे सखी राजा हे सिंघल नाम,
        राणी हे सखि राणी हे पहुंचावण भणी जी।
साथें हे सखी साथे सैन्य अपार,
        आवें हे सखि आवें हे तटि दरिया तणैं जी ॥10 ॥
पूर्यां हे सखी पूर्या हे सथ्थल जीहाज,
        बैंठा हे सखी बैंठा दोन्युं राजा रंगस्युजी।
पुहुँच्या हे सखी पहुँच्या हें वारिधि पार,
        सेना हे सखी सेना हे घणी चतुरंग स्युंजी ॥11 ॥
तंबू हे सखी तंबू हे दरीया तीर,
        खांच्या हे सखि खांच्या हे दल बादल भला जी।
महीमांनी हे सखी महीमांनी हे घणे हेत,
        मांडया हे सखी मांड्या हे भोजन भला जी ॥12 ॥
मांहो मांहिं हे सखी मांहो मांहि हे रंग,
        गाढा हे सखि गाढा सुख दोन्युं सगा जी।

चलीयो हे सखी चलीयो हे सिंघल भूप,
पुंहुंचावी हे सखी पहुंचावी हे दरिया लगे जी॥13॥
जाणी हे सखी जाणी हे राणा जाति,
हरख्यो हे सखी हरख्यो हे सिंघलपति सही जी।
सीधा हे सखि सीधा हे वंछित काज,
पद्मणी हे सखि पद्मणी हे मन में गहगही जी॥14॥
पुण्यें हे सखी पून्ये हे सघला सुख,
रन मइं हे सखि रन में हे रंग लीला लहै जी।
पामें हे सखी पामें हे नव निधि सुख,
मुनिवर हे सखी मुनिवर हे लब्धोदय कहै जी॥15॥

परवर्ती चित्तौड़ प्रसंग

॥दोहा॥
बात सुणो हिव पाछली, राजा नी मन रंग।
छानो छटक्यो भूपती, कोई न लीधो संग॥1॥
राजा विण सोभे नहीं, राज सभा ने रात।
सोझो गढ सारैं कीयो, पिण नवी जाणी बात॥2॥
जाय पूछ्यो महल में, राणी भाख्यो साच।
पदमणि परणेवा सही, चाल्यो पालण वाच॥3॥
सभा मांहि बैठो सकज, वीरभाण बड़ वीर।
कूड़ी बातज केलवी, पाले राज सधीर॥4॥
लोकां आगें इम कहै, मांहि बैठा जाप।
जपें प्रथवीपति जेहथो, पहवी वधइं प्रताप॥5॥
(ढाल (6) - ता भव बंधण थी छोडि हो नेमीसर जी, ए देसी)
इम पालता राज हो राजेसर जी,
बउल्या षट खंड मास उपर वलि दिन घणा।
संकाणा मन मांहि हो राजेसर जी,
सहु कोई सेवक राणा तणा जी॥1॥
बाहिर नव-नव खेल हो रा. राति दिवस करतो रहतो खड़ो जी।
मुंहल मूल न देइ हो रा. मार्‍यो होइं रखे राजा बड़ो जी॥2॥

चित्तौड़ आगमन एवं उत्सव

करता एहवी बात हो रा. राजा आयो रतन सुहामणो जी।
हेंवर दोय हजार हा रा. गेंवर दोय सहस गाजे घणा जी॥3॥

पालखी परधान हो रा. दोय हजार सहेली सुंदरी जी।
पटराणी ता बीच हो रा. सोवन कलसे पालखी करी जी॥4॥
मदमाता मातंग हो रा. हींसे हय पायक बल अति घणाजी।
आया ते चित्रकोट ही रा. शूरा पूरा सुभट सुहामणा जी॥5॥
नेजा कुहक बाण हो रा. वाजे बाजा पंच शबद भला जी।
सूणीय नासें शत्रु हो रा. रजि ऊड़ी रवि छायो बादला जी॥6॥
परदल आया जाणि हो रा. कोलाहल हलचल हुई अति घणीजी।
चित चमक्यो वीरभाण हो रा. धाया शूर सुभट जूझण भणी नी॥7॥
तेहवें नृप नउ दूत हो रा. कागल लेई राजमहलें गयो जी।
वांची सगली बात हो राजेसर जी गढपति आयो गढ आणंद थयो जी॥8॥
बोलावी कोटवाल हो रा. बुहारी जल छांट्या वली जी।
फूल अबीर बिछाय होरा. सिणगार्या बाजार हो सोभाभलीजी॥9॥
तोरण बांध्या बार हो रा. पोलि आरीसा सूरीज जलहलें जी।
बाजे गुहीर नीसाण हो रा. घरि-घरि ऊँची गूढी ऊछलेजी॥10॥
सोवन साखित सार हो रा. झूलमती चाले आगे हीसता जी॥
सीसें तेल सिंदुर हो रा. गयवर जाणे परबत दीसताजी॥11॥
सूहव करि सिणगार हो रा. पूरण कलस ले आवे कामनी जी।
मलपति गावे गीत हो रा. धन दिवस आयो अम्ह गढ़ धणी जी॥12॥
सोवन चउक पुराय हो राजेसरजी, मोतीयां वधावे राय राणी भणी जी॥
जीवो कोड़ि वरीस हो राजेसर जी, गज गामनि असीस दीइ घणी जी॥13॥
पाए लागे दोड़ि हो रा. कुमर सकल सेवक साथें करी जी।
बात करै कुसलात हो रा. राजा प्रजा सगली राज रीजी॥14॥
गज चढ़े ढलकती ढाल हो रा. पाउ पधास्या राजा गढ़ ऊपरेंजी।
जग हूवो जसवास हो राजेसर जी, धन राजा राणी जगि उचरैं जी॥15॥
छठी ढाल रसाल हो रा. सामहेलें घरि आयो राजियो जी।
'ज्ञानराज' गणि सीस हो राजेसर जी, मुनि 'लालचंद' कहै हरख्यो हीयो जी॥16॥
॥दोहा॥
राणौ आयो रतनसी, लोक सहू आणंद।
महिलां पउधारै तरै, मेट्यौ सगलौ दंद॥1॥
जाइ मिलिया परभावती, म्हे पाली बोली वाच।
अब थां सुं ऊरण हुया, पदमणी आणी साच॥2॥
(ढाल (7)- रागधन्यासी, 1. जाइरे जीयरा निकसि के एहनी देसी,

2. बात म काढ़ो व्रत तणी ए देशी)
मोटा महेंल मनोहरू, पदमणी वासा जोगो रे।
विचरै साथ सहेलीयां, भोगवती सुख भोगो रे॥
मोटा महल मनोहरु ।आंकणी।
रतनसेन राणो गयो, पटराणी ने पासै रे।
परणे आया पदमणी, हिवै दीज्यो सबासो रे॥2॥मो.॥
वचन तुम्हारो मैं कियो, अमनें केहो दोसो रे।
स्वाद करी जीमस्यां हिवै, करस्यां केहो सोसो रे॥3॥मो.॥
वचन सुणी दीवाण ना, वीलखी हुई ते नारी रे।
परभावती मन चिंतवै, हिवें कीज्यै किसुं विचारो रे॥4॥मो.॥
में मारैं हाथें कियो, केहो कीजे सोसो रे।
दोस जिको मुझ वचन नो, कीजे किणसुं रोसो रे॥5॥मो.॥

प्रथम खंड प्रशस्ति

गिरओ गच्छ खरतरतणो, जाणे सकल जीहानों रे।
गच्छनायक लायक बड़ों, जंगम युगिपरधानो रे॥6॥मो.॥
श्री जिनरंगसूरीसरु, तसु श्राविक सिरताजो रे।
कुल मंडण कटारीया, मंत्रीसर हंसराजो रे॥7॥मो.॥
जेहनो जस जगि महमहें, करणी सुकृत कुबेरो रे।
परम भगति गुरुदेव रा, बड़ दाता मन मेरो रे॥8॥मो.॥
भाई डुंगरसी भलो, लघु बंधव गुण वृंदो रे।
दुखियां दलिद्र भंजणो, भागचंद कुलचंदो रे॥9॥मो.॥
तास तणो आदर करी, संबंध रच्यो सिरताजो रे।
पाठक ज्ञानसमुद्र तणा, शिष्य मुख्य ज्ञानराजो रे॥10॥मो.॥
सुपसाइं श्री गुरु तणै, 'लब्धोदय' गणि भाखै रे।
प्रथम खंड पूरौ कियो, धरम तणै अभिलाषै रें॥11॥मो.॥
इति श्री राणा श्रीरतनसिंह पदमणी परणी पनोता प्रथम खण्ड ॥1॥

द्वितीय खण्डः मंगलाचरण

वाणी निर्मल विस्तरै, नव खंडेहि नाम।
तिण हेतें श्री गुरुभणी, प्रथम करूं प्रणाम ॥1॥
सुगण सुणेज्यो श्रुतिधरी, परहो तजो प्रमाद।
बीजें खंड वखाणतां, सुणतां उपजै स्वाद॥2॥

पद्मिनी सौंदर्य वर्णन

(ढाल (1) - बागलीया री)

राति दिवस भीनो रहै रे, पदमणि स्युं बहु प्रेम रे रंग रसीया।
पंच विषय सुख भोगवै रे, दोगंधक सुर जेम रे रंग रसीया॥1॥
राय राणी मन बसिया, अविहड़ जिम जोड़ी रसिया, जिम कंचन रस रसीया।
जिम जोड़ी सारसीयां रे, अविहड़ लागी प्रीत रे रंग रसीया।आ.।
जीव एक नइं जूजूई रे, देही दीसें दोइ रे रंग.।
चित लागो चतुरां तणो रे, चोल तणी परि जोइ रे रंग.॥2॥
चंदवदन ऊपरि घटा रे, सोहें वेणीदण्ड रे रंग.।
(अथ) मृगानयणी ऊपरइ रे, बांध्यो जाल प्रचण्ड रे रंग.॥3॥
ताटी मरकत मणि तणी रे, अथवा जाणि भुजंग रे रंग.।
पाटी पन घेरण तणी रे, पाटि वणीय सुचंग रे रंग.॥4॥
सैंघो सिंदूरइ भर्‌यो रे, जाणे रविकर एक रे रंग.।
कब तम पामी एकली रे, बांधी सब धरि टेक रे रंग.॥5॥
सीसफूल तारा भला रे, अरधचंद सम भाग रे रंग.।
विंदी जाणे मणि धरी रे, पीवत अमृत नाग रे रंग.॥6॥
श्रवण किना सोवन तणी रे, सीप सुघट मन फंद रे रंग.।
कुंडल रे मिसि देखवा रे, आया सूरज चंद रे रंग.॥7॥
अणियाले काजल भरी रे, निपट रसीले नयण रे रंग.।
चंचल चतुरां चित हरइ रे, देखत उपजै चैन रे रंग.॥8॥
नयण कमल ऊपरि वण्या रे, भूंहा भमर समान रे रंग.।
दीपशिखा सम नासिका रे, देखण रूप निधान रे रंग.॥9॥
नासा शुक सोवन तणी रे, बेसर मोती जेह रे रंग.।
आंब सोवट द्ये चंच में रे, विधु बालक सस्नेह रे रंग.॥10॥
काया सोवन तसु तणी रे, गोरा गाल रसाल रे रंग.।
आरीसा कंदर्प तणा रे, चंद सरीसो भाल रे रंग.॥11॥
पाका बिंब मधु समा रे, ओपित विद्‌रुम जाण रे रंग.।
मामोल्या जिम रातड़ा रे, अधर सुधारस खाण रे रंग.॥12॥
(जाणें) मोती लड़ पोई धस्या रे, अधर विद्रम विचि दंत रे रंग.।
चमकै चूनी सारिखा रे, दाडिम कूलीय दीपंत रे रंग.॥13॥
कोकिल कंठ सुहामणो रे, पति भुज वल्ली खम्भ रे रंग.।
मोतिन की दुलड़ी वणी रे, त्रिवली रेख अचंभ रे रंग.॥14॥

भुजादण्ड सोवन घड्या रे, कोमल कलस सुनालि रे रंग.।
मूंगफली चम्पा कली रे आंगुलियां सुविशाल रे रंग. ॥15॥
कनक कुंभ श्रीफल जिसा रे, कुच तटि कठिन कठोर रे रंग.।
पाका वील नारिंग सा रे, मानुं युगल चकोर रे रंग. ॥16॥
कोमल कमल ऊपरें रे, त्रिवली समर सोपान रे रंग.।
कटि तटि अति सूछिम कही रे, थूल नितंब वखाण रे रंग. ॥17॥
जंघा सुंडा करि वणी रे, उलटी कदली खंभ रे रंग.।
सोवन कच्छप सारिखा रे, चरण हरण मन दंभ रे रंग. ॥18॥
सकल रूप पदमणि तणो रे, कहत न आवै पार रे रंग।
'लब्धोदय' कहै आठमी रे, ढाल रसिक सुखकार रे रंग. ॥19॥
॥दोहा॥
हंस गमणि हेजई हीइ, राति दिवस सुख संग।
राणो लीण हुओ तुरत, जिम चन्दन तरुहि भुजंग॥1॥
दूहा गूढ़ा गीत स्युं, कवित कथा बहु भांति।
रीझवियो राणो चतुर, क्रीड़ा केलि करंति॥2॥

राघव चेतन का दरबार प्रवेश

इम रहतां सुख सुं सदा, जे हूओ छै विरतंत।
सुणयो चित्त देइ सुगण, मन थिर करी एकंत॥ 3॥
राघव चेतन दोइ वसे, चित्रकूट में व्यास।
राति दिवस विद्या तणो, अधिको अछे अभ्यास॥4॥
राजा मान दियो घणो, भारथ वांचे आय।
राज लोक में रात दिन, महल अमहले जाय॥5॥

राघव चेतन पर कोप

(ढाल (2) - राग-गौड़ो, मन भमरा 2. ए देसी, एकणि दिन पदमणि तणे मन रंगें रे)
संगई बैठो राय लाल मन रंगेंरे।
क्रीडा आलिंगन करें मन रंगें रे, तेहवें व्यासजी जाय लाल. ॥1॥
राघव ऊपरि कोपीयो मन., मूह चढ़ाई राय लाल मन रंगें रे।
होठ वेहुं फुर फुर करइ मन., किम आयो अण प्रस्ताव लाल. ॥2॥
फिट रे पापी बंभणा मनरंगें रे, मूरिख जट्ट गमार लाल मन रंगेरे।
फिट रे थोथा पंडीया मन रंगें रे,
मूल न समझे गमार लाल मन रंगें रे॥3॥
अणरुचती वातां कर म. अणतेड्यो आवें गेह लाल

बोले अणबोलावीयो म साचो मूरिख तेह लाल. ॥4 ॥
आपही बात कहें हसें म. बेसणो आप ही लेह लाल.
बिहु आलोच करतां विच म. जावै चतुर न तेह लाल. ॥5 ॥
गेंरमहेंल नृप मंदिरें म. एकते नर नारि लाल.
लाज समें जावई जिको म. ते मूरिख निरधार लाल. ।6 ॥
निभ्रंछयो राघव भणी म. काढ्यो हाथ ज साहि लाल.
जातां भुंइ भारी पड़ी म. पहुतो निज घर मांहि लाल. ॥7 ॥
राजा रूठो इम कहें म. पदमणी देखी व्यास लाल.
आँखि कढावुं एहनी म. तो मुझ ने स्याबास लाल. ॥8 ॥
बात सुणी राजा तणी म. एम विचारै व्यास लाल.
राजा मित्र न जांणीइ म. सिंह किसो वेसास लाल. ॥9 ॥
काफे सौचं, घृतकारेषु सत्यं ज्ञाने भ्रांति: स्त्रीषु कामोपशांति
क्लीवेधैर्यं मद्यपे तत्वचिन्ता, राजा मित्रो केन दृष्टं श्रुतं वा॥
अत्यासन्न विनासाय दूरस्था निष्फला भवेत्।
सेव्यता मध्यम भावेन राजा वन्हि गुरुस्त्रिय:
राजा री रीस भली नहीं म.चितचमक्यो राघव व्यास लाल
न हुवे दोन्यु वातड़ी म. एक वैर में वास लाल. ॥10 ॥
आलोचे मन आपणे म. छोड्यो गढ चीतोड़ लाल.
द्रव्य देई नई नीकल्या म. राघव चेतन जोड़ लाल. ॥11 ॥
त्यजेदेकं कुलस्यर्थे, ग्रामार्थे च कुलंत्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्याथै, आत्मार्थे पृथिवी त्यजेत्॥

राघव-चेतन दिल्ली गमन

दिन थोड़े दिल्ली गयो म. नगर हुओ जस नाम लाल.
योतिष जाणे अति घणो मन.
विविध विद्या गुण धाम लाल. ॥12 ॥
शास्त्र अनेक वांचे भणै म. नव रस पोषई नित लाल.
सौ सौ अरथ नवा कर म. चतुरां मोहें चित्त लाल. ॥13 ॥
बल पूरो विद्या तणो म. तेहनें स्यो परदेश लाल.
'लालचन्द' कहै सांभलो म. विद्या मान नरेश लाल. ॥14 ॥

शाही दरबार प्रवेश

॥दोहा॥
सद्‌विद्या धन सासतो, विद्या रूप सुहाग।

मान महातम जस अधिक, विद्या मोटो भाग॥1॥
पातिस्याह दिल्ली तदा, जास अखंडित आण।
अविचल तेज अलावदी, प्रतपो बारह भाण॥2॥
एक छत्र महि भोगवे, जस नव खंडे हि नाम।
सुर नरपति जाथें डरै, सेवकहि कर सिलाम॥3॥
सेना सतावीस लख, भंजै अरि भड़वाह।
तिण सुणीया बांभण गुणी, तेडायो धरि चाह॥4॥
श्लोक कवित अभिनव करी, आया आणंद पूर।
आदर सु आसीस द्यै, हजरति साहि हजूर॥5॥
(ढाल (3)- अलबेल्या नो। कहिनइ किंहाथो आविया रे लाल. ए चाल.)
श्लोक कवित्त कथा करीरे लाल, रीझ्यो निपट पतिसाहि रे सो.
सकल लोक धन-धन कह रे लाल, विद्यावंत अथाह रे सो. ॥1॥
चतुर पंडित ब्राह्मण गुणनिलो रे लाल। आंकणी
पातिसाहि दिल्ली तणो रे लाल, ये नित मोज अनेक रे सोभागी
गांम पांचसै अति भला रे लाल, मनमई धरीय विवेक रे सोभागी॥2॥च.॥
इम रहतां आणंद स्युरे लाल, दिल्लीपति रै पास रे सोभागी।
एक दिन राणा जी दीयो रे लाल, तेह वर चितारें व्यास रे सोभागी॥3॥च.॥

राघव-चेतन का प्रतिशोध षड्यंत्र

वयर वालू हिवें माहरो रे लाल, छूड़ायो गढ गेहरे सो.
तो काढू चित्रकूट थी रे लाल, अपहरी पदमणी तेहरे सो. ॥4॥
सैंमुखी काम न कीजिइं रे लाल, जे पर पूठे थायरे सो.
आलोची मन आपणे रे लाल, मांड्यो एह उपाय रे सो.॥5॥
भाईपणो एक भाट स्यु रे लाल, खोजा स्युमन खंति रे सो.
मान दान देई घणो रे लाल, मित्र कीयो एकति रे सो.॥6॥
साहि तणै दरवार में रे लाल, पदमणि केरी वात रे सो.
जिण तिण भांति काढज्यो रे लाल, मुझ मन एह सुहात रे सो.॥7॥
एक दिन कोमल पांखड़ी रे लाल, भाट लेइ निज हाथ रे सो.।
आवी सभा में वीनवै रे लाल, चिरंजीवो नरनाथ रे सो.॥8॥

अथ भाटवाक्यं

॥कवित्त॥
एक छत्र जिण पुहवी, निश्चल कीधी धर उप्पर।
आणं कित्ति नव खंड, अदल कीधी दुनीय प्पर॥

नल वीनल विब्भाड़ि, उदधि कर पाउ पखालिय।
अंतेउर रति रंभ, रूप रंभा सुर टालीय॥
हेतम दान कवि मल्ल कहि, अमर धुन्नि बे वखत गनि।
दीठो न कोइ रवि चक्क लगि, अलावदी सुलतान विणि॥
(ढाल तेहिज)
पातिसाह अलांवदी रे लाल, देखी अनोपम तेहरे सोभागी
साहि बूझ्यो तेरे हाथ में रे लाल, भाट कहो क्या एहरे सो. ॥9॥
राजहंस पंखी रहे रे लाल, मान सरोवर मांहि रे सो।
तिण पंखी नी पांखड़ी रे लाल, ते देखी पतिसाहि रे सो. ॥10॥
मोज देई में ने इम कहें रे लाल, वाह वाह बे वाह रे सो.।
कहुँ बे ऐसी अउर भी रे, चीज देखी कहिनाह रे सोना ॥11॥च.॥

पद्मिनी स्त्री के प्रति आकर्षण

ता परि भाट कहै सुणो रे लाल, सब गुण पदमणि मांहि रे सो.।
उआ की ओपम ने द्युं रे लाल, अउर ऐसी कोई नाहिं रे सो. ॥12॥च.॥
अद्भुत जाणे अपछरा रे लाल, अति सुन्दर सुकमाल रे सो.।
पतली कणयर कंबसी रे लाल, पद्मणि रूप रसाल रे सो. ॥13॥च.॥
दील्लीसर कहै भाट स्यु रे लाल, अेंसी पदमणि नारि रे सो।
तैं कहां ही देखी सुणी रे लाल, कहि तुं साच विचारि रे सो. ॥14च.॥
भाट कहै तुम महेंल में रे लाल, नारी एक हजार रे सो.।
तामै पदमणि सही होसी रे लाल, दोय चारि निरधार रे सो. ॥15॥च.॥
दूजी ठाम न सांभली रे लाल, कैसी कहिइं झूठ रे सो.॥
इम निसुणी खोजो कहै रे लाल, आसंग मन धरि दूठ रे सो. ॥16॥ च.॥
वात फरोसतइं क्या कहै रे लाल, बांभण साहि हजूर रें। सो.।
कहाँ बे सुरनर मोहनी रे लाल, पदमणि पुण्य पडूर में सो. ॥17॥ च.॥
रावण घरि पदमणि सुणी रे लाल, अउर नहिं संसार रे सो.॥
साहि घरे सब संखिणी रे लाल, क्या कहिइं अविचार रे सो. ॥18॥च.॥
मांहोमांहि संकेत स्युं रे लाल, भाट खोजें कियो वाद रे सो.।
लालचंद मुनिवर कहै रे लाल, सुणतां उपजै स्वाद रे सो. ॥19॥ च.॥
॥दोहा॥
हसि कै साहि कहै इसो, क्युं खोजा खूब।
हम महलें सब संखणी, नहिं पदमणि महबूब॥1॥
तापरि खोजो वीनमैं, भूक्तौ राघव व्यास।
सब लक्षण गुण पदमणि के, जाणै शास्त्र अभ्यास॥2॥

साहि कह्यो राघव भणी, स्त्री के केती जाति।
कैसा लक्षण पदमणी, साच कहौ ए बात॥3॥
सुविचारी राघव कहै, स्त्री की चारुं जाति।
पद्मणी चित्रणी हस्तणी संखणी अैसी भांति॥4॥

पद्मिनी आदि स्त्रियों के लक्षण

॥कवित्त॥
रूपवंत रति रंभ, कमल जिम काया कोमल
परिमल पहोप सुगंध, भमर भमें बहुपरिकरे उत्पल
चंपकली जिम रंग, चंग गति गयंद समाणी
शशि वदनी सुकमाल, मधुर मुख जंपे वाणी
चंचल चपल चकोर जिम, नयण कांति सौहै घणी।
कहै राघव सुलतान सुणि, पहोवी हुवै अइसी पदमणी॥1॥
कुच युग कठिन सरूप, रूप अति रूड़ी रामा।
हस्त वदन हित हेज, सेज नितु रमें सुकामा
रुसै तूसै रंग, संगि सुख अधिक उपावै
राग रंग छतीत्त, गीत गुण ज्ञान सुणावै।
स्नान मज्जन तंबोल स्युं, रहइं अहोनिश रागणी
कहे राघव सुलतान सुणि, पहोवी हुइ इसी पदमणी॥2॥
बीज जेम झलकंत, कांति कुंदण जिम सोहै।
सुर नर गण गंधर्व, रूप त्रिभुवन मन मोहै॥
त्रिवली तन वेउ लंक, वंक नहु वयण पयंपइ
पति सुं प्रेम अपार, अवर सु जीह न जंपइ
स्वामी भगति ससनेहली, अति सुकुमाल सुहावणी।
कहै राघव सुलतान सुंणि, पहोवी हुइ इसी पदमणी॥3॥
धवल कुसुम सिणगार, धवल बहु वस्त्र सुहावै
मोताहल मणि रयण, हार हीइं ऊपरि भावै
अलप भूख त्रिस अलप, नयण लहु नींद न आवै
आसण रंग सुरंग, जुगति सुं काम जगावै
भगति जुगति भरतार री रहै अहोनिश रागणी
कहै राघव सुलतान सुणि, पहोवी हुवें इसी पमदणी॥4॥

॥श्लोक॥
पद्मिनी पद्म गन्धा च पुष्प गन्धा च चित्रणी

हस्तनी मच्छ गन्धा च दुर्गन्धा भवेत्संखणी ॥1 ॥
पद्मिनी स्वामिभक्ता च पुत्रभक्ता च चित्रणी।
हस्तिनी मातृभक्ता च आत्मभक्ता च संखणी ॥2 ॥
पद्मिनी करलकेशा च लम्बकेशा च चित्रणी।
हस्तिनी उर्द्धकेशा च लठरकेशा च संखिणी ॥3 ॥
पद्मिनी चन्द्रवदना च सूर्यवदना च चित्रणी।
हस्तिनी पद्मवदना च शूकरवदना च संखणी ॥4 ॥
पद्मिनी हंसवाणी च कोकिलावाणी च चित्रणी ॥
हस्तिनी काकवाणी च गर्दभवाणी च संखणी ॥5 ॥
पद्मिनी पावाहारा च द्विपावाहारा च चित्रणी ॥
त्रिपादा हारा हस्तिनी ज्ञेया परं हारा च संखणी ॥6 ॥
चतु वर्षे प्रसूति पद्मन्या त्रय वर्षाश्च चित्रणी।
द्वि वर्षा हस्तनी प्रसूतं प्रति वर्ष च संखिनी ॥7 ॥
पद्मिनी श्वेत शृंगारा, रक्त शृंगारा चित्रणी।
हस्तिनी नील शृंगारा, कृष्ण शृंगारा च संखणी ॥8 ॥
पद्मिनी पान राचन्ति, वित्त राचंति चित्रणी।
हस्तिनी दान राचन्ति, कलह राचंति संखिणी ॥9 ॥
पद्मिनी प्रहर निद्रा च, द्वि प्रहर निद्रा च चित्रणी।
हस्तिनी त्रय प्रहर निद्रा च, अघोर निद्रा च संखिणी ॥10 ॥
चक्रस्थन्यो च पद्मिन्या, समस्थनी च चित्रणी।
उर्द्धस्थनी च हस्तिन्या, दीर्घस्थनी संखिणी ॥11 ॥
पद्मिनी हारदन्ता च, समदन्ता च चित्रणी।
हस्तिनी दीर्घदन्ता च, वक्रदन्ता च संखणी ॥12 ॥
पद्मिनी मुख सौरभ्यं, उर सौरभ्यं चित्रणी।
हस्तिनी कटि सौरभ्यं, नास्ति गंधा च संखणी ॥13 ॥
पद्मिनी पान राचन्ति, फल राचन्ति चित्रणी।
हस्तिनी मिष्ट राचन्ति, अन्न राचन्ति संखिणी ॥14 ॥
पद्मिनी प्रेम वांछन्ति, मान वांछन्ति चित्रणी।
हस्तिनी दान वांछन्ति, कलह वांछन्ति संखिणी ॥15 ॥
महापुण्येन पद्मिन्या, मध्यम पुण्येन चित्रणी।
हस्तिनी च क्रियालोपे, अघोर पापेन संखिणी ॥16 ॥
पद्मिनी सिंघलद्वीपे च, दक्षिण देशे च चित्रणी।
हस्तिनी मध्यदेशे च, मरुधरायां च संखिणी ॥17 ॥

अन्तःपुर की बेगमों में पद्मिनी गवेषणा

(ढाल (4) - रागमारू, वाल्हाते विदेशी लागई वालहो रै ए गीतनी देशी)
इण परि पद्मिणी रा गुण सांभली रे, हरख्यो मन सुलतान।
हम महेलै पद्मणी केते अछैरे, परखो व्यास सुजाण॥1॥इण.॥
इणी सुन्दर सहेली पद्मणी मन वसी रे॥ आंकणी॥
व्यास कहै आलिम साहिब सुणो रे, किम निरखुं तुम नारि।
निरख्यां विगर न जाणु पद्मणी रे, कीजे कवण विचार॥2॥सु.॥
तब दिल्लीपति महेल करावियो रे, मणिमय एक अनूप॥
व्यास बुलाय कहे पद्मणी रे, निरभया देखी सरूप॥3॥सु.॥
सकल नारि प्रतिबिंब निरखियो रे, बैठी मणगृह माहि।
देखी हरम हस्तनी चित्रणी रे, यामें पद्मणी नांहि॥4॥सु.॥
व्यास कहै सुर नर मन मोहनी रे, अद्भुत रूप अनेक॥
है चित्तहरणी तुरणी महल में रे, पिण नहीं पद्मणी एक॥5॥सुं.॥

पद्मिनी के लिए सिंघल द्वीप पर चढ़ाई

एह बात सुणी आलिमपति कहै रे, क्या मेरा अवतार।
कैसी पतिसाही विण पद्मणी रे, अउरति अउर असार॥6॥सु.॥
(विण) पद्मणी सेजे पोढुं नहीं रे, हेजे न करूं रे संग।
पद्मणी ऊपरि कीजे उवारणा रे, राज रमणी सर्वंग॥7॥सु.॥
मनड़ो लागो मारु मुरट ज्युं रे; पद्मणी परणवा चाह।
व्यास बतावो चावी पद्मणी रे, इम बोले पतिसाह॥8॥सु.॥
सिंघलदीप अछै दक्षिण दिसइजी, आडो समुद्र अथाग।
व्यास कहै पद्मिणी ठावी तिहाजी, पिण महा दुर्घट माग॥9॥
साहि कहै मुझ आगे व्यासजी, दरीया है कुण भात।
मुझ देखे सुरनर सहुको डरैरे, सोखुं सायर सात॥10॥ सु.॥
तुरत चढ़ाई सिंघलदीप ने रे, कीधी दिल्लीनाथ।
धुं धुं धुं नीसाण घुरे भलाजी, शूर सुभट ले साथ॥11॥सु.॥
सोले सहस मेंगल मदझरता भला रे, जाणे घन गज्जंति।
लाख सतावीस हेंवर हींसतारे, चंचल गति चालंति॥12॥ सु.॥
च्यार चक राजन संसय पड़्या रे, धर हर धूजेरे सेस।
रज ऊड़ीरे गयणे रवि ढांकियोरे, संक्यो मनहि सुरेस॥13॥सु.।
इलगारें करि करी उलंघी मही रे, आया दरीया तीर।
रिण रंढाला मरदाना बली रे, साथे बहु सूर नै वीर॥14॥सु.॥

देख्यो दरियो भरियो जल घणेजी, तब बोले नरनाथ।
वारिधि पूरो हल वीहला हुइं रे, मुंछा घाले हाथ॥15॥सु.॥
दल बादल डेरा ऊभा किया रे, ऊतरीयो सुलतान।
सिंघलदेश दुहाई फेरि के रे, पकड़ो सिंघल राण॥16॥
सुका 'लालचंद' कहै साहि अलावदी रे, बोलाया बड़ वीर।
सझ हुई सिंघलद्वीप नै ते, जे मरदाना वीर॥17॥सु.॥
॥दुहा॥
हुकम लही आया वही, जिहां सायर गम्भीर।
जल सुं जोर न कोई चलें, बूडण लागा मीर॥1॥
सायर ऊपरि हठ कीयो, आलिम साहि अपार।
प्रवहण नवा घड़ावि ने, चोढ्या बहु जूझार॥2॥
साहि कहै सुभटां भणी, आ वेला छें आज॥
लड़ी भड़ी गढ भेलिज्यो, पकड़ज्यो सिंघलराय॥3॥
लाख लाख मोजां दीइं, चलीइ बकारें स्वामि।
कहें तदि पालो कुण रहै, सूर सुभट रे नाम॥4॥
बैठा ते दरीया बिचै, जेहवै आयो जाय।
आय पड़्या भमर्‍या बिचइ, बाजै सबलो वाय॥5॥
(ढाल (5) - राग-मल्हार सहर भलो पिण सांकडो रे नगर भलो पण दूर, ए देशी।)
तेहवे दरीयो ऊछल्यो रे, भागी बेड़ी भटाक मेरे साजना।
फिरी आदइ आलिम भणी रे, बूड़ें तेह कटक। मेरे साजना॥1॥
जल सुं जोर न को चलै रे, सुभट रह्या जल मांहि मेरे.
पदमणी परही जाणि द्यो रे, छोडो केडो साहि मेरे.॥2॥
आलिमपति इणि परि कहै रे, मैं नवि छोडु केडि मेरे.
मो आगें दरीयो रहे रे, अब नांखुगो उथेडि मेरे.॥3॥
वरस रहुँ पदमणी वरुं रे, पकडुं सिंघलराय मेरे.
बीजा सुभट बुलाइये रे, मुंआ ति गइअ बलाय मेरे.॥4॥
सुभट मन में संकीया रे, फोकट दरीया मांहि मेरे.
काम बिना किम दीजिइं रे, साहि विचारत नांहि मेरे.॥5॥
आलिम अमरस मनि घणो रे, पिण दरीयो भरपूर मेरे.
खाणो पीणो परिहस्‍्यो रे, बैठो चिंता पूर मेरे.॥6॥
चिंता निद्रा परिहरइ रे, चिंता ले जाइ दुक्ख मेरे।
चिंता अह निशि तन दहइ, चिन्ता फेड़इ। भुक्ख मेरे॥7॥

चितां चिता समाख्याता चितातो चिन्ताधिका।
चिता दहति निजी चिन्ता जीवंतप्यहो।
साहि कहे तेहनें घणो रे, द्युंगा देश भंडार मेरे.
दरीयो खोदि मारग करइं रे, जावइं वारिधि पार मेरे. ॥8॥
लालचिया निरधार तिहां रे, मांनि हुकम तिहां जाय मेरे.
देखि दरीयो इम कहै रे, खोदे कुंण खुदाय मेरे॥9॥
जे सिंघल पहुँचै जाइ रे, ते पावइ लाख तुरंग मेरे।
ते दूणौ पावइ पटउ रे, जे भेलइ सास दुरंग मेरे. ॥10॥
जे मारें सिंघल धणी रे, तिगुणो तास पसाय मेरे.
जे आणें पदमणी भणी रे, ते सब गढ़नो राय मेरे. ॥11॥
इम लालच देखाडीयो रे, तो पिण न वहै इम मन मेरे.
नव लख सुभट सझिं थया रे, मानि नहिं साहि वचन मेरे॥12॥
दो तड़ बाघ तणउ वण्यउरे, लसकरिया ने न्याय मेरे.
इक दिस डर पतिसाह रउ, बीजे नांखे समुद्र बहाय मेरे॥13॥
सुभटां व्यास बोलाइयो रे, आलिम सुं एकान्त मेरे.
पापी व्यास कुमतो कीयो रे, मांड्यों सुभटा अन्त मेरे. ॥14॥
॥दूहा॥
वचन विमासी बोलियइ, ए पंडित नो न्याय।
अविमासी कारिज करइ, ते नर मूरख राय॥15॥
स्त्री बालक पुहोवीधणी रे, ए तिहुँ एक सभाव। मेरे.
रढ नवि छांडै आपणी रे, भावें तो घर जाय। मेरे. ॥16॥
आवी अनाथ जाणे नहीं रे, वालिंभ ए जण च्यार मेरे.
बालक मंगण प्राहुणो रे, लाड गहेली नार मेरे. ॥17॥
एहवो कोइ मतो करो रे, आलोची मन आप मेरे.
आलिमपति पाछो फिरै रे, तो चूकें सब पाप मेरे. ॥18॥
आपणो मन आलोचि ने रे, जे करसी निज काज मेरे.
ते पामें सुख सम्पदा रे, 'लालचन्द' मुनिराज मेरे. ॥19॥

शाही हठ का छल से प्रतिकार कर दिल्ली पुनरागमन

॥दूहा॥
व्यास कहै तुमे सांभलो, सुभट होइ सब एक।
हिकमति एक करो हिवै, फिरें साहि रहे टेक॥1॥
मदझर मातंग पांचसै, सोवन जड़ित साधार।

पाखरिया पंच सहस, कोड़ि एक दीनार॥2॥
सिणगारा पटकूल सुं, नव नव भांते नाव।
सोवन कलस सरस रच्यो, भरयो वस्तु बहुभाव॥3॥
अणजाण्या नर सीखवो, ए सिंघल मूक्यो दंड॥
हुं तुम्ह नी पग खेह छुं, अब तुं आलिम छंड॥4॥
नाक नमण इण परि करो, और न कोई उपाय।
अहंकार इम राखज्यो, जिम आलिम फिर जाय॥5॥
(ढाल (6) - कोई पूछो बांभणा जोसी रे ए देशी। अथवा यत्तनी)
इम व्यास वचन अवधारी रे, हरखी तब सेना सारी रे।
सहू संच कीयो तिण रातें रे, दंड ल्याया ते परभातैं रे॥1॥
दिन ऊग्यां आलिम जागै रे, देख्या प्रवहण मन रागें रे।
कहो क्या बे आवत सूझें रे, अइंसउ सेवक कुं बूझें रे॥2॥
तब व्यास कहै सुणि सामी रे, सही तोहै एह सलामी रे।
सिंघल राजा तुम मुकी रे, सबली आग्या प्रभुजी की रे॥3॥
सोना कलसे अति सौहै रे, चमकत चूनी मन मोहे रे।
फरहरे नेजा धजा फाबइ रे, बहु नेडा प्रवहण आवै रे॥4॥
देखत आलिम सुख पावै रे, वाण दरीया तटि आवे रे
सुलतान चरण धाइ लागें रे, सब पेसकसी धरी आगे रे॥5॥
सिंघल तुम पग नी खेहा रे, सेवक सुं राखो सनेहा रे।
बंदे कुं साहि निवाजै रे, ए चूनो तुम पान काजै रे॥6॥
तुम दिलीसर जगदीसो रे, नमठेह सु केही रीसा रे।
इम विनय वचन सुणीइजे रे, सिरपाव सिंघल ने भेजै रे॥7॥
पहरायो ते परधानो रे, दीधो तेहनै बहु मानो रे।
सिंघल मूंक्यो ते लीधो रे, सुभटां ने बांटे दीधो रे॥8॥
सिंघल सों कीधो सनेहो रे, मान देई मूंक्या तेहो रे॥
समारी सहू राघव वातो रे, जिम तिम वणी आवै धातो रे॥9॥
॥दूहा॥
जेहनइ घटि बहु बुद्धि हुवइ, तेसारइ सहु काम।
भंजइ गंजइ वल घड़इ, वलि आणइ निज ठाम॥1॥
(ढाल (7) - यतनी-मनसा जे आणी एह)
अलिमपति कूच करायो रे, वेघो दिल्ली गढ आयो रे।
घरि घरि गूठी ऊछलीयाँ रे, बहु मंगल धुनी रंग रलीयाँ॥1॥

बैठो तखत पतिसाहो रे, गढ सकल थयो उछाहो रे।
मिलि मिलि नर नारी भाखै रे, यो आयो पदमणी पाखैं॥2॥
आलिमपति महेलां आया रे, भिंतरि हथियार धराया रे।
सेवक घरि पाछो जावै रे, तब बड़ी बीबी बुलावै॥3॥
तुम साहिब पदमणी परणी रे, ते दिखलावो हम तुरणी रे।
देखां दीदार एकबार रे, केसी हुवे पदमणी नारि॥4॥
जसु घरि नहिं पदमणि नारी रे, केंसो कहीइं घर बार रे।
केंसी तेरी पतिसाही रे, पदमणी नाहिं एकाही॥5॥
विण पदमणी खाना खावै रे, इम वार वार संतावै रे।
विलखो होय खोजौ आवै रे, आलिम नैं बहुत भखावै॥6॥
गच्छ मोटो खरतर गायो, महावीर पाट चल आयो रे।
सूरीश्वर श्रीजिनरंग रे, तसुशासन श्रावक चंग रे॥7॥
मंत्रीसर श्रीहंसराज रे, वड़ दातारां सिरताज रे।
पुण्यवंत महा परवीण रे, गुणरागी नइ धर्म लीण॥8॥
समरथ सगलइ ही कामइ रे, तास भ्रात डुंगरसी नामइ रे।
भागचंद वड़उ भागवंत रे, मन मोटइ लखमी कांत॥9॥
दीपक सम राजदुवारइ रे, कुल आभ्रण सोभा धारइ रे।
तसु आग्रहि कीधउ एह, खंड बीजउ संपूरण तेह॥10॥
पाठक श्री ज्ञानसमुंद रे, गणि ज्ञानराज मुनीचंद रे।
गुरुराज तणै सुपसाया रे, मुनिलब्धोदय गुण गाया रे॥11॥
॥इति द्वितीय खण्ड सम्पूर्णम्॥

इति श्रीपद्मिनीचरित्रे ढाल भाषाबंधे उपाध्याय श्री ज्ञान समुद्र गणि गजेन्द्राणां शिष्यमुख्य विद्वद्राज श्रीज्ञानराज वाचक वराणां शिष्य पं. लब्धिउदय मुनि विरचिते कटारिया गोत्रीय मंत्रिराज श्री हंसराज मं. श्री भागचंदानुरोधेन राणा श्री रतन सिंघलद्वीप गमन श्री पद्मिनी पाणिग्रहणं श्री चित्रकूट दुर्गागमन सम्बन्ध प्रकाशो नाम द्वितीय खंड॥
राघव चेतन दिल्लोगमन साहि वारिधि यावत् गमनागमन सम्बन्ध
प्रकाशनो नाम द्वितीय खंड 2 (बड़ौदा प्रति)

तृतीय खण्डः मंगलाचरण

॥दूहा॥
मात पिता बंधव हितु, गुरु सम अवर न कोय॥
तिण हेतइं गुरु प्रणमतां, मनवंछित फल होय॥1॥

तिणकुं राग करी नमू, इष्ट देवता आप।
खंड कहुं अब तीसरो, सुणतां टलै संताप ॥2 ॥

पद्मिनी की पुनर्गवेषणा

अणख बोल बीबी तणा, सुणि के आलिम साहि।
धमधमीयो कोप्यो घणो, अति अमरस मन मांहि ॥3 ॥
ततखिण व्यास बुलाइ नै, इम पूछें सुलतान।
सिंघलद्वीप विना अवर, पदमणि आहीठाण ॥4 ॥
चावो गढ चीतोड़ छै, पहोवी मांहि प्रधान।
रतनसेन रावल जिहां, राजें अमली माण ॥5 ॥
शेषनाग सिरमणी जिसी, तस घरि पदमणि नारि।
लेई न सकै कोइ तिण, किम कहिइं अविचार ॥6 ॥
एवड़ो सिंघलद्वीप नो, फोकट कीध प्रयास।
गढ़ चीतोड़ किसो गजो, साहि कहै सुणि व्यास ॥7 ॥

चित्तौड़ पर चढ़ाई

(ढाल (1) - राग-आसा सिन्धू
भणइ मन्दोदरी दैत्य दसकंध सुणि एह कड़खा री चाल)
चढयो अलावदी साहि सबलै कटक,
सकज सिरदार भड़ साथ लीधा।
मीर बड़वीर रिणधीर जोधा मुगल,
सलह कारी साबता तुरंत कीधा ॥1 ॥च. ॥
इन्द्र ने चंद्र नागेन्द्र चित चमकीया,
धड़हड़यो शेष में धरा धूजें।
लचकि किचकीचकरें पीठ कूरंमतणी,
हलहलें मेरु दिगदंत कूजै ॥2 ॥च. ॥
आवियो साहि चित्रोड़री तलहटी,
लाख सतवीस उमराव लीधा।
गाजती राजती जाणीइं गज घटा,
आप करतार नवी पार लीधा ॥3 ॥च. ॥
तरणि छिप गयो रयणि जिम तारिका,
खलकि खुरताल पाताल पाणी।
गुहीर नीसाण घन घोर जिम घरहरैं,
हलहिवै वेग ल्यो हिंदुवाणी ॥4 ॥

गजां सिर धजां बहू नेज वाजां करी,
उरमि मुरझि रहें पवन बाधो।
ह्यवरा गेवरां उमरा सांतरा,
आप करतार नवी पार लाधो ॥5 ॥च. ॥
राण कुल भाण सुलतान आयो सुणी,
झटक दे कटक सहु सम कीधो ॥
मुँछ बल घालि बहू रोस भाखे रतन,
हलाहिव साहि नइं करां सीधो ॥6 ॥च. ॥
भलां तुं आवियो मुझ मन भावीयो,
दूत रजपूत मूंकी कहायो।
हूं हिजें साहि हुसीयार हिवें जाह मत,
भलां सिंघल थकी भाजि आयो ॥7 ॥च. ॥
माहरा साथ रा हाथ हिवें देखज्ये,
ढीलिपति रहैं मति हिवै ढीलो।
भाजतां लाज तुझ कां ज आवै नहिं,
देखयो साहि मोटो अडीलो ॥8 ॥च. ।
कीयो गढ सांतरो नाल गोलां करी,
मांडीयां ढीकली अरहट्ट यंत्रं।
धान पाणी घणा वसत संचा किया,
मिली बुद्धिवंत करे बहु मंत्रं ॥9 ॥च. ॥
तुरत रा तीर जिम वैंण रावल तणा,
सुणत परमाण पतिसाहि रूठो।
भभकति आग में जाणि घृत भेलीयो,
साहि कहे हलां करि सुभट रूठो ॥10 ॥च. ॥
कोट करि चोट उपाड़ि अलगो करो,
बुरज गुरजां करी करो हिवें भूक।
ढाहि ढम ढेर गढ घेरि करि पाकड़ो,
करो हिवे बंदि दिन अंध घूक ॥11 ॥च. ॥
करैं मुख रगत युवगत आलिमधणी,
डारि द्युं फूंकि थकी गढ चीतोड़।
राण सुं पदमणी चिडी जिम पाकडूं,
कवण हिंदू करै हम तणी होड़ ॥12 ॥च. ॥

युद्ध वर्णन

होय हुसीयार हथीयार गहि ऊठीया,
मीर वड़ वीर रिणधीर रोसइं।
सुणो पतिसाहि अल्लाह अब क्या करे,
देखि तुझ साथरा हाथ मोसें॥13॥च.॥
इम कहि मुगल सिर चुगल जिम मूंडीया,
धाय गढ कंगुरे आय लागा।
पीठ परि रीठ पाधर तणी पड पडै,
अडवड़ै लड़थड़ै भिड़ै आंगा॥14॥च.॥
भड़ा भड़ि भड़ा भड़ि नाल छूटै भली,
कड़ाकड़ि कूट बार्जे कुठारां।
तड़ातड़ि तड़ातड़ि सबद गढ ठावतां
बड़ाबड़ि बाण लागै ऊठारां॥15॥च.॥
झूंबीया लूंबीया मीर गढ ऊपरा,
गोफणा फण-फणा वहें गोलां।
गडा गड़ि गिर तणा गडागरि गिर पड़े,
चड़ाचड़ि ऊछलै मुगदल रहो ला॥16॥
नालमी आलमी जोध मिलि झूझीया,
धरहरै धरा धमचक धूजी।
सरस संग्राम री ढाल ए पनरमी,
सुगुरूराज ग्यान लालचंद वाजी ॥17॥च.॥
॥दूहा॥
एकण दिशि रावल अनम्म, आलिमपति दिशि एक।
भभकारे बेहुं सुभट, राखण रजवट टेक॥1॥
खाणो दाणो पूरवै, रावल रण रंढाल।
भारथ में योद्धा भिड़ै, रिणयोद्धा जिम काल ॥2॥
आलिम चिंता अति घणी, पदमणि पेखण प्रेम।
गढ हाथैं आवै नहीं, कहो हवै कीजै केम॥3॥
दिल्लीपति दाखै इसौ, सुभटां नै समझाय।
सहु तुमे हिव सामठा, जुड़ो तुरंगां जाय॥4॥
नेड़ा होय गढ सुंनिपट, खोदो खानि सुरंग।
बुरजां तणा पुरजां करो, देशी धड़ा दुरंग॥5॥

(ढाल (2) - चरणाली चामुडा रण चढ़े एहनी)
साहि कहै सुभटां भणी, होज्यो हिवै हुसीयारो रे।)
मरदानी मरदां तणी, देखेंगे इण वारो रे॥1॥
रिण रसीयो रे अलावदी, मीर बड़ा रण-धीरो रे।
हलकारे हल्लां करे, मुगल मूंकी बड़धीरो रे॥2॥रिण.॥
मरण तणो डर कोई नहिं, मरना है इक वारो रे।
बहुत निवाज बड़ा करुं, द्युं बहु देश भंडारो रे॥3॥रिण.॥
दिल्ली अब दूरें रही, हिकमति अब मति हारो रे।
रोड़ो इक-इक खेसतां, होय पाधर दरहालो रे॥4॥
कुटका कोट तणा करो, खोदि करो खल खटो रे।
कूटे पाड़ो कांगुरा, नेड़ा होइ निपटो रे॥5॥रि.॥
निसरणी ऊंची करो, सुभट करो पैसारो रे।
आणो रावल इण घड़ी, कुदृण क्यासु गमारो रे॥6॥रि.॥
तुरत उठ्या तड़भड़ि करी, सुणि के साहि वचनो रे।
मीर मुगल मसती हुआ, सलह पहरी यतनो रे॥7॥रि.॥
धेठा होय ने धपटीया, दड़वड़ लागा डागा रे।
वानर जेम विलगीया, लपटी गढ में लागा रे॥8॥रि.
गणण गणण गोला वहे, जाणे सींचाण अजाणो रे॥
सगग संगग सर छूटतां, बगग बगग कूहकबाणो रे॥9॥रि.॥
मारै मीर महाबली, ताके वाहै तीरो रे।
कूट कोटनै कांगुरां, धुव खंडे बड धीरो रे॥10॥रि.॥
रिण रहीया हय हाथीया, कीधा जाणे कोटो रे।
रुधिर तणी रिण नय वहइ, सूर कमल दड दोटो रे॥11॥रि.॥
आतसबाजी ऊछली गयणे घोर अंधारो रे।
आरा बे नर ऊछले, जाणे सूरातन रिण सारो रे॥12॥
रिका नारद नाचें मन रुली, डिम डिम डमरू बाजें रे।
जोगणियां खप्पर भरै, रुहिर पीवै मन छाजै रे॥13॥रि.॥
डडकारा डाकणि करै, राक्षस देवइ रासो रे।
रुंडतणी माला रचै, ऊमयापति उल्लासो रे॥14॥रि.॥
सुर भणी सुरलोक स्युं, ऊतरै अमर विमाणो रे।
अपछर आरतीयां करइ, कामणि कंचन वानो रे॥15॥
रिणा मुगल वसत लूंट घणी, माम कोठार भंडारो रे।

माथें कीधी मेंदनी, हूओ गढ़ हाहाकारो रे॥16॥रि.॥
हेरा करें डेरा हणौं, राति वाहैं राजो रे॥
मुगल घणा तिहां मारीया, सबल लूटाणा साजो रे॥17॥रि.
सांझ लगै दिन प्रति लड़ैं, पिण कोई न सीझइ कामो रे।
फोकट मुगल मरावीया, आलिम चिंतै आमो रे॥18॥ रि.॥
कल बला दोनउं जे करइ, तउ कारिज चढइ प्रमाणो रे।
लालचंद कहें साहि सुं बीस कहइं इम वाणो रे॥19॥रि.॥

कपट प्रपंच रचना

॥दूहा॥
छानो कोइक छल करो, मति प्रकासो मर्म्म।
कपटै बात करो इसी, जिम रहै सगली सर्म॥1॥
करो सुंस जेतै कहै, बोल बंध सवि साच॥
हम मुसाफ उपारि है, विचलां नहिं वाच॥2॥
इम विचारि गढं मूंकीया, जे पाका परधान।
रावल सुं इण परि कहै, करी तसलीम सुजाण॥ 3॥
मेल करण हम मूं कीया, जो तुम मानो बात।
प्रीत्त वधें हम तुम प्रगट, सबही एह सुहात॥4॥
दरस देखि पदमणि तणो, भोजन करि तसु हाथ।
आहीठाण गढ देखि नै, साहि चलंगे साथ॥5॥
(ढाल (3) - बात म काढो व्रत तणी ए देशी 2 काची कली अनार की रे)
तासु तणी वातां सुणी, बोले राव रतनो रे। सुणि हो राजन्ना।
गढ तुम हाथ आव नहीं, जो करो कोड़ि जतनो रे॥1॥ता॥ .
पाणी वलतो ही पतीजीइं, जो उठावै मुं सापो रे।
सुंस कर मन सुध स्युं, छोडै सकल कलापो रे॥2॥ता.॥
वलि प्रधान इम वीनवे, सुणि हिन्दू पतिसाहो रे।
देश गाम दूहवां नहीं, दंड तणी नहिं चाहो रे॥ 3॥ता.॥
राजकुमारी मांगां नहिं, नहिं तुमस्युं दिल खोटो रे।
नाक नमणि हम सुं करो, देखाड़ो चित्रकोटो रे॥ 4॥ता.॥
मैं अपणा कृत कर्म सुं, असुर कुले अवतारो रे।
पूरब पुण्य प्रमाण सुं, तूं हिंदूपति सारो रे॥5॥ता.॥
जीव एक काया जूई, तूं पूरब भव मुझ भ्रातो रे।
हम तुम सूं मेलो हुओ, बैठि करइं दोय बातो रे॥6॥ता.॥

हरख बहुत हमकुं अछै, भोजन पदमणी हाथो रे।
दीदार पदमणी देखियै, ओरण चादै आथो रेखा॥7॥ता.॥
पाछै दिल्ली कुँ चलें, हम तुम होय सनेहो रे।
तब रावल तिणसुं कहै, जो नवि जोर करेहो रे॥8॥ता.॥
तो नचितं पावधारिइं, लसकर थोड़ी लेइ रे।
आरोगो आणंद सुं, हम घर प्रीति धरेइ रे॥9॥ता.॥
साहि भणी बातां सहु, जाय कहै परधानो रे।
सुंस सपति निज बांह सुं, झूठै मनि सुलतानो रे॥10॥
श्लोक- मुखं पद्मदलाकारं, वाचाचंदन शीतलं।
हृदयं कर्त्तरी तुल्यं, त्रिविधं धूर्त लक्षणम्॥1॥
राघव मंत्र उपाईयो, रावल झालण काजो रे।
छेतरवा छल मांडियो, साहि कीयो बहु साजो रे॥11॥ता.॥
घरभेदू राघव मिल्यो, सामिधरम दियो छैहो रे।
घरभेदू थी घर रहै, खोवै पणि घर तेही रे॥12॥ता.॥
घर भेदइ लंका गई रेहा, रावण खोयो राज सु.
घररउ उंदिर दोहिलउरेहां, सुगम अवर मृगराज॥13॥

सुलतान का चित्तौड़ प्रवेश

पोलि उघाड़ी गढ तणी, सरल सभावै राणो रें।
मुंक्या तेडण मंत्रवी, वेघ पधारो सुलतानो रे॥14॥
तीस सहस लोह लुंबीया, ले पैठो सुलतानो रे।
समचा सुंते संचर्‌या, जाण पड़ि नहिं राणो रे॥15॥
देखवा कोतिक मिल्या तिहां, नरनारी जन वृंदो रे।
पिण किणहि जाण्यों नहिं, दिलीपति रों छंदो रै॥16॥
सुप्त गुप्तस्य दम्भस्य, ब्रह्माप्यंतं न गच्छति।
कौलिको विष्णु रूपेण, राजकन्या निसेवते॥2॥
कपट कोई नवी लिखी सके, जो करी जाण कोई रे।
'लालचंद' मुनीवर कहै, पिण भावी हुई सो होई रे॥17॥
॥दूहा॥
आया दीठा सामठा, आलिम सुं असवार।
खणस्यो मन मांहि, खरो, रावल जी तिण वार॥1॥
बूलाया आया तुरत, सझ कीयांह सुभट।
दल बादल आई मिल्या, हिंदू मुगलां थट॥2॥

दिलीपति ढीलो हुवो, पहुंचे कोई न पाण।
अचरिज आसंगी न सकै, बोलै एहवीं वाण॥3॥
काहे कुँ मेलो कटक, खोटो म करो खेद।
लड़वा आव्यो नहीं, नहिं छै को छल भेद ॥4॥
कोतिग देखी गढ तणो, हुं जास्युं निज ठाम।
वली रावल जी इम कहै सुणि दिलीपति साम॥5॥
(ढाल (8)–
1. तिण अवसर वाजै तिहां रे ढंढेरा नो ढोल ए देसी
2. मेवाड़ी दरजणी री ढाल)
एतला आण्या सा भणी रे, तीस सहस असवार।
विणे कारण वानर जिसा रे, माता मुगल्ल जे इणवार रे॥1॥
धुरत दिल खोटा रे, काइं रे तुं साहिब मोटा;
वाचा चूको रे, आलिम वाचा चूको। आंकणी।
चूक कियो तो चूरस्युं रे, सेक्या पापड़ जेम रे।
पीसी न्हांखु पलक में रे, आटा में सिंधव जेम रे॥2॥धु.॥
हलकारै हलकां करी रे, ऊठै सुभट अपार।
सार मुखैं तिल तिल करै रे, एकेको एक हजार॥3॥धु.॥
गढगंजन सुभटां भणी रे, तनक हुकम है मुझ।
तो चिड़ीया जिम पाकड़ै रे, ए तीस सहस दल तुझ रे॥4॥धु.॥
आलिमपति इम चिंतवै रे, राय सुणो अरदास
निज घरि आया, पाहुणा रे, कहो किम कीजै उदास रे॥5॥धु.॥
सगतै केम सत्ता करो रे, काय पचारो पाण॥
थोड़ा ही होवै घणा रे, लीज्यें झेलि महमान रे॥6॥धु.॥

राणा का आतिथ्य

हम जीमवा आया हुँता रे, नहिं लड़वानो काज।
घणो मामलो कांय नहीं रे, आज सुभक्ष सुंहगा नाज रे॥7॥
जीमतां जो आणो अछो रे, खरच तणो मनि खेद।
कहो तो फिर पाछा फिरां रे, ते भाखो हम सुं भेद रे॥8॥
भणइ रावल आलिम भणी रे, भले पधार्‍या साहि।
बीजा बोलावो वले रे, जीमवा नी सी परवाह रे॥9॥
ओछा बोल न बोलीइं रे, दिल में राखी योग।
बोल बोल बेऊं हस्या रे, हाथ देई तालि जोग रे॥10॥

मांहो मांहि मिलि गया रे, सबल हुओ संतोष॥
दोष सहु दूरे किया रे, राख्यो रावल रो तोष रे॥11॥
रावल भगति भोजन तणी रे, सहूअ कराई सझ।
रूड़ी व्यंजन रसवती रे, आरोगण आलिम कज्ज रे॥12॥
पदमणि सुं प्रीतम कहै रे, खरी धरी मन खंति॥
जिण विधइं जस रस रहै रे, भोजन दीजइ तिण भंति रे॥13॥
प्रीतम सुं पदमणि कहै रे, हुँ नहिं परुसुं हाथ।
मो सम दासी माहरी रे, ते परुसस्यै दिलीनाथ॥14॥
मानि वचन महाराय जी रे, सिणगारी जब दासि।
काम तणी सेवा जसी रे, रूपे रंभा गुण राशि रे॥15॥
खांति करी खिजमति करें रे, आसण बैसण देह।
साख तिहुँ साबती करी रे, तेड़इं दिलीपति तेह रे॥16॥
हरखित चित आवै हिवै रे, दिलीपति सुलतान॥
'लालचन्द' मुनिवर कहै रे, सुणयो हिव चतुर सुजान रे॥17॥
॥दूहा॥
ऊंचा अमर विमाण सा, मोटा महेंल अनेक।
गोख झरोखा जालियां, धोल ति शुद्ध विवेक॥1॥
सरग मृत्य पाताल सब, सुन्दर वन आराम।
चात्रक मोर चकोर बहु, चितरीया चित्राम॥2॥
कनक थंभ कलसे करी, मंडित मोहण गेह॥
झिगमगि ज्योति जड़ाव की, चलकती चन्दरुएह॥3॥
रंगित मंडप मांहि हिव, जाजिम लांबी जह।
वारु करै वीछामणा, मोल घणा छैं जेह॥4॥
मोखमल मोटा मोल रा, पंच रंग पटकूल।
जरी कथीपा जुगति सुं, सखर विछावै सूल॥5॥
तरहदारविण मडू ठव्यो, सिंहासण तिण बार।
माणिक मोती लाल बहु, जड़ीया रतन अपार॥6॥
तिहां आवी बैठा तुरत, सबल साथ सुं साहि।
चिंतइं मानव लोक में, आणी भिस्त अल्लाह॥7॥

भोजन सत्कार

(ढाल (5)- अलवेल्या नी)
पहरी पटोली पांभड़ी रे लाल, दासी सुन्दर देह; मन मान्या रे

एक आवी आसण ठवे रे लाल, रूप अधिक गुण गेह; मन. ॥1॥
भोजन भगति भली करै रे लाल, सुंदर रूप अचंभ ।मन.
दासी पदमणि सारखी रे लाल, रूपै जांणे रंभ। मन. ॥2॥
सोवन झारी जल भरी रे लाल, कनक कचोला थाल॥ मन.
ले आवै भावे घणे रे लाल, कामणि अति सुकमाल। मन. ॥3॥
नाना व्यंजन नव नवा रे लाल, चतुर समास्या चाख। मन.
खाटा मीठा चरपरा रे लाल, रूड़ै स्वादै राखि। मन. ॥4॥
आंबा नींबू कातली रे लाल, मांहि बूरो मेलि। मन.
कूंकणीया केलां तणी रे लाल, कीज्ये ठेला ठेलि। मन. ॥5॥
नीली चउला नी फली रे लाल, काकड़िया कालिंग। म.
काचर परवर टींडसी रे लाल, टींडोरी अति चंग। म. ॥6॥
मुंगवड़ी पेठावड़ी रे लाल, खारावड़ी मन खंति। मन.
डबकवड़ी दाधावड़ी रे लाल, व्यंजन नाना भंति। मन. ॥7॥
राय डोडी राजा दनी रे लाल वली खुरसाणी सेव। मन.।
दाडिम दाख सोहामणा रे लाल, खरबूजा स्युं देव। मन. ॥8॥
खांति समारया खेलरा रे लाल, राईता ईमेलि; मन.
घोलवड़ा कांजीवड़ा रे लाल, माट भरया छ ठेलि। मन. ॥9॥
कारेली ने काचरा रे लाल, तली मूंकी धृत संगि। मन.
पापड़ एरंडकाकड़ी रे लाल, सीरावड़ीय सुचंग। मन. ॥10॥
मोठ मठर चूंला फली रे लाल, छसकारया देइ वघार॥मन.॥
मुंल फूल फल पानड़ा रे लाल, अथाणा सुखकार। मन. ॥11॥
सुंदरि परूस्या सालणा रे लाल, हिव पकवाने हूंस। मन.।
खारिक निमजा खोपरा रे लाल, प्रीसतां रूड़ी रुंस। मन. ॥12॥
दाख बिदाम चिरुं जीया रे लाल, मेवा सगली जाति। मन.॥
खाजा ताजा खांडरा रे लाल, घेवर बूरो घाति। मन. ॥13॥
सखरा लाडू सेवीया रे लाल, मोती मनोहर जाति।मन.।
घेवर वड़लां हेसमी रे लाल, पैड़ा कंद बहुभांति।मन. ॥14॥
पेंडा डीडवाणा तणा रे लाल, पूड़ी लापसी तेर।मन.॥
मुहम तणीअ तिलंगणी रे लाल, जलेबी बीकानेर। मन. ॥15॥
पहुआवर धनपुर तणा रे लाल, गुप चुप गढ़ ग्वालेर।
करणसाही लाडू भला रे लाल, वारु बीकानेर॥16॥
बयानइ रा नीपना रे लाल, गुदबड़ा गुणखाण। म.

[गुंदवड़ा पाया तणा रे लाल, आंवा रायण आण ।मन.।]
रुस्तक रा दाणा भला रे लाल, गुंदपाक सुख खाण ।मन.17॥
सीरा फीणी सँहालीयां रे लाल, साबूनी सुखकार। मन.॥
इन्द्रसा नै दहीथडा रे लाल, इम पकवान अपार।मन.॥18॥
रायभोग गरड़ा तणी रे लाल, साठी सखरी सालि मन.
देव जीर परुसै भला रे लाल, दिल मानै ते दालि। मन.॥19॥
मूंग मोठ तूअर तणी रे लाल, राती दाल मसूर।मन.।
उड़द चिणा ऊपरि घणारे लाल, सुरहा घृत भरपूर मन॥ 20॥
भोजन री मुगलें भली रे लाल, कीधी झाड़ा झाड़ि।मन.।
उपरि गौरस आथणी रे लाल, परुसै पदमणि मांड।मन.॥21॥
चलू करी मूंछण दीयारे लाल, लूंग सुपारी पान। मन.।
'लालचंद' कहै सांभलो रे लाल, तुरक करै अति तान मन.॥22॥

सुलतान को राघव-चेतन का पद्मिनी दिखाना

॥दोहा॥
ज्युं ज्युं दासी नव नवी, समि आवइ सिणगार।
देखि देखि चित चमकीयो, आलिम भोजन वार॥1॥
रूप अनूपम रंभसम, उवा पदमी कहै याह।
वार वार विह्वल थको, जंपै आलिम साहि॥2॥
एक नहीं अम घर ईसी, कैंसा हम पतिसाहि।
याकै एती पदमणी, देखत उपजै दाह॥3॥
वार वार झबखो किसुं, राघव बोलै एम।
ए दासी पदमिणी तणी, आप पधारइ केम॥4॥
चुंप दे कै देखो चतुर, बिचली म करो बात।
सहस दोय सहेलीयां, रहै संग दिन राति॥5॥
(ढाल (6) - हंसला ने गलि घूघरमालकि हंसलउ भलउ, ए देशी)
व्यास कहै सुणि साहिबा, पदमणि नो हे साचो सहिनाण कि।
काची कंचन वेलसी, नहिं रूपे हे एहवी इंद्राणि कि॥1॥
झबकै जाणै बीजली, अंधारै हे करती उजासकि।
भमर सदा रुणझुण करई, मोह्या परिमल हे नवी छंडै पास कि॥2॥ सुन्दरि भनी।
ते आवी न रहइ छिपी, जे मोहइ हे त्रिभुवन जन मन्न कि। सुं.
खिण विरहउन खमि सकइ, जतने करि राखइसणाउ रतन्न कि। सु.।3।
(राणो) रात दिवस पासे रहै, धत्य देखे हे एहनो आकार कि।

साहि कहै सुणि व्यास जी, किण विधसु हे देखै दीदार कि।सुं. ॥4॥
व्यास कहै सुणि साहिबा अति ऊँचो हे पदमणि आवास कि।
मुजरो कोई पामे नहिं,रावल ही हे लहै भोगविलास कि।सु. ॥5॥
॥कवित्त॥
लाख दस लहै पलिंग पोड़ि तीस लख सुणीजैं
गाल मसूरया सहस सहस दोय गिदूमा भणीजै॥
तस उपरि मसोड़ि मोल दह लखे लीधी।
अगर कुसम पटकूल सेझ कुंकम पुट दीधी॥
अलावदी सुलतान सुणि विरह व्यथा खिण नबी खमैं।
पदमणि नारि सिणगारि करि रतनसेन सेझां रमैं॥1॥
(ढाल सेहीज-)
जे देखइ पदमिणि भणी, ते गहिलो हे होवे गुणवंत कि। सु.
मान गलइ बहुनारि ना, इम बातां हे वे करि बुधवंत कि। सु.6
इण अवसरि पदमणि कहैं, सहीयां देखा है केहवो पतिसाहि कि।सु.।
जाली में मुख घाली मै, गयगमणी हे देखै मन उच्छाह कि ॥7॥ सु.॥
ते देखी व्यासैं तिसें सब बोले हे देखो सुलतान कि।सुं.।
रतन जड़ित जाली विचइ, बइठी बाला हे गुणवंत सुजान कि। सुं. ॥8॥
तुरत देखी ने पदमणी, बोलइ आलम हे नागकुमारिकि।सू.।
भद्र कि नाथा रुकमणी, किन्नर किन होय अपछर नारि कि॥9॥ सु.॥
वाह-वाह ने पदमणि ऐसी नहीं हे इन्द्र घरि इन्द्राणि कि। सुं.
या कइ अंगूठा समि नहीं, नारी हे जगि मांहि सुजाण कि। सु.।10।
देखी आलिम अचरिच थयो, नहिं एहवी नारि संसारिकि। सु. ॥11॥
किती बात याकी कहों, मुझ मन हे मृग पाड्यो प्रेम पास कि। सुं.॥
मुरछित हो धरणी पड़यो, वलि मूंके हे मोटा नीसास कि। सु. ॥12॥
व्यास कहै सुणि साहिबा, स्युं खोवै हे फोकट निज साखि कि।
और बुद्धि इक अटकलां, तब लगे है मन धीरज देउ राखि कि। सुं. ॥13॥
जो रावल जिम तिम करी, पकड़ीजे हे तो पहुँचे मन हूँस कि।
आलोची मन आपण, धीरज धरि हे मन पूगै हूंस कि। सुं.14॥
केसरि चन्दण कुमकुमा, छंटीज्ये हे कीज्ये रंग रोल कि। सुं.।
वारू दीध पहिरावणी, हय गय रथ हे आभरण अनेक कि। सुं. ॥15॥
भगति जुगति राणइ भली, संतोष्या हे सकल राय राण कि। सु.।
लालचंद कहि सांभलउ, अस बोलइ हे सइंमुखि सुलतान कि। सु. ।16॥

॥दूहा॥

बाँह झालि सुलतांन कहें, राय सुणो महाराउ।
महमानी तुम बहुत की, अब हम गढ़ दिखलाउ॥1॥
रतनसेन साथे हुओ, विषमी विषमी ठोड़।
देखायो सुलतान ने, फिरि-फिरि गढ चीत्तोड़॥2॥
विषम घाट बांको घणो, देख्यां छूट गरब।
खोट नहीं किण बात नो, साज सांतरो सरब॥3॥
कीज्यें कोड़ि कलप्पना, तोहि न आवै हाथ।
इम विचारी आपणें, इम जंपे दिल्ली नाथ॥4॥
काम काज हम सुं कहो, बंधव जीवन प्राण।
बहु भगति तुम हम करी, अब सीख मांगे सुलताण॥5॥
एम कही बगसं वसत, आलम वारम्वार।
कनक रतन माणक जड़ित, आभ्रण शस्त्र अपार॥6॥
आलिम कहै ऊभा रहो, करयो मया सदीव।
रावल कहै आगे चलो, ज्युं सुख पावै जीव॥6॥
ईम कहि गढ बारणे, संचरीयो महाराव।
खुरसाणी खोटे मनै, देखैं दाव उपाव॥7॥

राघव-चेतन की कुमंत्रणा

(ढाल (7) - राग-माठ. 1. पंथी एक संदेसड़ो, 2. कपूर हुवै अति ऊजलोरे एंदेसो)
व्यास कहै नहिं एहवो रे, औसर लहस्य ओर।
कहस्यो पछै न कह्यो किणे, थे मति चुको इन ठोर॥1॥
साहिबजीथे मानल्यो मारी बात, वलि एहवी न पायवी घात।
सुनि सुलतान मन चिंतवै रे, साच कहै छै एह।
अवसर चूक गमाड़ियो, मोल न लहीइ तेर॥2॥ सा.।
हुकम कीयो हल्लां करी रे, विचल्यो साह वचन्न।
जूझारे जाइ झालियो रे, कपटइ राण रतन्न॥3॥ सा.॥

राणा की गिरफ़्तारी

हम महिमानी तुम करी रे, अब तुम हम मेहमान।
पेशकशी पदमणी कीयां, हिवैं छूटेवो राजान॥4॥सा.॥
साथे सुभट हुंता तिके रे, तेह हुआ मति मंद।
हिकमति कांइ न केलवी, राय पड़्यो बहु फंद॥5॥सा.॥
बेड़ी घाली वेसाणीयो रे, राह ग्रह्यो जिम चंद।

जोरो कोई चालीयो, सिंह पड़्यो जिम फंद ॥6॥सा.॥
गढ ऊपरि बातां गई रे, हलहलियो हिंदुआंन।
गढपति झाल्यो आपणो जी, कीज्ये केहोपान॥7॥सा.॥
गढनी पोलि जड़ाइ नईरे, मिल्यो कटक गढ मांहि।
लोक सहु कहै राय जी, भुरिख अकलि सुनाह॥8॥सा.॥
कांई कीयो कपटी तणों रे, असुर तणो वीसास।
राय ग्रह्यो हिव पदमणी ने, गढनो करसी ग्रास॥9॥सा.॥
आय बैठो सुभटां विचै रे, वीरभाण बड़ वीर।
आलोचै मिल एकठा जी, सूर सुभट रिणधीर॥10॥सा.॥
एक कहै गढ में थकां रे, सबलो करो संग्राम।
एक कहै रूड़ो हुवै रे, राति (दिवस) वाहें काम॥11॥सा.॥
टाणो न मिले जूझतां जी, संकट मांहिं सामि।
एक कहै नायक विना जी, न रहै जूझयां मामि॥12॥सा.॥
हतंज्ञानंक्रियाहीनं, अज्ञानं च हतंनरं।
हंतंनिर्नायिकंसैन्यं, अभर्त्तारिस्त्रियोहतं॥1॥
सबला सुं जोरो कीयां रे, कारिज न सरै कोय।
कहें एक मरवो अछे जी, ज्युं भाव त्यूं होय॥13॥सा.॥
मूंआं गरज न का सरै जी, छल विण न सरै काज।
'लालचन्द' छल बल कीयां जी, अविचल पामै राज॥14॥

चितौड़ दुर्ग में शाही दूत द्वारा पद्मिनी की माँग

॥दूहा॥
मिलि मिलि मोटी मंत्रवी, सूर सुभट रजपूत।
इण विधि आलोचै तिस, आयो आलिम दूत॥11॥
आलिम आया दूत वे, बूलाया देइ मान।
आलिम साहि तणा वचन, ते परकासै परधान॥2॥
आलिमसाहिं अलावदी मूंक्या करिवा प्रीति।
मानो जो ए मंत्रणो, तो रंग वाधइ बहु प्रीति॥3॥
(ढाल (8) मेवाड़ी रंजा रे चीत्रोड़ो राजा रे, एहनी-)
मुझ मानो वातां रे; जिम होवै धाता रे;
वले एहवी रे घातां घांतां दोहरी रे॥1॥
साहि पदमणि तेड़े रे, तुम राजा छोड़े रे;
बहु कोडै कर तोड़ै बेड़ी लोहनी रे॥2॥

गढ कोट भंडारा रे, धन सोवन तारा रे,
हय गेवर सारा माणिक जवहरु रे॥3॥
अवर नहिं मांगै रे, तुम देश न भांगै रे
मांगे मन रंगे पदमणी मनहरु रे॥4॥
मन मांहि विचारु रे, बहु जूझ निवारै रे;
जो तुम देस्यो नारी सारी पदमणी रे॥5॥
तो देस्यो राजा रे, धन मानै ताजा रे,
नहिं छूटण इलाजा बीजा तुम धणी रे॥6॥
जो वातें सीधी रें, राणी नवि दीधी रे,
तो होडै गढ़ तोड़ैं नाखुं ईण घड़ी रे॥7॥
भांजे तुम देस्यां रे, भांगी टूक करेस्यां रे;
तुम राज हरेस्यों तुम सेती लड़ी रे॥8॥
ईम भाखी चाल्या रे, परधाने पाल्या रे;
बांहे करि झाल्या आल्या धन बहू रे॥9॥
हम सिर तुम खोलै रे, वीरभाण इम बोलै रे;
हम गढ तुम ओलैं राय रांणी सहू रे॥10॥
आलोची रातें रे, कहस्यां परभातै रे;
जातै रहवातै सुख हम तुम सही रे॥11॥
पाउधारेंउ डेरै रे, आलिम पंति हेरै रे;
विसटालुं चर पाछा फिरै इम कही रे॥12॥
आलोचइं केड़ै रे, न हुंता जे डेरै रे,
आघा ले तेड़ै हेडै स्युं होसी रे॥13॥

पथविचलित वीरभाण

आलिम अडीलो रे, किण ही परि ढीलो रे,
होवे न रढीलो तुरक गयो गुसे रे॥14॥
जो दीज्यै राणी रे तो न रहै पाणी रे;
विण दीधे गढ जाणी हाणि होवै पछै रे॥15॥
जोरें जो लेसी रे, बहु बंद करेसी रे,
तो कांइ नव रहसी रजवट जे अछ रे॥16॥
आ पदमणी दीज्यैं रे, घर सुत संधीजे रे,
विण दीधां बंधीजे, छीजै जन घणो रे॥ 17॥
कोई बोल्यो वाणी रे, ए मुँ की अडाणी रे,

राणी धर लीजे राणो आपणो रे॥ 18॥
वीरभाण विचारइ रे, मन वैर संभारइ रे,
इण सोहाग उतार्यो मुझ माता तणो रे॥19॥
जो परही दीज्ये रे, सहिजइ छूटीज्ये रे,
कीज्यें न विलंभ इण बातें घणो रे॥20॥
सुभट समझावै रे, ए वात सुणावै रे,
सगला सुख थावै जउ दीजइ इण रे॥21॥
किणही मनमानी रे, भलीय न जाणी रे, सुभटां ने न सुहाणी रे
विण नायक न ताणी बोल कह्यो किणे रे॥22॥
यस्मिन्कुलेयत्पुरुषः प्रधानः स एव यत्ने न हि रक्षणीय।
तस्मिन विनष्टे सकलं विनष्टे नानाभि भंगे ह्यरकावहंति॥
मन दुरमत आवी रे, सगलां मन भावी रे,
वीरभाण सोहावी भावी जे हुवै रे॥23॥
सगलां ही विचारी रे, परभात नारी रे,
दीज्यै निरधार उठि ईम कहै रे॥ 24॥
सुणि पदमणी सोचै रे, नयणे जल मोचै रे,
परधाने पौचे मन में खलभली रे॥ 25॥
सुभटां सत हारयो रे, राय बंधारयो रे,
अम काज विचार्यो भव हारण वली रे॥26॥

पद्मिनी की व्यथा

किण सरणें जाऊं रे, दीन भाष सुणाउं रे,
सतहीण न थाउं मन कीज्ये खरो रे॥ 27॥
ए सुभट कुजीहा रे, सी कीजइ ईहा रे
मुख असुर न पेखउं जीहा खण्डि मरउ रे॥28॥
समझी मन सेती रे, खत्री धर्म खेती रे,
मन धीर धरेती जिम एती सती रे॥ 29॥
सीता ने कुंती रे, द्रोपदि बहु भंती रे,
लही संकट न सील चूकी रती रे॥ 3.॥
सत सील प्रभावइ रे, दुख नइ मउनावइ रे,
बहु आणंद बधावइ, दिन रयणी गरवइ रे॥31॥
हिवें सील प्रभावें रे, सुणयो मन भावै रे,
मुनि 'लालचन्द' गावै पावै सुख ध्रुवै रे॥ 32॥

गोरा के घर पद्मिनी गमन

॥दूहा॥

गोरो रावत तिण गढे, वादल तस भत्रीज।
बल पूरा सूरा सुभट, खत्री धर्म (राखै) तेहीज॥1॥
तजी सेवा रावल तणी, किणही कुबोल विशेष।
चाकर गयर थका रहें, गास गोठ तजि रेख॥2॥
जेहवै ते जाता हुता, अवर ज सेवा कर्म।
सेहवें गढ रोहो हुवउ, रहिया खत्रीवट धर्म॥3॥
गांठि खरच खाता रहै, अभिमानी वड़ वीर।
गढ रोहो किम नीसरै, पर दुख काटण धीर॥4॥
एहवा नें पूछै नहीं, न्याय हुवे तो केम।
पंडित ने आदर नहीं, मूरख सुबहु प्रेम॥5॥
(ढाल (9) - एक लहरीले गोरिलारे-ए देशी)
गढ नी लाज वहै घणीरे, गोरो वादल राउरे।
ते सुणीया मोटा गुणी, बुद्धिवंत सूर साहाउरे॥1॥
गढ़ नी लाज वहै रे॥आं.।
चित सुं एहवो चिंतवै रे, चालि चढी चकडोलो रे।
साथ सहेली नें झूलरै रे, ते गई गोरा नी पोलो रे॥11॥ ग.॥
बैठो दीठो बारणे, गोरोजी गात गयंदो रे।
हरषित मनि पदमणी हुवैं, ए दूर करेसी दंदो रे॥3॥ ग.॥
सामो धायो उलही, प्रणमें पदमणी पायो रे।
मया करी मो ऊपरै रे, गोरिल बोलै माय रे॥4॥ग.॥
आज दिवस धन्य माहरो रे, आवी आलसुआ में गंगो रे।
पवित्र थयो घर आंगणो, अधिक पवित्र मुझ अंगो रे॥5॥ग.॥
काज कहो कुण आविया, माताजी मुझ आवासो रे।
तब वलती पदमणि कहै, अवधारो अरदासो रे॥6॥ ग.॥
सुभटें सीख दीधी सहु रे, खोई खत्रीवट लीको रे।
असुरां घरि अमनें मोकलै, कुमतीयां लाज कितीको रे॥7॥ग.॥
सीख द्यो हिव मुझ नै, आई छुं इण कामो रे।
ग्यान किसै मुझ नें गिणै, कहै गोरा इण गामो रे॥8॥ग.।
खरच न खावां केहनो, कोई न पूछै कामो रे।
तोपिण हिव चिंता तजो, आया जो इण ठामो रे॥9॥ग.॥

अलगो भय असुरां तणो, हओ हिव मात निचिंतो रे।
जाण्या सुभट वड़ा जिके, जिण दीधो एह कुमंतो रे॥10॥ग.॥
वर मरवो इण बात थी, राणी देई राओ रे।
छूटावीज्ये एहवो, सुभट न खेलै डाओ रे॥11॥ग.॥
करसी ते जीवी किसुं, थाप्यो जिण ए थापो रे।
कर जोड़ी राणी कहै, इण घरि एह अलापो रे॥12॥ ग.॥
खोयो राय गढ खोवसी, इण बुद्धि सारू एहो रे।
तिण तुझ हुं सरणो तकी, आई छुं इण गेहो रे॥13॥ग.॥
सिंह तणो स्यो स्यालीइ, कारिज करे समारो रे।
गज पाखर गजस्युं चलै, भींत निवाहै भारो रे॥14॥ग.॥
ए कारिज तुम स्युं हुवै, तूं हिज बीड़ो झालि रे।
सुभट बड़ो तुं माहरोरे, दोहरी वेला में ढालि रे॥15॥ग.॥
सुणि माता सुभटां बड़ो, गाजण थो मुझ भ्रातो रे।
तस सुत वादल तेहनै, पिण पूछीजे वातो रे॥16॥ग.॥

पद्मिनी का गोरा के साथ बादल के घर जाना

बेऊ चाली आविया, बादल ने दरबारो रे।
विनय करी नें वादले रे, आय कीध जुहारो रे॥14॥ग.॥
पूछै कारिज पय नमी, कहो आया किण काजो रे।
'लालचंद' कहै तस अखीइं, जस मुख हुवै लाजो रे॥18॥ग.॥

॥दूहा॥

गोरो कहै वादल सुणो, पदमणि साटै राय।
छुड़ावीज्यै एहवो, सुभटे कीयो उपाय॥1॥
ते ऊपरि ए पदमणी, आई आपां पासि।
स्युं करिवो सूधो मतो, वेघो कहो विमासि॥2॥
सरम छोड़ी बैठा सुभट, आपे अछां उदासि।
छोड़ी दीधो रायनो, गाम गोठि तजि ग्रास॥3॥
लाजत छै नीची दियां, कुल खत्री धर्म सार।
डीलै दोय आपां सुभट, आलिम कटक अपार॥4॥
किण विधि जीपीजइ किलो, ते भाखो भत्रीज।
तिणए आवी तुम कन, पदमणि आपेहीज॥5॥

(ढाल (10) - नाहलिया न जाए गोरी रे वणहटै रे, ए देशी। राग-मारू)

पदमणि बोले वीरा वादलारे, सुणि मोरी अरदास।

हुं सरणागति आवी ताहरै, सांभलि तुझ जसवास॥1॥पद.॥
हिव आधार छै एक तुम तणो रे, दोहरी वेला दाखि।
सगति न हवै तो सीख द्यो, राखि सके तो राखि॥2॥पद.॥
नहिंतर पाछे मन जाण्यो करू रे, देखुं छुं तुम वाट।
सील न खंडुं जीभड़ी खंडस्युं रे, कै नांखुं सिर काट॥3॥पद.॥
पच्छिम ऊगै रवि पूरब थकी रे, वारिधि चूकै ठीक।
जलणी जलुं कै जल में पडुं रे, पिण नहु लोपुं लीक॥4॥पद.॥
एक वार आगे पाछे सही रे, इण भव मरवो होय।
तो स्युं करुं हिव जीव नै रे, एक भव में हुवै दोय॥5॥पद.॥
जउ उदयागत आवइ आपणइ, पूरब कृत पुण्य पाप !
विण भोगवियां ते नवि छूटियइ, करतां कोड़ि कलाप॥6॥पद.॥
किण जाण्यो थो एहवा कष्ट में रे, पड़सी रतन पडूर।
पिण एहवी भावी बणी रे, जेहवो कर्म अंकूर॥7॥प.॥
सिंघल देश किहां दरिया परै रे, किहां मेवाड़ सुदेश।
किहां सिंघल वीरा री बइंनडी रे, किहां महाराण नरेश ॥8॥
कोइक पूरब भव संबंधसुं रे, आइ मिल्यो संजोग।
भवितव्यता रइ जोग मिलइ इस्यो रे, वणियो एम वियोग॥9॥
पिण मन माहि हिवै जाणुं अछुं रे, कोइक पुण्य प्रमाण।
बंधव जी तुम सुं भेटो हुओ रे, तो भय भागो सुलतान ॥10॥
मात पिता थे बंधव माहरा रे, हिवै तुम सगली लाज।
सील प्रभाव मुझ आसीस थी रे, जैत करो महाराज ॥11॥प.॥
अविचल नांम नव खंडे करी रे, भांजो अरि भड़वाय।
राखो पदमणि रतन छुडाइ ने रे, थंभो गढ जसवाय॥12॥
जैत थायज्यो रिपु जीपिनें रे, पूरो सुजन जगीस।
वादल वीरा ए मुझ वीनती रे, जीवो कोड़ि वरीस॥13॥प.॥
साहसि करतां मन वंछित सरै रे, वरदायक सुर होय।
ए काची काया थिर नवि रहै रे, जग में थिर जस सोय॥14॥
इम सती वचने प्रेरियो रे, मन थयो मेरु समान।
'लालचंद कहै चढती कला रे, सामीधर्म गुण जाण॥15॥

बादल का राणा को मुक्त कराने का संकल्प

॥दूहा॥
सुणि वातां मन उल्लसी, बोलें वादल वीर।

केहरि जिम त्राडकि नें, अतुली बल रिणधीर॥1॥
बाबा सुणि वादल कहें, सोई रहो सुभट।
तो भत्रीज हुं ताहरो, खलां करु तिलवट्ट॥2॥
एकण पासे एकलो, एकणि साहि कटक।
बाबा तो हुं बादलो, मारि करुं दहवट्ट॥3॥
मात पधारो निज महल, पवित्र थयो मुझ गेह।
चित में चिंता मती करो, जेर करूं सब जेह॥4॥
पाव धरुं पतिसाह ने, छोडावूं श्री राजान।
जो वांसे जगदीस छै, तो करस्युं वचन प्रमाण॥5॥
(ढाल (11) - मधुकर नी)
काम घणा श्री राम ना, कीधा श्री हणमंत रावत।
तिमहुं श्री रावल तणा, करस्युं काम अनंत रावत॥1॥
बीड़ो झाल्यो वादलइं, आप भुजाबल जोर रावत।
मूकउ मनधरी खलभली, द्यो नोबति सिर ठउर रावत॥2॥
सामिधरम सुपसाउलैं, नइं तुम्ह सत पसाय रावत।
परदल नें भांजी करी, ले आवो महाराय रावत॥3॥बी.॥
जिण तुम सुं इम दाखियो, जावो असुरां गेह रावत।
जीभ जलो तिण मनुष्य री, खत्रीवट न्हांखी खेह रावत॥4॥
विरुद वखाणी पद्मणी, सिर पर लूण उतारि रावत।
सूर सुभट सिर सेहरो, तूं अमलीमाण संसारि रावत॥5॥बी.॥
गोरो जी सुणि बोलड़ा, मन तन हरखित दोय रावत।
सुर होवे असुरां मिल्यां, कायरे कायर होय रावत॥6॥बी.॥
मन नचिंत तुमे करो, महल पधारौ माय रावत।
बादल बोल न पालटइ, जो कलि उथल थाय रावत॥7॥बी.॥
सूरिज ऊगै पच्छिमें, मूंके समुंद मरयाद रावत।
ध्रुव चले पिण न चलइ, सापुरिषां रा साद रावत।

माता का आग्रह और बादल का उत्तर

महल पधार्‌या पदमिणि, तेहवै बादल माय रावत।
सगली बात सुणी करी, पासै उभी आय रावत॥9॥बी.॥
नैंण झरै मन दुख करई, मुख मूकै नीसास रावत।
विनो करी सुत वीनवै, किम दीसो मात उदास रावत॥10॥
मो जीवंतां मातजी, चिंता सी तुझ चित्त रावत।

कांय तूं आमणदूमणी, कहो मुझ स्युं धरी प्रीत रावत ॥11 ॥
पूत सुणो माता कहै, सगतें स्यो जंजाल रावत।
कांय मांड्यो किण रै बलै, ए घर जांणी ख्याल रावत ॥12 ॥
पूठै स्युं देखो घणो, आगें पाछे तुम एक रावत।
तूं मुझ आंधा लाकड़ी, तुं कुल थंभण टेक रावत ॥13 ॥बी. ॥
जीव जड़ी तुं माहरै, तूं मुझ प्राण आधार रावत।
तो विण बेटा माहरै, सूनो ए संसार रावत ॥14 ॥बी. ॥
हिव तूं जूझण ऊमह्यो, पोति समाही काल रावत।
दांत अछै तुझ दूधरा, अजी अछै तु बाल रावत ॥15 ॥बी. ॥
तुझ नें लाज न कोई चढे, गढ में सुभट अनेक रावत।
ग्रास न कोई भोगवां, राय तणो सुविवेक रावत ॥16 ॥बी. ॥
कदी कीधा जाणो किसा, बेटा तें संग्राम रावत।
लब्धोदय कहै बहु परै, माय समझावै आम रावत ॥17 ॥
॥दूहा ॥
रिणवट रीत जाणै नहीं, विचि विचि बोले एम।
किम अणजाण्यो कीजिए, कारिज अनड़ नि तेम ॥1 ॥
अजी न साधी घर घरणि, कहतां आवै लाज।
अती उच्छक उतावलो, रखै विगाड़े काज ॥2 ॥
कीधा कदे न आज लगि, एक त्रिणा थी दोय।
बालक बेटा वादला, किलो किसी परि होय ॥3 ॥
तब हसी वादल वीनवै, हुं कित बालो माय।
पूछुं तुझ नें पय नमी, ते मुझ ने समझाय ॥4 ॥
पोढुं दिवै न पालणै, फिरि फिरि द चूं खूं धाय!
आड़ो करतो आगलै, धांन न मांगु माय ॥5 ॥
(ढाल (12) - श्रेणिक मन अचरिज थयो, ए देशी)
वादल इण परि वीनमैं, मात नहीं हुं बालो रे।
रिणवट आलिम साह सु, जोइ करू ढक चालो रे ॥1 ॥वा. ॥
थापी नै वली उथपुय राय राणा सुलतानो रे।
तो सुं कारज ए हुवे, कांय मन में डर आणो रे ॥2 ॥पा. ॥
नान्हइ किसनइ नाथियो, वासिग नाग वडेरो रे।
नास करइ रवि नान्हड़ो, अंधकार बहुतेरो रे ॥3 ॥वा. ॥
बालूड़ो केहरी बचो, भांजे गैवर थाटो रे।

तो हुं थारो छाबड़ो, रिपु न्हांखुं दहबाटो रे॥4॥वा.॥
मति जाणो थे मात जी, कुल में लाज लगाऊं रे।
गंजण छावो गाजतो, आज करी नें आऊंरे॥5॥वा.॥
जो पाछा पग चातरुं तो जाणो मति रजपूतो रे !
कायर वाणी किस कहैं, देखो सुत करतूतो रे॥6॥वा.॥
सूर वचन रजपूत ना, चित में चिंता व्यापी रे।
मन मांही बहु खलभली, सीख न तास समापी रे॥7॥वा.॥

पत्नी का आग्रह और बादल का उत्तर

बहुआं नै आइ कहैं, माहरो वचन ज मानो रे।
थे समझावो जाय ने, जो क्युं ही नेह पीछाणो रे॥8॥वा.॥
सोल शृंगार सझि करी, सुकलीणी सुविलासो रे।
जाणे झबकी बीजली, आवी प्रीउ नै पासो रे॥9॥वा.॥
रूपइ रंभा सारिखी, मृगनयणी गज गेलि रे।
कंचनवरणी कामिनी, साची मोहन वेलि रे॥10॥वा.॥
विनय वचन करि वीनवइ, हसत वदन हितकारो रे।
साहिब वीनति सांभलो, तन मन प्राण आधारो रे॥12॥वा.॥
साथ सबल पतिसाह नो, मुगल महा दुरदंतो रे।
एकाकी इण परि कहो, किम पूजीजे कंतो रे॥12॥वा.॥
कहें वादल सुण कांमनी, जोइ करूँ जे जंगो रे।
वज्र घणो नानो हुवइं, तोडै गिरि उत्तंगो रे॥13॥वा.॥
वात करंतां सोहिली, पिण दोहली रिण वेला रे।
सामी एहवइ मंत्रणइ, कांय करो जन हेला रे॥14॥वा.॥
सूर पणै वादल कहै, स्यानै भय देखावो रे।
तेह नाहिं हुं वादलो, हिव द्युं हेठो दावो रे॥15॥वा.॥
बोल इं मोटा बोल, निश्चइं निरवाहइ नहीं
तिण माणस रौ मोल, कोड़ी कापड़ियो कहइ॥1॥
गोला नालि वहै घणा, हय गय रथ भड़ झूझै रे।
घोर अंधार रिण रजकरी, सूरिज सोइ न सूझे रे॥16॥वा.॥
मुगल महाभड़ साहसी, मूंकै दोय दोय बाणो रे।
'लालचंद' पतिसाह स्यु, पूजै केहो किम पाणो रे॥17॥वा.॥
॥दूहा॥
शस्त्र ग्रही मोटा सुभट, दयें चैकी दिशि च्यार।

साहि सबल पति एकलो, भलो न एह विचार॥1॥
तब बादल हसि नें कह्यो, कही किसी थे बात।
रावल छोडावुं रतन, तो गाजन मुझ तात॥2॥
हुं गंजुं हय गय सुभट, भांजि करुं भकभूर।
सतावीस लख दल सहित, साहि करुं चकचूर॥3॥
नारि कहै रहो रावलो, किसो जणावो पाण।
अजीस नारी आपणी, साधि न हुवे सुजाण॥4॥
नारी सुं न्हाठा फिरो, मिटी न बाली लाज।
तो कहो कसी परि जूझस्यो, करस्यौ केहो काज ॥5॥
(ढाल (13) - नदी यमुना के तोर उडै दो पंखोया -ए देशी -)
तउ वलतो बादल कहै सुण कामनी।
तिण दिन आवीस सेज तुमारे जामनी॥1॥
जीपी आउं जिण दिन वैरी हुँ एतला।
छोडावुं श्री राण कि लोह करी कै भला॥2॥
तो दस मास न झाल्यो भार मुझ मात जी।
तें भाखीज्ये वात करुं तिण में कजी॥3॥
सूरातन मन देखी नारी तब इम कहै।
भलो भलो भरतार सुं मन में गह गहै॥4॥
हम हैं तुमारी दास कि पग की पानही।
निरवाहैजो वात जेती मुख स्युं कही॥5॥
मति किणही वातइ ढहि जाहु कि लाजवउ।
वंश बधानउ शोभ विरुद बहु छाजवउ॥6॥
घालैयो नें घाव घणो साहस करी।
खेसवयों रिण खेत खडग हणी लसकरी॥7॥
होय छछोहा लोह घणा थे वावयो।
हल करयो हथवाह अरी दल गाहयो॥8॥
द्यो मति पाछा पाव भरण भय मति गणो।
जीवण थी इणि वात सुजस कांइ द्यो घणो॥9॥
भिड़तां भाजै जेह मरै निहचै करी।
कानि सुणउं एहवात मरुं लाजइ खरी॥10॥
सुभटां मांहिं सोभ घणी थे खाटयो।
नव खंडे करी नाम अरी दल दाटयो॥11॥

सुभट कहावै नाम सहू ही सारिखो॥
पण रिण मांहिं तास लहिज्ये पारखो॥12॥
तिम करयो जिम हुं मन मांहिं गहगहूँ।
छल बल करयो काम घणो कासु कहूँ॥13॥
जीवन मरणे साथ तुमारो मइं कियो।
हिव करयो हथवाह करी करड़ो हीयो॥14॥
भूखा घर नी नार पूछी कुमतो कहै।
तिण सगलें संसारि बहुत अपजस लहै॥15॥
उत्तम राजकुमार सदा सुमतउ दियइ
धीरज कुलवट रीति रहइ जग जस थियइ॥16॥
हिव साची मुझ नार जिणें सुमतो कहयो।
निज कुल राखण रीत हिवै मन गहगहयो॥16॥
सुभट तणो सिणगार करायो नारीइं।
बंधाया हथियार भला निज करि लीई॥17॥
निज माता रा चरण नमी चित हरखीयो।
होय घोड़ै असवार गौरिल घर सरकीयो॥18॥
करी जुहार कहि राज रहो तां लगै घरै।
जाय आउं एक वार कटक पतिसाह रै॥19॥
कहै गोरो मुझ वात सुणो तुम बादला।
तुम जाओ मुझ छांड रहै किम मुझ कला॥20॥
काकाजी मन मांहि न तुम चिंता करो।
रिणवट एको साथ हुसी आपां खरो॥21॥
कौल करुं छु दक्षिण हाथ देई करी।
हुं जाऊ छुं चास भास देखण करी॥22॥

योद्धाओं की सभा में बादल

बादल ले आदेश गौरा रावत तणो।
सुभट मिल्या तिहां जाय साहस मन में घणो॥23॥
देखि सभा सगली मनमई विस्मय थई।
आवइ नहिं दरवार कदे क्यों आवई॥24॥
सुणिज्यइ गाजन नंदण सूर महाबली,
सही विचारी वात कोइक रिण री रली॥25॥
बैठा राजकुमार सुभट सहू एवड़ा।

धसि आयो तिण ठाम (सुभट) सहु हुओ खड़ा॥26॥
दे आसण सनमान प्रीयोजन पूछ ही।
आया बादल राज कहो ते किम सही॥27॥
आलोची सी बात बादल विहसी कहै।
जिण थी थी सुभटां लाज राज कुसले रहै॥28॥
आलोची निज बात मांडी नै सहु कही।
राणी देई राय छुडावण री सही॥29॥
आलोच्यो आलोच अम्हारो ए अछ।
कीज्ये तेह विचार कहो जे तुम पछे॥30॥
बादल बोले वारु कीयो ए मंत्रणो।
पिण इक माहरी बात सुणि आलोचणो॥31॥
सगतें सुंभट संग्राम करै मन गहगही।
पिण नवि मूंके माण बात में संग्रही॥32॥
मान विना नर कण विण कुकस जेहवो।
'लालचंद' नर टेक न छंडै तेहवो॥33॥
॥कवित्त॥
अंगीकृत अनुसरइ होइ सापुरिस जु साचा,
अंगीकृत अनुसरह होइ कुल जातै जाचा।
अंगीकृत ईश्वरइ जहर पीधउ दुख हंतइ,
वारिध वाड़व अपिग वहें पाणी सोसंतइ।
काछिवउ कंध बहु धावही, अजहु भार एवड़ सहइ।
मुनि लाल वयण आदरि जके, सो सज्जन बहु जस लहइ॥1॥
॥दूहा॥
काया माया कारमी, जात न लागई वार।
सूरपणें कायरपणै, मरणो छै एक वार॥1॥
तउ ढांढा हुइ किम मरौ, मरउ तउ मरण समारि
पत जास्यै पदमणि दीया, अमचउ एह विचारि॥2॥
राय लीइं राणी दीइं, जाण्या यदि जुझार।
मस्तक केस न को रहइ, अपकीरति संसार॥3॥
नाक मुंकिजो ऊबरयां, केहो जीवन स्वाद।
देश विदेश छांडो पडो, तजीइं किम कुल मरजाद॥4॥
वीरभाण वलतउ कहइ, बोल्यइं घणे पराण।

वादल बात भली कहउ, पिण समझा नहीं तिलमान ॥5 ॥
बादल बात भली कहो, अनेन समझां मोड़।
रखे राणी राजा लीयो, तो पति राखो चितोड़ ॥6 ॥
(ढाल (14) - म्हारी सुगण सनेही अतमा, ए देशी)
आलिमपति अलावदी, ईश्वर नो अवतार रे भाई।
मुगल महाभड़ जेहनै, लाख सतावीस लार रे भाई ॥1 ॥आ. ॥
एक हुकम करतां थकां, उठै एक हजार रे भाई।
सगले थोके साबतो, पहुंचीजे किम पार रे भाई ॥2 ॥आ. ॥
कलै कलै पदमणी राखसुं, राय छंडी हजूर रे भाइ।
पतिसाह प्रति लोपी ने, घूक अंध नित घूर रे भाई ॥3 ॥आ. ॥
कहि बादल सुण कुंवरजी, स्यउ आपां ए सोच रे भाई।
काइ आलोचइ केहरी, मारंतां मदमोच रे भाई ॥4 ॥आ. ॥
इम करतां जो को मरइ, तउ जगि कीरति होई रे भाई।
कन्या साटइ पामतां, सुंहगी कीरित सोई रे भारे ॥5 ॥आ. ॥
कुमर कहै इण बात री, कीज्यैं ढील न काई रे भाई।
सोई अरजून जाणीइं, जे वेघो वालै गाय रे भाई ॥6 ॥आ. ॥
रहै पदमणी आपणै, नइं वलि छूटइं राण रे भाई।
इण बातइ कुण नहिं हुवइ, सुप्रसन मनहि सुजाण रे भाई ॥7 ॥
वादल कहै सहू भलो, हुइ आवीसीइ तुम नाम रे भाइ।
करज्यो वांसइ कुमर जी, सबलो ऊपर सामि रे भाई ॥8 ॥आ. ॥
पहिली मति ऊँधी करी, आलम तेड्यो मांहि रे भाई।
तेड्यो तो मारण तणो, कीधउ दाव सु नाहि रे भाई ॥9 ॥आ. ॥
जहर कहर मुगल मिल्या, गढ में तीस हजार रे भाई।
छल बल करि नवि छेतर्या, तौ स्यौ सोच हिवार रे भाई ॥10 ॥
लसकर मांहि जाइ नै, ले आव छुं बात रे भाई।
इम कहि नै अश्वे चढ्यो, साहस एक संघात रे भाई ॥11 ॥आ. ॥
ऊतरीयो गढ पोलि थी, निलवट निपट सनूर रे भाई।
अँगै आऊध अति भला, प्रतपै तेज पडूर रे भाई ॥12 ॥आ. ॥
एकलमल अश्वे चढ्या, अभिनव इन्द्र कुमार रे भाई।
आलिम देखी आवतो, पूछायो तिण वार रे भाई ॥13 ॥आ. ॥
सीह न जोवइ चंदबल न जोवइ घर रिद्धि।
एकलड़उ बहुआ भिड़ा ज्यां साहस त्यां सिद्धि॥

पूछ्यां थी वादल कहै, मेलि करण रै मेलि रे भाई।
जाइ कहउ हुँ आवियउ, पदमिणि तुम नइ गेलि रे भाई।14।आ.॥
तुम उपगार करुं वड़ो, मानै जो मुझ बात रे भाई।
सेवक आवी इम कहै, हरख्यो आलिम गात रे भाई॥15॥आ.॥
तेडायो आदरि करी, दीठो अति बलवंत रे भाई॥
बैसाण्यो दे वैसणो, मान लहै गुणवंत रे भाई॥16॥आ.॥
हंसा जहाँ जहाँ जात है, तहाँ तहाँ मान लहंत।
कग्गा बग्ग कग्ग बग, कग बग कहा लहंत॥
बुद्धिवंत बादल राइ ने, पूछे श्री पतिसाहि रे भाई।
सलाम करी बैठो तिसै, आलिम हूओ उच्छाहि रे भाई।17।आ.॥
'लालचन्द' कहै बुधि थकी, दोहग दूर पुलाइ रे भाई।17।आ.॥
॥दूहा॥
नाम तुमारा क्या कहो, किसका है तूँ पूत।
क्या महीना रोजगार क्या, किसका है रजपूत॥1॥
किण भेज्या किण काम कुं, आया है हम पास।
तब वलतो बादल कहै, बुद्धिवंत हीइं विमास॥2॥
बोली जाणइ अवसरइ, माणस कहीइ तेह।
बादल इण परि बोलीयउ, जिम बधीयो आलम नेह॥3॥
बल थी बुध अधिकी कही, जउ ऊपजइ ततकाल।
बानर बाघ विणासियो, एकलड़इ सीयाल॥4॥
नाम ठाम कहि वीन सुभट चढ्या अभिमान।
तिण मुंकियो छानों मनै, पदमणीयें परधान॥5॥
(ढाल (15) - सइंमुख हुं न सकुँ कही आडी आवै लाज)
जिण दिन थी तुम देखीया जिमवा मउसरि साह।
तिण दिन थी पदमिणि मन बसिउ तुम्ह माहो रे॥1॥
सुण आलिम धणी। विरह विथा न खमायो रे, बात किसी घणी ॥आंकणी॥
ते धनि नारी नारी जाणीइं जेहानिइ ए भरतार।
इण थी रूप अवधि अछ, काम तणो अवतारो रे॥2।सु.
राति दिवस झूरती रहें, मूकें मुखि नीसास।
नयणे नीझरणा झरें, नारी अधिक उदासो रे॥3।सु.॥
जिण दिन थी थे वीछार्‌या, नयणे नेह लगाय।
सुख जाणइ यम सारिखो, भुवन भाठी सम थायो रे॥4सु.॥

तरुणापउ विस सउ लगइ, सोल शृंगार अंमार।
अगनि झालि सम चांदलउ, जालण बालण हारो रे।।5।।सु.॥
भूषण जाणि भुजंग सा, चउकी चाक समान।
बीछु सम ए विछीया, सिज्या अगनि समानो रे।।6।।सु.॥
वारु जेह विछावणा, तीखा बरछा जाणि।
पड़दउ तेह पहाड़ सउ, अङ्गण आवइ खाणो रे।।7।।सु.॥
देह गई सब सूकि नै, नयने नींद हराम।
राति दिवस रटती रहें, साहिब जी तुम नामो रे।।8।।सु.॥
भूख प्यास लागै नहीं, चिन्ता व्यापी देह।
कीधी का तुम्ह मोहिनी, निवड़ लगायो नेहो रे।।9।।सु.॥
मास लोही नामइ रह्यउ, छाती पड़ियउ छेक।
दुक्ख दुसह किम करि सहइ, तुम्ह विरह सुविवेको रे।।10।सु.॥
पलक गिणें एक मास सउ, घड़ीय गिणे छम्मास।
वरस समान दिन नइ गिणई, इम विरह पीड़इ तास रे।11।सु.॥
तुम्हसुं लागउ नेहलउ, जाण मजीठउ राग।
पट्टकूल फाटें थकें, रहें त्रागा सुँ लागो रे।।12।।सु.॥
तूं जीवन तूं आतमा, गत मति प्राण आधार।
सासें सासें संभरइ, पदमिणि वार हजार रे।।13।।सु.॥
मुख करि किम कहतइ बणें, जे तुम्ह सेती राग।
ते मन जाणै तेहनो, लागो जिण विधि लाग रे।।14।।सु.॥
विगति लहै विरहां तणी, विरही माणस तेह।
'लालचन्द' कहइ मोवतइ, कहियइ न जावइ तेह रे।।15।।सु.॥
।।दूहा॥
चीठी दीधी चूंपस्युं, वांची देखें साहि।
समाचार विगतें सहित, सगला ही इण मांहि।।1॥
वइत हजार दरवदिल मेर सजिइरिया रु चिहुँ नमसु
बुइ कुनम् आदिल केवद रद हजार।।1॥
तन रांर वाव साजिम् रंग हाजितार तार दीगर,
सरोजनें स्तेव जुज वार योर यार।।2॥
मइ मन दीनो तोहि, जा दिन तो दरसन भयो।
अब एती वीनति मोहि, प्रेम लाज तुम निरवहौं।।2॥
मइ मन दीनो तोहि सकइ तो ऊडि निवाहीयं।

नातरि कहीइ मोहि, हुं मनि बरजउ आपणउ॥3॥
निसि वासर आठ पहर, छिण नहिं विसरु तोहि।
जिहि जिहि नइन पसारहुँ, तिहि तिहि दे तोहि॥4॥
आठ पहोर चोसठि घड़ी, जबही न देखुं तुझ।
न जाणु तइं क्या कीया, प्राणपीयारे मुझ॥5॥
दोबैतां दूहा सहित, चीठी एक उपाय।
बादल दीधी साहिनै, अकलि थकी उपजाय॥6॥
चले कहै आलिम तणा, यदि आया परधान।
सुभटां मरणो आंगम्यो, पिण न तजे अभिमान॥7॥
वीरभाण राजा सहित, सुभटां नै समझाय॥
ज्युं ज्युं कान ढेराई नै, हुं आयो तुम पाय॥8॥
राणी मूँक्यो मो भणी, घणी वीनती कीध।
हिव हुं जाणुं तुम तणी, होसी मनोरथ सिद्धि॥9॥
(ढाल (16) - वंदणा करु वारवार-ए-देशी-प्राहुंणारी)
वालेसर हो वली परभातैं बात, कहस्युं आइ होसी जीसीजी।
दिलीसर हो वांची चीठी वात, सीख करां जावां घरे जी॥1॥
जोती होसी वाट, विरह व्यथा पीड़ी थकी जी॥दि.॥
जाय टालुं उचाट, तुम संदेश सूधा करी जी॥2॥
इण परि सांभली बोल, पदमणि प्रेमइ बांधियो जी।
आलिम मन झकझोल, कीधो वादल वाय करै जी॥3॥
मूँके मुख नीसास, चीठी बांचे चूंपस्युं जी।
आलिम मन मृगपाश, पदमणि कागद पाठइयो जी॥4॥
नयणां रे नीर प्रवाह, विरह अगनि व्यापी घणी जी वा।
ए अचिरज मन मांहि, भभकइ अधिकी भीजतां जी ॥वा.।
हृदय समुद्र अथाह, मांही विरहानल दहइ जी॥वा.॥5॥
नयन वीजलि रइ नाह, बूंठइ न्याय न बीसमइ जी॥वा.॥
घल घट हलीयो रे जाय, प्रेम सुणी पदमणि तणउ जी॥वा.॥
मुख सुं कागल लाय, वार वार चुम्बन करइ जी॥वा.॥7॥
खूब लिख्या इण मांहि, संदेशा साचा सहु जी।
दिलीसर हो उठे कराहि, काम तणै बाणै हण्यो जी॥8॥
अहि सम आलिम साहि, साहि न सकतो को सही जी।
पदमणि मंत्र चलाइ, वादल गारूड़ वसि कीयोजी॥9॥

पाहुणउ तूँ हम आंज, कहुँ ते महिमानी करां जी।।वा.।।
सगली तुम्ह नइं लाज, वादल राज हमां तणी जी।।वा.10।।
सुभटां सहु समझाय, साहि कहै वादल सुणो जी।
सगली तुम नें लाज, थापैयो एहिज मतो जी।।11।।
करतां तुम उपाय, जो किम ही करि पदमणी जी।
हाथ चढ़े हम आय, तो देखे कैसी करुं जी।।12।।
इम कहि हय गय सार, लाख सोनइया रोकड़ा जी।
वारु वले सिरपाव, वकस कीया वादल भणी जी।।13।।
रुको द्युं तुम हाथ, प्रीत वचन मांहिं लिखुं जी।
जाइ पड़ें पर हाथ, आलिम इम वचने नहीं जी।।14।।
तुम विरह की बात, वचने करि कहिस्युं घणी जी।
चिठी आवै न घात, कोई जाणै भांजै मतो जी।।15।।
महिर करी हिव मोहि, वीदा करो वेघो घणो जी।
आलिम साथे होय, पोलि लगे पहुँचावीयो जी।।16।।
धन लेइ आयो देखि, हरख्यो माता नो हीयो जी।
वंछित फल विशेष, 'लालचंद' धरमे सहीजी।।17।।
।।दूहा।।
खुशी हुई नारी खरी, धन दिवस निज जाणि।
गोरोजी मन हरखीयो, करसी काम प्रमाण।।1।।
पदमणी पिण मन गहगही, ए मेलवसी भरतार।
सुभट सहू मन संकीया, ऐ ऐ बुद्धि भंडार।।2।।
सगत छिपाई नवि छिपइ, सहजई प्रगटइ तेह।
गांठड़ि इं जोइ बांधिइ, तउही अगनि दहेहि।।3।।
जइ घट विधना गुण दीपइ, निदइ मनि मतिमन्द।
जउ कुंडे करि ढांकीयइ, तउ छिप्यो रहत कत चंद।।4।।
एण समै आया तिहां, जिहां बैठा राय राण।
मांड्यो एहवौ मंत्रणो, बादल बुद्धि प्रमाण।।5।।
(ढाल (17) - साधजो भलें पधार्या आज ए-देशी)
सोवन कलश सुहामणाजी, करी जरी रमझोल।
सहस दोय साबत करो जी, चित्र रचित चकडोल।।1।।
कुमरजी मानो ए मुझ बात, जिम कारज आवइ घात।कु।।आं.।
तिण मांहि दोय दोय भला जी, जे सलह पहरी जुवान।

शस्त्र घणै करि साबता जी, बैसाणो बलवान॥2॥कु.॥
पदमणि री विच पालखी जी, सखर करें सिणगार।
ढांको पदमिणी वस्त्र स्युं जी, भमर करइ गुंजार॥3॥कु.॥
गोरो जी बैसाणयो जी, पदमणि जी रे ठाम।
पालखीयां सखीयांतणी जी, सुभट करो विश्राम॥4॥कु.॥
लारो लार लगावयो जी, छेटि म राखो काय।
केलवणी करयो इसी जी, जिम बाहिर न दीखाय॥5॥कु.॥
गढ थी मांड सेना लगें जी, करयो हारा डोर।
वार घणी विलंबयो जी, जतन करेयो जोर॥6॥कु.॥
पातिसाह पासें जाईइं जी, हुं करस्यु जे बात।
रावल जी छोडायस्यां जी, पाछै करेस्यां घात॥7॥कु.॥
भलो भलो सुभटे कह्यो जी, थाप्यो एहज थाप।
इम आलोच आलोचतां जी, प्रात हुओ गत पाप॥8॥कु.॥
सुभट सहु समझाय ने जी, चढीयो वादल वीर।
तिम हिज पहुंतो लसकरे जी, धरतो तन मन धीर॥9॥कु.॥
करी तसलीम ऊभो रह्यो जी, हरख्यो आलिम साहि।
पूछे बात कहो किसी जी, काम कीयो के नाहि॥1.॥कु.॥
बहुत निवाज तुझ कुं करुं जी, वादल वोल्यो साच।
सिरै चढें कारिज सहू जी, साची वादल वाच॥11॥कु.॥
सुभटां नें समझाय ने जी, नाकैं आई नीठ।
पदमणी नी आणी अछै जी, पालखीयां गढ पीठ॥12॥कु.॥
सुभट सहु मिलि विनती जी, कीधी छै सुणि सामि।
जोख पदमणी री करो जी, तो राखो हम माम॥13॥कु.॥
पेस करां जो पदमणी जी, तुम उपजै वीसास।
विण वीसास किसी परै जी, ह्वै सहु ने रंग रास॥14॥कु.॥
कहि आलिम कैसी पर जी, तुम वीसासउ मन।
'लालचंद' कहै सांभलो जी, वादल कहेज वचन॥15॥कु.॥
॥दूहा॥
मन मांहि संके सुभट, पदमणि दीधी राय।
जो छूटे नहिं तो रखे, दोन्यु स्वारथ जाय॥1॥
तिण हेते लसकर तुमे, विदा करावो साहि।
सहस पंच राखो नखें जो डर आणो मन मांहि।

इम सुनि कहइ उच्छक थको, काम गहेलो साह।
कहो कुण थें हम डरइं, हम सूं जगत डराय॥3॥
चतुर किहां तूं चातर्‌यो, बकें जु अइंसी बात।
हम सुं डरै जो सुर असुर, मानव केही मात॥4॥
कूच तणो कीधो तुरत, आलिम साहि हुकम।
लशकर के लोध्यां घणो, पाम्यो सुख परम॥5॥
सहस च्यार साऊ सुभट, रहो हमारे पास।
अवर कटक सब ऊपड़ो, ज्युं हिन्दु हुवै वीसास॥6॥
सहस च्यार पासे रह्या, अउर चल्या ततकाल।
कहै साहि कीधो कीयो, अब बादल कओल सुपाल॥7॥
(ढाल (18) बलध भला छ सोरठा रे-ए देशी)
लाख सोनइया रोकडारे लाल, सखर देई सिर पावरे सरागी।
बादल ने आलिम कहे रे वेगउ पदमिणी ल्याव रे स.1
बुद्धि भली बादल तणी रे लाल, देखी खेलइ दाव रे स.।
ले लखगी घर आवियो रे लाल, माता हरख अपार रे सरागी।
वले संकेत वणाइयो रे लाल, सुभटां ने समझाय रे॥2॥बु.॥
ले आवयो पालखी रे लाल, लारो लार लगार रे सरागी।
खत्रीवट राखेजो खरी रे लाल, कमियन करजो काय रे॥3॥बु.।
इम कहि आघो चल्यो रे लाल, ले लारें सुखपालरे सरागी।
आलिम देख्यो आवतोरे लाल, बूलायो दरहाल रेस.॥4॥बु.॥
बुद्धिवंत तो अधिको हुंतो रे लाल, राघव चेतन व्यास रे सरागी
सामीद्रोह पणाथकी रे लाल, छल न लखांणो तास रे ॥5॥बु.॥
कहे वादल आलिम भणी रे लाल, पदमणी वीनती एह रे सरागी।
अब हुं आई तुम घरे रे लाल, निवहड़ करेज्यो मेह रे॥6॥बु.॥
साची माया मन सुद्ध सुॅरे, मान महत सोभाग रे स.
मउज एहिज मांगु छछु रे लाल राखेज्यो मन राग रेस.॥7॥बु॥
घरे महल तुम्ह कइ घणा रे लाल, खेल करउ मनखास रे स.
पिण पटराणी मुझ भणी रे लाल, करजो एह अरदास रे स.॥8॥वु.।
आलिम कहे तुम ऊपरे रे लाल, नाखु तन मन उवारि रे सरागी
जीव थकी पिण वालही रे लाल, भावे तु मारि उगारि रे॥9॥बु॥
नारि एक करइ नहीं रे लाल, तुझ नख एक समान रे स.
तुम सेवक हरमां सवइ रे लाल, मइ बंदा सुलतान रे स.॥1.॥

तुम कारण हठ मैं कीयो रे लाल, लोपी वचन ग्रह्यो राय रे सरागी
राणी ले आवो वादलो रे लाल, ढील न कीज्यो काय रे॥11॥
एम कही पहरावियउ रे लाल, ले आयो बकसीस रे स.
प्रमुदित मन परिजन हुओरे, साहस वसि जगदीश रे।स. ॥12॥
धोवत पग थे आवियो रे लाल, इम सुभटां समझाय रे सरागी
आयो वले आलिम कनै रे लाल, वारु वात वणाय रे॥13।बु॥
परगट हुई पालखी रे लाल, सोवनरू कलस सोहात रे सरागी।
वार वार विचमें फिर रे लाल, वादल पदमणी वात रे॥14।बु॥
होठ बुद्धि जेहने हुवइ रे लाल, दोहरी केही वात रे सरागी।
'लालचंद' कहि बुद्धि थकी रे लाल, वादल खेलइ घात रे॥15॥
॥दूहा॥
फिर फिर पदमणिरै मिसे, करतो वादल वात।
रह्यो पहोर दिन पाछलो, तेहा पूगी घात॥1॥
लसकर पिण अलघो गयो, जूझण वेला जाणि।
बड़े वेर हम कुंभई, वादल कहें ए वाणि॥2॥
एक वार रावल ईहां, मुंकी हमारे पासि।
दोय च्यार वातां करी, आव तुझ आवासि॥3॥
हाथैं करि परणी हुंती, लोक तणै व्यवहार।
सीख करी पुंसली भली, आवण रो आचार॥4॥
पदमणी बोल सुणी ईसा, सुणि वादल कहै राय।
भली बात पदमिणी कही, हम खुशी हुआ मन मांय॥5॥
(ढाल- (19) सदा रे सुरंगा थे फिरो आज विरंगा काय ए देशी)
साची कही ए पदमणी, जेहमें एहवो सुविचार रे लाल।
आलिम वले वले इम कहै, धन भगतिवती भरतार रे लाल॥
बुद्धि करी रे बादलैं, भलो सांमी भ्रम प्रतिपाल रे लाल॥बु.॥
तुरकें तुरत हुकम कीयो, जावो बादल आज रे लाल।
रावलजी छोडाय ने, हम मेलो पदमणी राज रे लाल॥2॥बु.॥
हुकम लेई ने आवीयो, जिहांछ रतनसेन महराण रे लाल।
करी तसलीम ऊभो रह्यो, राय कोप चढ्यो असमान रे लाल 3॥
फिट रे वैरी बादला कांई, सांमीद्रोही कीध रे लाल।
खत्रीधर्म खोयो तुमे, मो साटै पदमणी दीध रे लाल॥4॥बु.॥
निरमल कुल मइलो कीयो, मूडी खरीय लगाई खोड़ि रे लाल।

ते निसत्त हुया डर मरणरइ, मुझ लाजगमाई छोड़ि रे लाल॥5॥
बलतो बादल वीन वैं, ए अवर अछै आलोच रे लाल।
भलो होसी तुम भागस्यु, स्यु आणो मन में सोच रे लाल॥6॥
भूप चाल्यो मन समझि नइ, तब आलिम भाखें एम रे लाल।
राय आणो पदमणि मेलि ने, जिम सीख समपु हेव रे लाल॥7॥
पदमणी दिशि राय चालीयो, बैठो पालखीयां मांहि रे लाल।
तब बात सहु साची लखी, बादल री बुद्धि सराहि रे लाल॥8॥
वेलां नहीं बातां तणी राय हुउ हुसियार रे लाल।
पालखीयां री सेन में, होय पहुंतो गढ रै पार रे लाल॥9॥बु.॥
गढ़ में पहुंचि बजाड़यो, जांगी ढोल निसाण रे लाल।
थे पहुंता म्हे जाणस्यां, साचो ए सहिनाण रे लाल॥1.॥बु.॥
बात सुणि हरखित थयो, तुरत गयो गढ मांहि रे लाल।
कुशले छुटा कष्ट थी, जाणे सूरिज मूक्यो राह रे लाल॥11॥
आणंद मन मांहि ऊपनो, मन हरषित पदमणी नारि रे लाल।
गढ में रंग वधामणा, धवल मंगल जय जय कार रे लाल॥12॥
पदमणी शील प्रभाव थी, वले बादल बुद्धि प्रमाण रे लाल।
'लालचंद' कहै जस घणो, कुशले छूटा श्री राण रे लाल॥13॥
॥दूहा॥
सहनाणी पूरण भणी, हरषित तणो सहिनाण।
नोवति ढोल वजाड़ियां, घणा घुरइ नीसाण॥1॥
सुणि बाजा गाज्या सुभट, उठ्या योध अनम्म।
नवहथा जित भारथा, माणस रूपी जम्म॥2॥
राघव मुख कालो हुओ, नवि लिखीयो परपंच।
कूड़ घणो कीधो हुँतो, सीधो काम न रंच॥3॥
सामी काम हणमंत जाणयो, गोरो गुणह गंभीर।
अरिदल देखी उलस्यो, सूरातनह सरीर॥4॥
सुभट धस्या हुइ सामठा, मुखि गोरउ रिम राह।
अंग अंगरखी सजी, बगतर सबल सनाह॥5॥
(ढाल-(20) नाथ गई मोरो नाथ गई ए देशी।)
दिल्ली का नाथ, हिव तु देख हमारा हाथ मियां ऊभो.।
उभोरहें रे ऊभो रहैं, ऊभो रहैं
ऊभो रहे मत छोड़े पाउ, जो पदमणी परणेवा चाह॥1॥
मीयां जी ऊभा रहो।

अम ऊभा तुम हुंती खंति, पदमणि परणेवा बहु भंति ॥2॥मी.॥
मैं आंणी छै जे तुम काज, ते हिवै तुझ देखाउं आज। मी.।
राणी जाया च्यार हजार, सूर सबल मोटा जूझार॥3॥मी.॥
दोड़या ले हाथे करवाल, धूम मचायो मांड्यो ढक चाल ॥4॥
दीठा ते दिली रे नाथ, सगलो बूलायो निज साथ॥मी.॥5॥
रे रे बादल कीधो कूड़, सगलो लसकर मेल्यो झूड॥मी.॥5॥
रिण रसीयो आलिम रंढाल, हलकारया जोधा जिम काल।
करी किलकी जिम दोड्या देत, कायर प्राण तजे निकसी जैत॥मी.॥6॥
कठत करें मीलिया दल होइ, जाणे जलहर घन अति धोइ।
आई जोगणी जाणे आडंग, जुड़सी आलिम बादल जंग॥7॥
भुजा बले आलिम सुएम, बोले बादल गोरो जेम ॥मी.॥
दिली सुं चढि आयो साहि, हिवै भिड़तो भागै मति जाय॥8॥
मुंडीयो तो हिव जासी माम, मांटी छै तो करि संग्राम॥मी.॥
कहै आलिम क्या कर खुदाय, तें तो हम सुं खेल्यो डाय॥9॥
मांहो मांहि मांड्यो जोध, ऊछलीयो सूरातम क्रोध। मी.॥
छूटण लागा कुहकवाण, हथनालां करती घमसाण॥ मी.॥10॥
सर छूटइ करता सणणाट, बकतर फोड़ि कर बे फाट॥मी.॥
ध्रुव वाजें बरछी धीब, भाजै कायर लेई जीव॥ मी.॥11॥
ऊडी रज आकाशे जाय, रवि जिण थी मालिम न थाय ॥मी.॥
घोर अंधारे जाणे घोर, गाजे बाजै नाचे मोर। मी.॥12॥
धड़ धड़ वलय धारू जल धार, चमक बीजल जिम जलधार॥
तूटै सन्नाहे तलवार, ऊडइ तिणगा अगन सुझाल ॥मी.॥13॥
खल हल खलक्या लोही खाल, पावस रित जाणे परनाल॥मी.॥
रुहिर मांहि पंपोटा थाय, दोड़ी जोगणी पात्र भराय॥14॥
करवाला धड़ फूटे घाव, छंछउ छलि कीधो भिड़काव॥मी॥
रुहिरज प्रगटउ परिकास, नाच्यो नारद कीधा हास॥15॥
गुडीया जाणे जेम पहाड़, सूर भिड़ता थाए आड॥मी।
मस्तक विण धड़ जूझइ अपार, करि करवाल करता मार॥16॥
खीजे वाह्यो सुरइ खग्ग, आधउ तूटि रह्यउ सिरि नग्ग॥मी.॥
फाबइ सिर ऊपरि खुरसाण, सूर लहयो, जाणइ स्वर्ग विमाण॥मी.॥17॥
झड़ ओझड़ वाहइ रिणघोर, जूझइ राणी जाया जोर।॥मी.॥
'लालचंद' कहै समझे सूर, दोन्यू दल वीरा रस पूर॥मी.॥18॥

॥दूहा॥
अभी जय जय ऊचरै, ले वरमाला हाथ।
अपछर आरतीयां करै, घालै सूरां बाथ॥1॥
डिम डिम डमरू वाजतां, साथे भूत बहु प्रेत।
रुंड (तणी) माला संकर रच, सिलो कर रिणखेत॥2॥
जासक पीवें योगणी, भरि भरि पात्र रगत।
डडकारा डाकणि करै, जिण दीठइ डरै जगत॥3॥
(ढाल (21) – कड़खा री – गच्छपति गायइ हो जुगप्रधान जिनचंद)
जूझै महाभिड़ मुगल हिन्दू सबल सेन सनूर।
तिण मांहि मांकि आइ जुड़ीया नांखि फोजां दूरि॥1॥
गोरिल्ल गाजियो रे अरि गजां भांजन सिंह।
वादल वाचिउ हो भारत (में) भीम अबीह॥2॥गो॥
आलिमपति अलावदीनह मुगल्ल मीर मसत्त।
रावत गोरिल्ल वीर वादल जानि मंगल मत्त॥3॥गो.॥
धूजियो धड़ हड़ मेरु पर्वत चढी धरणी चक्र।
जम वरुण जालिम डस्या दिगपति संकीया मन सक्र॥4॥गा.॥
हैं कंप हूआ नाग वासिक ईश ब्रह्मा रूप।
मुख कर ऊंचो वेलि रे मिस देखि डरइ अकूप॥6॥गा.॥
वाहइ जलोह छछोह हाथे करइ कंध कड़क
घण घणा हाथै हण्या घण घण पड़े योध पड़क॥7॥गो.॥
बिहूं बाथ घाले घाव घालै डला होवै दोय।
सनाह तूटै रगत फूटै पुरज पूरजा होय॥8॥गो.॥
चुचूइं धारां वहै सारां माचीयो झड़ झूझ।
छिन छिन्न धाए लोह लागा रह्या मांहि अलूझ॥9॥गो.॥
बड़ बड़ा सामंत योध जालिम भिड़े वादो वाद।
अति अधिक सूरातन वसे आवै न खेड़ा आदि॥1.॥गो.॥
गुड़ गुड़त गुहीर नीसाण गाजै देखि लाजै मेह।
घाव पड़े तिण घाव नाचै धाम धूमी देह॥11॥गो.॥
रिण चाचरैं रजपूत कूदैं करै हाको हाक
कूट कुटे कीया कण कण मुगल आया नाक॥12॥गो.॥
आलिम अरेरे अकलहीणा अंध साचा ढोर।
इम कही खड़ खड़ खड़ग वाहे तड़ातड़ि रिण घोर॥13॥गो.॥

हुसीयार हुओ हथीयार वाहो रही दिल्ली दूरि।
किहां अकलि हीणा एह बंभणा अकलि दीधी कूर॥14॥गो.॥
गृह मात तात अर भ्रात बंधव नेह नाण्यो कोइ।
चितारीया नहिं माल मिलकत सुक्ख नारी कोय॥15॥गो.॥
होइ लोह गोला मुगल दोला जोर जुड़ीया जंग।
हैवरा गलि गज गाह बंध रह्या विडद अभंग॥16॥गो.॥
वाजीया सिंधु राग वारू भलो मारू भेद।
जिहां भाट चारण डुब बोलई विड़द मनह उमेद॥17॥गो.॥
सांभलें चीलां बाप दादा सूरमा न समाय।
जूझतां सुभटां बैंच निज रथ अर्क देखें आय॥18॥गो.॥
तिण अओसर गोरिल वीर धसीयो जिहां आलिम साहि।
वाही वारू घाव घालै खड़ग सेबलो ताहि॥19॥गो.॥
भागोज भूंडो लेय पाघड़ साहि मुहूडै मूक।
गोरिल बोलै फिट्ट तुझ नै जाति थारी में थूक॥20॥
भाजतां नइ घाव घाल्यउ जाय क्षत्री धर्म
वीनवइ बादल छोड़ि काका जाण द्यो बेशर्म॥21॥
उपरि ऊभा किलो देखै रावल भाण
रतन सहु मिली भाखइ धन वादल गोरिल धन ॥22॥गो.॥
धन सामीधर्मी वीर वादल कहै पदमणि एम।
जिण विना माहरो पुरुष इण भव छूटतो कहो केम॥23॥गो.॥
तूं जीवज्ये कोडाकोड़ि वरसां माहरी आसीस।
दिन दिन ताहरो चढत दावो करो श्री जगदीस॥24॥गो.॥
खल हण्यो खत्रीवट लीक राखी, जगत साखी नाम।
गोरिल रावत रिणे रहीयो, कीयो साचो नाम॥25॥गो.॥
लूटीयो ल्हसकर आप वसि कर छोडियो आलिम।
जीत्यो पवाड़ो धर्म आडो आवीयो कृत कर्म॥26॥गो.॥
केई न्हासी छूटा मरी खूटा कीया अरीअण जेर।
जीवतो मूंक्यो साहि आलिम घालि सबले घेर॥27॥गो.॥
कहै साहि सुण सामंत बादल कीयो तै उपगार
जीवीदान दीधो सुजस लीधो झालि गढ़ रो भार॥28॥गो.॥
वादल आगे हारि खाधी सीख मांगइ साहि।
एकलो आयो आप असुरां दलां बूजत साहि॥29॥गो.॥

बीजली मुहें खल क्षेत्र वेड़े जैत्र पामी जंग।
पूरो पवाड़ो किलें गोरिल सूर बादल संग॥3.॥गो.॥
अन्याय मारग जैति न हुवै, जोइ सबलो होई।
एकलै डीलै गयो आलम, एह परतख जोई॥31॥गो.॥
नीति मारग जइति पामइ, रहइ राज अखंड।
कह 'लालचन्द' जगत्ति ऊपर, नाम तेज प्रचंड॥32॥गो.॥
॥दूहा॥
दोय दिनां के अंतरै, आलिम एक खवास।
निमा साम वेला जई पहूंता ल्हसकर पास॥1॥
(ढाल (22) - वाल्हेसर मुझ वीनती गोड़ीचा। राग मारू)
ल्हसकर मांहि मुकीयो राजेसर करिवा खबरि खवास रे राजेसर
ऊमराव आया वही दील्लीसर मुगल पाठण उल्लास रे राजेसर ॥1॥ह.॥
करी तसलीम ऊभा रहया राजेसर बेकर जोड़ी ताम रे दि.।
बूझै आलिम साहि सुं रा. कटक गयो किण काम रे दी.॥2॥
भूखा त्रिसीया एकला रा. दीसे ए कूण हवाल रे दी।
किहां पदमणी परणी तिका रे रा. ए तो दीसै छै ख्याल रे दी.॥3॥
कहै पतिसाह कीधो घणो रा. बादल हम सु कूड़ रे दी।
सइतानी सबली करी रा. ल्हसकर मेल्यो धूलि रे दी.॥4॥ल्ह.॥
पदमणी रे मिसि पालखी रा. कीधी पांच हजार रे दी.
तिण में दोय दोय नीकल्या रा. योध करता मार रे दी.॥5॥
कहर जूझ हम सुंकीयो रा. कटक कीयो कचघाण रे दी.
हम है या तौ ऊबरे रा. मया करी रहमान रे दी.॥6॥ल्ह.॥
हम भी भूले मोह तै रा. कछु कीनो पदमणी टौंन रे दी.
तोही हम आगइ टिके रे रा. नहिंतर हिन्दू कौन रे दी.॥7॥
इम कही असवारी करी रा. नाक मुकीनइ साहि रे दी.
ज्यूं आयो तिणही परई रा. पहुंतो दील्ली मांहि रे दी.॥8॥
आलिम महल पधारिया रा. आई हरम अनेक रे दी.
विनो करी पाए पड़ी रा. विनती करै सुविवेक रे दी.॥9॥ल्ह॥
देखावो बे पदमणी रा. हम कुदेखण हुँस रे दी।
कैसी चतुराई अछै रा. रूप जोवां कैसी रूस रे दी.॥10॥ल्ह॥
पदमणी का मुंह काला किया रा. हम खैर करी है खुदाय रे दी.
करीई खमा बीबी कहै रा. हम लागो तुम बलाय रे दी.॥11॥

॥दूहा॥
कहि ममा बैठो तुमां, धरो मन मई ग्यान॥
धरा पालो अविहड़ थे, हीइं खुदाय धरि ध्यान॥1॥
इन्द्र चंद्र नागेन्द्र सब, जस सेवे सुर नर राय।
विण रावण राज गमाड़ीयो, नारी तणे पसाय॥2॥
बेटा काहे कुं फिरो, करते आप कलेस।
बैठा जौख कहो इहां, दिल्ली गढ निज देश॥3॥
हिव बादल की वारता, सुणयो देई कान। .
पातिसाह् न्हाठा पछै, रिण सोध्यो बादल जाण॥4॥
जग में जस पसर्‌यो घणो, खाट्यो बड़ो विरुद।
गढनी पोलि उघाड़ीयां, लोक कहैं जसवद॥5॥
(ढाल (23)– करड़ो तिहा कोटवाल एदेशी राग – खंभाइती जाति सोलाकी या मारू)
रावल रतन सुजाण, सनमुख आए सामेलो करे।
सिणगार्‌या बाजार, इय गय रथ पालखीया बहु परेजी॥1॥
मिलया श्री महाराज, वादल सेती नेह घणैं करी जी।
ले आया गढ मांहि, बैसाणी गज छत्र सिरइ धरी जी॥2॥
देई देश भंडार, बादल नइ कीधो अधराजीयो जी।
तैं राखी गढ़नी लाज, आज पछै ए जीव तुमे दीयो जी॥3॥
तुं जीवे कोड़ि वरीस, धनमाता जिण तुं गरभें धर्‌यो जी।
द्यै पदमणी आसीस, तैं उपगार अम थी बहु कर्यो जी॥4॥
मस्तक तिलक बणाय, भरि भरि थाल वधावै मोतियां जी।
निज बंधव करि थाप, पहुंचावै निज घरि उछव कियां जी॥5॥
आवंतां निज गेह, चउहटइ च्यारों दिश नारी मिली जी।
बोलइ कीरति बाल, मोतियां वधाव गावइ मन रली जी॥6॥
इम आयो निज गेह, सयण संबंधी परजन सहु मिली जी।
प्रणमै जननी पाय, माताजी आसीस दीइं भली जी॥7॥
सझि करि सोल शृंगार, अधर बिंब निज नारियां जी।
आवी आणंद पूर, धवल मंगल करती सुखकारीयां जी॥8॥
हिवें गोरिल की नार, पूछै तुम काकौ रिण किम रह्यो जी।
कहो किम वाह्या हाथ, किम अरियण मार्‌या किम जस लह्यो जी
कहै वादल सुणो वात, केहो वखाण करां काका तणो जी।
ढाह्या गैंवर घाट, मुंगलां सुभटां संहार कीयो घणो जी॥10॥

राख्यो आलिम एक, तुरकां सकल सेन मारी करी जी।
तिल तिल हूओ तन, हुओ पाहुणो अमरापुर वरी जी॥11॥
राखी गढ री लाज, उजवाल्यो कुल गोरेजी आपणो जी।
इम सुणी गोरिल नारि, रोम रोम जाग्यो तन सूरापणो जी।12॥
विकसित वदन सनेह, भाख सुणि बेटा रिण वादला जी।
वहैलो वारि म लाय, दोहरा बैठा ठाकुर एकला जी॥13॥
विच छेटी बहु थाय, रीस करेसी अमने श्री राय जी।
काकी ठाम लगाय, ढील कीयां हिवमइं न खमाय जी॥14॥
सुणि कहै वादल वात, धन धन माताजी ताहरो हीयो जी।
सतवंती तूं साच, धन तें आपो आप सूधारीयो जी॥15॥
खरचै धन नी कोड़ि, तुरंग चढि सिणगार सहू सझी जी।
अगनी कीयो प्रवेश, उचरंति मुख श्री राम राम जी॥16॥
पहूंती प्रीउ नै पासि, अरध आसण दीधो आणंद थयो जी।
जग पसर्यो जस वास, 'लालचंद' कहै दुख दूरइं गयो जी॥17॥
॥दूहा॥
सूर कहावै सुभट सहू, आप आपण मन।
दाव पड्यां दुख उधरें, ते कहीये धन धन॥1॥
सांमीधर्म वादल समो, हुओ न होसी कोय।
युद्ध जीत्यो दिल्ली धणी, कुल उजवाल्या दोय॥2॥
रावलजी छोडाईया, नारी पदमणी राख।
विरुद वड़ो खान्यो वसु, सुभटां राखी साखि॥3॥
चैंन राज चितोड़ को, कीधो वादल वीर।
नव खंडे जस विस्तस्यो, सामीधर्म रिणधीर॥4॥
निरभे पाले राज निज, रतनसेन महाराव।
सेवक वादल सानिधे, पदमणि शील पसाव॥5॥
(ढाल (24)- राग- धन्यासीइं, चाल-लोक सरूप विचारउ आतम हितभणी)
सती शिरोमणि साची थई पदमणि लहीयई रे सुख लहीइं सिरदार
पाल्यो कष्ट पड्यां जिण
शील सुहामणो रे तन मन वचन उदार॥1॥
श्री रावलजी छूटा मोटा कष्ट थीरे, सुख हुवो गढ़ें जेह।
बड़ो पवाड़ो खाट्यो गोरे वादले रे, शील प्रभाव तेह॥2॥
शील प्रभावै नासे अरि करि केसरी रे, विषधर जलण जलंत।

रोग सोग ग्रह चोर चरड़ अलगा टलै रे, पातिग दूर टलंत ॥3॥
श्रीसुधर्मासामि पाट परंपरा रे, सुविहित गच्छ सिणगार।
श्री खरतरगच्छ श्रीजिनराजसूरीसरू रे, आगम अरथ भंडार ॥4॥
तस पाटि उदयाचल दिनकरुरे, श्री श्रीजिनरंग वखाण।
रीझवियौ जिण साहजहाँ दिल्लीसरू रे, करिदीधउ फुरमाण ॥5॥
तास हुकम संवत सतर छीडोतरे, श्री उदयपुर जाण।
हिन्दूपति श्रीजगतसिंह राणो जीहां रे, राज करै जग भाण ॥6॥
तास तणी माता श्री जंबूवती रे, निरमल गंगा नीर।
पुण्यवंत पट दरसण सेव करइ सदारे, धरम मूरति मतिधीर ॥7॥
तेह तणै प्रधान जग में जाणिइं रे, अभिनव अभयकुमार।
केसरी मंत्री सुत अरि करि केसरी रे, हंसराज हितकार ॥8॥
जिणवर पूजा हेतइ जाणि पुरंदरु रे, कामदेव अवतार।
श्रेणिकराय तणीपरि गुरुभगता सही रे, सिंह मुकट सणगार ॥9॥
पाट सात पाछइ जिण देस मेवाड़मईरे, थाप्यो गच्छ थिरथोभ।
कटारिया कुलदीपक जग जस जेहनउ रे, श्रीखरतर गच्छ शोभ ॥10॥
तसु बंधव डुगरसी ते पण दीपतउ रे, भागचंद कुल भाण॥
विनयवंत गुणवंत सुभागी सेहरउ रे, वड़ दाता गुण जाण ॥11॥
तसु आग्रह करी संवत सतर सतोतरे रे, चैत्री पूनम शनिवार॥
नवरस सहित सरस संबंध रच्यो रे, निज बुद्धि ने अनुसार ॥12॥
श्री जिनमाणिकसूरि प्रथमशिष्य परगड़ा रे विनयसमुद्र बड़ गात ।
तास सीस वड़वखती जगमई वाचियइ रे, श्रीहर्षविशाल विख्यात ॥13॥
तास विनेय चवद विद्या गुण सागरु रे, वाणी सरस विलास।
जस नामी पाठिक श्रीज्ञानसमुद्रजी रे परगट तेज प्रकाश ॥14॥
साध शिरोमणि सकल विद्या करि सोभतारे, वाचक श्री ज्ञानराज ।
तास प्रसादे शील तणा गुण संथुण्या रे, श्रीलब्धोदय हित काज ॥15॥
सामिधरम ने शील तणा गुण सांमल्या रे, पूर्ण मननी आस।
ओछो अधिको जे कह्यो कवि चातुरी रे, मिच्छादुकड़ तास ॥16॥
नव निधनै वलि अष्ट महा सिद्ध संपदा रे, दूर मिटै दुख दंद ।
लब्धोदय कहै पुत्र कलत्र सुख संपजै रे, शीयल सफल सुख कंद ॥17॥
गाथा दूहा ढाल आठ सै अतिनंद
सीअल प्रभाव संपदा इम जपइ लब्धानंद ॥1॥
इति श्री शील प्रभावे पद्मिनी चरित्रे ढाल भाषा बंधे श्री रतनसेन रावल तास सुभट

गोरा बादल रिण जय प्रतापैः तृतीय खण्ड सम्पूर्णम्।

(1) सकल पण्डितोत्तम प्रवर प्रधान शिरोवतंस पंडित श्री 5 श्री कल्याणसागर गणि तत्शिष्य पंडित श्री 5 श्री हर्षसागरगणि गणि तत्शिष्य श्री सकल सभा शृंगार शिरोमणि रत्न पंडित श्री 19 श्री हीरसागर गणि....................... श्री 5 श्री गुणसागर गणि। तच्छिष्य पुण्यसागरेण लिखितेयं ।।सं01761 वर्षे आशु बदि 10 भोमे दडीबा मध्ये लिखितं॥ श्रीरस्तु॥ कल्याणमस्तु॥ श्री भद्रमस्तु ॥ शुभं भूयात् श्री ॥ श्री ॥ श्री ॥श्री ॥ श्री ॥

(प्रति नं. 3814 (बं0 82) श्री अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर। पत्र 20 अंतिम पत्र एक तरफ खाली। पंक्ति अक्षर 59-60 प्रति पंक्ति। अंतिम पत्र थोड़ा नष्ट।)

(2) *इति श्री पद्मिनी चरित्रे ढाल भाषा बंध उपाध्याय श्री 5 ज्ञानसमुद्र गणि गजेन्द्राणां शिष्य मुख्य विद्वाद्नाज श्री श्री ज्ञानराज वाचकवराणां शिष्य पं. लब्धोदय विरचिते कटारिया गोत्रीय मंत्रिराज हंसराज मं. श्री श्री भागचंद्रानुरोधेन श्री गोरा बादल जयत प्रापणो नामस्तृतीय खण्डः॥ तत्समाप्तौ समाप्तमिदं श्री पद्मिनी चरित्रं तद्वाच्यमान श्राव्यमान चिरं नंदतादाचंद्रार्कं यावत् लिपि कारिता च सुश्रावक पुण्यप्रभावक............................ ॥ ।।संवत् अठारेसे 1823 वर्षे मिती भाद्रवा बद 8 दिन लिपी कृतं । वाचणवाला कुं धरमलाभ छै। लिखतं मकसुदाबाद मध्ये लपिक्रतं ।।श्री॥ श्री ॥ पत्र 48 जैनभवन, कलकत्ता।*

(3) गाथा दूहा सोरठा, सोल अधिक सै आठ।
कवित दूहा गाथा मिल्यां, सुणो सुगुरु मुख पाठ ।।1॥

ढाल सरस गुणचालसुं श्लोक तणी संख्या एकादश शत अधिक छै, पंचासत नइ सात, अनुमाने लालचंद कहइ॥ इति पद्मिनी चैपाई संपूर्णम्। सकल पंडित शिरोमणि पं., श्री 105 श्रीराजकुशाल गणि शि. ग. ऋषमकुशल लिखितं। आमेट नगरे संवत 1758 वर्षे ।

(ओरियण्टल इंस्टीट्यूट बडौदा प्रति नं0 732 की नकल गुलाबकुमारी लाइब्रेरी कलकत्ता में।)

‘पद्मिनी चरित्र चौपई’ हिंदी कथा रूपांतर

मेवाड़ का चितौडगढ़ सब दुर्गों में मुख्य है। यह गगनस्पर्शी दुर्ग कैलाश से टक्कर लेता है। यहाँ कई तीर्थ, चित्रा नदी, गोमुख कुण्ड, कूप, सरोवर आदि हैं। यह करोड़पतियों की लीलाभूमि है। चित्तौड़ में महाराणा रत्नसेन नामक प्रतापी राजा राज्य करता था, जिसकी सेवा में दो लाख योद्धा और कई राजा थे। उसकी पटरानी प्रभावती सब रानियों में प्रमुख थी। वह राजा की प्रीतिपात्र और प्रतापी कुमार वीरभाण की माता थी। रानी प्रतिदिन राजा को अपने हाथ से परोसकर प्रेमपूर्वक भोजन कराती थी। एक दिन रत्नजटित थाल में कई व्यंजनों से परिपूर्ण स्वादिष्ट भोजन करते हुए हास्य-विनोद के साथ राणा ने कहा कि- ‘‘आजकल भोजन बिल्कुल रसहीन और स्वादहीन होता है। तुम्हारी चतुराई कहाँ चली गई ?’’ रानी इससे अप्रसन्न हुई। उसने ने तमककर कहा कि- ‘मैं तो कुछ भी नही जानती, मेरे में चतुराई है ही कहाँ ? स्वादिष्ट भोजन के लिए आप नयी पद्मिनी को विवाह कर ले आइये।’’ रानी प्रभावती के वाक्य राणा के हृदय में तीर की तरह चुभ गए। वह तत्काल भोजन छोड़कर उठ खड़ा हुआ और रानी का मान मर्दन करने के लिए उसने पद्मिनी से विवाह का प्रण कर लिया।

राणा ने दो घोड़ों पर बहुत-सा धनमाल लेकर खवास के साथ गुप्त रूप से चितौड़ से प्रस्थान किया। जब उन्होंने लंबी यात्रा कर ली, तो सेवक ने इस यात्रा का प्रयोजन पूछा। राणा ने अपनी यात्रा का उद्देश्य प्रगट किया। राणा और खवास, दोनों पद्मिनी स्त्री का ठौर-ठिकाना नहीं जानते थे। वे एक वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे थे, तभी भूख-प्यास से व्याकुल एक पथिक राणा के चरणों में उपस्थित हुआ। राणा ने उसे खान-पान और शीतोपचार से संतुष्ट किया और स्वस्थ होने पर उससे पूछा कि- ‘‘तुमने कहीं पद्मिनी स्त्री का ठौर-ठिकाना देखा-सुना हो, तो बताओ।’’ पथिक ने कहा कि दक्षिण के समुद्र के पार सिंघल द्वीप में अप्सरा की भाँति पद्मिनी स्त्रियाँ होती हैं। राणा ने दक्षिण का मार्ग पकड़ा और कई जंगल-पहाड़ों को लाँघता हुआ खवास के साथ समुद्र तट पर पहुँच गया।

दुर्लंघ्य समुद्र को पार करने की चिन्ता में घूमते हुए राणा की भेंट एक औघड़नाथ योगी से हुई। राणा ने उसे विनय-भक्ति से संतुष्ट कर पद्मिनी की प्राप्ति के लिए उससे सिंघल द्वीप पहुँचाने की प्रार्थना की। योगी ने अपने दोनों हाथों में दोनों सवारों को बैठा कर आकाशमार्ग से सिंघल द्वीप पहुँचा दिया और स्वंय अदृश्य हो गया। राणा प्रसन्नचित्त घूमता हुआ सिंघल द्वीप की शोभा देखने लगा। जब वह नगर के मध्य भाग में पहुँचा, तो उसने ढंढ़ोरे (मुनादी करनेवाला) का ढोल सुना। ढंढ़ोरे से पूछने

पर उसे पता चला कि सिंघलपति की बहिन पद्मिनी उसी व्यक्ति को वरमाला पहनाएगी, जो उसके भाई को शतरंज के खेल में पराजित कर देगा। राणा पटह स्पर्श करके पद्मिनी की उपस्थिति में सिंघलपति के साथ शतरंज खेलने लगा। पद्मिनी राणा के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर मन ही मन उसकी विजय की प्रार्थना करने लगी। पूर्व जन्म के पुण्यों के प्रताप से राणा ने सिंघलपति को जीत लिया। पद्मिनी की वरमाला राणा के गले में सुशोभित हुई। सिंघलपति ने राणा के साथ पद्मिनी का विवाह समारोहपूर्वक किया। अपने प्रण के अनुसार उसने राणा को अपना आधा देश और भंडार समर्पित कर दिया। पद्मिनी को दहेज में हाथी, घोड़े, वस्त्र, आभूषण सहित दो हज़ार सुन्दर दासियाँ मिलीं। पद्मिनी का रूप-सौंदर्य अद्‌भुत था, उसकी देह की सुगंध के कारण उसके चारों ओर भ्रमर गुंजार कर रहे थे। कुछ दिन सिंघल द्वीप में रहने के बाद, सिंघलपति से प्रेमपूर्वक विदा लेकर, धन और अन्य सामग्री के साथ राणा स्वदेश लौट आया।

चित्तौड़गढ़ में राणा के एकाएक चले जाने से चिन्तित वीरभाण ने अपनी माता से वस्तुस्थिति की जानकारी ली। उसने यह प्रचारित किया कि राणा जाप मे बैठा है और स्वयं राजकाज चलाने लगा। लोगों को जब छह महीने से भी अधिक समय बीत जाने पर राणा के दर्शन नहीं हुए, तो उनमें नाना प्रकार की आशंकाएँ उठ खड़ी हुईं। इसी समय राणा रत्नसेन दो हज़ार घोड़े, दो हज़ार हाथी एवं पालकियों के साथ चित्तौड़गढ़ के निकट पहुँचा। पद्मिनी की स्वर्णकलशों वाली पालकी बीच में सुशोभित थी। दूर से राणा की सेना ने आना आरंभ कर दिया। राणा का पत्र लेकर एक दूत राजमहल में पहुँचा। सारा वृत्तान्त जानकर चित्तौड़ में सर्वत्र आनन्द छा गया। राणा के स्वागत के लिए ज़ोर-शोर से तैयारियाँ होने लगीं। स्थान-स्थान में मोतियों से बधाते हुए और ध्वज-पताकाओं से सुशोभित उल्लासपूर्ण वातावरण में महाराणा ने चित्तौड़ में प्रवेश किया। राणा ने रानी प्रभावती को अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर दिखा दी। (1)

राणा ने पद्मिनी के लिए विशाल एवं सुन्दर महल बनवाया, जिसमें वह अपनी सखियों के साथ आनन्दपूर्वक रहने लगी। महाराणा पूरी तरह पद्मिनी के प्रेमपाश में बँध गया। वह रात-दिन उसके साथ नाना प्रकार की क्रीड़ाओं और विलास में रत रहता। एक बार राघवचेतन नामक प्रकाण्ड विद्वान् ब्राह्मण, जो कि महाराणा द्वारा सम्मानित होने के कारण बेरोकटोक महलों में आया-जाया करता था, पद्मिनी के महल में जा पहुँचा। राणा अपने क्रीड़ा-विलास के समय उसे आया देखकर क्रोधित हो गया। उसने असमय और अनाहूत आने की मूर्खता पर उसे बहुत खरी-खोटी सुनाई और बाहर निकाल दिया। धक्का देकर निकाल दिये जाने पर अपमानित व्यास राघवचेतन शीघ्र ही चित्तौड़गढ़ त्यागकर दिल्ली चला गया। थोड़े दिनों में उसकी विद्वता की

प्रसिद्धि शाही दरबार तक पहुँच गई। सुल्तान अलाउद्दीन ने उसे दरबार में बुलाया और प्रसन्न होकर पाँच सौ गाँव देकर अपना दरबारी बना लिया।

राघवचेतन ने राणा से प्रतिशोध लेने के लिए एक भाट और खोजे से घनिष्ठता कर ली। राघवचेतन ने भाट से शाही दरबार में किसी प्रकार पद्मिनी स्त्री की बात छेड़ने के लिए कहा। उसके कहने पर भाट राजहंस का पंख लेकर दरबार में आया। सुल्तान के यह पूछने पर इस पंख से अधिक कोमल क्या है, तो भाट ने पद्मिनी स्त्री के सौन्दर्य व सुकुमारता की सराहना की। सुल्तान ने कहा कि- ''तुमने कहीं पद्मिनी देखी-सुनी है'', तो भाट ने कहा कि- ''आपके महल में हज़ार स्त्रियाँ हैं, उनमें से कोई पद्मिनी अवश्य होगी।'' खोजे ने कहा कि- ''रावण की लंका में पद्मिनी स्त्री सुनी गई थी। यह संसार में और कहीं भी नहीं है। यहाँ तो सब शंखिनी स्त्रियाँ हैं।'' भाट-खोजे के विवाद में सुल्तान ने रस लिया। उसने पूछा कि- ''क्या हमारे महल में सभी शंखिनी स्त्रियाँ हैं? पद्मिनी एक भी नहीं?'' खोजे ने कहा कि- ''यह तो लक्षण-भेदादि के शास्त्र मर्मज्ञ राघवचेतन ही बता सकते हैं।'' सुल्तान के पूछने पर व्यास ने चारों प्रकार की स्त्रियों के गुण-लक्षणादि विस्तार से समझाए। सुल्तान ने राघवचेतन को अपने महल की स्त्रियों की परीक्षा कर पद्मिनी जाति की स्त्री बताने की आज्ञा दी। उसने उनका प्रतिबिंब देखने के लिए मणिगृह का आयोजन किया। राघवचेतन ने सबको देखकर कहा कि- ''आपके महल में एक-एक से बढ़कर रूपवान हस्तिनी, शंखिनी और चित्रणी स्त्रियाँ तो हैं, पर पद्मिनी स्त्री एक भी नहीं है।''

सुल्तान ने कहा कि- ''पद्मिनी स्त्री की बिना के मेरा जीवन ही व्यर्थ है, पद्मिनी स्त्री कहाँ मिलेगी?'' राघवचेतन ने कहा कि सिंघल द्वीप में पद्मिनी स्त्रियाँ होती हैं, तो सुल्तान ने सोलह हज़ार हाथी और सत्ताईस लाख अश्वारोही सेना के साथ सिंघलद्वीप की ओर प्रस्थान कर दिया। समुद्र तट पर पहुँचने पर हठी सुल्तान ने सिंघलपति पर आक्रमण करके गिरफ़्तार करने की आज्ञा दी। योद्धा नौकाओं में बैठ कर दरिया के बीच गए, तो भँवरजाल में फँसकर उनके वाहन टूट-फूट गए। सुल्तान ने क्रोधित होकर और योद्धाओं को भेजने की आज्ञा दी। उसे केवल एक ही धुन थी कि लाखों सैनिक भले ही समुद्र में नष्ट हो जाएँ, पर सिंघलपति को हराकर पद्मिनी अवश्य प्राप्त करना है। योद्धाओं ने राघवचेतन से कहा कि किसी प्रकार सुल्तान को लौटाने की युक्ति सोचो, अन्यथा व्यर्थ ही लाखों के प्राण चले जाएँगे। दूसरे दिन सुबह समुद्र में राघवचेतन की सलाह पर पाँच सौ हाथी, पाँच हज़ार घोड़े, करोड़ दीनार एवं नाना प्रकार की भेंट वस्तुएँ लेकर लोग उपस्थित किए गए। बादशाह को कहा गया कि यह सामग्री सिंघलपति की ओर उसके प्रधान लोग दंडस्वरूप लाए हैं। सुल्तान

आए हुए लोगों के विनयपूर्ण वचनों से प्रभावित हुआ। उसने सिंघलपति की कथित भेंट स्वीकार कर उसके प्रतिनिधियों को सिरोपाव देकर लौटा दिया। सिंघल से आई हुई भेंट को उसने अपने सैनिकों में बाँट दिया और सेना को दिल्ली लौटने का आज्ञा दे दी। (2)

सुल्तान दिल्ली आया, तो बड़ी बेगम ने कहा कि- ''आप कैसी पद्मिनी लाए हैं, हमें भी दिखाइये!'' सुल्तान में मन में फिर पद्मिनी प्राप्त करने की इच्छा प्रबल हो गई। उसने राघवचेतन से कहा कि- ''सिंघलद्वीप के अलावा कहीं और पद्मिनी स्त्री हो, तो बताओ।'' राघवचेतन ने कहा कि- ''चित्तौड़ के राणा रत्नसेन के यहाँ पद्मिनी तो है, पर उसको पाना शेषनाग की मणि पाने की तरह मुश्किल है।'' सुल्तान ने अभिमानपूर्वक बड़ी भारी सेना तैयार की और चित्तौड़ पर चढ़ाई कर दी। राणा की सेना ने सुल्तान के साथ बड़ी वीरता से युद्ध किया और उसकी विजय के सारे प्रयत्न विफल कर दिए। सुल्तान ने सफलता पाने के लिए छल-कपट करने का निश्चय करके अपने प्रधानों को सुलह करने के लिए राणा के पास भेजा। उन्होंने राणा से कहा कि सुल्तान चाहते हैं कि हमारे बीच परस्पर प्रीति की वृद्धि हो। वे दुर्ग देखकर, पद्मिनी के दर्शन और उसके हाथ से भोजन करके बिना किसी प्रकार का दण्ड और भेंट लिए दिल्ली लौट जाएँगे। राणा रत्नसेन कपटी सुल्तान की मीठी बातों के चक्कर में आ गया। सुल्तान के अधिकारियों के प्रतिज्ञापूर्वक कहने पर रत्नसेन ने थोड़े से लशकर के साथ बादशाह को चित्तौड़गढ़ दुर्ग दिखाने और पद्मिनी के हाथ से भोजन कराने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

सुल्तान अलाउद्दीन के पास व्यास राघवचेतन था, जो राणा के घर का पूरा भेदू था। सुल्तान उसकी मंत्रणा के अनुसार ही अपना कपटचक्र चलाता था। सरल स्वभाववाले राणा ने स्वागत करने के लिए अपने मंत्रियों को एकत्र कर सुल्तान को दुर्ग में बुलाया। दुर्ग के द्वार खोले दिए गए। सुल्तान तीस हज़ार सैनिकों के साथ दुर्ग में प्रविष्ट हो गया। इतने सैनिक देखकर राणा के मन में आशंका हुई। उसने अपनी सेना को तैयार रहने का संकेत कर दिया। सुल्तान ने कहा कि ''क्यों सेना एकत्र करते हो, हम दुर्ग देखकर लौट जाएँगे'', तो राणा ने कहा कि- ''अपने वचन के विरुद्ध आप तीस हज़ार सैनिक लाए हैं। मेरी सेना के योद्धा इन्हें क्षण भर में समाप्त कर देंगे।'' सुल्तान के मन में छल था। उसने कहा कि ''आप संदेह क्यों करते हैं? अतिथि कम हों या ज़्यादा, उनका सत्कार करना चाहिए। अभी तो खाद्य सामग्री सस्ती है, सुकाल है, यदि अधिक ख़र्च का विचार आता हो, तो हम लौटे जाएँ।'' राणा ने उत्तर दिया कि- ''भोजन के लिए ऐसी क्या बात है, छोटी बात नही करें, इससे दुगुने हों, तो भी हमारे यहाँ खानपान की कोई कमी नहीं है।'' इस प्रकार दोनों प्रेम और मेलजोल

से बातें करते हुए महलों में आए। राणा ने शाही भोजन के लिए बड़ी भारी तैयारी की। राणा ने जब पद्मिनी को आज्ञा दी कि वह सुल्तान को भोजन परोसे, तो उसने अपने जैसे रूप-रंगवाली दो दासियों को इस कार्य के लिए लगा दिया। सजे हुए मंडप में सुल्तान को पद्मिनी की दासियों ने कई वेश-भूषाएँ बदलकर विविध व्यंजन परोसे। सुल्तान ने उनके रूप-सौंदर्य से अभिभूत होकर कहा कि- ''राणा के घर में तो इतनी पद्मिनियाँ हैं और मेरे यहाँ तो एक भी नहीं, फिर मेरी बादशाहत में क्या रखा है!'' राघवचेतन ने कहा कि ''यह तो पद्मिनी की दासियाँ हैं। पद्मिनी तो ऊँचे महलों के समृद्ध कक्ष में रहती है, उसके तो दर्शन ही दुर्लभ हैं।'' इतने ही में पद्मिनी ने सहज भाव से शाही भोजन समारोह को देखने के लिए रत्नजड़ित गवाक्ष की जाली में से झाँका। राघवचेतन ने उसी समय सुल्तान को संकेत कर पद्मिनी दिखाई। सुल्तान उसको देखकर मूर्छित होने लगा। राघवचेतन ने यह देखकर किसी और युक्ति से पद्मिनी को प्राप्त करने की आशा बँधाकर सुल्तान को आश्वस्त किया।
भोजन के बाद राणा ने सुल्तान को हाथी, घोड़े, वस्त्र और आभूषण भेंट किए। दोनों ने हाथ मिलाए। राणा ने दुर्ग में घूम-घूमकर सुल्तान को सभी विषम घाट-स्थान दिखलाए। सुल्तान ने राणा से माँ से उत्पन्न सगे भाई की तरह प्रेम दिखाते हुए विदा माँगी। वह राणा का हाथ पकड़कर विदा होने के बहाने से उसको दुर्ग के बाहर ले आया। राघवचेतन के परामर्श पर इसी समय से सुल्तान के योद्धाओं ने राणा को कब्ज़े में लेकर गिरफ़्तार कर लिया। राणा के साथ में जो थोड़े बहुत योद्धा थे, वे हक्के-बक्के रह गए। राणा के हाथ-पैर में बेड़ी डाल दी गई। गढ़ में यह ख़बर पहुँचने पर योद्धाओं के बीच बैठकर वीरभाण अपना कर्त्तव्य स्थिर करने के लिए विचार-विर्मश करने लगा। इतने ही में दो शाही दूत आए और उन्होंने यह शाही सन्देश सुनाया कि सुल्तान पद्मिनी को प्राप्त करके ही राणा को मुक्त कर सकता है। उसे और किसी वस्तु की अपेक्षा नही हैं। यदि आप लोग पद्मिनी को नहीं देंगे, तो शाही सेना दुर्ग को ध्वस्त कर राज्य छीन लेगी। वीरभाण ने सोच-विचार कर प्रात:काल उत्तर देने का कहकर दूतों की विदा किया।

वीरभाण ने योद्धाओं से विचार-विमर्श कर निश्चय किया कि पद्मिनी की देकर राणा को छुड़ा लेना ही अच्छा है। योद्धा निरुपाय होकर सत्त्वहीन हो गए। वीरभाण के हृदय में अपनी माता के सौभाग्य उतारने में कारणभूत पद्मिनी के प्रति सद्‌भाव की कमी थी, इसलिए पद्मिनी के पास अपना रास्ता स्वयं तय करने के अलावा और कोई विकल्प नहीं रहा। वह अपनी शील रक्षा के लिए प्राणों की आहुति देने के लिए तैयार थी, पर किसी युक्ति से राणा भी मुक्त हो जाए और उसे भी तुर्कों के कब्जे में भी न जाना पड़े, ऐसा उपाय सोचने लगी।

पद्मिनी ने सुना था कि वीर गोरा-बादल नामक काका-भतीजा किसी बात के कारण राणा से अप्रसन्न होकर घर जा बैठे हैं और उन्होंने ग्राम-ग्रास को भी त्याग दिया है। वे चित्तौड़ त्याग कर काम-काज के लिए अन्यत्र जा रहे थे, तभी अचानक शाही आक्रमण हो गया। उन्होंने इस कारण चित्तौड़ छोड़ना स्थगित कर दिया है। अपने गाँठ का ख़र्च खाकर वे घर पर बैठे हुए हैं। खेद है कि ऐसे स्वाभिमानी वीरों को कोई नहीं पूछता। पद्मिनी पालकी में बैठकर स्वंय वीर गोरा के घर गई। गोरा ने उसका स्वागत किया और कहा कि- ''माता! आज मेरे घर पधारकर आपने बड़ी कृपा की। घर बैठे गंगा आने से मैं पवित्र हो गया। मेरे योग्य कोई कार्य सेवा तो बताइये।'' पद्मिनी ने अत्यंत दु:खी होकर कहा कि- ''क्या करूँ? ऐसे विकट समय में योद्धाओं ने क्षत्रियत्व छोड़कर मुझे तुर्कों के यहाँ भेजना स्वीकार कर लिया है। अब मुझे केवल आपका ही भरोसा है। मैं इसीलिए आपके पास आई हूँ।'' गोरा ने कहा कि- ''हमें कौन पूछता हैं? हम तो अपनी गाँठ का ख़र्च खाकर घर में बैठे हैं। आपने हमारे घर को अपनी चरणों की धूल से पवित्र कर दिया है, तो अब किसी प्रकार का भय नहीं रखकर निश्चिन्त रहें। आप जैसी रानी को देकर राजा को छुड़ाने को घटिया दाव खेलने से तो मर जाना ही अच्छा है।'' रानी ने कहा कि- ''इस तरह की छोटी बुद्धि से तो राजा की तरह दुर्ग भी हाथ से निकल जाएगा। मैं तुम्हारे शरण में आई हूँ।'' गोरा ने कहा कि मेरे योद्धा भाई गाजण का पुत्र बादल भी बड़ा भारी शूर-वीर है। हमें उससे भी परामर्श करना चाहिए।

गोरा और पद्मिनी, दोनों बादल के यहाँ गए। उसने सविनय जुहार करते हुए आने का कारण पूछा। गोरा ने सारा घटनाक्रम बताया। बादल ने कहा कि- ''हम केवल दो व्यक्ति किस प्रकार शाही सेना को पराजित करेंगे?'' पद्मिनी ने कहा कि ''हे भाई! मैं तुम्हारे शरण में हूँ। यदि बचा सको, तो बोलो, अन्यथा मरना तो एक बार ही है। मैं हर हाल में अपनी शील की रक्षा तो करूँगी ही।'' पद्मिनी की बातें सुनकर बादल ने तत्काल राणा को छुड़ा लाने की प्रतिज्ञा की। पद्मिनी प्रसन्न होकर अपने महल लौटी। इधर बादल की माता और स्त्री ने उसे इस दुस्साहस के लिए बुरा-भला कहा। बादल की स्त्री ने अपने रूप-सौंदर्य से उसे प्रभावित करना चाहा। दृढ़ प्रतिज्ञ बादल इस सबसे विचलित नहीं हुआ। अंतत: दोनों ने उसे हथियार बँधवाकर विदा किया। बादल घोड़े पर सवार होकर आज्ञा माँगने काका गोरा के पास गया। जब गोरा ने उसे अकेले नहीं जाने के लिए कहा, तो बादल ने उसे यह कहकर आश्वस्त किया कि- ''युद्ध में हम दोनों साथ चलेंगे, अभी तो मैं केवल हालचाल जानकर आता हूँ।''

बादल तत्काल वहाँ पहुँचा, जहाँ मेवाड़ी योद्धा एकत्र थे। उसे अचानक आया

देखकर सभी ने खड़े होकर उसका सम्मान किया। कुमार वीरभाण और अन्य योद्धाओं से ख़ूब विचार-विमर्श करने के बाद वह अकेला ही अश्वारूढ़ होकर शाही सेना की ख़बर लेने के लिए चल पड़ा। सुल्तान ने जब अकेले बादल को आते देखा, तो उसे आश्चर्य हुआ। उसने सम्मानपूर्वक उसे अपने पास बुलाया। बादल ने कहा कि मुझे पद्मिनी ने आपके पास भेजा है। अपना पूरा परिचय देते हुए उसने कहा कि- ''पद्मिनी ने जब से आपको देखा है, वह आपसे मिलने के लिए तड़फ रही है, वह उस घड़ी की प्रतीक्षा में है, जब आप से उसका मिलन होगा। यह लीजिए, उसने मुझे आपको देने के लिए चिट्ठी भी दी है, जिसमें उसने अपनी मनोव्यथा और विरह वेदना का वर्णन किया है। पद्मिनी के लिए आपका संदेश जब दुर्ग में पहुँचा, तो योद्धाओं ने तो मरने-मारने की तैयारी कर ली थी; पर मैं किसी प्रकार कुँवर वीरभाण व योद्धाओं को समझा-बुझाकर आया हूँ और आशा करता हूँ कि आपका और पद्मिनी का मनोरथ पूर्ण करने में मुझे अवश्य सफलता मिलेगी।''

बादल द्वारा दिए गए नकली प्रेमपत्र को पढ़कर सुल्तान पानी-पानी हो गया। उसके हृदय पर इसका सीधा असर हुआ और वह बादल की बात को सर्वथा सत्य मानकर गारूड़ी मन्त्र प्रभावित साँप की तरह पूर्णतया उसके अधीन हो गया। सुल्तान ने बादल से कहा कि- ''मेरी लज्जा तुम्हारे हाथ है। जिस किसी प्रकार से योद्धाओं को समझा-बुझाकर पद्मिनी को मेरे पास भेजने में उन्हें सहमत कर लो।'' सुल्तान ने बादल को प्रलोभन दिया कि- ''यदि तुम कार्य मैं सफल हुए, तो तुम देखना, मैं तुम्हारी कितनी इज़्ज़त बढ़ाऊँगा।'' सुल्तान ने पद्मिनी को प्रेमपत्र भेजना चाहा, लेकिन बादल ने इसके लिए युक्तिपूर्वक मना कर दिया। उसने कहा कि- ''इसके किसी दूसरे के हाथ लग जाने का भय है। मैं आपका संदेश पद्मिनी को मौखिक ही सुनाऊँगा।'' इस प्रकार बादल ने मीठे वचनों से सुल्तान को प्रसन्न कर विदा ली। सुल्तान उसे दुर्ग के द्वार तक पहुँचाने आया। बादल जब प्रचुर धन राशि लेकर घर लौटा, तो माता और स्त्री को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। गोरा ने कहा कि बादल अवश्य ही अपने काम में सफल होगा। पद्मिनी को भी अपने पति से मिलन का विश्वास हो गया। सब लोग उसके बुद्धि कौशल से प्रसन्न हो गए।

बादल ने सभा में जाकर गुप्त मन्त्रणा की। बादल ने तय कर बताया कि दो हज़ार सुन्दर जरी के वस्त्रवाली और स्वर्णकलश युक्त पालकियाँ तैयार की जाएँ। प्रत्येक में दो-दो शस्त्रधारी योद्धा बैठकर तैयार रहें। बीच की मुख्य पालकी में गोरा को बैठाकर उसका परिचय पद्मिनी के रूप में दिया जाए। उसे वस्त्रों से इस प्रकार ढका जाए, जैसे पद्मिनी की सुगंध से आकृष्ट भ्रमर गुंजार से बचने के लिए ऐसा किया गया है। योद्धाओं वाली पालकियों में पद्मिनी की सखियाँ हैं, ऐसा प्रचारित

किया जाए। दुर्ग से लेकर सुल्तान की सेना तक इस तरह पालकियाँ रहें कि उनकी कड़ी-से-कड़ी जुड़ जाए। इस सारे काम को करने में कुछ विलम्ब नहीं हो। इधर मैं सुल्तान के पास जाकर पहले राणा को छुड़ा लूँगा और उसके बाद घात किया जाएगा। इस प्रकार बादल अपनी सारी योजना समझा कर सुल्तान के पास गया। सुल्तान बहुत प्रसन्न होकर उससे मिला। वह उससे पूछने लगा कि- ''काम बना या नहीं?'' बादल ने कहा कि ''किसी प्रकार समझा-बुझाकर पद्मिनी को सखियों सहित लाया हूँ। सारी पालकियाँ दुर्ग से उतरकर आ ही रही हैं, पर सब लोग इस बात से आशंकित हैं कि कहीं राणा भी नहीं छूटे और रानी भी चली जाए। उनके आश्वस्त होने के लिए ज़रूरी है कि आपकी सेना यहाँ से प्रस्थान कर जाए। यदि आपको भय हो, तो पाँच हज़ार सैनिक अपने पास रख सकते हैं।'' पद्मिनी से मिलने के लिए उत्सुक सुल्तान ने कहा कि- ''मैं भला किससे डरता हूँ। संसार मुझसे भय खाता है। तुमने भी बादल, चतुर होते हुए भी यह ख़ूब कही।'' उसने तुरंत चार हज़ार योद्धाओं को अपने पास रखकर शेष समस्त सेना को कूच करने की आज्ञा दे दी।

सुल्तान ने बादल को फिर सिरोपाव और लाख स्वर्ण मुद्राएँ दीं। वह सारा धन घर में रख आया और योद्धाओं को सारी योजना समझाकर सुखपाल (पालकी) के आगे-आगे स्वयं चलने लगा। बादल को देखकर सुल्तान ने उसे अपने पास बुलाया। राघवचेतन बहुत बुद्धिमान था, लेकिन स्वामिद्रोह के पाप के कारण उसकी बुद्धि पर पत्थर पड़ गए। बादल ने सुल्तान से निवेदन किया कि पद्मिनी ने संदेश भेजा है कि उसको आपको अपनी सब रानियों में पटरानी करना होगा। सुल्तान के सहर्ष स्वीकार करने पर वह बार-बार स्वर्णकलश वाली कथित पद्मिनी की पालकी और सुल्तान के बीच संदेश लाने के बहाने फिरने लगा। उसने सुल्तान से कहा कि पद्मिनी ने कहलाया है कि- ''आते-आते बहुत देर हो गई है। अब कृपाकर राणा से अंतिम बार मिलने की अनुमति दें, क्योंकि लोक व्यवहार में मेरा विवाह राणा के साथ हुआ है, इसलिए उससे दो बात कर अन्तिम विदा ले आऊँ।'' सुल्तान को पद्मिनी का यह शिष्टाचार अच्छा लगा और उसने तत्काल राणा रत्नसेन को बन्धन मुक्त कर देने का आदेश दे दिया। जब यह शाही आदेश लेकर बादल राणा के पास गया, तो राणा ने नाराज़ होकर बादल से कहा कि- ''धिक्कार है, तुमने क्षत्रियत्व को लजाने वाला यह सौदा किया है। स्वामिद्रोह के साथ-साथ तुमने सदा के लिये मेरे कुल पर भी कलंक लगा दिया।'' बादल ने कहा कि- ''चिन्ता न करें, यह खेल दूसरा है, आपके भाग्य से सब अच्छा ही होगा।'' इन वचनों से राणा मन ही मन सब कुछ समझ गया। सुल्तान ने उसे पद्मिनी को जल्दी से विदा देने की आज्ञा दी। राणा पालकियों के बीच में से बादल के संकेतानुसार तीर की तरह निकलता

हुआ तुरन्त दुर्ग में जा पहुँचा। उसके सकुशल पहुँचने के उपलक्ष्य में संकेतानुसार जंगी नगारे-निसाण बजा दिए गये। चित्तौड़गढ़ में राणा के पहुँचने से सर्वत्र हर्ष-उल्लास छा गया।

दुर्ग में नौबत बजते ही गोरा-बादल ने समस्त योद्धाओं के साथ शाही सेना में मार-काट मचा दी। अधिकांश शाही सेना तो पहले ही कूच कर कोसों दूर पहुँच चुकी थी। जो चार हज़ार योद्धा सुल्तान के पास थे, गोरा और बादल ने भीषण युद्ध करके उनको साफ़ कर दिया। अन्त में गोरा ने जब सुल्तान पर आक्रमण किया, तो वह भागने लगा। यह देखकर बादल ने गोरा से कहा कि- ''काकाजी! इस कायर और निर्बल को छोड़ दो। भागते पर वार करना क्षत्रिय धर्म के विरुद्ध है।'' क़िले पर खड़े राणा आदि सभी लोग, गोरा के पराक्रम की सराहना कर रहे थे।

युद्ध में गोरा काम आया। बादल ने सुल्तान को जीवित छोड़कर शाही लशकर को लूट किया। दो दिन के बाद सुल्तान एक खवास के साथ मारा-मारा फिरता हुआ नमाज़ के समय लशकर के निकट पहुँचा। खवास के ख़बर करने पर अमीर-उमराव आकर सुल्तान से मिले। उसे भूखा-प्यासा और बेहाल देखकर उन्होंने ने पूछा कि ''अपनी सेना, पद्मिनी आदि सब कहाँ रह गये?'' सुल्तान ने कहा कि- ''बादल ने हमारे साथ धोखा किया। पद्मिनी और उसकी सखियों के नाम पर आई हुई पालकियों में से योद्धा कूद पड़े और उन्होंने हमारे लशकर को समाप्त कर डाला। मैं तो बड़ी मुश्किल से रहमान की कृपा से बच पाया हूँ। मैं पद्मिनी के मोहजाल में फँसकर भ्रमित हो गया था। अन्यथा हिन्दू लोगों की मेरे सामने क्या बिसात थी!'' इसके बाद सुल्तान अपने लशकर के साथ दिल्ली चला गया। जब बेगमों ने सुल्तान से पद्मिनी दिखाने की प्रार्थना की, तो उसने कहा कि ''पद्मिनी का मुँह काला किया, ख़ुदा की दुआ से ख़ैरियत हुई।'' सुल्तान की बेगमें खम्मा-खम्मा करने लगीं। सुल्तान की माता ने उस नसीहत देते हुए कहा कि- ''स्त्री के कारण तो रावण जैसे का राज चला गया। अब ख़ुदा का ध्यान करते हुए आनन्द से राज करो।''

सुल्तान के भाग जाने पर रण क्षेत्र में अपनों की खोज-ख़बर लेने के बाद बादल चित्तौड़ के दुर्ग में प्रविष्ट हुआ। राणा ने उसे हाथी पर बैठाकर छत्र ढुलाते हुए दुर्ग में लाकर कई प्रकार से सम्मानित किया। पद्मिनी ने उस पर आशीर्वाद की झड़ियाँ लगा दीं। पद्‌मिनी ने उसे तिलक करके मोतियों से बधाते हुए अपना भाई बनाया। चित्तौड़गढ़ के बाज़ार में सर्वत्र बादल के यश की चर्चा हो रही थी। माता ने बादल को चिरंजीवी होने का आशीर्वाद दिया। स्त्रियाँ मंगलगीत गा रही थीं। काकी ने बादल से पूछा कि- ''तुम्हारे काका ने किस प्रकार शत्रुओं से लोहा लिया?'' बादल ने कहा कि- ''हे माता! काका की वीरता का कहाँ तक वर्णन करूँ। उन्होंने तो शत्रु

सेना का इस तरह सफ़ाया किया कि केवल सुल्तान अकेला किसी तरह बच पाया। काका का शरीर इस महायुद्ध में तिल-तिल-सा छिद्रित हो गया और वे स्वर्ग के मेहमान हो गये। उन्होंने दुर्ग की लज्जा रखी और अपने वंश का नाम उज्ज्वल किया।''

पति की वीरता का बखान सुनकर गोरा की स्त्री के रोम-रोम में वीरत्व छा गया और पतिपरायण सत से अभिभूत वह स्त्री बादल से कहने लगी कि- ''बेटा! ठाकुर स्वर्ग में अकेले हैं और विलम्ब होने से हमारे बीच दूरी बढ़ती जा रही है। अब काकी को भी शीघ्र ही काका के ठिकाने पर पहुँचाओ।'' बादल ने काकी के सत की प्रशंसा की। काकी सुसज्जित होकर घोड़े पर सवार हुई और युद्धभूमि में जाकर राम-राम उच्चारण करते हुए गोरा के शव के साथ अग्नि में प्रवेश कर गई।

बादल ने अपने बुद्धि कौशल, स्वामिभक्ति और शौर्य के बल पर राणा को मुक्त करवाया, दिल्लीपति को जीता और पद्मिनी की रक्षा की। उसकी कीर्ति नवखंड में फैली। इस तरह पद्मिनी के शील और बादल के पराक्रम के प्रभाव से राणा रत्नसेन निर्भय राज्य करने लगा। (3)

अध्याय - 6

दयालदास कृत 'राणारासो'

(रत्नसेन-पद्मिनी प्रकारण)

रचना समयः 1668-1681 ई.

दयालदास कृत *राणारासो* मेवाड़ के शासक राजाओं से संबंधित वंश और प्रशस्तिप्रधान प्रबंध काव्य है। यह इतिहास और कविता का मिलाजुला रूप है। यद्यपि कवि ने इसको 'इतिहास' और *पृथ्वीराजरासो* के समकक्ष रचना कहा है। मेवाड़ राजवंश की शुरुआत से लगाकर महाराणा अमरसिंह (प्रथम,1596-1619 ई.) के देहावसान और उनके उत्तराधिकारी कर्णसिंह (1619-1627) के सत्तारूढ़ होने तक की घटनाओं, युद्धों, संधियों, विवाहों आदि का इसमें वर्णन है। अंत:साक्ष्यों के आधार पर विद्वानों का अनुमान है कि दयालदास ने जगतसिंह (1627-1652 ई. के समय इसको लिखना शुरू किया और उनके निधन के बाद सत्तारूढ़ राजसिंह (1652-1680 ई.) के समय इसको समाप्त किया। कवि ने इसका नामकरण *रानरासो* किया है।

विद्वानों के अनुसार इसका रचनाकार दयालदास ब्रह्मभट्ट रावों की लाखणौत शाखा से संबंधित था। लाखणौत राव अपना संबंध पश्चिमी बंगाल से अजमेर और मारोठ आकर बसे वामनादि पाँच गौड़ क्षत्रियों से जोड़ते हैं। इस शाखा में कई कवि और योद्धा हुए हैं। दयालदास जयसिंह के समय (1680-1698 ई.) तक जीवित था। ब्रजमोहन जावलिया ने उसके पिता और उसके समय के शासकों आदि के जीवनकाल के आधार उसका जन्म 1643 ई. के आसपास, *राणारासो* की रचना के आरंभ का समय 1668-1673 ई. और इसके समापन का समय 1680-1681 ई. निश्चित किया है। *राणारासो* की प्रतिलिपि गिलूंड (चित्तौड़गढ़, राजस्थान) के फुलेरिया मालियों के राव दयाराम के संग्रह में मिली। बाद में इसकी प्रतिलिपि मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने करवाई। इसी प्रतिलिपि के आधार पर मोतीलाल मेनारिया ने इसकी संशोधित प्रति तैयार की। इस संशोधित प्रति के आधार पर संपादित प्रति को

ब्रजमोहन जावलिया के संपादन में महाराणा प्रताप स्मारक समिति ने 2007 ई. में प्रकाशित किया।

यह रचना पारंपरिक अर्थ में केवल वंशावली नहीं है। यह इतिहास का आधार लेकर लिखा गया प्रबंध काव्य है। उस समय ऐसी रचनाओं के 'रासो' नामकरण की प्रथा थी, इसलिए कवि ने ऐसा किया है। ऐतिहासिक पात्र और घटनाएँ यहाँ वर्णन की पारंपरिक रूढ़ियों में घुलमिल कर आती हैं। कवि अपने समय के कवि-कौशल में पारंगत लगता है। उसे धर्म, शास्त्र, संस्कृत आदि का ज्ञान है और वह इनका अपनी कविता में जमकर उपयोग भी करता है। उदयसिंह (1537-1571 ई.) से पहले का विवरण उस समय उपलब्ध ख्यातों और लोक में प्रचलित आख्यानों को पर निर्भर है। परवर्ती वृत्तांत कवि का समकालीन है, इसलिए इतिहास से मेल खाता है।

'राणारासो' मूल
(रत्नसेन-पद्मिनी प्रकारण)

।।दोहा।।

नांखि सपतपुर सुरनि के, हरिपुर किये विलास।
घर रखवारे रतनसी, वसी नऊ निधि वास॥167॥

।।छन्द भुजंग प्रयात।।

वसै वास चीतोर राना रयन्नं। मनो देहधारी घर में मयन्नं॥
तहाँ एक जोग्यंदु जाजूलि आयो। मनो मारतंडं मही नंद जायो॥
किधों नाथ गोरख्खु के गोपिचंदा। लखै लोचनं मोचनं दुख्ख ददा॥
सुनी रान जोग्यंद की वात कानं। चले आसनं वासु ले पासवानं॥
लख्यो जाइ जोगींदु जाजूलि मानं। किधो गिंभ डिंभं भयो भीमु भानं॥
उभै पानि जोरे नए रेंनु रानं। मनो इंदु वंदै सुवं म्हान थानं॥
कथा वारता होत पूछी खुमानं। गयो चत्रुमासो बसे कोन ठानं॥
सुनो राज रानं जपे इंदु जोगी। वस्यो सिंघल स्त्रवजा भुम्मि भोगी॥68॥

।।दोहा।।

भोग भवनु के कतनु सुख, कहै सुना श्री रान।
नालिकेल जंगल जटे, लौंग लता लपटान॥69॥
पारु न वन वारुन गजै, दारुन दुख्ख न कासु।
पदम सुवासित पदमिनी, घर-घर प्रति घर वासु॥70॥
उठै वधू रोवाइ लगि, लोचन परै कपूरु।

पाचि पना पगतर चपे, लाल प्रवाल सपूरु॥71॥
वरिषा कीच मचै नहीं, ग्रीषम कुंदन कीच।
इंधनु चंदनु अनार को, गज गहि लादे नीच॥72॥
पनगलता पुंगी विरख, चढि हालति लगि वाइ।
लखि परभूमी पाहुनो, मानहु लेति बुलाई॥73॥
मुकता मनि मानिक मिलै, चूनो कीनो वारि।
के हाटक के फटिक के, रचिये सदन सँवारि॥74॥
मृगमद मधी भराउ भरि, इहि विधि रचिये भोंन।
अलका अरु अमरावती, लहै न समसरि होन॥75॥
घर घर घरनी ससि मुखी, तम ममु तहाँ न सेइ।
निसा परे ता देस में, दीपु न कोऊ देइ॥76॥
सबके सिर भामर भवें, सब सिर सारस वासु।
चौदह विद्या चतुर सब, सब गुन रूप निवासु॥77॥
दया दिष्टि सों एक त्रिय, मो तन गई निहारि।
मैं जान्यो मो पर फिर्‌यो, विबुध नदी को वारि॥78॥
वहुरु भ्रंमु ऐसा भयो, सुनहु रतनसी रान।
पय सागर महि पैठिकै, मान्हु लग्यो नहान॥79॥
मानहु मुकता चूरिके पूरिस घन घनसारु।
सो गहि ठार्‌यो सीस तें, वीस विसै वेपारु॥80॥

॥कवित्त॥

यह सुनि रान खुमांन, कान श्रोतान राग हुव।
निसा (द्यौ)स कलमलै, दलै रतिनाथु सेज भुव॥
कब हुक सिव सहुँ कहै, देहु मो पंख अंखि-त्रय॥
ज्यों उडि सिंघल जाउं, होहु होनी सु अजय जय॥
पनगारि पवन के मिंत, करहुं (क्रिपा) इहिवार को।
पदमिनि जथ पद संचरहि, तत्थ पंथ संचारि मो॥81॥

॥दोहा॥

यह रट लागी रान कहूं, रमतु भयो जोगिंदु।
अंतरगति की पीर सों, पीरो पर्‌यो नरिंदु॥82॥

॥कवित्त॥

नेहुँ न लग्गे ग्रेह, देह ओतापु जायु मुख।
प्यास गई तजि पासु, वासु तजि भूख दुःख सुख॥

वनु उपवनु न सुहाइ, पाइ परसें न हिनि थिरु।
मन न रमे रनिवास, सांस पर सांस लेइ चिरु॥
निदंतु चंद चंदन चढत, इंदीवर उद्वेग मय।
परजंक संक ढंकत द्रिगनि, भोज सोंज भइ दानि भय॥83॥

॥दोहा॥

भयो भूमि रितुराज को, आगमु दस दिसि आइ।
मानहु मुग्धा की भई, तरुन अरुन ईकाइ॥84॥

॥कवित्त॥

तरुन अरुन तरपत्त, अरुन तरपत्त तरुन छबि।
अंब मोर जनु ढरत चौंर, झौंर नित भौंर फबि॥
करति केल द्रुम लपटि, वेलि लटकंक्ति कंठ लगि।
उडि पराग बन बाग, भाग त्रय पोंन गोंन जगि॥
नमि डार भार किंसुक-कुसुम, असम बांन संधान क्रतु॥
कोकिल कुहक नहि जकम जिय, विरहिनि अंत वसंत रितु॥85॥
उडिग पात लगि वात, चिट्ठी फटिकि चारों दिसि।
जिनि विछुरहु तिय पीय, हिय वसि रह्यो द्योस निसि॥
लहलहाइ उल्लहिय, नवल पल्लव नव-दूनी॥
कहँ कदम्म कहँ अंम, साख पिकु बिनु नहिं सूनी॥
गुंजत कुंज पुंजनि भँवर, भवर मत्त अनुरत्त चितु।
विजोग रोग संजोग बिनु, जंत डरत वसंत रितु॥86॥

॥दोहा॥

वीती नीठि वसंत रितु, चितु हितु रह्यो उदास।
आइ गई ग्रीषम गरम, परम नरम उदवास॥87॥

॥कवित्त॥

अलप पुन्न कल जेमि, जाइ निसि नेंन विलग्गत।
यों वासरु वरु बढ्यो, अगिवानु वंस सिलग्गत॥
चकी चकव कीरु वक, आक्क रु जवासे सुख्ख।
नदी नद निझर न सद, वे हद (बहइ) वाइ रुख्ख॥
मृंग मीन दीन द्रुम छीन तन, तरनि ताप ओताप दत्ति।
रस आस प्यास बुझे न खिन, ग्रीषम गरम गरिठ्ठ गति॥88॥

॥दोहा॥

करम करम ग्रीषम गई, परम धरम के जोर।
पावस रितु आगमु भयो, उमड़ि घटा घनघोर॥89॥

।**कवित्त**॥

सित असित वादर (...), अमान असमांनह उनित।
धधरि धुंक धुनि गज्ज, सज्ज पर कज्ज ही कुं नित॥
दमकि दाम दामिनी, झमकि बरखत नीर नव॥
भूमि हरित भरि सरित, चरित चातक मयूर रव॥
वल्लि विटप लपटंत तन, अतन तेज असहेज हुव।
विरजी निहाल उर ज्वाल जुर, पावस नाल दयाल जुव॥89॥

।**दोहा**॥

अतनु तोपची रितु तुपक, सरित पलीता दानु।
विषम बूंद गोरी बहें, घात वियोगी प्रानु॥90॥

।**कवित्त**॥

फूलि कमल दल विमल, अमल आकासु सुमित्तु।
इंद किरनि उद्दोत, होत मानिनि मनु लुभित्तु॥
चच्छु ओर भरी भरि, चकोर चाखंत सुधा रसु।
संकुलि अलिकुल पंति, जाति कुसुमनि समूह तसु॥
धवलंति धाम आरंभ त्रिय, हिय हुलासु वसि अंगि वसु॥
चित्र पगार आगार हद, सरद सर्वत्र सिंगार रसु॥91॥

।**दोहा**॥

सरद दरद अंतर बढ्यो, जरद वदनु नृप रेनु।
ज्यों ज्यों मनु अनुरतु भयो, मनू भयो त्यों मेनु॥92॥

।**कवित्त**॥

मेनु मत्तु हिम रित्तु, रतु दंपति चितु आनन्द।
जत्तु सतु डगमग्यो, मानु मानिनि दिनानंद॥
व्रित्रासुर वपु रेनि, धर्मु कलि में त्यों वासरु।
सीत भीत आदीत, अगिनि को नह लिय आसरु॥
विरहीय हीय वारीज वन, परिग दाहु अच्छाहु छय।
संजोग भोग भुव भुग्गवहि, तेल तूल तंमोल सय॥93॥

।**दोहा**॥

हिम रित्तु चित्त विरसोसु, रत्तु पदमिनी पेमु।
ससिर धसिर आई धरा, सब जग हुल्स्यो हेमु॥94॥

।**कवित्त**॥

अलिन नलिन दल लहहि, दलिन दुख्खु मलिन चकी चक।

चलि नदि रामरस कहि, मलिन गिरि श्रवहि हेम सक॥
मलिन वियोगिनि मुख्ख, छलिन रुख काम वरावहि।
सलिन सनेहु तजंत, कलिन अपगुन मन लावहि॥
थलिन विरह पुर हि थमें, पलि न सकहि संसार पन।
दिखहु दयाल भुजजाल विनु, को जीतैं रितु ससिर सन॥95॥

॥दोहा॥

रितु षट खटपट सों गई, घट पट विरह समंद।
लट पट लीयें आसिखा, फिरि आयो जोगिंदु॥96॥
मुख पीरो सीरो सबदु, अधिक अधीरो नेह।
ऐसो निरख्यो रतनसी, अतिकृसु कोमल देह॥97॥
जोगी जिय उपजी दया, कया भयो कृसु रानु।
जो न मिलै अब पदमिनी, तो नृपु त्यागे प्रानु॥98॥
यह विचारि ओधूत नें कियो इष्ट आराधु।
आराधी क्वांरी कुंवरि, जा तुन रूप अगाधु॥99॥
छपद छत्रु सिर पर अछै, अछै ताम रस वासु।
ससि-मुख सारस लोचनी, शोभा सील निवासु॥100॥
नवल धवल ग्रह रचि दए, तहाँ करै सुख रानु।
सुनि देसो दलु प्रबलु ले, दिल्ली को सुरितानु॥101॥
आलदमिंत अलावदी, चढि घेर्यो चीतोरु।
जा आगें चहुं चक्क में, बच्यो न दूजो ठोरु॥102॥

॥छंद भुजंग प्रयात॥

बच्यो ठोरु दुजो नहीं जासु आगे। लच्यो सेसु भारं भुवं भार भागे।
मच्यो सोरु संसार नसारु मंडयो। कच्यो कष्ट कूरंमु आरंभु छंडयो॥
खच्यो जुत्थ मातंग को लार धारं। जच्यो ब्रह्म इन्दं वच्यो रंनिवारं।
नच्यो नागधारी सुनारी समेतं। तच्यो ताप तो खडु तंडत प्रेतं॥
पच्यो भान ओसानु ग्रास्यो गरंदं। सच्यो नारद सारदं नंद संदं॥
रच्यो हारु चामुंड लै झुंड झुंडं। अच्यो रत्तु अंबा विलंवान तुडं॥
फिरी फोज चोफेर फैले फिरंगी। सिरी पख्खर साजवाजं कुरंगी!
मुड़े मुंड डठ्ठी बड़ी तुंड रत्त, भखे भख्ख आभख्ख ते भेष तत्ते॥
मुगल्लं जुगल्लं जि कुंमान खींचे। रुहीला दुहीला रचै क्रम्म नीचै।
बिना रोम रुम्मीय भुम्मी भयान। उजव्वक्क जे सक्क सुमैं कयानं॥
वलोची वली एलची अंग ऊंचे! मिलै लोह के थान पे कान बूंचै।

किते कासमीरी अभीरी अनम्मे। भुजा थंभ दे खंभ राखै जि अंभै।
खुरासान पट्ठान उट्ठान उट्ठे। मुलीतान वारे गरें दोरि गुट्टे॥
सर वानि सूरं किरासानि धावे। तुरक्कंति मानं तुरंग उडावें॥103॥

॥कवित्त॥

उडी गरद आकास त्रास भू – मंडलु डुल्लइ।
फिरि फिरि फन फन धरइ, फनिंद फुँकारह भल्लइ।
कोलु लोलु वलु भयो, नयो कच्छपु छिपि नीरह॥
गज गरज गुजार (इ), भर्‌यो अंतरु सुर भीरह॥
हय हुंक धुंक नीसान नद, टुंक टुंक हुव हिमगिरी॥
सुख सेन चेन नसि रेन दिन, सहज नेन निझरकि झिरी॥104॥
इकु लख्खु गजराज, वाज दसगुन पख्खर धर।
पर्‌यो घेर चहूं फेर, झेर कीनो न मेछ छर॥
पवन गवन लहे जवनु, घूमही धपि (धपि) खंडे।
मानु न छंडे रान, टेकु सुरितानु न छंडे॥
थके वसीठ विचाइ ठवइ, कहि दयाल द्वादस वरस॥
पिखै न साहि पदमावती. दिवस रैनि इच्छे दरस॥105॥
सुरंग न लगै दुरग, खग्यो गहि खमु मेछु मंडि॥
नित्त निहंस नींसान, बांन कम्मान नित छंडि॥
ढोवा करि ढिंग ढूकि, फूँकि पावक परजारे॥
ओडे अडिग बनाइ, हत्थ मत्थै सहु मारे॥
गलदार गल्ह उच्छार छिति, अप्पु सद्दु अप्पु न सुनइ॥
धू लोक ओक धधरित्त धक, धनदु सीसु संकतु धुनई॥106॥
हय गयंद तर फरहिं, पर हिय भसुंडि डुंड रद।
अंत औझर जरिजंत, मंत उस सूकि रूकि नद॥
नारि चारि दिसि मंडि, छंडि गोरा गल गज्जहि।
मेछ मुंड उडि जाहि, आइ कंधार पर सज्जहि॥
जैकारु उद्ध हैकारु अध, मुधि लोक खैकारु रचि॥
अहंकार, बढ्ढिय तुरक, मुरक न चलहि लज्ज खचि॥107॥
तब प्रधान खुम्मान रांन, सहु कहहि मंत्रु इय।
हुकम देहु दीवान, प्रथम करि वात रत्त हिय॥
रचइ एक परपंचु संचु सो दिष्टि दिखावें।
वसनु वासु परकासु, डारि डोला परधावें॥

भरि सुभर मथी सन्नाह सज, अज खंजर अंगी अनत।
सक सूर नूर संपूर गुन, सहस तोल इक ही गनत॥108॥
करि हुकमु खुम्मानु, रान अंतर निवासु हुव।
मंत्रिनि लिए बुलाइ, राइ रावत राज सुव॥
उभै पख्ख परसिद्ध, सुद्ध स्वामिंत हित्त चित।
सील कील डिढ सच्च, वाचा कढे सु नेम नित॥
चढ़ि चारि चारि सुखपाल प्रति, सत्रु काल-मुख लाल भव।
करि वत्त रत्त सुरितानु करि, चरितु रची चोडोल तव॥109॥
कनकदंड धर अग्ग, चलेइ तमांमु उचारत।
दूरि मारि दिय मिच्छ, इच्छा रव अच्छ संचारत॥
रत्त पीत सित असित, हरे डोला डिठ सुम्भित।
भोंर झोंर झूमि भवें, भ्रमै बैठे उडि लुम्भित॥
इहि भंति पंति पहुचंति हुव, धव समानु सुरितानु जह।
सतु पंच पंच हुव अग्ग पच्छ, पदम गंधु तसु ईकु मह॥110॥
छ-पय छत्रु द्रिग देखि, सत्रु बोल्यो हँसि आनन।
राघोचेतनि चाहि ताहि, आनहु ततु जानन॥
पदम-मुख्ख पदमिनी, मुख पिख्खन कहे साइति।
किहि घटिका घन नेह, मेह वरषें उर भाइति॥
यह हुकमु होत उद्दोत सुख, गनक सनक सम आइ गय।
वरतारु सारु वरतंत तिन। पंच द्योस परमानु दय॥111॥

।दोहा॥

दयो महूरत पंचमी, परिवा तें दिन पंच।
विय डेरा डोला धरो, साहि कह्यो सुनि संच॥112॥
भेरि नफीरि निसांन नद, आनंद बज्जन लग।
नीच हि नीर अबीर उडि, दसों दिसि मुंदे मग॥113॥
डोला ऊपरि वारि के, डारे नग सुरितानु।
धरि कु खेलु इत्तो भयो, ठयो खेंचि रथु भानु॥114॥
जहीं उठावत पालिकी, परसी पानि कहार।
सिलह-बंध जोगिंद से, कढे काढि करिवार॥115॥

।छंद मोतीदाम॥

कहे करिवार कटे वर वीर। चढ़े अतिरोस चढ़ी भुव भीर।
पढ़े मुख मारु जढे जद मीर। गढे किरवान कटारिन धीर ॥

वढे दर वाहु निपारत बाढ़। ठढे फटि फंक जुटे जमदाढ़।
रटे मुख तोबह भीत तुरक्क। परे घर ऊठिय वार फुरक्क॥
परी दल आलम जालम अेल। हलोहल हल्ल खलभ्मल सेल।
बलो बल छुट्टि छटे गजराज। दलो दल दव्वि लरें इक लाज॥
खलो खल खग्ग अलग्ग करंत। गलोगल दंतिनि दोरि दरंत।
घलोघल ओझर सों झर झेलि। नलो नल कट्टत ठेपर ठेलि॥
चलो चल छंडिय खंडतु मुंड। छलोछल तक्कत जक्कत डुंड।
थलोथल लग्गि लथप्पथ लुत्थि। तलोतल ऊपर भू पर बुत्थि॥
भलोभल इक्क नि इक्क उचारि। मलोमल मंडत छित्ति पछारि॥116॥

।दोहा॥

छित्ति पछारत कित्ति लगि, जिति जांन कहे मीर।
इत हिंदू तिंदूकि वन, अग्गि लगी अन नीर॥117॥

छंद भुजंगी

लगी अग्नि मानो विना नीर नीरे। डगी भूमि भीरं उभारंत धीरे।
जगी जोगिनी भोगिनी रत्त पत्तं। खगी पंति प्रेतं समेतं सुभत्तं॥
लगी वाम अंगं नचे मुंडमाली। हलकंत हिंदू किलंकंति काली।
खलक्कंत खग्गं निखंगं तुरक्क। मिले लोह कोह छछोहं जुरक्क।
कमानं अमानं तिवानं कृपानं। जमंडाढ ओगाढ वाढे नृपानं।
झरस्सी सरस्सी फरस्सी वरस्सी। बरच्छी भरच्छी धरच्छी दरस्सी॥
अधंधार उद्धार सुद्धार सूरं। रुधिद्धार जुद्धार क्रद्धार पूरं॥
धधक्कार धुंकार धक्कार धीरं। धमंकार धुक्कार धेक्कार वीर।
झटप्पट्ट झप्पंट झारंत धारं। लटप्पट्ट लट्टंत कट्टंत सारं।
खटप्पट्ट द्वे दीन लेलीन रोस। चटप्पट्ट झूझंत सूझंत दोसं।
अटप्पट्ट ओसान नोसान भूले। कटप्पट्ट दंतं भिरे भट्ट लूले।
परे वत्थ हत्थीनि सों कत्थ काजं। करे डुंड सुंडं भसुंडं समाजं॥
कटे दंत अंतं भरामंत भूकं। भभक्कंत रतं मनो अद्रि ऊकं।
उछट्टंतु मुत्ताहल स्त भीने। मनो लाल मानिक्क उच्छारि दीनें।
कटट्टट्टरं टोपु टूटे क्रपानं। मनो उच्छरे मीन ऊंगत भानं।
किते टोंटि सों झोंटि झेले झपट्टे। किते टेकि घुंटे निघंटं कपट्टे॥118॥

।दोहा॥

टेकि टोंटि घुटुंवनि चले, दले घंट दति दंत।
लगि ओंझर ओझर फटे, पगतर आवति अंत॥119॥

आवत सुख आए हुते, जात पर्‌यो घरु दूरि।
साहि भजे सरवस तजे, गजे हिन्दु गज चूरि॥120॥
गज वाजि वाजी मंडी, हारि गये घर मीर।
असि पासें घुम्मान खिझि, जीते लए वर वीर॥121॥
वीर परे वसु कोस लों, वारुन वाज समेत।
वाजे वाजे जीति के, हिन्दू सोधत खेत॥122॥

।छंद नराज॥

सुधंत खेत नेत - बंध संध वंध वित्थुरे।
कमंध अंध धुंकही धमंकि जित्थ तित्थुरे॥
धरक्कि घंट घूमि भूमि कांइ घाइ चूरही।
सरक्कि रास सोस सों झझोरि झुंट झूरही॥
ढरक्कि झुंड मुंड डुंड डंड बाहु उच्छरे।
थरक्कि जुत्थ लुत्थि बुत्थि हत्थ मत्थ गुच्छरे॥
खरक्कि खार धार श्रोन वोन जोन आननं।
झरक्कि लग्गि अग्गि की उठंति थान थाननं॥
फरक्कि फेफड़े फरंत रफ्फि नीर मंगही।
लरक्कि अंत तंत सोंत जंत दंत भंगही॥
डरक्कि डुंड वारुनं भरक्कि भूत भग्गियं।
तरक्कि तोरि पंसुरी नरी निकासि दग्गियं॥
मरक्कि मंथ हत्थथं हरक्कि हारू मंडियं।
करक्कि हड्डु डढ्ढ सों चरक्कि नंचि चंडियं॥
जरक्कि खित्ति खोपरी करंत प्रेत खप्परं।
छरक्कि खाल खींचि के छजंत छाइ छप्परं।
गरक्कि गत्त जुग्गिनी उलेथि लोथि भुंजही!
दुरद्द रद्द कंध ले गनाधिपत्ति गुंजही॥
कपाल भाल जाल लेत खित्र पाल माल को।
भवंत गिद्ध सिद्ध चिल्ह काक ताक घाल को॥123॥

।दोहा॥

काक ताक चख चोट ही, खोट नाक चढि देत।
नारद सारद सुद्ध मन, गुन गावत संग प्रेत॥124॥

।कवित्त॥

गुन गावत हिय हेत, देत आसिष दिवऊकस।

रेनु रानु कनु ठयो, गयो मेच्छि उडि कूकस॥
साज सहित गजराज, वाज अरु लाज छंडि छर।
सत्थिय अत्थीय तजि, गयो पुर त्यागि भागि भर॥
जीत्यो खुमानु खग जोर, जगु मग कित्ति विस्तार हुव।
आलदमिंत अलावदी अजस असंखि भंडारु भुव॥125॥

।दोहा॥

भुव पर राना रतनसी, धुव समान धर-पंधु।
ता सुत महि माहुप भयो, अहंकारु दसकंधु॥126॥

'राणारासो' हिंदी कथा रूपांतर
(रत्नसेन-पद्मिनी प्रकारण)

समरसिंह के बाद चित्तौड़गढ़ में रतनसिंह सत्तारूढ़ हुआ। वह गुण सम्पन्न और दूरदर्शी राजा था। उसकी राजधानी में एक अत्यंत तेजस्वी गोरखनाथ या गोपीचंद नाम का योगी आया। राजा ने जब उसके विषय में सुना, तो वह अपने निजी सेवक के साथ धन-संपदा लेकर उसके दर्शन करने गया। रत्नसिंह ने उसको हाथ जोड़कर प्रणाम किया। रत्नसिंह ने उससे पूछा कि आपने अपना पिछला चातुर्मास कहाँ किया, तो योगी ने उत्तर दिया कि वह विख्यात और सब कुछ पैदा करनेवाली भूमि सिंघल में था। फिर उसने विस्तार से सिंघल देश के संबंध में राजा को बताया। उसने कहा कि सिंघल नारियल के वृक्षों से आच्छादित है और इन वृक्षों पर लवंग की बेलें लिपटी हुई हैं। वहाँ किसी को कोई कष्ट नहीं है। वहाँ के हर घर में कमल के समान सुवासित पद्मिनी स्त्रियों का निवास है। यह सुनकर रत्नसेन को प्रेम हो गया। वह रात-दिन आकुल-व्याकुल रहने लगा। शय्या में उसे कामदेव संतप्त करने लगे। वह भगवान शंकर से अनुरोध करने लगा कि- ''मुझे पंख दे दो, जिनसे मैं सिंघल जा सकूँ।'' वह वायु देव से कहने लगा कि- ''मुझे आप उस मार्ग पर ले चलें, जहाँ पद्मिनी भ्रमण करती है।'' रत्नसिंह को पद्मिनी की लगन लग गई। योगी वहाँ से चला गया।

रत्नसिंह अपने भीतर की पीड़ा से दुबला होकर पीला पड़ गया। उसका महल में मन नहीं लगता। उसका शरीर ज्वरग्रस्त रहने लग गया। उसकी प्यास और भूख चली गई। उसे सुख-दुःख का भान नहीं रहा। अब उपवन उसे अच्छे नहीं लगते। ज़मीन पर उसके पाँव सीधे नहीं पड़ते। धरती पर बसंत ऋतु आ गई। आम के वृक्षों पर बौर ऐसे लगते थे जैसे चमर ढुलाए जा रहे हों। पलाश और टेसू की टहनियाँ

फूलों के बोझ से ऐसे झुक गईं, मानो कामदेव बाण संधान कर रहा हो। बहुत मुश्किल से बसंत ऋतु गई थी कि ग्रीष्म ऋतु आ गई। रातें छोटी और दिन बड़े होने लग गए। बगुलों को छिछले जल में मछलियाँ मिलने लगीं। आक और जवासे में कोपलें फूटने लगीं। ग्रीष्म ऋतु बीत गई और वर्षा का आगमन हो गया। उमड़-घुमड़कर बादल आने लगे। धरती हरी-भरी हो गई। चातक और मोर सहज भाव से नृत्य करते हुए आवाज़ करने लगे। कायारहित कामदेव वर्षा की तोप चलाने लगा। शरद ऋतु के आते ही निर्मल कमलों के समूह फूलने लगे। भँवरों के झुंड चमेली के फूलों पर एकत्र होने लगे। शरद में रत्नसिंह के हृदय में पीड़ा बढ़ गई और शरीर पीला पड़ गया। पद्मिनी के प्रति आसक्ति बढ़ने के साथ ही कामदेव उसके मन में प्रविष्ट होता गया। हेमंत ऋतु में एक-दूसरे पर आसक्त पति-पत्नी के मन में उल्लास होता है। इस समय साधु-संतों का मन भी विचलित हो जाता है। इसी उठापटक में छह ऋतुएँ बीत गईं। रत्नसिंह के हृदय में विरह का समुद्र लहरा रहा था। योगी अपनी इश्क़ की लुभानेवाली बातों के साथ लौट आया।

योगी ने देखा कि रत्नसिंह का मुख पीला पड़ गया है। उसकी आवाज़ धीमी हो गई है और वह प्रेम में अधीर है। रत्नसिंह को कृशकाय देखकर योगी के मन में करुणा का भाव पैदा हुआ। उसने सोचा कि जो इसे अब पद्मिनी नहीं मिली, तो वह अपने प्राण छोड़ देगा। यह विचारकर योगी ने अपने इष्टदेव को स्मरण किया। उसने सौंदर्य की देवी कुमारी की आराधना कर उसे प्रसन्न किया। शील और सौंदर्य की भंडार उस कुमारी का निवास कमल पुष्प में है और उसके सिर पर हमेशा भ्रमर छत्र सुशोभित रहता है। योगी ने (रत्नसिंह और कुंवरी पद्मिनी के लिए) नए महलों का निर्माण कर दिया। रत्नसिंह यहाँ सुखपूर्वक रहने लगा। यह सुनकर कई देशों के शक्तिशाली राजाओं को साथ लेकर दिल्ली के सुल्तान उलाउद्दीन ख़िलजी ने आक्रमण कर दिया। सुल्तान ने चित्तौड़ के क़िले घेर लिया। सुल्तान शक्तिशाली था- उसके समान चारों दिशाओं में और कोई नहीं था। उसके सैन्य दल के भार से शेष नाग दबकर भागने लगा। पृथ्वी को अपनी पीठ पर धारण करनेवाला कच्छप कष्ट पाने लगा। उसकी भार वहन की क्षमता जाती रही। विदेशी यवन चारों दिशाओं में फैल गए। अलाउद्दीन ख़िलजी की सेना में रोहिले, रूम, उजबक, बिलोची आदि अलग-अलग योग्यताओं के लोग एकत्र हुए थे। उनमें कश्मीरी, आभीर, खुराशनी पठान और मुल्तान आदि थे, जो अलग-अलग युद्ध कौशल में पारंगत थे। आकाश में गर्द छा गई। भयग्रस्त होकर भूमंडल हिलने लगा। शेष नाग फूँकारे करना भूल गया और अपने फनों को पटकने लगा।

सुल्तान की सेना में एक लाख हाथी और उससे दस गुणा झूल और कवच

से सजे घोड़े थे। उसकी सेना ने क़िले को चारों ओर से घेर लिया, लेकिन म्लेच्छ रत्नसिंह को परास्त नहीं कर पाए। रत्नसिंह अपना स्वाभिमान और सुल्तान अपनी ज़िद छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। दयालदास कहता है कि बारह वर्ष तक दूत मध्यस्थता करते हुए थक गए। सुल्तान रात-दिन पद्मिनी के दर्शन की इच्छा करता, पर वह अभी तक उसे देख नहीं पाया था। हाथी और घोड़े छटपटा रहे थे। म्लेच्छ यवनों के सिर कटकर गिरते और धड़ धरती की शोभा बढ़ाते थे। क़िले पर जयकार और नीचे तलहटी में हाय-हाय होती। तुर्कों का अभिमान बढ़ा हुआ था, इसलिए वे लज्जित होकर जीना नहीं चाहते थे।

तब सभी मंत्रियों ने रत्नसिंह के सम्मुख यह सम्मति रखी कि यदि आज्ञा हो, तो हम सुल्तान से प्रेमपूर्ण वार्ताकर एक षड्यंत्र रचें और उसको अमल में लाएँ। हम एक पालकी के ऊपर सुगंधित वस्त्र रखें और अन्य पालकियों में एक हज़ार योद्धाओं की बराबरी करनेवाले शक्तिशाली योद्धाओं को बैठाएँ। सभी निष्ठावान और स्वामिभक्त राव-रावत और राजपुत्रों की बुलाया गया और एक-एक पालकी में चार-चार को बिठाया गया। लाल, पीले, काले, हरे आदि अनेक रंगों के डोले चल पड़े। उनके ऊपर भँवरे मँडरा रहे थे। डोले चलते हुए वहाँ पहुँच गए, जहाँ ध्रुव के समान अटल सुल्तान बैठा हुआ था। उन डोलों में से एक, जिसमें से कमल के फूलों की सुगंध आ रही थी, के आगे और पीछे पाँच-पाँच जवान थे। डोले पर मँडराते भ्रमरों का छत्र को देखकर सुल्तान हँसते हुए प्रसन्न मुख से बोला कि इसका रहस्य जानने के लिए राघवचेतन को बुलाओ। सुल्तान ने कहा कि राघवचेतन पद्मिनी को देखने का मुहूर्त निकालेगा। आज्ञा पाकर राघवचेतन उपस्थित हुआ। उसने गणना करके पाँचवे दिन के बाद का समय निश्चित किया। सुल्तान ने डोलों को दूसरे शिविर में रखने के लिए कहा। प्रसन्नतासूचक वाद्य बजाए जाने लगे और गुलान उड़ाई जाने लगी, जिससे मार्ग अवरुद्ध हो गया। सुल्तान ने प्रसन्न होकर डोले पर रत्न न्योछावर किए।

कहारों ने जैसे ही पालकियों को उठाने के लिए हाथ लगाए, उनमें से योगियों के समान कवच और शस्त्रादि धारण करनेवाले योद्धा बाहर निकल आए। उन्होंने तलवारें निकालकर मारकाट शुरु कर दी। वे मारो-मारो कहकर मुसलमान सैनिकों पर प्रहार करते थे और मुसलमान सैनिक तोब-तोब चिल्लाकर अपने अपराधों के लिए पश्चाताप करते थे। दोनों पक्षों के सैनिक समूहबद्ध होकर आक्रोश के साथ लड़ रहे थे और एक-दूसरे को काटकर टुकड़े-टुकड़े कर रहे थे। जगह-जगह खून से लथपथ शवों के ढेर लग गए। युद्ध इतना भयंकर था कि मानो आग लग गई हो और उसे बुझाने के लिए पानी नहीं डाला जा रहा हो। मुंडों की माला धारण करनेवाले शिव अपनी प्रिया के साथ नाच रहे थे। कालिका देवी किलकारियाँ भर

रही थी। घायल हुए हाथी अपनी कटी हुई सूंड धरती पर टिकाते थे, घुटनों के बल खिसकते थे और दाँतों से टक्कर मारकर सेना का दलन करते थे। उनके आमाशय फट गए थे और आँतें बाहर निकलकर पाँवों में उलझ रही थीं। सुल्तान अपना सब कुछ युद्ध भूमि में छोड़कर भाग गया। हिंदू सेना के हाथी चिंघाड़कर विजय गर्जना करने लगे। रत्नसिंह ने युद्ध जीत लिया। शूरवीरों के शव आठ कोस के क्षेत्र में फैले हुए थे। उनको शुद्ध करके संस्कार किया गया। विजय के प्रतीक वाद्य बजने लगे। घायल सैनिक बड़बड़ाते हुए पानी माँग रहे थे। शिवजी मृत योद्धाओं के शवों को अपनी मुंडमाल में सजाते फिरते थे। चंडिका अपनी डाढ़ों से हड्डियों को चबा-चबाकर स्वाद लेती हुई नृत्य कर रही थी। प्रेत सिरों को जमीन पर पटक-पटक कर अपने लिए खप्पर बना रहे थे और कोए इधर-उधर ताकते हुए शवों की नाक पर बैठकर आँखों में चोंचें मार रहे थे।

सुल्तान हाथी-घोड़े, संपदा सहित अपनी शर्म को छोड़कर चित्तौड़गढ़ से भाग गया। रत्नसिंह ने अपनी तलवार के बल पर विजय प्राप्त की। उसके जगमगाते यश का और शत्रुतापूर्ण विचार रखने वाले उलाउद्दीन के अपयश का चारों ओर प्रसार हुआ।

अध्याय – 7

दलपति विजय कृत 'खुम्माणरासो'

(पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण)

रचना समयः 1673-1713 ई.

खुम्माणरासो जैन यति दलपतिविजय की सत्रहवीं सदी के अंत या अठारहवीं सदी के आरंभ (1673-1713 ई.) में हुई रचना है। आरंभ में इस रचना को इसमें वर्णित खुम्माण के नवीं सदी से संबंधित होने के कारण प्राचीन मान लिया गया। यह उल्लेख लेफ्टिनेंट कर्नल जेम्स टॉड ने किया था, इसलिए जार्ज ग्रियर्सन, शिवसिंह सेंगर, मिश्रबंधु और रामचंद्र शुक्ल सहित सभी इसको प्राचीन रचना मानते रहे। दरअसल यह उपलब्ध सामग्री के आधार व अठारहवीं सदी में हुई रचना है। स्वंय टॉड ने अपने ग्रंथ *एनल्स एंड एंटीक्विटीज़ ऑफ राजस्थान* की भूमिका में यह उल्लेख किया है। ग्रंथ का रचनाकर जैन श्वेतांबर सम्प्रदाय की तपागच्छीय यति परंपरा का दलपति विजय है। ग्रंथ में यहाँ-वहाँ दलपति विजय ने अपना नामोल्लेख किया है। कहीं-कहीं वह अपना नाम दौलतविजय भी लिखता है। यह संभवतया उसका प्रचलित नाम रहा होगा। ग्रंथ के रचनाकाल के संबंध में विवाद है, लेकिन अधिक संभावना यही है कि इसकी रचना अठाहरवीं सदीं के आरंभ में हुई होगी। राजस्थानी साहित्य के विद्वान् और अध्येता अगरचंद नाहटा, मोतीलाल मेनारिया और कृष्णचंद्र श्रोत्रिय ने इस ग्रंथ में संग्रामसिंह, द्वितीय (1710-1733 ई.) से संबंधित एक उल्लेख के आधार पर इसका रचना समय 1673-1713 ई. के बीच कभी माना है। राजस्थानी साहित्य के एक और अध्येता ब्रजमोहन जावलिया ने यति दलपति विजय की *खुम्माण* विषयक एक और जैन शैली की रचना *खुम्माणरास या खुम्माणचरित्र* खोज निकाली। इस रचना में इसका रचना समय 1715 ई. दिया गया है। दलपतिविजय ने इस रचना के कुछ अंश *खुम्माणरासो* में यथावत प्रयुक्त किए हैं। अनुमान यह है कि आरंभ में उसने संक्षिप्त प्रबंध लिखा होगा और बाद में इसको *खुम्माणरासो* के रूप में विस्तृत रूप दिया। ब्रजमोहन

जावलिया के अनुसार है इस वृहद् संस्करण की रचना संग्रामसिंह द्वितीय की विद्यमानता, 1715 से 1733 ई. के बीच कभी हुई होगी। दलपति विजय ने खुम्माण को अपनी रचना की विषयवस्तु बनाया, इसलिए उसने इसका नाम *खुम्माणरासो* रखा। काव्य की विषयवस्तु का विस्तार हो जाने के बावजूद भी उसने इसका नाम *खुम्माणरासो* ही रखा। *खुम्माण* के इतिहास में विख्यात होने के कारण यह नाम संज्ञा मेवाड़ के परवर्ती शासकों के लिए भी रूढ़ हो गई थी। *खुम्माणरासो* में दो काव्य- खुम्माण संबंधी काव्य और पद्मिनी चरित्र सम्मिलित हैं। खुम्माण की तुलना में इसमें रत्नसेन-पद्मिनी प्रकरण संक्षिप्त है। खास बात यह है कि जैन यति की रचना होने के बावजूद इसमें जैन धार्मिक जैसा कुछ भी नहीं है। अलबत्ता इसकी वस्तु और शृंगार वर्णन पर जैन शैली का प्रभाव है। अन्य कवियों की तरह दलपति विजय भी *खुम्माणरासो* में अपने पूर्ववर्ती कवियों के प्रसिद्ध कथनों को यथावत उद्धृत करता है।

'खुम्माणरासो' मूल
(पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण)

रत्नसेन-पद्मिनी गोरा बादल स्कंध
खुमाणोरासो षष्ठ षण्ड
॥श्री माउ अंबाय नम:॥
।गाहा।।
ओंकार मंत्र अंबा, जगज्जननी जगदंबा।
लच्छि समप्पो लंबा, दलपति तुह चरण अवलंबा॥2435॥
।दूहा।।
कमला मात करो मया, मुझ उर वसीइं वास।
आपो दोलत ईश्वरी, वाणी वयण विलास॥2436॥
॥कवित्त रांणां री वंशावलि का॥
।कवित्त।।
रांण प्रथम राहप्प, पाट नर सुर नरपत्ती।
दिनकर हर सुरदेव, रतन जसवंत नरपत्ती॥
अनतो अभयो रांण, प्रबल प्रथवी मल पूरण।
नाग पाल गजसिंघ, जेंत जगतेश उधारण।
जयदेव राण जोनंगसी, भारथ पारथ भीमसी।
गढ़पति मुगट गढ गंजणो, गाहड़मल गढ़ लषमसी॥2437॥

जग असपति जसकरण, नवल विजपाल नरेसुर
नागपाल नरसिंह, रांण गिरधर राजेसुर॥
पीथड पुनोंपाल, मल्ल मोहण मय मत्तह।
सीहड मल भीमक्क, राण भाषर रण रत्तह॥
लुणग्ग करण लाषां दळां, मोड मंडल श्री लषमसी।
अरसी हमीर षेतळ षगां, अवनी सहु लीधी इसी॥2438॥
।।चोपई॥
रांणो रतनसेन गहिलोत, देसपती मोटो देसोत।
राज करें नृप गढ़ चीतोड, राजकुळी सेवें कर जोड़॥2439॥
एक दिन नृप बैंठों बेंसणे, पटरांणी सुं पेमें घणें।
भोजन मांहें स्वाद न कोय, चतुराई तुम माहें न कोय॥2440॥
रांध न जांणां भोजन भणी, परणो थे सींघल पदमणी।
अंजस करें रांणो नीसर्‌यो, गढ़ चीतोड़ थकी उतर्‌यो॥2441॥
अश्वें चढ़ीयो रांण उलास, साथें लीधो खांन षवास।
रांणा ने सेवक पूछियो, आपें केथ पयाणो कियो॥2442॥
आपां जास्यां सींघल देश, तिहां जाए पदमण परणेस।
अगुओ लीधो साथें भाट, ते सींघल री जाणें वाट॥2443॥
रांणो दरिया रें तट गयो, जालिम सिंघ जोगी दरसियो।
जोगी जंपे रतन नरेश, थे किम आया कवण विसेस॥2444॥
आय (स) सु अधिपति वीनवें। पदमणी परण (ण) जाऊं हिवें।
पार उतारो मुझ गुरदेव, सींघल ले जावो सुज हेव॥2445॥
कर ऊपर दोई असवार, नृप सींघल मुक्यो तिणवार।
आयस कीधो ए उपगार, परणण रो मुशकल व्यवहार॥2446॥
बहिन अछें सींघलपति तणी, परतिष आप अछें पदमणी।
अभिग्रह लीधो एहवो नार, जीपें मुझ थी पासा सार॥2247॥
अधिपति षावी हार अनेक, जीपें तस परणूं सुविवेक।
रमवा बेंठो रतन नरेश, हारवी पदमणि ने लघुवेश॥2248॥
सींघल नृप ब्याही पदमणी, दीधी परिघल पहिरावणी।
रह्यो केताइक दिन सासरें, चालणरी सीझाई करें॥2249॥
सीष माँग चाल्या घर भणी। साथै लीधी नृप पदमणी।
घणें भाव बहु प्रीतें घणी, पहुंचाया सींघल रे धणी॥2450॥
अनुक्रमें आया गढ चीतौड, रतनसेन मन अधिकें कोड़।

राणी सूं राजांन म्हें परण्या, पदमणि करि मान ।।2451 ।।
थे मोसो मांनुं वाहियो, बोल कह्यो सो निरवाहियो।
अहनिस गेंर महिल आवास, पदमण सेझें करें रजास ।।2452 ।।
एक दिन आयो राघव व्यास, पदमणि नृप बेठा सुविलास।
रांणो रतनसेन कोपियो, पदमणि रूप ब्रांमण पेषियो ।।2453 ।।
आँष कढ़ावूं राघव तणी, इण दीठी निजरें पदमणी।
जीव लेइ नें भागो नीठ। अधिपति कोप्यो आकारीठ ।।2454 ।।
माणस लेइ गढ़ थी उतर्यो, दिल्ली नगर राघव संचर्यों।
वांचे राघव शास्त्र अनेक, वात वखांण करें सुविवेक ।।2455 ।।
जस विसतरियो दिल्ली मांह, तेडाव्यो पंडित पतिसाह।
आलम ने दीधी आसीस, दल्लीपति कीनी बगसीस ।।2456 ।।
राघव आलम पासें रहें, असपतिरी बगसीसा लहें।
राघव कुबधि कियो मंत्रणो, काढूं वेर हवें चोगणो ।।2457 ।।
रतनसेन ऊपर रिमराह, ले जाऊं चित्रगढ़ पतिसाह।
कोइक करस्यूं हूँ कलि चाळ, रतनसेन भांजूं भूपाळ ।।2458 ।।
भाट एक सु भाईपणो, तिण सु कहीयो ए मंत्रणो।
अंबषाष बेठो असपत्त, हंस पाँष ग्रही सुविगत्त ।।2459 ।।
यारों इस सूं भी मकमूल, प्रथवी मांहें कोई अमूल।
हजरत इस सूं मेहरी बूब, महिला पदमणी हें महबूब ।।2460 ।।
।।गाहा ।।
मांन सरोवर मज्झे, निवसे कलहंस पंषिया बहवें।
ताणं तो सुकमाला, इसा पंषी मम हत्थे ।।2461 ।।
।।चोपई ।।
पूछे आलम पदमणि जेह, सोही वतावो हमकुँ तेह।
अंदर हुरम परिष्षा करो, पदमणि हो सो आगे धरो ।।2462 ।।
हजरत दीधा षोजा साथ, देख्यो हुरम तणो सहु साथ।
हस्तणी चित्रणी ते संषणी, इसमें कोई नही पदमणी ।।2463 ।।
किस थांनिक हें कहो हम भणी, सींघलद्वीप अछें पदमणी।
जास्यु सींघल लेस्यु हेर, जिहां हुवे जिहा ल्याउं घेर ।।2464 ।।
सींघल ऊपर थया तियार, आलिमसाह हुआ असवार।
ल्हसकर लाष सताविस लार, उदधि पास आव्या तिणवार ।।2465 ।।
दीठो आगें उदधि अथाग, मानव कोइ न लाभें थाग।

उदधि ऊपर हल्लो करें, आलिम को कारिज नवि सरें ॥2466 ॥
------------------------------------- ।
जिहाँ जे बेसाड्या जूझार, बूडा उदधी में तिण वार ॥2467 ॥
जंपें आलम राघेव व्यास, कीधो कटक तणो सहु नाश।
ओर वताओ कोई ठोड, कहें राघव पदमण चितोड़ ॥2468 ॥
लेतां ते मुसकल अतिघणी, सेसतणी दुरलभ जिम मणी।
रतनसेन वांको रजपूत, महा सुभट माझी मजबूत ॥2469 ॥
आलिम कहें हिन्दू का क्याह, गढ़ चीत्तोड चहुँ उच्छाह।
पदमणि गहि बांधु हिंदवाण, तो हुँ तषत वडो सुलताण ॥2470 ॥

॥दूहा ॥

सुण राघव आलिम कहें, कह पदमणि सहिनांण।
करु हट्ट तस ऊपरें, गढ़ घेरु घमसाण ॥2471 ॥
सुण हजरत राघव कहें, नवरस महि सिणगार।
नाम च्यार हे नायका, वरणव कहुं विचार ॥2472 ॥

॥कवित्त ॥

सुन हो साह कहे व्यास, धरहुँ रस पेम उकत्तह।
वाषांनहुँ सींगार, सुन हो चित होय सुरत्तह ॥
किती भांत नायका, कोन गुनरूप विलासह।
भांत भांत कहि भेद, करिहु निज बुद्ध प्रकासह ॥
आलिम साह सुनीइं अरज, च्यार जात त्रिय के कहे।
नायका तीन सबके घरें, वषत वार पदमणि लहें ॥2473 ॥
कहें साह सुनि व्यास, करहो सबके बाषांणह।
रूप लच्छन गुन भेद, तुम हो सब बात सयाणह ॥
तन चित्रणी विचित्र, हस्तनी मस्त हसती।
संषनि कुचित सरीर, नार पदमणी छत्रपती ॥
संषनी पांच हस्तनी दसह, पनरह रूप सु चित्रणी।
कहें राघव सुलतान सुन, वीस (ह) विशवा पदमणी ॥2474 ॥

॥दूहा ॥

सुनि सब त्रिय के रूप गुण, इम जंपहि सुलतान।
अब चित पाई पद्मनी, करहुं विशेष वषांण ॥2475 ॥
पदमनि निरमल अंग सब, विकसत पदमणि हेज।
प्रेम मगन ऐसी षुले, ज्युं पंकज रवि तेज ॥2476 ॥

।।छप्पय।।

चित चंचल कच स्याम नैन मृग भ्रोह अलिंगन।
तिल प्रसून (नासा) भमत, सीहासन मुष विद्रुमन॥
अधरन अति कोमल सब अंग ठयत सीतल (अति)।
हंस गति तन सूछिम कटि, प्रगटी दामनि देह द्युति॥
आनंद (चंद) पूरण वदन, मन पवित्र सब दिन रहें।
आहार निमष इच्छित अमल, विमल ठोर पदमनि लहें॥2477॥

।।दूहा।।

पदमणि चंपक वरण तन, अति कोमल सब अंग।
चिहुं ओर गुंजित भमर, निमष न छारत संग॥2478॥

।।सवैया।।

बालक वेस रहें सबही दिन, मान करें न कछू हि मन लाजे।
सेत सरोज सुं हेत धरें, अति ऊजल चीर सरीर हि छाजें।
वारिज कोस बन्यो मदनं ग्रह वीरज नीरज वास विराजें।
देह लही मन मत्त निरंतर रंभा के रूप पदम्मणी छाजें॥2479॥

।।कवित्त।।

रूपवंत रतिरंभ, कमल जिम काय सकोमल।
परिमल पुहप सुगंध, भमर बहु भमें विलावत।
चंपकली जिम चंग, रंग गति गयंद समांणी।
ससि वदनी सुकमाल, मधुर मुष जंपे वाणी॥
चंचल चपल चकोर जिम, नयण कंत सोहें घणी।
कहें राघव सुलतांन सुण, पुहवी इसी ह्वें पद्मणी॥2480॥
कुच युग कठिण सरूप, रूप अति रूडी रांमा।
हसत वदन हित हेज, सेझ नित रमें सुकामा।
रूसें तूसें रंग, संग सुष अधिक ऊपावें।
राग रंग छत्तीस, गीत गुण ग्यांन सुणावें।
सनांन मंजन तंबोल सूं, रहे अहोनिस रागणी।
कहें राघव सुलतान सुण पुहवी इसी ह्वे पद्मणी॥2481॥
बीज जेम झळकंत, कांति कुंदण जिम सोहे।
सुरनर गुण गंधर्व, रूप त्रिभुवन मन मोहे।
त्रिवली, मय तन लंक, वंक नहु वयण पयंपे।
पति सूं पेम अपार, अवर सुं जीह न जंपे॥

साम धरम ससनेहली, अति सुकमाळ सोहामणी।
कहें राघव सुलतान सुण, पुहवीइसी ह्वे पद्मणी॥2482॥
धवल कुसुम सिणगार, धवल बहु वस्त्र सुहावें।
मुत्ताहल मणि रयण, हार ह्रदयस्थल भावें॥
अलप भूष त्रिस अल्प, नयण बहु नींद न आवें।
आसण रंग सुरंग, जुगति सुं काम जगावें।
भगति हेत भरतार सूं, रहें अहोनिस रागणी।
कहें राघव सुलतान सुण, पुहवी इसी ह्वे पद्मणी॥2483॥

॥चोपई॥

पदमणि रा गुण सुणिया एह। जंपे असपति सुंण अच्छेह।
करुं चढ़ाई गढ चीतोड। अब हींदू कूं नाषूं तोड॥2484॥
पोरस आण लेऊं पदमणी। रतनसेन पकडू गढ धणी।
दोडाया कासीद सताब। तेड्या मुगल पठाण नबाब॥2485॥
निरमल जोधा जे सझ किया (आधी रात) दमामा दिया।
सबल सेन सूं आलिम चढ्यो, धर धूजी वासिग धड़हड्यो॥2486॥

॥कवित्त॥

हसि बोल्यो सुलतान, माँण कर मुंछ मरोड़ी
रतनसेन कु पकड़, चित्रगढ़ नांषूं तोड़ी।
हय कंपें चक च्यार, थरकि जलनिधि अकुलाणो।
सरद इंद षलभळ्यो, पड्यो दस दिसहि भगाणो॥
फुरमाण देस दिनहि फटें, सब दुनियांण असी सुणी।
मारि हें रतन हिंदुआंण पति, साह पकड़िहें पद्मणी॥2487॥

॥चोपई॥

गढ चीतोड तणी तलहठी। इण पर आयो आलिम हठी॥
लाष सताविस लसकर लार। डेरा दीधा अति विस्तार॥2488॥
घूंस नगारें धूजें धरा। गाजें गयण अनें गिरवरा।
हठियो आलम साह अलाव। गढ़ भंजण चित मन में दाव॥2489॥
रतन सेन पण रोसें चढ्यो, दीठउ आलम आवी पड्यो।
सुभट सेन तेडाया सहू, बहसें बलवंत आया बहू॥2490॥
रतन सझ्यो गढ़ अवलीबांण, छोडें नाल गोला ने बांण।
रतनसेन बोले गज षंभ, हींदू धरम तणो उत्तंभ॥2491॥
पतिसाही रणवट पाहुणो। भोजन जीमाडां षग तणो।

आ (व) ध नाना विध पकवान। आतस गोळा षाग विधांन॥2492अ॥
--।
षाठी भगत जिमाड इसी। षग घ्रत मद धारां मोजसी॥2492ब॥
इसो चषावो अजरो रुक। फिर न लागे रणवट भुष।
आषें पांषे अठै कुंण इस्यो। झेलें पांहुण आलिम जिस्यो॥2493॥
उत अलाव इत रयण नरेश। हिंदूपति नें असुरेस।
मांहो मांहें करें संग्राम। मुगल पठाण बहु आव्या काम॥2494॥
असपति कोइ न चालें जोर। रतनसेन रांणो सिर जोर।
द्ये ऊपर थी भिड मारिका। असपति रा हिवें फाटा बका॥2495॥
कोइक तोत तणा करि मता। रतनसेन पकडां जीवता।
वचन तणा दीजें वेसास। विण फंदे पाडीजें पास॥2496॥
मूंकीजे पक्का परधान। एम कहावे द्यो हम मान।
तेडी मांह षवावो खांण। निजर देषावो आहीठाणा॥2497॥
पदमणि हाथें जीमण तणी। षांत अछें मानूं अति घणी।
कांइन मांगे आलमसाह। छडा साथ सूं आवे मांह॥2498॥

॥कवित्त॥

हमहि पठाए साह, कहण कुं कथ अवल्ली।
जो तुम मानों वाच, साह फिर जावें दल्ली।
दिषलावो पदमनी, ओर सब गढ़ दिषलावो।
विग्रह को नवि करहि, बाँह दें प्रीत वधावो।
गढ़ देष मिलहि सिरपाव दे, बहुत मया आलिम करहि।
रतनसेन सुण वीनती, सुहर मांह दुत्तर तरहि॥2499॥

॥चौपई॥

बोल बंध द्यो साचा सही। वाच हमारी विचले नहीं।
नाक नमण करि कोट दिषाय। पदमणी हाथें मुझ जीमाय॥2500॥
मांहों मांह करे संतोष। हिव मेटो अति वधतो रोष।
वलता कहें रतन राजांन, मांहरा कथन सुणो परधान॥2501॥

॥कवित्त॥

सुणि वजीर कहे राव, राम सिर पर राषीजे।
बांको गढ़ चीतोड़, सगत सुलतानह लीजे।
म करहो हठ गुमान, तुम हूं साहिब तुरकाणे।
रजधारी रजपूत, हमही साहिब हिंदवांणे।

क्यु कहें बहुत श्री मुष वयण, हम रषही घर अप्पणो।
किरतार कियो न मिटें किण ही, त्याग षाग हिंदू तणो ॥2502॥
कहें वजीर सुनिराव, तुमही क्या उप्पम दीजे।
तुम सूरज हिंदवांण, साह कही एती कीजें।
दंड द्रव्य नहिं पेस, देस तेरा नहिं चाहूं।
नहिं हम गढ री प्यास, राजकुमरी नहिं ब्याहूं।
करिहो न तुझ (रज) फरक, राज महल नहिं आहडूं ।
करि नाक नमण करीइं रयण, देष कोट फिर बावडूं॥2503॥
सुण हो बहुरि राजान, इह हरजत फरमाया।
पूछें ग्यान कुरांन, तिहां एता दिषलाया।
रतनसेन अलाव, पुव्व जन्मंतर भाई।
म्हे तप किया असोच, तिण पतिसाही पाई।
तें किया पवित्र दिल पाक तप, हिंदूपत पाया जनम।
हम तुम हे रो स माकूल ही, करत प्रीत रहीइं धरम॥2504॥

॥चौपई॥

षेमकरण वेधक परधान। इम कही सघलि मेली आन।
हिंदू सदा निरमल दिल हुवें। धोलो सहु दूध ज लेषवें॥2505॥
तेडी राण तणा परधान, पुहतो जई पासें सुलतान।
दीधा बोल बांह सुलतान, हम तुम विचें ए छें रहमान॥2506॥

श्लोक

मुखं पद्म दलाकारं, वाचा चंदन शीतलं।
हृदय कर्तरी तुल्यं, त्रिविधं धूर्त लक्षणम्॥2507॥

॥चोपई॥

राघव व्यास कियो मंत्रणो। रतनसेन नें झालण तणो।
नृप मन कोय नहीं छल भेद। षुरसाणी मन अधिको षेद॥2508॥
घर भेदू विण घर नवि जाय। घरभेदू थी घर ढहें जाय।
घर भेदे लंका गढ़ गयो। राघव घरभेदू हम कियो॥2509॥
साह माहें पधारो राज। रतनसेन तेड़ें महाराज।
आलिम साथ कियां असवार। सलह संपूरित तीस हजार॥2510॥

॥कवित्त॥

चढ्यो गढ सुलतान, षांन नवाब लीया संग।
तीस सहस असवार, सिलह नष चष ढ़कें अंग।

पडे धूंस नीसांण, गिरंद चीतोड गडक्के।
सहिर लोक षळभळे, धीर छूटे चित्त धड़क्के।
विडुरें रयण मेल्यो कटक, ठोड ठोड सांमंत कसे।
मनुष देष गयंद मत्त घटा, गयंदक पोरिस ऊलसें॥2511॥
।।चौपई॥
आवि मांहे हुआ एकठ। तव सगळें दीठा सामठा।
रतनसेन मन षुणस्यो सही। आयो आंगण आलिम चही॥2512॥
नृप पण सेना सगली सार। असवारे मिलिया असवार।
तुगें तंग हुआ एकठा। जांणक बादळ उत्तर घटा॥2513॥
आलिम पिण न सकें आंगमी। (नसकई नृय पिण आलिम गनि॥)
आलिम तांम कहें सुण भूप। क्यु मेलत हो कटक सरूप॥2514॥
मैं लडणे कूं आया नही।, गढ़ देषण की हें दल सही।
न धरो मन में खोटा खेद। मेरे मन नाही छळ भेद॥2515॥
।।कवित्त॥
कहें रतन सुण साह, चूक करि लाह न षट्टिहु।
रूक वाव वज्जही, बादल जिम तुम फट्टिहु॥
तन गुमांन में धरहु करहुं जिण कोइ कपट्टह।
आए चली आंगणे, तास हम लाज निपट्टह॥
गज गाह बाँध ऊभे सुहड, मूंछ मरोडी मगज भर।
हम हुकम होत सम फोज सिर, पड़िही बीजळी कंस सिर॥2516॥
।।चोपई॥
आलम जंपें सुण राजांन, घर आया बहु दीजे मांन।
थोड़ा होवें होवें घणा, झेली लीजें निज पाहुणा॥2517॥
धान तणो छे आज सुकाल, घणां घणां कांइ करें भूपाळ।
हम मिलवा आवें ऊमही, लड़वा कूं हम आवें नहीं॥2518॥
राय कहें सांभल पतिसाह, भलें पधारो आलिम साह।
वलि तेडावो जाणो जिके, पिण लघु बोल म बोली बके॥2519॥
बोलें बोल बिहुं हुआ षुसी, हाथें ताळी दीधी हंसी।
मांहो मांह हुओ संतोष, राय तणें मन मिटियो रोष॥2520॥
करि दरगाह बेंठो सुलतान, आगें ऊभा सबें राजान।
फेरविजें घोडा गजराज, रूपक भेंट करे कविराज॥2521॥
रतन गया तब महिला भणी, भगत करावण भोजन तणी।

पदमणि प्रतें राजा इम कह्यो, आलम सुं जिम तिम रस रह्यो ॥2522 ॥
भोजन भगत करो हिव इसी, जिम दल्लीपति होवें खुसी ॥
पदमणि नार कहें पिय सुणो, हुं हाथें न करूँ प्रीसणो ॥2523 ॥
षटरस सरस करें रसवती, प्रीसेसी दासी गुणवती।
सणगारो सघळी छोकरी, षांत अछें जो तुम मन षरी ॥2524 ॥
पदमणी पास रहे सावधान, वीस सहस दासी रूप निधान।
रूप अनोपम रंभा तिसी, कामनी सेना होवें जिसी ॥2525 ॥
आसण वेसण ने विध किया, ऊपर छाया डेरा दिया।
गादी मुंडा मांहें अनूप, जरी दुळीचा अति हें रूप ॥2526 ॥
ठोड ठोड ऊभा हुसियार, छडीदार प्यादा पडिहार।
सबे महिल सिणगारी करी, चिंग पडदा नांषी झालरी ॥2527 ॥
त्यारी हुई रसोडा तणी, मांहे तेड़्या दल्ली धणी।
देखी साह महिल सत षणा, जाणें विमान अछे सुर तणा ॥2528 ॥
षुस खांणे बेओं पतिसाह, बेठे षांन निबाब दुबाह।
पदमणि मांहे अधिक पंडूर, दासी आय दिषावे नूर ॥2529 ॥
इक मंडे पत्रावळि बाल, मांडें एक कचोळी थाल।
इक झारी भरि हाथ धुवाव, ढोलें चमर वीजें वाव ॥2530 ॥
इक मेवा प्रीसें पकवान, साळ दाळ सुरहा घृत धांन।
वींजन विध विध प्रेम सुवास, सुर पिण मो (हे) वीण विलास ॥2531 ॥
भूलो साही कहें अलाह, यह हींदूवांण हैं के पतिसाह।
देषी दासी रूप विलास, आलिम चित में हुओ उदास ॥2532 ॥
देष देष सूरत सब तणी, कहें साह यह सब पदमणी।
ऐसी महिरी एक अलाह, हमकुं एक न दीधी नाह ॥2533 ॥

॥कवित्त॥

कहे व्यास सुण साह, हें तारीफ पद्मणि।
आफताब महिताब, जिसी बादळ दामनी ॥
सोवन वेल समान, मानसर जेही हंसनी।
जिन तन कमल सुवास, तास गुन सेवहिं॥
सुरधेन कलप वृछ जेहवी, मोहनवेल चिंतामणी।
कवि लघु अकली इक हें रसन, क्यूं व्रनही सोभा घणी ॥2534 ॥
लष दस लहें पलंग, सोड सत लष्ष सुणीजें।
गाल मसूर्या सहस, सहस गींदुआ भणीजे।

तस ऊपर दुपट्टो, मोल दह लष्षे लद्धी।
अगर चंदण पटकूल, सेझ कुंकम पुट दिद्धी।
अलाबदीन सुलतान सुण, विरह विथा खिण नवी खमें।
पदमणी नार सिणगार सझ, रतनसेन सेझे रमें॥2535॥

।चोपई॥

अबर न देषें पदमनि कोय, जे देषे तो गहिलो होय।
पदमनि पुन्य पषें किम मिलें, जिण दीठे अपछर ग्रव गळे॥2536॥
इम ते व्यास अनें सुलतान, वात करें छे चतुर सुजाण।
तिण अवसर पदमणी चितवें, आलिम केहवो जो इम चवें॥2537॥
तितरें दासी जंपें एक, गोष हेठ बेंठे सु विवेक।
तसु मुष देषण तव गजगती, आवी गोषें पदमावती॥2538॥
जाळी मांहें जोवें जिसें, व्यासें पदमणि दीठी तिसें।
तत खिण व्यास इसूं वीनवे, स्वामी पदमणी देखो हिवे॥2539॥
रतन जडित जे छें जालिका, ते मांहें बेठी बालिका।
आलिम उंचो जोवें जिसें, पदमणि परतिष दीठी तिसें॥2540॥
वाह वाह यारो पदमनी, रंभ कि ना ए छें रुकमणी।
नाग कुमारी किना किन्नरी, इन्द्राणी आणी अपछरी॥2541॥

।कवित्त॥

कहें साह सुनि व्यास कहां मेरी ठकुराई।
मै मदहीन गयंद में बलहीन मृगराई।
में वद्दल जलहीन, (मैं) विंजन विन लूहन।
में हीरा विन तेज, में हूं योगी बिन मोहन।
विन तेज दीपक विण सूर दिन, कहा बहुत फिर फिर कहूँ॥
नही जाऊँ दिल्ली विन पद्मनी, फकीर होय वन में रहूँ॥2542॥

।चोपई॥

व्यास कहे सांभळ सुलतान, फोगट काय गमावो मांण।
धीरज धरि साहस आदरो, अवर उपाय वली को करो॥2543॥
रतन सेन जो पाने पडे, तो ए पदमणि हाथें चडे।
इम आलोची मेली घात, धीरपणा विण मिलें न घात॥2544॥
इम करतां जीम्यो सहु साथ, भगत घणी कीधी नरनाथ।
श्रीफल देइ धात तंबोळ, मांहो मांह किया रंग रोळ॥2545॥
हिवें इम जपें आलिम साह, मांहो माह झाली बांह।

परिघल दीधी पहिरावणी, जरकस ने पाटंबर तणी ॥2546 ॥
हाथी घोड़ा दीधा घणा, संतोष्या सगला पाहुणा।
तुम महिमानी कीधी घणी, कोट देषावो तुम हम भणी ॥2547 ॥
रतनसेन नृप साथें थया, आलिम गढ़ दिषलावण गया।
विषम विषम हुंती जे ठोड़, करि देषाड्यो गढ़ चीतोड़ ॥2548 ॥
विषम घाट अति बांको कोट, मांहें नही देखे को षोट।
गोला नाल बहें ढीकळी, कदही कोइ न सकें नीकली ॥2549 ॥
गढ़ देष्यां गढ़पति ग्रब गळे, एहवो कोट कही नवि भळें।
इम जपें ही आलम साह, तुम हो रतन हमारी बांह ॥2550 ॥
काम काज केजो हम भणी, तुम महिमांनी कीधी घणी।
आलिम रीझ दीइं गहगही, सीष दीए वलि ऊभा रही ॥2551 ॥
अधिपति कहें अघेरा चलो, में दीदार देषां रावळो।
एम कही आघो संचस्यो, रांणो गढ़ बाहिर नीसर्यो ॥2552 ॥
नृप मन में नहि को छळ भेद, षुरसाणी मन अधिको खेद।
व्यास कहें ए अवसर अछे, इम मत कहियो न कह्यो पछें ॥2553 ॥
॥यत: ॥
षड़ सूका गोरू मूआ, वाला गया विदेश।
अवसर चूका मेहडा, तूठा कहा करेश ॥2554 ॥
॥ ॥चोपई ॥ ॥
असपंति हलकार्‌या असवार, मांहो मांह मिल्या जूझार।
राणो रतन झाल्यो ततकाल, विचळी वात हुई असराळ ॥2555 ॥
॥सोरठा ॥
असपति अंब सरीष, रुषां पुरषां राजवी।
मुह मीठा उर वीष, कहो दई केम पतीजेइं ॥2556 ॥
॥दूहा ॥
नरपति अरि नाहर तणा, को विसवास करेह।
जे नर कच्चा जाणीइं, आलम एम कहेह ॥2557 ॥
वेंरी विसहर वाघ नृप, ग्रासी गढ़पति आप।
छळबळ ग्रही दाव सही, को न लागें पाप ॥2558 ॥
तुम हम महिमानी करी, अब तुम हम महिमान।
द्यो पदमणि छोडूं परा, रतन सेन राजांन ॥2559 ॥

॥।चोपई॥॥

सुहड़ हुंता जे साथ सबेह, तियां चढ़ाई रजवट छेह।
आण्यो पकड़े लसकर मांह, रवि ने ग्रहियो जाणें राह॥2560॥
बेडि घालि वेसाड्यो राण, जुलम अन्याय कियो सुलताण।
रांणो रतन हुता बलवंत, पकड्यां निबळ हुओ ए तंत॥2561॥

॥यत:॥

आंगोत्संग गते शस्त्रे किं करोति परिच्छद:।
राहुणा ग्रहिते चंद्रे, किं किं भवति तारका:॥2562॥

॥चोपई॥

सुणी सहू गढ़ मांहें वकी, वात तणी विनठी वानकी।
हळवल हुई सहर बाजार, पकड़ाणो रांणो सिरदार॥2563॥
तेड्या सुहड दसों दिश वली, सेन्या सघळीगढ़ में मिली।
कटक सझ्यो घण हील किलोल, सबल जड़ाई गढ री पोळ॥2564॥
कुमती रतन कहीए रांण, तेड्यो गढ़ मांहे सुलताण।
गढ़ उतरें पहुचांवण गयो, करे तोत रतन पकडीयो॥2565॥
राजा तो पड़िया तिण पास, असुर तणो केहो विसवास।
पकड़यो नृप पदमणि पिण ग्रहे, गढ़ चीतोड़ हिवें गहि रहे॥2566॥
जसवंत बैठा जुड़ि दरबार, जालिम तेड्या सह जुझार।
मांहो मांह करें आलोच, गढ़ में हुओ सबळो सोच॥2567॥
एक कहें झूंझां गढ़ मांह, एक कहें द्यो राती वाह।
एक कहें अधिपति सांकडें, लड़ता जेह ने भारी पड़ें॥2568॥
एक कहें नायक नहि मांह, विण नायक हतसेन कहाय।
एहवो कोइ करो मंत्रणो मान रहें हींदु ध्रम तणो॥2569॥
इम आलेचं सामंत सहू, चिंता उपजी चित में बहू॥
तितरे आयो इक परधान, हुकम करें छे ये सुरतांन॥2570॥
तेड्यो मांह नीसरणी ठवी, मंत्री मांहे बुध जाणण कवी।
इम जपें छें आलम साह, तुमे कहो तेहनें द्यूं बांह॥2571॥
हमकुं नारि दीयो पदमणी, जिम म्हें छोडू गढ़ का धणी।
एम कहे नें गयो प्रधांन, सवि आलोच पड्या असमान॥2572॥
कहो हिवें पर कीजें किसी, विसमी बात हुई या इसी।
जो आपां देस्यां पदमणी, तो रिणवट न रहें आपणी॥2573॥
विण दीधां सवि विणसें वात, पदमनि विन न मिलें कांइ घात।

ऐतो जोरें लेसी सही, जे आया छे इण गढ़ वहीं ॥2574॥

॥कवित्त॥

कहें कुंअर जसवंत, सुनहो उमराव प्रधानह।
रष्षहुं गढ की मांम, धरा रष्षहुं हिंदवाणह॥
हैं राजा परवसें, नहेंचल देषें भली।
देहुँ नार पदमनी, साह फिर जावें दल्ली।
गढ़ आय राण बैंठही तषत, चमर ढलावहिं चूंक घर ॥
सिल हेठ हाथ आयो सुतो, छल हिकमत काढहीसी पर॥2575॥

॥चोपई॥

सूभटें संघळे थापी वात, हिवें पदमणि देसां परभात।
इम आलोची ऊठ्या जिसें, पदमणि सवि सांभळिया तिसें॥2576॥

॥कवित्त॥

कहें पदमनि सुनि सखी, वात यह कुमर विचारें।
हम देई पतिसाह, धरा गढ़ रांण उगारें।
मैं सींघल उत्पन्न, राजपुत्री कहेवाणी।
गढ़पति रतन नरेश, भई ताकी पटरांनी।
अब बहुरि नाम किण विध करहुँ, म्हे कुलवंती कामनी।
हिंदवाण वंश लांछन लगें, थूंक-थूंक कहीइं दुनी॥2577॥
गढ़पति पकड्यो साह, राह जिम चंद गरासें।
विनु दीधे उगहें न, सुभट कहा और विमासें।
भवीस जोग कछु सु, वो मिटे नहीं अधीतह॥
आप मुआ जुग बुडि हे, दुनीयान उकत्तह।
मेर मरत सबहिं रहीइं धरम, धर रष्षहि रष्षहि धनी।
छूट्टिहें हठ सुलतान चित, जब मृत्यु सुनि हें पदमनी॥2578॥
कहें पद्मनि सुन स्याम, राम रघु सीता वल्लभ।
दशरथ सुन हो तुज्झ तु महिल, जाके ओठंभ॥
औरन कोई इलाज, आज संकट दिन आयो।
धर हो चित्त में दया, करहूँ संतन को भायो।
असुराण राण पकड्यो रयण, चाहें मुझ मन में चहूं।
अनाथ नाथ असरण सरण, लाज राष एती कहूँ॥2579॥

॥सवैया॥

कैसे तुम मृगणी के गन नि गणें भरथ,

कैसे तुम भीलणी के झूठे फल षाये थें।
कैसे तुम द्रोपदी की टेर सुनि द्वारिका में,
कैसे गजराज काज नाग पर धाए थे।
कैसे तुम भीषम को पण राष्यो भारथ में?
कैसे राजा उग्रसेन बंध थे छोराए थें ।
मेरी बेर कान तुम कान मूंद बैठ रहे,
दीनबंधु दीनानाथ काहि कूं कहाए थे॥2580॥

।दूहा॥

पंषी इकलो वन्न में, सो पारधी पचास।
अब कें जलहो उगरें, अल्ला तेरी आस॥2581॥
सुभट भए सत हीन सब, आलिम पकड्यो राज।
सांई तेरे हाथ हें, म्हो अबले की लाज॥2582॥

।चोपई॥

अवसर इण हूओ छे जेह, थिर मन करि नें सुणज्यो तेह॥
तिण गढ़े गोरो रावत रहें, षित्रवट तणी विरुद भुजे बहें॥2583॥
तास भतीजो वादलराव, सरता नें भरियो दरियाव।
ते बेवें छळ बळ रा जाण, बेवें रावत वे कुळ भाण॥2584॥
पिण तेहनें नहि सुनिजर स्वांम, रोकड़ ग्रास नहीं को गांम।
घरे रहें न करें चाकरी, रतनसेन मूंक्या परहरी॥2585॥
रावत बे जाता था जिसें, गढ रोहो मंडांणो तिसें।
रूंधेगढ़ नवी जाइ तेह, जाता षत्रवट लागें षेह॥2586॥
तिण कारण ग्रहि रहियो टेक, हिवे जास्यां कांइ हुआ एक।
अंग तणो न तजे अभिमान, सूर महाबळ जोध जुवांन॥2587॥
षत्री सोहि षत्रवट चलें, मरण हिए पिण नवि नीकळें।
भुंडा भलां पटांतर काम, षापां जेम हुवें षग जाम॥2588॥
पिण तेह नें नवि पूछे कोय, जो पूछे तो इम कांई होय।
जांणहार हुवें धरती जाम, सझ जांचता राखे जाम॥2589॥
चिंते चित माहें पदमणी, गोरो वादळ सुणीजें गुणी।
त्यांसूं जाय करूं वीनती, वीजां मांहि न दीसें रती॥2590॥
इम आलोची पदमणि नार, सुषपाळें बैठी तिणवार।
आवी गोरळ रे दरबार, साथैं सयल सखी परवार॥2591॥
गोरो सांमो धायो धंसी, विनय करीने आयो हंसी।

मात मया बहु कीधी आज, भले पधार्‍या दाषो काज ॥2592॥
सुभटें सगळे दीधी सीष, दया धरम री नहिं आरीष।
सीष दियो हिवें तुमें पिण सही, जिम असुरां घर जाऊँ वही ॥2593॥
सुभट सबै हूआ सतहीण, प्रथवी षत्रीवट हुई खीण॥
सुभटे सगळे दाख्यो दाव, पदमनि दे नें लेस्यां राव ॥2594॥
हिवें तुमें सीष दियो छो किसी, कहोवात अधिकाई किसी।
गोरो जंपें सुण मुझ मात, होसी सघळी रुडी बात ॥2595॥
जो तुम आया मुझ घर वही, तो असुरां घर जास्यो नहीं।
रजवट तणो नहीं संकेत, नारी देई कीजें जेंत ॥2596॥
वळि मरवो रजपूतां भलो, आमों सांमो करबो कलो।
स्त्री देई ने लीजें राव, सकज न था (पि) एह कुदाव ॥2597॥

॥कवित्त॥

तुं रजधर गोरल्ल, ल, तू ही सावंत सकज्जह।
तु हि पुरस हिंदवांण, रांण घर सहु तुझ भुज्जह॥
वीर धीर वडवीर, तुंही दल बीडो झालें।
तुं मुझ दें अहें वात, नारि पदमणि इम बोलें।
सुहड़ अवर सतहीण सब, यह जस तो भुजें किलो।
अल्लावदीन सु षगां वळि, हींदूपती छोडा विलो ॥2598॥

॥चोपई॥

गोरो जंपे सुण मो वात, गाजण हुँता वडा मुझ भ्रात।
तस सुत वादल छें बलवंत, तेह ने पण पूछों ए मंत्र ॥2599॥
तब पदमणि गोरल ससनेह, पोहता जइ बादल रे गेह।
देष आवती थयो मन खुशी, वादल सांमो आयो हंसी ॥2600॥
विनयवंत करि पग परिणांम, काका ने वलि कीध सलाम।
गोरो जंपें वादळ सुणो, सुहड़ें थाप्यो ए मंत्रणो ॥2601॥
पदमणि देई लेस्यां राव, अवर न कोई चिंतें दाव।
पदमणि आया आपण पास, आंणी आझो मन विसवास ॥2602॥
हवें तूं जेम कहें ते करां, नीचो देतां लाजें मरां।
आपें डीलें छां दो जणां, आलम साथे लसकर घणां ॥2603॥
-------------------------------------।
कहो जीपेस्यां किम एकला, किलान होवें कदही भला ॥2604॥
तिण कारण तो पूछण भणी, आव्यों साथें ले पदमणी।

हिवें करवो रणवट ने ठाह, आपें बेहूं भुजें गजगाह ।।2605 ।।
पदमणि वादल सू इम कहें, सरणे आवी हुँ तुम तणें।
राषि सको तो राषो मुझ, नहि तर तेहिवो दाखो मुझ ।।2606 ।।
षांडू जीह दहूं निज देह, पिण नवि जाउं असुरां गेह।
लाषां जूंहर करिनें बळूं, पिण नवि कोट थकी नीकळूं ।।2607 ।।
सील न खंडु देह अखंड, जो फिर उलटें ऐ ब्रह्मांड।
सुहड़ करावें वळि भरतार, मुझ कुळ नहीं हैं ए आचार ।।2608 ।।
सीळ प्रभावें होसी फते, रिपुदल गाहो झुंबो मते।
रहे गढ़ ने छूटें राय, हुँ पिण रहुं सुजस जगि थाय ।।2609 ।।
परमेसर पिण साहस साथ, जयंत हथा करसी जगनाथ।
लहे सोभाग दीधी आसीस, जीवो वादल कोड वरीस ।।2610 ।।

।।कवित्त ।।

कहें पदमनि आसीस, अखें वादळ अजरामर।
तुमुझ पीहर वीर, धीर चित मोर बराबर।
षग भाजा खुरसाण, माण रहबहुँ हिंदवांगह।
घुरें जेत नोसाण, करें दुनीयांण बखांणह।
संनाह स्याम सरण सुहड, एह विरुद तुझ भुज लहें।
कर घालि जोस मूंधा सुहड, तुझ अंक माथे बहें ।।2611 ।।

।।दूहा ।।

व्रद धर वादल बोलियो, मरद जोस मयमंत।
गहकें कहरी गाजियो, दूठ महा दुरदंत ।।2612 ।।
काका सुण वादळ कहे, केहो कायर कांम।
रहो बेसे सारा सुहड, एह अमीणो नाम ।।2613 ।।
काका चिंता मत करो, अंग धरिहो उल्लास।
तो हुँ बादळ ताहरो, भत्रीजो स्याबास ।।2614 ।।
आलम भांजूं एकलो, पाउं पिसुण षगेस।
कुळवट उजवाळूं किलों, आंणूं रतन नरेश ।।2616 ।।
बीड़ो झाल्यो बादळे, बोले इम बलवंत।
तूं सत सीता दूसरी, हूं दूजो हनुमंत ।।2617 ।।
सती तुहारी सांमिनो, मिलुं महादळ माण।
घडि मांहे आणूं घरें, रतन सेन राजान ।। ।।2618 ।।
घरे पधारो पदमणि, म करो आरत माय।

बादळ बोल्या बोलड़ा, ते नवि झूठा थाय ॥2619॥
पच्छिम सूर न ऊगमें, मेर न कंपें वाय।
सापुरसां रा बोलडा, फिरे न झूठा थाय ॥2620॥
गोरे सांभळि गहगह्यो, सूरिम चढ़ी सरीर।
कायर पूछ्यां कांपवे, सूर धरावें धीर ॥2621॥

॥चोपई॥

पदमणी घरें पधारी जिसें, बादल माता आवी तिसें।
सुणज्यो सगलो ते संकेत, हिवड़ा मांह न मावें हेत ॥2622॥
नयण झरें मुंके नीसास, माता दीसें अधिक उदास।
इण पर आवी दीठी मात, विनय करें पूछे सुत वात ॥2623॥
किण कारण तुं माता इसी, कहो वात मन माँ छे तिसी।
आरत के ही छें तुम तणें, क्युं छो चित्त आमण दुमणे ॥2624॥
मात कहें सुण वादळ वाल, माडे कांई लीयो जंजाळ।
दूध दही तुं माहरे एक, तुझ विण कांई नहीं मुझ टेक ॥2625॥
घणा षाए छें गळिया ग्राह, सुहड रह्या छें तिकें विमाह।
सासन वास नही नृप तणो, षरच षावां छां निज गांठ नो ॥2626॥
रिण विध किम जाणेस्यो सजी, घर विध वात न जाणों अजी।
कदि कीधा छें तें संग्राम, अणजाण्यां किम कीजें काम ॥2627॥
आलिम किण पर गंज्यो जाय, आटे लूण किसा नें थाय।
वादळ पूत अछें तू बाल, रिण संग्राम तणो नहि ताल ॥2628॥
अलगा डूंगर रळियांमणा, हूं स हुवे अण दीठां तणा।
जुद्ध तणा मुष भला अदीठ, वात करंता लागे मीठ ॥2629॥

॥यतः दूहा॥

डूंगर अलगा थी रलियांमणा, दीसे ईसरदास।
नेडा जाय निरषि जे, कांटा भाटा नें घास ॥2630॥

॥चोपई॥

सींह सबद सुण मयगळ घटा, नासे सगळा ते पिण कटा।
जिम आलम भांजूं एकलो, गढ़ चीतोड़ दिषाउं भलो ॥2631॥

॥दूहा॥

एक संहेसे एकलो, एक एकला घणाह।
सींह सहेसें बीटियो, जोषें जणा जणाह ॥2632॥

॥कवित्त॥

रे वादल कहें मात, वात तू वदे करारी।

परिहर मन अभिमान, बोल बोलहू विचारी।
सुभट होय दसवीस, तास वळि आरंभ कीज्ये।
आलिम साह अथाह, समुद किम बांह तरीज्ये।
बाळक गत ओछंछळी, जूझ बूझ जांणे नहीं।
मुझ वयण मांन सुपसाय कर, तो सुपूत वादळ सही।।2633।।
हूं कित बालो माय, धाय आंचल नवी लागूं।
हूं कित बालो माय, रोय नहीं भोजन मांगू।
हूं कित बालो माय, धूलि ढिग मांहि न लोटूं।
हूं कित बालो माय, जाय पालणे नही पोढूं।
जाजुल नाग आलम जुवन, जास जुद्ध छोडु ग्रहें।
रण षेल मचाऊं बाल जिम, नही माय बाळो कहे।।2634।।
तब फिर जपें माय, वात सुन पूत अधीरह।।
गढ़ रोक्यो असुरांण, सुभट सबल ए अधीरह।
पड्यो रावल परहत्थ, कत्थ न हूँ झूठ करीजें
नहि सामंत तुझ भीर, झूझे कहा सोभ लहीजें।
रढ़ चढ़ हूँ लहु बाल जिम, कहें बालक दुष क्यू धरूं।
साह समुंद सुलताण दळ, भुजबळि जिम दूतर तरहुं।।2635।।
कहें वादळ सुण मात, कहा फिर फिर वाल कह।
जेठी नट झूझार, दास गायण हे पायकह।
वस्त्र सस्त्र कवि रूप, गयंद त्रिय गाहक वित्तह।।
एते सब बालक्क, मोल मूंगा जिन तन्नह।
बालुए कांन काळी देष्यो, बाले गज दे सीस दिये।
अरि सेन चाव बालक्क जिम, देषि ष्याल करी दृढ़ हिये।।2636।।
कहें वादल सुण मात, देषि एह घात विचारी।
प्रथम सांमि सांकडे, कष्ट भुगतहि तन भारी।
असपति गढ़ विग्रहो, रह्यो न सुहडां धीरज।
राजकुमार बालक्क, तास निज नांही वीरज।
पदमणी मुझ पयठी सरण, पेष विचष्षन वात सब।
निज वंस अंश उज्जल करण, इह अवसर फिर मिलहि कव।।2637।।
।।चोपई।।
सुत नो सूरपणो सांभळी, माता मन मांहें कळमळी।
वरज्यो वचन न मानें रती, तव गई मैली में विळकती।।2638।।

वात सहू वहू अर नें कही, जई राषो निजपति ने ग्रंही।
म्हारी सीष न माने तेह, रहेंसी भेट तुमारो नेह॥2639॥
सवी शृंगार सझे साबता, पहिरी वस्त्र भला भावता।
हाव भाव करें वचन विलास, जिण पर तिण पर पाडें पास॥2640॥
एम सुणि वहुअर नीकळी, झबकंती जाणे वीजळी।
सकुलीणी सझ सोल शृंगार, आवे बेठी जिहां भरतार॥2641॥
रूपें रंभ जिसी राजती, मृगनयणी सुन्दर गजगती।
नयणे निरमल दाषो नेह, साम धरम दाषें ससनेह॥2642॥
कोमल वदन कमळ कामनी, दीपें दंत जिसी दामनी।
हसत वदन बोलें हितकरी, स्वामी वात सुणो माहरी॥2643॥
आलिम दूठ महा दुरदंत, कहि नें किण पर झूझो कंत।
अरि बहुळा नें तूं एकलो, इसें मतें नवि दीसें भलो॥2644॥
ते हूं पुरष नही बादळो, जो ए जिण पर मांडू किलो।
वळती अरज (करे) वळि, इसी, जात नहीं छें जोवा जिसी॥2645॥
हींसे षेंग सिंधुर सारसी, गळबळ मुगल करें पारसी।
सोषें षिण इक माह तलाब, मुष मंकड चित दुष्ट सुभाव॥2646॥
भुरज उडावें दे दे टळा, मांस भषे बाणे अळपळां।
ऊडंता पंषिया हणें, बाळें बांधी कोडी चुणें॥2647॥
वादळ बोलें वळतो हंसी, तें ए वात कहीं मुझ किसी।
हेंवर गेंवर पायक पूर, एकण हाक (क), रूं चकचूर॥2648॥

॥दूहा॥

इह त्रिया सुणि वादल वयण, जंपे तीय जुवान।
त्रिया सेझ गंजी नहीं, किम गंजसी सुलतान॥2649॥

॥चोपई॥

षडग जुद्ध विसमो छें सही, कूड़ी रीस न कीजें कही।
मुझ तन हाथ न घाली सको, भोगी स्वाद लहें जे थको॥2650॥
असपति घडि विसमा वींदणी, भमुह चढावें मेले अणी।
जरह कंचुकी भीड़त अंग, विळकुळियो मुष रातो रंग॥2651॥
मलपें मयमत नारी जेम, वचन विरस चित न धरें पेम।
अमंगल सींधु नद गावती, छळ धर तीड़ा कुळ वावती॥2652॥
पोरस तणो देषाळिस तेज, तिण दिन आविस ताहरी सेज।
जां लिग पिसुण वषाणें नहीं, गुणीयण विरुद न चे तुमही॥2653॥

तां लग केहा सूर सधीर, वल्लभ मांने जेह सरीर।
लोही सांटें चाढे नीर, ते कुल दीपक बावन वीर॥2654॥
जब नारी जंपे कर जोड, अवर नही को ताहरें जोड़।
भलो भलो कहेंसी संसार, साम धरम रहेसी आचार॥2655॥
जिम बोलें छे तिम निरवहें, मत किण बातें जाए ढहें।
लाज म आंणो कुल आपणो, सामी साहस झूझ घणो॥2656॥
जीवन मरण सदा नूं नाथ,हूं नवी मूंकूं प्रीतम साथ।
घणो घणों हिव कासु कहूँ, जिम करज्यो तिम हुँ गहगहूँ॥2657॥
कंत कहें सांभळ सुंदरी, मोटा वंश तणी कुंअरी।
बोल्या बोल भला तें एह, हित वांछे सोही ससनेह॥2658॥
ओछा घर री आवे नार, कुमत दीए पूछ्यां भरतार।
तें कुलवंती नारी तणो, महीयल सुजस वधाव्यो घणो॥2659॥
अस्त्री आंण दिया हथियार, सभी आउध उठ्यो तिणवार।
विनय करी माता पग वंद, चंचल चढ़ि चाल्यो आणंद॥2660॥
गोरा पासें आयो गहगही, काका धीरप राषो सही।
एक वार देषूं पतिसाह, देषूं कुंअर तणो पिण माह॥2661॥
कहें गोरो वादळ सुण वात, मुझ तुझ एक अछें संघात।
तूं जावें हूँ पाछे रहूँ, ए वातें किम सोभा लहूं॥2662॥
काका न कीजे काची वात,हूँ जावूं छु मेलण घात।
रिणवट मुझ तुझ हें साथ, इण वातें मुझ देषण हाथ॥2663॥
गोरो रावत राषें घरें, वादळ चालो साहस धरें।
सुभट सहु मिलिया छें जिहां, वादळ रावत आवें इहां॥2664॥
सांमधरम सरणें साधार, रिम दल गाणण सबळ अपार।
जाणे कुळ कीरत धन धर्‌यो तेज-पुंज सूरज अवतर्‌यो॥2665॥
सभा सहू देखी षळभळी, सूरातम सामंत अटकळी।
बादळ कब ही न आवें सुभा, ग्रास न लाभें नहि धर विभा॥2666॥
सकें तो कांइ विमासी बात, गाजण सुत ए सूर विष्यात।
सुभट राय सुत बेंठा जिहां, कियो जुहार आवी नें तिहां॥2667॥
उठ सुभा सहू आदर दिए, बेंठा वादल तव दृढ़ हियें।
पूछें सुभा प्रयोजन आज, कहो पधार्‌या केहें काज॥2668॥
वादळ बोलें वहिसे इसो, कहो तुमें आलोचो किसो।
सुभट कहें वादळ संभलो, सबळ मंडांणो इण गढ़ किलो॥2669 ॥

अडियो आलम अवलीबांण, गढ़पति ग्रहियो रतनसी राण।
गढ़ पिण लेस्यें हिवडा सही, दल्लीपत बेठो हठ ग्रही।।2670।।
पदमनि द्यां तो छूटे पास, नहितर गढ़री केही आस।
गढ़ जातां कोई न वि रहें, वळे करां जें तुं कहें हिवें।।2671।।
वादल बोले भलो मंत्रणो, तुम आलोच कियो छें घणो।
पदमणी आपं देस्यां नहीं, गढ़पति नें छोडावां सही।।2672।।
इम करतां जे आवां काम, कुळवट रहेंसी नामो नाम।
काया सांटे कीरत जुड़े, मोले मुंहगी नवी पडें।।2673।।

।।दोहा।।

सीह न जोवें चंद बळ, नवि जोवें घर रिद्ध।
एकलो ही भांजे किलो, जहां साहस तिहां सिद्ध।।2674।।

।।चोपई।।

सूरातम चित धीरज ज्यांह, परमेसर त्यां आवें बांह।
हिवें आदरज्यो सत ध्रम तणो, सुहडां धीरज दीज्यो घणो।।2675।।
हूं जाऊं छूं लसकर मांह, आवू वात सहू अवगाह।
करि जुहार बादळ अश्व चढ्यो, साहस नूर सूरातम चड्यो।।2676।।
गढ़री पोल हुंती ऊतर्‌यो, बुद्धिवंत नें साहस भर्‌यो।
निलवट दीपें अधिको नूर, प्रतपें तेज घणो घट पूर।।2677।।
सलहें अंग सझ्या साबता, पहिर्‌या वस्त्र भला फाबता।
आव्यो एकलमल असवार, जाणे अभिनव इन्द्र कुमार।।2678।।
आवत दीठो आलम जिसें, ए आवे हें कारण किसें।
पूछण मूंक्या सांमां दूत, क्यूं आवत हें ऐ रजपूत।।2679।।
आय नकिमें पूछ्यो तेह, बोलें बादळ अती सनेह।
आव्यो एक कहेवा वात, पदमणि आंण देऊं परभात।।2680।।
आलिम मानें मुझ मंत्रणो, तो उपगार करूं हूं घणो।
जाय नकीम आलम हूं कह्यो, इम निसुणि असपति गहगह्यो।।2681।।
मांह तेडायो देइ मान, दीठो असपति भिड़ असमान।
तेज तेष दिनकर थी घणी, हुकम कियो षुस बेसण भणी।।2682।।
बेंठो बादल बुद्धि निधान, असपति पूछें करि बहुमान।
क्या तुम कूं नाम कसी का पूत, अब किसको हे तें रजपूत।।2683।।
क्या तुम कूं हे गढ़ में ग्रास, को अब आए हो हम पास।
बोलें बादळ वळतो हंसी, रोम रोम घट सहू ऊससी।।2684।।

अवसर बोली जाणे जेह, माणस मांह जणावें तेह।
विनय करें कर जोड? प्रमाण, करि हुँ अरज पाऊ फरमाण॥2685॥
नाम ठाम सहु विगतें कह्या, महरवान तव आलम थया।
वादळ बोल्यो साहस धरी, स्वामी.वात सुणों माहरी॥2686॥
पदमणि मूक्यो हूं परधान, सुहड न मेलें निज अभिमान।
पदमणि देख्या तुम कूं द्रेठ, भोजन करता लाळी हेठ॥2687॥
तिण दिन थी ते चिंतेतें इसो, कामदेव वळि कहीइं किसो।
धन तस नारि तणो अवतार, जिसके आलम हें भरतार॥2688॥
विरह वियाकुल बेठी रहें, अहनिस सुहिणे आलम लहें।
निपट घणा मूंके नीसास, अबला दीसें अधिक उदास॥2689॥
आलम आलम करती रहें, मुष करि वात न किण सूं कहें।
मुझ तेड़ी ए दाख्यो भेद, मूंक्यो करवा विरह निवेद॥2690॥

॥दूहा॥

सुण साहिब आलम अरज, मैं पदमणि का दास।
यह रुक्का हमकूं दिया, हे इममें अरदास॥2691॥
जो में देषूं वदन छब, मेरे कछू न चाह।
इंद्रपुरी किह काम की, प्रीत नहीं जिस माह॥2692॥
रुक्का आलम हाथ सूं, वांचत धर ऊछाह।
ताती बाती विरह तें, मेटत ही जळ दाह॥2693॥
निस वासर आठूं पहर, छिनहिन विसरें मोह।
जिहां नयण पसारहूं, जिहां जिहां देषे तोह॥2694॥
साह तुमारे दरस कूं, अरध रह्यो जिव आय।
कहो क्या आग्या देत हो, फिर तन रहें के जाय॥2695॥
प्रीत करी सुष लेण कूं, सो सुष गयो दुराय।
जैसे सांप छछूंदरी, पकर पकर पछताय॥2696॥
वाती ताती विरह की, साहिब जरत सरीर।
छाती जाती छार हुई, ज्यूं न बहत दृग नीर॥2697॥

॥कवित्त॥

कहें पदमनि सुन साह, वाह तुम रूप बड़ाई।
अहो काम अवतार, अहो तेरी ठकुराई॥
मुझ कारण हठ चढ़े, आप ग्रही षग उनंगे।
पकड़्यो राण रतन्न, वचन विसवास उलंघे॥

अब बेठा रहें करि मोन मुष, कहा तुमारे दिल वसी॥
जे हि काज एतो कियो, सो क्यूं न करहो षुसी॥2698॥
में तेरी पग दास, मैं तेरी गुण बंदी।
तुम रहिमान रहीम, मे हूँ त्रिय आदम-गिंदी।
में तो यह पण किया, सेज आलम सुष माणूं।
ना तर तजिहुं प्राण, अवर नर निजर न आणूं।
अब करिहुं मिहिर मानहुं अरज, हुकुम होय दर हाल इह।
में आय रहूँ हाजर षड़ी, छोड़ी देहो हिंदवाण पह॥2699॥

॥चोपई॥

जब भेजे आलिम परधान, द्यो पदमणि छोड़ें राजान।
सुहड कहें वलि मरसां सही, पिण पदमणि को देस्यां नहीं॥2700॥
में समझाय सुभट सामंत, वीरभाण कुंअर जगजंत।
क्यूं-क्यूं आज ठवें छे कान, तिण जांणूं छूं विणसे बान॥2701॥
पदमणि मूक्यो हूँ तुम भणी, विनय भगत विनवें घण घणी।
वेले जिका होवें छें बात, आवे कहेस्यूं ते परभात॥2702॥
सीष दियो पत्री पढि सही, पदमणि पासें जाऊं वहीं।
जोती होसी मांहरी वाट, करती होसी अति उचाट॥2703॥
विरह विथा न षमें विरहणी, काम पीड दाहें पदमणी।
तुम संदेस सुधारस जिसा, पाउं जाइ कहुं तिहां तिसां॥2704॥

॥दूहा॥

असपति इण पर सांभळी, पदमणि प्रेम प्रगास।
वयण बाण वेध्यो घणो, मुकें सबल निसांस॥2705॥
पत्री वांची प्रेम सु, चतुराई सु-विचार।
कागद कर मुक्कें नहीं, नयण लगाई तार॥2706॥
कांमण बांण कुण सहि सकें, दाझे सारी देह।
सुन्दर तणा संदेसडा, निपट वधारें नेह॥2707॥
वार वार चुंबन करें, रुक्का कूं मुष लाय।
अजब पढ़ी है पदमणी, खूब लष्या ए मांय॥2708॥
असपति थो अहि सारिखो, सही न सकंतो कोय।
षील्यो वादळ गारुडी, पदमणि मंत्र परोय॥2709॥

॥चोपई॥

असपति बोलें बादल सुणो, तु मेरे वल्लभ पाहुणो।

भगत जुगत केती कहीजीइं, तेरी अकल वसी मुझ हीइं ॥2710॥
पदमणि सूं कहियो मुझ प्रीत, रूडी पर भाषें सहु रीत।
जो हम हाथ आई पदमणी, तो तुझ कूं द्यूं धरती घणी ॥2711॥
सुभट सहू समझा घणा, थिर कर थापै ए मंत्रणा।
तुझ ने करस्यूं देशज धणी, दूध डांग दिषलावे घणी ॥2712॥
इस कही निज कर सैंती साहि, पहिराव्यो वादल पतिसाह।
लाष सोनेहिया दीधा सार, हेंवर गेंवर देश अपार ॥2713॥
रुक्का लिष देहूँ तुम हाथ, मांहे लिष हूँ प्रीतम गाथ।
रुक्का ल्यूं नहि आलम तणा, कोइ वांचें तो भांजे मंत्रणा ॥2714॥
मुष सुं वात करूंगा घणी, विरह वात सहु आलम तणी।
मुझ कूं सीष दीयो सुपसाय, आलम साह दीया पहुँचाय ॥2715॥
सोवन पोट हमालां सिरें, हय हींसें घेसारव करें।
इण पर आयो चित्रगढ़ माह, पूछें वात सहू परचाह ॥2716॥
रीझ मोकली निज घर ज्यार, माता हरष थई तिणिवार।
देषी साह तणो सिरपाव, देषी सूरातम दरियाव ॥2717॥
गोरो रावत मन गहगह्यो, करसी बादल सगळो कह्यो।
हरषित नार हुई पदमणी, ए मेलवसी सही मुझ धणी ॥2718॥
सुभट संहू चमक्या मन मांह, वादल माहें अधिको आंह।
सगत न छांनी राषी रहें, बांधी अगन होवें तो दहें ॥2719॥

॥दूहा॥

विधना ज्यां बुद्धि गुण द्यो, ना दो मति मनमंद।
जे कुंडे किम छाइए, छिप्यो रहें कित चंद ॥2720॥

॥चोपई॥

वादळ बैसि कीयो मंत्रणो, कहूं वात तें सहु को सुणो।
वीस सहस सझ करो पालखी, वात न किणही जाई लषी ॥2721॥
ऊपर अधिक करो ओछाड, पाषतियां बांधो पड़िवाड।
दो दो सुभट रहो त्या मांह, बाधी सस्त्र सलह संनाहें ॥2722॥
लारो लार करो पालषी, कहसां माहें छे तसु सषी।
विचे पालखी पदमणि तणी, परठी सोभ करो तिण धणी ॥2723॥
सांचो पदमणि रो श्रृंगार, ऊपर थापो भंवर गुंजार।
तिण में रावत गोरो रहो, वात रषें को बारें कहो ॥2724॥
छेटी बिचें न राषो रती, लारो लार करो पाषती।

गढरी पोल समीपें बार, सेन समीपें आंणो पार ॥2725॥
एम करी हिवें तुम आवज्यो, वेलां बहुळी पडषावज्यो।
हुं विच जाय करूं छूं वात, मिलस्यां जिम तिम घातोघात ॥2726॥
हूं ले आवेस्यूं राजांन, पोहचावेस्यूं नृप निज थांन।
पछें करेस्यां सबळो कलो, ए आलोच अछें अति भलो ॥2727॥
सुभटे सगले मानी वात, परठ करंतां थयो प्रभात।
भेद सहू समझावी घडी, चाल्यो बादल चंचल चडी ॥2728॥
पोहतो जाय लसकर महि, जिहां बेठो छें आलमसाह।
जाए वादळ करी सलाम, हरषित बोलें असपति ताम ॥2729॥
वादळ साचा कह संदेश, बगसूं बोहळा तोनें देस।
वादळ अरज करें परगडी, स्वामी बात सिराड़े चढ़ी ॥2730॥
कटक सहू समझावें नीठ, पदमणि आणी गढ़रे पीठ।
सुहड सहू भाषे छें एह, निसुणो स्वामी विनती तेह ॥2731॥
पदमनि सूँ ज्यो छें तुम काम, तो हिवें राषों मामोमाम।
अतरो हुवें हमकूं वैसास, पदमणी आणुं जिम तुम पास ॥2732॥
असपति बोले बळतो एम, कहो विसवास हुवै तुम केम।
वादळ कहें श्री आलम सुणो, विदा करो लसकर आपणो ॥2733॥
सुहड सहू बोलें छे मुषें, बेही स्वारथ चूको रषे।
पदमणि लेई न छोडे राव, रषे उपावो असपति दाव ॥2734॥
पहिली पण कीधों छें कूड, तिण वैसास मिल्यो छें धूड़।
तिरें कारण कहूँ आलम साह, लसकर सबही करो विदाह ॥2735॥
जो वळि बीहो तो असवार, पासें राखो सहस बे च्यार।
अबर द्यो सहुं आगें चलाय, जिम विसवास अमां मन थाय ॥2736॥
इम सुणीने धयो उतावळो, बोलें आलम अति वा वावळो।
हम अबीह बीहें किस थकी, बादळ एसी ते क्या वकी ॥2737॥
हुकम कियो असपति हुंसियार, कूच कराव्यो लसकर लार।
सहस बेच्यार रहो हम पास, हींदू कुं होवें वैसास ॥2738॥
लसकरियां जब लाधो दुओ, हरष घणो मन मांहे हुओ।
लसकर कूच कियो ततकाळ, चाल्या सुभट विकट विकराळ ॥2739॥
मीर मुगल को षांन निवाब, मुगल पठाण घणी जस आभ।
पदमणि सनस करें जे भणी, आगें चलाए दल्ली धणी ॥2740॥
बिया था जे जो रण कटा, एकेला भांजें गज घटा।

डाइल साह तांणे विस्वास, तिण कारण राषण भिड पास॥2741॥
सूरा सूरा सहस बेच्यार, असपति पास रहया असवार॥
आलिम बोले वादळ सुणो, कहियो कीधो हेंतुम तणो॥2742॥
वेग मंगावो अब पदमणी, पाळो वाचा आपापणी।
लाष महोर तव रोकड दिया, पहिरावणि वागा समपिया॥2743॥
ते लेई वादळ आवियो, हरख्यो माय तणो तव हियो।
तब सुड्डा सूं कही संकेत, हवें जगदीस दियो छें जेत॥2744॥
तुमें संकेत रूडो राषज्यो, पालकी तुमें लेइ आवज्यो।
मत किण वात हुओ आषता, रखे लगावो कांई षता॥2745॥
इम कही नें आगो संचर्‌यो, पालषियां पूठे परवर्यो।
राघव व्यास जे बुद्धिनिधान, स्वामिद्रोह थी नाठी सान॥2746॥
छळ बळ एन लिषाणी काइ, लूण हराम तणो परभाइ।
असपति दीठो आवत वळी, वादळ वात करी निरमली॥2747॥
साहिब सांभळ मुझ वीनती, पदमणि एम कहें गुणवती।
आवूं छूं हजरत तुम गेह, आलिम धरज्यो अधिक सनेह॥2748॥
पण सोहागण मुझनें करें, एह अरज मन माहें धरें।
एम सुणि नें आलम कहें, पदमणि आपें आदर लहें॥2749॥
पदमणि नारि तणा नष एक, तिण सरीषि नहि नारी एक॥
पदमणि कारण म्हें हठ कियो, वयण लोपि राणो ग्रहि लियो॥2750॥
मुझ मन खांत अछे तिण तणी, मानीती करस्यूं पदमणि।
अवर हुरम करसी पग सेव, पदमण कु पधरावो हेव॥2751॥
एम कही वळि वादल भणी, परिघळ दीधी पहिरावणी।
ते लेह वादळ आवियो, पदमणी नारी वधावियो॥2752॥
सुभटां ने सहु भाषी वात, जइ मेलावस्यु घातो घात।
तुम सहु बाह (र) रहेज्यो इहां, वात रिषे काढो किहां॥2753॥
आयो वादल असि पर चढ़ी, नव नव वात कहें मन घडी।
होठे बुद्धि वसे तेह नें, कसी उणारथ छें जेह नें॥2754॥
वात करंतां लागें वार, फिरि वादल आयो तिणवार।
परगट आंण धरी पालषी, आलिम देषे सहु सारिषी॥2755॥
वादल विच विच में वळि फिरें, पदमणि ने, मिस वातां करें।
रह्यो पोहर दिन एक पाछलो, लसकर दूर गयो आगलो॥2756॥
किला तणी जब वेलां भई, तब तिहां वादळ बोलें सही॥

हजरत एम कहें पदमनी, मुझ ऊभां थई वेलां घणी ॥2757 ॥
मांहरी एक सुणो अरदास, जिम हूं आवं तुम आवास।
रतनसेन मूंको इक वार, तिस सें वात करूं दोय च्यार ॥2758 ॥
ले राजा आवूं दरबार, जेम रहें कुल नो आचार।
आलम बोले सुण वादळा, पदमनि बोल कह्या ते भला ॥2759 ॥
यह बोलें हम होवें षुसी, पदमणि न्याय कहीं जे इसी।
हुकम दियो आलम ततकाल, छोड्यो रतनसेन भूपाल ॥2760 ॥
वादळ मांह छुडावण गयो, राणो रूस अपूठो थयो।
फिटरे वादळ मुंह म दिषाल, सबल लगावी मुझ नें गाल ॥2761 ॥
वेरी वेर घणो तें कियो, पदमणि सांटें मोंनें लियो।
षत्रीवट मांहे नांखी षेह, षित्री निसत थया सवी गेह ॥2762 ॥

॥कवित्त॥

फिट वादल कहे राव, वाच चूको हिंदवांणह।
षत्री ध्रम लज्जियो, मिट्यो भिड मांन गुमांनह।
सांम ध्रम लोपियो, लूंण तासीर न कीनी।
जीवत शशले षाल, नारी असपति कूं दीनी।
कहा करूं म्हें परवस पड्यो, वाच लोप आलिम भयो।
सत छोड़ कितो अब जीवहें, तवहीं नीर उतर गयो ॥2763 ॥
कहें वादल सुनि राव, वाच हिंदवाण न चुक्कहिं।
षत्री ध्रम ऊजलौ, सुहड़ धीरज न मुक्क हिं॥
सांम ध्रम रष्ष हें (सदा), जस्स सबहीं कूं प्यारो।
भुगतहूं गढ़ चीतोड, इला कीरत विसतारो।
न करहूं सेव असपत्ति री, असपति साहिली मेलियो।
महिमांन मांन दीजें सदा, करहुं आद पुव्वहि कह्यो ॥2764 ॥

॥दूहा॥

महिल अगंजित गढ़ सघर, ग्रही तस राज गहिल्ल।
उस आलम की महिर सौ, सब विध होय सहिल्ल ॥2765 ॥
राषि रजा सिर राम की, धरि मन उमंग उछाह।
राज पधारो चित्रगढ़, सब विध होहि भलाह ॥2766 ॥

॥कवित्त जात आदि अष्षरो॥

राव करहुं मन ग्यांन, जवनपती हठ हमीरह।
गुमर किए रस नाहिं, ढळकि है अंजलि नीरह॥

परा लेख जो कछु धाता, त्रिम्यो निस छुट्टि।
रोस मोस बिनु न क्यूं लोक वाइक नहु झुट्टि॥
हजरत रजा सिरि परि धरहु, उत्तम रीत न छांडिये।
डाव विन पाव ह्वै है नहीं, वांचहु पढ़हुँ मरम हियै॥2767॥

॥चोपई॥

भूप प्रीछ उठ्यो तिण वार, असपति बोले चित्त अपार।
पदमणि नें मिल आवो जाय, पीछे सीष दीए हित भाय॥2768॥
राजा चाल्यो पदमण भणी, सुषपाळां देषी घण घणी।
पेंठा माहिं जिसें पालषी, वाच सहू साची तब लषी॥2769॥
वादळ बोलें राणा सुणो, अवसर नही ए वातां तणो।
एक थकी बीजी अवगाह, गढ़ लग पहुंचो सविका माह॥2770॥
स्वामी थाज्यो घणूं सचेत, मांहे जइ कीज्यो संकेत।
साचो कीनो ए सहिनाण, दीज्यो डाका जेत निसाण॥2771॥
रतन तुम्हारे वषतें सही, मंत्र भेद पिण हुओ नहीं।
साम धरम ने सत परिमाण, गढ़ रहियो नें छूटो राण॥2772॥
एम सुणी राजा रंजिओ, सांई सफल मनोरथ कियो।
कुसल षेम पोहता गढ़ माह जाणक सूरज मुक्यो राह॥2773॥
कुसल तणा वाजा वाजिया, तब तें सुभट सहू गाजिया।
नीसरिया नव हत्था जोध, माण दुसासन वर विरोध॥2774॥
राघव तणो हुओ मुष स्याम, कूड कियो पिण न सर्यो काम।
सांम द्रोह पातिक परगटियो, अकल गई ने पोरस मिट्यो॥2775॥
साम काम समरथ अतिसूर, गोरो रावत अति हें गरूर।
अरिदल देषी तन ऊलसे, सुभट सहू मन मांहें हंसें॥2776॥
सूरा चढ़िया (सब) सिरदार, उंडा पग, जळहळ झूझार।
दळां विभाडण दूठ दुबाह, रूक हथा दीपें रिम राह॥2777॥
च्यार सहस नीसरिया सूर, एक एक थी अति करूर।
आगूवांणे वादल गेह, पूठे सामंत थाट सबेह॥2778॥
घाघरटें दीसें भिड घणां, सिलह टोप करी रुद्रांमणा।
घंसिया छूटी ले तरवार, हलकारे लागा हलकार॥2779॥
रे रे असपति ऊभो रहें, हिवें नासी मत जावो वहें।
म्हें पदमणि आंणी छें जिका, तोनें हिव देषाडां तिका॥2780॥
तोनें षांत अछे तिण तणी, पदमणि नार निहालण तणी।

हठ हमीर जांणो तो सही, लडें अमा सूं अवसर ग्रही।।2781।।
इम कहता भिड आयां जिसें, आलिम दीठा अरियण तिसें।
एहवी वात कहें पतिसाह, रिण रसियो उठियो रिम राह।।2782।।
रे रे कूड कियों वादळे, हिंदू आय वाळ्या सांकळे।
हलकारयाँ असपति निज जोध, धाया किलकी करि करि क्रोध।।2783।।
मांहो मांह मंडाणो किलो, बोलें असपति सु वादळो।
पतिसाह मत छांडो पाव, तेरा कूड अमीणा घाव।।2784।।

।।कवित्त।।

सुणि वादळ कहें साह, वाह तुम बोल भलाई।
मुष मीठा दिल कूड़, इहें हींदूं न कराई।
पदमणि करी कबूल, तुझे सिरपाव दिराया।
छोड़्या रांण रतन्न, सबे दल दूर चलाया।
अब लडि हुं षग्गि बुल्लहुं अकथ, काफर गुंडाई धरहुं।
हम सरिस चूक देषहुं सु तो, मुरष अण षुट्टि मरहुं।।2785।।
कहें वादळ सुण साह, राह पहेली तुम चूक्के।
दे वाचा गढ़ देषि, बहुर तुम राव ही रुक्के।
हम हींदू कैई मीर, निरष रष्षि कुलवट्टह।
पदमणी दे ल्ये धणीय इहें हम लाज निपट्टह।
अब करहुँ मूष्ठि जूठा न कहूँ, कहा रह्यो रस हम तुमहि।
ग्रही षग लडहुँ म धरहुं ग्रब, बतरस नहि अवसान इह।।2786।।

।।चोपई।।

आलम ताम हुआ असवार, जोधा मुगल पठाण जुझार।
भिड़्या षाग रिण मचियो दूठ, सुभट न दाखें कोई पूठ।।2787।।
षेहाडंबर उड्यो इमो, सूरज जाणक वघुल्या जिस्यो।
बाण विछूटें चिहुँ दिश घणा, रुड्या नगारा सींधू तणा।।2788।।
षडग झलक्कें, ऊजल धार, जाणे क वीजळ घण अंधार।
संन्राहें तूटें तरवार, जागे झाळ अगनि अण पार।।2789।।
कुंत अणी फूटें सूंसरा, तूटें कालज ने फेफरा।
ऊडे बूर वहें रत षाळ, गुंजे सींघ घणा असराळ।।2790।।
वहें तीर चणणाट पंषाल, झड मातो तातो वरसाळ।
पड़ें मार गूरज गोफणी, फोजां फूटें टूटें अणी।।2791।।
मार मार कहि वाहें लोह, रण लूधा सामंत छछोह।

षांन निबाब गडूथळ षाय, हजरत करें षुदाय षुदाय ॥2792॥
नारद कलकी करि करि हास, गीरध मांश तणा ले ग्रास।
धड ऊपर धड ऊछळ पड़े, केता सामंत सिर विण लडें ॥2793॥
रिण चाचर नाचें रजपूत, धूंकळ माचवियो रण धूत।
धन धन कहें सूरज धीरवें, अपछर माला कंठे ठवें ॥2794॥

॥दूहा॥

उत असपति तोबा वकें, इत हलकारें रांण।
तिण वेळा वादळ तणा, अडिया भुज असमान ॥2795॥
कुण तोलें जळ सायरां, कुण ऊपाडें मेर।
वादल तो विण साहा सूं, कुण झालें समसेर ॥2796॥
दळां विभाडण साहरा, ऊपाडें गज दंत।
तुज्झ भुजां गाजण तणा, बलिहारी बलवंत ॥2797॥
जाबें असपति रीझियो, सुहडां षगी सबाब।
षागें खांन निवाब नें, तें ऊतारी आब ॥2798॥
हसियो आलम जाब सुणि, षग षसियो षत्रि सार।
तूं वेधालक वादला, अंगद रो अवतार ॥2799॥
महि डोलें सायर सुसें, पच्छिम ऊगें भाण।
वादळ जेहा सूरमा, क्यूं चूके अवसाण ॥2800॥
रिण डोहें फिर फिर षळां, धडां धपावे धार।
पारीसें पडिहार ज्यूं, नह भूलें मनुहार ॥2801॥
घड़ि पतिसाई बींदणी, मंद जोवन मयवंत।
मुझ मन परणेवा (तणी), षरी विलग्गी षंत ॥2802॥
सुण गोरा वादळ कहे, तू सामंत सकज्ज। .
तूं दळ नायक हिंदुआ, तुज्झ भुजें रिण लज्ज ॥2803॥
तु सिंघ चाढ़ण सूरमा, उजवालण कुलवट्ट।
तूं बांधे पतीसाह सूं पें तोडर रणवट्ट ॥2804॥
बांधे मोड महाबली, बांधे असि गजगाह।
सिर तुलसी दळ घालियाँ, डहियां षाग दुबाह ॥2805॥
केसरिया वागा किया, भुज ऊवाणे षाग।
जाणक भूखो केहरी, झुंड में नाखे झाग ॥2806॥
सूरज हुंत सलाम कर, वलि मुछां बळ घाल।
सु पतीसाहां सम चढ़े, आयो रणवट जाल ॥2807॥

भरें डांण दईवान भति, राम राम मुष रट्ट।
ऊकळते ते रण ऊरियो, माझी लोह मरट्ट॥2808॥
रुडें नगारा सिंधूआं, रिण सूरातम रस्स।
मद आयो गोरो मरद, अडियो सीस डरस्स॥2809॥
आवें असपति आगळें, इसो उड़ायो षाग।
पाघर पाषल पाघरें, जांणे हणुमत वाग॥2810॥
हाका करि किलकी हंसें, डसें रिमां जिम नाग।
तिण वेळा त्रिजडा हथो, (दिये अदग्गा दाग)॥2811॥
पक्के दीहे गेरिळो, दिये रण पक्का दाव।
पक्का खांन निबाब सिर, परें पकंदा घाव॥2812॥
आडा षल भांजें अनड, फुरळंतो गज भार।
आयो असपति ऊपरें, मुष कहतो हुंसियार॥2813॥
तोले षग तारां लगे, गोरे कीधो घाव।
असपति जीव ऊवेळतां, पाछा दीधा पाव॥2814॥
कहें वादळ गोरा सुणो, सकजां एह सुभाव।
आपो आंगमिया पछे, कुण राणो कुण राव॥2815॥
तोनें रिण वाही तणी, वदसी जगत विसेष।
दल्लीसर परमेसरो, त्यांसू केहो तेष॥2816॥
घण घट नेजां घाव करि, लडें भडें ले बोह।
गोरो रणवट पोढ़ियो, वाहि बहावे लोह॥2817॥
षमा षमा कहि अपछरा, हरि जोड़े सिर हाथ।
गिलें डळां भख ग्रीधणी भुजां वदे दिननाथ॥2818॥
आवें वादळ ऊपरें, करें हथेळियां छांह।
दलपति साहै डोहियां, भांमे तूज भूजांह॥2819॥
अइयो सूरातम तणा, अजे अवमांण अथाग।
भुज वे बे रूंधा भला, इक मुंछा इक षाग॥2820॥
मुष देखे काका तणो, बांदे मुछां बाल।
वादळ आयो साह सूं, चोरंग बांधे चाल॥2821॥
हलकारें भिड आपणां, वाकारें रिम थाट।
पडियो कांसें बीस परि, झाडंतो षग झाट॥2822॥
लोह छछारें उडवें, इसा लगाया हाथ।
पोधर षेत पछाडियो सारो असपति साथ॥2823॥
रहचवि (या) सारा रवद, ऊभो असपति आप।

जांणि विषेरया बांदरे, करि गुंजाहल ताप ॥2824 ॥
षळ गळिया वादळ षगें, पूर हसम षुरसाण।
सांमुंद जांण उतान सुत, पीधा चळु प्रमाण ॥2825 ॥
पकड्यो असपति वादळे, एकल मल्ल अबीह।
मेंगळ हंदा मग गळैं, गाल बजावें सीह ॥2826 ॥
फिर छोडें पकडे फिरें, नाच नचावें तेम।
रस लागो रांमत रमें, भोळा बाळक जेम ॥2827 ॥

॥कवित्त॥

सुण वादळ कहें साह, राह हीदू ध्रम रष्षो।
सामधरम सुरतान, अकल उसताद परष्षो।
तूं सांमंत सकज्जह, बुद्धि बल अकल दुबाहो।
तूं ही ढाल हीदवाण, तु हि रावत षग वाहो॥
गोरिळ सरग्ग अपछर वरी, तुम दुनियां में यस सुनहु।
पतिसाही दळां लाई घरा, बहू भई जब वस करहु ॥2828 ॥

॥दूहा॥

ध्रम राष्यो रष्यो धणी, रखी पदमणि पूठ।
अब रष्षहुँ मेरी अदब, कहें आलिम सुण दूठ ॥2829 ॥
मेरे लाल तूं झूझ खरो, ए दुनियांण उकत्त।
भातीजें काको भिडे, दीधो न्याव विगत्त ॥2830 ॥

॥चोपई॥

ऊभो रतन सेन राजान, दीठो जुद्ध महा असमान।
जोया वादळ गोरा तणा, हाथ महाबळ अरि गंजणा ॥2831 ॥
पदमणि ऊभी द्यें आसीस, जीवो वादळ कोड वरीस।
सांम धरम सांचव्यो सवेह, राखी वादळ षत्रिवट रेह ॥2832 ॥
गोरो रावत रण में रह्यो, आलम सेन चावे षग लह्यो।
लूटाणो लसकर झूझुओ, साका वदित भारथ हुओ ॥2833 ॥
पतिसाह साहें मुकियो, एह वळे मोटो जस लियो।
साह कहे सांभळ वादळा, किया पवाडा तेही भला ॥2834 ॥
जीवन दान दियो म्हो भणी, किसी करां हिवें कीरत घणी।
आलिम नीसर गयो एकलो, गोरो वादळ जीत्यो किलो ॥2835 ॥

॥दूहा॥

करि कागळ वादळ सबी, हजरत रष्षी पास।

इक तेरे मुष मूंछ है, अई हींदू स्याबास ॥2836 ॥
पातसाह दिल्ली गए, भई दुनी सर वात।
वादल भिड रण सोझियो, उवारी अषियात ॥2837 ॥
हसम षजीनो लुटियो, ग्रहि मूंक्यो पतिसाह।
बोल्यो तूं निरवाहियो, अइयो भींच दुबाह ॥2838 ॥
उघाड्यो चित्रकोट गढ़, सांमा आया रांण।
मलिया वादळ रतन सी, करें बषाण खुमाण ॥2839 ॥
सामेळो आया सकल, घुरिया जेत निसांण।
बधायो गज मोतीयां, गुनियन करें वषाण ॥2840 ॥

॥चोपई ॥

महा महोछव मांहे लियो, अरध राज वादळ ने दियो।
पदमणि नार लिया वारणा, राष्या पण अम दंपति तणा ॥2841 ॥
इण पर आव्यो महिल मझार, बंदीजन बोले जयकार।
आवी लागो माता पाय, मात आसीस दिइ असीस सवाय ॥2842 ॥
निज नारी ओढ़ी नवी घाट, समि शृंगार कर तिलक ललाट।
अरघ अमोषो देई करी, मोती थाळ भरी संचरी ॥2843 ॥
कीधा विविध वधावा घणा, कुसलें षेमें आयां तणा।
तव गोरिळ री अस्त्री कहें, काको किण विध रण में रहे ॥2844 ॥
कहो किसी पर वाह्या हाथ, केता मार्‌या आलम साथ।
वादळ बोलें माता सुणो, किसु वषांण काकाजी तणो ॥2845 ॥
असपति पिण पग पाछा दिया, जेत तणा वाजा वाजिया।
वीछाया सब षांन निबाब, के ओसीसें के पयताब ॥2846 ॥
ऊपर गोरो भिड पोढियो, अंबर सुजस तणो ओढियो।
तन विषरायो तिल (तिल) होय, मूंछां मरट न मिटियो तोह ॥2847 ॥
कुळ उजवाळ्यो गोरें आज, सुहडां सींघ चढ़ावि राज।
रिण षेती गोरे भोगवी, मैं तो सिलो कियो पूठ थी ॥2848 ॥
घटा वींदणी गोरे वरी, बांधें मोड महा रिण करी।
में तो जांनी थका झुंबिया, विरुद भुजांबळ गोरळ लिया ॥2849 ॥

॥कुंडळ्ये ॥

गोरल त्रिय इम ऊचरें, सुण वादळ समरत्य।
पिउ मुझ रिण में झूझूतें, किम करि बाह्या हत्थ ॥
किम करि बाह्या हत्थ भरि सुहड पिछाड्या।

भांगा हें गेघट्ट, जाए नेजें असि चाढ्या।
गिलिया षांन निबाब, सीस असपति झोरिळ।
कहें बादल सुण मात, रिण ही इम झूझिया गोरिळ॥2850॥

॥**चोपई**॥

इम सुणि ने कांमनी तेह, विकसित वदन हुई ससनेह।
रोम रोम सूरिम ऊछळी, मुळकी महिला बोलें वळी॥2851॥
सांभळ बेटा हिवें वादळा, ठाकुर दोहिला हुवें एकला।
पछें पडें छें छेटी घणी, रीस करेसी मांहरो धणी॥2852॥
वहिलो होय म लावो वार, भेळा होय काकी भरतार।
एम सुणी वादल हरषियो, धन धन मात तुमारो हियो॥2853॥
दांन पुन्य तव बहुळा करी, सृंगार चढ़ी भळ तुरी।
श्रीफळ लेई हाथें धरी, जे जे राम कही नीसरी॥2854॥
ढोल घुरें गुंजे चीतोड, बांध्यो सुजस तणो सिरमोड।
इण पर आषा उछाळती, आवी षेतें रिण मलपती॥2855॥
पूजी गवरी करी सनान, पहिरी धवळ वस्त्र परिधान।
षमा षमा कहें धन भरतार, रिण समंद हिलोलणहार॥2856॥
कठ मंदिर पिय षोळें धरी, अगनि सरण कीधो सुंदरी।
पति पासें जई पोहती जिसें, अरध सिंघासण दीधो तिसें॥2857॥
अमरापुर वसिया ऊछाह, जय जयकार हुओ जग मांह।
चंद सूरज बे कीधा साष, गढ़, चीतोड दल्ली दल साष॥2858॥
करी मृतक देही संस्कार, आयो वादळ निज घरवार।
रजपूतां ए रीत सदाइ, मरण मंगळ हरषित थाइ॥2859॥

॥**सोरठा**॥

रिण रहचिया म रोय, रोए रण भांजे गया।
मरणे मंगल होय, इण घर आगां ही लगें॥2860॥

॥**चोपई**॥

विरूद बोलावें वादल घणी, सांम सनाह सुहडाई तणी।
इसो न को वलि हूओ सूर, कमधज वंश चढ़ायो नूर॥2861॥
पदमणि राष राण राखियो, गढ़रो भार भुजें जालियो।
रिण भिडतां राषावी रेह, नमो नमो वादळ गुण गेह॥2862॥

॥**कवित्त**॥

जय वादल जयवंत, विरुद वादल अरि गंजण।

संकट सामि सनाह, भिडें पतिसाहां भंजण।
मलिउ गयंदा मांण, हण्या हाथी मयमत्तह।
साम बंद छोड़णो, दियण वहिनी अहिवत्तह।
पदमणी नार श्री मुष कहें, इस्यो अवर न कोई हुअ।
आरती उतारें वर तणी, जे वादळ जेंवंत तुह॥2863॥
कहें मात बादळा, भलें मुझ उअर उपन्नो।
कुल दीपक कुल तिलक, रंक घर रयण संपन्नो।
ग्रहि मोषण पतिसाह, रूक वळि गंजण अरीदळ।
जेंत हत्थ जगजेठ, भुज बलिहार भुजांबळ।
मुष मूंछ तुझ कुळ लज्जा तुंही, भारी छळ कीधो भडां।
चीतोड मोड बांध्यो सिरें, दल्लीपति चाढ़े तडां॥2864॥
रांम तणे भिड्या (जिम) हणुमांन, तिम वादळ रतनसी राण।
पदमणि सत सीता सारिषी, वादल भिड़ लंघा आरषी॥2865॥
सेवा कीधी अपछर तणी, तिण सोभा वाधी घण घणी।
करी दिषावें इसीक कोय, अवरां सुहडां आदर होय॥2866॥
गोरा वादळ नी ए कथा, कही सुणी (ने) परंपर यथा।
सांभळतां मन वंछित फळें, राज रिद्ध लछमी बहु मिलें॥2867॥
सांमधरम सापुरसां होय, सील दृढ कुळवंती जोय।
हींदू ध्रम (छें)सत परिमाण, वाज्या सुज (स), तणा नीसाण॥2868॥
इति श्री चित्रकोटाधिपति बापा खुमाणान्वये राणा रतनसेन पदमणी गोरा बादल संबंध किंचित् पूर्वोक्तं किंचित ग्रंथाधिकारेण पं. दोलतविजय ग. विरचितियां (अ)धिकार संपूर्णम्॥

इति श्री षष्ठ खंड सम्पूर्णम्॥

‘खुम्माणरासो’ हिंदी कथा रूपांतर
(पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण)

चित्तौड़ में महान् गहलोत राजा रत्नसेन का राज्य था। छत्तीस शाखाओं के राजपूत उसकी सेवा में थे। एक दिन भोजन करने के दौरान प्रेमपूर्ण बातें करते हुए रत्नसेन ने पटरानी से कहा कि– ‘‘तुम्हारे हाथ से बनाए हुए भोजन में कोई स्वाद नहीं है। तुम्हे भोजन बनाना नहीं आता।’’ रानी ने उत्तर दिया कि– ‘‘मैं भोजन बनाना नहीं जानती, तो आप सिंघल की पद्मिनी से विवाह कर लीजिए।’’ राजा को यह बात चुभ गई। वह नाराज़ होकर वहाँ से निकलकर दुर्ग से नीचे उतर गया। राजा अपने एक सेवक को लेकर घोड़े पर चढ़ा। सेवक ने पूछा कि– ‘‘हम कहाँ जा रहे हैं, तो उसने उतर दिया कि– ‘‘हम सिंघल देश जाएँगे और मैं वहाँ पद्मिनी से विवाह करूँगा।’’ राजा ने सिंघल देश का रास्ता जानने वाले एक भाट को भी अपने साथ ले लिया। राजा समुद्र के किनारे पहुँचा, जहाँ उसकी भेंट एक पराक्रमी और सिद्ध योगी आयस से हुई। योगी ने राजा से पूछा कि– ‘‘हे रत्नसेन! आप यहाँ किस निमित्त आए हैं?’’ राजा ने विनयपूर्वक कहा कि– ‘‘मैं पद्मिनी से विवाह करने जा रहा हूँ। आप मुझे सिंघल द्वीप पहुँचा दें।’’ आयस ने उन दोनों को अपनी हथेलियों पर चढ़ाकर सिंघल द्वीप छोड़ दिया। (2435–2446)

सिंघल द्वीप के राजा की एक बहिन पद्मिनी जाति की स्त्री थी। उसने प्रण ले रखा था कि जो उसे चौपड़ के खेल में पराजित करेगा, वह उसी से विवाह करेगी। पद्मिनी रत्नसेन से हार गई। सिंघल के राजा ने पद्मिनी का विवाह रत्नसेन से कर दिया। राजा ने उसको दहेज में प्रभूत मात्रा में धन-संपदा और वस्त्र दिए। लंबे समय तक ससुराल में रहने के बाद रत्नसेन पद्मिनी सहित वहाँ से प्रस्थान कर चित्तौड़गढ़ पहुँचा। वह उत्साहित था। उसने पटरानी से कहा कि– ‘‘मैंने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार पद्मिनी से विवाह कर लिया है।’’ वह पद्मिनी के साथ विलासमग्न रहने लगा। (2447–2452)

एक दिन जब रत्नसेन और पद्मिनी, दोनों विलासरत थे, तभी राघवचेतन वहाँ आया। उसने विलासरत पद्मिनी का रूप-सौंदर्य देख लिया। राजा इससे कुपित हुआ। उसने निश्चय किया कि इसने अपनी नज़र से पद्मिनी देख ली है, इसलिए इसकी आँखें निकलवा दी जाए। राघव बड़ी मुश्किल से अपने प्राण बचाकर वहाँ से भागा। अपने परिजनों को लेकर वह दुर्ग से उतरकर दिल्ली पहुँच गया। राघव शास्त्र वाचन करता था और विद्वान् था। उसकी कीर्ति दिल्ली में फैल गई। बादशाह ने राघव को बुलाया और उसे कई तरह से पुरस्कृत किया। राघव ने बादशाह को आशीर्वाद दिया।

राघव बादशाह के पास रहने लगा। उस दुष्ट ने प्रतिशोध लेने का विचार कर यह निश्चय किया कि ''मैं बादशाह को आक्रमण करने के लिए चित्तौड़ ले जाऊँगा, और उससे रत्नसेन का वध करवाऊँगा।'' (2452-2458)

राघव का एक भाट मित्र था। उसने उसको अपनी मंशा बताई। एक दिन बादशाह हंस का एक पंख हाथ में लेकर दरबार में बैठा था। उसने कहा कि- ''दोस्तो! इस पंख से प्रिय और दुर्लभ इस संसार में और कुछ नहीं है।'' राघव ने कहा कि- ''हुज़ूर! इससे प्रिय, कोमल और सुन्दर तो पद्मिनी जाति की स्त्री है।'' बादशाह ने कहा कि- ''यदि पद्मिनी जाति की कोई स्त्री है, तो मुझे उसके संबंध में बताओ और मेरे अंत:पुर में कोई पद्मिनी स्त्री है, तो पता कर मेरे सम्मुख प्रस्तुत करो।'' बादशाह ने एक नाज़िर (अंत:पुर की देख-रेख करनेवाला) साथ भेजा। उसके साथ राघव ने सभी स्त्रियों की जाँच की। उनमें हस्तिनी, शंखिनी और चित्रिणी स्त्रियाँ तो थीं, पर पद्मिनी कोई नहीं थी। बादशाह ने कहा कि- ''पद्मिनी कहाँ हैं'', तो राघव ने कहा कि- ''वह सिंघल द्वीप में है।'' बादशाह ने कहा कि- ''वह जहाँ भी होगी, मैं उसको ढूँढ़कर अपने घर लाऊँगा।'' बादशाह घोड़े पर सवार होकर सत्ताईस लाख सैनिकों के साथ समुद्र किनारे आया। उसने देखा कि सामने अथाह समुद्र है, जिसको कोई मनुष्य पार नहीं कर सकता। उसने अपने योद्धाओं को समुद्र पार करने के लिए लगाया, लेकिन वे डूब गए। बादशाह ने राघव से कहा कि- ''तुमने सेना का नाश करवा दिया। अब बताओ, पद्मिनी और कहाँ है?'' राघव ने कहा कि- ''चित्तौड़ के दुर्ग में एक पद्मिनी है, पर उसको पाना शेषनाग से उसकी मणि प्राप्त करने जितना मुश्किल है। रत्नसेन बड़ा विकट और पराक्रमी योद्धा है।'' बादशाह ने कहा कि- ''हिंदू राजा का क्या भय? मैं चित्तौड़ पर आक्रमण करूँगा और पद्मिनी प्राप्त कर लेने के बाद ही दिल्ली का सुल्तान कहलाऊँगा।'' (2459-2470)

बादशाह ने राघव से कहा कि- ''तुम मुझे पद्मिनी स्त्री के लक्षण बताओ।'' राघव ने कहा कि- ''स्त्रियाँ चार प्रकार की कही गई हैं। इसमें से तीन प्रकार की नायिकाएँ सबके घरों में मिल जाती हैं, लेकिन पद्मिनी सौभाग्य से ही मिलती है।'' इसके बाद उसने विस्तार से पद्मिनी स्त्री के लक्षणों का वर्णन किया। पद्मिनी स्त्री के लक्षण सुनकर बादशाह ने कहा कि- ''मैं अब अपने पौरुष के बल पर पद्मिनी प्राप्त करूँगा।'' उसने दूत भेजकर अपने मुग़ल और पठान नवाबों की एकत्र किया और सेना सहित चित्तौड़ के लिए प्रस्थान किया। पृथ्वी काँप उठी और शेषनाग विचलित हो गया। यह जानकर कि अलाउद्दीन ने दुर्ग की तलहटी में शिविर लगा दिया है, रत्नसेन भी क्रुद्ध हो उठा। उसने भी अपने सभी वीर योद्धाओं को बुलाया। रत्नसेन ने कहा कि- ''बादशाह हम राजपूतों का मेहमान है। हम तलवारों, तोप के

गोलों और अस्त्र-शस्त्रों से उसका सम्मान करेंगे।'' रत्नसेन और अलाउद्दीन के बीच भीषण युद्ध हुआ। बादशाह का वश नहीं चल रहा था। रत्नसेन उस पर हावी था। कई मुग़ल-पठान सैनिक मारे गए थे। बादशाह ने रत्नसेन को छलपूर्वक पकड़ने का षड्यंत्र रचा। (2471-2496)

बादशाह ने अपना एक प्रधान (प्रतिनिधि) को रत्नसेन के पास भेजा। प्रधान ने रत्नसेन से कहा कि- ''बादशाह केवल पद्मिनी देखकर उसके हाथ से भोजन करना चाहता है। वह चाहता है कि आप बादशाह के सम्मुख नतमस्तक हो जाएँ और उसको क़िला दिखा दें। यदि यह मंजूर हो, तो वह इसके बाद दिल्ली चला जाएगा।'' प्रधान ने यह भी कहा कि- ''बादशाह ने शास्त्र और कुरान से पता किया है कि वह और आप पूर्व जन्म में भाई थे। पवित्र कार्यों के कारण आपका जन्म हिंदू कुल में हुआ है और अपवित्र कार्यों के कारण उनका जन्म यवन कुल में हुआ है।'' रत्नसेन ने भी अपने प्रधान को बादशाह के पास भेजा। बादशाह ने वचन दिया कि आपके और हमारे बीच रहमान है। रत्नसेन के मन में कोई प्रपंच नहीं था, जबकि बादशाह का मन छद्म और द्वेष से भरा हुआ था। घरभेदू के बिना घर ख़त्म नहीं होता। राघव व्यास घरभेदू था। (2497-2509)

रत्नसेन के निमंत्रण पर तीस हज़ार घुड़सवार, ख़ान और नवाबों के साथ बादशाह ने साथ दुर्ग में प्रवेश किया। नगाड़ों पर प्रहार होने लगे। नगरवासियों में हड़कंप मच गया। रत्नसेन ने अपने सैनिकों को सुरक्षा में नियुक्त कर दिया। बादशाह ने रत्ससेन से कहा कि- ''आप सेना क्यों लगा रहे हैं, मैं लड़ने के लिए नहीं आया हूँ और मेरे मन मे कोई छल-प्रपंच नहीं है।'' रत्नसेन ने कहा कि- ''धोखा देकर भी तुम्हे कुछ नहीं मिलेगा। हमारी तलवारों की आँधी चलेगी, तो तुम्हारी सेना बादलों के समान फट जाएगी।'' बादशाह ने कहा कि- ''कम हो या ज़्यादा, घर आए अतिथियों का सम्मान करो और उनका भार वहन कर लो।'' रत्नसेन ने कहा कि- ''सुकाल के कारण अन्न का हमारे यहाँ अभाव नहीं है।'' दोनों ने एक-दूसरे से इस तरह की उपालंभपूर्ण बातें कहीं और फिर दोनों ने हाथ मिलाए और हँस पड़े। रत्नसेन का क्रोध शांत हुआ। (2510-2520)

बादशाह दरबार लगाकर बैठा था। सभी राजा उसके सामने खड़े हुए थे और चारण प्रशस्ति कर रहे थे। रत्नसेन भोजन प्रबंध के लिए महल में गया और उसने पद्मिनी से कहा कि- ''भोजन से बादशाह का ऐसा आतिथ्य करो कि वह प्रसन्न हो जाए।'' पद्मिनी ने बादशाह को भोजन परोसने से मना कर दिया। पद्मिनी ने कहा कि ''षड्रस व्यंजन मेरी दासी परोसेगी।'' पद्मिनी के पास अत्यंत सुंदर और चतुर बीस हज़ार दासियाँ थीं। उन्होंने ऊपर छाया के लिए तनी हुई चाँदनी के नीचे आसन

लगाए। छड़ीदार, प्यादे और द्वारपाल जगह-जगह खड़े थे। सभी महलों को सजाया गया था। जब भोजन बन गया, तो बादशाह को बुलाया गया। बादशाह ने सात मंजिल वाले महलों को देखा। महल देवताओं के विमान की तरह थे। बादशाह अपने ख़ान और नवाबों के साथ भोजन करने बैठा। गौरवर्णी पद्मिनी दासियाँ वहाँ आकर अपना रूप-सौंदर्य प्रदर्शित कर रही थीं। सभी तरह के व्यंजन परोसे गए। बादशाह आश्चर्यचकित था। वह दासियों को देखकर पूछता था कि- ''क्या ये सभी पद्मिनियाँ हैं? हमको तो अल्लाह ने एक भी चन्द्रमुखी नहीं दी।'' (2521-2533)

राघव व्यास ने बादशाह को कहा कि- ''पद्मिनी स्त्री को कोई देख नहीं सकता। यदि कोई देख ले, तो वह विक्षिप्त हो जाता है।'' बादशाह और राघव व्यास जब बातचीत कर रहे थे, तब पद्मिनी के मन में विचार आया कि बादशाह कैसा है। तभी एक दासी ने आकर कहा की वह विचारमग्न झरोखे के नीचे बैठा है। वह गजगामिनी उसका मुँह देखने के लिए झरोखे पर आई। जैसे ही उसने जाली से झाँककर देखा, उसी समय राघव व्यास ने बादशाह से कहा कि- ''पद्मिनी देखो!'' बादशाह ने ऊपर देखा, तो वहाँ उसे प्रत्यक्ष पद्मिनी दिखाई पड़ी। बादशाह ने राघव व्यास से कहा कि- ''मेरे पास पद्मिनी नहीं है, तो मेरी बादशाहत का क्या महत्त्व है। मैं उसके बिना मदविहिन हाथी और शक्तिविहीन सिंह के समान हूँ। मैं पद्मिनी के बिना दिल्ली नहीं जाऊँगा।'' (2534-2542)

राघव व्यास ने कहा कि- ''आप धैर्य रखें। यदि रत्नसेन आपके हाथ आ जाए, तो पद्मिनी आपको मिल ही जाएगी।'' दोनों ने मंत्रणा कर षड्यंत्र किया। सभी लोगों ने भोजन कर लिया, तो बादशाह रत्नसेन के गले लगकर बोला कि- ''आपने हमारा अच्छा आतिथ्य किया और सोने-चांदी से जड़े वस्त्र-आभूषण और हाथी घोड़े आदि आपने हमको बहुत दिए। अब आप हमको क़िला दिखा दो।'' रत्नसेन ने बादशाह को अभेद्य क़िला दिखाया। बादशाह ने रत्नसेन से कहा कि- ''तुम हमारा दायाँ हाथ हो। कोई काम-काज हो, तो बताना।'' रत्नसेन बादशाह को भेंट आदि देकर वहीं रुक गया, लेकिन बादशाह ने कहा कि- ''कुछ दूर हमारे साथ चलिए, हमें आपका साथ अच्छा लगता है।'' रत्नसेन ऐसा कहने पर बादशाह के साथ क़िले से बाहर निकल गया। रत्नसेन के मन में छल-कपट की कोई आशंका नहीं थी, जबकि बादशाह के मन में द्वेष का भाव भरा हुआ था। राघव व्यास ने बादशाह को कहा कि- ''यही मौक़ा है। बाद में मत कहना कि मैंने कहा नहीं था।'' बादशाह ने अपने घुड़सवारों को बुलाया। वे परस्पर मिले और मंत्रणा कर उन्होंने रत्नसेन को पकड़ लिया। बात बिगड़ गई और स्थिति विषम हो गई। बादशाह ने रत्नसेन से कहा कि- ''तुमने हमारा आतिथ्य किया, अब तुम हमारे अतिथि हो। तुम पद्मिनी मुझे दे दो, तो मैं तुम्हें छोड़

दूँगा।'' रत्नसेन के पैरों में बेड़ियाँ डाल दी गईं और उस पर जुल्म किया गया। रत्नसेन शक्तिशाली था, लेकिन पकड़े जाने से वह निर्बल हो गया। (2543-2561)

दुर्ग में सबने यह बात सुनी। नगर-बाज़ार में यह बात फैल गई कि रत्नसेन पकड़ा गया है। लोग कहने लगे कि यह रत्नसेन की कुमति थी कि उसने सुल्तान को दुर्ग में बुलाया और दुर्ग से नीचे उतरकर उसको पहुँचाने गया। राजा बादशाह की क़ैद में है। राक्षस का क्या विश्वास? वह पद्मिनी को भी पकड़ लेगा और दुर्ग पर भी अधिकार करेगा। युवराज जसवंतसिंह के आमंत्रण पर सभी सामंत दरबार में एकत्र हुए। कुछ ने सुझाव दिया कि हमें क़िले में रहकर लड़ना चाहिए, जबकि कुछ का विचार था कि हमें क़िले से बाहर निकलकर बादशाह की फ़ौज पर आक्रमण करना चाहिए। किसी एक ने कहा कि हमारा कोई नायक नहीं है और उसके बिना हमारी सेना मृतप्राय है। विचार-विमर्श के दौरान की बादशाह का एक वज़ीर आया। उसको सीढ़ी लगाकर क़िले के अंदर दाख़िल किया गया। वज़ीर ने कहा कि- ''बादशाह का कहना है कि पद्मिनी दे दो, तो हम क़िले के स्वामी को मुक्त कर देंगे।'' सभी सामंत दुविधा में पड़ गए कि यदि हम पद्मिनी देते हैं, तो हमारी राजपूती मर्यादा नहीं रहेगी और नहीं देते हैं, तो बात बिगड़ जाएगी। युवराज जसवंतसिंह ने कहा कि- ''हमारा राजा शत्रु के अधीन है। हमें पद्मिनी दे देनी चाहिए, जिससे बादशाह दिल्ली चला जाएगा और रत्नसेन दुर्ग में आकर पुन: अपने सिंहासन पर बैठकर चँवर ढुलाएगा। शिला के नीचे आए हाथ को छल और युक्ति से निकालना तो पड़ेगा ही।'' सभी योद्धाओं ने यह निश्चय किया कि सुबह होते ही पद्मिनी बादशाह को दे देंगे। यह विचार कर वे उठे, लेकिन पद्मिनी ने ये सारी बातें सुन लीं। (2562-2576)

पद्मिनी ने सखी से कहा कि- ''कुमार ने मुझे देकर धरा, राज्य और राणा का उद्धार करने का निर्णय किया हैं। मैं सिंघल मैं पैदा हुई राजपुत्री हूँ और रत्नसेन की पटरानी होकर यहाँ आई हूँ। मैं कुलीन स्त्री हूँ और उपाधियाँ धारण करूँगी, तो मेरे बादशाह के अधीन होने पर हिंदुवा कुल पर लांछन लगेगा।'' पद्मिनी ने भगवान राम से विनय की कि- ''आपने सभी रक्षा की है, अब मेरी भी करो, मैं आपकी शरण में हूँ।'' उसने कहा कि- ''जंगल में अकेले पक्षी को पकड़ने के लिए सौ शिकारी पड़े हुए हैं। हे भगवान! आप से आशा है कि इस बार मेरी रक्षा करें।'' उसने कहा कि- ''सभी योद्धा शक्तिविहीन हो गए हैं। मुझे अबला की लज्जा अब आप के हाथ में है।'' चित्तौड़गढ़ के दुर्ग में रावत गोरा रहता था, जिसकी भुजाओं में क्षत्रियत्व का यश बहता था। उसका भतीजा बादल भी पराक्रमी था। दोनों राजनीति और समरनीति में और राजाओं से बढ़-चढ़ कर थे। रत्नसेन का उन पर अनुग्रह नहीं था- उन्हें चाकरी का वेतन नहीं मिलता था और उनके पास कोई जागीर भी

नहीं थी। दोनों दुर्ग से निकलकर जाना चाहते थे, पर बादशाह के घेरे के कारण रुक गए थे। यदि दोनों चले गए होते, तो क्षत्रियत्व पर कलंक लग जाता। पद्मिनी ने विचार किया कि गोरा और बादल, दोनों गुणी हैं, मैं उनसे जाकर विनय करूँगी, क्योंकि दूसरों में तो में रत्ती भर भी गुण नहीं हैं। यह विचार कर पद्मिनी पालकी में बैठी और सखियों सहित गोरा के दरबार में आयी। गोरा ने सामने आकर पद्मिनी का स्वागत किया। पद्मिनी ने गोरा से कहा कि- ''पृथ्वी पर क्षत्रिय धर्म क्षीण हो गया। सभी ने निश्चय किया है कि मुझे देकर राजा को ले लेंगे। उन्होंने मुझे मुसलमान के घर जाने के लिए विदा कर दिया है। अब तुम मुझे किस तरह विदा करोगे, बता दो?'' गोरा ने कहा कि- ''सब अच्छा होगा। आप चलकर मेरे घर आई हैं, तो अब मुसलमान के घर नहीं जाएँगी।'' गोरा ने आगे कहा कि- ''मेरे बड़े भाई गाजण का पुत्र बादल भी बड़ा शक्तिशाली है, उससे भी इस विषय में पूछा जाए।'' दोनों बादल के घर आए। पद्मिनी को देखकर बादल बहुत प्रसन्न हुआ। पद्मिनी ने बादल से कहा कि- ''मैं अपना शील खंडित नहीं होने दूँगी, चाहे ब्रह्मांड उलट जाए। आप शत्रुदल का विनाश करें, उस पर आक्रमण करें। दुर्ग सुरक्षित रहे, रत्नसेन छूट जाए और मैं भी बच जाऊँ।'' बादल ने गोरा ने कहा कि- ''यहाँ कायरों का क्या काम है? सभी योद्धा अपने घरों में रहें, यहाँ हमारा नाम रहेगा।'' बादल ने पद्मिनी से कहा कि- ''आप चिंतित न हों, मैं अकेला ही बादशाह को मौत के घाट उतारकर शत्रुओं को तलवार की नोंक में पिरो दूँगा। आप घर जाएँ। बादल के वचन मिथ्या नहीं होंगे।'' (2577-2619)

पद्मिनी के प्रस्थान करते ही बादल की माता वहाँ आ गई। वह चिंतित थी। उसने बादल से कहा कि- ''तुमने यह बखेड़ा क्यों किया। उनके पास जागीरों का उपयोग करने वाले योद्धा बहुत हैं। तुम्हे गृहस्थी चलाना नहीं आता, तुम युद्ध कैसे करोगे।'' बादल ने माता से कहा कि- ''मैं अब बालक नहीं हूँ। मैंने युद्ध का विचार इसलिए किया है कि पहले तो हमारा स्वामी संकट में है और दूसरे राजकुमार जसवंत अभी बालक है और उसमें शक्ति नहीं है।'' अपने पुत्र के निश्चय और वीरता को देखकर वह आँसू बहाती हुई महल में चली गई। उसने सभी बातें अपनी बहू को बताकर कहा कि- ''वह मेरी सीख नहीं मानता, लेकिन प्रेम के कारण तुमसे भेंटकर रुक जाएगा।'' वह शृंगार कर अपने पति के पास पहुँची और कहा कि- ''बादशाह क्रूर और शक्तिशाली है। आप शय्या में अपनी पत्नी को तो पराजित नहीं कर पाते, फिर भला बादशाह को कैसे पराजित करेंगे।'' बादल ने कहा कि- ''जो अपने शरीर से मोह रखता है, वह वीर और साहसी नहीं हो सकता।'' तब पत्नी ने हाथ जोड़कर कहा कि- ''आपके समान दूसरा कोई नहीं है। संसार आपको अच्छा कहेगा और

स्वामिधर्म जीवित रहेगा।'' पत्नी ने शस्त्र लाकर बादल को दिए। बादल ने विनयपूर्वक अपनी माता की चरण वंदना की और प्रसन्नतापूर्वक घोड़े पर चढ़कर चल पड़ा। (2620–2660)

बादल ने गोरा के पास पहुँचकर कहा कि– ''मैं बादशाह और कुँवर जसवंत को देखता हूँ।'' गोरा ने साथ चलने का आग्रह किया, लेकिन बादल ने कहा कि– ''अभी मैं केवल पता लगाने जा रहा हूँ।'' बादल वहाँ पहुँचा, जहाँ सभी योद्धा एकत्र थे। सभी ने खड़े होकर उसका सम्मान किया और कहा कि – ''बादशाह हठपूर्वक डटा हुआ है। यदि हम पद्मिनी उसको दे दें, तो हमारा कष्ट दूर हो सकता है।'' बादल ने कहा कि– ''हम पद्मिनी नहीं देंगे और दुर्गपति रत्नसेन को भी मुक्त करायेंगे। ऐसा करते हुए हम मर भी जाएँ, तो हमारी कुल मर्यादा और कीर्ति सुरक्षित रहेगी।'' उसने कहा कि– ''मैं बादशाह के शिविर में जाता हूँ और वहाँ की थाह लेकर आता हूँ। बादशाह ने उसको आते हुए देखा, तो दूत भेजकर उसके आने का प्रयोजन पूछा। बादल ने कहा कि– ''मैं प्रात:काल ही पद्मिनी लाकर बादशाह को सौंप दूँगा।'' बादशाह यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सम्मान के साथ बादल को अंदर बुलाकर बैठाया। बादल ने बादशाह से कहा कि– ''स्वयं पद्मिनी ने मुझे अपना प्रतिनिधि बनाकर आपके पास भेजा है। पद्मिनी ने भोजन करते समय उस दिन आपको जाली में से देखा था। वह सोचती है कि आप कामदेव हैं। वह विरह में व्याकुल बैठी रहती है और रात–दिन आपका सपना देखती है। वह चाहती है कि आप उसे विरह से छुटकारा दिलाएँ। उसने मुझे आप को देने के लिए प्रेमपत्र दिया है।'' बादशाह ने प्रेमपत्र हाथ में लेकर उत्साह से पढ़ा। पद्मिनी ने लिखा कि आठों पहर मुझे आपकी स्मृति रहती है। आपके दर्शनों के लिए मेरे प्राण होठों पर आ गए हैं। बादल के मुख से पद्मिनी के अपने प्रति प्रेम का विवरण सुनकर बादशाह प्रभावित हुआ। उसने बादल से कहा कि– ''तुम मेरे अतिथि हो और तुमने मेरे हृदय में जगह बना ली है। तुम अपने सामंतों को पद्मिनी देने के लिए अच्छी तरह समझाना। मैं तुम्हे जागीर दूँगा और धरती का स्वामी बना दूँगा।'' बादशाह ने बादल को शिरोपाव, एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ और हाथी–घोड़े दिए। बादशाह ने बादल को पद्मिनी के लिए रुक्का लिखकर देना चाहा, लेकिन बादल ने कहा कि मैं आपका प्रेम मौखिक निवेदन कर दूँगा। (2661–2715)

हम्मालों के सिर पर स्वर्ण मुद्राओं की गाँठें और हिनहिनाते घोड़ों के समूह के साथ बादल जब दुर्ग में पहुँचा, तो सभी उसको खोज–खोजकर बातें पूछने लगे। गोरा भी प्रसन्न हुआ कि अब बादल कुछ कर लेगा। बादल ने बैठकर मंत्रणा की और तय किया कि बीस हज़ार पालकियाँ इस तरह तैयार करो कि उनका भेद किसी

को न मिले। पालकियों को एक-दूसरे के पीछे रखो। हम कहेंगे कि इनमें पद्मिनी की सहेलियाँ हैं। बीच में पद्मिनी की पालकी की विशेष साज-सज्जा हो और उसके ऊपर भ्रमर गुंजार करते हुए दिखे। पालकियों को दुर्ग के दरवाज़े से लगाकर सेना के नज़दीक, अंतिम छोर तक फैलाओ। मैं राजा को ले आऊँगा और उसे महल में पहुँचाकर हम भीषण युद्ध करेंगे। सभी योद्धाओं ने बादल की बात मान ली। व्यवस्था करते-करते सुबह हो गई। सेना को सारी योजना समझाकर बादल घोड़े पर सवार होकर बादशाह के पास पहुँचा। उसने बादशाह से कहा कि- ''बहुल मुश्किल से बात बनी है। सेना को समझा-बुझाकर मैं पद्मिनी को दुर्ग के पिछवाड़े ले आया हूँ। सामंतों का विचार है कि आप पद्मिनी को सम्मानपूर्वक रखें, धोखे और छल-छद्म से परहेज़ करें और अपनी सेना को लौटा दें, तो मैं पद्मिनी ले आऊँ। यदि आप भयभीत हैं, तो बीस हज़ार सैनिक अपने पास रख लें।'' पद्मिनी के प्रेम में पागल बादशाह ने कहा कि- ''मैं किसी से भयभीत नहीं हूँ।'' उसने सेना को वहाँ से कूच करने की आज्ञा दे दी। फ़ौज प्रसन्न हुई और बादशाह के सभी पराक्रमी योद्धा वहाँ से प्रस्थान कर गए। बादशाह ने बादल से कहा कि- ''मैंने तुम्हारे कहे अनुसार काम कर दिया है, अब तुम पद्मिनी लेकर आओ।'' (2716-2743)

बादशाह से उपहार आदि लेकर बादल दुर्ग में आया। उसने सबको कहा कि- ''मेरे निर्देशों का अच्छी तरह पालन करना और उतावले मत होना।'' यह कहकर वह पालकियों के पीछे चला। स्वामी से विद्रोह के कारण राघव व्यास की बुद्धि भ्रष्ट हो गई। उसे इस षड्यंत्र पर तनिक भी संदेह नहीं हुआ। बादल ने बादशाह से कहा कि- ''पद्मिनी की इच्छा है कि आप उसे सौभाग्य प्रदान करें और उस पर अधिक प्रेम रखें।'' बादल घोड़े पर सवार होकर गया और उसने कुछ ही समय में पालकियाँ लाकर बादशाह के सम्मुख रख दीं। तब तक बादशाह की फ़ौज भी कूच कर बहुत दूर चली गई थी। युद्ध का समय होते ही बादल ने बादशाह से कहा कि- ''पद्मिनी चाहती है कि आप एक बार रत्नसेन को छोड़ दें, तो वह अपनी कुल-रीति के अनुसार दो-चार बातें कर लें।'' बादशाह ने रत्नसेन को मुक्त करने आदेश दे दिया। बादल जब रत्नसेन को लेने उसके शिविर में गया, तो रत्नसेन ने उसे धिक्कारा और कहा कि- ''पद्मिनी बादशाह को सौंपकर तुमने कुल को कलंकित कर दिया है।'' बादल ने उसको सारी बात समझाई। रत्नसेन ने जब पद्मिनी से मिलने के लिए पालकी में प्रवेश किया, तो उसे सब समझ में आया। बादल ने कहा कि- ''आप एक से दूसरी पालकी में होते हुए दुर्ग में पहुँचकर नगाड़े पर डंका बजवाना।'' दुर्ग में कुशलक्षेम के बाजे बजते ही योद्धा गर्जना कर बादशाह से बदला लेने के लिए बाहर निकल आए। एक से बढ़कर एक भीषण योद्धा दुर्ग से बाहर निकले। बादल उनका नेतृत्व

कर रहा था। योद्धा नंगी तलवारें लेकर शिविर में घुस गए। उन्होंने बादशाह से कहा कि- ''भाग मत, हम तुझे पद्मिनी दिखाते हैं।'' (2744-2780)

बादशाह ने कहा कि- ''बादल, तूने बुरा किया- तुमने साँकलों से बँधे हुए राजा को मुक्त कर दिया।'' उसने अपने योद्धाओं को ललकारा और किलकारी करते हुए दौड़ पड़ा। दोनों पक्षों में युद्ध होने लगा। धूल के गुबार ने वात्याचक्र की तरह सूर्य को घेर लिया। चारों ओर तीरों की वर्षा होने लगीं। युद्धोन्मत्त सैनिक मारो, मारो, चिल्ला रहे थे। बादशाह 'या ख़ुदा रहम कर' की आवाज़ लगा रहा था। गिद्ध मांस के टुकड़े लेकर उड़ते थे। वीरों के धड़ एक-दूसरे पर पड़े हुए थे। कई सामंत सिर कट जाने के बाद भी युद्ध कर रहे थे। बादशाह ने भी बादल की वीरता और युद्ध कौशल की सराहना की। उसने कहा कि ''तुम युद्ध कुशल और ज्ञानी योद्धा अंगद के अवतार हो।'' गोरा रावत ने बादशाह ने सम्मुख आकर तलवार से ऐसे प्रहार किया, मानो हनुमान ने अशोक वाटिका में पार्श्व से प्रवेश किया हो। वह अट्टहास करता हुआ शत्रुओं पर ऐसे वार करता था, जैसे काला नाग डस लेता है। वह हाथियों को कुचलता हुआ बादशाह पर प्रहार करने आया। बादशाह ने अपने प्राण बचाते हुए पाँव पीछे कर लिए। वह शस्त्र प्रहार करते हुए रणभूमि में वीर गति को प्राप्त हुआ। बादल ने बादशाह को पकड़ लिया। वह उसको पकड़कर छोड़ देता था और फिर पकड़कर खेल का आनंद लेता था, जैसे कोई बालक क्रीड़ा करता है। बादशाह ने बादल से कहा कि- ''तुमने धर्म और स्वामी की रक्षा की और पद्मिनी को भी सुरक्षित किया, अब मेरी भी इज़्ज़त रख लो।'' (2781-2829)

दुर्ग पर खड़े रत्नसेन ने भीषण युद्ध और गोरा और बादल के शक्तिशाली हाथों को देखा। पद्मिनी दुर्ग में खड़ी हुई आशीर्वाद दे रही थी कि- ''बादल, तुम करोड़ों वर्षों तक जीवित रहो।'' बादशाह अकेला वहाँ से चला गया और गोरा-बादल की युद्ध में विजय हुई। बादल ने बादशाही फ़ौज का ख़जाना लूट लिया। चित्तौड़ दुर्ग के द्वार खोल दिए गए। रत्नसिंह बादल के स्वागत के लिए सामने आया। उसने बादल की ख़ूब सराहना की। सभी एकत्र हुए, विजय का घोष हुआ और बादल का सम्मान कर उसे बधाई दी गई। बड़े उत्सव के साथ बादल को दुर्ग में प्रविष्ट करवाया गया। रत्नसेन ने अपना आधा राज्य उसको समर्पित किया। पद्मिनी ने उसकी बलैया ली और कहा कि- ''तुमने हम पति-पत्नी के सम्मान की रक्षा की।'' गोरा की पत्नी ने बादल से पूछा कि- ''तुम्हारे काका किस तरह खेत रहे।'' बादल ने बताया कि- ''गोरा के प्रहारों से आहत बादशाह पीछे हट गया। उसने बादशाह सहित सभी ख़ानों और नवाबों का संहार कर उनके शवों को धरती पर तकियों की तरह बिछा दिया।'' गोरा की पत्नी ने कहा कि- ''तुम्हारे काका स्वर्ग में अकेले हैं और वे मेरे लिए

व्याकुल हो रहे हैं। मैं उनसे मिलना चाहती हूँ, इसलिए विलंब मत करो।'' यह कहकर वह शृंगार कर घोड़े पर सवार हुई और हाथ में नारियल लेकर राम-राम उच्चारण करती हुई रणक्षेत्र में पहुँच गई। उसने स्नान किया और श्वेत वस्त्र धारणकर चिता में प्रवेश किया और फिर वह अपने पति का सिर अपनी गोद में लेकर अग्नि में समा गई। दिवंगत योद्धाओं का अग्नि संस्कार कर बादल अपने घर आया। राजपूतों में यह परंपरा है कि युद्ध में मृत्यु को मंगलकारी मान कर वे प्रसन्न होते हैं। पद्मिनी, रत्नसेन और दुर्ग की रक्षा करने वाले बादल को प्रणाम! बादल की माता ने कहा कि ''तुम कुलदीपक हो।'' बादल ने अप्सरा पद्मिनी की सेवा की, इसलिए उसका यश विस्तृत हुआ।

गोरा-बादल की यह कथा, परंपरा से जैसी कही और सुनी जाती है, सुनने पर मनवांछित फल, राज्य, सम्मान और धन-संपदा मिलती है। (2830-2868)

अध्याय – 8

चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा

पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण

रचना समय: अज्ञात, प्रतिलिपि: 1870 ई. आसपास

चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा ख्यात और वंशावली का मिलाजुला रूप है- इसमें मेवाड़ राजवंश की वंशावली भी है और शासको से संबंधित प्रसिद्ध घटनाओं का वृत्तांत भी है। *पाटनामा* की मूल पांडुलिपि गाँव बाड़ोदिया (मंदसौर-मध्यप्रदेश) के दलीचंद बडवा के पास है। मेवाड़ का पारंपरिक वंशावली लेखक परिवार टोकराँ (नीमच-मध्यप्रदेश) में रहता है, लेकिन उसके पास कोई पाटनामा नहीं है। संभावना यह है कि महाराणा शंभुसिंह के समय (1861-1874 ई.) में बाड़ोदिया गाँव के बड़वा परिवार ने इसकी प्रतिलिपि की होगी। यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित रचना है, इसलिए इस ग्रंथ की रचना और प्रतिलिपि कब हुई, यह ज्ञात नहीं है। *पाटनामा* में मेवाड़ के आरंभ से लगाकर महाराणा शंभू सिंह के समय तक का विवरण दर्ज़ है। सोलहवीं सदी के उत्तरार्ध से पहले तक के विवरण का स्रोत प्रचलित आख्यान और कथा-कहानियाँ हैं और इनको लेखकों ने अपनी कल्पना से रोचक रूप दिया है। इस वंशावली-ख्यात को 'पाटनामा' इसलिए कहा जाता है, क्योंकि यह पाटवी अर्थात् ज्येष्ठ और मूल ग्रंथ है, जो घर पर रहता है। वंशावली लेखक अपने यजमान के यहाँ एक हथबही लेकर जाता है और इसमें दर्ज़ विवरण को घर लौटकर पाटनामा में उतारता है।

चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा एक अद्‌भुत प्रकार की गद्य रचना है, जिसमें इतिहास, आख्यान और गल्प का असाधारण मिश्रण है। यहाँ अपने आख्यान कौशल से लेखक इतिहास को गल्प में बदलता है और सच्चाई बयान करने वाले की अपनी पारंपरिक पेशेवर पहचान के चलते गल्प को तिथियों, संख्याओं आदि के उल्लेख से इतिहास का रूप देता है। इतिहास, आख्यान और गल्प की एक-दूसरे में आवाजाही यहाँ इतनी

निरंतर और सघन है कि इसमें इनकी अलग पहचान संभव ही नहीं है। कुछ समय पहले हिंदी में भी यूरोप की नक़ल पर जादुई यथार्थवाद की शोशेबाज़ी शुरू हुई थी। किसी ने यह ध्यान ही नहीं दिया कि हमारे लोक में इसकी परंपरा सदियों से है। यह रचना झूठ को सच में बदलने के जादुई कथा कौशल का बहुत अच्छा उदाहरण है। ख़ास बात यह है कि यहाँ सब झूठ नहीं है- यहाँ कौशल यह है कि जहाँ सच उपलब्ध नहीं है, वहाँ लेखक झूठ को सच बनाकर सच साथ इस तरह मिलाता है कि यह सच की तरह ही लगता है। यह रचना लोक धारणाओं और विश्वासों का भंडार है। अकसर कथित 'आधुनिक' इतिहास में इनकी सजग अनदेखी होती है, लेकिन यह पारंपरिक इतिहास का ऐसा रूप है, जिसमें घटनाओं का लोक प्रचलित रूप मौजूद है। यह रचना प्रचलित आधुनिक अर्थ में 'इतिहास' नहीं है, लेकिन घटनाओं की तिथियों और संख्याओं अतिरिक्त जो लोक में बनता-बिगड़ता है, उसका यह जीवंत दस्तावेज़ है। इसमें आख्यान का ढंग लौकिक होने के कारण बहुत रोचक और बाँध लेने वाला है।

पाटनामा में समरसिंह (समरसी) के बाद सत्तारूढ़ रावल रत्नसेन और उसके पद्मिनी से विवाह और अलाउद्दीन ख़लजी से पद्मिनी के लिए युद्ध का बहुत विस्तृत और रोचक वृत्तांत है। *पाटनामा* के अनुसार रत्नसेन समरसिंह का सबसे छोटा पुत्र था, लेकिन उससे बड़े कुंभकर्ण की एक अँगुली कटने से देह खंडित थी और उससे दूसरा बड़ा करमसेन सतारूढ़ होने के योग्य नहीं था, इसलिए वह सत्तारूढ़ हुआ। इतिहासकार गौरीशंकर ओझा के अनुसार बाद में कुंभकर्ण से नेपाल राजवंश के शुरुआत हुई। *पाटनामा* के इस प्रकरण की कथा मोड़-पड़ाव और चरित्र अन्य देशज कथा-काव्यों से सर्वथा अलग हैं। गोरा और बादल की हत्या ख़ुद रत्नसिंह ने ही की, यह पाटनामा के अलावा और किसी भी रचना में नहीं है। इसी तरह इसमें राघवचेतन एक नहीं, दो व्यक्ति हैं। पारंपरिक वंशावली लेखक होने के कारण इसका रचनाकार अन्य देशज कथा-काव्यकारों की तुलना में स्थानिक संस्कृति और भूगोल का अच्छा जानकर है। वह मेवाड़ की वंशावली, इतिहास और परंपरा से भी अच्छी तरह अवगत है। ख़ास बात यह है कि उसके वर्णन में सच कहने का आग्रह बराबर है। *पाटनामा* को दो भागों में मनोहरसिंह राणावत के संपादन में पहली बार 2003 ई. नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ ने में प्रकाशित किया।

'चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा' मूल
(पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण)

बीक्रम संमत 1152 का ग्यारासे बावनां बरषे चेत सुदी ग्यारस 11 रवीवार के दन मघा नषत्र महे दन घड़ी आठ चड़तां कवर रतनसेणजी गादी बीराजीया। जणी बगत

महे कवरजी रतनसेणजी की उमर बरस सवा दोई की थी। सालीवाहन की साषी का संमत 1058 दससे अठारा के साल बीराजीया। कुलजुग का संमत 4197 अगतालीसे सत्याणु बरस कुलजुग का जातां।

माहारावल जी श्री रतनसेणजी के घरे पढ़ीयार रेण राजा की सुहागकवर जी के बेटा, दुजी चावड़ी पुवार चंदराई की सुरजकवर जी के बेटा राजोजी। आपरो नाम सीहड़देजी। तीजी चाहुवांण साचोरी जेतकवर जी के बेटा, चोथी सोलंषणी टोड़ारी सरूपकवर जी के बेटा समदसेणजी, पाचमी राठोड़ रणमालोतणी अमरकवर जी के बेटा सरवणजी, चठी गोड़ गेगराज की चाहुकवर जी के बेटा, सातमी चंदेल मोहबा की रतनकवर चाहड़राई ब्रह्मानंद परमालउत की जी के बेटा, आठमी सकरवार गंगदास की चंदकवर नोमी बालेछी चहुवांण नरबद की पीथकवर जी के बेटा, दसमी जादम जेमल की जाहज कवर जी के बेटा नरपतजी 3 हरभाणजी 4 बीजेपाल जी 5 गोपालजी 6 ग्यारमी तवर राणां सालसी की पदमकवर जी के बेटा ब्रह्मानंदजी 7 अगरचंदजी 8 रूघराईजी 9 समरथजी 10 बारमी पुवार धारातणी सुदरदेजी की अजनकवर जी के बेटा हरभांणजी 11 चंदरभाणजी 12 तेरमी सोलंषणी सांमकवर जी के बेटा राईसीजी 13 पोहपराईजी 14 चवदमी सोड़ी अजबकवर जी के बेटा नाहरसीजी 15 गंगराईजी 16 नरभेराई जी 17 रावल श्री रतनसेणजी की बीरबीरदावली को कवीत।

।।कवीत।।

गढपतीये चत्रकोट, जोट को ही मीट न लागे।
बेलष सहस पचास, बोललष द्रग तुरी आगे॥
पांच सहस गजराज, लाष सात ही पद चाले।
धनक बाण दस सहस, सोलासे बाजन झाले॥
सहस डोड़ नीसांण, दरक असी सहस दुवार।
नाल सहस बतीस, लघु दो मण मुष आहारे।
बीस सहस चढीया रहत, धसम से धरा पुरसांण दल।
रतनसेण रावल सो दल, सेर मेर नहीं थल पले।
कवीत गढ चत्रकोट की महमां भंडार की सोभा और साहुकारां की गणती।

।।कवीत।।

चत्रकोट कवलास, बात बसंतो बासंतो।
रतनसेण गहीलोत, रावल जीहां राज करंतो।
जणरे क्रोड़ी सहस पचास, पाचसे भोगल माता।
कही राजा राव मंडली, सधा रहे सेव करता॥

परधांन लोग बहवारीया, राजे रतनपुर नही दुषी।
छतीस पवण गढ़ पर बसे, लाज लषधीर कोही सहगासीषी
।।कवीत।।
लाष अेक सहुकार, सहस चोवीस घर ब्राह्मण।
सहस दस वाघात, सहस डोड ही करसण॥
सोला सहस घरू लोग, सहस सोला सीरदांरा।
ग्यारा सहस कमीणात, करे करायासत वारां
अेक लाष दस सहस ओर, छतीस पवण सुषीया रहे।
दोई लाष अठोतर सहस, दोई सत चत्रकोट महे॥3॥

तलेटी अर कला उपर छतीस ही पवण का घर गणतीवार दोई लाष अठोतर हजार दोहो से घर की बस्ती 278200। रावल श्री रतनसेणजी सोला ही प्रकार मंडलीक री नीती परमांणे राज करे छतीस ही पवण सुषीया रहे गढ़ चत्रकोट राजा रावल श्री रघुबंसी।

बीक्रम संमत बारासे बाईसा बरषे 1222 का साल महे तीज तहवारा का दन तईवार का दनां महे श्री रावलजी रा अमराव सीरदार भाई बेटा का नोता कोका गोठा रा आबा लागा नत तथा पातरे नोता कोका आवे श्री हजुर रावल श्री रतनसीहजी पदारे चवदाही मसल का सीरदारा रे अठे। बीकत मसल की प्रथम गढ़ बनईहीत भाईजी कुंभकरणजी रो॥1॥

अेक दन श्री अेकलीग ओतार रावल श्री रतनसेणजी ने होकम कीदो के सरदारां अेक बात थासु पुछा हां के जे जतरी रसोया गोठा होई भाई बेटा अमराव जागीरदारां ने परोथ सब लोग बही बंचा रे अठे जे रसोया ब्राह्मण रसोईदार ही करे हे के सरदारा को महलो साथ रसोई करे है। पछै सीरदारां ने अरज कीदी के गरीबनवाज रसोई को तो बरण हे। कठेक तो बरामंणा ने रसोई कीदी कठेक रसोई महला साथ रजपुत्याणां ने रसोई कीदी। आ बात हजुर ने सामलेर पछै होकम कीदो सारा ही सरदारां सु के सुणो हो सरदारां भाई बेटा अमराव जागीरदार परोथ सब लोग सबही पंचा और साहुकार सारा ही श्री हजुर ने कोको नोतो दीदो के सवेरे को नोतो सरदारां हमांकां अठाको हे श्री अेकलींगनाथ के रसोड़े जीमजो सारा ही सरदारां के नोतो देर पछे श्री हजुर रणवास महे पदारीया अर चवदा ही राजलोकां हे होकम कीदो सारा ही रणवास रा सरदारा अेकटा हुवा अेक ही महल पढीयारणजी रयो पछै श्री हजुर रावलजी ने सारा ही राजलोकां सु होकम कीदो के सुणो हो सरदारां भाई बेटा अमरावा रे अठे में जीमीया सो सारा ही सरदारा रे अठे रसोया महला सात कांने कीदी रजपुताणीयां ने बोहोत सुंदर रसोया बणाई उणी बात सु था चवदा ही सीरदारा जनानी सु कहुं हुं

के सगला ही सरदारा हे श्री अेकलींगनाथ के रसोड़े नोतो देर बुलाया है सो असी करजो के रसोड़ो थे जनांनी सरदार थाका ही हाता सु हातु हात करजो ओर का हात सु करावो मती थाका ही हात सु करजो। असो होकम श्री रावलजी ने जनांना का सरदारां सु कीदो। चवदा ही राणीया ने रसोही की हामी घणां राजी पुणा सु हामी भरी। पछै रणवास का सरदार रसोई करबा लागा। रणवास का सरदार तो राजा की बेटीया थी आह रसोड़ा करबा की षबर काही काणां कसी रीत रसोई करे है परंत हातु हात रसोड़ो करबा लागा कोही ने चावल करीया सो काचा रह गीया, कोही ने रदीण कीदो सो दज गीयो, कोही ने बीया करीया को घाटड़ा सरीषा कर नांषीया, कोही ने पतोड़ी कीदी सो मुसालो तीगुणो चैगुणो नांष दीदो, कोही ने पोल्या करी सो जाड़ी काची होई, कोही ने कीम्या करीया सो बाल दीदा, कोही ने सालणां कीदा सो षारा कर नाषीया, कोही ने मठवा कीदा सो करड़ा कर नाषीया, कोही ने लुची करी सो अलुणी ही राष दीदी, कोही ने बगता दाल कीदी ज्या सीजी नही, कोही ने राम षीचड़ी कीदी सो ओझाई दीदी, असी रीत छतीस सालणां बतीस भोजन कीदा। सो कोही चीज साबर बणी नही। कदी तो रसोई कीदी नही ओ तो राजा की बेटीया ठहरी जो काही रसोई कर जाणे। रसोई का सवाद महे तो जाणे अर रसोई कर जाणे नही। कोही षारो होई गीयो, कोही षाटो होई गीयो, कोही अलुणो रीयो, कोही काचो रीयो, कोही के ताव जादा लाग लीयो, अणी रीत कोही भोजन की चीज ठावी हुई नही। सारो ही रसोड़ो तीयार हुवो पछै सारा ही सरदारां हे बुलाया चोबदार देर। सारा ही आये अेकटा हुवा। पछै पातीया की तैयारी होई, पाथे बेठा। श्री हजुर ने होकम कीदो के सारा ही सरदार जीमो अर मे तो थांरी टहल महे उबा हा। श्री हजुर परूसगारी में उबा थका देष रीया। सारा ही सरदार जीम रीया। केही तरे की षलपतां होती जावे। हासी कुसी की चोला होती जावे। सरदार जीमता जावे। पछै श्री हजुर ने सरदारां सु पुछीयो के रसोड़ो कसोक हुवो सरदारां ने मन महे बीचारी के अणी घर का रूजक सु सगलाई सरदार पलरीया हा अणी ठकांणा की चीज बोदी हुवे तो बी आछी कहणी। पछै सीरदारां ने हात जोडेर अरज कीदी के अेकलींग अवतार रसोड़ो घणो सुंदर हुवो। रसोड़ा की हरकत का समीचार कोई सीरदार ने कीया नही। सरदार जीम चुका। चलु भरी। पछै सारा ही सीरदार दरीषांने पदरीया। अतर पान रा बीड़ा बकस्या कसबोया लगाई नाज मुजरा हुवा। पछै रसोड़ा महे सु दासी ने आईर अरज कीदी के श्री हजुर पण रसोड़ो आरोगे। पछै श्री हजुर पण पदारीया अर रसोड़ा रे कठड़े आण बीराजीया अर कासा की तीयारी होई। छतीस सालणां बतीस ही भोजन करेन कासो परूसीयो हाजर आयो। श्री हजुर ने श्री अेकलींगनाथ को नाम लेर कासो महे हात घालीयो। उणी बगत महे चवदा ही राजलोक हाजर आई बेठा श्री हजुर रो होकम सरदता जावे

श्री हजुर ने रसोई मह हात देर सवाद लीदो सो चावल की रसोई काची रही श्री हजुर ने होकम कीदो ओ चावल कणी ने तीयार कीदा। पछै पढ़ीयारणजी कहीयो के गरीबनवाज चावल तो मने कीदा है, जदी हजुर ने पड़ीयारणजी हे हलकार दीदा आतो बनासुर की लुगाई है काही भात को रसोड़ो कर जांणे। अणी रीत सगली रसोई को सवाद लेता गीया अर पछाण करता गीया। जी ने ज्या रसोई कीदी थी जणी हे हलकारता गीया। अर अनेष रीत सु बुरा कहता गया। अणी रीत चवदा ही राजलोक है दाकल दीया अर कही के थे लुगांया मनष जमारो भगतो हो थे मनष नही हो अर जैसा को अवतार भगतो हो, थां महे मनष का अहनाण नही। भैसा ज्यु षाण पांण षाई पीयेर आषोई दन भैसा लेवटा महे लोट जसी रीत लोटबु करो हो। थाह ता श्री अेकलींगनाथ भैसा ही बणांवतो तो चोषी थी। श्री हजुर को होकम सुणेर पाट राणी पढ़ीयारणजी ने अरज करी के गरीबनवाज में तो राजा की बेटीयां हां रसोही बरामण ही बणाव ब्राह्मण के हात जीमा हा ज्यारोही तेर होई गीयो। में तो घर घोड़ीया रजपुत की बेटीयां हुवा तो रसोड़ो कर जाणां। आज दन तांई रसोई को जल बी गरम कीदो नही, अर देषीयो बी नही काही जाणां कसी ही रीत रसोई करे हे, कतरो ही लुण मुसालो पड़े है, कसी रीत रादे, सीजे हे। आ बात सामलेर श्री हजुर होकम कीदो के रणवास को साथ मनष जमारो पावती तो समजती। थे तो भैसा को जमारो लेर आई सो अंन का सवाद महे काई जाणो। पछै पाट रांणी पढ़ीयारणजी ने उठेर हात जोडेर अरज कीदी के श्री हजुर माने तो भोजन अणी रीत करता आवे हे सो श्री हजुर जीमो ओर घणी सुंदर सवाद को भोजन तो पदमणी के हात हुवे है सो सवाद की रसोई जीमणी हुवे तो पदमणी परण लावो सो सवाद का भोजन कर ने आप हे जीमावेगा। आ बात रणवास का सरदारा की सुण रावल श्री रतनसेणजी के घणो रोस उपज्यो। पछै होकम कीदो के रणवास का सरदारां सु के मारो नाम रावल रतनसेण हे तो पदमणी परण लाउं जदी तो रणवास का महलां महे आउ नही तो ईसवर माथे उदक है श्री अकलीगंनाथ की पींड उपर अंजली हे सो पदमणी परणीया बना चीतोड़ का कला उपर पग देउ तो अक लाष असी हजार श्री अेकलींगनाथ की आण है। श्री हजुर को अर रणवास का सरदारा की बोली को उतर को कवीत

।कवीत।।

हेक दन हीदवांण, राजड़ बैठा भोजाई।
सतरा पाष सुजांण, रांणी हसमुष आगल लाई॥
चाषो के षारा के षाटा, मीठ तणां सवाद।
कोही मुल ने आवे, जद पाट रांणी उठ कर बोले॥
जावो कुन पदमण लावे, रावल कहे सीर लंघु सीधल तरू।

नवी जात कन्या वरू, लाहु पदमण पेज कर राणी जदी महल संचरू॥ असो होकम कर रावल श्री रतनसेणजी चत्रकोट सु नीछा उतरीया अर तलेटी महे पदारीया। नदी गंभीरी के करड़े बांध महे श्री हजुर का डेरा हुवा कनात दरवाजा कपड़ कोट डोड़ी पड़दा दोई दोई उड़ता दुणां चोकणां तीयार हुवा दरीषानो कास दरीषांनो कामेती डेरो देने पोडबा को डेरो रात्री महे पौडबा को अणी रीत श्री हजुर का डेरा बाग महे हुवा नदी गंभीरी के करडे संमत बारासे चोवीसा बरषे 1224 का बीक्रम संमत भादवा सुदी तेरस सोमवार के दन बाघ डेरा महे श्री जी पदारीया पछै नत परीयत डेरां महे दरीषांना होबु करे श्री हजुर आपका सरदारां हे पुछबु करे कहो सरदारां सीघल दीप कोणसी दसा है। अमराव सरदार अरज करे के श्री हजुर में तो सारा ही श्री हजुर की हाजर ही राहां हां माने बी परदेस को अटन कीदो नही जणो सु सींघल दीप कांणी कठीन ही आड़ी है। असी रीत हजुर के सरदारां के बातां होबु करे। श्री हजुर रा मन महे घणो अनेसो रहबु करे के सींघल दीप कसी रीत जावा। असी रीत रहता रहता बाघ महे बरस अड़ाई होई गीया। अड़ाई बरस मनसुबा महे गीया। परंत सींघल दीप जाबा को काही उपाव लागो नही। अेक बीकत असी होई के मनछा का फल देबा को श्री देव दातार के कोही तरे हे सु उपाव। लगावे अरजी को सत राषे। उणी बगत महे मछींदरनाथजी तो सीघलदीप महे गाम मनोहरगढ़ ने तुपस्या करे। अर मछीदरनाथजी का चेला गोरषनाथ जी उतराषड महे पुसकरवतीपुरी ने तुपस्या करे। अक दन गोरषनाथ जी ने बीचारी के गुरनारांईण का दरसण कीदा घणा दन होई गीया हे सो मछींदर गुरनाराईण का दरसण करणां गोरषनाथ जी तीयार हुवा अर उड़न षटोली महे बेठा मुडा महे गुटको लेर पुसकरवती पुरी सु उड़ीया सो सींघल दीप जावे आदी रात के समीओ षटोली चीतोड़ का कला की बराबरी आई। उणी बगत गढ़ चीतोड़ महे अनेक प्रकार का बाजा बजरीया है। केही रीत की गाईन होई रही है। असी रीत मंगलाचार होई रयो थो। गोरषनाथजी अवाज सुणेर मन महे कही के ओ कला कोनसा है कोन राज करता है, ईन कला को तो देखना परंत अेक बगत गुरदेव के पेतावा लाग आउ पीछा आउगा जद अवेस ही देषनां। असी हद मन महे बीचार ने सीधल दीप गया गुरू मछीदरनाथ जी की पास जाई पहुचां। गुरनाराईन के कदम लागा रीया कतराईक दन रया। पछै गुरनाराईण से सीष मांग कर मनोहरगढ़ सींघल दीप सु आपके आसरम में गोरषनाथ जी आवे था पुसकरवतीपुरी ने आवथा सो आपहे सुरता आई रात के समीये आवती बगत कोही कला महे राजा के याहां गाईन बाजन होई रही थी जाहा चालणो असी बीचार ने उड़न षटोली महे बेठा। मुडा महे गुटको लेर चाल्या। सुरताधारी जणी कले चीतोड़ के आया। रावलजी रतनसेणजी को डेरो तण रीयो थो उणी ही बाघ महे गोरषनाथजी की षटोली आई उतरी। कठे

उतरी रावलजी को डेरो चो तरफ कंनात कपड़ कोट षड़ा होई रीया था उणी कोट की बीच कासा तंबु की आगे षटोली आई उतरी रात पहर रहतां। उणी बगत रावलजी बारला डेरा महे पोहोड़ीया था। कनात महलो तंबु कासा पोडबा को जणी तंबु म्हे पलंग बिछायो थो बीछाईत होई रही थी षाली ही उणी जाहीगा षटोली उतारता ही षटोली हे तो बागाईत का रूष उपरे मेल दीदी। अर गोरषनाथ जी तंबु महे गीया। पलंग बीछीयो थो च्यार ही पागां ने अतर की पीलसुता 4 बल रही है। पलंग उपरे पुसपा की बीछाईत होई रही है। आ सोभा देषेर बाबाजी लोभाईमांन होई गया। पछै गोरषनाथजी पलंग उपरे सोई गीया। नीद्रा लाग गई। नीद आवतां गोरषनाथजी को मुडो डेल होई गीयो मुडा महे सु गुटको पलंग उपर नीकल पड़ीयो। असी रीत होतां थको तो पछै सुरज को प्रकास हुवो। श्री रावलजो जागीया हात मुडा धोया। पछै अमल कसुबो होबा लागा उणी बगत फर्राश लोग बीछाईत पलंग बदाबा सारू महला कनांत का तंबु महे गीया तो पलंग उपरे अंक जोगी अबुत सुतो हे उगमरी पाषधारी श्री हजुर का पोड़बा का पलंग उपरे सुतो है। पछै फर्राश बाहरो आईर श्री हजुर सु अरज कीदी। श्री हजुर उठेर तंबु महे गीया, तो साच ही जोगी सुतो हे। जोगी का मुडा नषे अेक छोटी सीक पोथी पड़ी है। श्री हजुर जाता ही पोथी गुटका की उपरे नजर पड़ी सो गुटका की पोथी श्री हजुर ने ले लीदी आपका बागा का षुलीया महे मेल दीदी। पछै रावलजी ने होकम कीदो फर्राश सु ओर पहरा का जवांनां सु बाबाजी हे कोई जगावो मती, सोवा रहवादो। अर पहरा का जवान षड़ा कर दीदा के बाबोजी जागे जदी मुहे चेताई दीजो। ओ होकम करेर श्री हजुर तो दरीषांने पदार गीया। तीन पहर दन बीत गीयो जाहा ताई बाबोजी सुता रीया। पछै दन पहर अेक रयो जदी बाबोजी जागीया। पलंग उपरे बेठा थका गुटको हेर रया हे। अतरा महे पहरा वाला ने श्री हजुर ने षबर दीदी के हजुर बाबोजी जाग गीया है। सुणता ही रावलजी पदारीया देषे तो बाबोजी बेठा थका काहीक चीज हेर रया है। रावलजी ने हात जोडेर आदेस कीदो बाबाजी ने चीत दीदो नही अर चीज हेर रया हे। पछै रावल जी ने अरज कीदी के गुर परमातमां आप काही चीज हेरो हो। बाबाजी ने कही के हुं मारी अेक छोटीसीक पोथी हे जीसकु ढुंढता हुं आ पोथी मेरा मोह महे थी सो मेरे को नंदरा आई पीछे मोह मे से नीकल पड़ी। उनकु ढुंढता हुं। रावलजी ने अरज करी के गुर परमातमां आप हेरो मती आपको गुटको हुवेगा तो लाद जावेगा। आ बोली सुण कर रावल जी के थरता आई पछै बाबाजी ने पुछो के ईन गाम का नाम क्या है। याहां का राजा कोन है क्या उसका नाम है जदी रावलजी ने अरज करी के गुरू साहब ईन गांम का नाम तो चीतोड़गढ़ हे। अठा का राजा तो श्री अेकलींगनाथ है। उनका दीवांन षांना का काम जो में करता हुं। सगला लोग मुहे राजा कहे है। अर मारो नाम

रतनसेन है। आपने मारी हकीगत तो पुछी परंत आपकी हकीगत कहो। सत कहजो आप हे आपका गुरदेव का सोगन है। पछै गोरषनाथ जी ने कही के राजा मेरा नाम गारेषनाथ है। मछीदरनाथ का बेटा चेला हुं। उतरा षड महे पुसकरउती पुरी ने तपस्या करता था। ओर मेरा गुरू मछीदरनाथजी सीघलदीप महे मनोहरगढ़ ने तुपस्या करे हे गुरू से मीलने गीया था। आदी रात की बषत महे तुमारा गाम चीतोड़ की बराबर नीकला सो तुमारे आहा बाजन गाईन होई रहा था। जाती बषत दल की ईछा होई थी के आती बगत अन कला कु देषनां पछै सीघल दीप महे गरू की पास केही दन रया पछै गरू से सीष माग चला ईन गाम चीतोड़ देषबा की ईछा थी सो मे याहां आया। यहा की सोभा देष दल ललचा गीया सो पलंग उपर सो गीया। च्यार पहर मही मेरी नीद्रा षुली बोहोत आराम पाया परंत गांठ का गुटका गमाया। या बात सुण रावलजी ने अरज कीदी के गुरनाराईण आपको गुटको हुवेगा तो लाद जावेगा। पछै रावलजी ने आपका मन महे बीचारी के मनसा को कारज श्री अेकलीगनाथ सुधारेगा। केही दनां सु अणी बात की मसल करतां होई गया परंत श्री अेकलींगनाथ ने अबे नेवग लगाया है। अबे काम पेस होई जावेगा। पछै रावलजी ने बापजी गोरषनाथजी सु अरज करी आप गुटका को बहम लावो मती आपको गुटको मल जावेगा। पछै गोरषनाथजी ने कही के राजा रतनसेण रावल परंत अेक में पुछु सो कहो तुम तो गढ़ चीतोड़ का राजा कहलाता है। तेरा मुकाम तो महलों में चाहीजे। तेरा मुकाम गाम की बाहरा बाघ महे केसा है। बाबाजी की बात सुनकर रावलजी चप होई रीया। फेर बाबाजी ने कही के राजा मेरी कु कहे। फेर बी रावलजी ने उतर दीदो नही। तीसरी बगत गोरषनाथजी ने षीज कर कही के राजा तेने मेरी सब रीती पुछ लई अर अपनी कहता नही केक तो कह दे नही तो मे तेरी को सराप दगधीत करूंगा। पछै रावल रतनसेणजी ने अरज करी के गरु परमातमां मेरी कु बचन मले तो कहुं जदी गोरषनाथजी ने आपका गरु का सोगन लीया। जदी रावलजी ने सगली बात मांडेर कही के कला उपर सु पेज करेन उतरीया के सीधल दीप जांऊ। पदमणी परण लाउ जदी कला उपर चडु नही तो ईसर माथे उदक है। आ बात रावल रतनसेणजी की सामलेर बाबजी गोरषनाथजी ने हंस दीयो। अर कही के राजा रतनसेण तेने क्या सोगन कीया। अणजाणी बात की पेज करना नही सीघल दीप जाणां क्या तेरी को सहज ही दीषता है। अपने देस महे से तो आदमी का जाना सीघल दीप महे हुवे नही परंत कोही जोगी होता हे अर कलप सादता हे देह की उमर बड़ाता है जो सीघल दीप जाता है। राजा तेरी को सीघल दीप दस बीस कोस दीषता होगा, जीनसे तेने करड़ा सोगन लोया है। आ बात सुनकर रावल रतनसेनजी ने गोरषनाथजी का पगा महे माथो दे दीयो। अर कही के गुरू परमातमा के तो मुहे सींघलदीप ले चालो केक

मुहबी भेष देर जोगी करलो नही तो यो मारो प्राण आपके सर हे। आज से ही में अन अर जल लेबा का सोगन लुगा। आपके सर पाप लगाउगा। आ बात सुण गोरषनाथजी अछंभा महे पड़ गीया। मेने ही कुछ कर मेरा गला महे मेरा हात से फांस फसाया। पछै बाबाजी ने कही के मेरा गुटका मेरी कु दे दे। रावलजी ने कही के आपको गुटको ओर मेरा जीव दोही अेक ही संग हे। आपके चाहनां हुवे तो लेलो। पछै रावलजी हे समजाया के गुटका तु देदे। में पीछा तेरा ही काम उपर जाउगा। सींघल दीप ने रावलजी ने मांनी नहीं जदी गोरषनाथजी ने सोगन मछीदर नाथजी का लीया। सुरज चंद्रमा जल पवन बासुदेव बीच महे लीया। गंगा गीता का सोगन षाया। राजा तेरा ही काम उपर पीछा सींघल दीप जाता हुं। चंद रोज महे आउगा महीना म्हे। जदी रावल जी ने गुटको गोरषनाथजी हे दीदो। पछै गोरषनाथजी षटोली महे बेठ कर पाछा सींघलदीप गीया। गरुजी मछीदरनाथजी की पास गीया। पछै गरनाराईन ने गोरषजी सु कही अब ही तो तु गया था अर पीछा केसा आई गीया। पछै गोरषनाथजी ने कही के गुरनाराईण गढ़ चीतोड़ का राजा रतनसेन ने अन रीती से सोगन लीया। बाग महे पड़ा हे बरस तीन हो चुका सो भला ही पड़ा रहो। परंत हम फस गीया। याहा से मे गीया उनके सोने के तंबु की पास षटोली जा उतरी। उतरता ही पलंग उपर मे सो गीया। नीद्रा आई। मेरे मोह से गुटका नीकल पड़ा ओ गुटका रतनसेन के हात लगा सो देवे नही। मुझसे कहे हे के मेरी को सींघल दीप ले चालो अर पदमनी मेरे को ब्यावो। जद मेने गुरु का सोगन षाई कर गुटका लीया। पीछा में सीघल दीप आया। असे में फस गीया। अब श्री गुरनाराईन कहेगा सो करूंगा। आ बात सामलेर मछीदरनाथजी ने कही के गोरषा असे संसारी का बचन महे आवां नही। जदी गोरषनाथ ने कही के गुरदेव बात मेरी बस की रही नही। जदी गुरदेव ने कही के गोरषा दीषी जाईगा। सींघल दीप गाम मनोहरगढ़ की बावड़ी उपर माहादेव को मंदर उठे तो श्री मछीदरनाथजी को आसण ही थो गाम मनोहरगढ़ का राजा की बेटी राजा को नाम राजा समनसी जी जात पुवार। राजा समनसीजी की बेटी नाम मदनकवरी असत्री की जात पदमणी कवरी पदमणीजी सदामत बावड़ी ने आवे। माहादेव का दरसण करे। दुसरा बाबाजी मछीदरनाथजी का दरसण करे। नत परीयंत आबु करे। अेक दन मछीदरनाथजी ने कही के बेटा पदमनी तेरा मोह देषेन का धरम नही। कोनसी रीत के तेने गुरू नही कीया। अबे तु गरु करले। पछै कवरी पदमनी ने आकी मांसाहब सु कही के आज बाबाजी असी रीत बोल्या। जदी राणीजी ने कही के बाबाजी ने साची कही। राणीजी ने कही के कवरी तु बाबाजी मछीदरनाथजी हे गरु करले। पछै दुसरे दन दीष्या लेबा की चीज सामगरी लेर दोही गरु चेला की पास बावड़ी उपर आई। अर पदमणीजी ने अरज कीदी के गुरनाराईण मुहे बी गुर देष्या देवो। जदी

मछीदरनाथजी ने कही के गोरषा गुर मंतर दे बाई हे। पछै गोरषजी बोल्या के अणी बाई हे हु दुगा जदी रतनसेण हे गुर मंतर कुण देगा। जदी बाबाजी ने कही के गोरषनाथ साची कही कवरी पदमणी हे तो गुर मंतर हुं देउगा। अर रतनसेण हे गुरमंतर गोरषा तु दीजे। पछै मछीदरनाथ जी ने गुर मंतर पदमणीजी हे दीदो। पछै कवरी राज मंदर में गई बोहोत हरष उछब हुवो। नत कवरी दरसण करबा आबु करे।

केही दन की बाद अेक दन कवरी की सामा चोग कर गोरषजी सु कही गुरुदेव ने के गोरषा अन कवरी पदमनी की माफक बर तो गढ़ चीतोड़ का धणी रावल रतनसेण हे उन सरीषा बर ओर तो अन जंबु दीप महे मीले नही। आ बात गुरदेव नै बाई हे अर लार की दासीया थी ज्याहे सुणाईर कही। पछै बाई ओर दासिया राज मंदर महे गई। पछै दासीया ने माजी साहब के आगे कही राणीजी ने सामलेर मन महे बीचारी दासीयां के आगे राणीजी ने कही के थे सवेरा बापजी हे पुछीजो के कसो देस, कसो कलो काही राजा को नाम काही जात। दुसरे दन दरसण करबा गीया। बाई मदनकवर पदमणीजी ओर लारे दासीया बापजी की धुणी नषे बेठ गई॥ अर पुछवा लागी जदी बापजी मछीदरनाथजी ने कही के देस तो मेवाड़ कला को नाम चत्रकोट राजा को नाम रतनसेण जात को सुरजबंसी गहलोत आठा सु दुरो कोस सतरासे। आ हकीगत सामलेर दासीया ने राणीजी की आगे सगला समाचार बदीवार कीया। राणीजी बात सामलेर बोहोत कुसी हुवा। राणीजी ने कही के उ राजा बापजी मछीदरनाथजी को चेलो हुवेगा। जणी सु बाबाजी अतरी बात सगारथ की करे है। उ राजा करामाती हवेगा। ओर जोग मत को पुरो हुवेगा। आ बात राणीजी ने दास्या सु कही के काल थे बापजी हे असी रीत कहजो के आपने बाई पदमणी जी का सगारथ को होकम कीदो सो मे तो जाणां नही परंत उण राजा हे में नजरई देषलां जदी सगारथ करां असी कहजो। राजा करामाती हुवेगा तो बाबोजी लाईर आपा हे नजर बताई देवेगा। फजर हुवो पदमणी जी दासीया दरसण के बदले आई दरसण करने बेठ गई। अर राणीजी की सगली बात बाबाजी की आगे कही के सगारथ तो करा परंत वर हे माने नजरीया देषावो जदी सगारथ करां दुसरू तो मन माने नहीं। जदी मछीदरनाथजी ने कही के राजा हे नजरीया देषाबा की काही बड़ी बात है आज से चोथे पांचमें दन बुलाईर कर तुमको दीषाई देवेगा। परंत तुम राणीजी से अछी तरे हे पुछलो। दरसण कर बाई ओर दासीया राजमंदर महे गई। अर बापजी का सगला समीचार राणीजी सु जाई कीया। जदी राणीजी आछी तरे सु समजाई सो चीतोड़गढ को राजा बाबाजी को चेलो हे, ओर राजनीती को जांणबा वालो हे। तीसुरो जोगमती महे पुरो हे दुसरे दन कवरी दासीयां ओर माहाराणीजी दरसण करबा पदारीया। पछै राणीजी ने बाबाजी सु अरज कीदी के गुरनाराईण बाई का सगारथ को होकम कीदो। परंत बाई का वर

हे नजरीया सु बताई देवो सो सगारथ कर काडां। जदी बापजी ने कही के राणी माई आज सु चोथे रोज वर हे तुमको अपनी आषो से दषाई देउगां। जदी राणीजी कही के सताबश् बुलावो। पछै राणीजी तो राज मंदर महे गीया। पछै गुरदेव ने गोरषनाथजी सु कही के तु जाव अर रतनसेण हे लाव गोरषनाथजी षटोली महे बेठ मुह महे गुटको लेर सीघलदीप सु चाल्या गढ़ चीतोड़ आया। पहर तीन महे कोस सतरासे। पहला षटोली उतरी ज्याही जाई उतरी अर तंबु महे पलंग बछो थो उणी ही रीत बापजी गोरषनाथजी पलंग उपरे पोड़ गीया। नंदरा आई। दन उदेये हुवो। अर फरास पलया बीछाईत बछाबा के बदले गीयो देषे तो बाबोजी सुता हे। फरास ने श्री हजुर सु मालम कीदी के बापजी पलंग उपरे सुता हे। रावलजी कुसी हुवा अर कही के गुरूदेव पदारीया। होकम कीदो के सुता रेबादो कोही जगावो मती। दन पहर अेक रहता जागीया पछै रावलजी बापजी कदमां लागा। अरज कीदी के श्री गुरदेव पदारीया बाबाजी गोरषनाथजी ने कही के रतनसेण तेरी तरफ की दाहीद करता हुं तेरा प्रण माहादेव पुरण करेगा। जदी रावलजी ने अरज कीदी के मारे ताबे तो आप ही माहादेव हो। पछै रावलजी के अर बाबाजी के अकंत महे बातां होई। सीघलदीप का बरतीया हुवा। समीचार सगला कह सुणाया। रावल जी सुण कर बोहोत कुसी हुवा। असी रीत दन तो बीत गयो अर साज पड़ी अर सामंगरी मगाई। पछै रावल रतनसेणजी हे देषाई दीदी। गोरषनाथजी ने रावल रतनसेणजी हे गुरमंतर दीदो। पछै तीसरे दन लसकर का हेक हे दीदो दस पाच दन को काम हे सो कोही अनेसा करो मती। आ बात आपकी फोज महे पाच सात समजणां हे कह दीदी। पछै रात पहर 1 गई पछै बापजी गोरषनाथजी रावल रतनसेणजी दोही उड़न षटोली महे बेठा सीघलदीप मनोहरगढ़ ने गीया। बाबाजी मछीदरनाथजी की हाजर रावल जी गुरनाराईण मछीदरनाथजी के पगा पड़ीया। पछै दन उदे हुवो। बाबाजी का दरसण के बदले कवरी पदमणी ओर दासीया आईर दरसण कर बेठ गई। जीमणे हात चोगे तो दसटी रावल रतनसेणजी उपर पड़ी रतनसेण जी हे देषताई पदमणी की कला छीन भीन हो गई। पदमणीजी हे देषेर रावलजी की अकल चकीत होई गई। पछै बाई ओर दासीया राजमहल महे गई। राणीजी सु दासीया ने जाईर कही आज तो बाबाजी की धुणी उपरे अेक सरदार तथा राजा तथा देवता बेठो हे कसोक करामाती नजर आवे हे। जांण सुरज सरीषी कलां नजर आवे हे। आ बात दासीयां की सांमलेर राणीजी ने बीचारी के होव न होव तो उही हुवेगा। बाबाजी ने कही थी के आज सु चोथे दन गढ़ चीतोड़ को राजा बताउंगा सो उही राजा हुवेगा। जतरे दासी के हात बाबाजी ने सनेसो मोकल्यो के राणाजी कु मेने कीया था के सो ही राजा कु मेने बुलाया है सो देष जाणां। पीछा से राजा कु सीष देता हु। पछै मसल सु राणीजी आया। रावल रतनसेणजी हे देषेर बोहोत कुसी हुवा। बाबाजी

कहता जणी ही माफक वर बाई जोग हे बाई हे अवेसश् परणांवागा। आ हकीगत राजा समनसीजी री आगे राणीजी ने कह सुणाई। राजा रतनसेणजी चत्रकोट का राजा सुरज बंसी बापजी मछीदरनाथजी का चेला है। राजनीती का पुरा ओर करामाती। वर तो बाई जोग है। पछै तो मुरजी आपकी है ज्यो होकम करो। राजा समनसीजी ने कही। धरती महे राजा मोकलाई है। बोहोत अकलवान है, ग्यानी, दांनी, जोगी, संजागी हे परंत लीषंत की वात घणी मोटी हे। वीधातानाथ ने लीषीया हुवेगा ज्याही हुवेगा। परंत चीतौड़ का ठाकुर सु हुवेगा तो वर प्रापती कर देवागा। बाई की उमर बरस बारा की होई गई है। आपके आसे आई गई हुवे तो सगारथ कर काड़जो। बेटो तो बापको गण्यो जावे हे बेटी माता की गणी जावे हे। वर बाई जोग हुवे तो कर काड़जो। पछै परभात महे राणीजी ने बापाजी के अठे सनेसो भेज दीदो के सगारथ ठहर गीयो। पछै जोतस्या बुलाया अर लगन स्मोरथ कड़ाया लगन की आड़ महीनां सोला केड़े हुवेगा। घणां सरीकार सोई पछै लगन लीषाईर चांदी सोना का नारेल गुर परोथजी के हाथ दीया ओर मीठाई की थाला छाबा हे माल भर भर कर बावड़ी उपरे पोछाया, ओर कंक केसर चांवल मोती अकसत सरपाव ओर नग पदारथ सहेल्या दासीयां ब्राह्मण गुरनाराईण की धुणी उपरे भेज्या।

बावड़ी उपर भेजीया माहादेवजी के मंदर ने टीको भेज दीदो। बोहोत मंगलाचार घणा उछव सु नारेल झेलाया। रावल रतनसेण जीह टीको झेलायो। महीनां सोला की बाद का लगन झेलाया। पछै सभा तो राज महल महे गई। पछै गुरदेव मछीदरनाथजी ने गोरषनाथजी सु कही अब तुम दोही जावो। रतनसेन कु लेजा नही तो याहा सरद का देस हे सो रतनसेण दुष पावेगा। चीतोड़ जाकर रतनसेन को कलप सदा कर इनकी जीवाई का बरस बड़ा कर राणी की बोली उपर महीना सोला के बाद बरात लेकर जलदी आवणां। पछै गोरषनाथजी षटोली महे बेठ कर सीघलदीप सु गढ़ चत्रकोट आया जणी ही जाहीगा षटोली आई उतरी ओर फोज महे बदाई होई। पछै गोरषनाथजी ने जनमपत्री मगाई रावल रतनसेणजी की। ज्योतस्या नषे सु जनम पत्री बरताई। अर आई बल का बरस देषीया रावल रतनसेणजी की आई बल का बरस बीयासी की आय बल नीसरी 82 । पछै गोरषनाथजी ने रावल जी सु कही के संमत बारासे गुणतीस का साल महे अईबल होई पुगी। गोरषनाथजी ने कही के रावल रतनसेण तु बी तो बड़ा मोटा मन का राजा हे तेने सीघल दीप जांणां अकतीयार कीया सेकडा बरस का तेने काम उठाया। तेरी जीवाई का बरस बाकी तो दोई सवा दोई रह गीया। अन सवा दोई बरस महे तु क्या क्या काम करेगा। आ बात रावलजी ने सामलेर बोहोत सोच उपज्यो। पछै गुरनाराईण ने रावलजी हे धरता ही दी माहादेव सब अछी करेगा। पछै रावलजी रतनसेणजी हे कलप सदायो गोरषनाथजी ने महीनां छव ताई कलप सद गीयो

रावलजी रतनसेणजी उमर जीवाई का बरस सु डोड़ी उमर कीदी बरस सात आगली 7 जीवाई का बरस तो बीयासी 82 डोडी का अगतालीस 41 उपर आगला सात अकंदर बरस अकसो तीस बरस की आई बल श्री गुरदेव गोरषनाथजी ने बढ़ाई 130 पछै दुसरो कलप सीत काला को सदायो। जणी सु रावलजी की देह लोह समान होई गई। अेक सो तीस बरस की उमर रावल रतनसेणजी कीदी गुरदेव श्री गोरषनाथजी की कृपा सु होई। पछै फेर श्री गुरू गोरषनाथजी ने रावल रतनसेणजी हे जोगमत की कुची बताई। पछै पदमणीजी परणबा के बदल सीघलदीप उपरे तीयारी कीदी उणी बगत महे गढ़ चीतोड़ की भालवण कला की देस की ओर राज की। रावलजी श्री रतनसेणजी री जान पदमणीजी हे परणबा के बदले देस सीघलदीप गाम मनोहरगढ़ ने पदारीया बीक्रम संमत बारासे तीस का 1230 बेसाष बुदी अकम सोमवार के दन बीदा हुवा। जान महे लोग फोज को जी की गणती घोड़ा अकवीसे अठाईस 2128 हाती चोबीस 24 पेदल हजार च्यार उपर दोहो से दस 4210 उंट बारासे 1200 तोबा सोला 16 बाण मोटा 4 घुड़नाला बारा अकंदर सोला तोब 16 उट ज्मुरी 122 अकसो बाईस ओर हुवाली मुहाली केही केही कोम वाला लार द्य महीनां आठ दन सतरा महे श्री माहादेव रामेसुर सेत बंद रामेसुर ने पहोचा अर दरसण कीदा। श्री रावल रतनसेणजी बीचारी के रामां-अउतार को तो रावल जी को बंस है। आपका पुरषा रामां अवतार को माहादेव रामेसुरजी को लींगाकार थापन कीदो हुवो हे रामां अवतार लंका उपरे पदारीया अर समंदर उपरे सेतु बाधीयो अर जगन कीधो उणी जगन का कुंड उपरे श्री रामेसर माहादेव की मुरती रामा अवतार का हात सु थापन कीदी। आ बात रावल रतनसेणजी आपका मन महे बीचार ने माहादेव की भले प्रकार पुजन कीदी। जी को ही दील की ईछा सु पदारथ चड़ाया ओर ब्राहमण भोजन कीदो। अर दषणां दीदी। परदषणा दीदी। अणी रीत सु सेतबंद रामेस्वर की पुजन रावलजी ने कीदी। पछै गुरनारांईण गोरषनाथजी ने कही के राजा रतनसेण में तो आगे चलता हु। तुमारी बरात की षबर सीघलदीप मनोहरगढ़ ने देकर राजा कु चेताई कर में पीछा आउंगा। आ कहेर गरू गोरषनाथजी तो सीघलदीप ने गीया। ओर आपका गुरदेव मछीदरनाथजी आगे सगली हकीगत कहे सुणांई। पछै बापाजी ने राजाजी समनसी जी के अठे राजमंदर ने कहे भेजायो के तुम्हारी बाई मदनकवर हे परणबा के बदले बरात आई गई है। रामेसुर ने डेरा आई हुवा है याहा से जीहाजा भेजोगा जदी बरात सीपलदीप महे आवेगा। पछै सीघलदीप का राजा समनसीजी ने बोहत उछव कीदो गाम मनोहरगढ़ को राज देस सीघलदीप महे उछब हुवो। अर बाजन गाईन होबा लागो। नगर महे अर आषाई देस महे गाम गाम असी बात छाई रही के आपणा राजाजी ने बाई साहब पदमणीजी को सगारथ बोहोत दुरो करीयो। रामाअवतार का बंस का बेटा पोता के गढ़ चीतोड़

का धणी रावल रतनसेणजी रजपुत गहीलोत गाम चीतोड़गढ़ दुरो कोस सत्रासे 1700 अण रीत की बात आषाई देस महे घर घर होई रही। पछै बाबाजी गोरषनाथजी ने कया के बरात के बदल जीहाजां पोहोचावो। जदी राजा ने पूछायो के जीहाजां कतरीक मोकला! बाबाजी ने कही के बरात महे तो लोग पांच सात हजार है। परंत तुमारी ईछा महे आवे जतरी जाहाजां पोछावो। अठे आवेगा सो तो आई जावेगा ओर जादा लोग हे सो वाही पड़ा रहेगा रामेसुर ने। जी को कांही अचरज नही। जदी जीहाजां पांच मोकली। जीमहे तो बरात की चीजा भरी मजुस रोकड़ की जाहज। जीहाज अक महे षांनपान, अक जीहाज महे घोड़ा साठ 60 अंक जीहाज में हाती पांच 5, अेक जीहाज महे श्री रावलजी ओर लारे उमराव बराबरी का अकसो ग्यारा, अक ही जीहाज महे सागर पेसो घरू लोग ओर सरबंदी का सीपाई सगला आठसे बासट 862 अकंदर लोग हाती घोड़ा सरबंदी ओर चाकर सुदा लोग ग्यारासे चोरांणवे 1194। अतरी भरती जीहाजा महे होई। पछै जीहाज महे श्री हजुर बींद राजा बीराजीया। पछै जाहांजा सीघलदीप सामा चाल नीसरीया ओर फोज बाकी रही जीका मुकाम रामेसुर ने ही रया। दन सात ताही जीहाजा समंदर का जल महे चाली कणी रीत के उणी सीघलदीप का रसता महे दरीयाव को जल फेल घणो करे हे जणी बात सु जीहांजा धीरी चाले हे। सीघलदीप के करड़े गीया पछै रावलजी रतनसेन बींद राजा ने असवारी सजी। गुरनारांईण मछींदरनाथजी का मकान उपरे बावड़ी उपर माहादेवजी का मंदर ने बरात का डेरा होई गया। ओर नगर का लोग देषबा आवे। देष देष घणां परसण हुवे, जी की रीत प्रथम तो राजा, दुसरा बींदराजा, तीसरी देस में बोड़ की पहरतवानी अर जेवर कपड़ो सतरू-रेसमी ओर तास बापी को सगली रीत हकीगत देष देष सीघलदीप को लोग चकीत होई गीया। देस को नाम सीघलदीप गाम मनोहरगढ़ राजा को नाम राजा समनसीहजी पुवार बारा कोटड़ी को मालक गाम मनोहरगढ़ बाराबसी गांम तो जागीरदारां का कालसा का गांम सोला बसी उपर साता तीन से सताईस 327 जागीरदारा का अकसो चालीस 140 धरमादा का अगतालीस 41 अकंदर गाम पांच से आठ 508 ओर देस महे करसाणी का हक अणी रीत दोई बेल की अक सामद 1 अक सामद को राज महे हांसल लागे रूपीया सवा। जी को राज महे उपजे खालसो जागीरी धरमादा सुदा दस लाष ओगणीस हजार उपजे 1019000/- करसांणी हक का उपजता। ओर समंदर की उपज नग मांणक ककर पथर मोती मुंगा राज का हासल का साल अेक की उपज जी की गणती नही। कोहीक साल तो समंदर का हासल का लाष रूपीया के आसरे बेठे कोही साल समंदर का हासल क्रोड़ के आसरे बेठे। जणी बात स समंदर की उपज की गणती नहीं। अणी परमाणे सीघलदीप को उपज तो रूजक है। मनोहरगढ़ कोटड़ी बारा सु देस सीघलदीप समुदर का टापु महे। ओर

सीघलदीप का राजा के वभओ अणी परमाण हाती अकसो चमालीस 144 घोड़ा पदरासे अट्ठासी 1588, पेदल बतीससे अड़तीस 3238, तोबा मोटी 40 चालीस ओर घुड़नाल सतीयासी 87 अर कमणेत आठसे 800 ओर बजंत्री फोज महे दोहसे चोराणवे 294, अकंदर सगली जागीरदारां सुदा फोज हजार पांचसे के आसरे 5000 अणी परमाणे सीघलदीप का राज के वभये। पछै जान के डेरे मेल समेल हुवो। पछै बींद राजा तोरण उपरे पदारीया। पछै रावल जी पदमणजी हे परणीया। संमत बारासे तीस का बरषे 1230 का माहा सुदी पंचमी सोमवार का दन परणीया। नषत्र असवनी का तीसरा पाया महे। पछै राजा समनसीजी ने कन्या दान कीदो, जी की बीकत – हाती नग 2 गज माणक ज्यांका मसतक महे सु मोती नीकले ओर हाती चवदा 14 घोड़ा बालतेज जलपथव नग दोई पाणी उपरे चाले साठ कोस जाईर पाछा मकांम उपरे आई जावे जे घोड़ा दोई, ओर घोड़ा गुणपचास 49 ओर जर जेवर दागीनां गहणां जड़ाउ केही केही रीत का दीदा। ओर अनोप अनोप चीजां अणमोल लाई मुडा आगे मेली अणगणती की ओर दास दासीया बाणवे 92 ओर सहेल्या सोला 16 ओर खास चाकर दोई ज्याका नाम रामो 1 कलो 2 जी की बीकत सोला मनषा को अेक हपतो असा चार हपता दीदा – मनष चोसट 64 खास दास्या सहेल्या सोला 16 ओर रामा कला दोही का घर का मनष अठाईस 28 अकंदर मनष अकसो आठ पदमणीजी की लार दीदा। पछै बींद राजा ओर बींदणी हे जान के डेरे बीदा दीदी। पछै लाड़ीजी री पास सु जानीवासा की पुजा कराई। पछै राणी पदमणीजी राजमहल महे पदारीया पछै पदमणीजी आपकी दादी मा साहब के षोला बेठवा पदारीया आप कदीमी महल महे जाईर षोले बीराजीया। बोहोत कुसी सु माथा उपर हाथ फेरीयो। दादीजी मा साहब ने पदमणी जी के मुडा उपरे चुमन दीदा। पछै आपकी षजानां की दासी हे बुलाईर कही के षजानां महे मजुस महे बहरी जोगण को हार अर दुसरो कठलो मे दोई चीज राज कवरी नानी मदनकवर पदमणी हे पहराई दे। दासी ने दोई चीज बाई हे पहराई दीदी। दोही गहणा अमोल टकावल मणी लाल का जड़ीया थका ज्याकी कीमत अेक अेक रुकम नव नव क्रोड़ की। दोही गहणां अठारा क्रोड़ की कीमत का 18000000/– पर्छ पदमणीजी आपका रहवास महे पदारीया। पछै राजरीत की षुबी कसबोई असवारी शिकारी गोठा ओड़ा नोता राजाजी का तथा राजा का भाया का, तथा जागीरदारां का, ओर मोटा मोटा सेठ साहुकारां का नोता गोठा दर रोज होबा लागी। तथा पातरे होबु करे। रावल जी रात के समये पड़वे पदारे। रणवास महे पदारबु करे। केही रीत का कोतुहल होबु करे। जणी को बरणांव कठाक ताई करा अर लषा। अणी रीत रहतां सीघल दीप महे मनोहरगढ़ महे बरस तीन हुवा। अक दन रावलजी असवारी सजेर लंका की दसा समुदर की षाड़ी देषबा पदारीया। ओ असवारी को जावणो तो षाड़ी महे हुवो उणी

बगत महे उतर दसा की हवा चाल गई। सीतकाला की तो बगत ही थी। उतर दसा की हवा सु रावलजी रे कुसटे उठ बेठी होई ओर लार का उमराव छाईस 26 ओर बी कुसेट सरद की उठ बेठी होई सो सगला ही अमीर घणां हारमान हुवा। घणां मुसकल सु डेरे पदारीया। आ बात राजा समन ने सामली के जमाईजी साहब ओर लार का सरदार सताईस सरदारां हे उतर की हवा लागी सो आप दुष पाया। जणी उपर राजा समन ने केही तरेह की दवाया सरद नीसरबा की मोकली। दवाया देवाई षवाई परंत काही सुष पाया नही। दन पांच होई गीया सताईस ही सरदारां हे अन जल लीदा। राजा समन के बहोत चंता उपजी। पछै राजा समन का अठे को बेद आयो। उणी ने रावलजी हे ओर सरदारा हे दवाई दीदी। प्रथम तो कसतुरी को काड़ो दीदो। जणी उपरांत ताड़ का अरग को आसो पायो जणी उपरांत धनेसर का मांस का सुला षवाया। अर सात पहर महे सताईस ही सरदारां हे बाहाल कीदा। सातमे दन श्री हजुर ने ओर छाईस ही सरदारां ने अंन जल लीयो अर पछै दान पुन कीदा।

श्री जी की तरफ सु पांच लाष का पुन कीदो। बावन हजार को भोजन ब्राह्मण षट दरसण हे भात हे भोजन दीदो। घणो आणद उपज्यो। आगे सुरज कुल गहीलोत बंस महे कोही राजा मदीरापान लेता नही जणी को सोगन रावल श्री रतनसेण जी सु सोगन छुटा। आपका दसमणां को घेद होई। अर पछै बेद ने ताड़ का अरग को मदीरा मद देर रावलजी हे बाल कीदा। जणी ही दन सु गहलोता रे मदीरा मद अरोगबा लागा। असी रीत रहता सीघल दीप महे बरस छव होई गया। अेक दन रावलजी श्री रतनसेणजी हे गढ़ चत्रकोट की सुरत आई आपकी फोज माहादेव रामेसर ने पड़ी जी महे सु लाषोटो आयो। श्री हजुर रे अरज आई जी महे ओलंबो सीरदारां ने लष मोकल्यो श्री हजुर के गढ़ चत्रकोट चालणो हुवे तो अबे बेगा पदार अर लखे अर श्री हजुर के सीघल दीप सासरवाड़ महे रहणो हुवे तो ज्या ही पाछी लीषसी, छव बरस होई गया है मे तो सारा ही दरसण करबा री अबलाषा महे लाग रीया हां, नही तो मे तो च्यार ही हजार फोज पाछी चत्रकोट जांवा। पहलाई तो श्री हजुर हे गढ़ चीतोड़ की सुरत लाग रही थी दुसरो सरदारां को लाषोटो आयो। पछै श्री हजुर के चीतोड़ जावा की चटपटीसी लाग गई। पछै आप जनाने पदारीया जदी राणीजी पदमणीजी सु कही के राणी जी आपके पीहर ने रहतां बरस छव सात हुवा परंत मन महे जाणांहा के सात महीनां हुवा आपको तो पीहर माको सासरो हे बोहोत घणो सुष आराम पाया। अबे तो देस मेवाड़ गढ़ चीतोड़ जाबा की अबलाषा लाग गई। अबे तो आपी आपणे घर ने चाला। पछै राणी पदमणी जी ने श्री हजुर सु अरज कीदी के गरीबनवाज सीष मांगो आपी बीदा लेर चाला। श्री हजुर तो सीष राजाजी नषे सु मागे अर अर हु सीष मारी मा साब न्षे सु मांगु। पछै सवेरा रावलजी डेरे

पदारीया सनांन संदीया पुजा कर कासो अरोग पछै कमर बादेर राजा जी समनजी रे दरीषाने पदारीया। राजा उठेर सामा पदारीया। रावलजी हे गादी री उपरे बीराजमांन जाई कीदा। राजा ने हात जोड़ेर रावलजी सु अरज कीदी के श्री हजुर होकम फरमावजे। जदी रावलजी ने कही के राजाजी माहे दन घणां हुवा अर माका देस मेवाड़ की ओलुश् आबा लागी सो माह बदा बगसावे। सो घर ने जावां रावलजी की बात सामलेर राजा समन चप होई रया। दोई घड़ी को दरीषांनो हुवो पान अतर नाज मुजरा हुवो। पछै रावलजी डेरे पदारीया पदमणीजी ने बाकी माजी साहब सु कही आपका जमाईजी ने असो होकम कीदो के राणीजी पदमणीजी अबे तो आपी घर ने चाला चत्रकोट की अबलाषा लाग रही है। असी रीत होकम कीदो जदी राणीजी ने कही के बाई पदमणी जी सीष देबा की बात तो आपका माजी साहब के हात है माके हात काही नही। पछै राजा समनसीजी जनाने पदारीयां जदी राणीजी ने अरज कीदी अर राजा ने होकम कीदो आज तो जमाईजी साहब सीष मांगे था सो मांके घर ने जाबा की ओलु आवे है। पछै राणीजी ने राजाजी सु कही मोसु बाई मदनकवर ने कही थी के आपका जमाई सीष के बदले कहीरीया है पछै राजाजी अर राणीजी दोही ने बीचार ने कही के आपणां सीघलदीप का राज महे सु आदो राज बाई मदनकवर हे देदो। पछै जमाईजी को मन हर जावेगा पदमणी जी केर रावलजी के बी बाता होई मने आपका बाजी सु कही सीष की सो पाछो उतर दीदो नही। पदमणीजी ने अरज कीदी के माजी साहब आपका ज्माईजी सीष मागे हे जदी माजी साहब ने कही के बाई सीष की तो बात थाको बाजी साहब ही जाणे। फजर हुवो रावलजी डेरे पदारीया सनांन सन्दीया कर कासो अरोग कमर बाद दस पांच सरदार लार लेर राजा समन के दरीषांने गीया गादी उपर जाई बीराजीया। पछै रावलजी ने राजा नषे सु सीष मांगी राजा ने सामलेर पाछी कही के राजाधीराज आही सीष आपहे होई सींघलदीप को आदो राज बाट लेवो। न्यालो परगणो राजगढ़ कर लेवो। अठे ही बीराजीया रहो। अर आपका देस महे जावा की तो सीष नही है। घड़ी दो घड़ी दरीषांनो परकास हुवो पछै डेरे पदारीया। पछै जनाने पदारीया। राणीजी पदमणीजी सु होकम कीदो के आप आज आपका बाजी साब ने कही के सींघलदीप को आदो राज लेवो अर अठे ही रहो। परंत राणीजी पदमणीजी थाका बाजी साहब सीष नही देवेगा तो थाहे मोकलेगा नही माहे तो माके घर ने जाबा देवेगा। आप नही चालो तो आपके बाजी साहब के अठे ही रहबु करो। परंत मे तो माका घर ने जावागा। पछै फजर हुवो। रावलजी डेरे पदारीया। सनांन सन्दीया कर कमर बांद लार सरदार लेर राजा के दरीषांने पदारीया राजा सु कही के माहे सीष हुवे। मारा भाग महे तो चीतोड़गढ़ सरीषो राज लषीयो हे सो आपका आदा राज की भुष मारे नही। आपका सींघलदीप का राज सरीषा तो

मारे केही जागीरदार हे। आप का राज की मारे चावनाश् नही। अेक बात कहु सो सामलो के गढ़ चत्रकोट ने महे महे बोली होई थी महला साथ केर मारे महला सरदारां ने बोल लगायो कसी रीत के रावलजी साहब आप तो समंदर तरेन सीघल दीप जाई जाईर पदमणी परण लावागा। अणी अेकर का बचन उपरे सींघलदीप आयो अर परणीयो। अबे आप नही मोकलो तोबी अनेसो नही। परंत मारा मालक अेकलींगनाथ ने मारो प्रण तो राष दीदो सो परण गीयो। अबे हु तो मारा देस महे जाउगा। राज समालुगा। मारो रहणो हुवे नही। पछै राजा जी समनसी ने हात जोडेरे अरज कीदी – राजाधीराज आपको तो सुरजबंस महे जनम हे। राजा श्री रामचंदर का बेटा पोता न्याती हो। अर हींदु जात का सुरज हो। मे गरीब सरीषा आपके केतांक ही चाकर हे। मारी आसग काही सो हजुर हे पामणां करू। परंत अेक बात मारो भाग बद गीयो कसी रीत के मारे पेटे बाई पदमणी ने जनम लीयो। अर लषंत था सो आप मारे घर परणबा पदारीया। दुजु तो मे गरीब रजपुत के अठे आप काही काम आवो। मेवाड़ का राजा अेक अरज मारी सामलो। राजा समनसीजी ने हात जोडेर अरज कीदी आप दस बीस दन सु मारा उपर होकम करावो हो सो हु बी मनष हु सो सारी ही समज रीयो हु। आप तो माहा मोटा राजा हो। आपके अठे रीया थका सरे नही ज्या हु बी समज रीयो हु। परंत अेक अरज मारी सांमलो असत्री की जात चारू बरण की हुवे है। पदमणी, हसतणी, चत्रणी, संषणी, ओ च्यार ही बरण महे पदमणी को बरण राजा है। च्यार ही जात महे अणा बाई हे लोग संसार कहे हे क या पदमणी हे। अणी हे आप परणीया हो। अर आपके घर ने ले पदारो हो। प्रथम तो आप आपके घरे कुसल पोछो नही। ई के बदले आप सु गेले ही पीसत्याईत उपजेगा। ओर अेक अरज ओर करू हे के बाई दरीयाव की अदबीच की टापु की रहबां वाली है। सरद का देस की जनमी हुई है। आपको देस मेवाड़ डुगरा की बीच हुवेगा। जणी सु तपती घणी पड़ती हुवेगा। उणी तपत का प्रताप सु अणी बाई के दुष उपज जावे ओर आपका देस महे तपत घणो पड़े जणी सु कागला को बरण कालो हुवेगा। उणी कागला की पीठ अणी बाई की देह उपर पड़ जावे तो उ ताप चालेर मर जावे ओर आपका देस महे आदमी डीगा है छोटा हे उणां आदमी की तपती की गरमी की बास बना सनांन कीदा की कसबोई अणी बाई हे आई जावे तो अणी के बीकार उपजे, ओर उतरकी हवा चाले हे सो वा हवा उतर की रोहीणी नषत्र की हवा लाग जावे तो बाई को कालज्यो फाट मर जावे। ओर आपका साथ सरदारां महे कोही सुरापण को रजपुत मारी नजर आवे नही। अतरी बात राजाजी श्री समनसीजी की सांमलेर पछै रावलजी ने उतर दीदो के सुणो हो राजाजी साहब ओर तो आपने कही आपकी बेटी का दुष दरद की सो तो ठीक है अर साची ही हुवेगा। परंत रजपुता की कही जाई तो बात

मारे आसे आई नही। कसी रीत के मारी पास रजपुत मारणा मरणां नही हुवे तो मारे अतरो राज छै सो कुण राबा देवेगा। दस हजार गांमा सु तो अक चीतोड़ को कलो हे। असा चीतोड़गढ़ सरीषा मारे अकसो कला है। सो रजपुत मारी लारे नही होता तो कदको ही राज ओर ही कोस लेता। पछै राजा समन ने कही के राजाधिराज रावलजी साहीब आपकी पास रजपुत मारकणा हे सो हुई जाणु हुं। सुरा रजपुत आपकी पास जुध करबा का मरबा मारबा को सुरा तो घणा है। परंत आपकी नषे रजपुत सतका सुरमां नही है। पछै रावलजी ने कही के जुध का सुरमा कसा अर सत का सुरमा कसा। अणी रीती हे आप मुहे समजावो। पछै राजा समनजी ने रावलजी सु अरज करी के आपकी फोज महे सु आछो रजपुत बुलावो भगवान ओर देवत ईष्ट वालो हुवे जी हे बुलावजो। जदी रावल जी ने बुलाया मोटो अमराव चवदमी मसल महलो नाम अभेराईजी ज्यारी साष डोडया गढ़ चीतोड़ रा चाकर मसलवा उणां हे बुलाया। ठाकुर अभेराईजी ने आईर जुहार कीदो। हात जोडेर अरज श्री रावलजी सु कीदी। रावल जी ने राजाजी सु कही के यो रजपुत हाजर है। मारकणो, वाको तरवारीयो आईर हाजर हुवो है। जदी राजा ने कही के सरदारां सनांन कर आवो। पछै अभेराईजी ने सनान कीदा। दवादसत तलक कर हाजर हुवा। पछै अभेराईजी हे बेठाई दीया। मुडा आगे ढाल तलवार मेल दीदी। अर हात महे माला दे दीदी अर कही के सीघल देस को काकड़ तो दुरो हे, परंत मनोहरगढ़ को काकड़ डोड़ कोस है। असी रीत समजाई दीदा अर कही के सरदारां आपके ईष्ट हुवे जणी देवता को ध्यान करो। पछै आप समरण करबा लागा। आंष मीच दीदी। राजा जी ने आपका साथ का सरदारां सु कही के याहे काकड़ उपरे सीष देवो। पछै सरदार राजा समनसीजी काने उठेर ठाकुर अभेराईजी की उपर लोह कीदो सो माथो उड़ पड़ीयो। माथो टुटता ही हाथ महे सु माला छुट पड़ी। धड़ गुड़ पड़ीयो। आ रीत सगलाई दोही तरफ का सीरदार देष रीया था। पछै राजा ने रावल जी सु कही के अणी रीत का सुरमा रजपुत सगली ही फोज का हुवेगा। पछै रावलजी ने कही के राजाजी हुतो समज्यो नही। जदी राजा ने कही के आप हे समजावां। पछै राजा ने आपणां रजपुत हे बुलायो। गरीब सीपाई हे बुलायो नाम नहल आसजी जात जी री माषर। आईर राजा सु मुजरा कीदा। अरज कीदी के गरीबनवाज आज चाकर सु काही काम है। जदी राजा ने कही के आज थाकी चाकरी की बीगत आई। आ बात सामलेर नहल आसजी घणो षुसी हुवो। कही के मारो भाग धन है। कही के जावो सनांन कर आवो पछै संनान करने दरीषांना आया। बेठाई दीदा। ढाल, तलवार, मुडा आगे मेल दीदी। हात महे माला दे दीदी। अर मनोहरगढ़ को काकड़ की कह दीदी। पछै आष मीचेर आपका ईसटदेव को समरण करबा लागा पछै रावलजी का साथ का सरदारा सु कही के लोह करो बाही लागी रह नही। पछै

रावलजी का सरदारा ने लोह कीदो। नहल आसजी को माथो उड़ पड़ीयो धड़ बेठा बेठा माला फेरब कीदो। माला फेरतां फेरतां समेर आयो। जदी दोही हात महे माला लेर नमसकार कीदो। अर माला हे गला महे नांषी। माथो नही थो सो धड़ उपर माला पड़ेर धरतीया पड़ गई। पछै ढाल तलवार पकड़ेर नहल आसजी को धड़ उठ बेठो हुवो। अर चाल नीसरीयो। पछै नहल आसजी को धड़ गाम मनोहरगढ़ का काकड़ ने जाईर पड़ीयो। (पछै राजाजी ने रावलजी सु अरज कीदी के आपकी फोज महे जुध करबा का सुरमा तो घणां हे। परंत सत का सुरा रजपुत नही है। असा सत का सुरा राजपुत आपकी नषे हुवे तो आप भलाई बाई पदमणी जी हे ले पदारो। आ बात रावलजी ने नजरीया सु देषी। जणी बात को अचरज हरक दोही रावलजी के हवा। पछै रावलजी डेरे पदारीया। पछै रात के समीये जनांने पदमणीजी रे अठे पदारीया। सगला राजा का दरीषांना का पदमणीजी री आगे कहे दीया। पछै पदमणीजी ने अरज कीदी। अर रीत बताई के आप दरीषांना पदारो जदी मारा बाजी साहब नषे सु आप अतरी चीज मांगजो। प्रथम तो गोरोजी, दुजो बादलजी, तीसरो फातीयाजी, चोथा जेतमालजी, पांचमो कलो, चठो रामो, अ चार ही तो सरदार दोई चाकर आप मांगजो जदी आपहे मारो बाजी साहब कहेगा के च्यार ही तो मारा जागीरदार सगा है सो सरदारां हे तो डाईचे देबा की पो मारी नही जदी आप असी रीत कहजो के मे च्यार ही सरदारां हे राजी कुसी सु ले जावा जदी तो कोही अनेसो नही। पछै बाजी साहब होकम कर देवेगा तो हुं घणाई वाह लार ले लेउगा। पछै फजर हुई। रावलजी डेरे पदारीया। सनान कीया संदीया पुजा कर कासो आरोग दस पांच सरदार लार लेर राजा के दरीषांने पदारीया। मुजरा हुवा। गादी री उपर जाई बीराजीया। अर रावलजी ने कही के राजा साहेब मुहे सीष हुई चाईजे। राजा बोल्या के हजुर काल की बात भुल गीया। पछै कही के बात तो बीसरई नहीं। परंत मारे तो मारे घर ने जाउगा। अर हु आपकी नषे सु चीज मांगु हु सो मली चाईजे पछै राजा ने कही के होकम फरमावजे। जदी रावलजी ने कही के प्रथम तो सरदार च्यार गोरोजी, बादलजी, फातीयाजी, जेतमालजी, और रामो, कलो ओ छव ही माहे मील जावे। जदी राजाजी ने कही के रामो कलो तो चाकर घर का है सो पहलाई डाईचे दे रषीया है। परंत आपने होकम कीदो सरदार च्यार को सो ओ मारा घरउ लोग नही। ओ तो च्यार ही अमराव है। कोहीक इरादा सु मारी न्ष दुष सुष भुगते हे अर बेठा है। अणी सीघलदीप को देस सरद को हे सो कुण रहे। परंत सुष दुष देषे हे अर मारी नषे बेठा हे। अणा च्यार ही सरदारा सु चाकरी लेबा को जोर तो मारो हे। परंत डाईच देवा को जोर तो मारो सरदारां उपरे नही। जदी रावलजी बोल्या के राजाजी साहब आपको हुकम हुवे तो हु अणां सरदारा हे राजी करेर मारी लार ले जाऊगां। जदी राजा जी ने कही के आपकी

लार कुसी सु चाले तो हु बरजु नही। पछै रावलजी डेरे पदारीया रात महे राणी पदमणीजी रे अठे जनाने पदारीया। दरीषाना का समीचार सगला पदमणीजी री आगे कह दीया। जदी सामलेर पदमणीजी ने कही के अबे तो काही अटकाव नही। च्यार ही सरदारां हे तो हु लार ले लेऊंगा। पछै फजर हुवा। रावलजी तो डेरे पदारिया पछै कवरी पदमणी जी ने अकल उपाई। सोनां की राषी कराई ज्यांके माणक नग लगायो। अर जतरे राषी को तहवार बी नजीक आई गयो। अतर पान मीठाई का गुलाल का हे माल भर लीया। कंकु केसर अगर कसतुरी की थाला भराई लीदी। ओर लारे सहेल्या सोला ओर दास्या लारे च्यार ही सरदारा की हवेल्या ने बाई पदमणी जी पदारीया। गोराजी, बादलजी फातीयाजी, जेतमालजी च्यार ही सरदार अेक ठकांणा अकटा हुवा। अर मजलस कीदी। सभा दरीषांनो बणायो। च्यार ही सरदारा के मदनकवर ने राषी बादी। पछै मीठाया बाटी। अतर को छड़काव दरीषांना की सभा महे कीदो। ओर गुलाल उड़ाई। पछै बाई साहब मदन कवर पदमणीजी ने च्यार ही सरदारा की आरती कीदी। पछै च्यार ही सरदारां नषे सु सीष मांगी। कही के दादाजी साहब आछा रहजो माहे तो रावलजी साहब ले जावे है सो आप कुसी सु रहजो। पछै च्यार ही सरदारां ने बाई मदनकवर स कही के आप हे रावलजी चीतोड ले पदार हे। सो मने बीचारी के मारा भाया सु तो मल आउ पछै सरदारा ने कही के बाई साहब आप पदारो। अर आपका षांवद की आग्याकारी रहजो। परंत आपने पदारतां पदारतां राषी को बोज मा गरीब रजपुतां के माथे आपने मोकलो बोज मेल दीदो। जणी सु बोदी पुरांणी काचली तो गरीबा की बी लेणी पड़ेगा अर काचली को होकम आप फरमावो जसी रीत में चाकरी उठाई सकागा। जदी पदमणीजी ने कही के मारे ताबे तो बाजी सहाब सु सवाई बात आप की समजु हुं। जदी सरदारां ने होकम माथे चड़ायो अर कही के बाई आप होकम फरमावो। जदी पदमणीजी ने कही के दादाजी आप बगसोगा ज्याई हु कसी रीत नही लेउगा। सरदारा ने कही के आप मुडा सु होकम फरमावोगा ज्या ही चाकरी में करागां जो मे नही देवा तो माहे आप रजपूत कहो मती। होकम करोगा जो ही हाजर करागां। बाई साहब मा च्यारा ही का माथ आपकी हाजर हे। जदी मदनकवर पदमणीजी बोली के आपने दी दी ज्या ही चीज मारे मोकली हे। अबे ओर काही लेउ नही। आपने अमोल चीज थी देह को मालक माथो सो आपने दे दीदो अब मारे ओर चावनां काही नही है। अणी महे सुरज चंदरमा साषी है जो बदलेगा अर बचन हारेगा जी हे श्री सुरज, चंद्रमा, अगनी, पवन, जल पांच ही देष भजगा सत होई। जतरे अक सहेली ने पुछीयो के बाई साहब आपका भायां ने काही बगस्यो। जदी पदमणीजी ने कही के मारा भाई च्यार ही ने मुह काचली महे आपका माथा दीदा। राजी होईर मने लीदा। जदी पदमणी जी ने भाया सु कही के दादाभाई

अंक हु कहु। ज्यां मारी बात सामलो के मुहे तो श्री रावल जी साहब चीतोड़ ले जावे हे। अर आप अठे ही रहोगा। उठे चीतोड़ ने मारी सु कोही रीत को दंगो बद जावे जदी थाके माके छेटो सतरासे कोस को अतरो दुराको रह जावे। मारा ताबा का समीचार थाहे कुण देव। अर आपने महे राषी बादबा महे चीज दीदी वा चीज मारे अरथ आवे नही। अर आपने दीदी हे तो दे जाणो अर मारी लार चीतोड़ पदारो। ओ बात पदमणीजी की सामलेर रजपतां का मन महे बहम उपजो। अबे बाई मदनकवर की लार कसी रीत चाला। लार चाला तो डाईचवाल कुहावां। जो चीतोड़ नही चाला तो बचन हार कुहावां। बात सामलैर पछै फातीया जेतमालजी ने कही के सरदारां अेक मारी बात सामलो के जीजीबाई मदनकवर ओर जीजा साहब रतनसेणजी ओ तो पाछे सु आबु करेगा। अर आपी च्यार ही भाई आपणो साथ सराजांम घोड़ा टटु मनष बद गुलाम रजपुत सरदार आपणां ताबा का हुवे जेर आपी अणां की पहला गढ़ चीतोड़ चाला। आ बात सामलेर च्यार ही सरदार घणा राजी होईर चालबा की तीयारी कदी। च्यारी सरदार कवच कर कमरा बाद बारा ही आवद बादेर पछै राजा समन के दरीषांने गीया। राजाजी सु मलबा सारू च्यारी सरदारां की कमरा बंदी देषेर राजा कही के आज सरदारां की तीयारी कठी ने होई। पछै सरदारां ने अरज कीदी कवर बाई मदनकवर हे सीष दीदी सांमली हे बाई हे पोछाबा रे बासते जावा हा। राजा बोले के बेगा पदारजो। पछै च्यारां ही ने अरज कीदी के श्री हजुर देस सीघलदीप तो अणी देह सु देषां नही। अर आवा नही। फेर देह धारण करांगा जदी दीषी रहेगा जदी देषागा। या बात सुणेर राजा कुसी हुवा के अबे बाई मदनकवर का भाई 4 च्यार अणी की लार हे सो माह घणो सुष उपज्यो। पछै राजा अर च्यार ही सरदार मलीया घणां हेत हमलास सु राजा ने तलक मंगाई, केसर को तलक कर सोना का नारेल सरपाव आवद घोड़ा हाती जर जेवर देर च्यारा ही सु मलेर बीदा दीदी। पछै च्यार ही सरदारां की जाहाजा मंगाई ज्याकी लार लोग की गणती हुई सरदार च्यार गोरोजी बादलजी जात का –

पातीयाजी जेतमाली जात का बागेला राजा जी का तनीक च्यार ही सरदार ओर आ च्यारा ही का अमराव बीस 20 ओर रणवास को सात 4 च्यार ओर दासीया चोवीस 24 ओर बीस ही सरदार को महलो साथ रजपुताणीया अठाईस 28 दासीया तीस 30 घोड़ा च्यारसे चोईस 424 हाती 10 नगारा नीसाण 4 ओर आ की फोज को चाकर सपाई सरबंदी सुदा नवसे चमोतर 974 अकंदर च्यार ही सरदार को साथ पदरासे अड़सट 1568 अतरा साथ सु गोरोजी, बादलजी, फातीयाजी, जेतमालजी चाल नीसरीया। जीहाज महे बेठकर रामेसर के करड़े डेरा जाई हुवा। जठे श्री रावलजी फोज पड़ी थी सो उणी ने पुछीयो के अबे माका धणी कद आवेगा। पछै सरदारां का साथ वाला ने कही के अबे दस पांच दन महे आवेगा। पछै च्यार ही सरदारां की फोज तो चीतोड़

की तरफ चाल नीसरी। रामेसुर सु मकांमा उपर मकांम कर गोराजी, बादलजी, फातीयाजी, जेतमालजी का डेरा गढ़ चीतोड़ आई हुवा। पछै रावलजी रतनसेणजी ने कमर बादेर सीष मागबा रे बदले राजाजी श्री समनसीजी रे दरीषांने पदारीया। जुहार हुवा। गादी उपरे बीराज गीया। राजा ने कही के अबे आपहे सीष देवागा। कवर पदमणी की लार रषवाला आप सु ही तीयारी होईर चाल नीसरीया। अब कणी बात को अनेसो नही। पछै राजा ने सीष मागबा री सामंगरी मंगाई। जतरी रूकम देणी थी जतरी सरब मगाई डेरे ज्मां कराई। पछै जीहाजा तीयारी कराई रावल समरसी जी रावल रतनसेणजी मलीया। पछै राजा ने हात जोडेर रावलजी अरज करी के आप तो हीदवाणी सुरज कुवावो हो। हु तो छोटासाक देस को भोमीयो हु। जणी सु कंकु कन्या बोदो पुराणो कपड़ो बण आयो जसो हाजर कीदो। अर माका मुडा आगली लड़की है अण समज हे घर घोड़ीया रजपुत की बेटी है। सो मोटा राज की बाता जाणे नही है। सो मारी बाई हे श्री हजुर दासी कर बरतसी। अणी रीत को कहणो तो मारो हे। नीभांवणो श्री हजुर को है। या कहेर राजा श्री समन की आष महे जल आई गयो। पछै आमा सामा मुजरा करेन चाल नीसरीया। पछै बाई मदनकवर राजाजी सु मलबा आयां। राजा ने कही के बाई कोही तरेको अहं मन महे लावो मती। अर थारो षावंद कहे जसी रीत बरजतो होकम नाषो मती असी कहेर बाई हे बदा दीदी। ओर मासाब दादीसाहब षोला बेठेर पछै मा साहब सु मलीया। पछै बाई हे बदा दीदी। रावलजी रतनसेणजी गढ़ मनोहरगढ़ सु चालीया। छव बरस सात महीना रीया। पछै पदारीया बीक्रम संमत बारासे अड़तीसा बरषे 1238 असाड़ सुदी पंचमी बार बुदवारश् के दन जीहाज महे बेठेर पदारीया। पछै दन नव ताही जल महे चालीया। असाड़ सुदी पुनम के दन आईर रामेसुर के करड़े डेरा हुवा। आपकी फोज पड़ी थी जो दोई साथ पाछा अेक हुवा। पछै रावल रतनसेणजी ने बीचारी फेर देह धारण करांगा। जदी सेतबंद रामेसुर का दरसण करागा। जणी सु सावण को महीनां रामेसुर ने कीदो अर ब्रह्मभोज कीदो। तीसही दन ताई रावलजी की तरफ से अंक दन को ब्राह्मण भोजन च्यार हजार अेक सो सड़सट को 4167 को दन रोज होबु कीदो। महीना अक का ब्राह्मण अेक लाष पचीस हजार उपर दस 125010 सवा लाष को ब्राह्मण भोजन हुवो। ओर माहादेव हे केही पदारथ चड़ाया। केही पदारथ ब्राह्मणाह दषणा महे दीघा। सोडस प्रकार सु भले प्रकार पुजा कीदी। अनेक प्रकार का नग रामेसुर का भंडार महे पदारीया। नमसकार कनक दंडौत करी। रामेसुर अेकलीग अेक ही जोत समज हात जोडेर सीष मांगी हे सीव चीतोड़ को राज तो आपको ही दीयो हुवो है सेतबंद अकलीग अेक ही जोत हे श्री जी की कृपा सु राह की नीकास कुसी की मली चाहीजे। पछै मंदर बाहरा नीकल परकमा देर चड़ायो। घोड़ा अेक सो अेक 101 हाती सोला पछै नमस्कार

कर चीतोड़ की राह लीदी। संमत बारा से अड़तीसा बरसे 1238 का भादवा बुदी पंचमी रामेसुर सु चाल नीसरीया। पछै गुरनाराईण श्री गोरषनाथजी सु अरज कीदी के सुषपाल महे बीराजे तथा हाथी असवार हुवे। तथा रथ असवार हुवे जदी बापजी गोरषनाथजी बोल्या के रतनसेन दन रोज राहा का चालनां कदीषल हमसे देषी जावे नही सो तुम चीतोड़ पोहोचोगा जीस रोज में बी चला आउगा। पछै सगलो साथ रावलजी को बापजी सु नमोस्तु आदेस करेन चाल नीसरीया। पछै तीरथ जातरा करता करता महीनां अठारा महे गढ़ चीतोड़ पोहोचा संमत बारासे गुणचालीसा बरषे 1239 का रावलजी का डेरा चक्रघंटा का बाघ महे हुवा। नदी गभीरी का घाट को नाम चक्रघंटी कहे है। कसी रीत राजाजी चतरंगजी मोरी पुवार का राज की बगत महे मलजे ही रहता। नदी गभीरी के करड़े तथा नदी महे हदब मांडता अर मलजेठी चकरां सु हदबा उड़ावता। उण बात सु नदी गभीरी का घाटा को नाम चकर घटो कहे हे। श्री हजुर का डेरा चकरघंटा का बाघ महे हुवा। संमत बारा से गुणचालीसा बरषे 1239 माहा सुदी पंचमी रवीवार के दन डेरा हुवा। जठा पछै दन तीन केड़े गुरूनाराईण गोरषनाथजी बी पीदार गीया। पछै श्री अकलीगनाथ को दरीषांनो हुवो। देस मेवाड़ का सरदार अमराव जागीरदार भाई बेटा और गोरो बादल फातीया जेतमाल सगला ही दरीषांने आया। नजर नजरांणा, नछरावल हुवा। देस मेवाड़ गाम गाम घर घर मनष के दल महे उछब लाग रयो और देस का चहुवांण, राठोड़, सोलंषी, झाला, पुवार, देवड़ा, गोड, परवड़, बेस, डाभी, मांगट, बड़दाला, बाहेला, षीची, सोनीगरा, हाड़ा, जादम, मकवाणा, टाक, सकरवार, गोतमा, बनाफर, पढ़ीयार, चंदेल, तवर, सगला मुजरा करबा रे बदले हाजर आया। गोरा, बादल, फातीया, जेतमाल कुणस बजाई जुहार कर हात जोडेर दरीषांना महे उबारीया अरज करी के श्री हजुर हे पाछै सु दन घणां लागा। पछै हजुर ने होकम कीदो सरदारां परदेस को मामलो बारबार जावो हुवे नही। जणी सु तीरथ जातरा करता धीरे धीरे चाल्या आया। जदी सगला ही सरदारां ने अरज करी के गरीबनवाज ने भलो तो काम कीदो सो तीरथ जात्रा करता पदारीया। पछै श्री हजुर ने होकम कीदो के सरदारा थे चारा ही तो माहे मलेर उरा आया। जदी गोरा, बादल, फातिया, जेतमाल ने अरज कीदी के गरीबनवाज माहे माकी जीजी बाई ने बचन महे ले लीदा जदी जीजी बाई के अठे रहणो पड़ीयो बचन चुका तो माको सत जातो रहे। अर लार आवा तो डाईचवाल कुहावा। जणी बात सु श्री हजुर की पहला गढ़ चीतोड़ आई गीया। पछै राणी पदमणीजी आपका च्यार ही भाया हे बुलाया। पछै गोरा, बादल, फातीया, जेतमाल च्यार ही जाईर रांणीजी पदमणीजी सु मल्या कुसल षेम पुछीयो। कुसी होई आपके च्यार ही भाया उपरे राणीजी पदमणीजी ने असरपीया उवार ने कंगीरा हे लुटाई। पछै च्यार ही सरदार दरीषांना आया। पछै सेठ साहुकारां

का नजरांणा हुवा। नछरावला होई। पछै श्री जी हजुर का घर का बही बंचा, राघाचेतन। दोई भाई उमेदवार हुवा थका ज्या की उमर बरस तेवीस की दुजा भाई की उमर बरस वीस की वाने आईर आसका दीदी। ब्रहमाव कीदो। पछै नछरावल कीदी। रावलजी रतनसेण जी उठेर मल्या कुसल पेम पुछी। घणो सुष उपज्यो। श्री हजुर का डेरा चक्रघंटे बरस अंक ताई रीया जणी महे। अतरो काम हुवो। प्रथम तो राणीजी पदमणीजी के रहवास की जल महल तलाव बदायो जणी की अदबीच जल महल करायो। चीतोड़ का कला उपरे। और पदमणीजी का सागर पेसा का लोग बाद गुलाम के बदल तलाव की पाल उपरे महलात हुई। ओर बारादरी जनांनी कछेरीया बणी। ओर च्यार ही सरदार पदमणीजी का भाई ज्यारे बदल जाह दरीषांना महल तीयार हुवा संमत बारासे चालीसा बरषे 1240। पछै रावलजी श्री रतनसेणजी चक्रघंटा सु गढ़ चीतोड़ का कला उपरे पदारीया। गढ़ उपरे बड़ा महला ने दरीषांनो हुवा। माहा सुदी तेरस मंगलवार पुष नषत्र महे? श्री जी को जस दस हजार और बतीस हजार अकंदर बीयालीस हजार पेड़ा चीतोड़ का राज का महे जस छाई रयो के रावल श्री रतनसेणजी सींघलदीप पधार ने पदमणी परण लाया। पछै गोराजी, बादलजी, फातीयाजी, जेतमालजी च्यार ही सरदारां हे श्री हजुर ने हत षरच रे बदले जागीरी बकसी। अेक अेक सरदार हे पांच पांच लाष रूपीया को रूजक बकस्यो। च्यार ही सरदारां हे बीस लाष को रुजक बकस्यो। पछै पदमणीजी का घरू लोक रामो कलो दोवाई हे अेक अेक लाष को रूजक बकस्यो। रामा कला हे सरदार जागीरदार कर बरजीया। पछै माहाराणीजी श्री पदमणीजी की डाईचा की चीजा भंडार महे जमा होबा लागी। ज्याकी यादगीरी की नामा नवेसी पछम तो राणीजी मदनकवर पदमणी पुवार ओर गजमाणीक हाती दोई ज्याका माथा महे सु मोती नीसरे सवा मण 11 महीनां बारा महे कपोल हाती की षोले। जी महे सु नीसरे तोल रूपीया पेतीस भर सु ओर घोड़ा नगा दोई सजल पंथा बाल तेजी ज्याकी कीमत कोस साठ ताही समदर का पाणी उपरे चाल्या जावे। अर साठ ही कोस पाछा मकाम उपरे आई जावे पहर च्यार महे ओर नग अण मोला ज्याई की कीमत महल महे दीपक नही करणो। अेक नग मेल देणो। सो दीपक सु चोगणो उजास रहे। अणी रीत का नग मण अड़ाई 2॥ पेतीस रुपीया भर सेर सु ओर पांच ही बरण का मोती, गुगला, पीला, लाल, स्वटीक देरीयाई, पांच ही ब गहणो बारा करोड़ को। बहरी जोगणीया को हार कठलो दोही अठारा करोड़ का। ओ दोही चीज पदमणीजी की दादीजी मां ने दीदी। ओर ईटा सोना की नग 38 जी को तोल अेक ईट तोल की सेर अगतीस सात माला पोणी ग्यारा उपर। असी ईटा अड़तीस ओर तास बाकी मोतीया की झालरी लागी हुई जे पोसाक सोला 16 ओर रेसमी पोसाक की गणती नही। ओर रेसमी जाजमां, पड़दा, कनाता, चुगा, तंबु, सगलाही रेसमी पाव

पलोट रोझण सुधां रेसमी च्यार च्यार उड़ता सगली चीजा ओर लारे डाईचवाल रामो कलो चाकर घरू लोग जाका मनष 28 ओर सहेल्या 16 ओर दासीयां का सोला सोला मनषा का च्यार हफता जा का मनष चोसट 64 सगला मनष अकसो आठ 108 डाईचवाल और पदमणीजी का भाई 4 गोराजी, बादलजी 2 फातीया जी जेतमाल 4 ज्या की लार रणवास को लोग वाका दास दासी उमराव बीस 20 ज्याई का दास दासी ओर घोड़ा च्यार से चोवीस हाती दस 10 ओ सपाई सरबंदा चाकर सुदा लोग पदरा से अड़सट 1568 सीघलदीप सु राणाजी री लार आया। लोग सहुकार बरामण धाभाई नाई सुदा ज्याका मनष अेक सो गुणीयासी 179 अकंदर सरदार अर दुसरो लोग चाकर सरबदी सुदा मनष अठारासे पचपन 1855 सरदार 4 गोराजी, बादलजी, फातीयाजी, जेतमालजी च्यार ही पदमणीजी का भाई साह करता। ज्या की कीमत ज्याका धड़ केर माथा के छेटी पड़ीया केड़े कोरो धड़ तरवार बावत थको कोस बारा चाल्या जावे सासत का न्याती अस ही घरू लोग चाकर दोई ज्याको नाम रामा कलो ओ छव ही तो अकंत राज पहला श्री रावलजी रतनसेणजी पदमणीजी परणीया नही था जणी बगत महे गोठा हुवे थी जणां ही रीत पदमणीजी का हरष की गोठा गढ़ चीतोड़ महे होबा लागी चवदा ही मसल ओर आपका भाई बेटा परोथ कवलोग बहीबंचा बंसावली ओर मोटा मोटा साहुकार आका घर का नोता कोका नत तथा पातरे गोठा होबा लागी बदाउ उछब हुवा। पछै श्री जी ने होकम कीदा के सगला सरदार षट दरसण हे श्री अेकलींगनाथ का रसोड़ा को नोतो हे सो सारा ही जीमबा आवजो। सगला सरदारा ने श्री जी को नोतो मांनीयो। परंत आपका घरू बही बंचा राघा चेतन बंसावली ने नोतो मांनीयो नही। जदी श्री हजुर ने होकम कीदो। कहोसा आप कणी रीत जीमबा नही पदारो। जदी बंसावली राघा चेतन ने अरज कीदी के श्री दीवाण हींदवा सुरज पापई राई पराग हीदवाणी रसी सीसोद गहलोत बंस रा अहोत रघुबंसजती चत्रकोपती अरज असी हे श्री हजुर को नोतो मानीयो। परंत अेक अरज असी है श्री हजुर सीघलदीप पदारीया माहाराणी जी पदमणीजी हे परणआंणी ज्याको नामो श्री रघुबंस का पुसतक महे पाटनामा महे लंषावागा। असी रीत आगे सु चली आवे है। श्री रावलजी श्री बापाजी रा हात री रेष षीथ की चली आवे है। श्री हजुर बी जाणे है। आ बात सुण श्री हजुर ने होकम कीदो आपने कही ज्या सब ही साची हे। ओ तो गोठाश् कुबी कसबोई की, तीज तहवार की सरदारां की तरफ ही हुवे छै। परंत बारा बरस से महश् पाछा चीतोड़ ने आया जी की बदाई की गोठा सगलाई सरदार गोठ करे हे। जीसु में बी सगला सरदारां हे गोठ देवा हां। आप यो नोतो तो मान लेवो। पछै दुसरी बगत माका बंसावली जाण अर अनईत करांगा जी के बदले ओर नोतो देर पछै अनईत करागा। पछै राघाजी चेतन जी ने नोता हजुर को मानीयो पछै सवेरा सगला

सरदार श्री हजुर के अठे जीमबा पदारीया। रणवास महे गोठ होई उठे ही रणवास रा जनानी सरदार हाजर था। सगला सीरदार पाथे बेठा। श्री जी उबा थका जदी सरदारा ने अरज कीदी के श्री जी पण बीराजे जदी हजुर ने होकम कीदो सगला सीरदार, भाई बेटा, सगा समंदी, जागीरदार उदक अन्यामी षट दरसण पुजनी कराई षजमत महे उबा हां अर थे सगला ही सीरदार जीमो पछै सगला सरदार जीम चुका दरीषांने बीराज्या अतरपांन नाच मुजरा हुवा पछै रसोड़ा रा हुवालदार ने आईर अरज कीदी श्री जी पण पांते पदारे जदी सारा ही सरदारां ने अरज कीदी के श्री हजुर पण कासो अरोगे। पछै श्री हजुर रसोड़ा के कटड़े आण बीराज्या अर कासो आयो। छतीस सालणां बतीस भोजन का थाल श्री हजुर री आगे पदराई श्री हजुर जीमबा लागा। बरामण का हात को रसोड़ कीदो थको रसड़ो बोहोत सुंदर हुवो श्री हजुर जीमता जावे अर रसोड़ा का बषाण करता जावे अतरा महे राणीजी ने अरज कीदी के आज की रसोई कसीक सवाद की होई। श्री हजुर ने कही के राणीजी आज को रसोड़ो घणो सुंदर हुवो। जतरे राणीजी बोल्या या रसोई आज की तो सवाद अणी रीत होई के श्री हजुर पदमणीजी परण पदारीया जणी सु सवाद होई। या बात सुणेर श्री जी घणां कुसी हुवा। अर होकम कीदो के सुणो हो राणीजी मरम को वचन तो कोही बराबरी को होवेगा जो कहेगा जी ही कहे सकेगा ओर की आसंग नही। असी रीत महला सरदारां केर श्री हजुर के बड़ी षुबी कसबोई की बाता होई ओर रसोड़दारा ने अन्याम पायो। अेक दन श्री हजुर हे जनम का बरस की चीता आई। बीयासी बरस की आपकी आई बल थी सो श्री गुरनाराईण श्री गोरषनाथजी ने रावलजी रतनसेणजी की आई बल बढ़ाई। अेक सो तीस बरस की जीवाई रतनसेण जी की आई बल बढ़ाई। अेक सो तीस बरस की जीवाई आई बल कीदां जणी बात सु रावलजी ने बीचारी के सवेरा ब्राह्मण हे बुलाईर पदमणीजी के जनमपत्री जनम का बरस बरतावणा देषा कतराक बरस पदमणीजी का बाकी रीया। अर पछै गोराजी, बादलजी, फातीयाजी, जेतमालजी अणा च्यार ही सरदार ओर रामा कला आकी बी जनम पत्रयां देषावणी। पछै दरीषांनो हुवो पछै श्री हजुर दरीषांने पदारीया। पछै आछा पढ़ीयाश् होया जोतसी ब्राह्मण हे बुलाया। सात ही जनम पत्रीया बरताई। अक तो पदमणीजी की। छव सरदारां की। अंकत करने जोतसी हे पुछीयो। पदमणीजी की जीवाई का बरस कतरा है पछै जोतसी ने कही के गरीबनवाज राणीजी पदमणीजी की आई बल बरस सताईस की आई बल नीसरी जी महे बरस तेवीस तो भुगत लीया बाकी पदमणीजी का बरस आई बल का च्यार रह गीया। पछै गोरा, बादल, फातीया, जेतमाल राम कला आका बरस बरता आसो उमर भगततां बाकी रीया कोही का दोई बरस कोही का च्यार बरस कोही का तीन बरस कोही का पांच बरस अतराक रीया। अणी रीत का बरस छै छही सरदारा

रा रीया। पछै श्री हजुर ने बीचारी के माकी उपर तो श्री गोरषनाथ जी की कृपा होई सो माकी आई बल तो आपने अड़तालीस बरस ओर बड़ाई दीदा सो। अेक सो तीस बरस की आई बल कर दीदी। परंत राणीजी पदमणीजी का तो बरस च्यार ही रहे गीया। चवदा राजलोक पहला था जे गुदरत बाकी राणीयां पांच रह गई। परंत राणीयां की बी अवसता होई गई। अर तरूण असत्री पदमणीजी हे तो वाका बी बरस च्यार बाकी रहे गीया। पछै फेर कसा राजा की बेटीया परणबा के बदले हेरता फरांगा। आपणी जीवाई का बरस तो घणां अर पदमणीजी की जीवाई का बरस थोड़ा राणीजी पदमणीजी के बहुत दुष देषीया फोड़ा भगतीया बरस चवदा पदरा ताई दुष भगतीयो। संमदर की पार गीया। अर माहा दुष सु परण लाया। श्री अेकलींगनाथजी च्यार बरस केड़े पदमणीजी सु छेटो देगा। अर अषलाई रह जावांगा जणी सु अणी बात को उपाव तो काही न काई करणो। पछै रावलजी रतनसेणजी गुरनाराईण गोरषनाथजी सु अरज कीदी आपकी बीचारी बात ओर जनमपत्री राणीजी पदमणीजी का बाकी बरसा की सगली ही बात गुरनाराईण सु कहे सुणांई। पछै बापजी गोरषनाथजी बोल्या के रतनसेण तु कहेगां जेता हुवेगा अर करना पड़ेगा। परंत कोई आदमी हुवे तो उनकी कलप सदावे महीनां छव ताई जीन महे उनकी आई बल डोडी दुणी होई जावे। परंत राणी पदमणी तो अवरत की जात है सो कलप तो उनसे सादना हुवे नही अबे रतनसेण तु कह जेसा करे परंत बारा महीनां तलक पदमणी हे दवाई पीणी पड़ेगा। जदी रावलजी ने कही के गुरदेव पीवेगा जणी दन सु उमर बड़वा की दवा पदमणीजी पीबा लागा। संमत बारासे अगतालीस का साल महे 1241 का महीना तेरा दवा पीदी जणी सु राणीजी पदमणीजी का बरस तेरा 13 उमर का बदश् गीयां पदमणीजी को जनम बारासे अठारा का साल कौ जनम 1218 सताईस बरस की उमर पदमणीजी की थी सो गोरखनाथजी ने तेरा बरस बदाईर बरस चालीस की उमर कीदी। पदमणीजी का पुरा बरस हुई जावेगा। संमत बारासे अठावन के साल 1258 बरासे अठावन महे पदमणीजी की आई बल होई चुकेगा। अणी रीत गुरदेव की कृपा होई आगे घड़ी अेक बी नीसरे नही। पछै श्री गुरनंराईण सु अरज करी के गरीबनवाज गोरा, बादल, फातीया, जेतमाल, रामो, कलो आ का बी दो दो च्यार च्यार बरस रह गीया। आ बात बीचार ने रावलजी हे सोच उपज्यो। गुर देव छव ही रजपुत तो पदमणीजी की आई बल पहेलाई होई चुकेगा। पछै कोई दसमण पदमणी के बदले पीसाईत करे तो पछै साह करबा वालो दीषे नही जणी बात की अरज करूं हूं। पछै राणीजी पदमणीजी का भाया की अरज गुरनाराईण सु कीदी के गरदेव अणां रजपता को तो काहीक उपाव करणो चाहीजे। आ बात रावलजी की सामलेर बापजी गोरषंनाथजी ने कही रतनसेण अक असा कर तेरा गाम चीतोड़ का सरबेत लोगां हे अमर होण की चीज लाव। दुणांगर से सरजीवण

जड़ी मंगाई कर सरब लोगा को पाईदे सो आषा ही गाम चीतोड़ का लोग सब ही अमर हो जावेगा। कोही अेक बी लोग मरे नही आषाही चीतोड़ का लोग सदाई अमर ही रहबु करेगा। आ बात गुरू गोरषनाथजी की सामलेर रावलजी थर थर कांप उठीया। रावलजी ने हात जोडेर अरज कीदी के गुरदेव आपके तो हु चेलो हुं न्याती हुं अर हु तो चरणा को ताबेदार बण रयो हुं मारी उपरे अतरो कोप नही चाईजे। पछै गुरदेव गोरषनाथ जी ने कही के सुण रे रतनसेण तेरी कु कलप जोग मत का सदाईर तेरी उमर बड़ाई। गुरू श्री मछीदरनाथ जी का कहणा से अर तेरा कहणां से राणी पदमणी की उमर बड़ी। मेने जसी रीत बीचारी के रतनसेन मेरा चेला हे। परंत अब तु सब ही सरदारां की जीवाई बदाणे लगा। अतरा ही उमर बदावने की दवाई की हमारी पास थेलीया भरी नही सो सब की उमर बड़ा देवे। पछै रावलजी ने आपका पगा महे माथो दे दीदो। अरज करी के गुरनाराईण ने मारी सु कीदी असी तो सहंसार महे कोई करे नही। अर मुहे मनष कर दीयो। परंत मारी उपर पड़ी हे जीका फोड़ा तीसरापण महे पड़ेगा। असी रीत मुहे दीषे है। कसी रीत के ओ छव ही रषवाला की उमर तो नजीक आई गई सो मरेईगा पाछै सु अणी पदमणी के बदले कोही कला सु झगड़ा केरईगा। सो कोही सत का सुरा रजपुत अेक बी नही। उ दसमण चड़ आवेगा सो सकरड़ हुवेगा तो कलो छोड़ भाग नीसरांगां। उ कला उपर राज कर लेवेगा। उणी की राजी पड़ेगा जसी रीत रणवास का मनषां हे राषेगा। जणी बात की हकीगत असी आई है के गहलोता का पगां पीदे सु राज चीतोड़ को जातो रहेगा। कसी रीत के अणी पदमणी को हेलो चो तरफ राजा और पातसाही ताई होई गहीह। जणी बात सु अरज बार बार गुरदेव सु करी रीयो है। अक अरज असी है के मुहे हजुर ने चेलो कीदो। अर मनष कर दीदो। जणी सु अेक कहणो तो मारो ओर करो अर कराई चावो। ओर पछै आप कोही बात मारी सुणो मती। अर हुंबी कहु नही। अबे अणी सवाई ओर अरज करूं तो मुहे श्री गुरदेव की दुहाई। दुसरा हीदु का धरम का सोगन है। पछै गुरनाराईण गोरषनाथजी बीचारी के अबरके तो ईनका बचन महे आई गीया सो काम करनो। राजी तथा बेराजी सु ओ काम करके पीछे अपना आसरम पुसकरउतीपुरी ने चालणो। अर चीतोड़ रहनो नही। पछै रावलजी सु होकम कीदो के रावल रतनसेन तेरा काम हे सो करनाई पड़ेगा। पछै रावलजी ने हात जोडेर अरज करी के अनदाता आप तो राजा ही का राजा हो अर माकी काही आसग है सो आप नषे सु काम लेवा। सो तो काम अणी ही रीत को हे जीसु अरज करणी पड़ी। परंत हुई समझु हुं सो यो तो काम जोगे सुरां को है। आ काम संसार को नही है। परंत आपकी दया है। पछै श्री गोरषनाथजी की कृपा होई सो छव ही सरदारा हे अक ही साथे कलप सदाबा लगाया। उणी बगत रावलजी ने अरज कीदी के गुरनांराईण असी करो के अणां छव

ही सरदारा हे कलप अणी रीत सदावो अर जादा उमर बी बड़ावो मती परंत असी रीत करो छव ही सरदार गोरा, बादल, फातीया, जेतमाल, रामा, कला, छव ही आदमी सातमां याकी बहन राणी पदमणीजी साताई की आई बल का बरस अर आ की मृत्यु लार लार ही होई जावे के तो राणीजी पदमणीजी छव महीनां पहला चाल नीसरे केक पदमणीजी की पहला ओ छव ही मर जावे। अणी रीत सात ही की मृतु लारू लार ही महीनां दो महीनां की छेटी ने ही होई सके। राणी पदमणीजी सुदा आ बात रावलजी सामलेर बापजी बोहोत कुसी हुवा। अर कही के रतनसेण अबरके तेने मेरा मन माफक बात कही। अब दील मेरा प्रसन हुवा। रामा कला के पाणेरी चीतोड़ को माली दोही बाप बेटा माली को नाम लषमो बेटा को नाम केसो दोईया की बुहा, सासु बहु सासु को नाम हरषु बहु को नाम करमा च्यार ही मनष रामा कला के अठे चाकरी करे जल भरे जल पावे, रसोई करे, जीमांवे रामाजी कलाजी के अणां च्यार ही मनष माली मालणा आ को रसोड़ा महे अकतीयार जसो ओर मनष को अकतीयार नही। जदी छव ही सरदारां हे कलप सदाबा लागा। कठेक के रामाजी कलाजी का रहवास ने। उणी कलप सादन करबा महे च्यार ही मनष मालीया को पहला अकतीयार थो जदी वा बुटी की सादन महे आ मालीया को अकतीयार रयो ओर को बसवास नही जी की बीकत अ गुरनारांईण कहता ज्या चीज बटी तो दोई बाप बेटा लषमो केसो षोद लावता। अर च्यार ही मनष मलेर अणां बुटीया हे कुट बाट–छाण छव ही सरदारां हे पाई देता। अर बाकी उणा सरदारा की पीता बच जातो जणी पाणी हे दोई सासु बहु मालणा हरषु करमा पी लेती। अर दवाई बुटी को छाणता बोदर बंचतो नाताणां मह जणी बोदर हे दोई सासु बहु मालण बोदर आ के घर ने लीयावती। छव ही सरदारां ने बारा महीनां पीदी। ज्या की लार दोई सासु बहु मालणा ने बी बारा महीनां पीदी। मालणा ने बोदर दवाई को घर ने लाबु कीदा। जणी बोदर का कलसा भर दीदा। पछै छव ही तो सरदार सातमा राणीजी पदमणीजी साताई की उमर बराबर होई गई। साता ही की मृतु महीनां दो महीनां आगे पाछे संमत बारा से अठावन का 1258 का साल महे सात ही सरदार मर जावेगा ओर पछै दोई मालणा हरकु और करमा अन बारा महीनां ताई तो दवा सरदारां की पाछे पीवती पछै दवा बुटी को बोदर घर ने ले जाती जणी का बोदर का कलसा भर दीदा पछै। दोई मालणा सासु बहु हरषु करमा याने दोई बरस ताई उणी दवाई का बोदर हे पीदो या के घर ने तीन बरस ताई अकतार आने दवा बुटी गोरषनाथ जी की बताई थकी अर दीदी थकी बरस तीन ताई पीदी। जणी सु दोई सासु बहु मालणा हरकु करमा की जीवाई बदी। कतरी सासु की जीवाई तो पांच से सतीयासी बरस की होई। अर बहु करमा की जीवाई छवसे अर सात बरस की उमर हुई। दवाई का जोर सु गढ़ चत्रकोट महे। असी रीत छव ही तो सीरदार

सातमां राणीजी पदमणीजी वारी आई बल बराबर राषी। पछै गुरदेव ने कही के रावल रतनसेण अब तो तु कुसी हुवा रावलजी ने हात जोडेर अर अरज कीदी के आप गरु परमातमा हो देह का मालीक दोई हे अेक तो श्री परमातमां दुजा गुरदेव पछै गरुजी श्री गोरषनाथजी आपका चेला रावल रतनसेणजी नषे सु सीष मागेर पदारीया। पुसकरवतीपुरी ने आपको आसण थो जठे पदार गीया। संमत बारा से त्रीयालीसा बरषे 1243 का बेसाष बुदी 1 अकम गुरुवार के दन आपका बही बचा भाट बंसावली राघोजी चेतनजी ने आईर श्री हजुर रा दरबार महे आईर दरीषांने पुसतक मेली। पुसतक रघुबंसी की बंशावली को पुसतक बांच सुणायो। राजा श्री हमाजी कासबजी सुरजदेव बैवस्त मनु राजा श्री ईषवाक सु लगाईर रावल श्री रतनसेणजी बांच सुणायो। पछै नामा लीषणो सरु कीदो महला साथ रणवास रा सरदारा को ओर माहाराज कवरा रा नाम सरु कीदा जी की बीकत –

278. महारावल श्री रतनसेणजी के घरे पढीयार रेण राजा की सुहाग कवर जी के बेटा। दुजी चावड़ी पुवार चंदराई की सुरजकवर जी के बेटा राजाजी आपरो नाम सीहड़ देजी। तीजी चहुवांण सांचोरी जेतकवर जी के बेटा। चोथी सोलंषणी टोड़ा री सरुपकंवर जी के बेटा समदसेणजी 2 पांचमी राठोड़ रणमालोतणी अमरकवरजी के बेटा सरवणजी 3 चठी गोड़ गेगराज की चांदुबाई जी के बेटा सातमी चंदेल मोहोवा की रतनकवर चाहड़राई ब्रह्मानंद परमालउत की। आठमी सकरवार गंगदास की चंदकवर। नवमी बालेछी चहुवांण नरबद की पीथकवर। दसमी जादम जेमल की जाहजकवर जी के बेटा नरपतजी 3 हरभांण जी 4 बीजेपालजी 5 गोपालजी 6 ग्यारमी तवर राणां सालसी की पदमकवर जी के बेटा ब्रह्मानंदजी 7 अगरचंदजी 8 रुघराईजी 9 समरथजी 10 बारमी पुवार धारातणी सुदरदेजी की अजनकवरजी के बेटा हरभाणजी 11 चंदरभाणजी 12 तेरमी सोलंषणी सामकवरजी के बेटा राईसीजी 13 पोहपराईजी 14 चवदमी सोड़ी अजबकवरजी के बेटा नाहरसीहजी 15 पंदरमी पुवार मनोहरगढ़ की राजा समनसीजी की मदनकवर पदमणीजी के बेटा। अणी रीत माहाराणीजी श्री पदमणीजी को नामो लीषाणो। पछै माहारावल जी श्री रतनसेणजी श्री मुष सु अनाईत रो होकम कीदो का राघाजी चेतनजी बंसावली लीषो घोड़ा बतीस 32 हाती अेक 1 गाम बारे 12 ओर बारा हजार की रोकड़ थाल महे अर होकम कीदो। बारा लाष पसाव लीषो! पछै राघाजी चेतनजी ने अरज कीदी के श्री अकलीग अवतार जीवाई हुवे बल पछै दुसरो होकम हुवो के थाहे चोसट लाष को ओवज देवागा फिर अरज कीदी श्री हजुर माकी जीवाई हुवे नही ओ तो रघुबंस को घर है ओर जादा बड़ाई करा जदी तीसरी बषत श्री हजुर ने होकम कीदो के थाह क्रोड़ पसाव कर देवागा। पछै राघाजी। चेतनजी ने अरज कीदी। श्री हजुर बगसेगा ज्योही माह मनजुर है। परंत

आपका पुरषा लष दई है के राणीजी हे परण घर ने आवे अर राणीजी उणां का पीहर सु धन लावे जणी मह सु आदु आद धन की बोली लषी गई हे सो आदो धन पाया चांवा। अणी रीत आगला पुरषा लीष दे गीया हे जो श्री हजुर ही जाणे हे। परंत श्री हजुर माका मुडा सु कुहावे है तो मे ही काहां प्रथम तो गजमाणक हाती दोवा महे सु अक दुसरा जलपंथा बालतेजी दो अमह सु अेक ओर अणमोला नग हुवे जतरा ज्या महे सु आदो ओर बहरी जोगण को हार कंठलो दोवाई महे सु अेक, और ईटा अड़तीस जी महे सु आदी बगसे। ओर बारा जोड़ी गहणो जड़ाउ महे सु छव जोड़ बगसे। पांच ही परकार का मोती मण सात जी महे सु साड़ा तीन मण बगसे। ओर पोसाक तास बाकी की मोतीया की झालरी की जी मे सु आदी बकसी ओर तो चीजा केही हे परंत दास दासी अेक सो आठ 108 जी मेह सु श्री हजुर की रजा पड़ जतरी ही बगसे। ओर केही पदारथ हे जीमे सु नही बगसे तो जीको अचरज नही। परंत जांणी जांणी चीज महे सु तो बगस्यीचावे आ बात षावदां ने मां नषे सु कवाई तो चेषी आ बात सुणकर श्री हजुर रावलजी सु सत षाई रीया। पछै होकम कीदो के उणी माल उपरे तो माको जोर नही है। उणी का धणी तो पदमणीजी हे। माको दावो नही। पछै राघो चेतन बोल्या के श्री हजुर पदमणीजी ही राणी आपका है। माल का मालक तो पदमणीजी अर पदमणी जी का मालक आप। आप माल का मालक कसी रीत नही। पछै रावलजी ने कही के उणां को धन तो मासु दीदा जावे नही। राघा चेतन ने कही के हजुर देणो पड़े है। अणी रीत उची नीछी बातां कही तरेकी होई परंत रावलजी देणो आरी कीदो नही। पछै राघाजी चेतनजी ने आसका दीदी। अनदाता रघुबंसी राज, आहड़ा नरेस, बेरीया उपर असेस सो गुणां भंडार भरे, क्रोड़ दीवाली राज करे। आसका देर उठेर आके घर ने जाबा लागा। पछै श्री हजुर ने राघाजी चेतनजी हे बेठाई दीदा। अर होकम फरमायो के मे तो थाने देवा हां थे लेवो नही हो। जदी बंसावली ने अरज करी के अनदाताजी जीमाहा जई चीज पहरा हां जो कपड़ो जो तो श्री हजुर ने दे राषीयो है ओर माने कसो राजा पाले हो आ बात सुणेर रावलजी ने होकम कीदो के सुणो हो बही बंचाजी पदमणीजी का धन महे सु तो थाने उड़द की सपेदी मीले नही। अर थाका मन महे आदो धन लेणो है तो पातसाहे चढ़ाई लावजो। पछै सगलो ही पदमणीजी को धन थेही राषजो। राघो चेतन बोलीयो के माके लेष तो आप ही हीदवा का रा पातसाह हो चीतोड़ का धणी हे ही पातसाह समजां हां। पछै फेर श्री हजुर ने होकम कीदो अबे तो थे पातसाह चड़ाई लावोगा जदी ही थाने अनईत मलेगा अर देवागा। फेर राघा चेतन ने कही हीदुपत पातसाह तो आप ही हो। तीसरी बषत श्री हजुर ने होकम कीदो के थाह पातसाह को जोर घणो हे जणी सु मन महे राटराषे हे। अेक हात तो माथा उपरे देवो, अेक हात गांड उपर देवो, असल

बही बचा हुवोगा तो पातसाहे लावोगा, पर पातसाहे चड़ाई ला की आगी नीकालोगा तो थाने थाका ईसटदेव का सोगन है। पातसाहे चड़ाई लावोगा जदी थाहे आदो धन नही देवा तो माने अेकलीगनाथ की आण है। असी रीत रावलजी ने तीन बषत होकम कीदो। पछै राघा चेतन ने अरज करी के गरीबनवाज तीन बगत षावद होकम कर चुका ओ होकम सके नही लागे तो षावदा को हरामषोर कुहावां असी कहेर राघा चेतन याके हवेली ने गीया। पछै दली की तरफ जावा की तैयारी कीदी संमत बारा से चमालीसा 2 बरषे 1244 का फागण बुदी सातम सुकरवार के दन पछै राघाजी चेतनजी गांम दली गया पातसाह श्री अलाबदीनसाह सु मीलीया अर घणो घणो बहवार सु रीया। पातसाह अलावदीनस्याह पठान जागोरी राघाजी चेतनजी हे दली महे रहतां महीना छव हुवा नत परीयंत हुवा षाबा जाबु करे सीकार षेले और फोज का लोगा की हाजरी लेव। असी रीत पातसाह की हाजर रहता महीनां ग्यारा हुवा। अेक दन हाजरी की असवारी होई घोड़ा हजार दस 10000, हाती हजार 21000 ओर पेदल हजार पदरा 15000 अतरी फोज पातसाह के सदा हाजर रहबु करे। पातसाह श्री अलावदीनजी लाल टेकरी के नीछे हाजरी फोज की लेरया था। फोज की हाजरी होई रही थी। श्री पातसाह तो हाती असवार हुवा थका ओर राघोजी दसरा हाती उपरे असवार हजार हजरत की असवारी का हाती नषे हाती उबो छोटा भाई चेतनजी घाड़े असवार उणी बगत महे अक बौर जाली की नीछे सु षरगोस भाग नीसरीयो। चो तरफ आदमी की लेणश् जम रही थी सो षरगोस बीजलबायो होई गयो पातसाही हाती की दांहनी तरफ नीकलेर जाव थो जतरे चेतनजी ने कुबाण का गोला महे पकड़ लीयो घोड़ाह दपटाईर पकड़ लीयो। षरगोस हे हजरत की नजर कर दीयौ। पछै पातसाह ने षरगोस का मोर माथा उपर हात फेरीयो। षरगोस का बाल मुलाम घणां हुवे हे। सो हात फेर कर पातसाह ने होकम कहो राघोजी असी नरम चीज ओर क्या होती है। जदी राघाजी ने कही के हजरत असी मुलाम चीज तो रेसम होता है। हजरत ने कही के रेसम तो ओ मुलायम जादा है। पातसाह ने होकम कीयो के असी मुलाम षुदा ओरत बनाता तो बोहोत अछी थी। जतरे चेतनजी बोले के हजरत सलामत असी मुलांम चीज तो ओरत जात पदमनी होती है। जतरे बड़े भाई राघाजी ने छोटा भाई चेतनजी हे ऑष रा ईसारा सु दबाई दीदा के भाई मत कह। पातसाह ने कही के चेतनजी पदमनी कहा है। पछै चेतनजी ने बात बणाई। हजरत हुमा रे च्यार बरन पुभ ओरत का होता है। जीन महे पदमनी जात ओरत असी मुलांम होती है। जदी पातसाह ने चेतनजी सु कही के हमारे हुरमषांना महे दोई से अड़तीस हरमा है 238 जीनमे पदमनी कीतनी है। चेतनजी ने कही च्यार बरन घुम ओरत का होता है पदमनी, हस्तनी, चीत्रनी, संषनी। श्री पातसाह ने कही के तुम सबको निगा महे नीकालो। पदमनी की पहचान

करो। पछै पातसाह लालकोट महे पदारीया आमकास महे गीया। पछै पातसाह ने होकम कीदो तुम नगा करो पदमनी हुवे जीन हुरमां को रषनी पमदनी नही हुवे जीनको परबत पाहड़ महे मेल आवनी। आ बात हुरमषांनां महे सांमली। हजरत को होकम असो हुवो के पदमनी ओरत हुवेगा जीनको तो रखेगा ओर सब की सब जंगल महे मेल आवेगा। आ बात सुन कर तमाम हुरमा सुद भुल होई गई। पछै पातसाह ने कयो तुम केसी रीत नगाह करोगा ओ तो पडदाईत है। पछै चेतनजी ने अरज कीदी के हजर हमारी आंष षुन की नही है हमारा राजथान गढ़ चीतोड़ जाहा राजा की रांनीया की गोदी महे हम लेटबु करते है। राजा तो हमारा चचा है। रांनीया हमारी षाला है। जेसे ही आप हमारे चचा है अर हुरमांसाहब हमारी षाला है। हमारी तो कुछ लाज नही। परंत अक अरज असी है तेल का कड़ाला भरवाई देना। उस कड़ाहला की पास हम बैठ जावेंगे। हुरमषांनां के लोग आते जाईगा अर तेल महे मोह देषता जाईगा। हम उसकी सुरत तेल महे देषता जाओगे। पीछा हम लोग चोकसी करता करता जाईगे। ओ बात पातसाह ने साची मांनी। अर हुरमषांनां महे कहलाई भेज्यो के सब हुरमषांनां को साथ चेतनजी बात फारोस की पास होकर आना उसकी लाज कुछ नहीं करनां। ओ लोग तो अपने सजादे समान है। पछै हुरमषानां महे चरचा चाली ईन चेतनजी बात फरोस कु कुछ अवज देवेगा जीन कुं तो वे लोग अछी कहेगा। उने कुछ नही देवेगा। जीनकु ओ बुरी कहेगा। हुरमषांनो महे से अक अेक आती जावो तेल महे अपना मोह दीषाती जावो। थोड़ा बोहत उनको अवज देते जावो। पछै चेतनाजी ओवज लेता जावे ओर हुरमषांनां अपनां गांम नाम बताता जावे। चेतनजी अपना दफ्तर महे लीषता जावे। अणी रीत दोहसे अड़तीस ही 238 हुरमां आई तेल महे मोह दीषा गई। अवज देती गई ओर चेतनजी असतरी की जात लीषता गया। सो चत्रनी, हस्तनी, संषनी तीन ही प्रकार की असत्री नीकली। अेक अेक हुरमांने अेक अेक हजार को ओवज दीया। कोही ने कम दीया तो, कोही ने जादा दीया। अड़ाई लाष को अवज चेतनजी पास होई गयो। आपके डेरे जमा कर दीयो। पछै सरब हुरमषांना की हकीगत श्री हजरत हे जाई सुनाई। श्री पातसाह ने पुछीयो कहो चेतनजी बात फारोज अब अतीनी महे पदमनी कीतनी है। चेतनजी ने अरज कीया हजरत सलामत पदमनी ओरत जात तो अेक बी नही है ओर हस्तनी चीत्रनी, संषनी तीन जात की ओरता तो है। पातसाह ने कही के सुनते हो चेतनजी पदमनी काहा मीले। उन बगत चेतनजी का दील महे कहबा की आई गई परंत राघाजी ने आष का ईसारा से दबा दीया के मत कहे। जदी चेतनजी ने बात बनाई हजरतपनां पदमनी सींघलदीप महे है। पातसाह ने पुछीयो के सींघलदीप कहा है। सींघलदीप हजरत दरीयाव की पार है। जदी पातसाह ने कही के सीघलदीप चलकर पदमनी लाना। असो होकम कर सीधलदीप जाबा के बदले असवारी तीयार

कीदी। घोड़ा, हाती, उंट, पेदल, तोब, नाल, जंमुर, सभ फोज तीयारी कर पातसाही फोज सीधलदीप उपरे चाली। फोज चाली चाली समुदर की षाड़ी उपरे जाई मुकाम हुवा। पछै दोई भाई राघाजी चेतनजी के महे महे बाता हुई। चेतनजी बोलीया के दादाजी कोई बात को ईरादो आई जावे जदी तो हु केहवा के बदल दल बदाउ अर आप पाछा मुहे दबाई देवो सो हु चप रह जाउ। अबे तो हु कहुगा। दो दो तीन तीन बरस आपणां हे तुरकाणां महे रहता होई गीया परंत आज दन तांई कोही भला आदमी रावलजी ने मोकलीया नही। अब चीतोड़गढ़ रावल रतनसेणजी का ही आड़ा आवेगा काही पदमणीजी को धन आपा हे आदो नही मले तो सगलो ही पातसाह कोस लेवेगा। हात सु दीदो तो जावे नही कर जोरा मरजी सु ओर कोस लेवेगा। चेतनजी की बात सामलेर राघाजी ने कही के भाई चेतनजी थने कही ज्याही बात साची जदी ही रावलजी की आंष उगड़ेगा पछै समजेगा के अतरा धोबा घाले जदी सेर पुरो हुवे हे। अबे हु कोही तरे की बात करू तो आप आड़ी देवो मती। जदी राघाजी ने कही के भाई चेतनजी जरा मसल सु कहजे। समंदर की षाड़ी ने पातसाह पड़ीयो अर होकम कीदो सा केसा करना। जदी राघाजी ने कही के हजरत जीहाजा बनावो। पछै कारीगीर मगाईर जीहाजा को काम चलायो। पछै चेतनजी ने अरज करी के हजरत सलामत कवलाजान ने चोवीस पीरो की करामांत अेक अरज मेरी सुने के हजुर का हुरम नाम हे कीतनां सेकड़ा पदमनीया का हाहत जदी पातसाह ने कही के चेतनजी जादा मीले तो दस पाच पदमनी ले आवागा नही तो दोई वा अक तो हम जरूर लावेगा। जदी चेतन ने अरज कीया के हजरत अक पदमनी तो आहा अपने ही पास हे सो आप षोस लेवो। जदी पातसाह ने कही कोहो पदमनी काहा हे। जदी चेतनजी ने कही के चीतोड़गढ़ का राजा रतनसेन रावल सींघलदीप जाईर पदमणी परन लाया है अर बोहोत दरब करोड़ रुपीया का धन ओ मोती, लाल, हीरा, कंकर पथर केही चीजा लाष अेक पदमनी तो याहा है ओर जादा तो नही है जदी पातसाह ने कही के हमकु तो पदमनी अेक ही बहुत हे। ओ बात हजरत पेसतर ही होकम करता अक ही पदमनी काता ईतनी दीषल हजरत महे पड़ने देता नही नगीच ही बताई देता हमने तो असी जानी के हजरत हजार पांचसे पदमनीया चाहती है। जीनसे फोज लेकर जाता है अक की चाहनां हुवे तो फोज लेकर गढ़ चीतोड़ जाई घेरो घबराईकर आप हे पदमनी दे देवेगा। बरस छव महीनां को कला दोलो घेरो राषो ओर बाहेरा से कला महे काही चीज जाबा देनी नही। सब लोग घबराई जावेगा सो पदमनी आपकु देदेगा। आ बात सामलेर पाछा दली की तरफ फोज चाली। पछै चीतोड़ उपरे चड़बा की सला की तीयारी होबा लागी उणी बगत राघाजी चेतनजी ने श्री पातसाह से अरज करी के हजरत हमारी अरज अेक सुनो के हे अहा बी दलीसर परमेसर का कदीमी मकान है वाहा

चीतोड़ गढ़ उबी हीदवो का आपताप सुरज कहलाता है। दोनो राज ओर दोनो फोज जंगी हे आपकु पदमनी चाहती है जीन बात के बदले चीतोड़गढ़ ऊपर फोज जाती है अेक कदाचीत बरस दो बरस का दंगा बद जाव कजाना कीदर ही की जीत हुवे के कीदर की हार हुवे हारजीत की बात तो परवरदगार के हात है आदम के हात नही है। आगे बढता कोही हार जीत हो जावे तो हजरत हमारे सीर अपराद रहे जावे। केसे क पातसाह तो कुछ नही जानता था परंत राघा चेतन बात फारोस ने आकर श्री हजरत को बहकाई दीया सो सब काम का षराबा कर दीया। ओ अफराद से अफराद का नाम से हम लोग देसत षाते है सो आपका दील हुवे तो चीतोड़ उपर चड़ो राज करो वा पदमनी ले आवो। ईन बात से हजरत हुंम नाराज है दुजु तो पदमनी गढ़ चीतोड़ ने हे अर हमारा हात से लाया है। आ बात राघाजी चेतनजी की सुनकर पातसाह ने होकम कीया के सुनते हो बात फारोस राघाजी चेतनजी पदमनी तो हमको चाहती है। तुम को तो चाहती नही है। लड़ने मरने मारने कु तो हम जायेगे। अर तुमको अपराद लगाने वाले लोग बदमास झुठा है। तुम लोग बोहोत कुसी से रह जावो अर तुम हमारी लार तो चलोगा के नही जदी राघा चेतन ने कही के हम फोज की लार चले ओर चीतोड़ गढ़ का कीला का भेद वतावे। ओर कला छव महीनां महे टुटता हुवेगा तो हमारी अकलबदी फेलाव कर दोई महीनां महे कले को तोड़ गीरा देव। आ बात पातसाह सुनकर बोहोत कुसी हुवा। राघोजी चेतनजी गढ़ दली महे रीया। बरस अड़ाई तथा पोणी तीन बरस रीया। पछै श्री पातसाहजी की तीयारी गढ़ चीतोड़ उपरे होई संमत बारा से छीयालीस का 1246 का माहा बुदी सातम सुकरवार के दन जमघट जोग महे पातसाह श्री अलावदीन जंगी की फोज चीतोड़ गढ उपरे चाली दली बाहरा डेरा हुवा। अर फोज अणी परमाणे लीदी घोड़ा लाष पाच सतीयाणवे हजार सातसे चोसट 597764 पेदल लाष बारा हजार बतीस आठ से चमालीस 1232844 तोबा मोटी पेतीस 35 घुड़नाला छीयासी 86 हाती हजार अेक नवसे गुणीयासी उंट हजार ननाणवे उपर दोहसे बाणवे 99292 ज्मुरी उंट दससे अषोतरा 1071 ओर कमणेत हजार नव दोहसे सोला 9216 ओ पालकी सुषपाल ग्यारासे चोतीस 1134 ओर रथ तांगा छकडी गाडी कीराची कही ओर लोग बेपारी साहुकार मजुर बेलदार अेक लाष के आसरे 100000 अकंदर फोज पातसाह को घोड़ा उंट, हाती 2 तांगा पालकी ज्मुर तो सुदा अकंदर फौज अठारा लाष त्रेपन हजार नवसे चालीस 1853940 अतरी फोज गढ़ चीतोड़ उपरे आई चो तरफ सु घेर कर फोज का मुकाम हुवा संमत बारा से छीयालीसा बरषे 1246 का फागण बदी तीज सनेसरवार के दन डेरा गढ़ चीतोड़ आई हुवा। गढ़ चीतोड़ सु तीन तीन कोस दुरा पातसाही फोज का मुकाम च्यार ही तरफ होई गीया। घेरो दे दीदो। बार सु आवे थी जाई सगली रसत बंद कर दीदी। पछै

तोबा सरू कीदी। पातसाह ने पछै गढ़ चीतोड़ महे सु तोबा पातसाह की फोज उपरे सरू होई। दोही तरफ गोला बहबा लागा। उणी बगत चीतोड़ की धरांणी राणी कालका जी, चामंड जी नव लाष लोवड़ी वाली देवीया कागरे कागरे लड़े। अर नत झगड़ो बदबा लागो। राजा ईद्र को रथ मनभावन चत्रकोट को कलो मोरीया उतपत और कलो बाधीयो बलीदान की ष्यात ष्यात कालका की चीतोड़ को कला बसायो। पुवारां ने चीतोड़ को नाम मनभावन चतरंगजी राजा मोरी पुवार की ष्यात माताजी कालका चामंडा देवी की। पातसाह श्री अलावदीन जंगी को डेरो गढ़ चीतोड़ सु धराउ दसा कोस अड़ाई तीन दुरो जठे अंक मुदती गांमा पहला को पुरांणो जी को नाम नगरी जठे पातसाह को डेरो उठा सु पातसाह श्री अलावदीन ने गढ़ चीतोड़ का कला उपर नंगा दीदी। अर चोगीयो सो कला का डंड री उपरे लुगांया नजर आई। जदी पातसाहजी ने राघाजी चेतनजीह बुलाईर पुछीयो कहो राघाजी चीतोड़ का कला उपर तो ओरता कोट कांकड़ उपर उबी थी अपनी फोज कु देष रही है। ओ होकम राघाजी चेतनजी ने सामलेर पातसाह सु अरज कीदी के हजरत सलामत कला का डंडा उपरे ओरते नही है। ओ तो नव लाष लोबड़ी वाली देवीया है सो कला उपर अेक तो बहजीणी तोब को नाम कालका बाण हे उणी कालका बाण तोब को अेक ह फेर हुवे उणी फेर हे सामलेर पछै कांगरे कांगरे देवीयां लड़े देवी देवता जोगणीया ओर जक्ष सब ही कांगरे कांगरे लड़े। जदी पातसाह ने राघाजी चेतनजी सु कही के सुनते हो बात फारोस अेक बात तो हम कहते है के बड़ा बड़ा मोटा जंगी राजा का कीला हीदवो का अठासी कला 88 हमने फते कीदा। हीदवा राजा का उन कला महे हमने तुमारी देवीया लड़ती देषी नही। जीन बात से हम पुछते है सो हम कु अछी तरह से समजावो अर ईन देवीया लड़ती है जीनकी बात समजाई कर कहो। जदी बात फारोस राघोजी ने श्री पातसाह अलावदीनस्याह जी गोरी जंगी से बीयान करने लगा के हजरत सलामत कवलीज्याईने चोवीस पीरो की करामत हमारे षुदा हे अरज असी के गढ़ आभुराज वा धार नगर का राजा जात पुवार जी का भाई बेटा राजा मोरधज जीनका बेटा राजाजी चतरंग जी मोरी ने अपने मन महे धारन कीया के अक अछा कला बादनां। राजा मोरधज पुवार के बेटा 4 ओर लड़की अक। राजा मोरधज का बड़ा बेटा तो रतनकवर, दुजा बेटा धारू, तीजा बेटा आबोजी, चोथा बेटा आसाजी, पाचवी बेटी नाम गजबेल। अन पाचोही ने कला बनाया। जीनका नाम कहता हु बड़ा बेटा रतनकवर जीनका का दुजां नाम चतरंग। राजा चतरंगजी ने तो गाम गढ़ चीतोड़ का कीला बनाया। दुसरा बेटा राजा धारू ने गढ़ धार नगर का कीला बनाया और तीसरा बेटा आसाजी राजा के गढ़ आसेर का कीला बनाया। चोथ बेटा आबाजी जीनने आमदगढ़ का कीला बनाया। च्यार ही भाया ने च्यार कला बनाया। च्यार ही देस महे ओर पांचमी अनोकी

बहन नाम गजबेल बाई जीनको गाम मुथरा ने जादम रजपुतों के परनाई। जीन बषत महे मथुरा उजड़ पड़ी थी सो गज बेलबाई ने पीछी मथुरा कु आबाद करके बसाई। राजा मोरधज का बेटा बड़ा चतरंगजी ने गाम गढ़ चीतोड़ बसाया बीक्रम संमत अेक सो सेतालीस का साल महे। चीतोड़ को कीलो बसायो संमत 147 का कुलजुग को संमत 3192 का अगतीस से बाणवे बरस कुलजुग का जाता गढ़ चीतोड़ को कलो राजाजी चतरंगजी ने आबाद कीया जीन बगत महे सालीवाहन राजा की साषी का बरस प्रथम ही बरस तेरा गीया था। तेरा बरस सालीबाहन की आयेबल होई चुकी थी जदी सालीबाहन हे देव धाम गीया बरस तेरा हुवा था। जीन बगत महे गढ़ चीतोड़ बसाया। अर राजा चतरंगजी मोरी की कुल की देवी कालकाजी को मंदर करायो। राजाजी चतरंगजी ने चीतोड़ का कला उपर बीक्रम संमत अकसो चोपन का बरषे 154 का साल महे पछै देवी कालका को उदीयापण करायो जी सु कालकाजी तुष्टमांन हुवा अर राजाजी चतरंगजी सु कही के मारो कहणो करे तो थारो गढ़ अटुट रहे और राजा सु कलो चीतोड़ को कलो टुटे नही। जदी राजा चतरंगजी ने माताजी कालका सु कही के कुलदेवी होकम करजे। जदी कालकाजी ने कही के राजा चतरंग असी करके थारा पाटवी बेटा को तो भोग दे। भेरा अकवीस अर भेड़ बकरा सतीयासी 87 भेस 21 मनक। अकसो नव को तो मुहे बलीदान दे 109 ओर प्रथम पोल तलेटी की जणी पोल के मुडा आगे भेसा बकरा भेड़ अकाणवे 91 ओर सुरजपोल के दरवाजा ने भैस बकरा भेड़ अक्यासी 81 ओर धराउ बारी के दरवाजे भेसा बकरा भेड़ 51 अकंदर जीव तीनसे बतीस 332 अतरो बलीदान दे दे तो थारा कला की तरफ कोही चोक सके नही नां कणी को कला उपर जोर लागे। ओर तो बात भेसा बकरा भेड़ की सगली आसे आई गई अर बलीदांन च्यार ही जाहेगा भेसा बकरा को तीनसे अगतीस को तो दे दीयो च्यार ही जाहीगा। कालका जी की आगे तलेटी की पोल तीसरी सुरज पोल चोथो धराउ बारी च्यार ही जाहीगा माताजी ने कही जणी परमाणे तो तीनसे अगतीस जीव को तो बलीदान दे दीदो। जणी सु कला की जोगणीया तो परसण होई गई। परंत अेक कालकाजी देवी को मन प्रसण हुवो नही केसी रीत के राजा का पाटवी बेटो उकी लार ओर जीव गुणतीस कवर तो 1 हाती 4 घोड़ा सोला 16 भेसा 3 बकरा पांच 5 गुणतीस अतरा जीव को बलीदान अेक साथे लागे सो राजा चतरंगजी मोरी सु बण आयो नही। तीनसे साठ जीव को बलीदांन राजाजी चतरंगजी दे देता तो ओर राजा को जोर चीतोड़ का कला उपरे लागतो नहीं। अेक ओर के माताजी कालकाजी ने कही थी के राजा चतरंग मारा नाम की अक तोब भराव उणी को नाम कालका बांण राषजे। उणी तोब हे गढ़ का डंडा पर चड़ावजे। पछै बलीदान दीजे। पछै कोई थारा गढ उपरे कोही चढ़ आवे जदी तोब कालका बाण को आवाज

करजे कालका बाण को आवाज सुणेर थारा कला चीतोड़ का ने कागरे कागरे देवी देवा लड़ेगा और जोगणीया तीनसे साठ 360 जोगणीया लड़ेगा। अर थारा कला की अर थारी साह देवता अर जोगणीया करेगा। जणी रीत माताजी कालका जी ने कही जो तोब कालका बाण वा बी तीयार हो गई। दरवाजा तीन ही दसा का ज्याने बलीदांन दे दीदो परंत गुणतीस जीव को बलीदांन आपको बेटो, हाती, घोड़ा, भेसा, बकरा गुणतीस जीव को बलीदांन राजा चतरंगजी सु लागो नही सो ओर तो जोगणीया तीनसे गुणसट तो प्रसन होई 359 परंत अेक कुल देवी कालका जी राजा चतरंगजी सु प्रसन हुवा नही। पछै गाम बेराटगढ़ का राजा श्री रूप का बेटा रावल बापोजी चीतोड़ उपरे परणीया। प्रथम तो चीतोड़ का राजा चतरंगजी की बेटी। पछै चतरंगजी का भाया की बेटीया छावीस सताईस बेटीया मोरीया की रावलजी बापोजी परणबा पदारीया जदी अणी चीतोड़ का कला की बात माताजी हे परसन कीदा जोगणीया हे बलीदांन दीदो ओर कला हे बलीदान दीदो ओर माताजी कालकाजी हे गुणतीस जीव मनष, हाती, घोड़ा, भेसा, बकरा या को बलीदांन न्ही लागो। जणी सु कालकाजी राजा चतरंगजी सु प्रसन हुवा नही। ज्याई बात सगली ही बापाजी रावल ने सामली। आप परणबा पदारीया जदी गाम का लोगा ने सगली हकीगत कही। अर रावल बापाजी ने सांमली। पछै बीक्रम संमत अेक सो अकाणवे का संमत 191 का साल महे मोरी चतरंगजी राजा हे मार ने चीतोड़ उपरे राज कीदो। पछै रावलजी बापाजी ने पहला तो माताजी श्री कालकाजी री आगे सत चंडी कराई। पछै सहंसर चंडी कराई प्रसण करने बलीदान रावल श्री बापाजी ने बलीदान दीदो। जी की बीकत प्रथम तो चतरंगजी मोरी का बेटा हे झगड़ा महे पकड़ लीदो। ओर मोरी का लड़का बीस 20 अकवीस तो मोरी राजा चतरंगजी का बंस का मोरीया हे चड़ाया 21 ओर हाती 16 घोड़ा चमालीस 44 भेसा अगतीस 31 भेड़ा छतीस 36 बकरा अगतालीस 41 अकंदर जीव अेकसो नेवासी 189 अतरो बलीदांन तो माताजी कालकाजी हे रावल श्री बापाजी ने दीदो। ओर तलेटी की पोल नीछली के मुडे बलीदान हुवो। मोरीया का भाई बेटा च्यार 4 हाती 1 भेसा 31 भेड़ा 36 छतीस बकरा अगतालीस अकंदर जीव अेकसो नेवासी 189 अतरो बलीदांन तो माताजी कालका जी हे रावल श्री बापाजी ने दीदो। ओर तलेटी की पोल नीछली के मुडे बलीदान हुवो मोरीया का भाई बेटा 4 च्यार हाती 1 भेसा 31, भेड़ा 36, छतीस बकरा गुणीयालीस अेक सो ग्यारा 111 जीव को बलीदान प्रथम पोल तलेटी का नाम पाडल पोल के दरवाजे जीव 111 ओर सुरजपोल को बलीदांन मोरी रजपुत मनष 3 भेसा गुणतीस 29 भेड़ा पेतीस 35 बकरा सेतीस 37 अकसो च्यार जीव को बलीदान सुरजपोल हे दीदो 104 धराउ को बारी दरवाजो को बलीदांन मोरी रजपुत 2 भेसा ओगणीस 19 भेड़ा सताईस 27 बकरा अगतीस

31 गुणीयासी जीव 79 को बलीदांन। उतर की बारी दरवाजे दीदो अकंदर जीव। पछै कालका बाण तोब हे बलीदान दीदो मोरी रजपुत 1 अक भेसा 7 सात भेड़ा 11 ग्यारा बकरा 12 बारा अगतीस जीव को बलीदांन कालका बाण तोब हे दीदो। पांच ही जाहगा का बलीदान का जीव अतरा के मनष, हाती, घोड़ा, भेसा, भेड़, बकरा, सगला जीव गणती का पांचसे चवदा जीव को बलीदांन दीदो। माता कालकाजी हे ओर कला हे जीव पांचसे चवदा चड़ाया 514 देवता ओर जोगणीया तो तीनसे साट 360 ओर जक्ष लोग सगला रावल बापाजी सु प्रसन हुवा। प्रथम तो कला चीतोड़ का री उपरे मोरीया को साको कीदो। मोरी जात को रजपुत साड़ा सातसे काम आयो। ओर पांच च्यार लाष मनष काम आया। सो कला को देवता सगलो तरपत होई गीयो। फेर रावल बापाजी ने उपरांत को बलीदांन दीदो जणी सु जोगणीया तीनसे साठ ही घणी प्रसन होई। पछै रात के समीये रावलजी बापोजी पोड़ीया था। आदी रात के समय माताजी कालका ने सपनो दीदो के सुणरे रावल बापा हु कहु सो तु सामल के माहे भुष लागे जदी में मांगा जदी माहे कोही बलीदान देवे। परंत रावल बापा थने तो माहे मागीयो बलीदांन दीदो जणी हु प्रसन होईर तुहे कहबा आई हु के प्रथम राजा चतरंग मोरी ने कलो चीतोड़ को बादबा लागो जी की बात बदीवार तुहे कह सुणांउ के गढ चीतोड़ को कलो बाधीयो रावण राषस पेदा हुवो जदी उणी हे मारबा के बदले रामा ओतार धारण कीदो। तेतीस क्रोड़ देवता सगला ही अवतार की लार मरतलोक म्हे देह धारी। जदी रामां अवतार ने देवता सु कही के देवता हु तो पर देह धारण करूगां थे सगला देवता नार, रीछ, बंदर, जंतु अवतार लो। नर बंदर मलेर रावण को बदस करणो। असी करने रामा ओतार लंका उपर चड़ चालीया। जदी रामा ओतार ने सपतही रूसी सु कही के लंका उपर चालो। जदी सात ही रूसी ने राजा अंदर नषे सु स्थ मागीयो जदी राजा ईद्र ने सात ही रूसीया हे रथ दीदो। रथ को नाम मनभावन सात ही रूसी मनभावन उपरे असवार हुवा अर कही के चालरे मनभावन लंका ने चाल। उठे रामां अवतार अर रावण के जुध हुवेगा सो देषागा। जदी मनभावन ने सात ही रूसी सु अरज कीदी के गुसाई जी मारो नाम हे ज्याई ही रीत करूगा पछै आप सराप देवोगा तो आछी दीपेगा नही। जदी रूसी बोलीया कसी रीत जदी मनभावन ने कही के गुसाईजी मारो नाम मनभावन हे मारा मन की भावना हुवेगा जठे ही हु रहुगा। आगे अेक पग भी देउ नही। जदी सात ही रूसी बोल्या के मन भावन थारी मन की भावनां हुवे जठे ही रहजे। जदी मनभावन चाल नीसरीयो। चाल्यो चाल्यो देस मेवाड़ ने आईर रात रीया। उठे अक आथमणी दसा आबुराज परबत हे। उणी आबुराज परबत श्री सीव की कईलास जोगो है जसी रीत कईलास महे फल पुष्प हे जतरा ही फल पुस्प आभुराज महे छै। उगमणी हवा चाली उगमणी गई उणी

हवा महे आबुराज का फल पुसबा की कसबो आई उणी मनभावन हे। सो मनभावन को मन तो अठे ही रहबा को होई गीयो। पछै फजर हुवो। रूसीया ने कही के मनभावन चाल जदी मनभावन ने कही के गुसाई जी मने पहला आपसु अरज कर लीदीथी के मारां मन का भावना हुवेगा जठे ही रहुगा सो मारो मन तो याही परसण हुवो सो हुं तो अठे ही रहुंगा। जदी रूसीजी ने कही के बोहोत आछी बात तु कुसी सुह रहे। जदी मनभावन ने अरज करी के गुसाईजी आपकी चाकरी मासु सदी जणी परमाणे मने कीदी। परंत आप सरीषा रूसी जनका तो चरणा रे बंद मारा माथा उपर लागा। अर हु तो सुका को सुको ही रह गीयो। जदी रूसीजी ने कही के मन भावन तु सुको रह मती तु सदा सजल रहजे। या बात रूसीजी ने कहेर पछै आपने ड.ड. सु अेक षाड़ो षोदी उणी षाड़ा महे आपका कमंडल को जल कुड दीदो अर रूसीजी ने आसका दीदी सो थारो जल सदाई अटुट रहजो। आसका देर रूसी जी लंका ऊपर चाल गीया। अर मन भावन रथ अंदर को अठे मेवाड़ महे रह गीयो। पछै रामा अवतार रावण हे मार ने पाछा पदारीया। पछै सात ही रूसी ने अरज कीदी के हजुर राजा ईदर ने माहे अेक रथ बेटबा के बदले दीयो थो सो अठे देस मेवाड़ मे ही रह गीयो। परंत रथ बोहोत सुंदर हे जदी रामां अवतार ने देषबा की मुरजी कीदी सो चाल्या चाल्या मनभावन ने आया श्री रामां अवतार देषेर प्रसंन हुवा पर्छ छोटा भाई लछमन जी सु होकम कीदो के लछमनजी ओ मनभावन तो कलो बादबा जोग है श्री रामा अवतार का होकम सु मनभावन रथ उपरे कला को काम चलायो। परंत कलो काहे सु बांदे पाषाण नही। कसी रीत पाषाण न्ही के लंका उपरे रामा अवतार गीया अर समंदर उपरे सेतु बाधीया सो पाषाण था जे तो सगला बीण चुण कर रीछ बंदर सेत बदाबा के बदले ले गीया। आ अरज लछमणजी की सामलेर श्री रामा अवतार ने भोमी सु कही के पासाण लाव सो। मन भावन उपरे कलो तीयार करांवा। पछै भोमी ने हात जोड़ अरज करी के गरीबनवाज कुसी सु कलो बाद हु मोकला पासाण लाउगा। पछै भोमी का कला के बदले पासाण लाई। सेकडा कोसा स च्यार ही दसा सु तमाम पथर मनभावन की तरफ चालीया। पछै कलो सपुरण हुवो। अर पथर भोमी ने लाबो माकुब कर दीदो। सो आज बी अजु मनभावन की चो तरफ बीस बीस कोस ताही पथर का मुड़ा मनभावन की आड़ी है ज्याका पथरा का चीन हाल बण रीया है रामा अवतार ने परबत रथ मनभावन उपरे कीलो तीयार कीदो। अर कीला को नाम छोटो चत्रकोट राषीयो। कलो बणाईर श्री रामा अवतार अजोध्या की तरफ पदारबा लागा। जदी मनभावन चत्रकोट ने अरज कीदी के अनदाताजी श्री रामां अवतार आपतो अजोध्या पदार है अठेर मुहे ईद्रलोक जाबा की आगीया कद हुवेगा। हुबी ईद्रलोक जाउगा। पछै श्री रामा अवतार ने कही के मनभावन चत्रकोट तु तो सपतरूसी को सराप दगद हुवो सो थारे पले

तो सराप लाग गीया सो थारो जावणो हाल ईदरलोक हुवे नही। जदी मनभावन चत्रकोट ने अरज करी के गरीबनवाज जदी मुहे ईदरलोक जाबा की आगन्या कद हुवेगा के तुहे सराव हुवा ईदरलोक सु तो रूसीया हे लेर तु चल्यो आयो। अर पछै तु अठे ही रहे गीयो। अठा सु लंका ताई रूसी पाव पीयादा चालीया। उणा रूसीयां का पगा पीदे जीव जंतु मरीया जीको परासीत मनभावन थारे सीर लागो। अतरो जीव थारे नमंत जीव हंसा हुवेगा जदी थारो जावणो ईद्रलोक महे हुवेगा। मनभावन थारी उपरे च्यार बगत जुध हुवेगा। च्यार ही बगत को जुध महे जीव चैरासी लाष जीव की गणती आवेगा। चोरासी लाष जीव थारे उपर हंसा हुवेगा जदी थारो सराप रूसीया का ताबा छुटेगा। पछै ओ कहके दस हजार बरस कलजुग का जावेगा जटा केड़े थारो जावणो ईदरलोक महे हुवेगा। अतरा पहला थारो जाणो ईदरलोक हुवे नही। या कहेर श्री रामअवतार तो अजोध्या पदार गीया। पछै केही बरस ताई चत्रकोट उपरे केही राजा का राज होई गीया। पछै राजा चतरंगजी ने नवीनगढ़ बादबा की बीचारी जो चीतोड़ सु अगनीकुड महे परबत हे चीतोड़ ही सरीषो। जणी उपरे आईर राजा चतरंगजी मोरी कलो बादबा लागो। प्रथम दरवाजो अर बरजा दोई हुई अर पछै उणी परबत सु कला को बोज तोक सकाशो नही सो अरद रात्री के बषे परबत बोज को मारीयो अर डाड पाड़ उठीयो उ अरड़ातो राजाजी चतरंगजी ने सामलीयो। पछै चतरंगजी मोरी ने बीचारी ओ तो परबत काईर है। अणी उपर कलो अटुट हुवे नही जदी मारो नाम कालका जोगणी है अर मोरी पुवार की हु कुलदेवी हु। पछै रावल बापाजी मने राजा चतरंग हे सपनो दीदो। सो राजा तु कलो बाद हु कहु जठे जदी रावल बापा मने ओ कलो बतायो मनभावन चीत्रकोट को पछै चत्रकोट का कला हे राजा चतरंग ने आवादान कीदो। पछै मुहे बलीदान दीदो नही। जणी बात सु बापा रावल बापा थारा कला उपर डाव लाग गीयो मुह मारा मुडा को मागीयो बलीदांन राजा चतरंगजी मोरी दे काडतो मारो मन प्रसण कर देतो तो रावल बापा थारे हात कलो आवतो नही परंत रावल बापा थारा भाग महे कलो लषीयो थो सो थारो राज हुवो। दुसरी थने मुहे प्रसण कीदी। अब चतरंग मोरी उपर मारो राजीपो थो जणी सु चोगणो राजीपो थारी उपर हुवो। अबे बापा रावल को ही समीये हार होई जावे कोही समे ओ जीत होई जावे। परंत अबे रघुबंसी गहलोत तो राज गढ़ चीतोड उपरे बणीयो रहेगा गहीलोता रा पग सु कलो चीतोड़ को जावे नही। जी की बीकत के दस हजार बरस कलजुग का जावेगा ज्यांहा ताई तो गहलोता का पगा कलो बणीयो रहेगा। पछै कलजुग का बरस दस हजार सोला बरस 10016 गीया केड़े पछै ओ चीतोड़ को कलो मनभावन रथ राजा ईदर को दस हजार सोला बरस कुलजुग का जावेगा जठा पछै मनभावन चीतोड़ को कलो ईद्रलोक मही जावेगा। पछै मनभावन प्रथमी उपर भरतषंड महे रहे नही।

जठा ताई राजा बापा रावल थारो राज चीतोड़ का कला उपर बणीयो रहेगा। अर कोही राजा चीतोड़ का कला सु लड़बा आवे अर चीतोड़ का कला उपर गोला बजावे जदी रावल बापा असी करजे के कालका बाण तोब की पुजा करने अेक आवाज कालका बाण को करजे सो चीतोड़ के कांगरे कांगरे देवी देवता तीनसे साठ जोगणीया लड़ेगा ओर चीतोड़ का कला महे की फोज नचीताई सु बेठी रही। रावल बापा अणी रीत हु थारी सु परसण होई प्रथम तो थारा बंस वाला का पग सु राज जावे नही, दुसरी गहलोता री बासे रहुगा। षांड भाले जेत राषुगा। ओर रावल बापा थारो बंस बदाउगा। अणी रीत सपनो कालकाजी माता ने रावल बापाजी हे सपनो दीदो। पछै रावल बापाजी ने माताजी कालका जी हे आपणी कुलदेवी कर पुजीया। अणी रीत समजाई कर पातसाह अलावदीन गोरी से बात पारोस राघाजी ने माड कर बात बदीवार कही कांगरे कांगर देवी देवता तीनसे साठ जोगणीया कला चीतोड़ का ने लड़ता जीकी बीकत पातसाहे कह कर समजाया। असी रीत गढ़ चीतोड़ उपरे गोला बहता बहता बरस तीन होई गीया। परंत दोई फोजा री बराबरी रही। प्रथम दरीषांनो बाड़ा महला महे हुवो। सारा ही सरदार चवदा ही मसल हाजर थी। पछै सीरदारां ने अरज कीदी के अेकलीग अवतार अरज असी के अणी मलेछ हे परो उठावणो। गरीबनवाज कला महे बेठा राहा अर यो कला उपर गोला बाबु करे अर परदेस की रसत बंद होई गई उड़द की सपेदी को कला महे आबा देवे नही जणी सु गाम चीतोड़गढ़ का लोगा के घबरावण आई रहे हे सगली रेत दुष पाई रही है। बरस तीन पहला पातसाह आईर कला चीतोड़ का ने लागो जणी बगत रूपीया पेतीस भरीया सेर सु च्यार मण ग्यारा सेर रूपीया 1/ अेक चीतोड़ को धान मले थो। पातसाहे बरस तीन होई चुका अबे धान को भाव दोई मण डोड़ सेर महे बीक रया हे। जणी सु रईत लोगा के घबराई आई रही है। जणी बात सु अरज करा हा के कला सु फोज उतर ने पातसाही फोज उपरे रतवा देवे। अर तरवारा पकड़ागा जदी ओ मलेछ पाछो हटेगा। अणी पातसा का दांत षाटा हुवा वना माने नही। जदी श्री हजुर ने होकम दीदो के सीरदारां बोहोत अछी बात है। ओ समीचार तो सामषोरपणां का है जदी रणमालजी डोडीया ने उठेर हाजर जुहार करेन होकम मागीयो के हजुर ताबेदार हे होकम हुवे तो हु पातसाही फोज उठाउ। श्री जी ने सोदरी आवद मगाई श्री हजुर रावल रतनसेणजी ने डोडीया रणमलजी रे तलक दीदो, मोतीयारा अगसत चड़ाया, सरपाव तास बापा को जरकसी बकस्यो अर पातसाही फोजा उपरे बीदा दीदी। पछै डोडीया रणमाल जी ने आपकी फोज की तीयारी कराई घोड़ा हजार दस नवसे गुणपचास 10949, पेदल तेवीस हजार च्यार से चोसट 23464, उंट आठ से त्रेसट 863, हाती गुणीयासी 79, घुड़नाला चमालीस 44, कमणौत नवसे 900, बाण केची का उंट अठीयासी असी, अकंदर फोज हजार

अड़तीस को आसरो 38000 लेर कला नीछा उतरीया। धराउ दरवाजो बारी को पछै पातसाही फोज आई नबाब स्मरथषा मुरजोनुर बेग मीर जमाल षां तीन ही अमीरा की लार फोज हाती घोड़ा पेदल जमुर कमणोत तोब नाल सगली फोज गुणचालीस हजार की दोई आड़ी कीदी पछै दोई फोजा रे तरवार बाजी पहले दन तीन पहर ताई पछै सराई फरी पछै दुसरे दन जमुर बंदुक कबाणा की अड़ाई पहर राड़ होई पछै तीसरे दन सरदारा ने घोड़ा तो फेर पातसाही फोज उपरे पटक दीदा साड़ा तीन पहर तरवार बाजी पातहसाही फोज का मालक तीन ही अमीर काम आया और हाती घोड़ा पेदल कमणोत पेदल सुदा फोज पातसाही अगतीस हजार अकसो पेतीस लोग काम आया 31135 अतरा काम आया ओर श्री हजुर की फोज का उमराव डोड़ीया रणमालजी काम आया और हाती घोड़ा पेदल कमणोत सगली फोज हजार अकवीस. सात से चवदा काम आया 21714 पातसाही फते बाजी श्री हजुर री फोज रा पग पाछा लागा संमत बारा से गुणपचास 1249 का पोस सुदी नोमी सनेसरवार को प्रथम चोगान को जुध हुवो पछै बड़ा महला रा दरवाजा रो दरीषांनो श्री हजुर रो हुवो दोई सरदारां ने बीड़ा माग्या पुवार जेसोजी देवड़ा सीरोही रा राव राणंगजी ओर सरदार चहुवांण सजनराईजी गढ़ अजमेर रा जेसलमेर राजा बणबीर जी सोनीगरा राव उहड़जी जालोर राठोड़ परबतजी छव ही सरदार उठेर जुहार कीदो पछै श्री हजुर रावल रतनसेणजी ने आवद सोद री जरकसी सरपाव पान का बीड़ा बकसीया केसरी पाग पहराई श्री जी री पाईगा सु च्यार ही सरदार रे बदले घोड़ा बकस्या सीष बकसी श्री हजुर उठेर छाती सु लगाईर पछै बदा बकसी पछै फोज त्यार होई घोड़ा हाती पेदल कमणोत जमुर बंदुक घुड़नाला अंकदर फोज हजार चोरासी हजार नवसे अड़सट 84968 लेर फोज का मुकाम तलेटी महे हुवा आ बात पातसाह ने सामली फोज त्यारी कीदी नबाब नुरषा नबाब षान सेरषा सईद तुरापषा सेष लाल षां सेष पीरोज षा मुगल हपतुलषां मुरजा नबरबेग ओ सात ही सीरदार षांनजादा श्री षुदाह का होकम सु गभीरी नदी सु आथमणे करड़े चीतोड़ का कीला सु कोस तीन दुरा षेत करीयो गाम पाडोली ने गाम ओडुद पोडोली बीच पातसाही फोज हाती घोड़ा पेदल तोबा नाल जंबुर कमणोत बाण केची सुदा हजार गुणीयासी आटसे बारा 79812 पछै दोही फोजा के तरवार सरू होई पहले दन पहर एक दुजे दन पहर दोई तीजे दन पहर च्यार चोथे दन पहर डोड़ पाचमे दन च्यार ही पहर तरवार बाजी पांच दन ताही जी महे पातसाही अमीर छव काम आया हाती घोड़ा पेदल कमणोत सगली फोज हजार बासट हजार सातसे तीयोतर काम आई 62773 काम आई श्री हजुर की फोज का अमराव च्यार तो काम आया दोई घाईल हुवा राठौड़ पुवार दोई घाईल हुवा ओर फोज हाती घोड़ा पेदल सगला त्रेसट हजार च्यारसे त्रीयाणवे 63493 काम आया प्रथम तो ही हजुर की फोज ने मचष

षाई पछै साचा मना घोड़ा तोक पटक दीदा पातसाही अमीर छव मार लीया अर फोज पातसाही भाग नीसरी अर श्री हजुर अेकलींगनाथ कालकाजी री फते बाजी।

3. तीसरो दरीषांनो श्री हजुर को बाईण माताजी रा दरबार ने हुवो जठे तीन सरदारां ने होकम मागीयो। ठाकुर कलीयांण जी पुवार बाहेलो झाझुजी बालेछो षोराजजी तीन ही सरदारां है आवद सोदरी ओर सरपाव पान रा बीड़ा देर बीदा दीदी आपरी फोज हाती घोड़ा पेदल सरबंदी सारो साथ चोवीस हजार छवसो चोपन 24654 लेर चीतोड़ की नदी गंभीरी उपर डेरा कीदा पछै तीन ही सरदारां ने अकल उपाई पहले दन तो आपी रतवा देवा पछै दुसरे दन दन की तरवार पकड़ागा पछै गावड़ा महे सु कीरा है भेसा लेर बुलायो गुणपचास पाड़ा मगाया अर परीता मुसाला हात च्यार च्यार लंबी कराई पाड़ा का सीग ने मुसाला तेल महे भजोलाईर बादी पछै आह समजाया पातसाही फोज की परे जाईर डुगरी के आलषे मुसाला लगाईर पछै भेसा है पातसाह की फोज उपरे हाक दीजो कोस पोण कोस दुरा सु हाक दीजो अ थे सगला आदमी डुगरी के आलषे आई जाजो जसी रीत सरदारां ने कही जसी रीत कीरां न कर ने पातसाही फोज उपरे भेसा हाक दीदा अर कीरते अंकत होई गीया रात पहर दोई गई पातसाह की फोज कां ने मुसाला देषी ओर फोज महे हलबल लागी मुसाला उपरे दोई च्यार अवाज पातसाई फोज महे सु हुवा पछै श्री हजुर की फोज तीन ही सरदारां ने घोड़ा तोकेर हब हजा घोड़ा फोज उपरे पटकई घणी घणी तरवार बाजी सरदार दोई तो काम आया बालेछो षोराजजी घाईल हुवा ओ घोड़ो पेदल श्री हजुर की फोज को लोग छव छव हजार के आसरे काम आया 6000 ओर पातसाही फोज को लोग के महमहे तरवार चाली सो घोड़ा असवार पेदल सगली फोज छाईस हजार आठसे चमोतर काम आया श्री हजुर की फोज की फते बाजी।

4. चोथो दरीषांनो श्री चोमुषाजी को हुवो जणी महे दोई सीरदारां ने बीड़ा मागी षीची अजवनजी। जोधजी बंस दोही हे श्री हजुर ने आवद सोदे री सरपाव जरकसी बीड़ो बगस्यो पछै फोज तीयारी कीदी हाती घोड़ा पेदल जंमुर कमणेत तोब नाल सगली फोज हजार तेतीस तीन से गुणचालीस 33339 लेर नदी गंभीरी उपरे डेरा हुवा अठीने पातसाही फोज का अमीर जादा च्यार सेष गमीरबगस 1 पठान अलाईबकस 2 मुरजा हसनबेग 3 नबद महेमंद ओर फोज घोड़ा हाती पेदल कमणोत जमुर तोब नाल सगली फोज अड़तीस हजार च्यार से बीयालीस 38442 गाम सतषंदा री उपरे मामलो हुवो प्रथम दन तो पहर दोई तरवार बाजी दुसरे दन पहर तीन तरवार बाजी तीसरे दन दोई घड़ी तरवार बाजी चोथे दन च्यार ही पहर तरवार बाजी जीमहे श्री हजुर की फोज घोड़ो हाती पेदल उंट कमणोत सुदा तेतीस हजार फोज काम आई गई दोही सरदारा सुदा ओर पातसाही फोज का अमीर दोई काम आया मुरजाहसन षां नजर

महमंद दोई घाईल हुवा ओर फोज हाती घोड़ा उंट पेदल सुदा हजार अठाईस दोही से बारा 28212 काम आई पातसाही फते होई –

5. पांचमों दरीषांनो चतरंगजी मोरी का तलाव का महला ने हुवो जठे श्री हजुर नषे सु सरदार दोई ने बीड़ा मागीया चहुवांण अनंतरायजी जेतसीजी परवड़ ने श्री हजुर बीड़ा बकस्या आवद सोदेरी सरपाव जरकसी बीड़ा बकस्या और हाती घोड़ा पेदल तोब नाल जंमुर सगली फोज हजार सतरा लेर कला री नीछे डेरा हुवा पछै रात पहर डोड़ गई जठा पाछै पातसाही फोज उपरे घोड़ा तोकेर पटक दीदा तरवार चाली। पातसाही फोज का लोग पहला हुसार होई गीया सो सामी तोबा कर दीदी तोबा का आवाज दन उगो जठा ताई हुवा सतराई हजार फोज ओर दोही सरदार काम आया ओर पातसाही फोज को लोग सात हजार काम आयो पातसाही फते बाजी।

6. छठो दरीषांनो श्री जी रा दीवांण षांना को हुवो दोई सीरदारां ने बीड़ा मागीया नेतसीजी मागट गुलुजी मकवाणां देलणसीजी नरबांण फोज हजार तेवीस हाती घोड़ा पेदल तोब जमुर सुदा कला उपर सु तलेटी ने डेरा हुवा पछै पातसाही फोज मीरमहमंद अकबरषां पठाण मीर सरदार अली फोज हजार अकतीस सु हाती घोड़ा पेदल तोब जमुर सुदा गाम पचमथा के गोर में दोई दन ताही नेतसीजी मागट गोलुजी मकवाणा देलणजी नरबाण काम आया फोज हजार ओगणीस आसरे काम आई पातसाही अमीर दोई काम आया सरदार अली के लोह लागा ओर फोज हजार अठारा काम आई फते पातसाही फोज की रही –

7. सातमो दरीषांनो श्री लीलकंठजी को हुवो सरदार तीन ने बीड़ा मागीया आवद सोदरी सरपाव जरकसी बीड़ा बगस्या मनजी बड़दालो सोलंषी सजनोजी दुरगोजी गोहील फोज सगली हाती घोड़ा पेदल सुदा बाईस हजार सोला 220016 का डेरा नदी गभीरी उपरे हुवा पछै पातसाही फोज अमीरजादा च्यार मीर हपतुलजी। जसरूपखांन नबाब सेष दोलतषां पीरोजबेग मीरजा फोज हाती घोड़ा पेदल हजार चोवीस गाम टाही अर काली षेर बचे दन पांच ताही तरवार बाजी पातसाही अमीर च्यार ही काम आया ओर फोज हजार अठारा काम आई श्री हजुर को अमराव अेक काम आयो मनजी बड़दालो दुरगोजी गोहल सजनोजी सोलंषी दो घायल हुवा ओर हाती घोड़ा पेदल सगली फोज हजार सोला काम आई पातसाही फोज कोस सवा भागी फते श्री हजुर की होई आसोज सुदी पुरणमासी रे दन

8. आठमो दरीषानों श्री सहसमुषाजी को हुवो जी महे बीड़ा मांगीया चारण नेतीदांन ने फोज हजार दस 10000 लेर बेपारी हेड़ाउ बणेर पातसाही फोज महे घोड़ा अेक हजार अकसो अेक लेर गीयो पातसाही फोज की बीच जाई डेरो कीदो पछै पातसाह ने घोड़ा मोलाया जदी नेतीदांन हेडाउ ने कही के घोड़ा तो हु चीतोड़ का धणी के

बदले लाया हुं अर पातसाहजी अणां घोड़ा रो मोल आप सु कहे नही ओ घोड़ा तो राणा जीयो हुवे सो लेगा या बात सुण पातसाहे रोस उपजीयो ईनका घोड़ा का मोल करावो हेड़ाउ ने घोड़ा को मोल कीयो अेक अेक घोड़ा को मोल आठ आठ लाष रूपीया मोल का कीया जदी पातसाही मसाणी घोड़ा को आयो अर मसाणी ने कीमत कीदी घोड़ा तो पांच पांच सात सात हजार की कीमत का बताया पछै हजरत पातसाह अलावदीन स्याह गोरी घोड़ा देषबा आया आवता ही चारण नेतीदान को हात पातसाह उपरे हुवो जतरे आंबा की डाली आड़ी आई गई सो आबा की डाली कटेर पातसाही पाग का पेच जाई कटीया अर हाक बाजी पछै हजार ही आदमी नेतीदांन का साथ वाला ने तरवार पकड़ी पछै झगड़ो हवो अर हाको हुवो के दगाईत फोज महे धस गीया हजार ही आदमी सु नेतीदांन जी चारण काम आया पातसाही फोज को लोग च्यार हजार दोहसे लोग काम आयो ओर अमीरजादा सरदार नव काम आया पातसाह जषमी हुवा गाम पाडोली का डेरा ने

9. नवमो दरीषांनो श्री पदमणीजी का महला को हुवो सरदारां ने बीड़ा मागीया सोभजी महाजन झाझुजी परोथ नागदाहा दोही हे श्री हजुर ने सोदरी आवद सरपाव जरकसी बीड़ा बगस्या हाती घोड़ा पेदल उंट तोब नाल जबुर सगली फोज हजार ओगणीस सु डेरो तलेटी ने नदी गभीरी रे करड़े हुवो आ बात पातसाह ने सामलेर बीदा कीदा अमीर च्यार 4 पहपषां मुसयपी हसनषा कोटवाल मरीषां अपसर सादत षां सोबेदार ओर फोज हजार बाईस हाती घोड़ा पेदल तोब नाल जंमुर सुदा पछै तरवार सरू होई गाम सुरपुर के गोर में श्री जी री फोज का सरदार दोई फोज ओगणीस ही हजार काम आई दन तीन महे ओर पातसाही फोज का अमीर तीन ही काम आया और फोज हजार बाईस ही काम आई –

10. दसमो दरीषांनो गोराजी बादलजी रा महला को हुवो उठे छव सरदारा ने बीड़ा मागीया गोरोजी 1 बादलजी 2 बेणजी महाजन 3 गोपालजी परोथ 4 रतनजी षतरी सागोजी सोनगीरो श्री हजुर ने सोदरी आवद सरपाव जरकसी बीड़ा बकसीया रू ओर फोज हजार सोला हाती घोड़ा तोब जमुर पेदल कमणोत लेर तलेटी महे डेरा दीदा पछै पातसाही फोज महे सु सरदार दोई छोटा पातसाह नबाब गोसषांन ओर फोज हजार चोवीस 24000 हाती घोड़ा पेदल सुदा गाम सईड़ा रे गोर में घेत हुवो दोई दन ताही तरवार बाजी सरदार 4 काम आया मेणजी माहाजन गोपालजी परोत रतनजी षतरी सागोजी सोनगीरो च्यार ही काम आया गोराजी बादलजी रे लोह लागा ओर फोज हजार नव काम आई पातसाही अमीर दोही काम आया फोज हजार पदरा काम आई पछै पातसाही फोज भागी कोस अड़ाई ताई गोरा बादल री फते बाजी पछै फते कर ने घाईल थका गोरा बादल श्री जी रे कदमा लागा श्री हजुर ने छाती सु लगाईर

माहाराणीजी श्री पदमणीजी ने आपका भाया री नछरावल कीदी केही पदारथ कंगीराहे लुटाया।

11. ग्यारमो दरीषांनो नव लषा को हुवो सरदार 4 ने बीड़ा मागीया फातीयाजी जेतमालजी भड़दुजी बंस देवलजी मकवाणो श्री हजुर ने सोदेरी आवद सरपाव जरकसी बीड़ा बकसीया ओर हाती घोड़ा पेदल कमणोत ज्मुर तोबा सगली फोज सतरा हजार के आसरे लेर तलेटी ने डेरा हुवा पछै गांम ने तलाव के गोर में पेत हुवो पातसाही अमीर दोई लुबरषांन पठान लालषा पठान ओर फोज हजार पचीस सु तरवार बाजी दोई दन अक रात अक लग तरवार बाजी श्री हजुर का सरदार दोई कांम आया भड़ दुजी बंस देवलजी मकवाणा फतीया जेतमाल घाईल हुवा आपकी फोज हजार आठ काम आई ओर पातसाही फोज हजार ओगणीस 19 दोई अमीर काम आया फोज पातसाही भागी कोस डोड़ श्री हजुर की फतेबाजी पछै फातीया जी जेतमालजी घाईल थका श्री हजुर के कदमा लागा माहाराणीजी श्री पदमणीजी ने आपरा भाया की नछरावल कीदी केही पदारथ कंगीराहे लुटाया।

12. बारमो दरीषांनो पदमणी जी का महला री बारादरी हुवो सरदार पांच ने बीड़ा मागीया रामोजी कलोजी बेणीदास ओर सांमतसीजी पढीयार सवराईजी चहुवांण श्री हजुर आवद सरपाव बीड़ा बकस्या ओर फोज हजार पदरा ले तलेटी महे डेरा हुवा पातसाही अमीर तीन नबाब अलाईबकर नबाब जीत षां नवाब पीरोजषां और फोज लारे हजार अकवीस गाम बाकरोल रे गाम में पेत हुवो दन तीन तरवार बाजी पातसाई अमीर तीन ही काम आया ओर फोज हजार सतरा के आसरे कांम आई श्री हजुर को अमराव तीन काम आया बेणीदास षांनाजाद सांमतसीजी पढ़ीयार सीवराई चहुवांण काम आया रामोजी कलोजी घाईल हुवा ओर फोज हजार दस काम आई श्री जी री फते होई पातसाही फोज भागी पछै घाईल थका रामा कला श्री जी रे कदम लागा पछै माहाराणीजी पदमणीजी ने आपरा भाया री नछरावल कीदो असरपीया कगीरा हे लुटाई अणी रीत मोटा जुध बारा हुवा ओर झगड़ा ओगणीस हुवा अणी रीत झगड़ो जुध हुवो जी महे झगड़ा तो ग्यारा हुवा 11 जुध बारा हुवा आठ रतवा दीदी असा अगतीस जुध हुवा बरस दस महे दस बरस पातसाह अलावदीन गोरी ने चीतोड़ दोलो घेरो दीदो जी महे श्री हजुर की तरप सु अगतीस बगत तरवार बाजी केही बगत दंगा केही बगत षेत हुवा छोटी मोटी दस बीस आदमी काम आया जणां झगड़ा की तो गणती नही अेक दन पातसाह ने राघाजी चेतनजी सु होकम फरमायो के अबे कला टुटने का उपाव बतावो क्यु के तुम याहा का रईस हो जदी राधा चेतन ने अरज कीदी के हजरत सलामत मेरा कहना तो असा हे के गढ़ चीतोड़ का धणी रावल रतनसेनजी पकड़ा जावे जदी कला अपने बस में हुवे दुजु तो हीदवानी कलो हे सो कोट के

कांगरे कांगरे देवी देवता जोगणीया लड़ रही है सो कलो आपणे बस हुवे नही जीको काहीक उपाव करणो रावल जी हे हाते आवे जसो उपाव लगावणो आथमणी दसा तलेटी की आड़ी दोई दरवाजा पहलो तो तलेटी की पाडल पोल दुसरो दरवाजो रामपोल उगमणी दसा सुरजपोल तो धराउ दसा उतर की बारी दरवाजो आथमणी दसा तलेटी की नीछली पाडलपोल ने नाईका की चोकी पाडलपोल नाईका री वसु ज्या को आदमी पाडलीपोल ने रहे सीपाई ग्यारा से चवदा 1114 नाईक जणा को जमादार नरभो हरजी हे राघाजी चेतनजी ने बुलाया रात के समीये उर पातसाह के मुडा आगे हाजर कीदा पछै पातसाह ने नाईक जमादार दोही सु होकम कीदो के तुमारा मालीक झरणीया का माहादेव ने दरसण करबा दन रोज आवे है सो रावल रतनसेण को हमारी फोज वालो को पकड़ लेने देवो तुम लोग कोही मदद करो मती तो तुम दोनो जमादारा को दोई लाष रूपीया ईनाम का मीलेगा दुसरा चीतोड़ का कीला उपर हमारा राज परवरदगार कर देवेगा तो तुम दोनो ही जमादार को दोई लाष रूपीया की जागीर मीलेगा असी रीत पाडलपोल की सरबंदी हे बदलाई लीया अर अणां हे रूपीया दीया आपणां कर लीदा पछै रामपोल का लोग नांका का जणा है बदलबा को उपाव लगाई मेलीया है उणी बगत महे रावलजी रतनसेणजी झरणीया का माहादेव ने दरसण करबा रे बदले पदारीया उणी बगत महे षबर वाला ने षबर लगाई के अबार की बगत महे रावलजी दरसण करबा आया है पछै जाता रहेगा कला उपर पछ पातसाह की फोज महे सु पलटणां आई सो रावलजी री दोली फर गई।

रावल रतनसेणजी हे पकड़ लीया है रावलजी हे पातसाह की हाजर ले गीया गाम पाडोली का डेरां रावलजी रतनसेणजी हे तंबु महे जाई बेठाया या बात राघाजी चेतनजी ने सांमली पछै पातसाह के तंबु महे जाईर देषो तो रावल रतनसेणजी बीराजीया है पछै राघाजी चेतनजी के आसका ब्रह्माव कीदो पापीया राई पराग हतीयारा रा राई बाणारसी रघुबंसी राज चक्रवती हीदवाणी रा सुरज श्री चत्रकोट नाथ आसका सुणतां ही रावल रतनसेणजी उठ मलीया पछै राघोजी चेतनजी बोल्या के श्री हजुर होकम कीदो थो के पातसाह माके पामणो लावजो श्री हजुर का होकम सु पातसाह हे लाईर श्री जी हे हाजर कीदा है मासु चाकरी बणआई हजुर का होकम परमाणे सो बणी आई जणी परमाणे चाकरी उठाई पछै रावलजी ने कही उतो होणहार थो सो हुवो परंत अब असी हे के समालो या नही हुवे सो रघुबंसी सु राज चीतोड़ को जातो रहे पछै राघो चेतन बोल्या राघा चेतन ने कही के श्री हजुर जतरो ओगण नीकालो जतरो ही नीसरे है पछै रावलजी ने होकम कीदो के राघोजी चेतनजी दुसरा था महे नही है आ तो माकी माने भगती परंत अबे पातसाही फोज टली चाहीये अर मुहे कला उपर पोछाणो चाहीजे पछै राघो चेतन बोलीया के हीदवाणी सुरज करणो तो माके हात

थो अर सुदरबो तो श्री अेकलीनाथ के हात है परंत अेक पहर महे आप हे कला री उपरे पोछाई देवागा हजुर का ही अनेसो मन महे लावे नही या बात श्री हजुर से करने पछै राघोजी चेतनजी श्री पातसाह अलावदीन गोरी की हाजर गीया ओर पुछीयो के रावल जी सु मुतलब आपके लेणो हुवे जे समीचार को हुकम करो पछै पातसाह ने कही के इनसे मेरा कहना असा है के तुमारी पदमनी हमको ला देवो तो अब ही तुमारे को सीष दे देवे पछै राघा चेतन ने बात बणाई आपके पदमणी की गरज हुवे तो अक पहर महे मगवाकर हाजर कर देवेगा आ बात पातसाह आप पहली कहता तो पदमणी हे मगाईकर कद की ही हाजर कर देता पछै राघाजी चेतनजी ने कागद लीषो पांच ही सरदारा रे नामे गोराजी बादलजी फातीया जी जेतमालजी रामाजी कलाजी आरे नामे लीष पोछाई आप हे श्री हजुर रावलजी रतनसेणजी ने आछी तरेह सु राषीया जणी की चाकरी को काम पड़ीयो है अकल बणावो तो अठे पातसाह पदमणीजी हे मगावे है सो आप मीआना डोला तीयार करो अर पाटवी डोलो पदमणीजी को बणाओ जणी डोला ऊपर पदमणीजी का पहरबा को चार डोला ऊपरे ओढावो ओर पहरबा को कंचवो डोला का ईडा ने बदाई देवो कसी रीत के कपड़ा ने पदमणीजी की देह की कसबोई आवेगा जणी सु डोला री उपर भमर भमता आवेगा जणी बात सु भभराह देषेर पातसाह साच मानेगा अक अेक डोला महे दोई दोई सरदार बेठावजो आठ आदमी तोकबा वाला नवमो चोबदार दोई आदमी परेच वाला दोई आदमी अेक तो जल की झारी वालो एक पंखा वालो अक डोला की लार आदमी पंदरा 15 पदरा ही आदमी का आवद पाली डोला महे ले जाजो अर ससतर पुरा लावजो आपके आसे आवे जतरा डोला बणावजो परंत डोला थोड़ा बणावो मती पदमणीजी को डोलो बणावो जी महे गोरोजी बादलजी दोही आप बीराजजो अक महे फातीया जेतमाल अेक महे रामो कलो असी रीत करने आज सु चोथे दन तथा पांचमे दन बेगा आवजो अठे हजुर रे घणी घबराई आई रही छै घड़ी दोई दन चढ़ता डोलो पातसाह के डेरे पोछी चाहीजे असी रीत की लषी थकी कला उपरे गई छव ही सरदारां ने बाचेर चीत उपरे उदासी घणी लाया श्री हजुर हे सरदारां ने बोहोत बुरा कही हजुर ने यो काही कीदो सो रजपुतां बनां अकला ही नीसरेन जाता रीया। पछै राघा चेतन की लषी बाचेर छव ही सरदारां ने अकतीयारी कीदी। पछै सरदारां ने डोला की तीयारी को सामान करबा लागा। च्यार दन महे तीयारी कर लीदी। सगला डोला को जोड़ बादेर अेक डोला को जोड़ बादेर अेक डोला महे दोई तो बेठवा वाला दस जणा तोकबा वाला दोई जणां जल पषां का अक चोबदार अेक डोला की लार पदरा आदमी हुवा पदरा ही का आवद पाती डोला म्हे गोराजी बादलजी को डोला उपरे फातीया जेतमालजी का डोला उपरे राणीजी पदमणीजी का बसत्र चीर कंचवो उपरे ओड़ाई दीदा उणी

सु भमर भ्रमता आवे असी रीत डोला सातसे बीस डोला बणांया तीन से अगसट तो डोला 361 तीन से गुणसट मीयानां 359 ओ सातसे बीस डोला बणाया पछै पाचमे दन दन उगतां डोला बाहीर हुवा उणी दन श्री हजुर पातसाह राधा चेतन सगला ही अेक ही तंबु महे बीराजीया था। श्री हजुर ने पाच ही दन ताही राघाजी चेतनजी के डेरे फराल कीदो अर अंन जल लीदो नही डोला तीयार होईर पाडलपोल बाहरा नीसरीया सो डोला को अगेड़ो तो गाम पाड़ोली ने पछेड़ो डोला का पाडलपोल ने पातसाह का डेरा बीचेर पाडलपोल बीच तीन कोस ताई डोली सु डोलो मल गीयो डोला सु डोलो लगे लगे मल गीया पातसाही तंबु की नषे तीन ही डोला जोड़े जोड़े उबा रीया। पदमणीजी का डोला महे गोराजी बादलजी पदमणी बण बेठा था। पछै पातसाह ने डोला री उपरे भमर भमता देषेर सत मानी पछै पातसाह ने साड़ा सातसे मोहर पदमणीजी का डोला उपर नछरावल कीदी। पछै पदमणीजी ने श्री हजुर हे बुलाया रावलजी साहेब हे पदमणीजी बुलावे हे पछै राघोजी चेतन ने आंष को ईसारो दीयो अर पातसाह ने कही के रावलजी को सीष देवो पछै रावल जी उठेर पदमणीजी का डोला महे गीया उठे गोरा बादल ने श्री हजुर हे ओलंबो दीदो के चो तरफ तो अणी मलेछे की फोज पड़ी है। कला दोलो घेरो घाल रयो है अणी बगत महे अकला ही नकलबा को धरम नही अकला ही नीसरीया तो जीका फल हजुर ने भुगतीया श्री हजुर ने छव ही सरदारा सु कही के अबे कसो करणो पछै सरदारां ने कही के हजुर तो गढ़ उपरे पदारे दरीषांना गीया पछै रामपोल की रणजीत नोबत उपरे डंको करावजे पछै में डोल री बाहरा नीसरांगा आप तो डोला डोला महे पदारजावो अर कला दाषल हुवो अर राघाजी चेतनजी हे बी कह देवाड़ो सो उबी फोज महे सु अकंत होई जावे नही तो पछै आपणो बीरांनो दीषेगा नही आ बात होता तो राघो चेतन बी तलेटी महे आई गीया। श्री हजुर पण डोला डोला महे होईर पाडलपोल पोछा रामपोल ने पदारीया दरीषांने जाईर रामपोल की रणजीत नोबत उपरे डंको हुवो पछै डोला वाला ने जाणी सो श्री हजुर गढ़ महे पोछ गीया। छव ही सरदार गोरो बादल फातीया जेतमाल रामो कलो तीन ही डोला जोड़े जोड़ आने कह मोकलीया के पातसाह सलामत आपहे पदमनीजी बुलावे है जदी पातसाह उठेर डोला की दसा गीया। डोला की पड़द तोकेर महे पातसाह ने महे मुडो कीदो। पछै पातसाह की डाडी गोरा बादल ने पकड़ लीदी। पातसाह का दोही गालां उपरे अेक अेक थाप की दीदी अर गोरा बादल ने कही के पातसाह तुहे काही मारां तुतो लाषां को पेट भरबा वालो है तुहे मारबो को धरम नही नही तो अबारू ही बुजाई देता पछै पातसाह की डाड़ी छोड़ दीदी। पछै पातसाह भागो अर कह गीयो के डोला महे तो पदमनी नही है अर ओ तो दगो है या कहतां तो श्री अकलीगनाथ की जय जय बोली जेकार होती थका डोला हे तो फेक दीया।

अर अेक अेक डोला महे सु पदरा आदमी आवद पाती पकड़ीया थका उठीया असी रीत सातसे बीस ही डोला महे सु आदमी दस हजार आठसे 10800 आदमी आवद पकड़ेर उठीया पछै पातसाही फोज महे तरवार बाजबा लागी। अगड़ी बी पातसाह की फोज महे षांनजादा मीर अमराव पठाण नबाब साहजादा सतरासे षांनजादा ने आवद पकड़ीया पछै दोही आड़ी सु अणी मली घणो घणो जुध हुवो जणी को बरणांव कठाकताही करां अठीने पाड़लपोल बीचरे गाम पाडोला बीच तीन कोस ताही धड़ ओर मुड मील गीया हाती घोड़ा पेदल सरदार अमीर अमराव उंट बेल का काछव कोस छव की बीच महे घड़ मुड मील गया रगत को ठेपो नदी गभीरी महे मल गीयो अदभुत जुध हुवो अर कोस पांच ताई छोड़ छोड़ पातसाही फोज भाग नीसरी। श्री हजुर को साथ डोला का लोग दस हजार आठसे गीया था। ज्या म्हे सु सरदार मोटा छव 6 और सरदार पीचाणु और सपाई तथा चाकर अकसो अक अतरा तो घाईल हुवा थका बचीया और हजुरी नव अकंदर दोहसे बंचीया और दस हजार पांचसे नेवासी काम आया 10589 और अठीने श्री पातसाह की फोज का बारासे पेतीस तो षांनजादा काम आया और हाती घोड़ा पेदल कमणोत सगली पातसाह की फोज अठाणवे हजार नवसे सतीयासी काम आया 98987 घाईल हुवा पातसाही ओगणीस हजार नवसे सोला 19916 दोहसे ग्यारा ही सरदार श्री हजुर का फते कर ने घाईल हुवा थका बावड़ीया गोराजी, बादलजी, पातीयाजी, जेतमालजी, रामाजी, कलोजी और लारे घाईल दोहसे पांच लेर पाछा कला की दसा ने बावड़ीया अर कला उपर गीया। आप आपणी हवेली ने जावथा सो छव ही सरदारां ने बीचारी के यातो देह नासवान है आपी अमर नही होई आया हां। आपा ने श्री अेकलींगनाथ ने जीवता राषीया हे सो बाईजी साहब पदमणीजी सु मल आंवा। पछै फातीया, जेतमाल, गोरा, बादल, रामो, कलो छव ही सरदार राणीजी पदमणीजी रे अठे आया। राणीजी पदमणीजी ने मोतीया सु आरती करी। अनेष पदारथ रूपीया, असरपीया उपर नछरावल करने कंगीराहे लुटाया। पछै छव ही सरदार आप आपणी हवेली ने गीया संमत बारासे छपन का बरषे 1256 का.

पछै हजुर रा नाईत आछा छव ही सरदार रे अठे पोछाया। श्री हजुर बी दन बीचे तीन बगत चोकसी रे बदले पदारबु करे अर होकम करे के अणा छव ही सरदारां ने देस मेवाड़ के मुढ नांक राषीया अर छव ही सरदारां री बोहोत बड़ाई श्री हजुर करबु करे। पछै श्री पातसाह अलावदीनस्याहजी ने आपकी दली की हवेलीया थाणां उपर लष लष ओर फोज तीन साड़ा तीन लाष फोज मगाई। गढ़ चीतोड़ ने मंगाई। ज्या फोज पातसाही आई आई महजुत हुई। झगड़ो डोला का लोगां ने डोला का सरदार डोला बणां था जणी जुध हे हुवा महीनां अक दन सतरा दन अेक महीनां पछै पातसाह की तोबा चीतोड़ का कला उपरे छुटबा लाग गई जसी रीत पहला तोबा बहती थी

जसी ही रीस पाछे तोबा पातसाह ने सरू कर दीदी। पछै श्री रावल जी ने बीचारी के अबे तो फोज हे दन घणा होई गीया है सो फोज पातसाही उठ जावे तो चोषी। सोला ही देस गढ़ चीतोड़ का राज का बगड़ गीया। अर सरदार मोतीयां री माला सरीषा पर पड़ीयो। अर अबे लोग मारी नष चोथी पाती को रह गीयो। असी रीत श्री हजुर ने दरीषांना महे आपका अमरावा सु होकम कीदो। अणीरीत सु मनसुबो होई रयो है। अबे सरदार सारा ही बीचारी जसी रीत करां। जदी सगला सरदारां ने अरज कीदी के अबे तो याही अकल करणी दस-दस, ग्यारा ग्यारा बरस हुवा सो जीव मातर सगलो ही घबराई गीया। अर लोग बीसारो ही बगड़ गीया। अबे असी रीत करणी के अबे अठा सु पातसाह ने नांमे लीष पोछावो हक अमांन सरूपी के पातसाह जी आप कहो जसी रीत करां। थाकी माकी बीच महे गीता दुसरी कुरान कलमां सरीयेत है। असी रीत पातसाह को मन राजी राखेर मन भरेन पातसाहे सीष देणी। कसी रीत के दस दस ग्यारा ग्यारा बरस होई गीया अबे हीदवाण रजपुतां को बी दुसण नही। श्री हजुर होकम कीदो के सरदारां अणी रीत बीचारो के पातसाह बी अणी के घर ने जातो रहे अर आपणो राज आपणां पगां रह जावे। उणी बगत महे सामरथा थाणो गढ़ मंडोवर का थाणां देस कछ का थाणां देस गुजरात का थाणां च्यार ही देस मोटा का श्री रावल जी का थाणां तो उठाई दीदा। अर पातसाह अलावदीन ने राज कर लीयो। पछै गढ़ चीतोड़ महे सु सारा ही सरदारां ने मलेर श्री पातसाह के नाम लीषी। दोई रीत का समीचार लीषीया। सगती ओर नरमी दोही लषी। श्री पातसाह सलामत आप चोवीस पीरा की करामात से राज करते हो अर आहां बी श्री अेकलीगनाथ का दीया हुवा राज हे। कला चीतोड़ का के कागरे देवता लड़ रीया है सो पातसाह तुम देष रये हो। तुम बी षुदाह परवर दगार को जोर से हो तो याहा बी श्री अेकलींगनाथ का जोर से है। आपने अछा कीया सो चीतोड़ आया। आपकु बी दस ग्यारा बरस का आसरा होई गीया। अबे आपकी मुदत होई गई। बारा बारा बरस तक कला चीतोड़ का आपके हात नही आया। जद जानना के अ कला चीतोड़ का करामाती है। ओ बात आप दील में नही: पहचानते हो ओर आप दलीसर परमेसर कुहाते हो। जणी बात सु आपकु केही बषत बंचा दोया है गादी का कसुर नही कीया है। अबे कोही रजपुत रीसां बलेतो थको। पाट, गादी उपरे घाव कर काड़ेगा। जीको दोस अब कोही रजपुत के सर नही है। जणी बात सु पातसाह आपके नामे लषी है। अर माको कहणो तो अणी परमाण है। अबे आपकी सगस रह गई है सगला संसार महे आपको नाम न रह गीयो। कणी रीत पछै पाछै सु कहेगा के पातसाह ने चीतोड़ दोलो बारा बरस को घेरो राषीयो अर चीतोड़ का रजपुतांह काट काट फेक दीदा। आगे पाछै ओ बातां जगत दुनीया कहेगा जो पातसाह बड़ा करामाती हुवा।

अणी बात के बदले आपहे काहा हा। अर आपका बड़ा मोटा राज है। दलीसर परमेसर की बराबर गणी जावे है। अबे आप दली को राज समालो। नही तो पातसाहजी आप गढ़ चीतोड़ के सर होई जावोगा। चीतोड़ के सर होई जाबा की बगत आई गई है। आप दली सु चीतोड़ ने आई लागा जठा सु लगाईर आज दन ताई छोटा मोटा जुध आपके माके बीयालीस जुध हुवा 42 बीयालीस ही झगड़ा महे आपहे बंचाई दीया। अबे हींदवा लोगो के मन महे पापसा उपज रया है सो अबे आपहे कोही बचावेगा नही अर बंचोगा भी नही। ओ झगड़ा बीयालीस हुवा जणा झगड़ा महे तो रजपुत सत अमान वाला लड़े था सो अमांन बीचारने आप हे बंचा दीया। अबे श्री हजुर का लोग सागर पैसा का षांनांजाद लोग ने बीड़ो उठायो हे सो फोज सु लड़ने के बदले आता है। अणां घरू लोगां चाकरया के माथे पेत नही है। दुजी ईनके जात नही है उनके ओमान बी नही है। अ लोग तो अेक अपना ही मालक कु मालक समजता है। ओ घरू लोग श्री हजुर का मोटा है सो कसी कु मालक अर चाकर अक ही समझता है अमान अकतीयार दोही बात समजता नही। ओ बात पातसाह सलामत आपका दील महे अछी तरे आ बात अकतीयारी की बीचार लेना। अणी रीत की लषी थकी पातसाह श्री अलावदीन के डेरे पोछाई अर पातसाह जी ने बाची अर आपका मीर अमीर हे बुलाया। अर सगला मीर अमीरां हे बाच सुणाई। पछै आपका अमीरां ने कही के हजरत षावीदो की सला महे आवेदीन पसन सो पात उपजी हुवे असी लीषो। पछै पातसाह आपका अमीरा ने बीचार कर लीषी। जदी पातसाह बोलीया के सुनते हो अमीर लोग अपने कु बी आह चीतोड़ का कीला ने बरस ग्यारा की मुदत होई गई है। ओर अपना हक बी अपनो ने बजाई दीया। अपनी लाषो फोज मारी गई। उनकी बी फोज बोहोत मारी गई। अबे तुम सब अमीर कहो जेसी करे जेसी ही लीषे। जदी सात ही नवाब मोटा था ज्याने कही ज्याहापनां आपने गाम दीली सरषा राज षुदाह ने दे रषा है अर गाम गढ़ चीतोड़ सरीषाराज की हवेली तो षुदा ह का राज महे अकसो बीयालीस है 142 चीतोड़ क्या बड़ी बात है अक ओर के अपन चीतोड़ कु ले लेना असा तो अपनो ने पेसतर ही धारी नही थी चीतोड़ कु मारने कु आपी आया नही अपने तो गरज पदमनी लेने के षातर आया है। अेक ओर के अपने कु पदमनी बी नही देवे कोनसी रीत के कोही ओर बीलाई का पातसाह आकर दली के पातसाह से कहे के तुमारी हुरमा हमको देदो जद आपकी उमर षुदा बरकरार बनी हे जतरे तो आप हुरमा को देवो नही पीछे जादा बद जावेगा अर आपकी ज्यान बी रहे नही पीछे से दावे जेसा हक हुवो। श्री षावीद कहते है वे रावल जी तुमारी पदमनी हमकु देदो सो रावल रतनसेन जीता रहे जतरे तो पदमनी आपकु मीले नही केसे के पदमनी उनकी ओरत है सो उ जीता थका अपने कु केसे पदमनी दे देगा। परंत अेक हु मारा

अरज करनां असा है के पदमनी देवे नही अर अपने को मीले नही। असी रीत लीषनां चाहीजे के रावल रतनसेन जी तुमारा कलां चीतोड़ कु लेने की गरज हमारे नही ओर दुसरी तुमारी पदमनी बी लेने की गरज हमारे नही। परंत हम गढ़ दली से पदमनी लेने के षातर आया सो पदमनी बी हमकु चाहीये नही परंत असा करो रावल रतनसेन के तुमारी पदमनी हमकु आंषो से दीषा देवो हम पदमनी को देष लेवेगा तो पीछे हमारा मन हट जावेगा अर पीछे हम दली चला जावेगा। अणी रीत गाम हेदराबाद का नबाब दरीयाव महमंद ने अरज कीया श्री पातसाह ने साची अकीन कर मानी। पछै पातसाह श्री अलावदीन स्याह गौरी जंगी ने श्री रावल रतनसेनजी के लीष भेजी। पातसाही षत लीषीयो थको दरीषांनो आयो। पछै श्री हजुर ने आपका चवदे ही मसल का अमरावां हे बुलाया ओर अमराव बीयालीस ओर उमराव चोरासी ओर छत्रपती राजा अठारा 18 सगला हे अकट करने दरीषांनो कीदो। सगला आई आई कुणस बजाई जुहार कर हात जोड़ सामां उबा रहेर पछै हजुर ने ताजीम दीदी। पछै अमराव सरदार राजा आप आपणी बेठक ने जाई बीराजीया। पछै पातसाही लषीयो आयो थो जी हे बंचायो पातसाह को कागद सुणेर पछै सरदारां ने अरज कीदी गरीबनवाज या गरहगत तो जसी रीत बणे जसी रीत परी टालणी के माहाराणीजी पदमणीजी की सहेल्या सोला है जणां महे सगस सरूपवान हुवे जणी हे महाराणीजी पदमणीजी को आभुसण और कपड़ा पहराई अणी मलेछ हे बुलाईर देषाई देवो सो सगली ही कास कट जावे अर कला की ग्रहगत टले। पछै पाछी पातसाह के नाम लीष मोकली आपने लषी के रावलजी तुमारी पदमणी का दरसन करावो सो पातसाह जी हम लोग को तो अकीयार है। आपका दीन का अकतीयार हम कु नही है। तुमारे हमारे अकतीयार प्रथम तो सोगन का दुसरा गीता कुरांन का अनकी अकतीयार है। तुम लोग सोगन है नही राषो जीणी बात को अकतीयार माह आबे नही। परंत माकी तरफ का तो सोगन मे लष मोकला ज्याहे तो मे अकतीयार राषा। सुरज चंद्रमा जल पवन गंगा गीता थाकी माकी बीच महे है। थासु दगो करां तो माकी मे भगतां कसी रीत के माने डोला बणांया पदमणीजी का डोला का उतर सु थाहे बुलाया जदी ही डोलां महे आपहे आबा देर थाहे तो आषर ही कर काड़ता परंत दगो करबा की तो श्री अेकलींगनाथ का राज महे कोही रजपुत को बीज तो दगो करे नही असा गाढा ही सोगन दगो करबा का है। जो कोही दगाईत लोग है जणां है गढ़ चीतोड़ का राज महे रहबा देवा नही। अणी रीत सोगना की अकतीयार की पातसाह के नामे लषी अर चोड़े लष दीदी अेक तो आप अेक षजमतदार घोड़ा चरवादार अतरा साथ सु आवो सो आप हे पदमणीजी का दरसण कराई देवा। अणी महे थासु दगो करा तो अतरा देवता थाकी मांकी बीच महे है ओर मे जात का हीदु सो हीदु धरम का सोगन है। असो लषेर पातसाही फोज

महे पोछायो। सगला मीर अमीर भेला हुईर लषो बांच्यो। सगला अमीरां ने पातसाह से अरज करी के हजरत सलामत हीदु लोगो ने कसम षाया केड़े तो दगा की बात उपर रजपुत लोग चीत देवे नही। ओ लोग रजपुत तरवार का मजबुत है अर बनां सीर से लड़ने वाले है कीस बात से के ओ दगा नही जानता है। अपना हक उपर महजुत रहते है। जद बनां सीर से तरवार चलाता है दगाईत हुईगा जीनसे कद बी तरवार पकड़ी जाईगा नही षेत छोड़कर भाग जायेगा। ओ अकीन की बातां मीर अमीर अमरावां ने श्री हजरत से कही। जदी पातसाह के अकतीयार हुवा। अर पातसाह ने कही के अंक मे कहु सो अपने तो पदमनी को देषनां है, परंत पहलां अपनो ने पदमनी देषी नही, देषी होती तो उनकी नी सानी अपन जानता देषते ही दील महे समज जाता के अही पदमनी है पदमनी के मोह बदल अछीसी षबसुरत अपने को बता देवे जद अपन तो जाने के अही पदमनी है। जदी आपका अमीरां ने लीषी के असी ही पाछी लीषो के अेक तो हमसे दगा न करो दुसरा मोह बदला पदमनी का न करो जीनका कसम तुमारा लोग महे होता है जेसा लीष भेजो जद हमको अकीन आवे। हम पदमनी को देष कर दली चले जाईगे। अणी रीत की लषेर श्री पातसाह ने रावलजी के मोकली अर पातसाह को षत श्री हजुर के दरीषांने आयो। सगला अमरावा हे बुलाईर सुणायो। सब ने सुणीयो सगला सरदारां ने अरज कीदी के गरीबनवाज आपणे काही पातसाहे मारणो है सो दगो करां। अर अर मार नाषां जी को बी काही अटकाव नही। आपणो कलो चीतोड़ को तो देव अंसी कलो है सो मुसलमान हे मार ने कला उपरे लोही नाषा मुसलमाना को लोही कला उपर पड़े जदी हीदवाणी को हक कलो रहे नही। मुसलमान का लोही सु मुसलमांनी हक होई जावे हे कसी रीत के श्री हजुर का मामाजी साहब राजा प्रथीराजजी चहुवांण दली अजमेर का धणी ने पहला रोसन अली फकीर की आंगली अजमेर का कला उपरे काटी जदी उणी फकीर को लोही अजमेर का कला उपर पड़ीयो जणी सु आदो राज हीदवा को देवतां को गढ़ अजमेर उपरे रह गीयो। आदो राज मुसलमांना का देवता को होई गीयो। जणी सु चहुवांण को राज तुरकांणे जातो रीयो। उणी बात सु पातसाह मार तो नाषां परंत चीतोड़ का कला उपरे तो मारणो नही अर आपणे पातसाह सु दगो करणो नही। आपी पातसाह री उपरे काहके बदले पाप वीचारां दुसरा पदमणीजी का मोह बदला की लषी तो आपी मोह बदलो नहीं करां, अकतीयार की लषी हे तो अकतीयार ही राषा। असी रीत करणी के महल का गोषड़ा नीछे तेल को कड़ाईलो भर देणो ओर माहारांणीजी पदमणीजी उणी तेल का कड़ाईला महे चोगेगा। पातसाह तेल का कड़ाईला महे पदमणीजी की छाया देष लेवेगा। अतरा महे नहीं मांने अर पातसाह उचो चोगे तो काटेर बटका कर नाषणां। पछै हुवेगा सो देषी रहेगा। असी सगलाई सरदार श्री हजुर ने पाछो जुबाप पातसाह

को लीषीयो के आप कुसी सु आवो अेक तो घोड़ो असवार आप अक षजमतदार, अेक पाड़ अणी परमाणे आवजो। आप सु कोही रीत को दगो करां ओर पदमणीजी को मोहे बदलो करां दरसण के बदले तो पातसाही जी थाकी माकी बीच, चंदरमा, सुरज, जल, पवन, गंगा, गीता है अर मे करांगा तो मे भगतागां थे करोगा तो थे भगतोगा आही माका अकतीयार है। अणी रीत पातसाह के नामे लीष मोकली। पातसाह ने बाची आपणा अमीरा हे बुलाया सुणायो सगला अमीरां ने अकतीयार कीदी। पाछी पातसाह ने लीषी हम पदमनी को देषन को हम कला महे आते है अन सवाई तुमारी से हम दुसरी बात कहे और बीचारे तो तुमारी हमारी बीचे कलमांसरीयेत हे षुदा महमंद परवर दगार है अर हमारा मुसलमान का हकांनी कसम है। अणी रीत को षत लषेर रावलजी के भेज दीदो। लषीयो दरीषांने आयो। पछै श्री हजुर ने सारा ही अमरावा हे सुणायो। सगला ही सरदारां के अकतीयार आई। पछै श्री हजुर अमरावा ने मसल उठाई के गरीबनवाज जतरा दरवाजा हे जतराई नीकास सरदारां री बसु राषागा। ओर सरदारां सवाई ओर को अकतीयार राषां नही, जतरे आप पदमणीजी का दरसण कराईर पातसाह सीष देवाड़जो। सो परो पाप कट जावेगा। कदाचीत पातसाह अवलो सवलो बोले उचो नीचो चोगे तो कुसी सु पातसाह का बटका कर नाषजो नही तो सोगन षाया अर उही बदले तो जी को अफराद माके सर नही। पछै तीन ही दरवाजा चोथी रांम पोल च्यार ही उपरे श्री हजुर ने आपणां तनांज्यान भाई बेटा हे मेल दीदा। पछै पातसाहे बुलायो। पातसाह घोड़ो षजमतदार पाडु च्यार ही जीव आया। अणी सीवाई ओर जादा आवेगा तो दरवाजा महे घसबा देवेगा नही। चार ही जीव सु पातसाह आयो। लार पहरो। जवान 7 पहरा हे पातसाहे दरवाजे अटक दीयो। पछै षजमतदार बोले के रसवलजी को तो होकम है कलो देषबा के बदले आया है हजुर के समीचार दरवाजा का सीरदारा ने मोकला पछै हजुर ने परवानगी दीदी घोड़ा 1 पतस 2 षजमतगार 3 पाडु 4 ओ च्यार ही आबा दीजो। पछै श्री हजुर का होकम परमाणे पहरा हे तो पाडलपोल बाहेरो उबो राष दीदो। च्यार ही जीव सु पातसाह कला उपर जाबा दीदो। पछै पातसाह रांमपोल के दरवाजे जाई उबो रयो। अर रावलजी बी पदारीया दोई अमीरा को मुकाबलो रांमपोल ने लागो। पातसाह को घोड़ो तो रामपोल की पायगा बाद दीदो अर पातसाह को षजमतदार पाडु याह बी घोड़ा की नषे मेल्या श्री जी की पाइगा सुं घोड़ो तीयार कर मंगायो। पातसाह की असवारी रे बदल पातसाह के बदल षजमतदार पाडु दोही श्री हजुर का लोगा हे पातसा की आगे कर दीया। हजुर की लार पाडु षजमतदार दोई घोड़ा। ओ मलेर चाल्या जदी श्री हजुर होकम कीदो के पातसाहजी परबारा ही पदमणीजी के याहा चाला। जदी पातसाह ने कहा के रावल जी साहब आपका देव अंसी हीदवो का कीला है सो दुसरी बषत कला को देषने कोन आता

है। देषबा बी कोन देता है। जीनसे हमारा कहना असा है अेक तो आपके कला उपर तोप ननीवान ताल कुवा बावड़ी कुंड है पानी का भरा हुवा है सो ठावा ठावा दस पांच नीवांन बतानां अक ओर के तुमारा कीला के कागरे कागरे हीदवो का देवी देवता लड़ता है सो उन महे से करामात का दस पांच देवता का मकान बतानां पीछे चलती बषत पदमनी जी को देषकर चले जायेगे। पाप की बात तो पातसाह ने श्री हजुर ने तो अेक ही बात सहज समजी। अर पातसाह की कही थकी अकतीयार कर लीदी प्रथम ही बाईण माताजी के कुंड ने ले गीया बतायो। उठा सु सीधनाथ का दरसण कराया। वाहा सु सहस मुषा माहादेव का कुंड ने ले गीया। वाहा सु चो मुषाजी उठा सु भीम कोड़ी उठा सु लीलकंठ माहादेव उठा सु भीमलत अराबाई उठा सु कालकाजी को दरसण अर कुंड उठा सु चतरंगजी का महला को तलाव। पछै श्री हजुर ने कही के पातसाहजी असा केही तो नीवांण केही देवता अक महीनो दर रोज आषो ही दन देषो तो बी छेह आवे नही। अर दस पांच नीवांण तो फेर बी नया बण रया है। पछै पातसाह ने कही के राजा साहब तुमारा गढ़ चीतोड़ का कला कु हमने बोहोत पसन कीया असा कला अपना दीप में नही है। असा कीला कहता है अक तो तुमारा कला चीतोड़ 1 और आभुगढ़ 2 ओर माडव का कला 3 आसेर का कीला 4 ओर बेराट का कीला 5 ओर रतनभंवर का कीला 6 ओ छव कीला पानी का सजल है असा कीला ओर नही है। पातसाह ने गढ़ चीतोड़ की षुब बड़ाई करी। अर तुमारा देवता बी सचा है। पातसाह बषाण करतो आयो सो श्री हजुर को दील फुल होई गयो जणी बात सु श्री हजुर ने नजर की चोकसी राषी नही जणां जणां आईठाणां ने जाता गीया अर बावड़ता गीया पाछै सु पातसाह पीक नाषता गीया मुसलमान का पीक थुक पड़वा सु हीदवाणी देवता की क्राटीश् घट गीई। पछै पातसाह ने कही के राजा साहब अबे हमकु तुमारी रांनी पदमनी जी दीषाई दो सो देषकर हम बी जाउ सब देषना भर पाया। बात श्री पातसाह की सुनकर पदमनीजी का महला की तरफ चालबा लागा जठे पातसाह ने पीक थुक नाषीयो जणी जाईगा देवता की चोकी उठ गई जी की रीत मुसलमान को लोही थुक पड़े छे जठे सुंदर जात को राषी कुछ छै सो उणी का लोही थुक पड़े जठा सु उतम देवता हीदु को देवता रहे नही। पातसाह का थुकबा सु चीतोड़ का देवता मकांम सु उठेर जाता रीया। पातसाह अर रावलजी पातसाहे पदमणीजी के महला ने गीया। तेल का कड़ाईला न्षे गोषड़ा की नीछे जाई उबा रीया। जदी पातसाह ने कही के राजा महला मेह चलो जदी रावलजी ने कही के महल महे कांही काम है। आपके मतलब छै सो आ ही आई जावेगा। जदी पदमणीजी ने महल का गोषड़ा महे सु तेल का कड़ाईला में छाया नाषी। पछै रावल जी ने पातसाह सु कही के पातसाह तेल का कड़ाईला में देषो देका काही दीषे है उचो नीछो चोगोगा तो पछै माका सोगन

छोड़ देवागा। अर थाका धड़ माथा के छेटो कर देवागा। तेल का कड़ाईला महे पातसाह देषे तो पदमणीजी महल का गोषड़े उबा थका सदरूप नष चष सु उणी तेल महे दी है। पातसाह पदमणीजी हे देषेर सुध भुल होई गीयो। पदमणीजी का तप की मारी पतसाहे बोहोत गित महे पातसाहे सुद आई। पछै पातसाह ने रावल जी सु कही के राजा साहब आप परवरदगार के याहां से हात जोड़ कर पदमनी ओरत आप मांग लाये हो। जीनसे मे हुरमा रावलजी आपकु महजुत है। पछै श्री हजुर ने होकम कीदो के पातसाह आतो अक ही पदमनी देषेर अतरो अनेसो मन मे लाया। असी पदमणीयां मारा धणी श्री अेकलीगनाथ ने मुहे पदरा पदमणीया दे राषी है। पछै पातसाह ने कही के राजा साब तुमारा भाग परवरदगार ने बड़ा बनाया है। पछै हजुर और पातसाह रामपोल ने पदारीया। पातसाह आपके घोड़े असवार हुवा अर षजमतदार ओर घोड़ा को पाटु पातसाह की आगे होई गया। पछै पाडलपोल ने गीया उठा सु पातसाह की लार पहरो आपको होई गीयो। पछै फौज महे आपके डेरे गांम पाडोली पदारीया। अर दोही राजा पातसाह के सेदानां बाजबा लागा गढ चीतोड़ को कीलो देषेर पातसाह जीवता लसकर में आया जणी री रात फकीर लोगा हे और कंगीरा हे सवा लाष को दरब लुटायो अर पीर साहब का नाम की देग लुटाई रूपीया अकवीस हजार की। बड़ो उछब कीदो संमत बारा से सतावना बरषे 1257 का आसोज बुदी तेरस के दन। पातसाह ने पदमणीजी का दरसण कीदा पातसाहजी श्री अलावदीन गोरी जंगी गढ़ चीतोड़ को कीलो देषेर आयो। पछै आमकास हुवो आपका मीर अमीर चमालीस से आई अर 4400 कुनस बजाई जुहार कर अपनी बेठक पर बीराजीया। पछै पातसाह ने अपना अमीरा से कही के सुनते हो अमीर लोग जीत पर देवत चीतोड़ का कीला उपर ओर पानी का ताल कुवा बावड़ी कुंड हे जीतनां महे हमने थुक दीया जीनसे हम जानते है सो अब हीदवो का देवता तो अक बी कला उपर रहे नही। अबे कीला उपर मनंष हे परंत मनष बी थोड़ासाक रह गीया है। अबे चो तरफ से कीला की उपर तोबो का अवर करो सो घबराकर पदमनी अपने को दे देवेगा। नही तो कीला छोड़ कर भाग जाईगा। पछै कले के उपर अपनां पातसाही थाना रष कर पीछा दली चला चलेगे। आ बात सुनकर आपका अमीरां ने कही के हजरत ने बीचार कीया जे ही बात अकीन हे पछै तीसरे दन बड़ी फजर की बषत पातसाह ने तोबषांनां का लोगा उपर होकम कीया कला ऊपर तोबों का फेर करो। सवाया थेला डालो नीसीवान करो अर सचा गोला सु सत बाद कर लगांनां जदी चीतोड़ कीला उपर पातसाह की तोबा दोहसे अड़सट का फेर होबा लागा 268 गोला अक आवाज की चीतोड़ उपरे पड़बा लागा। पछै कला उपर सु बी कालका बाण छुटी। पांच सात आवाज कालका बाण का होई गया जतरे कला उपरे अेक बी देवता षरषड़ीयो नही। पछै रात के समये

रावलजी हे माताजी कालकाजी चांवडाजी ने दरसाव दीदोर कही के रतनसेण अबे थारा कला को तु जाबतो राष लीजे। अबे माके भरोसे रह मती। अर मे कला चीतोड़ का उपरे छानही मे तो सगलादेवी देवता तलेटी महे जाता रीया पछै रावल रतनसेणजी ने अरज कीदी के माजी साहब मने काही हरांमषोरी कीदी जदी देवीया बोली पातसाह थारा मन महे कलो वतावणो थो तो अक बगत तु माहे बी पुछतो उतो सगला ही कला महे भसटाचार कर नांषीयो अर आषा ही कला महे थुकतो फरीयो उणी थुक आगे माहे पग देवा की जाहग मली नही। अब मे कठा उबी राहा। रतनसेन थने माका मकाम सब भसट कराई नाषीया। अबे कला उपर माको रहवास नही। पछै रावलजी ने अरज कीदी जदी मारे तो कोही देवता रयो नही। पछै जोगणीया बोली अर तु रामपोल नीछे लड़ेगा तो थारी साथे हा दन उगो पछै पातसाह ने रावलजी के नाम लष पोछाई के रावलजी तुमारा कला महे कागरे कागरे तुमारी देवीया लड़ती थी सो अबे तुमारी देवीया काहा गई। दुसरे दन लीषी के तुमारा कीला अर राज तीसरा तुमारा जीव अतनी बात की आस रषो तो तुमारी पदमनी हमारे आहा मोकल देवो। जीव ने आस नही रषो तो तोबो का फेर होने दो।

॥ फोज को बरणाव को कवीत॥

षंडे अलंग षंडे तलग, षड़े कुफराण पुमांणु।
षंडे षोर पंधार, षंडे थटा मुलताणु॥
गुजरात सही दली षडी, ध्रुव मंडल चल चलीया।
पलारीया अलावदीनयारो, आज अलावदीन कीस पर चढ़ी।
गहीलोत राज बगसे हसे, जांण हे कटाड़ा पड़ी॥1॥

पछै श्री रावल श्री रतनसेण जी ने दरीषांनो कीदो। अर आपणां अमराव सब आई आई कुणस बजाई जुहार कर आपणी बैठक ने बीराज गीया। पछै चरचा चाली के गरीबनवाज धरम हारो तो पातसाह हुवो अर श्री जी की गादी के तो कोही अलाषो नही अबे असी करा के फोज तीयारी करा बाहरा नीकला अर पातसाह की फोज हे काटेर फेक देवा। अणी रीत परमाणे सला छपाणी। पछै श्री हजुर की असवारी तीयारी होई अमराव सरदार ओर गोरा बादल फातीया जेतमाल रामां कला सगला तीयार हुवा ओर श्री जी का भाई बेटा।

श्री हजुर की फोज अणी माफक तीयार होई घोड़ा हजार सतरा पांच से चोसट 17564 हाती अेकसो बारा तोब घुड़नाल बोहोतर 72 ओर पेदल हजार छतीस दोहे से तीयोतर 36273 ओर कमणोत दोई हजार अकसो सोला 2116 उंट ज्मुरी तीनसे अक्यासी 381 फोज सगली चोपन हजार छवसे अगतीस 54631 तीयार होई पछै नदी गंभीरी उपरे डेरा हुवा अठीने पातसाह ने सामली सो फोज महे सु अमीरजादा

षानजादा सेषजादा तीयार हुवा ओर फोज पातसाही थाके गांव नगरी सु लगाईर पाडोली सु जुध होबा लागो सो गाम काली षोर सतषंदा ताई पांच कोस छव कोस का आसरा महे तीन दन तीन रात ताही तरवार बाजबु कीदी कणी को अन और कणी को जल तरवार बाजता तीन दन होई गीया। पातसाही फोज को घोड़ो हाती पेदल उंट कमणेत ओर अमीरजादा पातसाही अेक सो चोईस 124 अतरा तो दुजी देह पातसाह के काम आया ओर फोज हजार अठ्यासी काम आई ओर हाती अक सो तीन काम आया ओर श्री हजुर की फोज महे काम आया अमीर नामा श्री जी का भाई दुजी देह रावल जी राहपजी बनाईहीत का।

ओर रामो कलो दोई पहर ताई दोई भायां ने बना माथे तरवार बाही रामो कलो दोई भाई मामा भुवा का भाई ओर मोटा मोटा अमराव सरदार सतीयासी 87 ओर फोज महे घाईल हुवा बचीया ज्याकी याद ओर फातीयाजी जेतमालजी दोही सरदार बना माथा लड़ीया पहर पांच ताही अणी रीत षेत हुवो। गोरो बादल घाईल हुवा। ज्या के चोरासी चोरासी लोह लागा। ओर उहड़जी बंस घणो घाईल हुवो ओर फोज को लोग घाईल हुवा बचीया तीनसे दोई 302 ओर सरदार तीन 3 अकंदर तीनसे पांच आदमी बचीया। ओर हजुर की फोज सगली हजार साड़ा तरेपन हजार की काम आई हाती घोडा सुदा सगला काम आई। ओर फोज पातसाही हे षंड षंड कर नाषीया। पांच कोस लंबा चोड़ा महे घोड़ा हाती पेदल उंट को धड़ मुड मल गीया। पातसाही फोज च्यार जाहीगा पड़ी थी सो च्यार ही जाहगा की फोज बारा ही डेरा की फोज भाग नीसरी। पातसाह कोस तीन भागो अेक कोस तो पीयादो अरवाणो पछै दोई कोस घोड़े चड़ भागो। श्री हजुर रावल जी री फते बाजी घाइल श्री हजुर रा घुमरीया है। संमत बारासे सतावन 1257 का चेत बुदी तेरस को षेत हुवा। तीनसे पांच घाईल 305 षेत जीतरे गढ़ की दसा ने आबा लागा। साराई साथे साथ गढ़ चत्रकोट आया ओर कला उपर चड़ीया ओर घाईल था सो आप आपणी हवेली की आड़ी चाल्या। पछै गोराजी बादलजी ने आपका मन में बीचारी के पलका दोई झगड़ा महे तो बचीया अर जीवीया रावल जी श्री रतनसेन जी सरीषा धणी था जी सु जीवीया घाईल हुवा थका हे बंचाया। अबरके घाईल घणा हा सो आद हे रहे नही के दादा भाई अणी देह की आस नही अेक पावडो लागे दुसरा पावडा महे देह छुट जावे। तो जीजी बाई श्री मदनकवर पदमणीजी मलणो हुवे नही। पछै रावल श्री रतनसेण जी रामपोल ने सामा पदारीया। गोराजी बादलजी हे श्री हजुर ने छाती सु लगाया। पछै रावलजी दोही सरदारां हे याकी हवेली ने ले जाबा लागा। जदी गोरा बादल ने अरज कीदी के गरीबनवाज हवेली तो जावागा परंत अक बगत का तो श्री जीजी बाई सु मल आवा पछै हवेली ने जावसी। श्री रावलजी गोरा बादल तीन ही पदमणीजी के महल बारादरी

ने गीया। पदमणीजी ने सामली के आपका भाई दोई घणा घाईल हुवा थका आप सु मलबा आया है। पछै राणीजी पदमणीजी ने मोतीया सु आरती कीदी। अनेष पदारथ नछरावल कीदा ओर कगीरा हे लुटाया। पछै दन असत हुवो पदमणीजी ने कही के दादा भाई बीराजा जदी गोरा बादल ने अरज कीदी माहे माके घर ने सीष देवो मासु बेठा जावे नही अर सांस लेबा की आस नही जदी कही के पदारो। गोराजी बदलजी हवेली ने चालीया पछै रावल जी अणा हे पोछाबा चालीया पछै रावल जी ने आपणा मन महे बीचारी के अबे तो पातसाह तो उबी हार मान होई गीया है। बरस बी बारा की हे गांम आई गई है। सो उबी दली चल्यो जावेगा। अर देस महे चेन होई जावेगा। राज श्री अकलीगनाथ बणई देवेगा। ओ दोही गोरोजी बादलजी जीवता रह जावेगा तो बार बार हमेस ही कहबु करेगा चीतोड़ को राज अर कलो माने पगा राषीयो। जणी सु अणां दोवाई हे तो बुजाई देणां असी बीचारता सुकल्या तलाव महे गीया। उठे श्री हजुर ने गोरा जी बादल जी दोवाई का माथा तोड़ नाषीया। सुकल्या तलाव महे माथा जाई पड़ीया। पछै दोई भाया का घड़ चाल नीसरीया दोई के हीया का कलल उगड़ गीया अर षाडा की मुठा उपर हात देर गोरा बादल का धड़ चाल नीसरीया। गेले महे पातसाह की फोज मल गई जी उपर हात होबा लागा सो दोहसे सतीयासी आदमी गोराजी का धड़ ने बनां माथे मारीया सतषंदा काली षोर बीच। पछै गोराजी ने राषी बंद बेहन ब्राह्मणी देस बागड़ महे थी गाम डुगरपुर से कोस बीस लंकाउ दसा गाम पोषरवाड़ो जठे गोराजी को रूड जाई पड़ीयो छोटा भाई बादलजी को धड़ गढ़ चीतोड़ सु चालो पातसाह की फोज की बीच पड़ हात करता फोज का हे मारता अेक सो चोसट आदमी पातसा की फोज को मारीयो। पछै फोज हे छागेर बादलजी को रूड चाल नीसरीयो। सुषदेव माहादेव सु दषण की आड़ी डोड सवा कोस के आसरे अेक नदी है जठे अंक गामड़ो थो जठे पणीयारा पाणी भरती थी जठे बादलजी को धड़ आई नीसरीयो। पछै पणीयारा ने देषेर कही के देषो ओ पणीयारा अणी आदमी के तो माथो नही अर पगा चलीयो जावे है। अणी रीत चरचा कीदी उठे ही बादलजी को घड़ पड़ गीयो जणी जाहीगा सुरोपुरा बापजी बाजे छै अर पुजावे है। सतरासे का सेकड़ा महे अणी गामड़ा की जाहगा अठाणो गाम बस गीयो छै संमत सतरासे दोई का साल महे अठाणो गाम बसीयो छै। असी रीत रावलजी रतनसेण जी गोरा बादल का माथा तोडेर सुकल्या तलाव सु हापता कांपता पदमणीजी के महला आया पछै पदमणीजी ने पुछीयो के हजुर अतरी चापरसु हजुर कसी रीत पदारीया। के दुसरू ही। जदी पदमणीजी ने कही के जाणे मारा भाया उपर आपने बाव, कीदो हुवे असी मुहे दीषे है। पछै श्री हजुर के कही उणा सरदारां हे घणां घाईल देषीया अर घबराणां थका देषीया। जदी मारा मन मेह बीचारी के आने मारी चाकरी घणी उठाई है सो

ओ सरदार दुष देषर मरेगा जणी सु उणां सरदारा की मारा हात सु सोष मोष कर काड़ी। पछै राणी जी पदमणीजी ने उतर दीदो के मारा भाया री उपरे हजुर का हात चाल गीया तो ओर उपरे आपका हात चालता काही देर करेगा। आपने मारां भाया हे तो मार लीदा अबे मारा जीबा को जीतब नही रयो। या कहेर पछै पदमणीजी बी तलाव महे डाक पड़ीयो जल महे जल मल गीया। राणीजी श्री पदमणजी ने देह त्यागन कीदी संमत बारोस अठावनां बरषे 1258 – के आपस महे असा दंगा हुवा उनका साला हे रावलजी ने मार डाला अर कला उपर बषेड़ा धस गीया। ईस बगत महे अपनी फोज तीयारी होकर कला महे धस जांवां तो कला महे राज कर लेवा। अणी रीत का अहवाल पातसाह की फोज महे हुवा। पछै फोज पातसाही तीयार होईर कला चीतोड़ का उपरे आई। हाती, घोड़ा, पेदल तोब नाल जंबुर सगली फोज अेक लाष अकसट हजार चड़ आई। अर पाडलपोल ने चढ़ आई लागी ओर राड़ होबा लागी। पाडलपोल तोड़ी पछै रामपोल ने जाई लागा। पाडलपोल बीचेर रामपोल बीच तरगस महे तीर भरीया जसी रीत पातसाह की फोज को लोग ठसरीयो। पछै उहडजी बंस घणो घाईल आयो थो गोरा बादल की लार उहड़जी धक धुण पाईर उठे बेठो हुवो ओर सरदार 10 श्री हजुर रा कवर का भवरजी देपालदेजी तवरजी बरसीहजी। अेक पातोजी सरदार गोराजी को भाणेज बादलजी को भाणेज। हेमतोजी गोहील 2 भाईजी डोड़ीया 3 सगतोजी पुवार 4 देवपाजी सोलंषी 5 गंगजी पढीयार 6 सामसीजी भाटी 7 ओ सात ही तो सरदार ओर श्री हजुर का भाई तीन 3 अमराव दस ही उठ षड़ा हुवा और लारे फोज हजार तीन नवसे चोतीस 3934 पछै रामपोल के माथे दोही तरप सु हात बहबा लागा। रामपोल बीचेर पाडलपोल बीचे पातसाही फोज हजार पेतीस च्यारसे त्रीयाणवे 35493 काम आई। उबा थका आदमी की डुटी बराबर रगत्र बीयो रामपोल ओर पाडलपोल बीचे गेला महे रगत को ठेपो नदी गंभीरी महे मल गीयो। सात ही सरदार तो काम आया अर तीन ही अमीर घणां घाईल हुवा। ओर श्री हजुर की फोज को लोग छावीस से त्रीयोतर काम आया 2673 पछै पातसाही फोज भागी अर अठीने गढ़ चीतोड़ भागो पदमणी हेलो गढ़ चीतोड़ भागो संमत बीक्रम संमत बरासे अठावनां बरषे 1258 सावण बुदी 5 के दन सुकरवार के दन चीतोड़ भागो। पदमणी हेलो गढ़ चीतोड़ का कला उपरे साका दोई हुवा प्रथम साको मोरीया को, दुसरो पदमणी हेलो गढ़ चीतोड़ ने मनष सांका महे काम आयो। श्री हजुर की फोज को जुध सेतालीस महे श्री जी की फोज हाती घोड़ा पेदल उंट पलटण सरदार कमणोत सुदा फोज सात लाष बोहतर हजार आठसे चोसट कांम आई 772864 काम आई। पातसाही फोज हाती घोड़ा पेदल कमणोत उंट जमुर अमीरा सुदा दस लाष त्रीयासी हजार छवसे अड़सट 1083668 अतरी काम आई। अकंदर दोही तरफ की

फोज भैली गणती हुई। अठारा लाष छपन हजार पांच से अठाईस 1856528 ओ तो गढ़ चत्रकोट ने काम आया और हवेलीया की न्याली न्याली ज्या का लोग श्री हजुर की फोज का अक लाष ग्यारा हजार सातसे अड़तालीस 111748 फोज कांम आई। गढ़ बनाईहीत सुदा ओर हवेलीया महे फोज पातसाही काम आई दोई लाष अेक हजार नवसे चोराणवे 201994 श्री हजुर की फोज तो लाष चोरासी हजार छवसे बारा लोग काम आया 884612 बहेरा की हवेली सुदां ओर पातसाही फोज कला ने हवेल्या ने काम आई जणी सुदा बारा लाष पच्चासी हजार छवसे बावन लोग काम आया 1285652 दोही तरफ की फोजां अकंदर काम आई अकवीस लाष सीतर हजार दोहसे चोसट 2170264 अतरो लोग पदमणीजी हेले दोही फोजां को लोग काम आयो गढ़ चीतोड़ के कले।

॥पदमणीजी को रस कवीत॥

कमल मुकल द्वीपल राजीव गंधी।
सुरत पयेसी सौर भदीव्य मंग॥
चकीत मृघ दासां भेप्रत्कर क्रैच ने।
त्रे कुच उमंगल मनररध श्री फल श्री बीडवी॥1॥

‘चित्तौड़-उदयपुर पाटनामा’ हिंदी कथा रूपांतर
(पद्मिनी-रत्नसेन प्रकरण)

रावल रत्नसेन के सत्तारूढ़ होने के बाद भाई-बेटों और सरदारों के यहाँ से भोजन के निमंत्रण आने लगे। एक दिन रत्नसेन ने सरदारों से पूछा कि- ‘‘भोज में रसोई ब्राह्मण बनाते हैं या सरदारों की स्त्रियाँ भी उनका साथ देती हैं?’’ सरदारों ने उत्तर दिया कि- ‘‘कहीं रसोई ब्राह्मण करते हैं, तो कहीं राजपूत स्त्रियाँ भी रसोई करती हैं।’’ यह सुनकर रत्नसेन ने सभी उमरावों, जागीरदारों, पुरोहितों, चारणों आदि को अगले दिन सुबह भोजन के लिए अपने यहाँ निमंत्रित किया। रत्नसेन ने अंत:पुर में अपनी चौदह रानियों को एकत्र कर आदेश दिया कि- ‘‘मैंने जहाँ भी भोजन किया, वहाँ राजपूत स्त्रियों ने बहुत अच्छी रसोई की, इसलिए मैंने सभी सरदारों को निमंत्रित किया है। आप सभी अपने हाथ से भोजन बनाओ।’’ रानियों ने इस पर सहमति दी और अंत:पुर में भोजन बनाने लगीं। रानियाँ तो राजा की बेटियाँ थीं, इसलिए उन्हें भोजन बनाने की जानकारी नहीं थी। अपने हाथ से भोजन बनाने में उनसे कोई व्यंजन कच्चा रह गया, तो कोई जल गया या किसी में नमक कम-ज़्यादा हो गया। इस तरह उन्होंने छत्तीस सब्जियाँ और बत्तीस भोजन बनाए, लेकिन इनमें से कोई भी चीज़

अच्छी नहीं बनी। रसोई बन जाने के बाद सभी सरदार एकत्र होकर पंक्तिबद्ध बैठे और रत्नसेन ने खड़े रहकर सभी को भोजन परोसा। भोजन करते हुए सरदार कई तरह की बातें और हास्य-विनोद करते रहे। रत्नसेन ने सरदारों से पूछा कि- ''भोजन कैसा बना?'' सरदारों ने विचार किया कि इस घर के कारण सभी का निर्वाह हो रहा है, इसलिए इसकी कोई चीज़ कमज़ोर हो, तो भी उसे अच्छा कहना चाहिए। सभी ने हाथ जोड़कर कहा कि- ''रसोई बहुत सुंदर हुई है।'' सभी के भोजन करने के बाद रत्नसेन भी एकलिंगनाथ का नाम लेकर चौदह रानियों की मौजूदगी में भोजन करने लगा। कच्चे चावल का स्वाद लेकर उसने पडियार रानी को डाँटते हुए कहा कि- ''इसे भात बनाना नहीं आता।'' इस तरह वह सभी चीज़ों का स्वाद लेता गया, पहचान करता गया और जिसने भोजन बनाया उसको डाँट-फटकारता गया। उसने चौदह रानियों की कई तरह से बुराई की। उसने उनको फटकारते हुए कहा कि- ''तुम स्त्रियाँ मनुष्य जन्म लेकर भी मनुष्य नहीं हो। तुम तो भैंसों का अवतार हो। तुम में मनुष्य का कोई चिह्न नहीं है। तुम भैंसों की तरह खा-पीकर पूरे दिन लौटती रहती हो और समय व्यर्थ करती हो। तुमको तो भगवान एकलिंगनाथ भैंसें बनाता, तो ही अच्छा था।'' रत्नसेन की बात सुनकर पटरानी पढ़ियारनी हाथ जोड़कर खड़ी हुई और उसने कहा कि- ''हम तो राजा बेटियाँ हैं। हमने तो आज तक रसोई के लिए पानी तक गर्म नहीं किया। हम तो इसी ढंग से रसोई कर सकती हैं। सुंदर और स्वादिष्ट भोजन तो पद्मिनी के हाथ का होता है, इसलिए यदि ऐसा भोजन करना है, तो आप विवाह करके पद्मिनी को ले लाइये। वही आपको ऐसा सुंदर और स्वादिष्ट भोजन करवाएगी।'' यह बात सुनकर रत्नसेन बहुत नाराज़ हुआ। उसने अंत:पुर की रानियों से कहा कि- ''यदि मेरा नाम रत्नसेन है, तो मैं अंत:पुर में तभी आउँगा, जब पद्मिनी से परिणय कर लूँगा। उसने कहा कि मुझे एकलिंगनाथ की शपथ है, जो यदि मैं पद्मिनी से विवाह किए बिना चित्तौड़ के क़िले में पाँव रखूँ।''

शपथ लेने के बाद रत्नसेन चित्तौड़ के क़िले से नीचे उतरकर तलहटी में आ गया और वहीं से राज्य कार्य करता हुआ सरदारों से सिंघल द्वीप के बारे पूछताछ करने और वहाँ जाने के लिए परेशान रहने लगा। इस तरह ढाई वर्ष बीत गए, लेकिन सिंघल द्वीप जाने का कोई उपाय नहीं हुआ। उस समय मछंदरनाथ सिंघल द्वीप के मनोहरगढ़ गाँव में और उनका शिष्य गोरखनाथ उत्तराखंड की पुष्करवती में तपस्या करते थे। एक दिन गुरु के दर्शन के लिए गोरखनाथ उड़नखटोली में बैठकर यात्रा पर निकले और आधी रात के समय चित्तौड़ के क़िले के ऊपर से गुज़रे। चित्तौड़ के क़िले पर बजनेवाले वाद्यों और गायन को सुन-देखकर उन्होंने निश्चय किया कि लौटते समय यह क़िला देखेंगे। सिंघल द्वीप पहुँचकर वे कई दिन तक गुरु के पास

रहे और उनसे विदा लेकर चले और उनकी उड़नखटोली रत्नसेन के डेरेवाले बाग में उतरी, जहाँ उस समय रागरंग चल रहा था। वे उतरकर रत्नसेन के लिए बिछाए गए पलँग पर सो गए। सुबह फ़राशं ने रत्नसेन का सूचना दी कि कोई योगी उनके पलँग पर सोया हुआ है और उसके मुँह में से पोथी का गुटका बाहर पड़ा है। रत्नसेन ने यह गुटका ले लिया और गोरखनाथ के जागने की प्रतीक्षा करने लगा। तीन पहर दिन बीतने के बाद गोरखनाथ उठे और अपना गुटका ढूँढ़ने लगे। रत्नसेन ने कहा कि- ''गुटका आपको मिल जाएगा, लेकिन आप अपने संबंध में कुछ बताइये।'' गोरखनाथ ने अपना परिचय दिया और कहा कि- ''तुम राजा हो, तुम्हारी जगह महलों में है, फिर तुम यहाँ क्यों रहते हो?'' रत्नसेन ने विस्तार से अपने क़िले से उतरने और सिंघल द्वीप जाकर पद्मिनी से परिणय के संकल्प के संबंध में बताया। गोरखनाथ ने हँसकर उत्तर दिया कि ''तुमने ऐसा संकल्प क्यों किया? सिंघल द्वीप जाना सहज नहीं है। कोई योगी होता है और कल्प साधता है, तो ही वह सिंघल द्वीप जा पाता है।'' रत्नसेन यह सुनकर गोरखनाथ के पाँवों पर गिर गया और अनुरोध किया कि- ''मुझे सिंघल द्वीप ले चलो।'' गोरखनाथ ने जब सिंघल द्वीप जाकर रत्नसेन की सहायता करने का संकल्प किया, तो रत्नसेन से उनका गुटका लौटा दिया। गोरखनाथ ने गुटका मुँह में लिया और उड़नखटोली में बैठकर सिंघल द्वीप आ गए। मच्छंदरनाथ ने उससे पूछा कि- ''अभी तो तुम गए थे, फिर वापस कैसे आ गए?'' तब गोरखनाथ ने रत्नसेन की परेशानी मछंदरनाथ को बताई और कहा कि- ''वह पद्मिनी से विवाह का संकल्प कर तीन बरस से बाग में पड़ा हुआ है। वह वहाँ पड़ा रहे, मुझे कोई परेशानी नहीं है, लेकिन मैं फँस गया हूँ। मैंने उसकी सहायता करने का वचन दिया है।'' मच्छंदरनाथ ने कहा कि किसी साधु को इस तरह किसी संसारी के वचन में कभी आना नहीं चाहिए।

सिंघल द्वीप के गाँव मनोहरगढ़ की बावड़ी पर महादेव मंदिर में मछंदरनाथ का आसन था। मनोहरगढ़ का राजा समरसिंह पँवार था, जिसके पद्मिनी स्त्री जाति की एक मदन कुँवरी नाम की कन्या थी। पद्मिनी मदन कुँवरी नित्यप्रति महादेव और मछंदरनाथ के दर्शन करने के लिए बावड़ी पर आती थी। मच्छंदरनाथ के आग्रह पर मदन कुँवरी ने उनसे दीक्षा ले ली। एक दिन पद्मिनी के सम्मुख उसकी सहेलियों को सुनाते हुए मच्छंदरनाथ ने कहा कि- ''पद्मिनी के योग्य चित्तौड़ के स्वामी रावल रत्नसेन जैसा वर जंबू द्वीप में दूसरा नहीं है।'' यह बात दासियों के माध्यम से पद्मिनी की दादी और माँ तक पहुँची। दासियों ने दूसरे दिन रानी की आज्ञानुसार मछंदरनाथ से रत्नसेन के संबंध में पूछा, तो उन्होंने बताया कि रत्नसेन सूर्यवंशी गहलोत जाति का है, उसका देश मेवाड़ और क़िला चित्तौड़गढ़ है, जो यहाँ से सत्रह सौ कोस दूर

है। दासियों से यह परिचय जानकर रानी ने उनसे कहा कि बाबाजी से कहना कि संबंध से पहले हम एक नज़र रत्नसेन को देखना चाहते हैं। दासियों के माध्यम से पहुँची इस बात पर मच्छंदरनाथ ने कहा कि यह बड़ी बात नहीं है। चार-पाँच दिन में वे उसको साक्षात् दिखा देंगे। मछंदरनाथ ने गोरखनाथ को कहा कि- ''तुम जाओ और रत्नसेन को ले आओ।'' गोरखनाथ ने चित्तौड़ पहुँचकर रत्नसेन को सभी समाचार सुनाए और कहा कि- ''महादेव ने चाहा, तो तुम्हारा प्रण पूरा होगा।'' दोनों रात में उड़नखटोली में बैठकर मनोहरगढ़ पहुँच गए। दूसरे दिन सुबह पद्मिनी दासियों सहित दर्शन करने आई और धूणी पर बैठ गई। उसने दायें हाथ की तरफ़ रत्नसेन को देखा, तो उसकी कला छिन्न-भिन्न हो गई और पद्मिनी को देखकर रत्नसेन की भी बुद्धि चकित रह गई। राजा और रानी ने भी आकर रत्नसेन को देखा और दोनों बहुत प्रसन्न हुए। राजा ने मछंदरनाथ को कहा कि- ''धरती पर राजा अनेक हैं- बहुत बुद्धिमान, ज्ञानी, दानी, योगी परंतु भाग्य का लिखा बड़ा है। विधाता ने जो लिखा है वही होगा। कन्या की उम्र बारह वर्ष की हो गई है। आप जो ठीक समझें, वही करें।'' इस तरह संबंध ठहर गया। ज्योतिषियों को बुलाकर शुभ मुहूर्त निकलवाया गया। लग्न सोलह महीने बाद के निकले। राजा ने बावड़ी के मंदिर पर टीका भेज दिया। मच्छंदरनाथ ने गोरखनाथ और रत्नसेन, दोनों को कहा कि- ''अब तुम जाओ।'' दोनों उड़नखटोली में बैठकर चित्तौड़ पहुँचे। जन्मपत्री मँगाकर रत्नसेन का आयुबल पूछा, तो पता लगा कि वह 82 वर्ष जिएगा। कम आयुबल देखकर गोरखनाथ ने रत्नसेन को कल्प साधना करवायी और उसका आयुबल 130 वर्ष कर दिया। दूसरी कल्प साधना से उसका शरीर लोहे के समान हो गया। गोरखनाथ ने उसको योगमत की कुंजी भी बताई। राज और देश सौंपकर इस तरह रत्नसेन विवाह करने के सिंघल द्वीप जाने के लिए तैयार हुआ।

रत्नसेन की बारात सेना सहित आठ माह और दस दिन में महादेव सेतुबंध रामेश्वरम् पहुँची। रत्नसेन ने यह सोचकर कि उसके पूर्वज भगवान राम ने सेतुबंध रामेश्वरम् में भगवान महादेव की स्थापना की है, वहाँ पूजा-अर्चना की। राजा समरसिंह ने बारात लाने के लिए पाँच जहाज़ भेजे। उमरावों-सरदारों और अन्य सामग्री के साथ बारात सिंघल द्वीप पहुँची। सेना रामेश्वरम् में ही ठहरी। बारात का स्वागत हुआ, वर तोरण पर पहुँचा और फिर विवाह हुआ। दास-दासियों और दहेज के साथ बारात अपने आवास स्थल पहुँची। एक दिन रत्नसेन सवारी सजाकर लंका की दिशा में खाड़ी देखने गया और इसी समय उत्तर की हवा चली और ठिठुरन के बाद उसको सर्दी लग गई। कस्तूरी के काढ़े, ताड़ के अर्क और धनेसर पक्षी के मांस के सूलों के उपचार से रत्नसेन ठीक हुआ। सूर्यवंशी गहलोतों में मदिरापान वर्जित था, लेकिन

यह इस तरह शुरू हुआ। रत्नसेन के स्वस्थ होने पर दान-पुण्य किया गया। एक दिन रत्नसेन को चित्तौड़ की याद आई। रामेश्वरम् में पड़ी हुई उसकी सेना का संदेश भी आया। रत्नसेन ने अंत:पुर में जाकर पद्मिनी से कहा कि- ''यहाँ रहते हुए छह-सात बरस हो गए हैं। यह तुम्हारा पीहर और मेरा ससुराल है। हमें अब अपने घर चलना चाहिए।''

वह विदा लेने के लिए दरबार पहुँचा और उसने राजा से विदा माँगी। राजा और रानी ने विचार कर कहा कि- ''आधा राज्य आप ले लो और यहीं रहो।'' रत्नसेन ने संकल्प किया कि वह चित्तौड़ अपने घर जाएगा। राजा समरसिंह ने कहा कि- ''आप सूर्यवंशी हैं और भगवान राम के वंशज हैं। मेरे जैसे कितने ही ग़रीब आपके चाकर हैं। आपका आतिथ्य करना मेरे सामर्थ्य में नहीं है। यह मेरा भाग्य है कि आप पद्मिनी से परिणय के लिए यहाँ आए।'' आगे राजा ने कहा कि- ''आप पद्मिनी ले जाओ। स्त्री की चार जातियों- पद्मिनी, हस्तिनी, शंखिनी, चित्रणी में से पद्मिनी से आपने परिणय किया है। प्रथम तो आप सकुशल घर नहीं पहुँचेंगे, मार्ग में प्रेत-बाधाएँ आएँगी और दूसरे, पद्मिनी सर्दी के देश में पैदा हुई है। आप पहाड़ों के देश के हैं। वहाँ गर्मी बहुत होगी, जिससे इसको कष्ट होगा। तीसरे, आपके यहाँ योद्धा तो बहुत है, लेकिन सत्य का योद्धा कोई नहीं है।'' राजा ने दरबार में योद्धा और सत्य के योद्धा के अंतर को साक्षात् बताया।

रत्नसेन अंत:पुर में गया और दरबार का वृत्तांत पद्मिनी को बताया। पद्मिनी ने कहा कि - ''आप दरबार में जाकर पिताजी से चार सरदार- गोरा, बादल, फतिया और जेतमाल और दो चाकर- कला और रामा माँगना। पिताजी इनको दहेज नहीं देने की बात कहेंगे, तो आप कहना कि मैं इनको सहमति और प्रसन्नता से ले जाऊँगा।'' रत्नसिंह ने दरबार में यही बात कही। राजा ने कहा कि- ''रामा और कला तो चाकर हैं, इनको तो दहेज में देना ही है, लेकिन बाकी चार तो उमराव हैं, इनको मैं दहेज में नहीं दे सकता।'' पद्मिनी ने बुद्धि का प्रयोग कर राखी के त्योहार पर सोने की राखियाँ करवायीं और उनमें मणि-माणिक लगाकर चारों सरदारों की हवेलियों पर गई। चारों को राखी बाँधकर पद्मिनी ने कहा कि- ''आपने मेरी रक्षा का वचन दिया है, लेकिन मुझे तो रत्नसेन चित्तौड़ ले जा रहे हैं।'' यह सुनकर सरदारों ने सोचा यदि कि हम यदि पद्मिनी के साथ जाते हैं, तो दहेज में आए हुए कहलाएँगे, इसलिए अपने सामान सहित रत्नसेन से पहले चित्तौड़ चले जाते हैं। चारों परामर्श कर दरबार में गए और राजा से विदा माँगी। राजा बहुत प्रसन्न हुआ और निश्चिंत हो गया कि अब पद्मिनी अपने चार भाइयों के कारण सुरक्षित है। राजा ने हाथी-घोड़े, धन-संपदा आदि देकर चारों को विदा किया। चारों विदा होकर पहले रामेश्वरम्

पहुँचे और फिर उन्होंने चित्तौड़ में अपना निवास किया।

रत्नसेन भी कमर में तलवार बाँधकर विदा लेने के लिए दरबार में हाज़िर हुआ। राजा ने हाथ जोड़कर रत्नसेन से निवेदन किया कि – ''आप हिंदू वंश के सूर्य कहलाते हैं। मैं तो छोटे से देश का भोमिया राजपूत हूँ। मैंने अपने सामर्थ्य के अनुसार कंकू-कन्या और कमज़ोर-पुराने वस्त्र आपको भेंट किए हैं। यह कन्या मेरे आगे बड़ी हुई है और बड़े राज्य की बातें नहीं समझती। आप मेरी इस लड़की को दासी की तरह निभाना। यह मेरा कहना है और निभाना आपको है।'' पद्मिनी प्रेमपूर्वक सबसे मिलने गई। इस तरह छह-बरस सात महीने रहने के बाद रत्नसेन ने पद्मिनी के साथ जहाज़ में बैठकर मनोहरगढ़ से प्रस्थान किया। नौ दिन तक पानी में चलने के बाद रामेश्वरम् पहुँचकर वह अपनी सेना से मिला। रामेश्वरम् के दर्शन करके और उसने ब्रह्मभोज दिया और दानपुण्य किया। रामेश्वरम् से प्रस्थान के समय उसने गोरखनाथ को भी साथ चलने का आग्रह किया, लेकिन उन्होंने कहा कि वे उसके चित्तौड़ पहुँचते ही वहाँ पहुँच जाएँगे।

तीर्थाटन करते हुए अठारह महीने बाद रत्नसेन पद्मिनी सहित चित्तौड़गढ़ पहुँचा और वहाँ गंभीरी नदी के चक्रघंटा घाट पर स्थित बाग में उसका डेरा हुआ। गोरखनाथ भी वहाँ पहुँच गए। दरबार हुआ, जिसमें उमराव, जागीरदार, भाई-बेटे, गोरा, बादल, फातिया, जेतमाल आदि सभी सम्मिलित हुए। मेवाड़ में गाँव-गाँव उत्सव होने लगे। पद्मिनी ने अपने चारों भाइयों को बुलाकर उनका आतिथ्य-सत्कार किया। रावल रत्नसेन घर के बहीबंचा- राघव और चेतन, जिनकी उम्र क्रमश: तेईस और बीस थी, धन की उम्मीद लेकर दरबार में आए। उन्होंने रत्नसेन को आशीर्वाद दिया। रत्नसेन ने उठकर उनकी कुशलक्षेम पूछी। रत्नसेन का डेरा एक वर्ष तक चक्रघंटा में रहा। इस दौरान चित्तौड़ के क़िले पर पद्मिनी के निवास के लिए जलमहल बनवाया गया। तालाब की पाल पर बारादरी और जनानी कचहरियाँ बनाई गईं। पद्मिनी के भाइयों के लिए दरबार और महल बनाए गए। इसके बाद रत्नसेन चक्रघंटा से चित्तौड़ के क़िले पर आया। क़िले पर दरबार हुआ, जिसमें गोरा, बादल, फातिया और जेतमाल को जागीरें और राजस्व दिया गया। रामा और कला को भी जागीरें दी गईं। अब पद्मिनी के दहेज में आई चीजें भंडार में जमा होने लगीं। पद्मिनी से विवाह के उपलक्ष्य में भोज और बधाई उत्सव होने लगे। रत्नसेन ने भी सबको अपने यहाँ भोजन के लिए निमंत्रित किया। सबने उसका निमंत्रण स्वीकार किया, लेकिन उसके घर के बहीबंचा राघव और चेतन इसमें सम्मिलित नहीं हुए। रत्नसेन के पूछने पर उन्होंने कहा कि रानी पद्मिनी का नाम अभी उन्होंने वंशावली में नहीं लिखा है। राजा ने कहा कि ये तो बधाई आदि के उत्सव हैं, इसलिए इसमें उन्हें आना चाहिए। वंशावली का

उत्सव बाद करेंगे। राघव और चेतन ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया। सभी सरदार भोजन के लिए रत्नसेन के यहाँ आए। पंक्तिबद्ध होकर उन्होंने भोजन किया। रत्नसेन से भी अनुरोध किया गया कि अब वह भी भोजन करें। रत्नसेन रसोईघर के पास बैठकर भोजन करने लगा। भोजन के दौरान अंत:पुर के सभी सदस्य भी मौजूद थे। रत्नसेन भोजन करते हुए व्यंजनों की सराहना करने लगा। रानी ने कहा कि– ''आज आपको भोजन इसलिए स्वादिष्ट लग रहा है, क्योंकि आप पद्मिनी से परिणय करके आए हैं।'' रत्नसेन प्रसन्न हुआ और उसने कहा कि– ''हे रानी! मर्म के वचन तो वही कहेगा, जिसमें यह सामर्थ्य होगा।''

रत्नसेन को एक दिन अपने जन्म वर्ष की याद आई। गोरखनाथ ने उसके आयुबल में वृद्धि की थी, इसलिए उसने पद्मिनी और उसके भाइयों– गोरा, बादल, फातिया, जेतमाल और सेवकों– रामा और कला का भी आयुबल बढ़ाने के लिए गोरखनाथ से अनुरोध किया। गोरखनाथ ने पद्मिनी का आयुबल औषधि से बढ़ा दिया। ना–नुकुर के बाद गोरखनाथ ने पद्मिनी के भाइयों और सेवकों का आयुबल भी बढ़ा दिया।

रत्नसेन के घर के बहीबंचा राघव और चेतन रघुवंश की वंशावली पुस्तक लेकर दरबार में हाज़िर हुए और उन्होंने वैवस्वत मनु, इक्ष्वाकु आदि से लगाकर रत्नसेन तक की वंशावली पढ़कर सुनाई। उन्होंने अंत:पुर के सरदारों के नाम लिखने शुरू किए। रत्नसेन की चौदह रानियों के बाद पंद्रहवीं रानी के रूप में उन्होंने पद्मिनी मदन कुँवर का नाम पटरानी के रूप में लिखा। रत्नसेन ने उन्हें पहले बारह लाख, फिर चौसठ लाख और अंत में एक करोड़ पसाव देने का प्रस्ताव किया। राघव और चेतन नहीं माने। उन्होंने कहा कि– ''यह आपके पूर्वजों की परंपरा है कि विवाह में आए दहेज का आधा हमें मिलना चाहिए।'' रत्नसेन ने कहा कि– ''दहेज तो पद्मिनी का है। मैं उसे देने के लिए अधिकृत नहीं हूँ।'' राघव और चेतन आधा दहेज उपहार में पाने के लिए अड़े रहे। कई ऊँची–नीची बातें हुईं, लेकिन रत्नसेन इसके लिए तैयार नहीं हुआ। रत्नसेन ने कहा कि– ''पद्मिनी के धन में से तुमको कुछ नहीं मिलेगा और यदि उसमें से आधा धन लेना है, तो तुम बादशाह का चढ़ा लाना।'' राघव और चेतन ने कहा कि– ''हिंदुओं के बादशाह तो आप चित्तौड़ के स्वामी हैं।'' रत्नसेन अड़ा रहा। उसने कहा कि– ''तुमको बादशाह की ताक़त का ज़ोर बहुत है, इसलिए मेरे से ईर्ष्या करते हो। तुम्हें अपने इष्टदेव के सौगंध है– तुम बादशाह को चढ़ा लाओ।'' राघव और चेतन ने कहा कि– ''स्वामी ने तीन बार आदेश दे दिया है। उसकी पालन नहीं करेंगे, तो हरामख़ोर कहलाएँगे।'' यह कहकर राघव और चेतन अपनी हवेली गए और तैयारी करके वहाँ से दिल्ली चले गए। वहाँ वे बादशाह अलाउद्दीन ख़लजी

से मिले और उसके साथ प्रेम और व्यवहार से रहने लगे।

राघव और चेतन को दिल्ली में रहते छह-सात महीने हो गए। एक दिन अलाउद्दीन शिकार खेलने के दौरान फ़ौज की हाज़री ले रहा था। बादशाह हाथी पर, राघव दूसरे हाथी पर और चेतन घोड़े पर सवार था। इसी समय एक जाली के नीचे से खरगोश निकला और आदमियों की पंक्ति देखकर दिग्भ्रमित हो गया। घोड़े को तेज़ दौड़ाकर चेतन ने खरगोश पकड़कर बादशाह को भेंट कर दिया। बादशाह ने खरगोश की पीठ पर हाथ फेरकर राघव से कहा कि ''ऐसी मुलायम चीज़ और क्या होती है?'' राघव ने उत्तर दिया कि- ''ऐसी मुलायम चीज़ तो रेशम है।'' बादशाह ने कहा कि- ''उससे तो यह ज़्यादा मुलायम है। ख़ुदा ऐसी मुलायमशुदा औरत बनाता, तो बहुत अच्छा था।'' तभी चेतन बोला कि- ''हुज़ूर, ऐसी मुलायम तो पद्मिनी जाति की औरत होती है।'' राघव ने आँख दबाकर इशारा किया, तो चेतन ने बात बदलते हुए कहा कि- ''चार जाति की स्त्रियों में से पद्मिनी जाति की स्त्री ऐसी मुलायम होती है।'' बादशाह ने कहा कि ''हमारे हरम में 238 स्त्रियाँ हैं, जिनमें से पद्मिनी कितनी हैं? तुम सबको निगाह में निकालो।'' बादशाह ने हुक्म दिया कि जो पद्मिनी है, उसका रखना है और शेष सबको पहाड़-जंगल में छोड़ देना। यह बात हरम में पहुँची। सभी स्त्रियाँ अपनी सुध-बुध भूल गईं। बादशाह ने चेतन से कहा कि- ''स्त्रियाँ तो परदा करती है'', तो चेतन ने उत्तर दिया कि- ''हमारी आँख खून की नहीं है। हमारे चित्तौड़ में राजा हमारा चाचा है और रानियाँ हमारी ख़ाला हैं। वे हमसे लज्जा नहीं करतीं। आप तेल का कड़ाह भरवा देना। हम उसके पास बैठ जाएँगे। हरम की स्त्रियाँ आती जाएँगी और हम तेल में उनको देखते जाएँगे।'' हरम में चर्चा चली कि जो बातपोश चेतन को कुछ देंगी, उनको वह अच्छा कहेगा और जो नहीं देंगी, तो उनको बुरा कहेगा। चेतन तेल के कड़ाह के पास बैठ गया। हरम की स्त्रियाँ आती गईं और तेल में अपना मुँह दिखाकर एवज़ में एक हज़ार की राशि देकर आगे बढ़ती गईं। चेतन स्त्रियों की जाति चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी लिखता गया। चेतन के पास ढाई लाख की राशि एकत्र हो गई। उसने हरम की हक़ीक़त बादशाह को सुनाते हुए कहा कि- ''बाकी सब हैं तो है, लेकिन आपके हरम में पद्मिनी एक भी नहीं है।'' बादशाह ने कहा कि पद्मिनी कहाँ मिलेगी? चेतन के दिल में बात कहने की इच्छा हुई, लेकिन राघव ने आँख दबाकर मना कर दिया। चेतन ने बात बनाई कि- ''हज़रतपनाह! पद्मिनी सिंघल द्वीप में है।'' बादशाह फ़ौज सहित सिंघल द्वीप रवाना हुआ और उसने समुद्र की खाड़ी पर जाकर अपना डेरा किया। उसने कारीगर बुलाकर जहाज़ बनाने का काम चलाया। दोनों भाइयों, राघव और चेतन के बीच अंदर-ही-अंदर बातचीत हुई। चेतन ने कहा कि- ''हमको तुर्कों के यहाँ रहते

हुए दो-तीन बरस हो गए हैं। अभी रत्नसेन ने हमको मनाने के लिए किसी को भेजा नहीं है। अब मैं बादशाह को पद्मिनी के संबंध में बताऊँगा। रत्नसेन से हाथ से तो हमको आधा धन दिया जाता नहीं है। अच्छा होगा, जब बादशाह जबरन उससे यह छीन लेगा।'' चेतन ने बादशाह से निवेदन किया कि ''आपको कितने सैकड़ाँ पद्मिनियों की इच्छा है। बादशाह ने कहा कि ज़्यादा मिले, तो दस-पाँच और नहीं तो एक-दो पद्मिनियाँ ले चलेंगे।'' चेतन ने कहा कि- ''हुज़ूर! एक पद्मिनी तो अपने पास में ही है, आप छीन लो।'' बादशाह ने कहा कि ''वो पद्मिनी कहाँ है?'' तो चेतन ने उत्तर दिया कि- ''चित्तौड़ का राजा रत्नसेन सिंघल द्वीप जाकर पद्मिनी को विवाह कर लाया है। साथ ही वह बहुत सारा द्रव्य, करोड़ों रुपया, माणिक-मोती आदि भी लाया है। आप चित्तौड़गढ़ पर छह महीने घेरा डालकर वहाँ की रसद सामग्री बंद कर दो, तो वह घबरा कर पद्मिनी आपको दे देगा।'' यह सुनकर बादशाह फ़ौज सहित वहाँ से चला और चित्तौड़ पर चढ़ाई की तैयारी होने लगी। राघव और चेतन ने बादशाह से कहा कि- ''आप दिल्ली के बादशाह हैं और रत्नसेन भी हिंदुवाणे का सूर्य कहलाता है। दोनों के पास जंगी फ़ौजे हैं। आपको पद्मिनी चाहिए, इसलिए आप ससैन्य चित्तौड़ पर चढ़ाई कर रहे हैं। कदाचित् लड़ाई बरस दो बरस के लिए बढ़ जाए। हार हो या जीत, इसमें हमारा कोई अपराध नहीं है।'' बादशाह ने राघव और चेतन को आश्वस्त किया कि- ''पद्मिनी हमें चाहिए। लड़ने-मरने को भी हम जाएँगे। इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। तुम चाहो तो हमारे साथ चलो।'' तब राघव चेतन ने कहा कि- ''हम आपके साथ चलेंगे और क़िले का भेद आपको बताएँगे।''

बादशाह अलाउद्दीन ख़लजी की सेना ने दिल्ली से प्रस्थान किया और चित्तौड़गढ़ पहुँचकर चारों तरफ़ से क़िले को घेर लिया। बाहर से आनेवाली रसद बंद कर दी। दोनों तरफ़ तोपों से गोले चलने लगे। नगरी में अपने डेरे से बादशाह को क़िले के दंड पर स्त्रियाँ नज़र आईं, तो उसने राघव और चेतन को बुलाकर इनके संबंध में जानकारी देने के लिए कहा। राघव और चेतन ने बताया कि ये लोबड़ी (ऊनी वस्त्र धारण करनेवाली देवियाँ) हैं, जो तोप कालकाबाण की आवाज़ होते ही क़िले के कंगूरे-कंगूरे पर लड़ती हैं। फिर उन्होंने चित्तौड़ क़िले की उत्पत्ति और इसके लिए किए गए बलिदान की ख्यात सुनाई। इस तरह दोनों तरफ़ से गोलाबारी होती रही। तीन वर्ष व्यतीत हो गए, लेकिन दोनों सेनाएँ बराबरी पर रहीं। पहला दरबार बड़े महलों में हुआ, जिसमें चौदह मिसल के सभी सरदार सम्मिलित हुए। सरदारों ने रत्नसेन से कहा कि- ''रसद बंद है, सभी दुःखी हैं, चित्तौड़ के लोगों में घबराहट फैल गई है और चीज़ों का मूल्य भी बढ़ गया है। हमारा निवेदन है कि अब हम क़िले से नीचे उतरकर बादशाह की फ़ौज पर आक्रमण करें।'' रत्नसेन ने कहा कि- ''यह

बहुत अच्छे और स्वामिभक्ति के समाचार हैं।'' दरबार में रणमल डोडिया ने उठकर बादशाह की फ़ौज पर आक्रमण करने की आज्ञा माँगी। रत्नसेन ने उसको सम्मानपूर्वक विदा किया। उत्तर दिशा का दरवाज़ा पार करने के बाद बादशाह की फ़ौज के नवाब समरथ खाँ, मुरजोनुर बेग और मीर जमाल ख़ाँ से उसका सामना हुआ। दोनों फ़ौजें तीन दिन तक लड़ीं और बादशाह की विजय हुई। उमराव रणमल डोडिया इस लड़ाई में काम आया। इसके बाद बड़े महल के दरवाज़ों पर दरबार हुआ, जिसमें छह सरदारों ने युद्ध की अनुमति माँगी। पाँच दिन लड़ाई हुई, जिसमें बादशाह की फ़ौज भाग निकली और रत्नसेन की विजय हुई।

तीसरा दरबार बायण माता के यहाँ हुआ, जिसमें कल्याणजी, झाझूजी और खोराज जी ने युद्ध की अनुमति माँगी। क़िले से नीचे उतरकर इन्होंने सेना सहित गंभीरी नदी पर डेरा किया। उन्होंने बुद्धि से काम लिया। उन्होंने दिन में तलवारबाज़ी की और रात में कीरों से भैंसें और पाडे मँगवाए। कीरों की समझाया कि तुम चार हाथ लंबी मशालों को तेल में भिगोकर भैंस-पाडों के सींगों पर बाँधना और इनमें आग लगाकर और कोस-दो-कोस की दूरी से इनको बादशाह को फ़ौज की तरफ़ हाँक देना। कीरों ने वैसा ही किया। बादशाह को फ़ौज में हड़बड़ी मच गई। तीनों सरदारों ने पीछे से आक्रमण कर दिया। दो सरदार काम आए और खोराजजी घायल हुआ। विजय रत्नसेन की हुई। इस तरह एक के बाद एक कुल बारह दरबार हुए, जिनमें कई योद्धाओं ने युद्ध के लिए अनुमति माँगी। कभी इनमें जीत रत्नसेन की, तो कभी बादशाह की हुई। इस तरह दस वर्ष में बारह बड़े युद्ध और उन्नीस झगड़े हुए। एक दिन बादशाह ने राघव और चेतन से क़िले के टूटने के उपाय के संबंध में पूछा, तो उन्होंने बताया कि चित्तौड़ के स्वामी रत्नसेन के पकड़ में आए बिना क़िले को वश में करना संभव नहीं है। यह हिंदुवानी क़िला है और इसके कंगूरे-कंगूरे पर देवियाँ लड़ती हैं, इसलिए रत्नसेन को बंदी बनाना पड़ेगा। राघव-चेतन ने पाडलपोल दरवाज़े की चौकी के सैनिकों के जमादार नरभो हरजी को रात के समय बादशाह के सम्मुख बुलाया। बादशाह ने उनको प्रलोभन दिया कि तुम्हारा स्वामी रत्नसेन रोज झरणिया महादेव के दर्शन करने आता है। तुम उसको हमारी फ़ौज को पकड़ने देना। इसके बदले तुमको दो लाख रुपए और जागीर मिलेगी।

बादशाह की फ़ौज ने रत्नसेन को पकड़ लिया। उसको बादशाह के पास गाँव पाडोली के डेरे पर ले जाकर तंबू में बैठा दिया। राघव और चेतन ने सुना, तो दोनों वहाँ गए और आर्शीवाद दिया। राघव और चेतन ने कहा कि- ''बादशाह को अतिथि करने के आपके आदेश की हमने अनुपालना कर दी है।'' रत्नसेन उठकर उनसे मिला और कहा कि- ''जो होनहार है, वो हुआ। अब यह रघुवंश का चित्तौड़ का राज्य

चला जाएगा।'' राघव-चेतन ने कहा कि- ''आप जितने अवगुण निकालेंगे, उतने ही निकलेंगे।'' रत्नसेन ने कहा कि- ''आप दूसरे नहीं है। मेरी मानें तो बादशाह की फ़ौज टलनी चाहिए और मुझे क़िले में पहुँचना चाहिए।'' राघव-चेतन ने कहा कि- ''करना हमारे और सुधारना भगवान एकलिंगनाथ के हाथ है। हम एक पहर में आपको क़िले पर पहुँचा देंगे। आप मन में कोई आशंका नहीं रखें।'' राघव-चेतन ने बादशाह से जाकर कहा कि- ''रत्नसेन से अपेक्षा क्या है'', तो बादशाह ने कहा कि ''ये पद्मिनी हमको लाकर दे दे।'' राघव-चेतन ने बात बनाई और कहा कि ''यदि आपको पद्मिनी चाहिए, तो रत्नसेन एक पहर में मँगवा देगा।'' राघव-चेतन ने पाँच सरदारों- गोरा, बादल, फातिया, जेतमाल, रामा और कला को पत्र लिखा कि रत्नसेन को आपसे काम पड़ा है। बादशाह पद्मिनी माँग रहा है। आप युक्ति से काम लें। आप डोले तैयार करना। इसमें पद्मिनी का डोला पाटवी, मतलब सबसे बड़ा होगा। पद्मिनी के डोले पर उसके वस्त्र फैला देना, जिससे उसमें से ख़ुशबू आएगी और उस पर भ्रमर मँडराएँगे और बादशाह इससे भ्रमित होकर इसमें पद्मिनी होने की बात सच मान लेगा। एक डोले में दो-दो योद्धा बैठा देना और शस्त्र पूरे लेकर आना। आठ आदमी डोला उठानेवाले, नवाँ चौबदार, एक जल की झारी और एक पंखेवाला रखना। डोले कई बनाना। पद्मिनी के डोले में गोरा और बादल, एक डोले में फातिया-जेतमाल और रामा-कला को रखना। पत्र क़िले पर पहुँचा और सरदारों ने पढ़कर इस पर विश्वास किया। तैयारी होने लगी। 720 डोले बनाए गए। पाँचवे दिन सूर्योदय के साथ ही डोले पाडलपोल से बाहर निकले। डोले एक-दूसरे से जुड़कर पंक्ति बन गए। आगे का डोला गाँव पाडोली में बादशाह के डेरे पर और पीछे का डोला पाडलपोल पर था। आगे के डोले पर भ्रमरों को डोलते हुए देखकर बादशाह को उसमें पद्मिनी होने का विश्वास हो गया। बादशाह ने पद्मिनी के बुलाने पर रत्नसेन को डोले में जाने की अनुमति दे दी। रत्नसेन ने डोले में प्रविष्ट होकर गोरा-बादल से परामर्श किया और एक से दूसरे डोले में होता हुआ क़िले में पहुँच गया। वहाँ जाकर उसने नोबत पर डंका बजाया। डोलों में छिपे हुए योद्धा समझ गए कि रत्नसेन सुरक्षित क़िले में पहुँच गया है। गोरा-बादल और अन्य सरदारों ने परामर्श कर बादशाह को कहलवाया कि आपको पद्मिनी ने बुलाया है। बादशाह ने डोले का परदा उठाकर जैसे ही भीतर झाँका, तो गोरा-बादल ने उसकी दाढ़ी पकड़कर उसके दोनों ही गालों पर थप्पड़ जड़ दिए। फिर यह कहकर उसकी दाढ़ी छोड़ दी कि ''तुम्हें मारना धर्म विरुद्ध है।'' बादशाह छूटकर भागा और उसने चिल्लाकर कहा कि- ''इसमें पद्मिनी नहीं है। हमारे साथ धोखा हुआ है।'' डोलों से योद्धा बाहर निकले। भीषण युद्ध हुआ- पाडलपोल और पाडोली के बीच तीन कोस में सिर और धड़ों का ढेर लग गया। रक्त का प्रवाह

गंभीरी नदी में जा मिला। रत्नसेन की सेना की विजय हुई। गोरा, बादल, फातिया, जेतमाल, रामा और कला घायल होकर क़िले में गए। अपनी हवेलियों में जाने से पहले से पद्मिनी के पास गए, जिसने उनका सम्मान किया। सभी सरदारों को रत्नसेन ने हवेलियों में पहुँचाया और उनकी सेवा-सुश्रुषा करने लगा। वह उनकी सराहना करता और कहता था कि उन्होंने मेवाड़ का सम्मान रखा। अलाउद्दीन ख़लजी ने दिल्ली और अन्य स्थानों से फ़ौज मँगवाई और एक महीने सतरह दिन बाद फिर तोपों से गोलाबारी शुरू कर दी। रत्नसेन ने विचार किया कि अब बादशाह की फ़ौज उठ जाए, तो अच्छा है। सोलह देशों के गढ़ चित्तौड़ का राज्य बिगड़ गया है और इसके सरदार माला की मोतियों की तरह टूटकर बिखर गए हैं। उसने दरबार में सभी से परामर्श कर बादशाह को पत्र लिखा। पत्र में सख़्ती और नरमी, दोनों रखीं। पत्र में लिखा कि आप दिल्ली के बादशाह हैं, लेकिन हम भी आपसे कम नहीं है। बारह वर्ष हो गए हैं। आपकी फ़ौज का नुक़सान भी बहुत हुआ है और आपने यह भी समझ लिया है कि यह क़िला चमत्कारी है। अब तक राजपूत ईमान-धर्म से लड़े, इसलिए आप बच गए हैं, लेकिन अब रावल के स्वामिभक्त संबंधियों ने युद्ध करने का बीड़ा उठाया है। बादशाह ने यह पत्र अपने अमीरों को पढ़कर सुनाया। अमीरों ने कहा कि- ''आपको ख़ुदा ने दिल्ली का राज्य दे रखा है। चित्तौड़ की क्या बात है। आप चित्तौड़ लेने आए भी नहीं थे। आपकी इच्छा तो पद्मिनी लेने की थी। आप भी आपकी स्त्री किसी को नहीं देंगे। वैसे ही रत्नसेन भी अपनी पद्मिनी आपको नहीं देगा। आप उससे कहें कि मुझे पद्मिनी दिखा दो। मैं दिल्ली चला जाऊँगा।'' बादशाह ने परामर्श मानकर यह सब रत्नसेन को लिखकर भेज दिया। अपने चौदह मिसल के सरदारों को दरबार में बुलाकर रत्नसेन ने यह पत्र उनके सामने रखा। सरदारों ने कहा जैसे भी बने, यह विपत्ति टालना चाहिए। महारानी पद्मिनी की सोलह सहेलियाँ हैं, उनमें से जो भी रूपवान हैं, उसे पद्मिनी जैसे वस्त्र पहनाकर उस म्लेच्छ को दिखा दीजिए, जिससे समस्या का हल हो जाए। रत्नसेन ने बादशाह को लिखा कि ''आप अकेले घोड़े पर एक ख़िदमतगार और एक चरवादार के साथ आओ और धोखा नहीं करो, तो हम आपको पद्मिनी दिखा देंगे।'' सभी अमीरों ने एकत्र होकर रत्नसेन का लिखा पत्र पढ़ा। अमीरों ने कहा कि राजपूत अपने वचन के सच्चे होते हैं और धोखा देना नहीं जानते। बादशाह को विश्वास हो गया। बादशाह ने विचार किया कि मैंने पद्मिनी देखी नहीं है। बदलकर किसी दूसरी स्त्री को भी दिखाया जा सकता है। विचार-विमर्श के बाद रत्नसेन को फिर पत्र लिखा कि एक तो पद्मिनी नहीं बदलेंगे और दूसरा, दग़ा नहीं करेंगे, इसकी शपथ, जैसी आपके यहाँ होती है, लिखकर भेज दो। रत्नसेन और उमरावों ने विचार-विमर्श के बाद निर्णय किया कि हमें बादशाह को

मारना नहीं है, क्योंकि उसके रक्त से क़िला अपवित्र हो जाएगा और पद्मिनी भी नहीं बदलेंगे, क्योंकि हमने विश्वास की बात लिखी है। परामर्श के बाद यह तय किया गया कि महल के झरोखे के नीचे तेल का कड़ाह भर देंगे। महारानी उस कड़ाह में झाँकेंगी और बादशाह कड़ाह में उसका प्रतिबिंब देख लेगा। बादशाह यदि इतने में नहीं मानेगा और ऊपर झाँकेगा तो हम उसको काटकर टुकड़े कर डालेंग। रत्नसेन ने बादशाह को लिखा कि आप ख़ुशी से एक घोड़े और ख़िदमतगार के साथ आओ। आप और हमारे बीच चंद्रमा, सूर्य, पवन, गंगा और गीता है। हम किसी तरह का धोखा नहीं करेंगे और पद्मिनी भी नहीं बदलेंगे। बादशाह ने अपने अमीरों के साथ परामर्श कर रत्नसेन को लिखा कि हम पद्मिनी को देखने के लिए क़िले में आते हैं। इसके अलावा कोई दूसरी बात करें या उस पर विचार करें, तो तुम्हारे और हमारे बीच कलमा-शरीयत है। बादशाह का लिखा रत्नसेन ने अपने उमरावों का सुनाया। उमरावों ने तय कर रत्नसेन से कहा कि- ''सभी निकास के दरवाज़े सरदारों के अधीन रहेंगे। तब तक आप पद्मिनी को दिखा देना, जिससे पाप कट जाएगा।'' रत्नसेन ने दरवाज़ों की सुरक्षा के लिए अपने सगे भाई-बेटों को भेज दिया और फिर बादशाह का बुलाया। बादशाह घोड़े पर ख़िदमतगार के साथ आया। पीछे सात जवानों का पहरा था। दरवाज़े के सरदारों ने रत्नसेन से पूछा तो उसने घोड़ा, पतरन, ख़िदमतगार, पाडु- इन चार को क़िले में आने की अनुमति दी। पहरे के जवानों का पाडलपोल पर ही रोक दिया गया। बादशाह रामपोल दरवाज़े पर आकर खड़ा हो गया। यहाँ से बादशाह के घोड़े को रामपोल की घुड़साल में बाँधकर नया घोड़ा मँगवाया गया। रत्नसेन के लोग बादशाह के आगे हो गए और सब मिलकर चले। रत्नसेन ने बादशाह से कहा कि- ''यहाँ से सीधे पद्मिनी के यहाँ चलें'', तो बादशाह ने कहा कि- ''क़िले के मुख्य स्थान और देवी-देवताओं की जगह मुझे दिखाओ। बाद में मैं क़िला देखने के लिए कब आऊँगा और मुझे देखने भी कौन देगा। अंत में मैं पद्मिनी देखकर चला जाऊँगा।'' रत्नसेन ने यह बात सहज कर समझी। बादशाह के कहे पर विश्वास कर वह पहले उसको वायण माता के कुंड पर ले गया। वहाँ से वह उसे सिद्धनाथ, फिर सहस्रमुखा, ऋषभदेव, चौसठमुखा, भीमकोड़ी, नीलकंठ महादेव, भीमलत और वहाँ से कालकाजी के दर्शन करवाकर चतुरंगजी के महलों के तालाब पर ले गया। बादशाह ने रत्नसेन से कहा है कि ''चितौड़ का क़िला हमको बहुत पसंद आया। ऐसा क़िला अपने द्वीप में दूसरा नही है।'' बादशाह ने क़िले की ख़ूब बड़ाई की और कहा कि- ''तुम्हारा देवता भी सच्चा है।'' बादशाह की क़िले की सराहना से रत्नसेन का दिल फूल गया। उसने नज़र की चौकसी नहीं रखी। बादशाह जहाँ-जहाँ भी गया, पीक डालता गया। मुसलमान की पीक पड़ने से हिंदू देवताओं की शक्ति घट गई। बादशाह

ने रत्नसेन से कहा कि अब तुम अपनी पद्मिनी दिखा दो, तो मेरा देखना पूरा हो जाएगा। बादशाह ने जहाँ-जहाँ पीक थूकी वहाँ से देवताओं की चौकी उठ गई। बादशाह और रत्नसेन फिर पद्मिनी के महलों में गए और झरोखे के नीचे तेल के कडाह के पास जाकर खड़े हो गए। पद्मिनी ने झरोखे से से अपना प्रतिबिंब कड़ाहे में डाला, तो रत्नसेन ने बादशाह से कहा कि कड़ाह में देखो। ऊँचे-नीचे मत देखना, नहीं तो सिर धड़ से अलग कर देंगे। बादशाह ने कड़ाह में देखा, तो नख-शिख सरूपवान पद्मिनी उसमें दिख रही थी। बादशाह सुध-बुध भूल गया। पद्मिनी के तेज़ के कारण बहुत देर बाद बादशाह को सुध आई। बादशाह ने रत्नसेन से कहा कि- ''परवरदिगार ने तुम्हारा भाग्य बड़ा बनाया है।'' बादशाह और रत्नसेन रामपोल आए। बादशाह अपने घोड़ें पर सवार हुआ। पाडलपोल पहुँचकर बादशाह की सुरक्षा टुकड़ी उसके पीछे हो गई। उसके पाडोली में अपने डेरे पर सुरक्षित पहुँच जाने पर फ़कीरों को ख़ेरात बाँटी गई और उत्सव हुआ। दरबार हुआ, जिसमें 44 अमीर उपस्थित हुए। बादशाह ने अपने अमीरों से कहा कि- ''क़िले के जितने देवस्थान हैं, सब पर मैंने थूक दिया है। हिंदुओं का एक भी देवता अब क़िले पर नहीं है। क़िले पर मनुष्य भी अब बहुत कम रह गए हैं। क़िले पर अब तोपों से वार करो, तो घबराकर रत्नसेन पद्मिनी अपने को दे देगा या क़िला छोड़कर भाग जाएगा।'' तीसरे पहर 268 तोपों से एक साथ क़िले पर प्रहार होने लगा। क़िले पर तोप कालकाबाण घूटी। पाँच-सात बार आवाज़ होने पर भी एक भी देवता क़िले पर हिला-डुला नहीं। रात्रि में देवी कालिका ने रत्नसेन को सपने में आकर कहा कि- ''क़िले की सुरक्षा का प्रबंध अब तुम का लेना। हमारे भरोसे मत रहना। हम देवी-देवता तलहटी में चल गए हैं।'' रत्नसेन ने कहा कि- ''माता, मुझसे क्या अपराध हुआ है?'', तो देवी ने उतर दिया कि- ''क़िला भ्रष्ट हो गया है। पूरे क़िले में बादशाह थूकता फिरा, जिससे वहाँ पाँव रखने की जगह भी नहीं रही। हमारा निवास अब क़िले में नहीं है।'' दूसरे दिन बादशाह ने रत्नसेन को लिखा कि क़िले, राज और प्राण की आशा हो, तो पद्मिनी हमको दे दो, नहीं तो तोपबारी होने दो।

रत्नसेन ने दरबार किया। सभी उमरावों ने उपस्थित होकर अभिवदान किया और अपने स्थानों पर बैठ गए। फिर चर्चा चली कि बादशाह धर्मविरुद्ध हो गया हैं। अब हम सेना तैयार कर क़िले बाहर निकलें और बादशाह की फ़ौज को काटकर फेंक दें। रत्नसेन अपने उमरावों - गोरा, बादल, फतिया, जेतमाल, रामा और कला के साथ युद्ध के लिए तैयार होकर क़िले से नीचे उतरा और गंभीरी नदी पर उसका डेरा हुआ। बादशाह की फ़ौज भी तैयार हो गई। नगरी से लगाकर पाडोली तक युद्ध होने लगा। गाँव कालीखोर से सतखंदा तक तीन दिन और तीन रात तक तलवारें बजती

रहीं। कई योद्धा काम आए। रामा और कला, दोनों भाइयों ने दो पहर तक बिना सिर तलवार चलाई। फातिया और जेतमाल, दोनों योद्धा भी पाँच पहर तक बिना सिर के लड़े। सत्तासी उमराव-सरदार काम आए। गोरा और बादल घायल हुए और उनके चौरासी-चौरासी घाव लगे। बादशाह की फ़ौज खंड-खंड हो गई। पाँच कोस तक हाथी, घोड़े, पैदल और ऊँट के धड़ और मुँह फैल गए। बादशाह की फ़ौज, जो चार जगह ठहरी हुई थी, भाग निकली। बादशाह एक कोस तो घोड़े पर चढ़कर और दो कोस तक पैदल भागा। रत्नसेन की विजय हुई। सब घायल एक साथ क़िले पर आए और अपनी हवेलियों की ओर जाने लगे। गोरा और बादल ने विचार किया कि इस बार घायल बहुत हुए हैं। एक कदम चलने के बाद दूसरे में ही प्राण निकल गए, तो बहन मदन कुँवर पद्मिनी से मिलना होगा नहीं। रत्नसेन गोरा-बादल का स्वागत करने सामने रामपोल गया। दोनों को छाती से लगाया और उनको हवेली ले जाने लगा। दोनों ने रत्नसेन से निवेदन किया कि- ''हम हवेली जाएँगे, लेकिन पहले एक बार बहन पद्मिनी से मिलना है।'' तीनों पद्मिनी के महल की बारादरी गए। पद्मिनी ने दोनों की मोतियों से आरती की और स्वागत-सत्कार किया। गोरा-बादल ने पद्मिनी से कहा कि- ''हमें घर के लिए सीख दो, हमसे बैठा नहीं जाता, अब जीने की आशा नहीं है। गोरा-बादल हवेली के लिए चले और रत्नसेन उनको पहुँचाने के लिए साथ निकला। रत्नसेन ने अपने मन में विचार किया कि अब बादशाह ने हार मान ली है, उसे आए भी बारह वर्ष हो गए हैं, इसलिए वो अब दिल्ली चला जाएगा। देश में अब अमन-चैन हो जाएगा। एकलिंगनाथ राज भी वापस बना देंगे। ये दोनों- गोरा और बादल, यदि जीवित रह जाएँगे, तो कहते रहेंगे कि चित्तौड़ का राज और क़िला तो हमारे सामर्थ्य से है, इसलिए इन दोनों को समाप्त कर देना चाहिए। यह विचार करते हुए वह सुकल्या तालाब पर गया। वहाँ उसने दोनों के सिर उड़ा दिए, जो सुकल्या तालाब में जा गिरे। दोनों भाइयों के धड़ खांडे की मूठ पर हाथ रखकर चल निकले। रास्ते में बादशाह की फ़ौज मिल गई। लड़ाई होने लगी। गोरा का धड़ डूँगरपुर से बीस कोस दूर खोखरवाड़ा मे जाकर गिरा, जबकि बादल का धड़ बादशाह की फ़ौज का मारता हुआ सुखदेव महादेव के मंदिर के दक्षिण में डेढ़-सवा कोस दूर सुरोपुरा बावजी गाँव में जाकर गिरा। इस तरह गोरा-बादल के सिर उड़ाकर हाँफता-काँपता हुआ रत्नसेन वापस पद्मिनी के महल आया। पद्मिनी ने पूछा कि- ''इतनी जल्दी आप वापस कैसे आए? मुझे लगता है कि आपने मेरे भाइयों पर प्रहार किया है।'' रत्नसेन ने कहा कि- ''मैंने सरदारों का घायल देखा और वे घबराए हुए भी थे। यह सोचकर कि उन्होंने मेरी बहुत सेवा-चाकरी की है और दोनों बहुत दु:ख देखकर मरेंगे, इसलिए मैंने अपने हाथों से उनको सुख और मोक्ष दे दिया।'' तब

पद्मिनी ने कहा कि– ''मेरे भाइयों पर आपका हाथ चल गया, तो और किसी पर आप हाथ चलाते हुए आप क्यों देर करेंगे। आपने मेरे भाइयों को मार दिया, अब मेरे जीवन का कोई अर्थ नहीं है।'' यह कहकर पद्मिनी तालाब में कूद गई और जल में मिल गई।

यह समाचार कि क़िले पर आपस में झगड़ा–बखेड़ा हुआ है और रत्नसेन ने अपने सालों को मार डाला है, बादशाह तक पहुँचा। उसने विचार किया कि इस वक़्त फ़ौज तैयार कर क़िले में घुस जाएँ, तो वहाँ राज करेंगे। बादशाह की फ़ौज तैयार होकर क़िले पर चढ़ आई और पाडलपोल पहुँच गई। झगड़ा होने लगा। पाडलपोल तोड़कर फ़ौज रामपोल पहुँच गई। पाडलपोल और रामपोल के बीच बादशाह की फ़ौज ठसाठस इस तरह भर गई, जैसे तरकश में तीर भरे हों। दोनों तरफ़ से हाथ चलने लगे। बादशाह की फ़ौज के कई लोग काम आए। रामपोल और पाडलपोल के बीच खड़े आदमी को नाभि जितनी ऊँचाई तक रक्त बहा और रास्ते से होता हुआ इसका प्रवाह गंभीरी नदी में जा मिला। रत्नसेन और बादशाह की फ़ौज के कई अमीर और उमराव काम आए। बादशाह की फ़ौज भागी और इधर चित्तौड़गढ़ ध्वस्त हुआ।

अध्याय - 9

मलिक मुहम्मद जायसी कृत 'पद्मावत'

रचना समयः 1540 ई.

पद्मावत देशज पारंपरिक कथा-काव्यों से अलग रचना है, जिसकी रचना मलिक मुहम्मद जायसी ने 1540 ई. में जायस (उत्तर प्रदेश) में की। कवि ने इसकी रचना का समय 1520 ई. माना है। कवि ने लिखा है कि- *सन नव सै सत्ताइस अहा। कथा अरंभ कवि बैन कहा अर्थात्* कथा के आरंभिक वचन सन् 927 हि. (1520 ई.) में कहे। कवि ने ग्रंथारंभ में अपने समय के शासक (शाहे वक़्त) शेरशाह सूरि का उल्लेख किया है, जिसका शासनकाल 1540 ई. में आरंभ होता है। रामचंद्र शुक्ल ने इस आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि कवि ने 1520 ई. में *पद्मावत* की शुरुआत की होगी और 1540 ई. में उसने इसे पूरा किया होगा। अंत:साक्ष्यों के अनुसार जायसी का जन्म 1492 ई. के आसपास हुआ। बाबर के समय लिखी गई फ़ारसी रचना *आख़िरी क़लाम* (1528 ई.) में अपने जन्म के समय के संबंध ने जायसी ने लिखा है कि- *भा अवतार मोर नव सदी। तीस बरस ऊपर कवि बदी।* पहली पंक्ति में 'नव सदी' का अर्थ 900 हिजरी (1492 ई. के आसपास) है और दूसरी पंक्ति का अर्थ रामचंद्र शुक्ल के अनुसार "तीस वर्ष पीछे जायसी अच्छी कविता करने लगे।" जायसी जायस (रायबरेली-उत्तरप्रदेश) के रहने वाले थे, लेकिन यह सर्वथा निर्विवाद नहीं है। उन्होंने अपने जन्म स्थान का उल्लेख करते हुए *पद्मावत* में लिखा है कि- *जायस नगर धरम अस्थानु। तहँवा यह कवि कीन्ह बखानू॥* इस पंक्ति में *'तहँवा यह'* के *'तहाँ आई'* पाठ भेद के आधार पर जार्ज ग्रियर्सन सहित कुछ विद्वानों ने यह अनुमान लगाया है कि जायसी वहाँ कहीं ओर से आकर बसे थे। जायसी ने *पद्मावत* में अपने चार मित्रों- युसुफ मलिक, सालार कादिम, सलोने मियाँ और बड़े शेख़ का उल्लेख किया है।[75] जायसी ने यह भी उल्लेख किया है कि उनकी एक ही आँख

थी। उन्होंने लिखा है कि *एक नयन कवि मुहम्मद गुनी।*[76] इसी तरह उन्होंने यह भी उल्लेख किया है कि उन्हें बाएँ कान से कम सुनाई पड़ता था। इस संबंध में उनकी पंक्ति है कि *मुहम्मद बाईं दिसि तजा। एक सरबन, एक आँखि।* जायस में प्रचलित जनश्रुतियों के अनुसार वे अपने समय के बड़े सिद्ध और चमत्कारी फ़कीर थे।

जायसी सूफ़ी संत निज़ामुद्दीन ओलिया की शिष्य परंपरा में थे और उन्होंने अपने दो गुरुओं का नामोल्लेख किया है। *पद्मावत* और *अखरावट* में उन्होंने मनिकपुर के महीउद्दीन (शेख़ मोहिदी) और शैयद अशरफ़ जहाँगीर का अपने गुरु के रूप में उल्लेख किया है। *पद्मावत* में उन्होंने दोनों का नामोल्लेख करते हुए लिखा है कि- *सैयद असरफ पीर पियारा। जेइ मोहिं दीन्ह पंथ उजियारा।। गुरु मोहिदी सेवक मैं सेवा। चलै उताइल जेहि कर खेवा॥* रामचंद्र शुक्ल का अनुमान है कि उनके दीक्षा गुरु तो सैयद अशरफ़ जहाँगीर थे, लेकिन बाद में उन्होंने महीउद्दीन की भी सेवा की।[79] जायसी उस समय के गोरखपंथी, रसायनी, वेदांती साधु-संतों के निकट संपर्क में रहे होंगे। *पद्मावत* में इसके पर्याप्त साक्ष्य मिलते हैं।

पद्मावत सूफ़ी प्रेमकथात्मक महाकाव्य है। प्राकृत और अपभ्रंश की जो प्रबंध परंपरा थी, जायसी की पद्मावत उससे कुछ हटकर है। उस पर फ़ारसी प्रेमकाव्य और मसनवी शैली का गहरा प्रभाव है।[80] इस्लाम के सूफ़ी मत में भक्त अपने को आशिक और भगवान को माशूक समझकर उसको पाने के लिए साधना करता है। सूफ़ी यह भी मानते हैं कि भक्त और भगवान के संबंध में गुरु के मार्गदर्शन और सहयोग की भी निर्णायक भूमिका होती है और शैतान (माया) इसमें बाधा बनता है। संबंधों का यही रूपक *पद्मावत* में जायसी ने इस्तेमाल किया है। यहाँ रत्नसेन-पद्मावती की कथा में पद्मावती ईश्वर, रत्नसेन भक्त, तोता गुरु और राघवचेतन शैतान या माया है। जायसी इसी रूपक को ध्यान में रखकर विस्तृत कथा काव्य की रचना करते हैं और अंत में इसका साफ़ संकेत भी करते हैं। कथा लोक में पहले से प्रचलित है, सभी चरित्र भी प्रसिद्ध हैं। जायसी अपने प्रयोजन के लिए इनको अपनी कल्पना से पुनर्निर्मित करते हैं। जायसी का इतिहास के साथ व्यवहार लोक के इतिहास के साथ बर्ताव जैसा है। इतिहास यहाँ गल्प की तरह आता है- जायसी इसको अपनी तरह से कहते हैं। जायसी ने अंत में कहा भी है कि *कोई न रहा, जग रही कहानी*। सही भी है- बीत जाने के बाद तो इतिहास भी गल्प, कहानी ही है। जायसी उच्च कोटि के कवि भी हैं, इसलिए रूपक के निर्वाह में भी उनका कवि निरंतर सजग और सक्रिय रहता है। यह अवश्य है कि इसमें कभी जायसी का सूफ़ी, तो कभी उनका कवि, ऊपर-नीचे होते रहते हैं। विजयदेवनारायण साही तो जायसी के कवि पर इतने मुग्ध हुए कि उन्होंने जायसी को कवि और उनके सूफ़ी को 'कुजात' कह दिया। यह प्रबंध

संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश की भारतीय चरित प्रबंध परंपरा में नहीं है। अलबता इसका कुछ प्रभाव इस पर ज़रूर है। यह ईरान के फ़ारसी कवियों की प्रसिद्ध और लोकप्रिय काव्यरूप 'मसनवी' के ढाँचे में है। इसमें मसनवी के ढाँचे के अनुसार कथा के आरंभ में ईश्वर स्तुति और पैग़ंबर की वंदना है। आरंभ में ही कवि शाहे वक़्त शेरशाह सूरि की सराहना भी करता है। भाषा इसकी अवधी है और इसमें दोहा–चौपाई वाली कड़वक शैली का प्रयोग हुआ है, जो प्राकृत और अपभ्रंश की प्रबंध रचनाओं में पहले से प्रयुक्त हो रही थी। यही पद्धति बाद में तुलसी के *रामचरितमानस* में भी इस्तेमाल की गई। जायसी बहुज्ञ थे– सूफ़ी दर्शन के अलावा उनको भारतीय दर्शन, भूगोल, महाकाव्य, मिथक, हठयोग, ज्योतिष, आयुर्वेद, शगुन विचार, योगिनी चक्र, भोजन आदि की भी विस्तृत जानकारी थी। जायसी ने अपनी बहुज्ञता का उपयोग *पद्मावत* में विस्तार से किया है। भारतीय और उसमें भी अवध के लोक जीवन की उनकी समझ भी बहुत गहरी थी और *पद्मावत* में इसका निवेश भी बहुत गहरा और व्यापक है।

पद्मावत की फ़ारसी–अरबी में कई प्रतियाँ मिलती हैं। रामचंद्र शुक्ल ने उपलब्ध 13 प्रतियों के आधार पर इसका पाठ संपादन किया, जिनमें से पाँच प्रतियाँ अच्छी थीं। इनमें से चार लंदन स्थित कॉमनवेल्थ ऑफ़िस में हैं और पाँचवी प्रति किसी गोपालचंद के पास है। वासुदेवशरण अग्रवाल ने गोपालचंदवाली प्रति के साथ प्रो. श्रीहसन असकरी के पास बिहार से उपलब्ध दो प्रतियों के आधार पर इसका पाठ संपादन किया है। वासुदेवशरण अग्रवाल ने मनेर शरीफ़ के ख़ानका पुस्तकालय की प्रति का भी अपने संपादन में उपयोग किया है। माताप्रसाद गुप्त ने 16 प्रतियों को आधार बनाकर इसका संपादन किया, जो 1963 ई. में प्रकाशित हुआ। *पद्मावत* मध्यकाल में ही लोकप्रिय हो गया था। 1650 ई. में अराकान के वज़ीर मगन ठाकुर ने इसका बँगला अनुवाद करवाया।

'पद्मावत' हिंदी कथा रूपांतर

यशस्वी और चक्रवर्ती गंधर्वसेन सिंघलद्वीप का राजा था। राजाओं में वह दूसरे इंद्र के समान था। उसके पास छप्पन करोड़ सेना थी और उसकी घुड़साल में सोलह हज़ार घोड़े थे। उसकी पद्मिनी जाति की सोलह हज़ार रानियाँ थीं, जिनमें से अपार रूप–सौंदर्यवाली चंपावती उसकी पटरानी थी। चंपावती के गर्भ में कन्या आई और दस माह बाद उसका जन्म हुआ। जन्म और नक्षत्रों के अनुसार पंडितों ने उसका नामकरण पद्मावती किया। पाँच वर्ष की होने के बाद उसकी शिक्षा शुरू हुई। धीरे–धीरे वह

गुणी और पंडित हो गई। गंधर्वसेन के यहाँ सुंदर और पंडित कन्या उत्पन्न हुई है, यह बात चारों लोकों में फैल गई। सातों द्वीपों से उसके लिए विवाह के प्रस्ताव आने लगे, लेकिन राजा सभी को नकारात्मक उत्तर देता। बारहवाँ वर्ष लगते ही राजा ने पद्मावती को अलग महल दे दिया। उसने उसको कई सखियाँ भी दीं, जो सदैव उसके साथ रहती थीं। पद्मावती के महल में एक पंडित हीरामन नाम का तोता था। पद्मावती तोते के साथ रहती और वे दोनों वेदशास्त्र पढ़ते। धीरे-धीरे पद्मावती का यौवन विकसित होने लगा। तोता पद्मावती को जो उपदेश देता था, उनको सुनकर राजा नाराज़ हो गया। राजा ने तोते को मारने की आज्ञा दी। तोते के शत्रु नाऊबारी उसको मारने आए, लेकिन पद्मावती ने उसको छिपा दिया। शत्रु लौट गए, लेकिन तोता मन में डर गया। उसने पद्मावती से वनवास की आज्ञा माँगी। पद्मावती ने उसको धैर्य बँधाया। तोते के मन में अपनी हत्या की आशंका घर कर गई। एक दिन पद्मावती सखियों के साथ मानसरोवर में स्नान करने के लिए गई। वे सब जल क्रीड़ा करने लगीं। एक सखी का हार जल में खो गया। सब हार खोजने लगीं। मानसरोवर ने कहा कि पद्मावती के चरण छूकर मैं निर्मल हो गया। हार ऊपर आ गया, जिसको सखियों ने ले लिया। इधर पद्मिनी सखियों के साथ धमार खेल रही थी और उधर अपनी मृत्यु की आशंका से भयभीत तोता महल से उड़ गया। भंडारी ने पद्मावती को तोते के उड़ जाने की सूचना दी, तो वह बहुत दुःखी हुई। सखियों ने पद्मावती को सांत्वना दी। दस दिन तोते ने वन में आराम से काटे, लेकिन फिर वहाँ एक व्याध आ गया। उसने लासा लगी टट्टी लगाई। दूसरे पक्षी तो उड़ गए, लेकिन तोता उसमें फँस गया। दूसरे बंदी पक्षियों ने अपनी व्यथा सुनाकर तोते से उसके पंडित होने के बावजूद बंदी हो जाने का कारण पूछा। हीरामन ने कहा कि उससे भूल हो गई, वह धोखे से फँस गया।

चित्तौड़गढ़ के राजा चित्रसेन के यहाँ रत्नसेन का जन्म हुआ। पंडित, ज्योतिषी और सामुद्रिक आकर उसको देखने लगे। उन्होंने कहा कि इस बालक की जोड़ी पद्मावती के साथ लिखी है और यह बालक उसके वियोग में जोगी बनेगा। व्यापार के लिए चित्तौड़गढ़ के बनजारों का एक समूह सिंघलद्वीप की यात्रा पर गया। उनके साथ एक ग़रीब ब्राह्मण भी था। ब्राह्मण निर्धन होने के कारण सिंघल के बाजार में दुःखी होने लगा। इसी समय व्याध तोते को लेकर बाजार में आया। ब्राह्मण ने तोते से जब उसके गुण पूछे, तो उसने बताया कि बंदी हो जाने के कारण उसका ज्ञान व्यर्थ हो गया है। ब्राह्मण ने व्याध से तोता खरीद लिया और साथियों के साथ चित्तौड़गढ़ लौट आया। रत्नसेन चित्तौड़गढ़ के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। उसने जब पंडित और गुणी तोते के संबंध में सुना, तो दूत भेजकर उसने ब्राह्मण को बुलवाया।

तोते ने राजा को आशीर्वाद दिया और कहा कि वह सिंघल की पद्मावती का हीरामन है। राजा ने ब्राह्मण से तोता खरीद लिया और अपने महल में उससे कथाएँ सुनने लगा। एक दिन जब रत्नसेन शिकार खेलने गया, तब पटरानी नागमती ने अपने पद्मावती से अधिक रूपवान होने के सबंध में तोते से पूछा। तोते ने नागमती के रूप को पद्मावती की तुलना में तुच्छ बताया। रानी इससे नाराज़ हो गई। उसने सोचा कि यह बात तोता कभी राजा को बता देगा, तो वह पद्मावती के वियोग में राज्य छोडकर चला जाएगा। उसने अपनी धाय को तोता सौंपकर उसको मारने की आज्ञा दे दी। रानी की आज्ञा मूर्खतापूर्ण है, यह सोचकर धाय ने तोते को नहीं मारा। राजा ने आकर तोते की खोज की, लेकिन वह नहीं मिला। नागमती ने राजा के समक्ष तोते की निंदा की। तोते के शोक मे व्यथित राजा ने नागमती को तोता लाने या उसके साथ सती हो जाने का आदेश दे दिया। नागमती इससे हतप्रभ रह गई। उसने जाकर अपनी धाय को सारी बात बताई। धाय ने उसे समझाया कि पति पर क्रोध अनुचित है और उसकी आज्ञा का पालन करना चाहिए। रानी की समझ में आ गया। उसने हार मानकर तोता राजा को दे दिया।

राजा ने तोते से शपथ लेकर उसके साथ हुए अन्याय के संबंध में सत्य कहने के लिए कहा। तोते ने कहा कि उसके प्राण चले जाएँ, तो भी वह असत्य नहीं कहेगा। उसने कहा कि वह सिंघल द्वीप के राजा की कन्या पद्मावती का हीरामन है। उसने कहा कि उसकी स्वामिन् को विधाता ने कमल की गंध और चंद्रमा के अंश से रचा है और उसका मुख चंद्रमा के समान और अंग मलयगिरि की गंध लिए हुए हैं। राजा यह सुनकर भँवरे की तरह पद्मावती पर मोहित हो गया। उसने कहा कि तीन लोक और चौदह खंडों में जो भी दिखाई पड़ता है उसमें प्रेम को छोड़कर और कुछ भी सुंदर नहीं है। तोते ने कहा कि प्रेम अत्यंत कठिन है और जो एक बार प्रेम के फंदे में पड़ता है वह उससे कभी नहीं छूटता। राजा ने प्रेम के मार्ग में अपनी दृढ निष्ठा प्रकट की। उसने कहा कि जो प्रेम का खेल, खेल लेता है वह तीनों लोकों में तिर जाता है। राजा ने तोते से कहा कि जैसा पद्मावती को देखा उसका वैसा ही नखशिख वर्णन करे। हीरामन ने पद्मावती के श्रृंगार का वर्णन आरंभ किया। उसने उसके केश, माँग, ललाट, भौंह, नेत्र, बरौनी, नासिका, अधर, दाँत, नासिका, कपोल, कान, ग्रीवा, भुजा, स्तन, उदर, पीठ, कटि, नाभि और नितंब का वर्णन किया। नखशिख वर्णन सुनकर राजा मूर्च्छित हो गया। उसका मुख क्षण में पीला और क्षण में सफ़ेद हो जाता था। वह त्राहि–त्राहि करने लगा। कुटुम्ब के लोगों सहित ओझा, वैद्य आदि सभी ने उसका उपचार करने का प्रयत्न किया। राजा होश में आकर फिर वही चर्चा करने लगा। सभी ने उसे समझाया और कहा कि वह राज और सुख का भोग करे, क्योंकि

प्रेम के मार्ग में वही पहुँचता है, जो वियोग का दु:ख सहता है। हीरामन ने भी उसे समझाया कि योग और भोग का मेल जीवन में सम्भव नहीं है और प्रेम का मार्ग अत्यंत कठिन है। यह सुनकर राजा सचेत हुआ। उसका चित्त प्रेम में लगा हुआ था। उसने प्रतिज्ञा की कि वह पद्मिनी से भौंरा बनकर मिलेगा।

राजा राज्य त्यागकर पद्मावती को पाने के लिए हाथ में किंगड़ी लेकर जोगी हो गया। ज्योतिषियों ने शुभ मुहूर्त में प्रस्थान करने के लिए कहा, लेकिन राजा ने कहा कि प्रेम के मार्ग पर जाने वाला दिन और घड़ी नहीं देखता। यह घोषणा हो गई कि राजा ससैन्य सिंघलद्वीप की यात्रा पर जाएगा। रत्नसेन की माता ने योग और तप की कठिनता बताकर उससे रुकने का आग्रह किया, लेकिन रत्नसेन अपने निश्चय पर क़ायम रहा। रानी नागमती और अन्य रानियाँ विलाप करने लगीं। राजा ने कहा कि तुम स्त्रियाँ हो और तुम्हारी मति अल्प है। राजा ने सिंगी बजाकर ससैन्य प्रस्थान किया। राजा के साथ सोलह हज़ार कुमार जोगी होकर चल दिए। उन्होंने अपना घर और कुटुम्ब छोड़ दिया। राजा मार्ग में केवल पद्मावती का स्मरण कर रहा था। प्रस्थान के समय शगुन विचार करनेवालों ने आगे बढ़कर देखा कि सभी शगुन सिद्धिकारक थे। राजा ने अपने साथी जोगियों को मार्ग की कठिनाइयों के संबंध में बताया। उसने दंडकवन और विंध्यवन में पहुँचकर अपने साथियों को सचेत किया। यहाँ से तोते ने मार्ग दिखाने का दायित्व अपने ऊपर लिया। यात्रा आगे बढ़ने लगी और मृगारण्य में जाकर बसेरा हुआ। राजा वैरागी की भाँति हाथ में किंगड़ी लिए हुए था और उसकी आँखे सिंघलद्वीप के मार्ग में लगी हुई थी, जहाँ पद्मावती थी।

एक माह तक उस मार्ग पर चलकर राजा रत्नसेन समुद्र के पास पहुँचा। राजा योगी–जती हो गया है, यह सुनकर उड़ीसा का राजा गजपति उससे मिलने आया। उसने रत्नसेन से उसका आतिथ्य स्वीकार करने के लिए कहा, लेकिन उसने मना कर दिया। उसने गजपति से जहाज़ों का प्रबंध करने के लिए कहा। गजपति ने जहाज़ों के प्रबंध करने की बात मानकर कहा कि मार्ग बहुत कठिन है और सिंघलद्वीप वही पहुँच सकता है, जो अपनी हथेली पर प्राण लिए हुए हो। राजा ने गजपति को पद्मावती को पाने के अपने दृढ़ निश्चय के संबंध में बताया। राजा ने कहा कि वह पद्मावती के रंग में रंगा हुआ है, उसकी नकेल पद्मावती के हाथ में है, वही उसकी नाथ पकड़े खींच रही है। गजपति ने देखा कि रत्नसेन विचलित होने के लिए तैयार नहीं है, तो उसने उसे जहाज़ और नये सामान दिए। जहाज़ समुद्र में मन की गति से दौड़ने लगे। समुद्र में एक धवलगिरी पर्वत जितना बड़ा मत्स्य दिखाई पडा। मत्स्य के नाराज़ होने से समुद्र में लहरें उठने लगीं। सभी भयभीत हो गए। उनको भयभीत देखकर केवट लोगों को हँसी आ गई। उन्होंने कहा कि समुद्र में ऐसे कई भीषण जीव हैं।

राजा ने कहा कि जैसे मत्स्य अवतार में विष्णु ने सात पाताल में ढूँढ़कर वेदों का उद्धार किया था, वैसे ही मैं सात आकाश चढ़कर उस मार्ग में दौड़ूँगा, जिस पर पद्मावती मिलेगी। राजा ने क्षार समुद्र पार किया और फिर वह क्षीर समुद्र में आ गया। फिर राजा सुरा समुद्र में आया और उसके बाद उसने किलकिला समुद्र में प्रवेश किया। तोते के मार्गदर्शन में राजा सातवें समुद्र मानसर पहुँचा। मानसर देखकर सभी को प्रसन्नता हुई। सूर्य, मेघ, बिजली, चंद्रमा और नक्षत्र को एक साथ देखकर राजा ने तोते से प्रश्न किया कि हम कहाँ पहुँच गए हैं। तोते ने उत्तर दिया कि ये सिंघलद्वीप के राजमहल और रनिवास हैं। उसने सिंघलगढ़ की ऊँचाई और उस पर पहुँचने की कठिनता का वर्णन किया। उसने बसंत पंचमी के दिन शिव यात्रा के समय सिंघलद्वीप में प्रवेश की युक्ति भी बताई। राजा ने कहा कि वह पद्मावती को पाने के लिए ऊँचे से ऊँचे स्थान पर भी चढ़ सकता है। हीरामन राजा को उपदेश देकर अपने वचन के अनुसार पद्मावती के पास चला गया। राजा ने तोते के जाने के बाद पर्वत पर चढ़कर शिव मंडप के दर्शन किए। उसने शिव मंडप की स्तुति और परिक्रमा की। राजा की स्तुति पर आकाशवाणी हुई कि राजा को प्रेम मार्ग में सत्य धारण करना चाहिए। राजा सिंहचर्म पर बैठकर पद्मावती का जाप करने लगा। राजा के योग का पद्मावती पर प्रभाव हुआ। वह प्रेम के वश में हो गई और विरह अनुभव करने लगी। पद्मावती की ऐसी दशा देखकर उसकी धाय ने जब उसका कारण पूछा, तो पद्मावती ने कहा कि विरह की अग्नि उसके यौवन और मन को जला रही है। धाय ने उसे समझाया कि बसंत पंचमी के दिन उसे शिव को प्रसन्न करके प्रिय से समागम की प्रार्थना करना है। बसंत पूजा का समय निकट आने लगा। पद्मावती का एक-एक दिन युग की तरह बीत रहा था। वियोग की इसी अवस्था के दौरान तोता हीरामन पद्मावती के पास पहुँचा। वह तोते से मिलकर बहुत प्रसन्न हुई। तोते ने पद्मावती को अपनी चित्तौड़ यात्रा का हाल सुनाया। तोते ने रत्नसेन के समक्ष पद्मावती के सौंदर्य का वर्णन और रत्नसेन के उसके विरह में जोगी होकर सिंघलद्वीप और महादेव के मंडप पहुँचने की बात बताई। तोते की बात सुनकर पद्मावती रत्नसेन पर अनुरक्त हो गयी। उसके आगमन की बात सुनकर उसका विरह और तीव्र हो गया। तोते ने पद्मावती को विश्वास दिलाया कि रत्नसेन का विरह सच्चा है। हीरामन ने रानी से विदा ली और वह रत्नसेन के पास पहुँच गया। उसने रत्नसेन को पद्मावती का संदेश दिया।

शिशिर ऋतु व्यतीत हुई और बसंत पंचमी आ गई। पद्मावती ने सभी सखियों को श्रृंगार कर अपने साथ देवगढ़ चलने की आज्ञा दी। सभी सखियाँ पद्मावती के साथ विश्वनाथ की पूजा के लिए चलीं। वाटिका में पहुँचकर पद्मावती के निर्देश

पर सभी सखियाँ वहाँ क्रीड़ा करने लगीं। उन्होंने वहाँ फूल एकत्र किए और नृत्य-गान किया। पद्मावती सखियों के साथ खेलती हुई महादेव के मठ में पहुँच गई। पद्मावती और सखियों को वहाँ देखकर देवताओं में खलबली मच गई। पद्मावती को देखकर वहाँ कोई भौंरा और कोई पतिंगा हो गया। पद्मावती ने देव मंदिर में प्रवेश कर तीन बार प्रणाम किया और विवाह योग्य वर प्रदान करने प्रार्थना की। मंडप में आकाशवाणी हुई कि स्वयं देवता पद्मावती को देखकर हतप्रभ हैं। उसी समय एक एक सखी ने आकर कहा कि मंदिर के पूर्व द्वार पर जोगी ठहरे हुए हैं। पद्मावती वहाँ गई, तो उसे देखकर रत्नसेन मूर्च्छित हो गया। पद्मावती ने उपचार के लिए रत्नसेन के शरीर पर चंदन का लेप किया, पर वह और गहरी निद्रा में लीन हो गया। तब उसने उसके हृदय पर चंदन से लिखा कि उसने भीख लेने की युक्ति नहीं सीखी। जब वह उसके द्वार पर आई, तब वह सो गया। उसे भिक्षा की प्राप्ति कैसे हो सकती है? पद्मावती शिवमंडप से गढ़ में लौट आई और दिन की विहार कथा का स्मरण करते हुए सो गई। सुबह उठकर उसने सखी से रात में सूर्य और चंद्रमा के मेल होने का स्वप्न आने की बात कही। स्वप्न विचार कर सखी ने कहा कि देवता उसकी पूजा से प्रसन्न है और पश्चिम देश का कोई राजा आकर उसका वरण करेगा।

पद्मावती बसंतोत्सव मनाकर चली गई, तो राजा होश में आया। वह हाथ मलकर सिर धुनने लगा। जल के बिछड़ने से जैसे मछली दु:ख पाती है, राजा वैसे ही दु:खी होकर विलाप करने लगा। उसने शिव मंडप में जाकर देवता को उलाहना दिया। देवता ने कहा कि पद्मावती को देखकर वह स्वयं हतप्रभ हो गया। रत्नसेन ने अपने को दोषी मानकर अपने शरीर को भस्म कर देने का प्रण किया। उसके चिता पर बैठते ही देवता व्याकुल होकर वहाँ आ गए। उस पर्वत का रक्षक लंका जलाने वाला वीर हनुमान था। रत्नसेन की चिता की आग में वह भी जलने लगा। वह लंका छोड़कर शिव-पार्वती पास गया और उनको कहा कि विरह का मारा हुआ कोई जोगी उनके मंडप में चिता में जल रहा और उसकी आग से उसके सहित अन्य भी जल रहे हैं। शिव-पार्वती हनुमान के साथ वेश बदलकर वहाँ आए। उन्होंने रत्नसेन को उसके वियोग का कारण पूछा। रत्नसेन ने उत्तर दिया की वह महादेव के मठ में नहीं मिल पाने के कारण ऐसा कर रहा है। पार्वती ने मन में विचार किया रत्नसेन के प्रेम की परीक्षा लेना चाहिए। वह अप्सरा बन गई और उसने रत्नसेन से प्रणय निवेदन किया। रत्नसेन ने दृढ़ता से उसका प्रेम ठुकरा दिया। पार्वती ने हँसकर महेश से कहा कि यह वास्तव में विरह का जला हुआ है, आप इसकी आशा पूरी करें। यह सुनकर रत्नसेन ने शिव को पहचान लिया और वह दहाड़ मारकर रोने लगा। शिव ने दयालु होकर रत्नसेन को उपदेश दिया कि वह सिंघलगढ़ में चोरी से सेंध लगाकर चढ़े। उन्होंने

उसको सिंघलगढ़ में पहुँचने का सुरंग मार्ग और उस पर चढ़ने के लिए मन और श्वास मारने का तरीका भी बताया।

शिव से सिद्धि गुटिका पाते ही जोगियों ने सेंध लगाने के लिए सिंघलगढ़ को घेर लिया। राजा के भेजे दूतों ने जाकर जोगियों से कहा वे भिक्षा लें और अन्यत्र चले जाएँ। रत्नसेन ने उत्तर दिया कि उसे राजा की कन्या पद्मावती भिक्षा में चाहिए। जोगी की बात सुनकर दूत नाराज़ हुए और उन्होंने कहा कि राजा की कन्या उसके योग्य नहीं है। राजा ने उत्तर दिया कि वह योग के प्रभाव से राजकुमारी के योग्य है। दूतों ने लौटकर राजा को हाल सुनाया। राजा क्रोधित हुआ, लेकिन मंत्रियों ने उसे समझाया कि जोगियों को मारना अनुचित है। दूत जब बहुत समय तक लौटकर नहीं आए, तो रत्नसेन ने रक्त से पत्र लिखकर तोते के साथ पद्मावती को भेजा। उसने तोते के साथ पद्मावती के लिए मौखिक संदेश भी भेजा। तोता प्रेमपत्र लेकर विरह में व्याकुल पद्मावती के यहाँ पहुँचा। पद्मावती ने तोते से कहा कि वह रत्नसेन के विरह में व्याकुल है, लेकिन उसे उसकी कोई चिंता नहीं है। तोते ने कहा रत्नसेन भी उसके दृष्टिबाण से घायल है। तोते ने पद्मावती से शिकायत की कि वह रत्नसेन की ऐसा अवस्था के बावजूद उसके लिए चिंतित नहीं है। तोते ने रत्नसेन का पत्र पद्मावती को दिया और उसका मौखिक संदेश भी उसे सुनाया। तोते ने पद्मावती को यह बताया कि किस तरह रत्नसेन शिव के उपदेश पर सिंघलगढ़ में सेंध लगाने के लिए तत्पर है। पद्मावती ने तोते से कहा कि रत्नसेन अभी प्रेम में कच्चा है। उसे मरकर जीवित होने की कला में अभी और परिपक्व होना चाहिए। उसने सखी से सोने की स्याही मँगाकर रत्नसेन के पत्र का उत्तर लिखा। उसने रत्नसेन को लिखा कि वह प्रेम में अकेला नहीं है और कई हैं। वह सूर्य है, तो आकाश में चढ़कर जल्दी आए। उसने रत्नसेन को अपने प्रेम के संबंध में आश्वस्त किया। इधर रत्नसेन पद्मावती के विरह में जल रहा था। वह मूर्च्छित हो गया। तोता पद्मावती का पत्र उसके लिए संजीवनी बूटी की तरह लाया। पद्मावती का अपने प्रति प्रेम देखकर राजा प्रसन्न हुआ। राजा उत्साह के साथ शिव के बताए हुए समुद्र के सुरंग मार्ग से सिंघलगढ़ पर चढने लगा। उस गढ़ में सुरंग की चढ़ाई टेढ़ी थी, इसलिए प्रात:काल हो गया और गढ़ में पुकार मच गई कि चोर सेंध लगाकर चढ़ रहे हैं। यह जानकर कि जोगी सेंध लगाकर गढ़ में चढ़ रहे हैं, राजा ने न्याय पंडितों से पूछा, तो उन्होंने रत्नसेन को सूली पर चढ़ाने की राय दी। मंत्रियों ने कहा कि ये जोगी हैं, इसलिए इन्हें जीतने के लिए युद्ध करना चाहिए। सैना तैयार होने लगी। सैन्यदल देखकर रत्नसेन के साथियों ने जूझकर मरने का निश्चय किया। गुरु ने अपने चेलों को उपदेश दिया कि प्रेम के द्वार पर क्रोध नहीं करना चाहिए। राजा गंधर्वसेन ने सभी जोगियों को घेरकर पकड़

लिया। रत्नसेन अपने निश्चय पर क़ायम था। उसने कहा कि पद्मावती गुरु और वह चेला है। उसके कारण उसने योगमार्ग अपनाया है। जिस दिन वह मिलेगी, उसी दिन उसकी यात्रा पूरी होगी। यदि वह आरा भी चलाए, तो भी वह कटकर मरते हुए अपने अंग नहीं मोड़ेगा।

रत्नसेन के कष्ट की प्रतिक्रिया पद्मावती पर हुई। उस पर विरह का शोक छाया और उसके हर्ष का सरोवर सूख गया। उसका लाल रंग सफ़ेद हो गया और वह अचेत हो गई। पद्मावती की सखियाँ उसका उपचार करने लगीं। सखियों ने उसे धैर्य बँधाया। पद्मावती ने सखियों से कहा कि विरह उसका प्राण ले रहा है, इसलिए शीघ्र हीरामन को बुलवाओ। धाय तुरंत दौड़कर हीरामन को ले लाई। पद्मावती उसके समक्ष अपनी विरह वेदना कहकर फिर अचेत हो गई। उसकी नाड़ी देखकर हीरामन ने कहा कि वह प्रेम की बेल में उलझ गई है। सचेत होकर पद्मावती ने हीरामन से प्रिय से समागम करवाने की प्रार्थना की। हीरामन ने उसको धैर्य बँधवाया और बताया कि रत्नसेन को सूली देने के लिए ले जाया गया है, इसलिए उसका कष्ट उसको महसूस हो रहा है। पद्मावती ने निश्चय किया कि वह भी रत्नसेन के साथ स्वर्ग जाएगी। तोते ने पद्मावती से कहा कि वह गुरु है और रत्नसेन उसका चेला है। रत्नसेन की कहानी सुनकर पद्मावती ने उसको 'सिद्ध हुआ' मान लिया। रत्नसेन को सभी जोगियों सहित बाँध कर वहाँ लाया गया, जहाँ सूली थी। सिंघलगढ़ के सभी लोग उसे देखने के लिए एकत्र हुए। सभी ने रत्नसेन को उसका रूप देखकर उसकी जाति और जन्म के संबंध में पूछा, लेकिन उसने कहा कि तपस्वी, जोगी और भिखारी की कोई जाति नहीं होती, इसलिए उसे शीघ्र सूली दी जाए। अंतिम समय में अपने प्रिय का स्मरण करने के निर्देश पर उसने कहा कि वह हर श्वास में उसी का स्मरण करता है। इसी समय एक दसौंधी भाट ने गंधर्वसेन के समक्ष आकर रत्नसेन को भिक्षा में कन्या देने की बात कही। उसने चेतावनी दी कि जोगी से युद्ध करने पर महाभारत मच जाएगा। उसने रावण का दृष्टांत देकर गंधर्वसेन की निंदा की। राजा ने भाट से पूछा कि यह जोगी और वह भाट है, फिर वह जोगी के साथ कैसे है। भाट ने जोगी का परिचय देते हुए कहा कि वह चित्तौड़ के चौहान राजा चित्रसेन का पराक्रमी बेटा रत्नसेन है। भाट ने कहा कि हीरामन भी चित्तौड़ गया था और उसने रत्नसेन की सेवा की है, इसलिए उससे भी पूछ लिया जाए। राजा का क्रोध शांत हुआ और उसने हीरामन को बुलवाया। हीरामन ने भाट की बात की साक्षी दी। राजा को निश्चय हो गया कि रत्नसेन चौहान राजा है। उसने रत्नसेन को छोड़ देने की आज्ञा दी। फिर एक कटहा घोड़ा लाया गया। रत्नसेन को उसकी परीक्षा लेने के लिए घोड़े पर सवार होकर उसको फिराने के लिए कहा गया। रत्नसेन ने घोड़े

को फिरा दिया, जिससे सिंघल द्वीप के छत्तीसों कुल के सभी राजकुमार उसकी सराहना करने लगे। राजा ने निश्चय कि वह पद्मिनी रत्नसेन को देगा, जिससे सभी प्रसन्न हुए। जो बाजे युद्ध के लिए लाए गए थे, वे ही अब मंगलाचार में बजने लगे।

लग्न तय हुआ और विवाह की तैयारी होने लगी। रत्नसेन को जोगी वेश उतारकर राजा के वस्त्र पहनाए गए। रत्नसेन ने बारात चढ़ाकर राजमंदिर की ओर प्रस्थान किया। बारात देखने के लिए पद्मावती धवलगृह पर चढ़ी। सखियों ने उसको उसका वर दिखाया। सखियों ने उससे कहा कि वह चाँद जैसी है और उसका वर सूर्य जैसा है। पद्मावती ने रत्नसेन को देखा, तो उसके सब अंग आनंद से भर गए और वह मूर्च्छित हो गई। सखियों ने जब उससे इसका कारण पूछा, तो उसने बताया कि वह आसन्न बिछोह से दु:खी है। गाजे-बाजे के साथ बारात चित्रसारी में उतरी। बारात को भोजन में विविध प्रकार के व्यंजन परोसे गए। विवाह के लिए सोने का मंडप लगाया गया। विवाह का मंगलाचार होने लगा- मंत्रोच्चारण हुआ, फिर रत्नसेन और पद्मावती ने एक-दूसरे के गले में वरमालाएँ डालीं और भाँवरें पड़ीं। रत्नसेन को दहेज दिया गया और गंधर्वसेन ने उसको गले से लगाकर उसका सम्मान किया। वर-वधू को रहने के लिए धवलगृह में आवास दिया गया। रत्नसेन वहाँ अपने शयनागार में आया, जहाँ नवरत्नों की सेज सजाई गई थी। धवलगृह में सात खंडों के ऊपर कैलास था और सुखवासी में सोने की शय्या थी। उसकी चारों दिशाओं में हीरे और रत्नों से जड़े खंभे लगे हुए थे। पद्मावती की गाँठ खोलकर सखियाँ उसे शृंगार के लिए अलग ले गईं। रत्नसेन दिनभर पद्मावती के लिए तपता रहा- चार प्रहर का समय उसे चार युग की तरह प्रतीत हुआ। संध्या होते ही सखियाँ आ गईं और रत्नसेन से विनोद करने लगीं। सखियों ने स्नान के बाद पद्मावती की केश सज्जा की। सखियों ने उसे बारह आभूषण पहनाए और सोलह शृंगार करवाए। सखियों ने उसके बाद उससे विनय की कि अब रत्नसेन को विलंब नहीं कराना चाहिए और जिसने उसको अपना जी दिया है, उसे भी उसको अपना जी देना चाहिए। सेज का स्मरण कर पद्मावती मन में शंकित हुई। सखियों ने उसे मर्म समझाया। पद्मावती के सौंदर्य से उसके सब उपमान परास्त हो गए। सखियाँ पद्मावती को रत्नसेन के पास लेकर आईं। पद्मावती का विलक्षण रूप-सौंदर्य देखकर रत्नसेन मूर्च्छित हो गया। सखियों ने उसे जगाया। जागकर उसने पद्मावती की बाँह पकड़ी और वह उसे सेज पर लाया। पद्मावती ने रत्नसेन को जोगी कहकर बरजा। रत्नसेन ने उससे कहा कि वह उसके कारण ही राज्य छोड़कर जोगी हुआ है और उसके रंग में रंगा हुआ है। पद्मावती ने रत्नसेन को कहा वह उसको रंगा हुआ नहीं देखती। रत्नसेन ने उत्तर दिया कि वह उसके प्रेम में पीला पड़ गया है। पद्मावती ने कहा कि जोगी छलछंदी होते हैं और जोगी, भौंरा

और भिखारी को दूर से ही प्रणाम करना चाहिए। रत्नसेन ने विश्वास दिलाया कि उसका प्रेम सच्चा है। पद्मावती ने रत्नसेन का चौपड़-पासे में युगनद्ध खेल या सुरत केलि में युगनद्ध भाव के लिए आह्वान किया। रत्नसेन ने उत्तर दिया कि वह तो सदैव के लिए उसके साथ युगनद्ध हो चुका है। पद्मावती रत्नसेन की बात सुनकर हँसी। उसने कहा कि वह निश्चय ही उसके प्रेम में रंगा हुआ है। पद्मावती ने यह भी स्वीकार किया कि दोनों ही के मन में एक-दूसरे लिए समान उत्कंठा और प्रेम है। परस्पर सत्यभाव प्रकट करने के लिए दोनों में ऐसे कंठालिंगन हुआ, जैसे सोने में सुहागा मिला हो। वैसे भी क्रीड़ा में चतुर स्त्री चित्त में ज्यादा चिपटती है। पद्मावती और रत्नसेन का सेज पर विरह संग्राम (रति युद्ध) हुआ। संग्राम में सेज टूट गई और समस्त श्रृंगार बिखर गया। पद्मावती ने रत्नसेन से प्रार्थना की कि वह प्रेम की सुरा संयत मात्रा में ही पिए। रत्नसेन ने उत्तर दिया कि जहाँ यह है, वहाँ होश कहाँ है। सुबह सखियों ने पद्मावती को जगाया और हँस-हँसकर वे उससे सुहागरात के संबंध में पूछने लगीं। पद्मावती ने अपनी पराजय मान ली। उसने कहा कि उसने अपना समस्त श्रृंगार सहर्ष प्रियतम को सौंप दिया। सखियों ने पद्मावती के सुरत चिह्न देखकर उसको छबीली कहा। सखियाँ दौड़कर पद्मावती की माता चंपावती के पास गई और पद्मावती के सुहाग मर्दन की बात उसको बताई। चंपावती सभी पद्मिनी स्त्रियों को साथ लेकर वहाँ आई, जहाँ पद्मावती थी। चंपावती ने उसके केश और माँग को चूमा। सखियों ने पद्मावती को स्नान कराया और उसके शरीर पर चंदन का लेप किया, जिससे वह फिर प्रसन्न हो गई। उसके लिए कई वस्त्र और आभूषण लाए गए। रत्नसेन भी सभा में जाकर अपने साथियों से मिला। उसने उन्हें योग छोड़कर भोग की अनुमति दी। पद्मावती ने दिन में सखियों के साथ रहस और कौतुक किया और रात्रि में रत्नसेन के साथ फिर श्रृंगार युद्ध किया। दोनों ने छह ऋतुओं- बसंत, ग्रीष्म, पावस, शरद, शिशिर और हेमंत का सुख-भोग लिया।

नागमती चित्तौड़ में रत्नसेन को स्मरण कर उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। प्रिय वियोग में वह आकुल-व्याकुल थी। सखी ने उसे समझाया और धैर्य रखने के लिए कहा। उसने कहा कि अपने पहले प्रेम का स्मरण कर रत्नसेन उसके पास अवश्य लौटेगा। नागमती बारह महीनों के दौरान अलग-अलग तरह विरहग्रस्त रही। बारह माह तक घर में विरहग्रस्त रहने के बाद वह रत्नसेन की खोज में बाहर निकली। घर में परिजनों को पूछने के बाद वह पक्षियों से पति के समाचार पूछने लगी। उसके विरह से जंगल भी प्रभावित हुआ। नागमती को आधी रात एक पक्षी मिला, जिसको उसने अपना संदेश दिया। नागमती ने संदेश में कहा कि उसकी हड्डियाँ सूखकर किंगरी बन गई है, नसें सब ताँत हो गई हैं और शरीर के रोम-रोम से रत्नसेन की धुन

उठ रही है। रत्नसेन की माता पुत्र वियोग में अंधी और बूढ़ी हो गई। पक्षी संदेश लेकर सिंघलद्वीप की ओर चला, जिससे अग्नि उठ खड़ी हुई और सिंघल जलने लगा। पक्षी समुद्र के किनारे एक वृक्ष पर जाकर बैठा। रत्नसेन आखेट करते हुए इसी वृक्ष के नीचे अपना घोड़ा बाँधकर अकेला बैठ गया और पक्षियों की बातचीत सुनने लगा। उसने चित्तौड़ से नागमती का संदेश लेकर आए पक्षी की बात सुनी कि वह नागमती के विरह में काला हो गया है। यह सुनकर रत्नसेन ने पक्षी से पूछा कि वह कौन है और नागमती के विरह के संबंध में क्या जानता है। पक्षी ने रत्नसेन को उलाहना देते हुए कहा कि वह वाम (स्त्री) के योग में फँसकर अपनी पत्नी (दाक्षिण्य भाव) को भूल गया है। पक्षी ने उसको उसकी मरणासन्न बूढ़ी और अंधी माँ की दशा भी बताई। संदेश सुनाकर पक्षी उड़ गया। राजा उसे पुकारता रहा, लेकिन वह अलोप हो गया। राजा महल में लौटकर उदास हो गया। रत्नसेन का मन अब चित्तौड़ चला गया था। पद्मावती भी रत्नसेन को उदास देखकर उदास हो गई। रत्नसेन की यह दशा सुनकर गंधर्वसेन आया और उसने उससे उसकी इस दशा का कारण पूछा। रत्नसेन ने गंधर्वसेन की सराहना की पक्षी के संदेश की बात बताकर चित्तौड़ लौटने की आज्ञा माँगी। राजसभा ने रत्नसेन की प्रार्थना का समर्थन किया और राजा से उसे लौटने की अनुमति देने का अनुरोध किया। सभी के विचार से प्रस्थान की तैयारियाँ होने लगीं। पद्मावती ने यह सुना, तो वह धक रह गई। उसने अपनी सखियों का बुलाया और कहा कि वे उससे मिल लें, वह वहाँ जा रही है, जहाँ जाकर वापस आना नहीं होगा। यह सुनकर सखियाँ अत्यंत दु:खी हुई और उन्होंने उसको पति की आज्ञा का पालन और उसकी सेवा करने की शिक्षा दी। प्रस्थान के लिए दिशाशूल, जोगिनी चक्र और काल पर विचार किया गया।

पद्मावती की विदाई आरंभ हुई। माता-पिता और भाई के साथ नैहर सिंघल भी रो रहा था। गंधर्वसेन ने उसको दहेज में वस्त्र, माणिक्य, मोती और पद्मिनी कोटि की एक हज़ार दासियाँ दीं। रत्नसेन ने गाजे-बाजे के साथ पद्मावती को लेकर प्रस्थान किया। दहेज पाकर रत्नसेन को अभिमान हो गया। उसकी इसी दशा में समुद्र दान लेनेवाले याचक के रूप उसके सामने आकर खड़ा हो गया। उसने दान की सराहना करते हुए राजा से दहेज में प्राप्त द्रव्य का चालीसवाँ भाग दान में माँगा। राजा उस पर क्रोधित हो गया। उसने द्रव्य की सराहना की। समुद्र ने उत्तर में कहा कि धन किसी का नहीं होता, यह पिटारे में बंद साँप की तरह है। समुद्र में अंधड़ उठा, जिससे जहाज़ों की दिशा बदल गयी। विभीषण का एक केवट राक्षस मछलियों का शिकार करते हुए उनकी ओर आया। उसने रत्नसेन की सराहना की और उसकी सहायता करने का प्रस्ताव रखा। राजा ने विश्वास करके उसे अपना केवट बना लिया। राक्षस

ने अपनी सराहना की और काम के लिए दान माँगा। उसने छल करके जहाज़ों को एक भँवर में डाल दिया। राजा ने क्रोधित होकर उसे डाँटा-फटकारा, तो उसने अपना भेद खोल दिया। उसी क्षण एक राजपक्षी झपटा और राक्षस को लेकर उड़ गया। जहाज़ों के टुकड़े-टुकड़े हो गए। राजा रत्नसेन और रानी पद्मावती, दोनों लकड़ी के पट्टों को पकड़े हुए अलग-अलग मार्ग में बह गए। रानी पद्मावती मूर्च्छित अवस्था में समुद्र की बेटी लक्ष्मी के घाट पर जाकर लगी। लक्ष्मी ने बत्तीस लक्षणों वाली पद्मावती को देखकर उससे उसका नाम और धाम पूछा। पद्मावती ने सचेत होकर अपने पति के संबंध में पूछा। पति को नहीं पाकर, वह व्याकुल हो गई। उसने कहा कि उसके पति उसके हृदय में कमल की तरह हैं, फिर भी दूर हैं। पद्मावती सती होने के लिए तैयार हो गई। लक्ष्मी ने उसको समझाया कि उसका पति जीवित है और उसके पिता समुद्र उसकी खोज करेंगे। लक्ष्मी ने अपने पिता समुद्र को सारी बात बताई। समुद्र ने कहा कि रत्नसेन उसके शरीर में है और वह कल उसको पद्मावती से मिला देगा।

राजा बहता हुआ कपूर और मूँगे के एक ऊँचे पर्वत के पास जाकर लगा। वहाँ कोई नहीं था। राजा दु:खी होकर विलाप करने लगा। निराश होकर उसने सोचा कि वह किस देवता की शरण में जाए। उसने अंत में भगवान को स्मरण किया और पद्मावती से मिलवाने की विनय की। उसने कटार निकालकर आत्महत्या का प्रयास किया। उसी समय समुद्र ब्राह्मण के रूप में प्रकट हुआ। उसने रत्नसेन को आत्महत्या करने से रोककर इसका कारण पूछा। रत्नसेन ने कहा कि यहाँ आकर उसने अपना द्रव्य और पद्मावती, सब खो दिया है। ब्राह्मण ने कहा इसमें दु:खी होने का कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि जो जिसका था, उसके पास चला गया। रत्नसेन ने कहा कि वह अपनी हत्या का अपराध समुद्र के मत्थे मढ़ कर उससे झगड़ेगा। समुद्र ने उससे कहा कि प्रेम का लोभी बावला अंधा होता है। राजा समुद्र के साथ हो गया। समुद्र उसे उस घाट पर ले गया, जहाँ पद्मावती थी। उधर पति वियोग में पद्मावती सूख रही थी। लक्ष्मी पद्मावती का वेश बनाकर रत्नसेन के सम्मुख प्रस्तुत हुई। उसको देखते ही रत्नसेन ने मुँह फेर लिया। लक्ष्मी ने रत्नसेन को पद्मावती से मिलवाया। दोनों एक-दूसरे को देखकर प्रसन्न हुए। पद्मावती ने रत्नसेन के चरणों को अपने आँसुओं से धोया। दोनों ने समुद्र और लक्ष्मी से भेंट की। लक्ष्मी ने भेंट में पान का बीड़ा दिया, जिसमें उत्तम रत्न और हीरे भरे थे। उसने भेंट में पाँच विशेष रत्न भी दिए, जो असाधारण कोटि के थे। भेंट देकर लक्ष्मी और समुद्र लौट गए और रत्नसेन-पद्मावती भी जगन्नाथपुरी में आ गए। जगन्नाथपुरी में आकर राजा को महसूस हुआ कि उसकी पूँजी नष्ट हो गई है और उसकी गाँठ में कुछ नहीं रहा। पद्मावती ने लक्ष्मी के दिए

बीड़े से एक रत्न निकालकर राजा को दिया, जिससे उसके पास फिर से धन हो गया। राजा ने सेना जोड़कर अपने घर चित्तौड़गढ़ की ओर प्रस्थान किया।

राजा रत्नसेन पद्मावती सहित चित्तौड़ के निकट पहुँच गया। नागमती को किसी अदृश्य शक्ति ने राजा के आने की पूर्व सूचना दी। वह बहुत प्रसन्न हुई। तभी भाट ने आकर राजा के आगमन सूचना दी। सभी परिजन आनंदित होकर राजा के स्वागत के लिए गए। राजा ने आकर अपनी माँ से भेंट की। पद्मावती का विमान दूसरे राजमंदिर में उतारा गया। चारों और यह बात फैल गई कि राजा पद्मावती लाया है। रात में राजा नागमती के पास आया, तो वह मुँह फेरकर बैठ गई। राजा ने उसको समझाया कि वह उसकी प्रथम विवाहिता है, इसलिए उसको उससे अप्रसन्न नहीं होना चाहिए। दोनों में मान और प्रेम की बातें हुईं। सुबह रत्नसेन पद्मावती के पास गया। पद्मावती ने उसे उलाहना दिया। राजा ने उसे विश्वास दिलाया कि वह उसकी जीव और प्राण है और उसके हृदय में कमल होकर बसी हुई है। नागमती सखियों के साथ अपनी फुलवारी में क्रीड़ा करने लगी। दूतियों ने पद्मावती के पास जाकर फुलवारी की ब्याज स्तुति (निंदा) की। यह सुनकर पद्मावती ने भी वहाँ पहुँचकर फुलवारी की ब्याज स्तुति (निंदा) की। नागमती ने इसका उत्तर दिया। पद्मावती ने फुलवारी की त्रुटियाँ बताकर इसका कारण पूछा, तो उत्तर में नागमती ने उस पर कटाक्ष किया। पद्मावती ने कहा कि वह अपने प्रियतम की प्यारी है। नागमती ने कहा कि राजा की सच्ची रानी तो वही है, पद्मावती तो जोगी की स्त्री है। पद्मावती ने नागमती को विषभरी काली नागिन या अँधेरी रात कहा। नागमती ने क्रोध में जलकर पद्मावती को कहा कि पति के कारण तेरी जीत हुई है। पद्मावती ने उत्तर दिया कि वह अपने रूप से सबको जीत चुकी है। नागमती ने अपने को शक्तिशाली बताकर कहा कि उसके लिए पद्मावती की मृत्यु खेल की तरह है। क्रोध में दोनों एक-दूसरे से भिड़ गईं। राजा के पास उसकी सूचना पहुँची, तो वह आया और उसने दोनों को समझाया कि तुम दोनों गंगा-जमुना के समान हो और तुम दोनों का संगम लिखा है।

राघवचेतन विद्वान् और चौदह विद्याओं का ज्ञाता था। वह राजा रत्नसेन का कृपापात्र बन गया। दोयज तिथि के संबंध में राघवचेतन और दरबार के पंडितों में मतभेद हो गया। पंडितों के दोयज कल होने के बात सही निकली। राजा इससे अप्रसन्न हो गया और उसने रत्नसेन को देश निकाला दे दिया। पद्मावती ने जब यह सुना, तो वह चिंतित हुई। उसने राघवचेतन को बुलवाया। वह झरोखे में आई और उसने अपना एक कंगन दान में राघवचेतन को दिया। पद्मावती के रूप-सौंदर्य को देखकर राघवचेतन अचेत हो गया। उसका शरीर विष से प्रभावित शरीर जैसा हो गया। उसका चित्त आकुल-व्याकुल था। पद्मावती की सखियों ने उसको समझाया। राघवचेतन सचेत

हुआ और उसने निश्चय किया कि वह दिल्ली जाकर अलाउद्दीन ख़लजी के पास पद्मावती के रूप की बात पहुँचाएगा। राघवचेतन चित्तौड़ से प्रस्थान कर दिल्ली पहुँचा। अलाउद्दीन ख़लजी के यहाँ पहुँचकर उसने वहाँ का वैभव देखा। शाह ने ब्राह्मण का आगमन सुनकर उसको बुलवाया। उसने बादशाह को सिर झुकाकर आशीर्वाद दिया। उसके हाथ में कंगन देखकर शाह ने उसके संबंध में पूछा। राघवचेतन ने पद्मावती के रूप-सौंदर्य की चर्चा करते हुए कहा कि वह सारे संसार की मणि है और यह कंगन उसे उसी ने दिया है। शाह ने कहा कि पद्मिनी स्त्रियाँ तो उसके महल में हैं। राघव ने उत्तर दिया कि ऐसी पद्मिनी स्त्री, जिसके चारों भँवरे फिरते हों, शाह के महल में नहीं है। यह कहकर उसने हस्तिनी, शंखिनी, चित्रिणी और पद्मिनी स्त्रियों के लक्षण और गुण बताए। उसने इसके बाद उसने चित्तौड़ की पद्मिनी का नखशिख वर्णन शुरू किया और कहा कि वह उसके रूप से आहत हो गया है। उसने पद्मिनी की वेणी, माँग, ललाट, भौंह, नेत्र, नासिका, अधर, दाँत, रसना, कान, कपोल, ग्रीवा, भुजाएँ, स्तन और कटि और उनकी सुकुमारता का वर्णन किया। वर्णन सुनकर शाह मूर्च्छित हो गया। उसने निश्चय किया कि वह पद्मिनी प्राप्त करेगा। उसने राघवचेतन का धन, मणि-माणक और आजीविका देकर सम्मान किया। उसने शक्तिशाली सुरजा को पत्र देकर चित्तौड़ भेजा। पत्र में उसने लिखा कि सिंघल की पद्मिनी, जो रत्नसेन के पास है, उसे शीघ्र वह अपने यहाँ चाहता है।

पत्र सुनकर रत्नसेन क्रोध में जल उठा। उसने कहा कि शाह बड़ा है, लेकिन उसकी यह माँग अनुचित है। सरजा ने राजा को शांत रहने के लिए कहा, लेकिन राजा ने स्पष्ट कहा कि पद्मावती की माँग से भीषण युद्ध होगा, अन्यथा वह शाह की सेवा के लिए तैयार है। सरजा ने शाह की शक्ति का बखान किया। उसने कहा कि शाह ने उदयगिरी को जीता और देवागिरी को जीतकर वहाँ की राजकुमारी छिताई ले ली। राजा ने कहा कि शाह से जाकर कहो कि वह मरने के लिए नहीं दौड़े, नहीं तो उसकी भी वही गति होगी, जो सिकंदर की हुई थी। सरजा दिल्ली लौट गया। रत्नसेन का उत्तर सुनकर शाह क्रोधित हुआ। उसने पत्र भेजकर सभी अमीर-उमरा बुलाए और युद्ध की घोषणा कर दी। युद्ध के बड़े नगाड़े पर चोट पड़ते ही इंद्र डर गया, मेरू डगमगाया और शेषनाग अँगड़ाई लेने लगा। शाह की अश्वसेना ने प्रस्थान किया। सेना के हाथी भी चले। कई देशों के सैन्य दल शाह की सहायता के लिए आए। शाही सैनिक वीर वेश धारण किए हुए थे। शाही सेना के कूच करने से गढ़ हिल उठे और गढ़पति काँप गए। शाह की चढ़ाई की ख़बर पाकर रत्नसेन ने भी हिंदू राजाओं को अपने साथ आने के लिए पत्र भेजे। रत्नसेन ने अपना सैन्यदल तैयार किया। तोमर, बैस, पँवार, गहलोत, खत्री, पंचबान, बघेल, अगरवार, चौहान, चंदेल,

गड़हवाल और प्रतिहार- सभी राजा एकत्र हुए। चित्तौड़गढ़ में युद्ध की सभी सामग्री का संचय किया गया। बादशाह ने चित्तौड़गढ़ पर आक्रमण का आदेश दिया। नब्बे लाख सवारों के साथ उसने चढ़ाई की। तोपें भी साथ में चलीं, जिनके मुँह में गोले रखे हुए थे। तोपों से भीषण विनाश हुआ। सैनिकों के कूच से इतनी धूल उड़ी कि दिन में रात जैसा अँधेरा छा गया। राजा, राव और रानियों ने गढ़ के ऊपर से शाह सेना का कूच देखा। राजा ने मंत्रणा की और निश्चय किया कि अब मरने के लिए युद्ध करना है। उसकी आज्ञा पाकर सैना तैयार हो गई। उसकी सेना के ऊँचे घोड़े और हाथी देखने में मेघ लगते थे। सेना में रथ, ध्वजा आदि को यथास्थान रखा गया। शाह और रत्नसेन की सेनाएँ एक-दूसरे से भिड़ गईं। हाथी, हाथियों से भिडकर ऐसे गरजते थे मानो पर्वत से पर्वत टकराते हों। पैदल सैनाएँ भी एक-दूसरे से जूझने लगीं। ऐसा संग्राम हुआ, जैसा पहले कभी नहीं हुआ। युद्धभूमि में मांस खानेवाले भूत-प्रेत आदि एकत्र हो गए। शाह ने सामने से हाथियों से और पार्श्व में पैदल सेना से आक्रमण किया। रत्नसेन ने निश्चय किया कि दुर्ग से बाहर मैदान में लड़ना उसके लिए हितकार नहीं है, इसलिए वह दुर्ग में चला गया। राजा के दुर्ग में चले जाने पर शाही सेना ने फैलकर दुर्ग को घेर लिया। रात में शाही सेना दुर्ग पर अग्नि वर्षा की और दिन में उस पर निरंतर बाण चलाए। शाही सेना की बारूद की सुरंग और तोपों की मार से गढ़ का कोट टूट गया। रात्रि होते ही राजा ने कोट की मरम्मत करवा दी। गढ़ के ऊपर से शाही सेना और तोपों पर पत्थर के गोले बरसने लगे।

राजा रत्नसेन ने जहाँ, शाह ठहरा हुआ था, उसके सामने दुर्ग में अखाड़े और नृत्य का आयोजन किया। शाह के आदेश पर बाण चलाए गए, जो कोई कहीं, तो कोई कहीं लगा। कन्नोज के राजा मलिक जहाँगीर का बाण नर्तकी को लगा और वह धराशायी हो गई। शाह ने गढ़ के चारों ओर बाँध बाँधना शुरू किया। राजा रत्नसेन ने सभा में मंत्रणा की और जौहर का निश्चय किया। आठ वर्ष दुर्ग घिरा रहा। शाह ने आकर जो बगीचे लगाए, वे फल गए और झर गए, पर गढ़ नहीं लिया जा सका। अंततः शाह ने राजा को सम्मान देकर परास्त करने की बात सोची। उसने सरजा के साथ यह संदेश गढ़ में भेजा कि वह पद्मावती नहीं लेगा, यदि रत्नसेन समुद्र से मिले पाँच रत्न उसको दे दे। सरजा ने गढ़ में जाकर राजा से कहा कि यह बात मान लो और सिर नवाकर शाह की सेवा करो। राजा ने अपने साका करने के निश्चय के संबंध में बताया। राजा रत्नसेन सरजा की मीठी बातों में आ गया और पाँच रत्न और अपने भंडार की सामग्री देने की बात उसने स्वीकार कर ली। सरजा दूतों को लेकर शाह के पास गया। अधीनता नहीं स्वीकार करनेवाले राजाओं के प्रति शाह ने तिरस्कारपूर्ण बातें कहीं। दूतों से शाह के गढ़ में आगमन की सूचना मिलने पर

राजा ने रसोई तैयार करने का आदेश दिया। कई तरह सामिष और निरामिष व्यंजन तैयार किए गए, तरकारियाँ और मिठाइयाँ बनाई गईं। सभी रसोई करने में पानी की सहायता ली गई, क्योंकि पानी सबका मूल है। सवेरा होते ही शाह चित्तौड़गढ़ देखने आया। सरजा और राघवचेतन उसके साथ थे। गढ़ का द्वार खोल दिया गया, जिसमें शाह प्रविष्ट हुआ। शाह ने ऊपर चढ़कर गढ़ देखा और वहाँ की सामग्री और सज्जा देखकर आश्चर्यचकित रह गया। शाह ने गढ़ की बस्ती देखी। देखते हुए शाह वहाँ पहुँचा, जहाँ पद्मावती का महल था। सात दरवाज़े लाँघकर शाह बसंती फुलवारी में पहुँचा। वहाँ शाह अपने लिए बिछाए हुए आसन पर बैठ गया, लेकिन उसका मन वहाँ था, जहाँ पद्मावती थी। रानी पद्मावती धवलगृह के ऊपरी भाग में सखियों के साथ बैठी हुई थी। शाह के स्वागत में कई तरह के नृत्य–नाटक और गायन के आयोजन हुए, लेकिन उसको यह सब बखेड़ा लग रहा था। उसका ध्यान तो पद्मावती में था।

रत्नसेन के विश्वस्त गोरा और बादल ने उससे प्रस्ताव किया कि शाह को छल से बंदी बना लिया जाए। राजा को यह बात अच्छी नही लगी– उसने भलाई की नीति पर रहने का आग्रह किया। राजा की 1600 दासियों में से, जो चौरासी दासियाँ शृंगार कर शाह की सेवा में लगी हुई थीं, उनको देखकर शाह ने राघव से पूछा कि इनमें से पद्मावती कौन है। राघव ने कहा कि नीची दृष्टि किए बिना उसे पद्मावती के दर्शन नहीं होंगे। दासियों ने शाह को भोजन परोसा, लेकिन उसकी रुचि इसमें नहीं थी। वह तो पद्मावती पर आसक्त था। भोजन के बाद दासियों ने उसके हाथ धुलवाए। भोजन ख़त्म हुआ, तो राजा ने सौ थालों में भरकर अमूल्य रत्न शाह को भेंट किए और उससे कृपा की प्रार्थना की। शाह ने उस पर कृपा करने का आश्वासन दिया। उसने उसको मांडवगढ़ दिया। राजा प्रसन्न हो गया और दोनों शतरंज खेलने लगे। शाह ने वहाँ अपने पाँवों की तरफ़ दर्पण रख लिया। उसे आशा थी कि पद्मावती जब खेल देखने झरोखे में आएगी, तब वह उसको देख पाएगा। दासियों ने पद्मावती से आग्रह किया कि वह एक बार शाह को देख ले। पद्मावती ने झरोखे में आकर जैसे ही नीचे देखा, दर्पण में शाह ने उसे देख लिया। वह बेहोश हो गया। राघवचेतन ने यह कहकर कि शाह को सुपारी लग गई है, उसको शय्या पर सुला दिया। शाह रात बीतने पर सुबह जब उठा, तो उसके पास पद्मावती नहीं थी, लेकिन उसकी सुंदरता उसके मन में बसी हुई थी। राघवचेतन ने शाह से विलंब से जागने का कारण पूछा, तो शाह ने कहा रात्रि में जो उसने देखा उससे उसको राहु का ग्रास लग गया है। राघव ने कहा कि शाह ने निश्चय ही पद्मावती के दर्शन किए हैं। शाह ने विमान में बैठकर प्रस्थान किया। शाह की कृपा की बातें सुनकर राजा फूल गया। धोखे में वह भी शाह को छोड़ने के लिए उसके साथ चला। शाह ने स्नेह प्रकट करते हुए राजा

का कंधा पकड़ लिया। गढ़ से बाहर निकलते ही उसने राजा को बंदी बना लिया। उसको अपने यहाँ लाकर लोहे की हथकड़ी और बेड़ी पहना दी। यह समाचार सुनकर चित्तौड़गढ़ में भगदड़ और खलबली मच गई। शाह राजा को बंदी बनाकर दिल्ली लौट गया। बंदीगृह में राजा को कई यंत्रणाएँ दी गईं। दो व्यक्ति पूछताछ के लिए आए-उन्होंने अधिक यंत्रणा का भय दिखाकर राजा से प्रश्न किए। राजा ने कोई उत्तर नहीं दिया। राजा को यंत्रणाएँ दी गईं- उसके शरीर को गरम संडासियों से दागा गया। राजा के बिना पद्मावती ऐसे दुःखी हुई जैसे कमल की बैल जल के बिना सूखने लगती है। वह विरह में जलने लगी।

कुम्भलनेर का राजा देवपाल रत्नसेन का शत्रु था। जब उसने सुना कि रत्नसेन बंदी हो गया है, तो उसने छल से पद्मावती को पाने की योजना बनाई। उसने इसके लिए ब्राह्मण जाति की कुमुदिनी नामक बूढ़ी दूती को पद्मावती के पास भेजा। कुमुदिनी कई तरह की उपहार सामग्री लेकर पद्मावती के पास गई और उसने अपने को उसकी धाय बताया। पीहर से कोई आया है, यह जानकर पद्मावती ने उसके गले लगकर विलाप किया। दूती ने उसके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की, लेकिन पद्मावती ने उसके उपहारों को छूकर भी नहीं देखा। दूती ने रात्रि में भोग और श्रृंगार की बात चलाकर पद्मावती से जब तक यौवन है उसका भोग करने के लिए कहा। पद्मावती ने उससे कहा कि उसका श्रृंगार तो पति के साथ ही चला गया। दूती ने कहा कि यौवन अस्थिर है, इसलिए उसका जितना भोग किया जाए, उतना ही लाभ है। पद्मावती उससे क्षुब्ध हुई और उसने कहा कि वह अपना छोड़कर पराए की तरफ़ नहीं झुकेगी और एक आसन पर दो राजा नहीं हो सकते। दूती ने उससे कहा कि वह रसोई किस काम की, जिसमें दूसरे प्रकार के पदार्थ न हो और भौंरा तो अनेक फूलों की गंध लेता ही है। पद्मावती ने कुमुदिनी को फटकारते हुए कहा कि वह धाय नहीं, उसकी बैरिन है और वहाँ उसके मुँह पर कालिख पोतने आई है। दूती ने कहा कि कालिख (काजल) भी श्रृंगार है और राजा देवपाल तो शोभावर्धक स्याही (कालिख) है। देवपाल का नाम सुनते ही पद्मावती ने आँखे तरेर कर कहा कि वह उसके प्रियतम का शत्रु है। पद्मावती के संकेत पर दासियों ने दूती को पीटकर राजद्वार से बाहर निकाल दिया।

पद्मावती ने रत्नसेन की मुक्ति के लिए धर्मसत्र (दान-पुण्य) शुरू किया, यह जानकर बादशाह ने एक पातुर (वेश्या) को जोगिन के रूप में चित्तौड़गढ़ भेजा। वह भिक्षा माँगती हुई राजद्वार पर आई। पद्मावती के पूछने पर उसने बताया कि पति वियोग में उसने जोगिन का भेष ले लिया है और वह जगह-जगह जाकर अपने प्रियतम को खोज रही है। उसने कहा कि उसने दिल्ली में रत्नसेन को बंदी और यातना पाते

हुए देखा है। पद्मावती ने जोगिन से अनुरोध किया कि वह उसको भी अपनी चेली बना ले। सखियों ने पद्मावती को प्रियतम को पाने के लिए जोगिन का बाहरी स्वांग करने से मना किया। उन्होंने उसको रत्नसेन की मुक्ति के लिए गोरा-बादल के पास जाने के लिए कहा। सखियों की बात मानकर पद्मावती गोरा-बादल के पास गई। उसको देखकर दोनों योद्धा बाहर आए और कहा कि उनके प्राण पद्मावती के कार्य के लिए है। पद्मावती ने रोकर अपने सब समाचार गोरा-बादल को सुनाए। उसने रत्नसेन को मुक्त करवाने अपने निश्चय के संबंध में उनको बताया। गोरा-बादल, दोनों ही उसकी व्यथा सुनकर पसीज गए। उन्होंने रत्नसेन को छुड़ाने का प्रण किया। पद्मावती ने दोनों को यह कार्य करने के लिए पान का बीड़ा दिया और कहा कि जैसे हनुमान ने राम को बंधन से छुड़ाया था, वैसे ही तुम राजा को छुड़ाकर हम दोनों को मिलाओगे। गोरा और बादल ने बीड़ा ले लिया। पद्मावती उत्साहित मन के साथ अपने महल में आ गई। उसके जाने बाद बादल की माता यशोवती ने आकर उसके पैर पकड़ लिए। उसने उसको समझाया कि वह अभी बालक है और शाह बहुत शक्तिशाली है। वह पृथ्वीपति है और उसकी सेना में छत्तीस लाख घोड़े और बीस हज़ार हाथी हैं, इसलिए उसके साथ वह युद्ध नहीं कर पाएगा। बादल ने कहा कि वह बालक नहीं है और पाताल में भी प्रवेश कर राजा को छुड़ाएगा। बादल ने जैसे ही युद्ध की तैयारी की कि उसका गौना आ पहुँचा। उसकी नववधू ने उससे घर पर ही रहने का आग्रह किया। उसने उसके पैरों में पड़कर विनय की कि वह आज ही गौने आई है, इसलिए वह रण में नहीं जाए। उसने शृंगार को ही वीर रस के रूप में पति के सामने रखा, लेकिन बादल नहीं पसीजा, वह अपने निश्चय पर क़ायम रहा।

गोरा और बादल ने रत्नसेन को मुक्त करवाने के लिए मंत्रणा की। सोलह सौ चंडोल (पालकियाँ) तैयार किए गए, जिनमें शस्त्र सज्जित राजपूत सरदारों का बैठाया गया। पद्मावती के नाम से एक विमान तैयार कराया गया, लेकिन उसके भीतर एक लौहार बैठाया गया। यह प्रचारित किया गया कि इसमें पद्मावती है और वह अपने को बंधक रखकर राजा को छुड़ाने के लिए सखियों सहित जा रही है। चंडोल रवाना किए गए और उनके साथ गोरा-बादल भी चले। गोरा ने दिल्ली पहुँचकर बंदीगृह के प्रभारी को दस लाख रुपए की घूस देकर उससे प्रार्थना की कि वह बादशाह को जाकर कहे कि रानी चित्तौड़ के दुर्ग की कुंजी रत्नसेन को सौंपकर आपके महल में आना चाहती है, इसलिए उसे एक घड़ी रत्नसेन से मिलने की आज्ञा दी जाए। प्रभारी ने ऐसा ही किया। शाह ने आज्ञा दे दी। पद्मावती का विमान वहाँ आया, जहाँ राजा बंदी था। विमान से निकलकर लोहार ने राजा के बंधन काट दिए। राजा घोड़े

पर चढ़ा, गोरा-बादल ने तलवारें निकाल लीं और वे सरदारों सहित वहाँ से चित्तौड़गढ़ की ओर चल दिए। बादशाह के पास जब यह सूचना पहुँची, तो उसने चढ़ाई कर दी। बादल ने गोरा से कहा कि वह शाह की सेना को रोकेगा, तब तक गोरा राजा को ले जाए। गोरा ने कहा कि वह अपनी उम्र पूरी कर चुका है और सभी भोग भी भोग चुका है, इसलिए बादल राजा को ले जाए, वह शाह की सेना से जूझेगा। गोरा राजा को बादल के साथ रवाना कर स्वयं शाह की सेना से भिड़ गया। उसने गर्जना कर कहा कि वह युद्ध को चौगान के खेल की तरह खेलेगा। जैसे घटाएँ उमड़ती हैं, वैसे सेनाएँ एकत्र हुईं। तलवारें चमकने लगीं और बाणों की झड़ी लग गई। गोरा ने युद्धभूमि में अंगद की तरह पाँव जमा दिए। शाही सेना का सेलों से एक साथ घनघोर धावा हुआ और इधर गोरा ने भी अपना हाथी पेल दिया। एक घड़ी तक युद्ध होता रहा और जितने भी सरदार थे वे सब काम आए। गोरा अकेला रह गया। वह बहुत देर तक अकेला ही जूझता रहा। शाह की आज्ञा पर शाही सेना ने गोरा को घेर लिया। वीर सरजा ने साँगी भारी, जो गोरा के पेट में घुस गई। फिर उसने ज़ोर लगाकर उसको खींचा, जिससे गोरा की आँतें धरती पर आ गिरीं। गोरा सिंह के समान झपटा और तलवार से उसने सरजा पर वार किया, जो उसकी साँगी पर लगा। गोरा ने उसके फ़ौलादी टोप और गर्दन पर वार किए, लेकिन वह बच गया। सरजा ने क्रोधित होकर गुर्ज चलाई, जिससे गोरा के शरीर का पंजर टूट गया और उसका सिर टूटकर चूर हो गया। गोरा का रणभूमि में अंत हुआ। बादल राजा को लेकर बढ़ गया और चित्तौड़ के निकट पहुँच गया।

रत्नसेन की मुक्ति और आगमन का समाचार सुनकर पद्मावती बहुत प्रसन्न हुई। राजा के स्वागत के लिए सेना चली। राजमंदिर में सिंहासन सजाया गया और बधाई के बाजे बनने लगे। पद्मावती ने सभी रानियों और सखियों के साथ प्रियतम का स्वागत किया। राजा के चरण स्पर्श करने के बाद पद्मावती ने बादल की आरती की। गाजे-बाजे के साथ रत्नसेन आकर सिंहासन पर बैठा। रात्रि को क्रीड़ा के बाद राजा ने कारागार में दी गई यातनाओं के संबंध में पद्मावती को बताया। उसने कहा कि उससे मिलने की आशा में ही उसके प्राण शेष हैं। पद्मावती ने अपने वियोग के संबंध में रत्नसेन को बताया और कहा कि किस तरह देवपाल ने छल से दूती भेजकर उसको लुभाने की कोशिश की। देवपाल की इस चाल से राजा को बहुत वेदना हुई। उसने कोप कर देवपाल को पकड़कर लाने का निश्चय किया। उसे रातभर नींद नहीं आई। सुबह होते ही उसने कुंभलनेर को घेर लिया। दोनों आमने-सामने होकर लड़ने लगे। देवपाल ने विष बुझी हुई सांगी फेंकी, जो रत्नसेन की नाभि को बेधती हुए उसकी पीठ में निकल गई। राजा ने भी उस पर प्रहार किया, जिससे उसकी गर्दन टूट गई

और धड़ अलग जा गिरा। रत्नसेन जीवित लौटा, लेकिन उसका आयुबल क्षीण हो चुका था। उसको खाट पर डालकर घर लाया गया। उसने अपने पीछे दुर्ग बादल को सौंप दिया और फिर उसके प्राण निकल गए। पद्मावती ने नई साड़ी पहनकर सती वेष धारण किया। पद्मावती और नागमती, दोनों रानियाँ राजा के शव के साथ विमान में बैठ गईं। चिता सजाई गई और दान-पुण्य किया गया। अर्थी चिता पर रखी गई। दोनों रानियाँ प्रियतम को कंठ से लगाकर चिता पर लेट गईं। उन्होंने कहा कि वे और रत्नसेन, दोनों लोकों में साथ निभाएँगे। पति का कंठालिंगन कर दोनों रानियों ने आग लगाई और वे जलकर राख हो गईं। वे जब तक सती हुईं, तब तक बादशाह ने आकर दुर्ग को घेर लिया। उसको वहाँ पहुँचकर जब सब हाल मालूम हुआ, तो उसने कहा कि रात-दिन, जिसको रोका था, वही हो गया। उसने एक मुट्ठी राख उठाई और 'यह पृथ्वी झूठी है' कहते हुए हवा में उड़ा दी। शाह की सेना ने दुर्ग पर आक्रमण किया। बादल आगे बढ़कर सामना करते हुए काम आया। स्त्रियों ने जौहर कर लिया और पुरुष लड़ते हुए मृत्यु को प्राप्त हुए। बादशाह ने गढ़ ध्वस्त कर दिया और चित्तौड़ इस्लाम के अधीन हो गया।

परिशिष्ट

शब्दार्थ सूची

शब्दार्थ सूची

1. यहाँ संकलित शब्दों में कहीं-कही एक ही शब्द एकाधिक रूपांतर में है। संस्कृत के समानांतर विकसित देशभाषाओं में यह प्रवृत्ति मिलती है।
2. यहाँ संकलित शब्दों में से कुछ में 'ख' को 'ष' की तरह लिखा गया है। यह उपलब्ध मूल पाठ के अनुसार है। यह प्रवृत्ति ख़ासतौर पर मध्यकालीन डिंगल और राजस्थानी में मिलती है।
3. प्राकृत, अपभ्रंश और परवर्ती देशभाषाएँ बहुत हद तक संयोगात्मक थीं, इसलिए यहाँ संकलित शब्दों में से कुछ में विभक्ति संयुक्त है।

अंखित्रय = त्रिनयन, शिव
अंजस = गर्व
अंतेवर = अंत:पुर
अंदर = इंद्र
अंबषास = दरबार
अंबारी = हाथी के ऊपर बैठने का स्थान
अंभै = आकाश
अउरति = औरत
अओसर = अवसर
अकतीयार = अख़्तियार, विश्वास
अकलि = अक्ल
अक्यारथ = अकारथ, व्यर्थ
अखौ = देखा
अगंजित = अपराजेय
अघेरा = आगे
अचरिज = आश्चर्य
अच्छाहु = उत्साह
अजूआलउ = उजाला
अझलखउ = उत्तेजित
अटकळी = अनुमान
अटवी = वन
अडीलो = पीछे पाँव नहीं देने वाला, हठीला
अडउ = टेक, सहारा
अणख = ईर्ष्या, क्रोध, नाराज़गी
अणजाणिउ = अनजान
अणदोह = दु:ख, उदास
अणरुचति = अच्छी नहीं लगनेवाली
अणसरउं = अनुपालना करूँ
अणियाले = तीक्ष्ण
अणुहारि = के समान
अतनु = कामदेव
अतर = इत्र
अथग = स्थिर

अथाग = अथाह, गहरा, सीमा रहित, असीम
अध = नीचे
अनइ = और
अनड़ = नहीं झुकनेवाला
अनतो = नि:शंक
अनम्म = अनम्य
अनिरुत्ती = अनुरक्त
अनुक्रमें = क्रमशः
अनेसो = अंदेशा, आशंका
अन्याम = ईनाम
अपछर = अप्सरा
अपूठ्ठ = उल्टा, पीठ करके
अप्पी = दी
अबीह = निर्भय
अभयो = निर्भय
अमनें = मुझे
अमरस = अप्रसन्न, नाराज़
अमलह = अमल, अफीम
अमहलि = अंत:पुर
अमास = आवास
अमीणो = हमारा
अमोषो = सौभाग्य
अरग = अर्क
अरदास = विनय, प्रार्थना
अर्क = सूर्य
अलघो = दूर
अलूणी = नमक रहित
अलोपी = लुप्त, गायब
अवधारि = विचार करो
अवरत = औरत
अवलीबाण = शक्तिशाली
अवल्लं = प्रथम श्रेणी

अवसाण = अवसर
अविमासी = बिना विचार किए
अवेस = अवश्य
अवैधूत = अवधूत, एकलिंगनाथ
अव्वली = प्रमुख
अषियात = ख्याति
असतरी = स्त्री
असपति = बादशाह
अहिनाँण = पहचान, लक्षण
अहिबात = सौभाग्य
अहोनिश =अहर्निश, रात दिन
आंगम्यो = अंगीकृत
आंणी = लायी
आइस = आज्ञा, आदेश
आई = आयु
आकंख = तुलना
आखता = अधीर, जल्दी
आखा = अक्षत, चावल
आगमी = आगे बढ़ना
आगलि = आगे, सामने
आगलि = सामने
आगूवांणे = अग्रणी, नेतृत्व
आघा = आगे
आघुं = आराधना
आजीजी = अत्यधिक विनयपूर्ण प्रार्थना
आटइ = आटा
आटोप = सबसे ऊपर, शिखर पर
आठमी = आठवीं
आडंग = उमस, ताप
आडउ = बीच में, बाधा स्वरूप
आडी = ज़िद
आड़ी = तरफ़

आणिंद्यो = आनंदित हुआ
आणो = लाओ
आथमणी = पश्चिम
आन = अन्य
आफताब = सूर्य
आफलइ = परेशान होना
आभ = आकाश
आमण-दूमणी = आकुल-व्याकुल
आमतं = आया हूँ
आमो-सामो = आमने-सामने
आरति = दुःख, कष्ट
आरी = सहमत
आलसुआ = आलसी
आलि = ज़िद
आलोच = विचार
आलोचह = विचार, निर्णय
आलोची = विचार करके
आसंग = सामर्थ्य
आसंगाइत = पास बैठकर
आसिखा = आशीर्वाद
आसे = पसंद अच्छा
आहड़ूं = अधिकार करूँगा
आहिठाण = स्थान
इतवार = एतबार, विश्वास
इलगार = यलगार, आक्रमण
इला = पृथ्वी
उंडी = गहरी
उकत्त = उक्ति, कथन
उगमणी = पूर्व
उचरि = बोला, उच्चरित किया
उचाट = उदास, अन्यमनस्क
उछब = उत्सव
उजावाल्या = उज्ज्वल कर दिया
उजास = उजाला
उडगनि = नक्षत्र, तारे
उताप = चिंता, दुःख
उत्तंभ = सहारा देने वाला
उदक = जल
उदवास = मृदुल जल में निवास
उद्योत = प्रकाशित होने पर
उद्ध = ऊपर
उपंग = कमर
उपाडंत = उखाड़ते हुए
उबी = वह भी
उबेल = उद्धार
उरस्स = ऊँचा, आसमान
उलही = उल्लसित हो कर
उवरी = निर्वाह
उवारइ = रखे
उवेखस्युं = देखूँगी
उवेलई = उद्धार करूँ
उवेळतां = बचाते हुए
ऊंडा = गंभीर
ऊकळते = उबलते हुए
ऊखाणु = ओखाणा, लोकोक्ति
ऊखाणो = लोकोक्ति
ऊगरउ = जुगाली
ऊचाट = अन्यमनस्क
ऊछंछल =अति उत्साह
ऊछौंछला = उत्साहित, प्रसन्न
ऊथापे = उखाड़कर
ऊधाँण = थपेड़े, प्रहार
ऊपड़ो = प्रस्थान करवाओ, भेज दो
ऊपना = उत्पन्न हुए

ऊपनो = उत्पन्न हुआ
ऊपाडउ = उखाड़ दो
ऊपाड़े = उखाड़े
ऊभउ = खड़ा
ऊभां = खड़े हुए
ऊभो = खड़ा
ऊमही = उल्लसित होकर
ऊम्हयो = उत्साहित हुआ
ऊरण = उऋण, ऋण मुक्त
ऊरियो = डाल दिया, झोंक दिया
ऊळसे = उल्लसित
ऊससी = उत्साह
ऊससी = उसका
एँवडा = इतने
एकटा = एकत्र
एकलमल = एकाकी, अकेला
एकवीस = इक्कीस
एतला = इतने
एम = इस प्रकार से
एरंडकाकड़ी = पपीता
एरापति = ऐरावत (इंद्र का हाथी)
एवडुउ = शीघ्रता
एहनी = इसकी
ऐराक = इराकी
ओंछंछळी = कम
ओगणीस = उन्नीस
ओछाड = आच्छादन, ओढ़ाया हुआ वस्त्र
ओझर = आमाशय
ओठंभ = शरण
ओडे = शरण स्थल
ओतापु = ज्वर
ओलंबो = उलाहना, उपालंभ
ओलु = याद
ओसीसें = तकिया
कंधर = स्कंध
कंधाल = पराक्रमी
कंस = काँसा
कईलास = कैलाश
कओल = कोल, प्रतिज्ञा
कचोला = कटोरा
कचोळी = कटोरी
कटक = सेना
कठ मंदिर = काष्ठ मंदिर, चिता
कठे = कहाँ
कठेई = कहीं पर
कठेक = कहीं-कहीं
कढावुं = निकलवा लूँ
कणयंगि = कनकांगी
कणयर कंब = कनेर की टहनी
कमंध = धड़
कमधज = कमध्वज, राठौड़
करड़ा = कठोर
करभु = कच्छप
करम-करम = क्रमशः
करवर = तलवार
करारी = तेज
करिवार = तलवार
कलकली = किलकिलाहट
कलमले = व्याकुल रहने लगा
कल्लोल = प्रसन्न
कल्लोले = लहरें
कळमली = व्याकुल
कवल्ल = कंबल

कविलास = कैलाश
कसठ अठुवास = एक सौ आठ
कसबो = ख़ुशबू
कसबोया = इत्र
कसाउ = कड़वा
कसूबो = पानी में भीगा हुआ अफीम
काँणि = कमी, ग़लती, त्रुटि
कांगरे = कंगूरे, बुर्ज
कांन = कृष्ण
काईर = कायर
काक = कौए
काकड़ = जंगल
कागल = कागज, पत्र
कागला = कौआ
काचा = कच्चे
कादो = कीचड़
कापड़ियो = कार्पटिक, साधु
कामिणा = कामना
कालज्यो = कलेजा
कास कट जावे = समस्या का निवारण हो जाए
कासीद = पत्रवाहक
कासो = भोजन लगी हुई थाली
किंशुक = केशू
किना = या, अथवा
किलउ = युद्ध लड़ते हुए मर जाना
किलान = युद्ध
कीम्या = कीमा (मांस के हड्डीरहित छोटे टुकड़े)
कीरु = तोता
कुंत = भाला, सेल
कुआर = कुमार
कुटका = टुकड़े
कुड दीदो = गिरा दिया
कुदाल = कुदाली
कुरखे = अनबन, नाराज़गी
कुसटे = ठिठुरन, ठंड
कूकस = भूसा
कूकस = भूसा
कूच = प्रस्थान
कूड = झूठ, धोखा, छद्म
कृसु = कृश, दुबला
केकाण = घोड़े
केड़े = बाद में
केळवस्यूं = कहूँगा
केहरिलंकी = सिंह जैसी पतली कमर वाली
कोकण = भाला
कोका = बुलावा
कोट = दुर्ग
कोड़ाकोड़ि = करोड़
कोथली = थैली
कोपाटोप = अत्यधिक क्रुद्ध होकर
कोपीयो = क्रोध किया
क्राटी = शक्ति
क्रोड = करोड़
खंचे = रुके
खंदार = कंधार
खत्री = क्षत्रिय
खलभल्या = विचलित हुए
खवास = सेवक
खांड = शक्कर
खिति-पुडि = संपूर्ण पृथ्वी
खित्रवट =क्षत्रियत्व
खीलिउ = कीलित कर दिया

खुणसाँणइ = नाराज़गी, रोष
खुणसि = नाराज़ होकर, क्रोधित होकर
खुणसीउ =रुष्ट, नाराज़
खुरपाल = क्षेत्रपाल
खुरसाणी = तुर्क, मुसलमान
खेडि = चलकर
खेत्र = युद्ध भूमि
खेरि = गिरा दूँगा
खेसवउ = खिसका दो, गिरा दो
खेह = धूल
खोच = संकोच
खोजा = नपुंसक, अंत:पुर का सेवक
खोदबंध = ख़ुदाबंद
गंजीया = नष्ट किए
गंज्यउ = नष्ट करना
गजं बाग = हाथियों का अंकुश
गज-थाट = हाथियों का समूह
गमाड़ियो = खो दिया
गमे = बेगमें
गयगमणि = गजगामिनी
गयणह = गगन पर, आकाश पर
गरद = गर्द, धूल
गरहगत = विपत्ति, आपदा
गरिट्ट = गरिष्ठ
गलदार = यशगान करने वाले
गळिया = मीठा
गहगही = प्रसन्न
गहगहूं = प्रसन्न होऊँ
गहगह्यउ =आह्लादित हुआ, प्रसन्न हुआ
गहिर = गहरा
गहिलउ = पागल
गहिलो = पागल

गादी = सिंहासन
गायण = गानेवाली स्त्री, वेश्या
गाल = गाली
गाल-मसूरी = तकिया और गाव तकिया
गालुं = ख़त्म करूँ
गिंभ = गर्भ
गिदवान = गद्दा
गिरधण = गिद्ध
गिलीउ = ग्रस लिया
गिलीसुरी = तकिया
गिलें = निगलना
गीरध = गिद्ध
गुंडाई = बदमाशी
गुझ = गुह्य, गुप्त, रहस्य
गुड्या = गिराया, लुढ़काया
गुणियणा = गुणीजन
गुमर = गर्व, अभिमान
गुमान = गर्व
गुराब = तोप
गुल पिण = गुड़ बनाने का गहरा बर्तन
गुहीर = गंभीर, गहरे
गुह्य = गुप्त
गूडी = गुलाल
गूदबड़ा = मावे और गोंद को मिलाकर बनायी गयी एक मिठाई
गेंवर = हाथी
गेला = मार्ग
गेवरां = हाथियों
गेह = घर
गोठा = सामुहिक भोजन
गोफणा = पत्थर फेंकने का लकड़ी और कपड़े से बनाया हुआ यंत्र

गोबे = डूबे रहने लगा
गोरी = गोली
गोरू = पशु
गोष = गवाक्ष
ग्रव = गर्व
ग्रसह = गरिष्ठ, भीषण
ग्रास = हिस्सा, जागीर, गाँव
ग्रासी = डाकू
घणउ = बहुत
घणेरा = बहुत सारे
घर घोडीया = गृहस्थ, घर का काम स्वयं करने वाले
घरणी = पत्नी, स्त्री
घरु = गृहस्थ
घल्लउ = डाल दूँ
घात = धोखा, षड्‌यंत्र
घालियो = डाला
घुंटे = घुटने
घुट्टउं = घटकना, पीना
घुरिया = बजाये गये
चंग = कुशलता पूर्वक
चउसाल = समतल
चऊला = चँवला
चकडोल = पालकी
चकरायसां = चकराये, आश्चर्यचकित हुए
चकीत = चकित
चख = चक्षु
चच्छु = चक्षु
चणणाट = सनसनाहट
चपे = चिपक जाते हैं
चरपरा = चटपटा

चळू = भोजन के बाद का आचमन, अंजली
चहु चक्क = चारों दिशाओं
चांबतणी = चमड़े की
चाचर = नृत्य
चाप्यु = दबाया
चावउ = प्रिय, प्रसिद्ध
चावो = प्रिय, प्रसिद्ध
चास भास = रंग - ढंग
चिटकाइ = खोल दी
चिणा = चना
चीतवइ = विचार करते हैं
चीपड़ी = चिपका हुआ
चुंखुं = चूसना
चुंथु = लोटना
चुल्ह = चूल्हा
चूंवत = चूमती है
चूनउ = चूना
चैंप = लगन, इच्छा
चोखी = अच्छी
चोगे = देखना
चोगेगा = देखेगा
चोला = बातें
चोहटा = चौराहा
चौंर = चमर
चौडोलाना = चकडोल
छंछारे = रक्त के फव्वारे
छंदो = छद्म, प्रपंच
छपद = षट्पद, भ्रमर
छाटुं = छींटा, कलंक
छानही = क्षण
छाना = चुपके

छारत = छोड़ते हैं
छिटकिउ = चला गया, अलग हो गया
छित्ति = धरती
छेंटी = दूरी
छेह = अंत
छेहो = विश्वासघात, धोखा
छै = सीमा
छोकरी = लड़की, दासी
जंपेय = कहता हूँ
जंबूरयनि = जामुन
जगजंत = जग जीतने वाला
जड़ी = जड़, मूल
जनोईदार = जनेउधारी (राघव)
जमराह = तलवारें
जमहर = जौहर
जरद = पीला
जलछोलि = पानी की लहरें
जलपथव = पानी पर चलनेवाले
जव्वनपति = यवनपति
जाजिम = बेलबूटों से छपी मोटे कपड़े की दरी
जाजुल = भयंकर
जाजुलि = जाज्वल्यमान
जाणक = जैसे कि
जातरा = यात्रा
जान = बारात
जानी = बाराती
जामनी = यामिनी
जिमणार = भोज
जिमाडी = भोजन करवाना
जीपें = जीतें
जीपेशाँ = जीतेंगे
जीह = जीभ
जुई = दो, अलग
जुरवज्जं = जर्राह
जुव = देखने योग्य
जूझार = योद्धा, जूझनेवाला
जूड़ा = केश
जूदी = जुदा, अलग
जेठी = पहलवान
जेत्र = जीत, विजय
जैकारु = जयकार
जैत = जीत
जोअण = देखने के लिए
जोग्यंद = योगेंद्र, योगी
जोरो = ज़ोर, ताकत
झबकंती = चमचमाती
झबकउ = चौंकना
झबको = चौंकते हैं
झाल्यउ = पकड़ लिया
झीलइँ= स्नान करता है
झूरती = दुःखी रहती है
झोड़ा = झंडे
टुंक-टुंक = टुकड़े-टुकड़े
टुकटुक = टुकड़े-टुकड़े
टेव = आदत
टोंटि = बांडी, कटी हूई
ठयो = ठहर गया
ठवी = रखी, पहनायी
ठवे = रखी, पहनायी
ठामि = स्थान
ठायह = स्थान
ठार्यो = डाल दिया है

ठावा = मुख्य, प्रसिद्ध
ठावी = प्रसिद्ध
ठेपो = प्रवाह
ठोड = स्थान
डंबर = अंबर, आकाश
डगमग्यो = विचलित होता, डाँवाडोल होता है
डाईचे = दहेज
डाकण = राक्षसनी
डाड पाड़ = ज़ोर से आवाज़ लगाकर
डाण = डग
डाण = दान, मद
डाव = दाँव, चतुराई
डिढ़ = दृढ़
डीलइँ-डील = शरीर से शरीर
डीलै = शरीर
डुगरा = पहाड़
डुटी = नाभि
डुल्यिउ = डोला, विचलित हुआ
डुल्लई = हिलने-डुलने लगता है
डेल = ढ़ीला, खुला
ढाँढ़ा = पशु
ढाढ़ी = यशगायन करनेवाली एक जाति
ढिंग = पास, निकट
ढीकुली = पत्थर फेंकने का यंत्र
ढीलीपति = दिल्लीपति
ढोर = पशु
ढोवा = धावा, आक्रमण
ढौलै = (हवा) करती है
तईवार = त्योहार
तक्कू = शिकार के समय सूचना देने वाला
तखत = तख़्त, आसन
तटकी = तमककर
तड़ = पक्ष, दल, समूह
तणउ = का
तत्ती = ताँता
तबलवाल = शस्त्रधारी
तरणि = सूर्य
तरपत = तृप्त
तरहटि = तलहटी
तरुहिं = तरु के, वृक्ष के
तिंदुकी = वृक्ष का नाम
तिखिणि = तत्क्षण
तिणगा = चिनगारियाँ
तिलवट्ट = नाश
तीड़ा = टिड्डी
तुट्टइ = टूटेंगे
तुपक = तोप
तुरी = घोड़ा
तूठी = संतुष्ट हुई
तूसइ = तुष्ट होनेवाली
तेडावी = बुलाकर
तेष = तीक्ष्णता
तैवार = तैयारी, कूच
तोग = मनसबदार
तोडर = टोडर, हाथ में पहनने का कड़ा
तोत = बहाना
तोबह = तोबा
तोबा = पश्चाताप
तोषार = घोड़ा
त्राग़ा = धागा
त्राटंक = कर्णाभूषण
त्राटी = झोंपड़ी

त्रिखा = तृषा
त्रिणवडि = तिनके की तरह
त्रिणा = तिनका
त्रिवलि = त्रिबली (स्त्रियों के पेट पर नाभि के कुछ ऊपर दिखाई पड़ने वाली तीन रेखाएँ)
त्रिस = तृषा, प्यास
त्री = स्त्री
थकी = से
थट = समूह, सेना, दल
थप्यउं = स्थापित करूँगा, मानूँगा
थरता आई = स्थिरता आई, संतोष हुआ
थांभा = स्तंभ
थानिक = स्थान
थीभा = शूलों
थोथा = कमज़ोर, मूर्ख
दंद = द्वंद्व, दुःख
दउहाग = एक पत्नी के रहते दूसरी ले आना
दज गीयो = जल गया
दपटाईर = दौड़ा कर
दमाणक = शक्तिशाली
दरीउ = दरिया, समुद्र
दरीखाना = दरबार
दषणा = दक्षिणा
दहवाटो = नाश, विध्वंस
दांण = दाव
दाखइँ = कहता हूँ
दाग = दाह संस्कार
दाझइ = दग्ध होती है
दाड़िम = अनार
दाय = अच्छा लगना, पसंद आना
दाषो = कह दो
दाह = ईर्ष्या
दीठी = देखी
दीपंत = प्रकाशित
दीपानं = द्वीप के
दीवान = मेवाड़ का शासक (परंपरानुसार अपने को आराध्य एकलिंगजी का दीवान मानते हैं)
दीष्या = दीक्षा
दुचित = संशय, दुविधा
दुणा-चोकणा = दूना-चौगुना
दुतिय = दूसरे
दुत्तर = बहुत मुश्किल से, कठिन
दुनी = दुनिया
दुमंन्नउ = दो मन, दुविधा
दुमामा = नगाड़े
दुहेलुं = कठिन
दूढ = दृढ़
दूध डांग = दूध और डांग-लाठी (लालच और भय)
देसउटउ = देश निकाला
देसत = दहशत
दोजिग = दोज़ख़, नरक
दोवटी = चादर
दोहिला = व्याकुल
द्रेठ = दृष्टि
द्रेठि = दृष्टि
धकचाल = हलचल
धज = ध्वज
धड़हड़्यो = डमगाने लगा
धणी = स्वामी
धनक = धनुष

धनदु = कुबेर
धपटिया = दौड़े
धरता = सांत्वना
धरतीया = भूमि पर
धराउ = उत्तर दिशा
धरेती = धारण करती है
धवलंति = सफ़ेदी
धस = धँस, घुसना
धसिर = बलात् आ गयी
धाय = दौड़ते हैं
धारी = निश्चय किया
धीरवें = धैर्यपूर्वक, ठहर कर
धू = ध्रुव
धोबा = दोनों हथेलियों के मिलाने से बना खाली स्थान
धौलहर = भवन
नगा = पता करो
नगीच = नज़दीक, पास
नचताई = निश्चिंत
नद्दं = नदी
नयर = नगर
नव दूनी = अठारह
नषे = पास
नसि = नष्ट हो गयी
नहेचल = निश्चल, दृढ़
नाँख्या = कर दिया, डाल दिया
नांक राखिया = नाक रखा, सम्मान बचाया
नांखि = डालकर, छोड़कर
नांन्हु = छोटा, अल्पवय
नाइकं = नायक
नाक नमणि = नाक नीची करना, अधीनता स्वीकार करना
नागधारी = शिव
नाज = अन्न, भोजन
नाठा = दौड़ा, भागा
नादरी = विश्वास करो
नानो = छोटा
नायका = नायिका
नार = सिंह
नाल = तोप
नासंतों = भागता हुआ
नासी = भागकर
नासी = भागेगा
निमा = नमाज़
निरखंतउ = निरखता हुआ
निर्ममयउ = बनाया, निकला
निलवटि = ललाट
निलाट = ललाट
निसणउ = सुनो
निसत = निश्चित
निसवादा = स्वादहीन
नीचो = क्षुद्रता, छोटापन
नीठ = बहुत मुश्किल से
नीठे = समाप्त हो गये, निस्तेज
नीसंख = असंख्य
नीसरइ = निकलता
नीसरणी = सीढ़ी
नीसरिया = निकले
नीसरी = निकली
नेजा = भाला
नेड़ा = पास
नोता = निमंत्रण
न्हाठा = दौड़ते

पंचावन = पचपन
पंचोतर = पाँच तरह के
पंषाल = पंख लगे हुए
पइठिसिउ = जाऊँ, प्रस्थान करूँ
पइसारउ = प्रवेश करो
पउहंतउ = पहुँच गया
पक्खरं = पाखर, जीन
पगतलि = पाँव तले
पछाण = पहचान
पटंतर = प्रत्यंतर, उसके बाद
पटवाडि = बंदनवार
पटोड़ी = रेशमी परिधान
पट्टकूल = रेशमी वस्त्र
पठवउ = भेजूँगा
पडखावयो = व्यतीत करना
पड़दाईत = पर्देवाली
पड़वड़ी = पंखुड़ी
पड़वड़ी = पतिव्रता
पडसाद = प्रतिध्वनि
पडिहार = भोजन परोसनेवाल
पढ़िया = पढ़े हुए, ज्ञानी
पणमी = प्रणाम करके
पत = विश्वास
पतिज्जइ = विश्वास करो
पतोड़ी = पतोड़ (बेसन से निर्मित एक प्रकार की सब्जी)
पथराव्या = रखे
पनगलता = नागकेशर की लता
पनगारि = नागराज के शत्रु
पना = पन्ना
पयंपइ = बोलती है
पयज = प्रण, प्रतिज्ञा
पयताब = पायताब, मौजे
पयाणो = प्रस्थान किया
पयापहु = कहता है, प्रतीत होती है
पयासइ = प्रदान किए
परगडी = प्रस्तुत करूँ
परजंक = पलंग, शय्या
परजारे = जलाते हैं
परणो = परिणय करो
परतिख = प्रत्यक्ष
परतिष = प्रत्यक्ष
परनि = परिणय करके
परमाद = आलस्य
परिग्घे = घेरे रहा
परिघल = भरपूर
परिच्छद: = कवच
परिवरिउ = प्रस्थान करवाया
परिवा = प्रतिपदा
परूसइ = परोसती है
परोथ = पुरोहित
पलांण्यउ = प्रस्थान किया
पल्ल = मांस
पल्लिंग = पलँग
पवाड़ो = संग्राम, युद्ध
पसाव = चारणों को दिया जानेवाला दान की इकाई
पहवी = पृथ्वी
पहिरामणी= वस्त्रादि
पहोवी = पृथ्वी
पाँनइ पडइ = हाथ में आये
पाईदे = पिला दे
पाघ = पगड़ी
पाडलियाई = फाड़ डालते थे

पातली = पतली, क्षीणकाय
पाथे = पंक्तिबद्ध
पानही = पगरखी
पाम्यो = प्राप्त हुआ
पायकं = पैदल, पदाति
पारधी = शिकारी
पालिख = पलंग
पाल्यो = पालन किया
पाषती = पास
पाषाण = पत्थर
पासें = चौपड खेलने के पासे
पाहुणो = अतिथि
पिखै = देखना
पिख्खन = देखने का
पिणि = किंतु, पर
पिप्पली = चींटी
पिल्हउ = नष्ट करूँ
पिषुण = चुगलख़ोर, दुष्ट
पींजलि = पिंडली
पीदे = तल
पीरान = पीरों द्वारा
पीसत्याईत = प्रेतात्माएँ
पीसाईत = उत्पात
पुंगी = सुपारी
पुंगी = सुपारी
पुंसली = पुंश्चली, कुल्टा
पुन्न = पुण्य
पुव्व = पूर्व
पुव्वहि = पूर्व में
पुसपा = पुष्प
पुहतउ = पहुँचा
पुहवी = पृथ्वी

पुहुमि = पृथ्वी
पूठें = पीछे
पूठें = पीछे, बाद में
पून्यौ = पूर्णिमा
पूरजा = टुकड़े
पूरवइ = पूर्ण होने लगी
पूरवै = पूर्ण करता है
पूलइ = पूला, घास का बँधा हुआ छोटा गठ्ठर
पेज = प्रण
पेतावा = पता लगाना, खोजना
पैठो = घुसा
पोट = गाँठ, गठरी
पोढुं = शयन करूँ
पोता = अपना, घर का
पोरस = पौरुष
पोल = दरवाज़ा
पोलि = प्रोलि, दरवाज़ा
पोहर = प्रहर
प्रथमी = पृथ्वी
प्रवहण = जहाज
प्रवहण-वाहण = जहाज और नावें
प्रस्तावइ = अवसर पर
प्राँहुणा = अतिथि
प्रारथियां = प्रार्थना करने वाले
प्रिथी = पृथ्वी
प्रीउ = प्रिय
प्रीछइ = विचार किया
प्रीसइ = परोसती है
प्रीसणो = परोसना, परोसकारी
फजर = सुबह
फटिक = स्फटिक

फटिकि = फैला रहे हैं, भेज रहे हैं
फते = फतह, विजय
फते बाजी = विजय हुई
फाबइ = फबता है, शोभित होता है
फाबता = अच्छा लगने वाले
फिट = धिक्कार
फुरमांण = फ़रमान, आदेश, राज्यादेश
फेरविजें = लौटा दिया
फोकट = नि:शुल्क
फोड़ा = कष्ट, तक़लीफ़
फोफल = नारियल
बंध = बंधु
बंभण = ब्राह्मण
बइंनड़ी = बहन
बइसणई = आसन
बकइ = कहती है
बका = बाका, खुला मुँह
बजंत्री = वाद्य बजानेवाले
बटका = टुकड़े
बडकणि = बड़ी वाली
बद गीया = बढ़ गया
बदस = विध्वंस
बदीवार = विगतवार, क्रमश:
बनसी = बरछी
बरजु = मना करना
बरणाव = वर्णन
बरतसी = व्यवहार करना
बरामणा = ब्राहमण
बलतो = जलता हुआ
बहबा = चलना, बहना
बागा = सिला हुआ वस्त्र
बाजंत्र = वाद्य यंत्र
बात पारोस = बातफ़रोश
बादबा = बाँधने लगे
बाबु = प्रहार करता है
बारणे = बाहर
बाव = वायु, आँधी
बावडूं = लौट जाऊँगा
बाहुडुं = लौट जाऊँगा
बिछात = बिछायत, फ़र्श, कालीन
बिडारि = विदीर्ण
बिसमी = विषम, अलग और ख़ास
बिहरत = हटकर, उचटकर
बिहुँ = दोनों
बींद = दुल्हा
बीजलबायो = स्तंभित, विचलित, चौंधियाया हुआ
बीजी = दूसरी
बीजू = बिजली
बीजें = दूसरे
बीटी = घेरकर
बीडउ = बीड़ा, पान, प्रस्ताव
बीया = दूसरे
बीयान = बयान, बताना
बीयो = बहा
बीह = भय
बीहउ = भय
बीहें = भयभीत
बुग्ग दंती = बगुले जैसे सफेद दाँतवाले
बुझिसि = समझना
बूंबारव = भीषण आवाज़
बूठा = बरसकर
बूडण = डूबने
बूडी = डूब गये

बूरो = शक्कर
बे कारिमी = व्यर्थ
बेंसणे = आसन
बेलष = दो लाख
बेसर = नथ
बोज = वज़्न
बोदी = ख़राब, कमज़ोर
बोलइ = बुलाया
बोहड = वापस
बौंलसिरी = मौलश्री
ब्रिभल्ल –विह्वल
भग = स्त्रींद्रिय
भजिसि = भागेगा
भटनि = योद्धाओं ने
भड = योद्धा
भणावीय = पढ़ाया
भणिजइ = कहते हैं
भणी = कहो, बताओ
भत्रीजा = भतीजा
भमह = भोंहें
भमुह = भौंह
भरतार = पति
भवाडे = बनाये रखना, अक्षुण्ण रखना
भवीस = भविष्य
भाँण = भानु, सूर्य
भाख्यो = कहा
भागो = टूटा, ध्वंस
भाजें = भागना
भाटा = पत्थर
भाठी = भट्टी
भाण = सूर्य
भामर = भ्रमर

भारथ = भयंकर युद्ध
भीनो = भीगा हुआ, मग्न
भीरह = भयग्रस्त
भुँई = भूमि
भुंगल = नरसिंह वाद्य
भुंडा = बुरा, ख़राब
भुंया = मंजिल, भवन
भुरज = बुर्ज
भुरजि = बुर्ज़
भूंजाई = भोजन
भूयं = भूमि
भेदाणुं = पूर्तिकारक
भेली = एकत्र
भोंन = भवन
भोगल = अर्गला
मँझार = मध्य में
मँडाणउ = तय किया है
मंगतजन = माँगनेवाले
मंछ = मछली
मंजन = स्नान
मंझि = मध्य
मंडुं = करूँ
मंतौ = मद में मस्त
मंत्रणो = विचार किया
मंत्रु = सम्मति
मइंगल = मंगोल
मछर = नाराज़, क्रोध
मजुस = गहने आदि रखने का संदूक
मजेद = व्यर्थ
मत्तु = मत्त, मस्त
मदमोच = मान मर्दन
मनछा = मन की इच्छा

मनिक्रन्न = मणिकर्ण
ममोल = वीर बहूटी
मयगळ = हाथी
मयन्नं = मदन, कामदेव
मयमत्ती = मदमस्त
मया = दया, कृपा
मरट = मरोड़
मली चाइजे = मिलनी चाहिए
महगल = मंगोल
महिताब = चंद्रमा
महिमाँनी = आतिथ्य
महिरी = चंद्रमुखी स्त्री
महीमांनी = आतिथ्य
महोछवि = महोत्सव
महोर = मुहर
माउली = माता
माकुब = बंद
माडकर = बनाकर
माडा = अकारण
मातंग = हाथी
मादल = एक वाद्य
मानीती = मान्य
माफक = समान
मामोल्या = वीर बहूटी
माय = मुझे
मारकणा = साहसी, मारने वाला
मावइ = समा जाती है
मास = मांस
माहो-माहि = परस्पर, आपस में
मिहिर = कृपा
मीच = बंद करना
मीरघ तुचा = मृग त्वचा

मुंकह = छोड़ती है
मुंदे = अवरुद्ध
मुच्छ पानं = मूछों पर हाथ फेरकर
मुड़ई = अन्यथा
मुळकी = प्रसन्न हुई
मुष्ठि करीनह = मुठ्ठी बाँधकर, दृढ़तापूर्वक
मुसाफ = घेरा
मुहत = महत्त्व
मूंआ = मरा हुआ
मूंक्यो = छोड़ दिया
मूंगबड़ी = भिगोई हुई, मूँग की दाल को पीसकर उसमें नमक-मसाला आदि मिलाकर बनाई गई तथा सुखाई हुई छोटी टिकिया या पकौड़ी
मूंधि = मुग्धा
मृगराई = सिंह
मेछ = म्लेच्छ
मेछा = म्लेच्छ
मेछाइन = म्लेच्छों
मेदपट्टम = मेदपाट, मेवाड़
मेर = मेरु
मेलवसी = मिलायेगा
मेल्हेसी = मिलवायेगा
मेल्ह्या = भेजे
मोकलो = भेजा
मोकलो = अधिक
मोटाँ = बड़ों
मोड़ = मुकुट
मोर = पीठ
मोसो = ताना, व्यंग्य
मौचे = बहाना, निकालना

युगि = दोनों
योतिष = ज्योतिष
रंगरली = प्रिय, लाड़ली
रंज्यो = प्रसन्न, संतुष्ट
रंढाल = शक्तिशाली, वीर
रंतौ = अनुरक्त
रईत = प्रजा
रगत = रक्त, लाल
रगत्र = रक्त
रजवट = रजपूती, क्षत्रियत्व
रजा = इच्छा, कृपा
रजास = भोग विलास
रज्जे = निश्चित कर लिया
रढ़ = स्वभाव, आदत
रण-रसी = युद्ध प्रेमी
रतंमास = रक्त मांस
रतवा = आक्रमण, धावा
रती = थोड़ा-सा
रत्त = प्रेम
रत्त = लाल
रदीण = छौंकना
रमझोल = नाचना-कूदना, मनोरंजन
रयण = रात्रि
रयणि = रात्रि
रळियामणा = सुहावने
रवद = सेना
रवनि = रमणि, स्त्री
रष्षहि = रखेंगे, रक्षा कर लेंगे
रहसि = रहस्य
राईता = रायता
राचंति = शोभित होती है
राजी = प्रसन्न
राजीपो = प्रसन्नता, सहमति
राटराषे = ईर्ष्या रखता है
राड़ = झगड़ा
रादे = राँधना, पकाना
राह = मार्ग, मर्यादा
राह = राहु
राहि = राहु
रिंजवी = प्रसन्न हुई, संतुष्ट हुई
रिणायर = रत्नाकर, समुद्र
रिमराह = राहु
रीझवीउ = आसक्त
रीस = रोष, क्रोध
रीसाणो = क्रोधित, नाराज़
रुंड = कटा हुआ सिर
रुक्का = पत्र
रूँधो = बँधा हुआ, अवरुद्ध
रूख = वृक्ष
रूजक = राजस्व
रूडी = अच्छी, सुंदर
रूलियाइत = रोने जैसी हो गयी
रूषां = वृक्षों
रूसइ = रुष्ट होनेवाली
रूसी = ऋषि
रूसे-तूसे = रोष और तोष, दोनों स्थितियों में
रेख = मर्यादा
रेह = रेखा, मर्यादा
रैयन = रात्रि
रोढउ = पत्थर
रोह = अवरुद्ध, घेराबंदी
लंक = कमर
लचकनी = लचकती है

लच्छी = लक्ष्मी
लच्यो = दब गया
लबार = बातूनी, झूठा
लहस्ये = मिलेगा, लोगे
लाडू = लड्डू
लाद = मिलना
लारोलारि = एक-दूसरे के पीछे
लासंत = सुशोभित होती है
लाह = लाभ
लिगाडी = लगा दी
लिगाडी = लगाना, घिसना
लीक = मर्यादा
लुगायां = स्त्रियाँ
लुण = नमक
लूंग = लौंग
लूण = नमक
लूण हराम = नमक हराम
लेण = लाइन
लोक वाइक = लोक में प्रचलित
लोथ = लाश
लोबड़ी = ऊनी वस्त्र धारण करनेवाली देवियाँ
लोयण = लोचन
लोह = तलवार
लोहइ = शस्त्र
लोही = लहू
ल्हास = लहसुनिया, गोमेद
वंक्कट = विकट
वंस = बाँस
वउल्या = व्यतीत हुए
वकस = बख़्शा
वखांणीयइ = बखान किया
वघुल्या = वात्याचक्र
वजवजे = बढ़ा-चढ़ाकर
वड = बड़ा
वडउ = काटना
वड्डउ = बड़ा
वदइ = कहते हैं, देते हैं
वधामणा = बधाई
वधारिउ = बढ़ेगा
वधारे = बढ़ाना
वभये = वैभव
वयर = बैर, दुश्मनी, शत्रुता
वयरी = बैरी, शत्रु
वलतुं = उत्तर (जवाब) में
वल्लभ = प्रिय
वल्लि = लता
वषत वार = समय और तिथि से, भाग्य से
वषतें = समय से, भाग्य से
वसत = वस्तु
वसीठ = दूत, मध्यस्थ
वसेइं = निवास करो
वहुअर = पुत्रवधू
वाँन = प्रेम
वांचे = वाचन करता है
वाउ = वायु
वागा = परिधान
वागुरि = फंदा
वाघ अनइ दोतडिनउ न्याइ = बाघ और दो तट, दुविधा
वाचक = जैन मुनियों के लिए प्रयुक्त पद विशेष
वाचा = वचन, प्रतिज्ञा

वाज = घोड़ा
वाजित्र = वाद्य यंत्र
वाट = मार्ग
वाढ़यउ = बढ़ने पर
वादर = बादल
वाधइ = बढ़ता
वारवराँ = बार-बार
वाली = शक्तिशाली
वाल्हेसर = प्रियवर
वावि = वापि, बावड़ी
वासरु = दिन (सूर्य)
वासु = सुगंधित
वाह = धावा
वाह्या= चलाये
विखउ = संकट, संघर्ष
विगर = बग़ैर
विग्रह = युद्ध, झगड़ा
विचि = बीच में
विछावणा = बिस्तर
विडारण = नष्ट करने वाले
विढवा = युद्ध, लड़ाई
विणठी = विनष्ट की
वित्थुरे = बिखरे हुए
विध्याड़ि = बाँधे गये, बनाये गये
विनडुं = नष्ट करूँ
विन्नयउ = रचा गया
विबुध = देवता
विभा = वैभव
विभाडउं = भिड़ायेगा
विभाडण = विनाश करने के लिए
विमंन्नउ = बिना मन के, अन्यमनस्क
विमासि = विचार करके
विमासे = विचार करना
विमुहा = विमुख उल्टा
विरजी = विरही
विरम्यउ = रमण किया
विलखी = दु:खी, आकुल-व्याकुल
विलवती = बिलखती हुई
विल्हसिय = प्रसन्न हुए
विळकती = बिलखती, रोती हुई
विळकुळियो = व्याकुल होने पर
विषेरया = बिखेर दिया
विसटालुं = समाधान करने वाला
विसमी = दुविधापूर्ण
विसेट = दूत
विस्तरियो = फैल गयी
विस्तर्यो = फैलाया
विहंडउ = विनष्ट कर दो
वींझाचल = विंध्याचल
वीछाया = बिछाया
वीटइ = लिपटी हूई
वीट्यउ = बँध गया
वीनमइ = विनय की, प्रार्थना की
वीरज = वीरता, शक्ति
वीरा = भाई
वील = बिल्व
वीसास = विश्वास
वूझीयइ = समझिए
वृच्छ = वृक्ष
वेगई = शीघ्र
वेघो =शीघ्र, जल्दी
वेल = लता
वेसास = विश्वास
व्रद धर = विरुद धारी

व्रनही = वर्णन
शिष्या = शिष्टाचार
शीव = शिव
षगां = तलवार से
षत्रिवट = क्षत्रियत्व
षर पड़ियो = टूट कर गिरा
षांत = इच्छा, कामना
षाग = तलवार
षापां = म्यान
षुणास्यो = नाराज़ हुआ
षुलिया = जेब
षेहाडंबर = धूल का गुबार
षोला = गोदी
संकडि = संकट
संकर = साँकल, बेड़ी
संक्यउ = आशंकित हुआ
संचर्यउ = गया, चला
संध = जोड़
संधिउ = जोड़ दिया है
संन्दीया = संध्या
संपेख = देखकर, लक्ष्य कर
संभरउं = स्मरण करूँ
संभली = सुना
संहेसें = सहस्र
सउडि = गद्दा
सउहड = योद्धा
सगति = शक्ति
सगती = सख़्ती
सगारथ = संबंध
सगुण = गुणवान
सझ = सज्जित किया
सझ = समझदार, विज्ञ
सताब = शीघ्र
सद = शब्द, आवाज़
सदाबा = साधना करवाने
सन्नाहे = कवच, बख्तर
सबलाँ = बलशाली
सबी = शबीह, चित्र
समखोरपणा = स्वामिभक्ति
समप्पो = प्रदान करो
समरंतउ = स्मरण करता हुआ
समरूँ = स्मरण करता हूँ
समसरि = समता
समसेर = शमशीर, तलवार
सयण = सज्जन
सरणाई = शरणदाता
सरणाई = शहनाई
सलसल्यो = हिलने लगा
सलाबत = सलामत
सवि = सभी
सवेह = सभी
ससिर = शिशिर
सहिनाण = पहचान, निशानी
सहिर = शहर
साँकडइ = संकट में
सांकड़े = संकट में
सांगि = भाले जैसा एक शस्त्र
सांतरो = जल्दी, शीघ्र
सांभल = सुनो
सांभलउ = सुनो
सांम्हा = सम्मुख
साइति = मुहूर्त
साइर = समुद्र
साकति = शक्तिशाली

साको = महासंग्राम
साखि = साक्षी
साग = सब्जी
साचविउ = सत्य चरितार्थ किया है
साटै = बदले में
साठइ = बदले में
साठी भात = षष्ठिका, चावल
साद = शब्द
साबता = पूर्ण
साम = स्वामी
सामठा = समवेत, एकत्र
सामठा = सम्मिलित
सामद्रोह = स्वामिद्रोह
सामहणी = भेंट, उपहार
सामां = सामने
सामिणी = स्वामिनी
सार = चौपड़
सारइ = काम होना
सारस = सरस्वती
सारसी = गर्जना
सारीक = पूरी
सालणा = सब्जी
सासन = धर्मार्थ दी गयी जागीर
सासरें = ससुराल
साह = सहायता, सुरक्षा
सिंधुआ = सिंधु राग
सिक्कार = शिकार
सिगति = शक्ति
सिणगारिया = शृंगार किया, सजाया
सित = शब्द
सिध = सिद्ध
सिबका = शिविका, पालकी
सिरिखइ = समान
सिरिपाउ = सिरोपाव, वस्त्रादि
सिलह-बंध = कवचादि से सुसज्जित
सिलो = फसल ले लेने के बाद पीछे बचा हुआ अन्न
सिहर = शिखर
सीख = विदाई
सीखड़ी = विदा
सीघडा = सुरंग
सीजी = पकी
सीधउ = सिद्ध हुआ
सीह = सिंह
सुकलीणी = सुकुलीन, अच्छे कुलवाली
सुको = सूखा, अतृप्त
सुखपाल = पालकी
सुगंद = सौगंध
सुनइया = स्वर्ण मुद्राएँ
सुपसाय = कृपा, अनुग्रह
सुभर = सुभट्ट, योद्धा
सुमिट्ठउ = सुमधुर
सुय = सुत, पुत्र
सुरहीय = गाय
सुव = सुत, पुत्र
सुसा = खरगोश
सुसे = सूख जाए
सुहंगा = सस्ता
सुहड़ = योद्धा
सुहिणे = सपने
सूत्रधार = सुथार
सूरता = वीरता, पराक्रम
सूरिम = वीरता
सूरिम = वीरता से

सेत = सेतु, पुल
सैं = सौ
सोक्यां = सौतों को
सोझो = खोजा, पता किया
सोधत = शुद्ध करते थे
सोवन = सुवर्ण
सोवन्न = सुवर्ण
सोष–मोष = सुख–मोक्ष
सौर = रजाई
स्यालीइ = सिंयार
स्त्रवजा = सब कुछ उत्पन्न करनेवाली
हंस = इच्छा
हकारि = बुलाया
हक्कि = हाँककर, दौड़ाकर
हटसाल = बाज़ार
हणउ = नष्ट करूँ
हणमति = हनुमान
हण्यो = नष्ट किया
हबके = तुरंत
हमलास = आत्मीयता से
हमालां = भारवाहकों को
हर राणी = पार्वती
हरमां = बेगमें
हरिपुर = विष्णुपुर
हरिव = हरे (पत्ते)
हलकार = डाटना
हलके = समूह
हलफल = हलचल
हलावाँ = चलायें
हाक = आवाज़, हल्ला, हुंकार
हामीं = स्वीकृति, सहमति
हिकमति = उपाय, युक्ति
हिलोलणहार = हिलानेवाले
हिवइँ = अब
हींसे = हिनहिनाते हैं
हीइ = हृदय
हीणी = हीन
हीणुं = छोटा, निम्न
हीय = हृदय
हीसारव = हिनहिनाना
हुड़ = लोह स्तंभ
हुरम = बेगम
हेंवर = घोड़े
हेकणि = एक बार
हेज = प्रेम
हेज = है ही
हेजि = प्रेम से
हेठि = नीचे
हेमाचल = हिमालय
हेले = आह्वान
हैमर = हयवर